

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 17 अंक : 6 □ नवम्बर-दिसम्बर, 2025

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल

ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी

दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी

काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. प्रकाश सिन्हा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी

दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अरुण कुमार

रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह

सिद्ध कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

डॉ. पूनम सिंह

बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह

पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह

जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर

वीर कुंआर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ. अमर कान्त सिंह

तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

डॉ. ऋतेश भारद्वाज

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. स्वदेश सिंह

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. विजय प्रताप सिंह

छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

©Editorial India

Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

अमेरिकी शटडाउन: बहुत बड़ी घटना का छोटा प्रस्तुतीकरण

पिछले एक माह से अधिक समय से अमेरिका में शटडाउन है। कुछ आवश्यक सेवाओं को छोड़कर अधिकांश सरकारी विभागों में कामकाज ठप है। अमेरिकी इतिहास का यह 11वां शटडाउन है, जिसमें यह सबसे लंबा है। इससे पिछला बड़ा शटडाउन भी ट्रंप के कार्यकाल में ही हुआ था। यदि भारत में ऐसा हुआ होता तो पूरी दुनिया में, विशेष रूप से अमेरिका में भारतीय संविधान और व्यवस्था की धज्जियां उड़ते हुए बड़ी संख्या में लेख लिखे जाते। लेकिन अमेरिका की इतनी बड़ी घटना को भी अत्यंत न्यून तरीके से प्रस्तुत किया जा रहा है

आज पूरी दुनिया में अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा लगाए गए बेवजह, अन्यायपूर्ण और बहुपक्षीय व्यापार नियमों के खिलाफ टैरिफ की सर्वत्र चर्चा हो रही है, लेकिन दुनिया में एक महत्वपूर्ण विषय सार्वजनिक चर्चा से लगभग बाहर है। वस्तुतः अमेरिकी सरकार का शटडाउन जो एक अक्टूबर से जारी है। एक अक्टूबर से अमेरिका का सरकारी कामकाज लगभग पूर्ण रूप से ठप है। यह अभी तक का सबसे लंबा और बड़ा शटडाउन हो गया है। इस शटडाउन के परिणामस्वरूप लगभग नौ लाख संघीय कर्मचारियों को छुट्टी पर भेज दिया गया और 20 लाख अन्य कर्मचारी बिना वेतन के काम कर रहे हैं। स्वास्थ्य सेवा और परिवहन, सुरक्षा, प्रशासन जैसी आवश्यक सेवाएं जारी हैं, लेकिन इसके अलावा शेष सभी सरकारी विभागों का कार्य तब से ठप है।

अमेरिका में सरकार का बजट वर्ष एक अक्टूबर 2025 से शुरू हुआ, लेकिन अमेरिका की संसद (कांग्रेस) सरकारी खर्च को समय पर अनुमोदित नहीं कर पाई। इस कारण सरकार के कई विभागों को काम कराने के लिए कानूनी रूप से पैसा मिलना बंद हो गया और इस प्रकार अमेरिका के सरकारी विभागों में शटडाउन शुरू हो गया। अमेरिका में दो प्रमुख दल हैं, रिपब्लिकन पार्टी और डेमोक्रेटिक पार्टी। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप रिपब्लिकन पार्टी से आते हैं। रिपब्लिकन संचालित हाउस में तत्काल एक बिल फंडिंग कराने की पहल तो हुई, लेकिन सीनेट में उसे समर्थन नहीं मिला। संसद की यह शिकायत है कि राष्ट्रपति प्रशासन बजट प्रक्रिया में संसद (कांग्रेस) की शक्तियों का अतिक्रमण कर रहे हैं। कांग्रेस को डर है कि यदि बिना शर्त बजट को पारित कर दिया जाता है तो कांग्रेस की शक्तियों का हनन होगा।

खाद्य सहायता कार्यक्रमों के थमने का खतरा: शटडाउन का असर यह है कि न केवल सरकारी कामकाज ठप है, बल्कि चार करोड़ से अधिक लोगों को खाद्य सहायता, खासतौर पर सप्लिमेंटल न्यूट्रीशिएंटल असिस्टेंट प्रोग्राम यानी एसएनएपी के रुकने का खतरा मंडरा रहा है। कुछ विभागों ने तो निजी क्षेत्र से मिलकर कुछ फंडिंग जुटाई है, ताकि कम से कम सैनिकों को वेतन मिल सके। सदन (हाउस) के स्पीकर ने सदन को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया है, जिसके कारण यह शटडाउन और आगे भी बढ़ सकता है।

ऐसा नहीं है कि डेमोक्रेट जिद पर अड़े हैं, बल्कि जाहिर तौर पर उन्होंने अपनी मांग को घटाकर केवल 20 अरब डालर तक कर दिया है, जो पूर्व की मांग से कहीं कम है। वर्तमान मामले में संघर्ष केवल अंतर-दलीय ही नहीं है, सत्ताधारी दल रिपब्लिकन पार्टी के भीतर भी मतभेद हैं। आम तौर पर शटडाउन तब होता है जब कांग्रेस विनियोग विधेयक (या एक अस्थायी वित्त पोषण उपाय, जिसे सतत प्रस्ताव कहा जाता है) पारित करने में विफल रहती है। पार्टियां इस बात पर असहमत हैं कि रक्षा, कल्याण, आव्रजन, जलवायु कार्रवाई आदि के लिए कितना धन आवंटित किया जाए। उदाहरण के लिए रिपब्लिकन कल्याणकारी कार्यक्रमों पर खर्च में कटौती या सीमा लगाने की मांग कर रहे हैं, जबकि डेमोक्रेट सामाजिक और बुनियादी ढांचे पर खर्च बढ़ाने पर जोर दे रहे हैं।

वैचारिक मुद्दे: राजनीतिक दलों के बीच वैचारिक मुद्दे भी हैं। ट्रंप के पिछले शासन में डेमोक्रेट्स ने मेक्सिको सीमा पर डोनाल्ड ट्रंप के दीवार के प्रस्ताव का विरोध किया था और इस बार वे ट्रंप की ऊर्जा नीति में बदलावों के खिलाफ हैं, जिसमें राष्ट्रपति पहले

घोषित पर्यावरणीय उद्देश्यों के विपरीत जीवाश्म ईंधन के उत्पादन को बढ़ावा देने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए भले ही दोनों पक्ष खर्च के स्तर पर सहमत हों, वैचारिक शर्तें बजट पारित होने में बाधा बन सकती हैं। हाल ही में एक बड़ी बाधा रिपब्लिकन पार्टी के भीतर का संघर्ष रहा है। कट्टरपंथियों के एक छोटे समूह (जो अक्सर “फ्रीडम काकस” से जुड़े होते हैं) ने तब तक किसी भी अल्पकालिक वित्तपोषण का समर्थन करने से इन्कार कर दिया है, जब तक कि खर्च में बड़ी कटौती या नीतिगत रियायतें नहीं दी जातीं। इससे स्पीकर की द्विदलीय समझौतों पर बातचीत करने की क्षमता कमजोर हो जाती है।

अमेरिका में बड़े पैमाने पर नवंबर, 2026 में चुनाव होने वाले हैं। इस अमेरिकी मध्यावधि चुनाव में अमेरिकी प्रतिनिधि सभा की सभी 435 सीटों और अमेरिकी सीनेट की 100 में से 35 सीटों के लिए चुनाव होंगे, जो 120वीं संयुक्त राज्य कांग्रेस का निर्धारण करेंगे। 29 राज्य और प्रादेशिक अमेरिकी गवर्नर चुनाव के साथ ही कई राज्य और स्थानीय चुनाव भी लड़े जाएंगे। अमेरिका में आगामी मध्यावधि चुनाव वास्तव में सरकारी शटडाउन के त्वरित या स्थिर समाधान के रास्ते में बाधा बन रहे हैं। देश हित में समझौते के बजाय राजनीतिक गुणा-भाग ज्यादा महत्वपूर्ण हो रहा है। चुनावी मौसम में दोनों पार्टियां ज्यादा कठोर हो रही हैं। वे ऐसा करने से बचते हैं जो दूसरे पक्ष के आगे झुकने जैसी लगे, क्योंकि उन्हें डर होता है कि इससे मतदाताओं के बीच उनकी छवि बिगड़ सकती है।

सांसद शटडाउन के मुद्दे का इस्तेमाल अपने मतदाता आधार को बढ़ाने के लिए कर रहे हैं और व्यावहारिक समाधान की दिशा में काम करने के बजाय दूसरी पार्टी पर दोष मढ़ रहे हैं। मध्यावधि चुनाव के मद्देनजर पार्टी नेता, खासकर कांग्रेस में अपने अधिक वैचारिक सदस्यों के दबाव में हैं। इससे खर्च विधेयकों पर आम सहमति बनाना मुश्किल हो रहा है। दीर्घकालिक बजट प्रस्तावों के बजाय राजनेता चुनाव से पहले कठोर वित्तीय निर्णय लेने से बचने के लिए अल्पकालिक विस्तार या निरंतर प्रस्तावों को प्राथमिकता दे रहे हैं। निष्कर्षतः गहरे दलीय विभाजन और आगामी मध्यावधि चुनावों से प्रेरित राजनीतिक गणित को देखते हुए यह संभावना कम ही है कि अमेरिकी सरकार का शटडाउन जल्द ही समाप्त होगा।

दोनों ही दल समझौता करने के बजाय अपनी चुनावी स्थिति बनाए रखने पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करते दिख रहे हैं, और किसी भी समाधान के लिए एक पक्ष को ऐसी रियायतें देनी होंगी जो चुनावों से पहले राजनीतिक रूप से महंगी पड़ सकती हैं। इसलिए जब तक जनता या आर्थिक दबाव नहीं बढ़ता, गतिरोध बना रह सकता है, जिससे शटडाउन के शीघ्र समाप्त में देरी हो सकती है।

— संपादक

इस अंक में

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और भविष्य: एक अध्ययन—डॉ० स्वाती सिंह	1
राजनीति के अपराधीकरण का महिलाओं पर प्रभाव का अध्ययन—डॉ० संध्या कुमारी	5
राजनीतिक आधुनिकीकरण और भारतीय राजनीति में युवाओं का योगदान—प्रकाश नारायण	8
भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंध और सुरक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन—उज्ज्वल कुमार सिंह	12
डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन और ओबीसी भागीदारी को मजबूत करना: बिहार में ग्रामीण लोकल सेल्फ-गवर्नेंस की भूमिका; गया ज़िले की एक केस स्टडी—सुमित कुमार	16
कृषि पद्धति परिवर्तन का स्वरूप: नालंदा जिला एक भौगोलिक अध्ययन—सोनू कुमार; प्रो० (डॉ०) विभा सिंह	25
डॉ० बी०आर० अंबेडकर की राजनीति और भारतीय दलित चेतना का निर्माण: एक अध्ययन—डॉ० प्रतिमा कुमारी	31
भारत में लैंगिक न्याय और लिंग की राजनीति: एक अवलोकन—डॉ० धनंजय यादव	36
स्थानीय स्वशासन में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव विशेषतः बिहार राज्य के संदर्भ में—स्वीटी गुप्ता	41
बिहार में स्वतंत्रता संग्राम और महिलाओं का योगदान—प्रिया कुमारी; प्रो० (डॉ०) श्रवण कुमार सिंह	48
भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और सामाजिक पुनरुत्थानवाद की परस्पर संबद्धता का अवलोकन—डॉ० कुमार रश्मि रंजन	54
रणेन्द्र के उपन्यासों में आदिवासी चेतना और विकास-विमर्श का टकराव—सचिन गौतम; डॉ० शर्मिला	59
गुरु नानक का पृथ्वी पर अवतरण—डॉ० हरबंस सिंह	63
भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति, 2020 की प्रासंगिकता—डॉ० सिद्धार्थ कुमार	67
आयकर अधिनियम 2025 और कर सरलीकरण—एक विश्लेषणात्मक अध्ययन—प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल	70
ड्रोन के आविष्कार और प्रकार का अध्ययन—डॉ० विजय कुमार; ममता कन्नौजिया	74
स्कूली शिक्षा के विकास में खेलकूद, राष्ट्रीय सेवा योजना व सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्व—डॉ० कुलदीप	78
बिहार में फसल विविधीकरण का महत्व और चुनौतियाँ: एक अवलोकन—देव नारायण महतो; डॉ० नवल किशोर बैठा	81
बिहार की मलिन बस्तियों में सामाजिक व स्वास्थ्य समस्याएँ—श्रीमती अनुप्रिया कुमारी; डॉ० नवल किशोर बैठा	87
वैश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति-संरक्षण, परिवर्तन एवं चुनौतियाँ—डॉ० श्याम लाल निराला	91
आधुनिक भारत में खाद्य सुरक्षा और सहकारिता—डॉ० प्रियंका	97
गोदान के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक यथार्थ—डॉ० रीना देवी	101
“हाशिप से मुख्यधारा तक: आधुनिक भारत में निम्न-वर्गीय (दलित) आंदोलनों का सामाजिक-ऐतिहासिक विश्लेषण”—प्रो० प्रियंका शर्मा	104
मुण्डा मोन रे मुण्डा कुड़ी (मुण्डारी गीतों और कविताओं में महिलाओं का स्थान)—ब्युला भेंगरा	108
मृणाल पाण्डे के कथा - साहित्य में समकालीन यथार्थ—कु० जया पाण्डेय	114
द्वितीय नगरीकरण कालीन कृषि व्यवस्था का अध्ययन, मगध साम्राज्य के विशेष सन्दर्भ में—जय प्रकाश यादव; डॉ० दिनेश मांडोट	117
बंगला भाषा एवं साहित्य तथा हिन्दी भाषा और साहित्य का अंतर्संबंध—डॉ० उपेन्द्र प्रसाद	121
विचारधारा के अर्थों का विकास—डॉ० अभिनय कुमार	124
“भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं प्राचीन भारत में मातृत्व शक्ति का अध्ययन”—विनोद कुमार	127
1947 से ऑपरेशन सिंदूर तक: भारत-पाकिस्तान सशस्त्र संघर्षों का इतिहास—डॉ० पंकु कुमार	130
नरेद्र मोदी कार्यकाल में भारत-नेपाल संबंध: एक विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन—डॉ० विनोद कुमार यादव	134
असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन: (निजी आलू शीत गृहों (फर्रुखाबाद) के विशेष संदर्भ में) —जितेंद्र पाठक; डॉ० रंजीत वर्मा	139
कमार जनजातियों में प्राचीन वैवाहिक मान्यताएं एवं विवाह गीत का समाजशास्त्रीय एवं नृजातीय अध्ययन—कविता सोम; डॉ० हेमलता बोरकर वासनिक	143
स्मृति और साहित्येतिहास: गोपालराम गहमरी के संस्मरणों में भारतेन्दु युग—डॉ० प्रभात शर्मा	154

कोचिंग करने वाले छात्रों एवं छात्राओं के समायोजन का अध्ययन—आरूषी पुरोहित; डॉ० कीर्ति दशोरा	158
मौर्यकाल में चिकित्सा का विकास—पवन कुमार यादव	165
मुगलकाल का सैन्य अधिकारी मीरबख्शी— एक अध्ययन—डॉ० प्रीति वाजपे	169
बिहार में मुसलमानों का शैक्षिक पिछड़ापन: समस्याएं और संभावनाएँ—मो० रेयाज अंसारी	173
रेगिस्तान त्रिकोण का पर्यटक परिप्रेक्ष्य जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर में पर्यटन की 'संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ': एक विश्लेषणात्मक अध्ययन —अनु सिंह; प्रो० कुमार आशुतोष; आलोक कुमार	179
बिहार के किसान आंदोलनों में खेतिहर मजदूरों की भूमिका—डॉ० कृष्णा कुमार शर्मा	183
गणतंत्रकालीन मिथिला में 600 से 300 ई० पूर्व के मध्य हुए कृषि क्रांति का अध्ययन—डॉ० राम कुमार भारती	189
माता-पिता के संबंधों का किशोरों के सामाजिक-मानसिक विकास पर प्रभाव—डॉ० विवेकानन्द सिंह; अंगद कुमार सिंह	193
मौर्य काल में कपड़ा निर्माण उद्योग और तकनीक—शशिकला भारती	197
प्राचीन भारत में ज्योतिष विज्ञान का विकास (वैदिक काल से गुप्त काल)—डॉ० सृष्टि गर्ग	200
प्रिंट से स्क्रीन तक: हिंदी कहानी की यात्रा—अंकिता सिंह; डॉ० सुधीर साहू	203
दूधनाथ सिंह की कहानियों में नारी समस्या—आशीष पटेल; डॉ० राजाराम परते	207
21वीं शताब्दी का दूसरा दशक हिंदी कहानियों में कामकाजी महिला का बदलता स्वरूप एवं चुनौतियाँ—भूपेन्द्र राजपूत; डॉ० अवधेश कुमार जैन	210
उसकी रोटी: नई कहानी की संवेदना और समानांतर सिनेमा की दृश्य-भाषा—हरिओम सिंह; डॉ० बृजमोहन द्विवेदी	213
विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य में आधुनिक मानव और प्रकृति का सह-अस्तित्व—मेघा कुमारी हरिजन; डॉ० बृजमोहन द्विवेदी	218
श्री ज्ञान चतुर्वेदी जी के उपन्यासों में सामाजिक संस्थाओं पर व्यंग्य—शिक्षा चतुर्वेदी; डॉ० रोशनलाल अहिरवार	221
ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यास नरक यात्रा और बारामासी में बुंदली संस्कृति का विवेचन—स्वाकांक्षा बुंदेला; बृजमोहन द्विवेदी	224
श्री दशरथ जैन के साहित्य में बुन्देलखण्ड का संघर्ष—डॉ० रोशनलाल अहिरवार; साधना जैन	227
गगन गिल के काव्य में स्त्री वेदना—सुरभि जैन; डॉ० मिथलेश शरण चौबे	230
समकालीन हिंदी कहानी में जल संकट और जनजीवन—सचिन चौरसिया; डॉ० अवधेश कुमार जैन	234
सुंदरकांड: हनुमान की भाषा-शैली का विस्तृत विश्लेषण—डॉ० वंदना शर्मा	237
टैरिफ वार की उलझन में भारतीय विदेश नीति के प्रभाव का मूल्यांकन—डॉ० निलेश कुमार त्रिपाठी	239
मैथिलीशरण गुप्त के नाटकों में अभिव्यक्त सामाजिक और राजनैतिक यथार्थ—डॉ० श्रीहरि त्रिपाठी	241
रूस-यूक्रेन संघर्ष: भारत के लिए सैन्य सीख—डॉ० राजेश कुमार सारस्वत	244
नए उत्पाद विकास में बाजार अनुसंधान की भूमिका—सोमेश कुमार	249
गाँधी जी के संरक्षकता सिद्धान्त और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम—डॉ० कुणाल कुमार	255
उत्तर प्रदेश के कृषियों और उद्योगों के महत्त्व का विवेचनात्मक अध्ययन—डॉ० प्रमोद कुमार यादव	258
निराला के काव्य में लोक का अनुशीलन—प्रवीण कुमार	261
भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका—अरमान अली अंसारी; डॉ० विवेक मिश्रा	266
किशोरावस्था का उनके विकास व शिक्षा पर प्रभाव—कुमुद उपाध्याय; डॉ० संध्या श्रीवास्तव	269
कृष्णा सोबती और भीष्म साहनी के साहित्य में सांप्रदायिक संदर्भ और मानवीय मूल्य—चंद्रकला; प्रो० भूरेलाल चक्रवर्ती	272
यज्ञ एवं यज्ञधूम से दीर्घायुष्य परिशीलन—कंचन कुमारी	275
मराठाकालीन प्रशासनिक व्यवस्था: केन्द्रीय, प्रांतीय एवं स्थानीय प्रशासन—दीपेन्द्र कुमार; अनूप कुमार	279
भारत में संसदीय शासन की आवश्यकता एवं महत्त्व: एक अध्ययन—डॉ० जोनी इम्मानुएल तिरकी	281
केदार नाथ चौधरी आ श्याम दरिहरेक उपन्यासमे भाषा एवं शिल्प—मनीष कुमार; डॉ० मनोज कुमार साह	284
सूर्यबाला के साहित्य में स्त्री की भूमिका और संस्कृति चेतना—अनुभव तिवारी; डॉ० मंजू भट्ट	289
“अवधी का उद्भव एवं विकास”—डॉ० जितेन्द्र कुमार उपाध्याय	294
शिवराजविजय में वीर रस तथा अलांकारों की प्रधानता—डॉ० तबस्सुम	297

बिहार में विकेंद्रीकरण और पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका—डॉ० प्रवीण कुमार झा	299
सामाजिक क्षेत्र में जनसंचार और मीडिया का योगदान—डॉ० हरि ओम फुलिया	302
भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रकृति: एक अवलोकन—डॉ० मो० शर्फुद्दीन	305
आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का अध्ययन—कैलाश मीणा	310
उच्च माध्यमिक स्तर के बॉलीबॉल खिलाड़ियों के शारीरिक स्वास्थ्य का अध्ययन—नरेश पालीवाल; डॉ० तिलकेश आमेटा	316
जल प्रबंधन में प्रौद्योगिकी की भूमिका—डॉ० गुड़िया कुमारी	322
सांप्रदायिक सौहार्द को प्रोत्साहित करती हैं अवधेश प्रीत की कहानियाँ—सुशील कुमार भारद्वाज	326
अनुवाद कला: सिद्धांत और प्रयोग—डॉ० देवेन्द्र शुक्ल	329
बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक एवं प्रशासनिक अध्ययन (2010-2020)—डॉ० ममता कुमारी	335
मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में निहित शैक्षिक मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों का विश्लेषणात्मक अध्ययन —प्रीति शर्मा, डॉ० वन्दना गजराज	340
भारतीय ज्ञान परंपरा और व्यवसायिक शिक्षा—स्वीटी कुमारी	344
“राजस्थानी चित्रकला पर हिंदी के मध्यकालीन कवियों का प्रभाव”—ज्योति सिन्हा; प्रोफेसर उमेश कुमार	346
गाय के बारे में महात्मा गांधी के विचार—प्रो० विवेकानंद तिवारी	352
हिन्दी ग़ज़ल: परम्परा, सरोकार और शिल्प—अंशु कुमारी	358
गोविन्द मिश्र के कथा-साहित्य में नारी चेतना के विविध आयाम और उनके संवेदनात्मक स्वरूप—दीपक कुमार	363
श्रम के दुष्चक्र में विलीन बाल श्रमिकों की शिक्षा एक समाजशास्त्रीय अध्ययन—प्रीति कुमारी	366
हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श: प्रेमचंद से नई कहानी तक—शिव शंकर प्रसाद सिंह	372
कृत्रिम बुद्धिमत्ता और समकालीन समाज : मानव संवेदना, रोजगार एवं डिजिटल संस्कृति का आलोचनात्मक अध्ययन—भावना कुमारी	376
जयशंकर प्रसाद के ‘स्कंदगुप्त’ नाटक में राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक अस्मिता और आदर्श नायक का स्वरूप : एक आलोचनात्मक अध्ययन —सोनाली कुमारी; डॉ० अखिलेश कुमार	380

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और भविष्य: एक अध्ययन

डॉ० स्वाती सिंह

(एम. ए. पीएचडी.), स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा (बिहार)

सारांश

लोकतन्त्र के पहियों के रूप में राजनीतिक दल अपरिहार्य हैं। राजनीतिक दल बहुत बड़ी सीमा कि हमारे जीवन के महत्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। राजनीतिक शब्द का उच्चारण करते समय उसमें राजनीतिक दलों की ध्वनि झंकृत होती है। लोकतन्त्र चाहे उसका कोई भी स्वरूप क्यों न हो, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में अकल्पनीय है, इसी लिये उन्हें लोकतन्त्र का प्राण कहा गया है।

यदि राजनीतिक दलों को शासन का चतुर्थ अंग कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज की प्रतिनिधि मूलक सरकार का सार यही है कि सरकार और संसद दोनों पर दल का प्रतिबंध रहता है।

विधानमण्डल और न्यायपालिका, सरकार और संसद केवल संवैधानिक आवरण हैं। यथार्थ शक्ति का उपयोग राजनीतिक दल ही करते हैं। भारत में राजनैतिक प्रक्रिया वास्वत में उस समय आरम्भ हुई जब 1885 में कांग्रेस की स्थापना की गयी थी, उसके पश्चात् 1907 में मुस्लिम लीग की स्थापना की गयी और तत्पश्चात् स्वराज पार्टी, भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी, तथा हिन्दू महासभा का राष्ट्रीय स्तर पर और अकाली दल यूनियनिस्ट पार्टी (जम्मू-कमीर में) का क्षेत्रीय स्तर पर गठन किया गया। भारत जैसे देश में अत्याधिक भिन्नता है, राजनीतिक-धारा प्रवाह अनिश्चित है, परम्परागत जाति राजनीति से लोकतान्त्रिक जन राजनीति में परिवर्तन हो रहा है।¹

परम्परागत समूह क्षेत्रीय पहचान व अपने व्यक्तित्व की मांग कर रहे हैं परिणामस्वरूप क्षेत्रवाद की विचारधारा से प्रभावित हो कर क्षेत्रीय दलों का प्रादुर्भाव हुआ है। सन् 1947 से 1979 की मध्यावधि में सिवाय 1977-1979 के काल को छोड़कर कांग्रेस दल का ही केन्द्र में शासन बना रहा, परन्तु कई राज्यों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा इसे चुनौती दी गयी।

लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल आवश्यक भूमिका निभाते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में, राजनीतिक दल लोगों से जनादेश प्राप्त करके सरकार का निर्माण करते हैं। राजनीतिक दल व्यक्तियों का एक समूह होता है जो किसी विचारधारा पर सहमत होते हैं और सामूहिक भावना, नेतृत्व के आधार पर सत्ता पर अधिकार करते हुए सरकार बनाने के लिये प्रयासरत रहते हैं। राजनीतिक दल आमतौर पर परम्पराओं, विचारधारा, आपसी हितों, सामन्जस्य और मनोवैज्ञानिक झुकाव आदि के आधार पर एकजुट होते हैं। राजनीतिक दल जनता की मांग और अपेक्षाओं को अभिव्यक्त करने के महत्वपूर्ण साधन रहे हैं। लोगों के मूल्यों, आदर्शों, मानदण्डों, आकांक्षाओं को प्रतिनिधित्व के माध्यम से एकत्रित करते हुये चुनावी घोषणाओं के रूप में उजागर करने का प्रयास किया जाता है।²

मूल शब्द: राजनीतिक दल, सरकारें, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दल, लोकतंत्र बहुदलीय व्यवस्था, जनमत।

प्रस्तावना

क्षेत्रीय दल भारत में वे राजनीतिक दल हैं, जो किसी निश्चित क्षेत्र या राज्य के अंदर काम करते हैं। वे अक्सर उस क्षेत्र से समर्थन प्राप्त करते हैं जिसमें वे स्थित हैं, और वे आमतौर पर एक ही राज्य या क्षेत्र में केंद्रित होते हैं। राजनीतिक दलों की अक्सर एक मजबूत क्षेत्रीय पहचान होती है और वे अपने क्षेत्र या राज्य के विकास के लिए समर्पित होते हैं। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, आंध्र प्रदेश में तेलुगु देशम पार्टी, पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस और तमिलनाडु में अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कडगम क्षेत्रीय दलों के उदाहरण हैं। इन दलों ने भारत में बहुत अधिक राजनीतिक शक्ति का इस्तेमाल किया है, अक्सर उन राज्यों में प्रशासन का गठन किया है जहाँ वे स्थापित हुए थे। भारत में कई क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं और हर पार्टी का अपना चुनाव चिन्ह है।³

भारत जैसे विशाल और विविधापूर्ण देश में जनता की आशा और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये राजनीतिक दलों का होना जरूरी है। क्षेत्रीय राजनीतिक दल लोगों के साथ जुड़े होते हैं और उनकी समस्याओं, मांगों के बारे में ज्यादा अच्छे से जानते हैं। क्षेत्रीय दलों का उद्भव भारतीय संघात्मक व्यवस्था के लिए एक सकारात्मक परिघटना है। भारत में लोकतंत्र को मजबूत करने के साथ-साथ क्षेत्रीय दलों ने समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। क्षेत्रीय दलों से कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नेताओं का जन्म हुआ है जैसे लालू प्रसाद यादव, मुलायम सिंह, शरद पवार, बाला साहब ठाकरे आदि। ये नेता ऐसे रहे जो समाज में पिछड़े लोगों की आवाज बन कर उभरे। भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रीय दल सिर्फ चुनाव जीतने की मशीन नहीं है, अपितु यह जनभावनाओं के प्रतिनिधि है। क्षेत्रीय दल लोकतंत्र को विकेन्द्रीकरण की दिशा में ले जाते हैं और विविधता को सम्मान देते हैं। अंततः भारतीय राजनीति और लोकतांत्रिक संवैधानिक व्यवस्था में क्षेत्रीय दलों की महत्वपूर्ण भूमिका है। और भविष्य में भी रहने की पूरी सम्भावना है।⁴

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि वे स्थानीय आकांक्षाओं को आवाज देते हैं, संघीय ढांचे को मजबूत करते हैं और गठबंधन सरकारों में महत्वपूर्ण होते हैं, जिससे सत्ता का विकेंद्रीकरण होता है; उनका भविष्य राष्ट्रीय पार्टियों के प्रभुत्व के बीच चुनौतियों के बावजूद, पहचान की राजनीति, भाषाई व सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व और विकास-केंद्रित एजेंडा के कारण प्रासंगिक बना रहेगा, खासकर जब राष्ट्रीय दल बहुमत हासिल करने में विफल रहते हैं।⁵

भारत में क्षेत्रीय दलों का विकास

- भारत में क्षेत्रीय दलों का गठन 1960 और 1970 के दशकों में हुआ, जो मुख्यतः 1947 में स्वतंत्रता के बाद से राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व के जवाब में हुआ।⁶
- तमिलनाडु द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) और आंध्र प्रदेश की तेलुगु देशम पार्टी (टीडीपी) पहली सफल क्षेत्रीय पार्टियों में से थीं। वे दोनों क्षेत्रीय स्वायत्तता और अपने विशेष भाषाई और सांस्कृतिक समूहों की सुरक्षा की वकालत करते थे।
- 1980 और 1990 के दशक में क्षेत्रीय दलों का महत्व बढ़ गया, क्योंकि कांग्रेस पार्टी की लोकप्रियता कम हो गई और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) कांग्रेस पार्टी की प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभरी।
- उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी (सपा) और बहुजन समाज पार्टी (बसपा), महाराष्ट्र में शिवसेना, तथा जम्मू-कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेंस इस समयावधि के दौरान सबसे सफल क्षेत्रीय दलों में से थे।
- अनेक क्षेत्रीय दलों की स्थापना पहचान की राजनीति के आधार पर हुई थी, जिसका लक्ष्य एक विशिष्ट जाति, धार्मिक या भाषाई समूह का प्रतिनिधित्व करना था।
 - उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में सपा और बसपा ओबीसी (अन्य पिछड़ा वर्ग) आबादी के विभिन्न हिस्सों का प्रतिनिधित्व करती थीं, जबकि शिवसेना महाराष्ट्र में मराठी भाषी लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करती थी।
- क्षेत्रीय दलों ने अक्सर राष्ट्रीय गठबंधन की राजनीति में अहम भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) और अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी) ऐतिहासिक रूप से कांग्रेस के महत्वपूर्ण सहयोगी रहे हैं, जबकि जनता दल (यूनाइटेड) और बीजू जनता दल (बीजेडी) भाजपा के सहयोगी रहे हैं।⁷

भारत के क्षेत्रीय दल - वर्गीकरण

भारत में क्षेत्रीय दल दो प्रकारों में विभाजित हैं: राज्य-आधारित दल और बहु-राज्य दल।

- राज्य-आधारित पार्टियाँ वे हैं जो मुख्य रूप से एक ही भारतीय राज्य या क्षेत्र में सक्रिय हैं। इन पार्टियों की अक्सर एक मजबूत क्षेत्रीय पहचान होती है और वे अपने राज्य या भाषाई या सांस्कृतिक समूह के हितों की रक्षा करने के लिए चिंतित रहती हैं।
 - तमिलनाडु में अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (एआईएडीएमके), तेलंगाना में तेलंगाना राष्ट्र समिति (टीआरएस) और महाराष्ट्र में शिवसेना राज्य-आधारित दलों के उदाहरण हैं।
- दूसरी ओर, बहु-राज्यीय दलों की उपस्थिति कई भारतीय राज्यों या क्षेत्रों में होती है। राजनीतिक दल एक बड़े राष्ट्रीय एजेंडे या एक विशिष्ट समुदाय या हित समूह को दर्शा सकते हैं जो कई राज्यों को कवर करता है।
- क्षेत्रीय दलों को वर्गीकृत करने का एक और तरीका उनकी राजनीतिक विचारधाराओं के आधार पर है। कुछ क्षेत्रीय दल वामपंथी या समाजवादी राजनीतिक स्पेक्ट्रम का समर्थन करते हैं, जबकि अन्य दक्षिणपंथी या हिंदू राष्ट्रवादी दर्शन का समर्थन करते हैं।
 - उदाहरण के लिए, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) एक वामपंथी क्षेत्रीय पार्टी है जिसकी अनेक राज्यों में मजबूत उपस्थिति है, जबकि भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) एक दक्षिणपंथी पार्टी है जिसकी शुरुआत पश्चिमी राज्य महाराष्ट्र में हुई थी, लेकिन अब इसकी उपस्थिति देश के अधिकांश क्षेत्रों में है।
- कुछ क्षेत्रीय पार्टियाँ भी पहचान आधारित पार्टियाँ हैं क्योंकि वे मुख्य रूप से किसी खास जाति, भाषाई समुदाय या धार्मिक समूह के हितों को बढ़ावा देती हैं। उदाहरण के लिए, बिहार में यादव और मुस्लिम समूह जनता दल (यूनाइटेड) का भारी समर्थन करते हैं।

भारत की क्षेत्रीय पार्टियों की विशेषताएं

- भारत में क्षेत्रीय दलों का मुख्यालय अक्सर किसी निश्चित राज्य या क्षेत्र में होता है, उनकी एक मजबूत क्षेत्रीय पहचान होती है, तथा वे उस क्षेत्र या भाषाई या सांस्कृतिक समुदाय के हितों की रक्षा के लिए चिंतित होते हैं।
- कई क्षेत्रीय दल पहचान आधारित होते हैं और एक खास जाति, धर्म या भाषाई समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इससे उन्हें एक खास जनसांख्यिकीय समूह को लक्षित करने और साझा हितों या शिकायतों के आधार पर समर्थन जुटाने में मदद मिलती है।⁸
- क्षेत्रीय दलों में प्रायः कैडर-आधारित संगठनात्मक संरचना होती है, जिसमें पार्टी कार्यकर्ताओं और समर्थकों का एक वफादार आधार होता है जो पार्टी के लक्ष्यों और विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं।
- क्षेत्रीय दलों में अक्सर एक करिश्माई नेता होता है जो पार्टी का चेहरा होता है और अपनी व्यक्तिगत अपील और करिश्मे के आधार पर समर्थन जुटा सकता है।⁹

— उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल में अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी) का नेतृत्व ममता बनर्जी कर रही हैं, जिन्हें पार्टी के कई समर्थक एक मजबूत और करिश्माई नेता मानते हैं।

- क्षेत्रीय दलों की अक्सर अपने मूल राज्य या क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपस्थिति होती है, जिसमें स्थानीय नेताओं, कार्यकर्ताओं और समर्थकों का एक मजबूत नेटवर्क होता है। इससे उन्हें लोगों से ज्यादा व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ने और स्थानीय मुद्दों और चिंताओं पर प्रतिक्रिया देने में मदद मिलती है।¹⁰
- क्षेत्रीय दलों का राजनीतिक दृष्टिकोण अक्सर अधिक व्यक्तिगत और अनौपचारिक होता है, जहां नेता अक्सर मतदाताओं से सीधे मिलते हैं और जमीनी स्तर पर समर्थन पर निर्भर रहते हैं।

भूमिका

क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को एक नया आयाम प्रदान किया है।

क्षेत्रीय दलों ने भारत में केंद्र-राज्य संबंधों की प्रकृति पर गहरा प्रभाव डाला है। वे भारत जैसे बहुजातीय, बहुनस्लीय, बहुधार्मिक और बहुभाषाई समाज में वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतांत्रिक प्रणाली का स्वाभाविक परिणाम हैं। इस प्रकार, उनका विकास लोकतंत्र की संपूर्ण भावना के साथ तालमेल में है।¹¹

- स्थानीय मुद्दों का प्रतिनिधित्व: क्षेत्रीय दल अपने क्षेत्र की विशिष्ट सामाजिक, भाषाई, सांस्कृतिक और आर्थिक चिंताओं को उठाते हैं, जैसे भाषाई पहचान (Dravida parties) या जाति-आधारित प्रतिनिधित्व (SP, BSP)।
- गठबंधन की राजनीति: केंद्र में स्थिर सरकार बनाने के लिए राष्ट्रीय दलों (कांग्रेस, भाजपा) के साथ गठबंधन करते हैं, जिससे राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति संतुलन बनता है।
- संघीय ढांचे को मजबूती: राज्यों को अधिक स्वायत्तता और अधिकार दिलाने की वकालत करके भारतीय संघवाद (federalism) को मजबूत करते हैं।
- राजनीतिक शिक्षा और चेतना: जनता को सरकार की नीतियों और चुनावों के बारे में जागरूक करते हैं, जिससे राजनीतिक भागीदारी बढ़ती है।
- पहचान की राजनीति: विशिष्ट समुदायों (जैसे मराठी, ओबीसी) के हितों की रक्षा करते हैं और पहचान की राजनीति को बढ़ावा देते हैं।

भारत में क्षेत्रीय दलों के उदय के लिए जिम्मेदार कारक

लोकतंत्र में राजनीतिक दल समाज को विभिन्न मुद्दों पर अलग-अलग राय इकट्ठा करने और उन्हें सरकार के सामने पेश करने के लिए एक एजेंसी प्रदान करते हैं।¹²

वे विभिन्न प्रतिनिधियों को एक साथ लाते हैं ताकि एक जिम्मेदार सरकार बनाई जा सके। वे सरकार का समर्थन या नियंत्रण करने, नीतियाँ बनाने, उन्हें सही ठहराने या उनका विरोध करने के लिए एक तंत्र प्रदान करते हैं। भारत में बहुदलीय प्रणाली है।

- भाषाई और सांस्कृतिक विविधता : भारत एक भाषाई और सांस्कृतिक रूप से विविध देश है, जिसमें कई भाषाएं और सांस्कृतिक समूह पूरे देश में फैले हुए हैं।
 - इसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों का निर्माण हुआ है जो विशिष्ट भाषाई या सांस्कृतिक समुदायों के हितों को बढ़ावा देते हैं, जैसे कि तमिलनाडु की द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके), जो तमिल भाषियों के हितों का समर्थन करती है।
- क्षेत्रीय पहचान और स्वायत्तता : कई भारतीय राज्यों में क्षेत्रीय पहचान और स्वायत्तता की प्रबल भावना है, जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ है जो इन मूल्यों की वकालत करते हैं।
 - उदाहरण के लिए, आंध्र प्रदेश में तेलुगु देशम पार्टी (टीडीपी) की स्थापना तेलुगु भाषी लोगों के हितों को बढ़ावा देने और अधिक क्षेत्रीय स्वायत्तता के लिए लड़ने के उद्देश्य से की गई थी।
- राजनीतिक विकेंद्रीकरण : स्थानीय सरकारों को शक्तियों का हस्तांतरण और पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना, जो 1990 के दशक में शुरू हुई, ने भी क्षेत्रीय दलों के उदय को जन्म दिया है।
 - इससे क्षेत्रीय दलों को स्थानीय स्तर पर शक्ति और प्रभाव विकसित करने के साथ-साथ राज्य और राष्ट्रीय चुनावों के लिए समर्थन आधार बनाने का अवसर मिला है।
- भारत में भारी आर्थिक और सामाजिक भिन्नताएं हैं, तथा कुछ क्षेत्र और समूह अन्य की तुलना में अधिक विकसित और समृद्ध हैं।
 - क्षेत्रीय दल कम विकसित क्षेत्रों और समुदायों के हितों को लाभ पहुंचाने वाली नीतियों की वकालत करके समर्थन हासिल करने में सफल रहे हैं।

भविष्य

जैसे-जैसे भारत प्रगति करेगा, क्षेत्रीय पार्टियों का महत्व और बढ़ता जाएगा। 2024 के चुनावों में उनकी जीत क्षेत्रीय नेतृत्व की प्रासंगिकता और राष्ट्रीय दलों के लिए स्थानीय मुद्दों एवं निर्वाचन क्षेत्रों के साथ बेहतर तरीके से जुड़ने की जरूरत को दर्शाती है। भारतीय राजनीति के भविष्य में गठबंधन सरकारों और क्षेत्रीय संगठनों पर अधिक ध्यान दिया जाएगा, जिसमें क्षेत्रीय दल नीति और प्रशासन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालेंगे।¹³

- प्रासंगिकता: राष्ट्रीय दलों के कमजोर पड़ने या अकेले बहुमत न मिलने पर इनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी, जैसा कि 1990 के दशक में हुआ था।
- चुनौतियाँ: राष्ट्रीय दलों (विशेषकर भाजपा) के बढ़ते प्रभाव और क्षेत्रवाद को राष्ट्रीय हितों के विपरीत देखने की प्रवृत्ति से चुनौती मिलती है।
- गठबंधन का केंद्र: ये भविष्य में भी केंद्र की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहेंगे, जिससे गठबंधन सरकारें बनेंगी और उनकी मांगों को पूरा किया जाएगा।
- पहचान बनाम राष्ट्र: इन्हें अपनी क्षेत्रीय पहचान की राजनीति और राष्ट्र हित के बीच संतुलन बनाना होगा, ताकि अलगाववाद की भावना न पनपे।
- विकास और स्वायत्तता: भविष्य में ये दल राज्य-विशिष्ट विकास और अधिक स्वायत्तता की मांग पर केंद्रित रहेंगे, जो इन्हें प्रासंगिक बनाए रखेगा।
- संक्षेप में, क्षेत्रीय दल भारतीय राजनीति के लिए अनिवार्य हैं क्योंकि वे विविधता को समायोजित करते हैं, लेकिन उन्हें क्षेत्रीय हितों और राष्ट्रीय अखंडता के बीच सामंजस्य बिठाना होगा।

निष्कर्ष

भारत के 28 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से एक या अधिक में सक्रिय राजनीतिक पार्टियाँ हैं। ये पार्टियाँ आमतौर पर अपने कार्य क्षेत्र के विशेष स्थानीय मुद्दों पर केंद्रित होती हैं, और प्रायः उनकी एक मजबूत सांस्कृतिक पहचान होती है। हालाँकि इनमें से कुछ पार्टियों की राष्ट्रीय उपस्थिति और आकर्षण है, अधिकतर उस राज्य या क्षेत्र पर केंद्रित हैं जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं।

भारत में क्षेत्रीय दलों ने देश की राजनीति के स्वरूप को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। वे स्थानीय समुदाय के मुद्दों को प्रमुखता देने और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों में योगदान देने में सहायक रहे हैं। क्षेत्रीय दल केंद्र में गठबंधन सरकारों के निर्माण में भी एक प्रमुख शक्ति के रूप में काम कर चुके हैं। उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद, यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि राष्ट्रीय दलों के प्रभुत्व के कारण उनका प्रभाव सीमित रहा है। इसके चलते देश के विभिन्न क्षेत्रों के नागरिकों में एक निश्चित स्तर का असंतोष उत्पन्न हुआ है।

राष्ट्रीय स्तर पर मजबूत विपक्ष के अभाव में क्षेत्रीय दल ही केंद्रीय सत्ता के दुरुपयोग को नियंत्रित कर सकते हैं। जैसे अकाली दल ने पंजाब में और असम गण परिषद ने असम में केंद्रीय सरकार को उन राज्यों की समस्याओं के समाधान के लिए समझौता करने पर मजबूर किया, यह दर्शाता है कि प्रभावी क्षेत्रीय दल केंद्रीय सत्ता को मनमानी करने से रोक सकते हैं।

सन्दर्भ

1. चन्द्र, विपिन, “आधुनिक भारत का इतिहास,” ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010।
2. नारंग, ए0 एस0, “भारतीय शासन एवं राजनीति,” गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005।
3. डॉ. पुखराज जैन, एवं डॉ. बी0 एल0 फाड़िया, “भारतीय शासन एवं राजनीति (राज्यों की राजनीति सहित), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2005।
4. सिवाच, डॉ. जे0 आर0, “भारत की राजनैतिक व्यवस्था,” स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1977।
5. सिंह, महेन्द्र प्रसाद, “भारतीय शासन और राजनीतिक ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011।
6. रजनी कोठारी “राजनीति इन इंडिया” ओरियेन्ट ब्लैकस्वान, 1970
7. तेजिन्दर ‘रिजनल पार्टीस इन नेशनल पॉलिटिक्स’ के.के. पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2008, पृ. 249
8. एकम जिंगफिल्ड “व्हाई रिजनल पार्टीज” कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2016
9. रत्नेश कुमार मिश्र, “भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दल” रावत बुक प्रकाशन, 2011
10. जगदीप राठौड़, भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दल” इशिका पब्लिशिंग हाऊस, 2012
11. सागर साहनी, पंकज कुमार “भारतीय संघात्मक व्यवस्था में क्षेत्रीय दलों की भूमिका: वर्तमान परिदृश्य”
12. International Journal of Humanities, 2024
13. नीतु गुप्ता “केंद्र में गठबन्धन सरकारें व क्षेत्रीय दलों का परिवर्तित स्वरूप: एक विवेचन” International Journal of Humanities, 2024

राजनीति के अपराधीकरण का महिलाओं पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ० संध्या कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (G. F.), राजनीति विज्ञान विभाग, बी. आर. बी महाविद्यालय समस्तीपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

शोध सार

इस शोध पत्र में भारतीय परंपरेय में राजनीति में अपराधी तत्वों के प्रवेश के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। मुख्यतः इस अध्ययन में विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धतियों के माध्यम से राजनीति के अपराधीकरण के परिणामस्वरूप महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा गया। विभिन्न अध्ययनों में देखा गया कि राजनीति में अपराधी तत्वों के प्रवेश से महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी में कमी देखने को मिली है। जो महिलाएं सांसद और विधानसभाओं में चुन कर आती हैं उनकी भागीदारी भी नाममात्र की होती है। इसके अलावा महिला प्रतिनिधि और सामान्य महिलाओं के खिलाफ हिंसा तथा दुराचार की घटनाओं में बढ़ोतरी भी देखने को मिली है। राजनीति में अपराधी तत्वों का प्रभाव स्वतंत्रता के बाद से शुरू हो गया था। कालांतर में इन अपराधी तत्वों ने सांसद और राज्य विधानसभाओं में प्रवेश किया। वर्ष 2009 से 2019 के लोकसभा चुनावों में अपराधी प्रवृत्ति के प्रत्याशियों के प्रवेश में क्रमशः बढ़ोतरी देखने को मिली है। यदि यही अपराधियों की राजनीति में इसी प्रकार की बढ़ोतरी जारी रही तो भारत में लोकतंत्र का अस्तित्व खतरे में पड़ने की संभावना है। अतः सभी राजनीतिक दलों को अपराधी प्रवृत्ति के लोगो को टिकट नहीं देकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए।

मूल शब्द: भारतीय, राजनीति का अपराधीकरण, एडीआर, नेशनल इलेक्शन वाच, चुनाव, महिला प्रतिनिधित्व, लोकतंत्र।

प्रस्तावना

भारत एक लोकतांत्रिक देश है, और सरकार के लोकतांत्रिक रूप में, हम अपने स्वयं के प्रतिनिधि का चुनाव करते हैं जो देश के शासन के लिए जिम्मेदार है। इसलिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले लोगों की एक स्वच्छ छवि और उच्च नैतिक चरित्र वाले हो। राजनीति का अपराधीकरण भारतीय लोकतंत्र के लिए सिरदर्द बन गया है और यह अब एक कठोर वास्तविकता है।

त्रिशला त्रिवेदी¹ ने राजनीति के अपराधीकरण को आतंकवाद से भी ज्यादा शांतिर बताया है। अपराधी प्रतिनिधि राजनीतिक दलों के भीतर अपराधियों और राजनेताओं के बीच संबंध का परिणाम है जिसके कारण भ्रष्ट हमारे नेता और नायक बन गए हैं। भारत में राजनीति का अपराधीकरण चिंता का विषय रहा है। यह अपराधियों, कानून तोड़ने वालों और भ्रष्टाचारियों की घुसपैठ को संदर्भित करता है। राजनीतिक व्यवस्था में ऐसे व्यक्ति, तब अपनी शक्ति और प्रभाव का उपयोग करके, देश और उसके नागरिकों की कीमत पर अपने स्वयं के हितों को आगे बढ़ाएंगे। इस समस्या की जड़ें स्वतंत्रता के बाद के युग में खोजी जा सकती हैं जब देश अपना लोकतंत्र स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहा था। राजनीतिक दल बढ़त हासिल करने के लिए बेताब थे। इस अत्यधिक प्रतिस्पर्धी माहौल में, कई राजनेताओं ने आपराधिक तत्वों से चुनाव जीतने हेतु सहयोग लिया। इसने भारतीय राजनीति में अपराधी तत्वों के प्रवेश को चिह्नित किया।²

भारत स्वयं को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का दावा तो कर सकता है, लेकिन आदर्श प्रतिनिधियों का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का दावा नहीं कर सकता। क्योंकि, चुनावों में ऐसे उम्मीदवारों की संख्या में वर्षों से निरंतर और दुस्साहसी वृद्धि हुई है, चाहे वह सांसद के लिए हो या राज्य विधान सभाओं के लिए जिन के खिलाफ आपराधिक मामले हैं।³

मिलन वैष्णव⁴ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'व्हेन क्राइम पे: मनी एण्ड पॉवर इन इंडियन पॉलिटिक्स' में बताया है कि भारतीय लोकतंत्र के जन्म के बाद से माफिया चुनावी राजनीति का हिस्सा रहे हैं।

भारतीय राजनीति में अपराध और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के सह-अस्तित्व का गहन अध्ययन करने के बाद मिलन वैष्णव⁵ ने प्रश्न पूछा है कि बड़े पैमाने पर अपराधिकता के साथ-साथ स्वतंत्र और निष्पक्ष लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं कैसे मौजूद हो सकती हैं? राजनीतिक दल गलत काम और प्रतिष्ठा वाले उम्मीदवारों की भर्ती क्यों करते हैं? क्यों एक तिहाई राज्य और राष्ट्रीय विधायक चुने जाते हैं और अक्सर उनके खिलाफ आपराधिक आरोप लंबित होने के बावजूद फिर से चुने जाते हैं?

वीवीएलएन शास्त्री⁶ ने राजनीति के अपराधीकरण को भारत के सामने प्रमुख समस्या बताया है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले राजनेताओं की संख्या में वृद्धि हुई है जो पिछले कुछ दशकों में विधायी प्रतिनिधियों के रूप में चुने गए हैं। इससे यह सवाल उठता है कि भारतीय अपराधी राजनेताओं को क्यों चुनते हैं। भारत में अपराध के कारणों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक और जैविक में वर्गीकृत किया गया है। भारत में

राजनीति का अपराधीकरण कई रूप लेता है, और इसमें चुनावी धोखाधड़ी, आपराधिक पृष्ठभूमि वाले राजनीतिक उम्मीदवार का चुनाव लड़ना, मतदाताओं को जुटाने में बाहुबल का उपयोग, राजनीतिक घोटाले, नौकरशाही घोटाले और आपराधिक गिरोहों की रक्षा करनेवाले राजनेता शामिल हैं।

अविनाश कुमार⁷ ने अपनी पुस्तक में बताया कि भारत में राजनीति के अपराधीकरण की घटना देश के लोकतंत्र के लिए नई नहीं है। भारत के बिहार राज्य की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य तथा भूमि और जाति के सवाल के साथ इसके जुड़ाव का पता लगाता है जिसने राजनीति के अपराधीकरण को जन्म दिया है। भारत में राजनीति के अपराधीकरण में पुलिस का राजनीतिक नियंत्रण, राज्य का पैसा, भ्रष्टाचार, कमजोर कानून, नैतिकता, मूल्यों की कमी, वोट बैंक की राजनीति और चुनाव आयोग के कार्य में कमियां शामिल हैं।⁸

राजनीति के अपराधीकरण ने विधायिका से कार्य पालिका और कार्य पालिका से न्यायपालिका तक अपनी जड़ें बढ़ा ली हैं। भारत में अपराधी उम्मीदवारों का लोकसभा चुनावों में अनुपात जो वर्ष 2009 में 30%, 2014 के चुनाव में बढ़कर 34%, तथा 2019 के चुनाव में निर्वाचित सदस्यों के संबंध में 43% के खतरनाक स्तर तक बढ़ गया है। एसोसिएशन फॉर लोकतांत्रिक रिफॉर्म (एडीआर) द्वारा जारी रिपोर्ट में बताया गया है कि 2019 में चुनाव लड़नेवाले लगभग 13% उम्मीदवार जघन्य अपराधों हत्या, महिलाओं के खिलाफ अपराध, बलात्कार और अन्य जघन्य अपराधों का प्रयास के आरोपी हैं। यदि आपराधिक तत्वों के प्रवेश का यही प्रतिशत रहा तो 2024 में डराने वाले आँकड़े सामने आ सकते हैं।⁹

आपराधिक आरोपों का सामना करनेवाले उम्मीदवारों के उच्चतम प्रतिशत के साथ सूची में सबसे ऊपर गोवा में 32 प्रतिशत, केरल में 29 प्रतिशत, बिहार में 26 प्रतिशत और झारखण्ड में 26 प्रतिशत है। निचले छोर पर राजस्थान में 6 प्रतिशत, हरयाणा में 7 प्रतिशत और असम में 7 प्रतिशत हैं। उत्तर प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र आपराधिक मामलों के आरोपी सांसदों के उच्चतम प्रतिशत के साथ सूची में शीर्ष पर हैं।¹⁰

भारत में लगभग सभी दल इस बीमारी से पीड़ित हैं और यह सभी राज्यों में मौजूद है। अजीब बात है, लेकिन आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों को सरकार द्वारा ही सबसे पहले सुरक्षा प्रदान की जाती है। राजनीति का अपराधीकरण व्यापक है और साक्षरता, विकास, जीडीपी या शहरीकरण के विभिन्न स्तरों के बावजूद सभी राज्यों में मौजूद है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोग राजनेता और निर्वाचित प्रतिनिधि बन रहे हैं। ऐसी शर्मनाक स्थिति लाने के लिए राजनीतिक दल, मतदाता और देश की कानून व्यवस्था की पूरी मशीनरी समान रूप से जिम्मेदार है। हर देश का भाग्य उसकी राजनीति पर निर्भर करता है। अपराधियों, बाहुबली लोगों, मशीनरी ने एक ऐसा खतरनाक कॉकटेल बना लिया है जो अब समाज के लिए जहर साबित हो रहा है। भ्रष्टाचार और राजनीति का अपराधीकरण लोकतंत्र की जड़ों को बर्बाद कर रहा है। राजनीति का अपराधीकरण भारत की राजनीति में एक स्थायी घटना बन गई है। यह लोकतंत्र की वास्तविक अवधारणा को नष्ट कर रहा है। कोई भी राजनीतिक दल अपने दलों में आपराधिक सदस्यों को कम करने या खत्म करनेकी दिशा में उपाय नहीं कर रहा है क्योंकि अंत में वे उनके लिए फायदेमंद साबित होते हैं।¹¹

राजनीति के अपराधीकरण का मुख्य प्रभाव कानून और व्यवस्था पर पड़ा है। अपराधीकरण का एक और परिणाम भ्रष्टाचार है। अपराधी के साथ राजनेता पृष्ठभूमि वाले लोगों की भ्रष्ट गतिविधियों में शामिल होने की अधिक संभावना है। आपराधिक राजनेता अपने अपराधों के लिए सजा से बचने में सक्षम हैं। राजनीति के अपराधीकरण से शासन की गुणवत्ता में भी गिरावट आई है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले राजनेताओं का प्रभाव देश के विकास पर नकारात्मक रूप से पड़ा है।¹²

सेंटर फॉर सोशल रिसर्च और संयुक्त राष्ट्र द्वारा, भारत, नेपाल और पाकिस्तान में 2003 से 2013 तक हुई हिंसक घटनाओं का विश्लेषण किया गया था। यह अध्ययन हिंसा की प्रकृति, सीमा और कारणों को संबोधित करने के लिए आयोजित किया गया था जो महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को रोकता है। इस अध्ययन में चुनाव आयोग के अधिकारियों, पुलिस, उम्मीदवारों तथा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों सहित लगभग 800 उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया गया। अध्ययन के अनुसार, राजनीति में महिलाओं के खिलाफ हिंसा दक्षिण एशिया में बड़े पैमाने पर होती है। “राजनीति में महिलाओं के खिलाफ हिंसा” अध्ययन से पता चला है कि कानूनों का अपर्याप्त क्रियान्वयन, पुलिस और न्यायपालिका से समर्थन की कमी, सामाजिक-आर्थिक विभाजन और वर्तमान सत्ता संरचना हिंसा के प्रमुख कारण हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया है कि 60 प्रतिशत से अधिक महिलाएं हिंसा के डर से राजनीति में भाग नहीं लेती हैं। इन देशों में लगभग 90 प्रतिशत महिलाओं को लगता है कि हिंसा ने राजनीति में शामिल होने के उनके संकल्प को तोड़ दिया है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर कानूनों की हमारी व्यापक समीक्षा से, यह स्पष्ट है कि तीनों देशों में से किसी में भी कानून नहीं है जो राजनीति में महिलाओं के खिलाफ हिंसा को रोकने के लिए अपराधियों से सख्ती से निपटता है।¹³

कुछ चुनी हुई महिला राजनेताओं को छोड़कर, अधिकांश निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की उनके राजनीतिक दल के भीतर महत्वपूर्ण चर्चाओं में सीमित या सीमांत भूमिका होती है। सीएसआर की निदेशक रंजना कुमारी ने कहा, दक्षिण एशिया दुनिया की आबादी का पांचवां हिस्सा है और दक्षिण एशियाई महिलाओंका एक-तिहाई जीवन भर हिंसा का अनुभव करती हैं, जो दक्षिण एशियाई राजनीति की एक आम विशेषता भी है। दक्षिण एशिया में राजनीति की हिंसक प्रकृति अक्सर महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में भाग लेने से रोकती है।¹⁴

महिला राजनेताओं के खिलाफ हिंसा को एक ऐसे मुद्दे के रूप में से पहचाना जाता है जो राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति को कम करता है।¹⁵

एसोसिएशन फॉर लोकतांत्रिक रिफॉर्म और नेशनल इलेक्शन वाच ने मौजूदा विधायकों, सांसदों के बारे में एक रिपोर्ट तैयार की है जिसमें महिलाओं के खिलाफ अपराधों से सम्बंधित मामले घोषित किए हैं। मौजूदा 4809 सांसदों और विधायकों में से 4763 के चुनावी हलफनामों का विश्लेषण करते हुए एक रिपोर्ट तैयार की गई है। रिपोर्ट के अनुसार, कुल 4763 (762 मौजूदा सांसद और 4001 मौजूदा विधायक) में से 134 ने महिलाओं के खिलाफ अपराधों से सम्बंधित मामलों की घोषणा की है। महिलाओं के खिलाफ अपराध से सम्बंधित घोषित मामलों वाले 134 मौजूदा सांसदों/विधायकों में से 21 मौजूदा सांसद और 113 मौजूदा विधायक हैं। पश्चिम बंगाल में सबसे अधिक 26 सांसद/विधायक, महाराष्ट्र और ओडिशा में 14-14 मौजूदा सांसदों/विधायकों ने महिलाओं के खिलाफ अपराध से सम्बंधित मामलों की घोषणा की है।¹⁶

राजस्थान, मणिपुर, हिमाचल प्रदेश और अरुणाचल प्रदेश में महिलाओं के खिलाफ अपराध के घोषित मामलों वाले सांसदों और विधायकों की संख्या सबसे कम है।¹⁷

एडीआर ने कहा है कि सभी प्रमुख राजनीतिक दल महिलाओं के खिलाफ अपराधों, विशेष रूप से बलात्कार के मामलों वाले उम्मीदवारों को टिकट देते हैं और इसलिए ये नागरिकों के रूप में महिलाओं की सुरक्षा और सम्मान में बाधा डालते हैं। एसोसिएशन फॉर लोकतांत्रिक रिफार्म और नेशनल इलेक्शन वाच ने सिफारिश की है कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोक दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

किसी भी लोकतंत्र के लिए राजनीति का अपराधीकरण एक मुख्य समस्या है। भारतीय लोकतंत्र के लिए भी सांसद और राज्य विधानसभाओं में अपराधी प्रवृत्ति के प्रत्याशियों के आने से विभिन्न समस्याएँ पैदा हुई हैं। इनमें से मुख्य है लोकतांत्रिक प्रणाली के स्तर में कमी, महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी में कमी, महिलाओं की सुरक्षा व सम्मान को खतरा, स्वच्छ छवि और ईमानदार लोगों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक पहुँच में कमी आना आदि शामिल हैं। राजनीति का अपराधीकरण वर्तमान पररदृश्य में आतंकवाद से भी ज्यादा भयावह है। एसोसिएशन फॉर लोकतांत्रिक रिफार्म और नेशनल इलेक्शन वाच राजनीति में अपराधीकरण को रोकने के लिए विभिन्न सिफारिशें कर रहे हैं। भारत में लोकतंत्र के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि राजनीति में अपराधी प्रवृत्ति के लोगों के प्रवेश को प्रतिबंधित किया जाए। जो राजनीतिक दल इस पहल की अवहेलना करते हैं, उनके खिलाफ भी चुनाव आयोग द्वारा सख्त कार्यवाही करनी चाहिए।

सन्दर्भ

1. <https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/hail-to-feminism/criminalization-of-politics-24324/>
2. <https://www.legalserviceindia.com/legal/article-10366-an-analysis-criminalization-of-politics-in-india.html>
3. पूर्वोक्त, 1.
4. वही.
5. वैष्णव, एम. (2017). व्हेन क्राइम पेयस: मनी एण्ड मसल इन इंडियन पॉलिटिक्स. यूनाइटेड किंगडम: येल यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. शास्त्री, वी.वी.एल.एन. (2020). क्राइम एण्ड राजनीति इन इंडिया. आईडिया पब्लिशिंग.
7. कुमार, ए. (2015). क्रीमीनलाईजेशन ऑफ पॉलिटिक्स: कास्ट, लेण्ड एण्ड द स्टेट इन इंडिया. रावत पब्लिकेशन्स.
8. पूर्वोक्त, 1.
9. वही.
10. वही.
11. वही.
12. पूर्वोक्त, 2.
13. <https://www.unwomen.org/en/digital-library/publications/2014/6/violence-against-women-in-politics#:~:text=The%20study%20also%20finds%20that,their%20resolve%20to%20join%20politics>
14. वही.
15. सनिन, जे. आर. (2022). क्रिमीनलाईजिंग वायलेंस अगेन्स्ट वुमेन इन पॉलिटिक्स: इनोवेशन, डिफ्यूजन, एंड ट्रांसफॉर्मेशन. राजनीति एण्ड जेण्डर, 18(1), 1-32. doi:10.1017/S1743923X20000173
16. <https://timesofindia.indiatimes.com/india/134-sitting-mlas-mps-declared-cases-related-to-crimes-against-women-in-last-5-years/articleshow/102616058.cms?from=mdr>
17. <https://adrindia.org/content/134-mps-mlas-have-cases-crime-against-women>

राजनीतिक आधुनिकीकरण और भारतीय राजनीति में युवाओं का योगदान

प्रकाश नारायण

शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, (बिहार)

सारांश

भारत, विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र, इस समय एक अनूठी स्थिति में है। देश कई चुनौतियों का सामना कर रहा है, और शासन के भविष्य में युवाओं की भूमिका पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। देश की 50% से अधिक आबादी 25 वर्ष से कम आयु की है, और लगभग 65% 35 वर्ष से कम आयु की है। भारत के युवाओं में शासन में परिवर्तन, प्रगति और नवाचार लाने की अपार क्षमता है। भारत के युवा एक गतिशील शक्ति हैं जो देश के शासन को बदल रहे हैं। उनकी ऊर्जा, विचार और नवाचार भारत को एक उज्ज्वल और अधिक न्यायपूर्ण भविष्य की ओर ले जाने के लिए आवश्यक हैं। वे आज के शासन के निर्माता हैं, इसलिए भारत के विकास में युवाओं की भूमिका वास्तव में महत्वपूर्ण है। भारतीय शासन का भविष्य वास्तव में उनके हाथों में है।

आधुनिक भारत में युवा पीढ़ी सोशल और राजनीतिक माहौल बनाने में अहम भूमिका निभाती है। यह ग्रुप, जो कुल आबादी का एक बड़ा हिस्सा है, राजनीतिक रूप से ज्यादा जागरूक हो रहा है और राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल हो रहा है। राजनीतिक प्रक्रिया में युवाओं की भागीदारी से पारंपरिक डायनामिक्स में बदलाव आ रहा है, जिससे राजनीतिक बातचीत में नई जान, विचार और नजरिए आ रहे हैं। युवा लोग चुनावों के दौरान बड़ी संख्या में वोट दे रहे हैं, जिसका नतीजा पर असर पड़ रहा है और सरकार पर बदलाव करने का दबाव पड़ रहा है। युवाओं के कामों और प्रदर्शनों से जनता का ध्यान क्लाइमेट चेंज, करप्शन और सोशल जस्टिस जैसे जरूरी मुद्दों की ओर खींचा जा रहा है। युवा पीढ़ी अलग-अलग राजनीतिक मुद्दों के लिए ऑर्गनाइज करने, कैम्पेन चलाने और सपोर्ट जुटाने के लिए इंटरनेट चैनलों का इस्तेमाल कर रही है। सोशल मीडिया के बढ़ने की वजह से युवा नेताओं के पास अब ज्यादा लोगों से बात करने की काबिलियत है, जो राजनीतिक कम्युनिकेशन का एक असरदार जरिया बन गया है। हाल के सालों में, ऐसे युवा नेताओं की संख्या बढ़ी है जो मौजूदा सिस्टम पर सवाल उठा रहे हैं और मौजूदा समस्या के लिए नए तरीके सामने ला रहे हैं। ये नेता अक्सर युवा लोगों के दिलों में जगह बना लेते हैं, जिससे एक ऐसा राजनीतिक माहौल बनता है जो कहीं ज्यादा आसानी से मिलने वाला और मजेदार होता है। युवाओं में पॉलिसी पर चर्चा में सक्रिय रूप से हिस्सा लेने का ट्रेंड बढ़ रहा है, जिसमें वे शिक्षा, नौकरी और टेक्नोलॉजी जैसे विषयों पर नए नजरिए पेश करते हैं। इन लोगों की भागीदारी यह गारंटी देती है कि पॉलिसी ज्यादा सबको साथ लेकर चलने वाली होंगी और युवा पीढ़ी के लक्ष्यों को सही ढंग से दिखाएंगी। भले ही वे ज्यादा प्रभावशाली हो रहे हों, युवाओं को अक्सर ऐसी रुकावटों का सामना करना पड़ता है जो उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में आने से रोकती हैं। इन रुकावटों में पैसे की कमी और मेंटरशिप की कमी शामिल है। युवा पीढ़ी की राजनीतिक प्रतिभा को निखारने के लिए ज्यादा संगठित प्लेटफॉर्म और सपोर्ट स्ट्रक्चर की जरूरत है। राजनीतिक प्रक्रियाओं में इन युवाओं की भागीदारी से एक ऐसे गवर्नेंस मॉडल का मौका मिलता है जो ज्यादा इनोवेटिव और आगे की सोच वाला हो। यह मुमकिन है कि अगर भारत अपने युवाओं की क्षमता का इस्तेमाल करे तो उसकी ग्रोथ ज्यादा टिकाऊ और सबको साथ लेकर चलने वाली बन सकती है।

मूल शब्द: भारत, लोकतंत्र, समाज, युवा, राजनीति, आधुनिकीकरण, चुनाव, संवेदनशीलता, सामाजिक

प्रस्तावना

राजनीतिक आधुनिकीकरण से तात्पर्य आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संस्थाओं में होने वाले परिवर्तन से है। यह राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संस्थाओं में होने वाला परिवर्तन ही है जो एक ऐसी प्रक्रिया को गति प्रदान करता है जिसके माध्यम से कम विकसित समाज भी उच्च प्रदर्शन स्तर और उपलब्धियों को प्राप्त कर सकते हैं। राजनीतिक विकास की तरह ही राजनीतिक आधुनिकीकरण की सटीक परिभाषा देना बहुत कठिन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो आधुनिक समाज की स्थापना के उद्देश्य से संसाधनों के तर्कसंगत उपयोग पर आधारित है।¹

आधुनिक समाज शब्द ऐसे समाज को संदर्भित करता है जो प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग, व्यापक सामाजिक परस्पर निर्भरता, शहरीकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता और ऐसे ही कई अन्य कारकों से युक्त है। पश्चिमी समाजों के संदर्भ में, आधुनिकीकरण ने पारंपरिक समाज के विघटन और उसके अवशेषों पर एक बिल्कुल अलग समाज के उदय को जन्म दिया है। एक ऐसा समाज जो उन्नत प्रौद्योगिकी और विज्ञान की भावना पर आधारित है, सामाजिक संबंधों के प्रति धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण रखता है और सार्वजनिक मामलों में न्याय की भावना को महत्व देता है।²

आधुनिक समाज की अवधारणा के अनुसार, आधुनिक मनुष्य वह है जिसमें करुणा, मानवता और सार्वभौमिक दृष्टिकोण जैसे गुण हों, जो धर्मनिरपेक्ष सोच रखता हो और एकता, पारस्परिकता और सद्भाव के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध हो। इसे आधुनिकीकरण की मानवतावादी अवधारणा कहना उचित होगा। यह ईश्वर

के पितृत्व और मानव जाति के बंधुत्व में विश्वास रखती है। आधुनिकीकरण की यह अवधारणा या ये मानवतावादी विचार अन्य समान अवधारणाओं से भिन्न हैं। राजनीतिक आधुनिकीकरण का संबंध केवल व्यक्ति के राजनीतिक गुणों या आधुनिक समाज की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन से ही नहीं है, बल्कि इसका दायरा व्यापक है। यह हमारे सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को समाहित करता है। इस प्रकार यह एक साथ कई चीजों से संबंधित है। यह व्यक्ति की सोच में परिवर्तन, राजनीतिक व्यवस्था के दर्शन में परिवर्तन, राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन और इस प्रकार अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और औद्योगिकीकरण के साथ-साथ ग्रामीण जीवन के शहरीकरण के क्षेत्र को भी शामिल करता है।¹

राजनीतिक आधुनिकीकरण के अनेक आयाम हैं। इसका मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। आधुनिक मनुष्य का मानना है कि प्रकृति और समाज में परिवर्तन न केवल संभव है, बल्कि वह स्वयं इसे ला सकता है। बौद्धिक स्तर पर, इसमें मनुष्य के अपने परिवेश के बारे में ज्ञान का व्यापक विस्तार और साक्षरता, जनसंचार और शिक्षा के माध्यम से समाज में इस ज्ञान का प्रसार शामिल है। इस प्रकार आधुनिकीकरण को एक व्यापक घटनाक्रम माना जाता है। आधुनिकीकरण की पश्चिमी अवधारणा उन्नत प्रौद्योगिकी और सामाजिक संबंधों के प्रति धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण पर आधारित, समाज के पूर्ण प्रतिस्थापन का प्रतिनिधित्व करती है। भारत में, यह निरंतरता और परिवर्तन, अपनी गौरवशाली समृद्ध विरासत को नष्ट किए बिना एक नई पहचान के निर्माण का प्रतिनिधित्व करती है। आधुनिकीकरण मूलतः लोकतांत्रिक तर्ज पर परंपरा का पुनर्गठन है। इसका अर्थ है पुरानी व्यवस्था पर एक नई व्यवस्था का निर्माण, न कि नई व्यवस्था की स्थापना और पुरानी व्यवस्था का निरस्त होना।⁴

आधुनिक भारत के युवा

भारत, एक ऐसा देश जिसका अतीत लंबा और शानदार है और जिसका कल्चर अलग-अलग तरह का है, अभी अपने लोकतांत्रिक सिस्टम के डेवलपमेंट के एक अहम मोड़ पर है।

भारतीय युवा (Indian Youth) भारत की सबसे बड़ी शक्ति हैं, जिनकी उम्र 15-29 वर्ष मानी जाती है, जो देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा हैं और नवाचार, आकांक्षाओं से भरे हैं, और भारत के “जनसांख्यिकीय लाभांश” (Demographic Dividend) का मुख्य आधार हैं, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सामाजिक बदलावों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिसके लिए सरकार “मेरा युवा भारत (Mera Yuva Bharat)” जैसी योजनाएं चला रही है। आधुनिक भारत के युवा हमारे देश और दुनिया भर की समस्याओं से अवगत हैं।⁵

देश का डेमोग्राफिक डिविडेंड, जिसकी पहचान एक मजबूत युवा आबादी है, देश के लिए एक चुनौती और मौका दोनों हैं। राजनीतिक माहौल को तय करने में युवाओं की सबसे जरूरी भूमिकाओं में से एक, उस देश में पहले कभी इतनी जरूरी नहीं रही, जहाँ लगभग 65 परसेंट आबादी 35 साल से कम उम्र की है। आज के भारत में, युवा न सिर्फ पॉलिसी के फायदेमंद हैं; बल्कि, वे राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय सहभागी भी हैं। उनकी भागीदारी में कई तरह की एक्टिविटीज शामिल हैं, जिनमें चुनावी प्रक्रिया में शामिल होना, जमीनी स्तर पर कार्यवाई में हिस्सा लेना, डिजिटल प्लेटफॉर्म पर लॉबिंग करना और राजनीतिक पार्टियों में लीडरशिप रोल शामिल हैं, लेकिन यह इन्हीं तक सीमित नहीं है। इस ग्रुप के सदस्य पारंपरिक राजनीतिक तरीकों से ज्यादा से ज्यादा नाखुश होते जा रहे हैं, और वे एक क्रांतिकारी बदलाव लाने के लिए तैयार हैं। युवा भारतीयों में बढ़ती राजनीतिक चेतना का श्रेय कई अलग-अलग स्रोतों को दिया जा सकता है।⁶

यह सच है कि देश का भविष्य बच्चों के हाथों में है, और इसी से यह भी सच साबित होता है कि देश का वर्तमान आज के सक्षम युवाओं के हाथों में है। आधुनिक भारत में युवाओं की भूमिका पर इतना जोर दिए जाने में कोई आश्चर्य नहीं। आइए देखें कि इन युवा नेतृत्वकर्ताओं के हाथों में कितनी शक्ति है:

- राजनीतिक जागरूकता और भागीदारी: भारत में युवा पीढ़ी को पहले राजनीति के प्रति उदासीन माना जाता था, लेकिन यह धारणा तेजी से बदल रही है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के कारण युवा राजनीति में अधिकाधिक सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। वे पर्यावरण स्थिरता, लैंगिक समानता और आर्थिक विकास जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा कर रहे हैं। भारत को एक बेहतर देश बनाने के लिए यह नई राजनीतिक जागरूकता अत्यंत महत्वपूर्ण है।⁷
- तकनीकी नवाचार और शासन: भारत के युवा डिजिटल युग के हैं और शासन व्यवस्था में सुधार लाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रहे हैं। वे सरकारी सेवाओं को बेहतर बनाने, पारदर्शिता बढ़ाने और सक्रिय नागरिकता को बढ़ावा देने के लिए ऐप्स, वेबसाइट और प्लेटफॉर्म विकसित कर रहे हैं। डिजिटल नवाचार प्रशासनिक प्रक्रियाओं को बेहतर बना सकता है और उन्हें अधिक कुशल और नागरिक-हितैषी बना सकता है।⁸
- सामाजिक और पर्यावरणीय पहल: युवा भारतीय पर्यावरण क्षरण और सामाजिक असमानता सहित देश की सबसे गंभीर चुनौतियों से निपटने में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं। वे वृक्षारोपण परियोजनाओं में भाग लेते हैं, सतत प्रथाओं को बढ़ावा देते हैं और वायु प्रदूषण और जल संकट जैसे मुद्दों से निपटने के लिए अभियान चलाते हैं।⁹
- जमीनी स्तर पर लामबंदी: युवा लोग जन आंदोलनों और सामुदायिक निर्माण में सक्रिय रूप से शामिल हैं। सफाई अभियान आयोजित करना हो, गरीब बच्चों को शिक्षित करना हो या आपदा राहत परियोजनाएं हों, उनके कार्यों का स्थानीय शासन पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की सामुदायिक भागीदारी नेतृत्व कौशल विकसित करती है और जिम्मेदारी बढ़ाती है, जो व्यापक राजनीतिक भागीदारी में परिणत हो सकती है।¹⁰
- शासन पर एक नया दृष्टिकोण: युवा दिमाग प्रबंधन में नए दृष्टिकोण और नवोन्मेषी समाधान लेकर आते हैं। उनका आदर्शवाद, प्रयोग करने की तत्परता के साथ मिलकर, साहसिक नीतियों और सुधारों को जन्म दे सकता है। उदाहरण के लिए, वे सतत विकास, नवीकरणीय ऊर्जा और डिजिटल साक्षरता की वकालत करते हैं, जो भारत के भविष्य के लिए आवश्यक हैं।¹¹

गैर सरकारी संगठन नैतिक शासन को बढ़ावा देने में युवाओं को कैसे संगठित करते हैं?

नैतिक शासन को बढ़ावा देने के लिए युवाओं को संगठित करने में गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। युवाओं की भागीदारी प्रबंधन संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए नए दृष्टिकोण, ऊर्जा और नवोन्मेषी विचार ला सकती है।¹²

नैतिक शासन के लिए युवाओं को प्रभावी ढंग से शामिल करने और संगठित करने के लिए एनजीओ द्वारा अपनाई जा सकने वाली कुछ रणनीतियाँ यहाँ दी गई हैं:

- शिक्षा एवं जागरूकता: वे युवाओं को नैतिक शासन के महत्व, उसके सिद्धांतों और समाज पर उसके प्रभाव के बारे में शिक्षित करने के लिए कार्यशालाओं, सेमिनारों और जागरूकता अभियानों का आयोजन करते हैं। वे प्रबंधन संरचनाओं और प्रक्रियाओं की उनकी समझ को बेहतर बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संचालित करते हैं।
- पैरवी और नीतिगत सहभागिता: ये संगठन युवाओं को स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक निर्णयकर्ताओं के साथ सक्रिय रूप से संवाद करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। गैर-सरकारी संगठन उन्हें राजनीतिक बहसों में भाग लेने के लिए आवश्यक संसाधन और जानकारी प्रदान कर सकते हैं।
- युवा-केंद्रित अभियान: ये संगठन युवाओं को प्रभावित करने वाले अभियान तैयार करते हैं, जिनमें सोशल मीडिया, कहानी सुनाने और मल्टीमीडिया सामग्री का उपयोग करके प्रभावी ढंग से संदेश पहुंचाए जाते हैं। इनके अभियान मुख्य रूप से पारदर्शिता, भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान, चुनावी सुधार और शासन में युवाओं के प्रतिनिधित्व जैसे विशिष्ट मुद्दों पर केंद्रित होते हैं।
- साझेदारी और सहयोग: वे संसाधनों और विशेषज्ञता को साझा करने के लिए युवा संगठनों, शैक्षणिक संस्थानों और अन्य हितधारकों के साथ सहयोग करते हैं। ऐसे सहयोगों के माध्यम से वे मिलकर कार्यक्रम, अभियान और पहल आयोजित करते हैं ताकि अधिकतम प्रभाव प्राप्त किया जा सके।
- नेतृत्व विकास: ये संगठन युवा नेताओं को नैतिक शासन की वकालत करने के लिए आवश्यक कौशल विकसित करने में मदद करने हेतु नेतृत्व प्रशिक्षण कार्यक्रम और मार्गदर्शन के अवसर प्रदान करते हैं। साथ ही, ये युवाओं को गैर-सरकारी संगठनों में नेतृत्व की भूमिका निभाने के लिए मंच प्रदान करते हैं, जिससे उनमें स्वामित्व और जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है।
- युवा नेटवर्किंग और समावेशिता: ये युवा कार्यकर्ताओं के बीच नेटवर्किंग और सहयोग को बढ़ावा देते हैं, जिससे वे अपने अनुभव साझा कर सकें और एक-दूसरे की सफलताओं और चुनौतियों से सीख सकें। यह ऑनलाइन समुदायों या मंचों के माध्यम से किया जाता है, जहाँ युवा लोग बातचीत कर सकते हैं और शासन से संबंधित मुद्दों पर चर्चा कर सकते हैं।
- नागरिक जागरूकता कार्यक्रम: स्कूलों और विश्वविद्यालयों में नागरिक शिक्षा कार्यक्रम विकसित और कार्यान्वित किए जाते हैं, जहाँ युवाओं को नागरिकों के रूप में उनके अधिकारों और जिम्मेदारियों के बारे में सिखाया जाता है। इससे युवाओं को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के लिए कि ली नेतृत्व अभ्यासों जैसे कि ली चुनाव और विधायी बहसों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन मिलता है।
- प्रौद्योगिकी का उपयोग: वे युवाओं तक पहुँचने और उन्हें संगठित करने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं। वे ऐसे इंटरैक्टिव ऐप, ऑनलाइन गेम या प्लेटफॉर्म बनाते हैं जो उन्हें नैतिक प्रबंधन के मुद्दों पर शिक्षित और जागरूक करते हैं। वे सूचना प्रसार, सक्रियता और ऑनलाइन अभियानों के लिए सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का भी उपयोग करते हैं।
- दीर्घकालिक सहभागिता: वे नैतिक नेतृत्व के प्रति युवाओं की दीर्घकालिक प्रतिबद्धता सुनिश्चित करने के लिए स्थायी सहभागिता रणनीतियाँ बनाते हैं। वे युवाओं की बदलती प्राथमिकताओं और रुचियों को पूरा करने के लिए सहभागिता विधियों को लगातार अद्यतन और अनुकूलित करते रहते हैं।

बेहतर भारत के लिए युवाओं की भूमिका

भारत के युवा आजादी की लड़ाई में शामिल लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत थे। आजादी के बाद, युवाओं के असर ने कई राज्य सरकारों के लिए घटनाओं का रुख बदल दिया। गुजरात और बिहार में हुए आंदोलन इसके खास उदाहरण हैं। हाल की घटनाओं से पता चला है कि अन्ना हजारे की अगुवाई में भ्रष्टाचार के खिलाफ अभियान युवाओं के सपोर्ट के बिना रफ्तार नहीं पकड़ पाता, जिसके कारण आखिरकार सरकार ने एंटी-कॉरप्शन बिल पर तुरंत कार्रवाई की।¹³

देश बनाने का प्रक्रिया एक बहुत बड़ा काम है जिसे तय नतीजे पाने के लिए अलग-अलग स्टेज में किया जाना चाहिए। हर किसी को अपना काम करना होगा। हर एक युवा को अपनी काबिलियत के हिसाब से हिस्सा लेने का मौका मिलता है। उन्हें उस प्रोजेक्ट के बारे में पता होना चाहिए जो उन्हें दिया गया है, साथ ही समाज के लिए प्रोजेक्ट की अहमियत और उसमें उनसे जो रोल निभाने की उम्मीद है, उसके बारे में भी पता होना चाहिए। वे अपने जोश और लगन का इस्तेमाल करके अपने लक्ष्य को पाने के लिए जरूर बहुत मेहनत करेंगे। जब कोई सफल होता है, तो उसे संतुष्टि का एहसास होता है क्योंकि उसे एहसास होता है कि उसने एक अहम भूमिका निभाई है। इससे, वह और भी ज्यादा प्रेरित होगा। यह काम कोई मुश्किल काम नहीं है।

निष्कर्ष

आज की भारतीय राजनीति में युवाओं की भागीदारी देश में लोकतांत्रिक माहौल के विकास में एक जरूरी हिस्सा है। युवा लोग, जो जनसंख्या का सबसे बड़ा हिस्सा हैं, उनमें बड़ा बदलाव लाने और एक ऐसा राजनीतिक माहौल बनाने की ताकत है जो ज्यादा बहुआयामी और उन्नत हो। उन्होंने लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से हिस्सा लेकर, जमीनी कामों में शामिल होकर और कानूनी बदलावों की वकालत करके भारत के लिए एक बेहतर भविष्य लाने के लिए अपना समर्पण है। आज की भारतीय राजनीति में युवा लोग जो योगदान देते हैं, वे देश की तरक्की के लिए बदलाव लाने वाले और जरूरी हैं। इसके अलावा,

उनका एक्टिव जुड़ाव न सिर्फ लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बेहतर बनाने में मदद करता है। जैसे-जैसे युवा लोग अपनी मौजूदगी दर्ज करा रहे हैं, यह जरूरी है कि राजनीतिक सिस्टम उनकी मौजूदगी के हिसाब से खुद को ढाले और उनके योगदान को माने। जब चुनावों की बात आती है, तो युवा वोट एक अहम ताकत होते हैं, क्योंकि वे उन पॉलिसी और नेताओं की वकालत करते हैं जो उनकी चिंताओं और लक्ष्यों का जवाब देते हैं। युवाओं ने सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करके राजनीतिक हिस्सेदारी को बदल दिया है, जिससे संचार ज्यादा आसान और ज्यादा हो गया है।

भारतीय युवा, जो देश की बड़ी आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं, राजनीति में ऊर्जा, नए विचारों और समस्याओं के समाधान के लिए एक शक्तिशाली शक्ति हैं, लेकिन उनकी भागीदारी में शिक्षा, अवसर और सकारात्मक माहौल की कमी जैसी चुनौतियाँ हैं; युवा शिक्षा, रोजगार और प्रगति जैसे मुद्दों पर अधिक केंद्रित हैं और राजनीति में सक्रिय भागीदारी से लोकतंत्र को मजबूत कर सकते हैं, लेकिन उन्हें जिम्मेदारी से काम करना और दलगत राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्रहित को प्राथमिकता देनी होगी।

सन्दर्भ

1. आचार्य, मंगेश. भारतीय राजनीति में युवाओं की भूमिका: एक राजनीतिक विश्लेषणात्मक अध्ययन। 2022.10.13140/आरजी.2.2.20441.80485।
2. शुमिलोव ए. युवा परिवेश में चुनावी नीति के गठन के कारक पोलिट बुक, 2012, पृष्ठ 75-85.
3. क्रिज्सटॉफ़ इवानेक. भारतीय पार्टी प्रतीकों की रोचक कहानियाँ. द डिप्लोमैट. 2016-2017.
4. शौरी, अरुण. संसदीय प्रणाली: हमने इसे क्या बनाया है, हम इसे क्या बना सकते हैं. नई दिल्ली: रूपा एंड कंपनी, 2007.
5. रोगॉफ़ बी. मानव विकास की सांस्कृतिक प्रकृति ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, NY, 2003.
6. परशुरामन एस.के. भारत में युवाओं की प्रोफाइल. नई दिल्ली: स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 2009.
7. जेफरी सी. टाइमपास: भारत में युवा, वर्ग और इंतजार की राजनीति. स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010.
8. अत्री वी. राजनीतिक मुद्दों पर जागरूकता. एस. कुमार (एड.), भारतीय युवा और चुनावी राजनीति: एक उभरता हुआ जुड़ाव. नई दिल्ली: SAGE, 2014, पेज 1-18.
9. युवा मामले और खेल मंत्रालय. राष्ट्रीय युवा नीति. 4 दिसंबर, 2016 को, 2014 से लिया गया. <http://yas.nic.in/documents/national.youth.policy-2014-2014>.
10. दास. लोकतांत्रिक राजवंश: समकालीन भारतीय राजनीति में राज्य, पार्टी और परिवार. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014, पेज 12-55.
11. वसुंधरा टी. पहली बार मतदाता अपनी छाप छोड़ने के लिए उत्सुक हैं द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 2011।
12. पारख, निशांत. (2020)। चुनावी राजनीति में युवाओं का प्रतिनिधित्व: भारतीय चुनाव प्रणाली का एक विश्लेषण। जर्नल ऑफ़ राजनीति एंड गवर्नेंस. 8. 43-59.
13. कुमार, आशुतोष. (2019)। भारत में राज्य स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व: निरंतरता और प्रभाव। भारत समीक्षा. 18. 264-287. 10.1080/14736489.2019.1616260।

भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंध और सुरक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

उज्ज्वल कुमार सिंह

शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, (बिहार)

सारांश

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत के पड़ोसी देशों के साथ के संबंधों की महत्वपूर्ण दिशाओं को समझना और उनके सुरक्षा के सन्दर्भ में उनका प्रभाव जानना है। पाकिस्तान, बांग्लादेश, चीन, नेपाल जैसे भारत के पड़ोसी देश भारत के लिए राजनीतिक, आर्थिक, और सुरक्षा सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। यह अध्ययन दिखाता है कि इन संबंधों के गहरे अर्थ को समझने की आवश्यकता है, क्योंकि ये भारत के राजनीतिक और सुरक्षा पॉलिसियों पर प्रभाव डाल सकते हैं। इस अध्ययन में दिखाया गया है कि भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को सुरक्षित और स्थिर बनाने के लिए सहमत और सहयोग की आवश्यकता है, ताकि भारतीय सुरक्षा और संबंधों की सुरक्षा और स्थिरता को बनाए रखना हो सके। समाज के सभी वर्गों, राजनीतिक नेताओं, और राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् के सदस्यों के सहयोग के साथ, हम सकारात्मक दिशा में कदम उठा सकते हैं और भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को और भी मजबूत बना सकते हैं, जिससे कि हम सभी के लिए एक बेहतर और सुरक्षित भविष्य की ओर कदम बढ़ा सकें।

परिचय

भारत, एक महत्वपूर्ण देश होने के नाते, अपने पड़ोसी देशों के साथ संबंध बहुत महत्वपूर्ण बनाता है। यह संबंध न केवल राजनीतिक और आर्थिक मामलों को प्रभावित करते हैं, बल्कि इसका गहरा असर भारतीय सुरक्षा पॉलिसियों और राष्ट्रीय सुरक्षा पर भी पड़ता है।¹ भारत के पड़ोसी देशों में पाकिस्तान, बांग्लादेश, चीन, नेपाल आदि शामिल हैं, और इन देशों के साथ संबंधों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह है कि हम इन संबंधों की गहरी जानकारी प्राप्त करें और समझें कि भारत के पड़ोसी देशों के साथ के संबंध कैसे बदल रहे हैं और इसका भारतीय सुरक्षा पर क्या प्रभाव हो सकता है। हम इस अध्ययन में प्रमुख तीन पड़ोसी देश, यानी पाकिस्तान, बांग्लादेश, और चीन, के साथ संबंधों का विश्लेषण करेंगे और देखेंगे कि इन संबंधों के द्वारा कैसे राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित किया जा सकता है।²

मूल शब्द: आक्सार्ई चीन, लदाख, अरूणाचल प्रदेश, और सिक्किम।

भारत और नेपाल संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत और नेपाल के संबंध ऐतिहासिक दृष्टिकोण से गहरे और पौराणिक हैं। ये दो देश एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं, और उनके इतिहास में विविध घटनाएँ और सांस्कृतिक प्रभाव दिखते हैं। नेपाल और भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है गौतम बुद्ध का जन्म, जो लुम्बिनी, नेपाल में हुआ था। बुद्ध धम्म के सन्देशवाहक थे, और उनका उपदेश भारतीय सभ्यता के लिए महत्वपूर्ण रहा है। उनके उपदेशों ने भारत और नेपाल के बीच धार्मिक और दार्शनिक विचारों को प्रभावित किया। सम्राट अशोक के शासनकाल में इस भू-भाग को भारतीय सांस्कृतिक और धार्मिक संस्कृति का केंद्र माना गया था। नेपाल, बौद्ध महायान धम्म के प्रमुख केंद्रों में से एक था और यहाँ पर अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल हैं जैसे कि, लुम्बिनी, कपिलवस्तु, और पाटना।³

मध्यकाल में, नेपाल और भारत के बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के साथ-साथ राजनीतिक संबंध भी थे। गुरुखा साम्राज्य ने 18वीं सदी में नेपाल को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक खिलाडी बना दिया, और उन्होंने भारत के साथ कई संघर्षों का सामना किया। ब्रिटिश शासन काल में, नेपाल ब्रिटिश इंडिया के पड़ोसी देश के रूप में रहा और इसके परिणामस्वरूप विभिन्न समझौतों और संघर्षों के जरिए दोनों देशों के बीच सीमा का निर्धारण हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के बाद, नेपाल और भारत ने आपसी संबंधों को मजबूत किया और दोनों देश ने एक-दूसरे के साथ समरसता और साथी भाव में जीवन यापन किया।⁴

नेपाल की भूराजनीतिक स्थिति

नेपाल, दक्षिण एशिया में स्थित एक छोटा सा देश है, जिसकी भूराजनीतिक स्थिति बहुत ही चुनौतीपूर्ण है। यह देश विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, और आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा है, जिससे लोगों के जीवन में अस्तित्व की सुरक्षा खतरे में है। नेपाल की भूराजनीतिक स्थिति में सबसे बड़ी समस्या राजनैतिक असमंजसता है। देश में राजनीतिक दलों के बीच बार-बार विवाद होते रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप स्थिति में स्थिरता नहीं आती है। सरकार और विपक्ष के बीच घमासान के कारण, नेपाल में विकास कार्यक्रम और सुधारों में विलंब हो रहा है, जिससे आसपास के देशों के साथ मुकाबला करने में दिक्कतें आ रही हैं। नेपाल की भूराजनीतिक स्थिति में एक और बड़ी चुनौती अन्यायपूर्ण भूमि विवाद है, जिसमें भारत और चीन भी शामिल हैं। नेपाल के दक्षिणी सीमा पर भूमि के मामले में विवाद है, और यह विवाद नेपाल की गणराज्यता और सुरक्षा को खतरे में डालता है।

नेपाल की सामाजिक स्थिति भी चुनौतीपूर्ण, क्योंकि वहाँ जाति और लिंग के आधार पर बहुत भेदभाव का सामना किया जाता है। साथ ही, देश में गरीबी, बेरोजगारी और व्यापार के अवसरों की कमी है, जिससे आर्थिक स्थिति भी चिंताजनक है। नेपाल की भूराजनीतिक स्थिति को सुधारने के लिए सरकार और विपक्ष को मिलकर काम करना होगा। राजनीतिक विवादों को सुलझाने के साथ ही, सामाजिक और आर्थिक सुधारों पर ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है। साथ ही, नेपाल को अपने पड़ोसी देशों के साथ बेहतर संबंध बनाने की भी जरूरत है, ताकि वह अपनी सुरक्षा और विकास को सुनिश्चित कर सके। इसके अलावा, नेपाल को अपने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने के लिए अपने संसाधनों का सही तरीके से प्रबंधित करने की आवश्यकता है, ताकि यह देश अपने नागरिकों के लिए बेहतर जीवन की समर्थना कर सके।

भारत और पाकिस्तान संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत और पाकिस्तान के संबंध एक लम्बे और जटिल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ हैं, जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक परिप्रेक्ष्य से कई महत्वपूर्ण घटनाएँ शामिल हैं। इन संबंधों की शुरुआत भारत के आजाद होने के बाद 1947 में हुई थी, जब भारत और पाकिस्तान दो अलग देशों के रूप में विभाजित हुए। पाकिस्तान का जन्म 1947 में भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप हुआ, जिसके पीछे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और विभाजन के सामाजिक और राजनीतिक दायरे थे। यह विभाजन मुख्य रूप से धार्मिक और सामाजिक बाधाओं के पारंपरिक फैलाव के परिणामस्वरूप हुआ था, जो मुस्लिम और हिंदू समुदायों के बीच संघर्ष के रूप में प्रकट हुआ। इसके बाद, 1947 में ही भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर विवाद का आरंभ हुआ, जिसका परिणामस्वरूप हिंदुस्तान और जम्मू-कश्मीर के बीच संघर्ष के रूप में जारी रहा है। यह कश्मीर क्षेत्र हमेशा से भारतीय और पाकिस्तानी स्वाधीनता संग्राम का केंद्र रहा है, और इसके चारों तरफ तनाव बरकरार है। भारत और पाकिस्तान के बीच जलवायु और सीमा विवाद भी आए दशकों में सुधार नहीं पा रहे हैं। कराची समझौता (1949), ताशकंद समझौता (1966), और शिमला समझौता (1972) जैसे संबंध समझौतों के बावजूद, सीमा पर विवाद बरकरार है।

युद्धों के बावजूद, भारत और पाकिस्तान के बीच कुछ समझौते भी हो रहे हैं। विविध वित्तीय संबंध, व्यापार, और लोगों के मध्य संवाद की प्रक्रिया जारी है। दोनों देशों के बीच कई अल्पसंख्यक समुदायों के बीच व्यक्तिगत संबंध भी हैं, और इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत और पाकिस्तान के संबंध एक विचित्र और जटिल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ हैं, और ये संबंध आज भी सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक मुद्दों के बावजूद जारी हैं। इन संबंधों के पास एक लम्बा इतिहास है जिसमें आजादी के बाद के कई महत्वपूर्ण घटनाएँ शामिल हैं और इनका असर आज की दिनचर्या पर भी दिखाई देता है।¹

पाकिस्तान की भू-राजनीतिक स्थिति

पाकिस्तान, दक्षिण एशिया में स्थित एक महत्वपूर्ण देश है, जिसकी भूराजनीतिक स्थिति बहुत ही चुनौतीपूर्ण है। यह देश राजनीतिक और सुरक्षा संबंधों में बहुत ही दुनिया के लिए महत्वपूर्ण है और इसकी स्थिति विशेष ध्यान खींचती है। पाकिस्तान की भूराजनीतिक स्थिति में सबसे बड़ी समस्या यह है कि देश के अंदर राजनीतिक असमंजस और आतंकवादी गतिविधियों का बढ़ता दबाव है। पाकिस्तान ने विशेष रूप से अपने सिंध प्रांत में आतंकवादी समूहों के साथ लड़ाई जारी रखी है, जिससे देश के सुरक्षा को खतरे में डाला है। दूसरी ओर, पाकिस्तान की राजनीतिक स्थिति भी बदल रही है, क्योंकि वहाँ चुनाव और राजनीतिक पार्टियों के बीच विवाद हो रहे हैं। सरकार और विपक्ष के बीच घमासान के कारण, पाकिस्तान के विकास कार्यक्रमों में विलंब हो रहा है, जिससे जनसंख्या को आसपास के देशों के साथ मुकाबला करने में दिक्कतें आ रही हैं। पाकिस्तान की सुरक्षा स्थिति भी बदल रही है, खासकर भारत के साथ संघर्ष के परिणामस्वरूप। दोनों देशों के बीच सीमा विवाद और आतंकवाद के मुद्दे आ गए हैं, जिनसे दोनों देशों की सुरक्षा स्थिति में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। पाकिस्तान की भूराजनीतिक स्थिति को सुधारने के लिए राजनीतिक स्थिरता, सुरक्षा स्थिति और आर्थिक सुधार के कई कदम उठाने की आवश्यकता है। देश को अपने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने के लिए अपने संसाधनों का सही तरीके से प्रबंधित करने की भी आवश्यकता है, ताकि यह देश अपने नागरिकों के लिए बेहतर जीवन की समर्थना कर सके।

भारत और चीन संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत और चीन के संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बहुत ही विशाल और गहरी है। ये दो देश एशिया में स्थित हैं और अपने विशेष भौगोलिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक मूलों के कारण महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों देशों के बीच के संबंध इतिहास में कई बार बदले हैं। प्राचीनकाल में भारत और चीन के बीच व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता था, और इसके बाद भी वे एक-दूसरे के साथ संबंध बनाए रखने का प्रयास करते रहे। हालांकि, इस तिथि से पूर्व यदि हम इन संबंधों की गति की ओर देखें, तो हमें देखने को मिलता है कि इन्होंने कई चुनौतियों का सामना किया है। 1962 में भारत-चीन युद्ध के बाद, इन दोनों देशों के बीच सीमा विवाद का असर आया, और यह विवाद आज भी बना हुआ है। चीन ने अक्सर चीन क्षेत्र में कब्जा किया, जिससे सीमा विवाद का मूल निम्नलिखित क्षेत्र में फैला है:

इसके बावजूद, भारत और चीन के बीच व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी होता है। वे एक-दूसरे के साथ विभिन्न क्षेत्रों में व्यापार करते हैं और सांस्कृतिक आयोजनों में भाग लेते हैं। इन संबंधों के बावजूद, सीमा विवाद और राजनीतिक मुद्दे इन संबंधों को प्रभावित करते रहते हैं और एक ठोस समाधान की ओर बढ़ने में बाधक होते हैं। भारत और चीन के संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि विशाल और चुनौतीपूर्ण, लेकिन दोनों देश अपने संबंधों को सुधारने और सशक्त बनाने के लिए प्रयासरत रहते हैं।

चीन की भूराजनीतिक स्थिति

चीन, एक विशाल और महत्वपूर्ण देश है, जिसकी भूराजनीतिक स्थिति विशेष रूप से व्यापक है और दुनिया भर में ध्यान दिलाने वाली है। चीन का राजनीतिक प्रणाली समाजीकरण, आर्थिक विकास, और वैश्विक गुजरने के तरीकों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ बदल रहा है। चीन की भूराजनीतिक स्थिति

में सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि चीन के अधिकारी और नेताओं की विचारधारा में बदलाव हो रहा है। चीन की राजनीतिक पार्टी, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सीसीपी), लगातार विकास और आर्थिक उन्नति को महत्वपूर्ण मान रही है और विशेषकर बिना आर्थिक मुद्दों के राजनीति में प्राधान्य देने का प्रयास कर रही है। चीन की आर्थिक वृद्धि भी उद्घाटन है, और यह दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में आगे बढ़ रहा है। चीन ने अपने आर्थिक विकास के साथ ही वैश्विक नेतृत्व का भी दावा किया है और विभिन्न आर्थिक इंफ्रास्ट्रक्चर परियोजनाओं का संचालन किया है, जैसे कि बिल्ट और रोड इनिशिएटिव।⁶

चीन की भूराजनीतिक स्थिति विचारधारा, सैन्य और सुरक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण है। चीन ने अपनी सैन्य ताकत को बढ़ावा दिया है और अपने राजनीतिक प्रणाली को सुरक्षित रखने के लिए कई सुरक्षा कदम उठाए हैं। चीन के राजनीतिक नेताओं का यह मानना है कि वे अपने राष्ट्र की सुरक्षा को पहले करते हैं और इसके लिए कई तरह की रणनीतियों का प्रयोग कर रहे हैं। चीन की भूराजनीतिक स्थिति बदल रही है और यह दुनिया के अन्य देशों के लिए भी महत्वपूर्ण है। चीन की आर्थिक और सैन्य ताकत के साथ ही, यह देश राजनीतिक विचारधारा में भी बदलाव ला रहा है और अपने आर्थिक और सुरक्षा हितों की रक्षा कर रहा है।⁷

भारत और बांग्लादेश संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

बांग्लादेश की जनसंख्या विशाल और घनी होने के कारण यह दक्षिण एशिया के एक महत्वपूर्ण देश के रूप में उभरा है। जनसंख्या के तेजी से वृद्धि के साथ, बांग्लादेश के समाज में युवाओं का प्रमुखाधिकार है। इस्लाम यहां का प्रमुख धर्म है, और अधिकांश लघेग मुस्लिम हैं, लेकिन धार्मिक आपसी सहमत और सहयोग की भावना के साथ अन्य धर्मों के अनुयायी भी हैं। बांग्लादेश में कृषि एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है, लेकिन अंधविश्वास और भ्रष्टाचार की समस्याओं के कारण यहां की आर्थिक स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। इसके अलावा, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के लिए कई योजनाएं बनाई गई हैं, और शिक्षा के क्षेत्र में भी सुधार का प्रयास किया जा रहा है।

बांग्लादेश-भारत संबंध दो प्रमुख दक्षिण एशियाई देशों के बीच के द्विपक्षीय संबंध हैं। इन संबंधों की शुरुआत आधिकारिक रूप से 1971 में हुई थी, जब भारत ने बांग्लादेश को एक स्वतंत्र देश के रूप में मान्यता दी, जिससे पहले यह पूर्वी पाकिस्तान का हिस्सा था और बंगाली जनसंख्या अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी।

6 दिसंबर को बांग्लादेश और भारत इन संबंधों की याद में मित्रता दिवस मनाते हैं, जिससे ये संबंध औपचारिकता और साझेदारी के रूप में मजबूत बने हैं। हालांकि कुछ विवाद भी हैं, लेकिन बांग्लादेश और भारत के बीच के संबंध में मित्रता की भावना है। 2015 में, ऐतिहासिक भूमि सीमा समझौते के बाद, जिसमें दोनों देशों के बीच कई दशकों पुराने सीमा विवादों को सुलझाया गया, इन संबंधों में सुधार आया। हालांकि, सीमा पार नदियों के पानी के बंटवारे पर बातचीत अभी भी जारी है। बांग्लादेश और भारत के बीच सांस्कृतिक और वाणिज्यिक अदला-बदली होती है। दोनों देशों के बीच बंगाली भाषा के साथी भाषी होने के कारण भाषा, साहित्य, और कला में मान्यता दी जाती है। बांग्लादेश ने भारत की मदद से अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की थी, और इसे 'स्वतंत्रता युद्ध' के रूप में जाना जाता है। इसके बाद से बांग्लादेश ने अपनी स्वतंत्रता के बाद अपने देश के विकास में मेहनत की है, हालांकि यह एक गरीब और पिछड़ा देश है, जिसे प्राकृतिक आपदाओं का खतरा बनाए रखने का सामना करना पड़ता है। बांग्लादेश और भारत के बीच सार्क, ब्रिक्स, आईओआरएफ, और राष्ट्रमंडल जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों के सदस्य हैं, और इनके बीच विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग होता है। इन संबंधों को और मजबूत करने के लिए दोनों देश साथ में कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर काम कर रहे हैं, जैसे कि सीमा मुद्दे, व्यापार और परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग। भारत और बांग्लादेश के संबंध एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, और भौगोलिक दृष्टि से गहरे हैं। इन दो देशों के संबंधों की शुरुआत बहुत पुरानी है और इसके पीछे कई महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। बांग्लादेश का पूर्वोत्तर भारतीय सभ्यताओं का हिस्सा रहा है। यहां पर बौद्ध और हिंदू धर्म के महत्वपूर्ण तीर्थस्थल हैं, और कई प्राचीन गुप्त और मौर्या वंश के राजा यहां के प्रशासनिक केंद्र के रूप में कार्य करते थे। इसके परंपरागत बौद्ध धर्म के सभ्य संस्कृति का यहां बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 1947 में भारत का विभाजन होने के बाद, पूर्व पूर्वोत्तर क्षेत्र को पूर्वी बंगाल और पश्चिम बंगाल के रूप में बांटा गया। बांग्लादेश जिन बंगाल प्रान्त का हिस्सा था, जब बांग्लादेश की मुक्ति संग्राम भारतीय सेना के साथ लड़ा गया और बांग्लादेश की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इस स्वतंत्रता संग्राम में भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और बांग्लादेश को स्वतंत्रता दिलाने में मदद की। बांग्लादेश की स्वतंत्रता के बाद, भारत और बांग्लादेश के संबंध दिन-प्रतिदिन मजबूत हो गए हैं। ये दो देश साथ में विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग कर रहे हैं, जैसे कि व्यापार, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सांस्कृतिक आदि। इन संबंधों की मजबूती के साथ-साथ ये भारत और बांग्लादेश के लोगों के बीच मानि और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी प्रोत्साहित कर रहे हैं। भारत और बांग्लादेश के संबंध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से गहरे और महत्वपूर्ण हैं, और इन संबंधों का आगे बढ़कर दोनों देशों के विकास और सहयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।⁸

बांग्लादेश की भूराजनीतिक स्थिति

बांग्लादेश, दक्षिण एशिया में स्थित एक महत्वपूर्ण देश है, जिसकी भूराजनीतिक स्थिति विशेष रूप से आधुनिक इतिहास के परिणामस्वरूप बदल रही है। इस देश का राजनीतिक प्रणाली जो एक पार्लियामेंटरी गणराज्य के रूप में आयोजित होता है, में भी दिनों-दिनों के साथ महत्वपूर्ण बदलाव हो रहा है। बांग्लादेश की भूराजनीतिक स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण पहलू है राजनीतिक स्थिरता की कमी। इस देश में पार्टी और विपक्ष के बीच विवाद और प्रशासनिक असमंजस के कारण सरकार के तत्त्वों में अद्यतन बदलाव होता रहता है, जिससे विकास कार्यक्रमों में विलंब हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप, बांग्लादेश के लोगों की जीवनस्तर में सुधार नहीं हो पा रहा है और गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याएं आगे बढ़ रही हैं। बांग्लादेश की भूराजनीतिक स्थिति में एक और बड़ी चुनौती यह है कि देश का स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वायुमंडलीय प्रदूषण और जल लाभांतरण के बीच विवाद है। बांग्लादेश एक पानी बहुतायत देश है और इसकी आवश्यकता है कि यह संसाधन को प्रबंधित करके जलवायु परिवर्तन के प्रति सजग रहे। इसके अलावा, बांग्लादेश को अपने सोसायटल, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए अपने संसाधनों का सही तरीके से प्रबंधित करने की आवश्यकता है, ताकि यह देश अपने

नागरिकों के लिए बेहतर जीवन की समर्थना कर सके। इसके लिए राजनीतिक स्थिति को सुधारने के साथ ही सामाजिक और आर्थिक सुधारों पर भी ध्यान देना महत्वपूर्ण है।

हाल के दशकों में, बांग्लादेश ने भारत सरकार की कथित मुस्लिम विरोधी और बांग्लादेशी विरोधी गतिविधियों के कारण अपने नागरिकों के बीच भारत विरोधी भावनाओं को बढ़ते देखा है, जिसमें बांग्लादेश की आंतरिक राजनीति में भारत का हस्तक्षेप, भारतीय बीएसएफ द्वारा बांग्लादेशियों की हत्या, नागरिकता संशोधन अधिनियम, भारत में हिंदुत्व का उदय, भारतीय मीडिया में बांग्लादेशी विरोधी दुष्प्रचार के साथ-साथ बांग्लादेश के साथ आम नदियों में जल विवादों को सुलझाने में भारत की अनिच्छा शामिल है। 2019 में, कई बांग्लादेशी मंत्रियों ने भारत के नागरिकता संशोधन विधेयक की प्रतिक्रिया के रूप में भारत की अपनी निर्धारित राजकीय यात्राओं को रद्द कर दिया।

2021 में, भारतीय पीएम नरेंद्र मोदी की देश की राजकीय यात्रा के खिलाफ बांग्लादेश में बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन हुए, इसके अलावा, भारत ने बांग्लादेश में छात्र-जनता के विद्रोह में शेख हसीना के इस्तीफे के बाद उन्हें शरण दी, जिससे बांग्लादेशी लोगों का भारत के प्रति गुस्सा और बढ़ गया।

वर्ष 2022 में दोनों देशों ने व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते (CEPA) पर एक संयुक्त व्यवहार्यता अध्ययन संपन्न किया। CEPA को अतिरिक्त महत्व मिलता है क्योंकि बांग्लादेश वर्ष 2026 के बाद अपना अल्प विकसित देश (LDC) का दर्जा खोने के लिये तैयार है, जिससे भारत में उसकी शुल्क-मुक्त और कोटा-मुक्त बाजार पहुँच खो जाएगी।⁹

निष्कर्ष

यह अध्ययन हमें दिखाता है कि भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंध और सुरक्षा के सन्दर्भ में सही समझना और समीक्षा करना कितना महत्वपूर्ण है। इसमें हमने देखा कि इन संबंधों का गहरा प्रभाव भारतीय सुरक्षा पॉलिसियों और राष्ट्रीय सुरक्षा पर पड़ता है, और इन्हें समझने की कोशिश करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत के पड़ोसी देश भारत के लिए न केवल व्यापारिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ये राजनीतिक और सुरक्षा मामलों में भी आवश्यक हैं। इन संबंधों के साथ आए चुनौतियों का समाधान खोजना और सुरक्षा के क्षेत्र में साझा कदम बढ़ाना महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन के माध्यम से हमने देखा कि भारत अपने पड़ोसी देशों के साथ आपसी सहमत और समर्थन के साथ संबंध बनाने के लिए सक्षम है, जो सुरक्षा के क्षेत्र में साथियों की एक महत्वपूर्ण जरूरत है। इन संबंधों को सुरक्षित और स्थिर बनाने के लिए दिल से जुटे रहने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय सुरक्षा और संबंधों की सुरक्षा और स्थायित्व को बनाए रखा जा सके। समाज के सभी वर्गों, राजनीतिक नेताओं, और राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् के सदस्यों के साथ सहमत और सहयोग के साथ, हम सकारात्मक दिशा में कदम उठा सकते हैं और भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को और भी मजबूत बना सकते हैं, जिससे कि हम सभी के लिए एक बेहतर और सुरक्षित भविष्य की ओर कदम बढ़ा सकें।

सन्दर्भ

1. मलिक, जे. एम. (2001). चीन के विदेश संबंधों में दक्षिण एशिया। पैसिफिका रिव्यू: शांति, सुरक्षा और वैश्विक परिवर्तन, 13(1), 73-90.
2. होलस्लाग, जे. (2009). चीन और भारत के बीच संक्षिप्त सैन्य सुरक्षा दुर्भाग्य का दृढ़ संरक्षण. युद्ध अध्ययन पत्रिका, 32(6), 811-840.
3. रॉय, एम. एस. (2001). केंद्रीय एशिया में भारत के रुचि. स्ट्रेटेजिक विश्लेषण, 24(12), 2273-2289.
4. शुक्ला, डी. (2006). भारत-नेपाल संबंध: समस्याएँ और संभावनाएँ. भारतीय राजनीतिक विज्ञान जर्नल, 355-374.
5. वार्षिक, आर., - मैलोन, डी. एम. (2011). भारतीय विदेश नीति और समकालिक सुरक्षा चुनौतियाँ. इंटरनेशनल अफेयर्स, 87(1), 87-104.
6. कुमार, एस. (संपादक). (2016). भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा: वार्षिक समीक्षा 2015-16.
7. रिक्टर, डब्ल्यू. एल. (1987). मिसेज गांधी का पड़ोस: पड़ोसी देशों के प्रति भारतीय विदेश नीति। एशियाई और अफ्रीकी अध्ययन जर्नल, 22(3-4), 250-265.
8. बुदानिया, आर. (2001). भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्या: पाकिस्तान कारक और भारत की नीति प्रतिसाद। इंडस पब्लिशिंग।
9. खेतान, एम. एस. (2017). भारत की पड़ोसी देशों में भारतीय हस्तक्षेप। स्ट्रेटेजिक अनुसंधान, 37(3), 112-125.

डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन और ओबीसी भागीदारी को मजबूत करना: बिहार में ग्रामीण लोकल सेल्फ-गवर्नेंस की भूमिका; गया ज़िले की एक केस स्टडी

सुमित कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार

अमूर्त

यह आर्टिकल बिहार के ग्रामीण लोकल सेल्फ-गवर्नेंस फ्रेमवर्क में अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) की भागीदारी को मजबूत करने में डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन की भूमिका की जांच करता है, जिसमें गया जिले पर खास ध्यान दिया गया है। बिहार में 73वें संविधान संशोधन को लागू करने और उसके बाद के पॉलिसी डेवलपमेंट के एनालिसिस के जरिए, यह स्टडी यह पता लगाती है कि पंचायती राज संस्थाएं (PRI) OBC पॉलिटिकल एम्पावरमेंट का जरिया कैसे बनी हैं। रिसर्च से पता चलता है कि डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन ने लोकल गवर्नेंस में OBC भागीदारी के लिए बहुत ज्यादा मौके बनाए हैं, लेकिन बड़ी सामाजिक-आर्थिक रुकावटें और स्ट्रक्चरल चुनौतियां बनी हुई हैं। गया जिले के एंपिरिकल सबूतों के आधार पर, यह आर्टिकल हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए समावेशी डेमोक्रेसी को बढ़ावा देने में लोकल सेल्फ-गवर्नेंस की बदलाव लाने की क्षमता और अंदरूनी कमियों, दोनों को दिखाता है। नतीजों से पता चलता है कि OBC पॉलिटिकल भागीदारी को ज्यादा से ज्यादा करने और समान विकास के नतीजे पक्का करने के लिए लगातार पॉलिसी में दखल, शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाना और मजबूत इंस्टीट्यूशनल क्षमता जरूरी है।

कीवर्ड: डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन, अन्य पिछड़ा वर्ग, पंचायती राज, लोकल गवर्नेंस, पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन, बिहार, गया जिला

परिचय

डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन भारत के सबसे अहम संवैधानिक इनोवेशन में से एक है, जिसने चुनी हुई लोकल बॉडीज को पावर देकर ग्रामीण शासन के माहौल को पूरी तरह बदल दिया है (बार्नेट एट अल., 1997, पेज 7)। 1992 का 73वां कॉन्स्टिट्यूशनल अमेंडमेंट एक्ट, जो अप्रैल 1993 में लागू हुआ, ने पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) को संवैधानिक पहचान दी, और उन्हें डेमोक्रेटिक शासन के तीसरे लेवल के तौर पर स्थापित किया (दृष्टि IAS, 2019)। इस ऐतिहासिक कानून ने सभी राज्यों में तीन-लेवल पंचायत सिस्टम बनाने, हर पांच साल में रेगुलर चुनाव कराने और सबसे जरूरी, पिछड़े समुदायों के लिए, महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटें और अनुसूचित जातियों (SCs) और अनुसूचित जनजातियों (STs) के लिए प्रोपोर्शनल रिप्रेजेंटेशन को जरूरी बना दिया।

बिहार के मामले में, जो एक ऐसा राज्य है जहाँ जाति व्यवस्था की पेचीदगियाँ और पुराने समय से अलग-थलग रहने के पैटर्न रहे हैं, डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन को लागू करना अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs) के लिए खास तौर पर जरूरी हो गया है। बिहार की आबादी का लगभग 63.13% हिस्सा, जब इसे बहुत पिछड़े वर्गों (EBCs) के साथ मिला दिया जाता है, तो ये समुदाय राज्य में सबसे बड़े डेमोग्राफिक ग्रुप का प्रतिनिधित्व करते हैं, फिर भी उन्हें ऐतिहासिक रूप से राजनीतिक प्रक्रियाओं में सिस्टमैटिक तरीके से अलग-थलग किया गया है (IASGYAN, 2024)। बिहार के लोकल गवर्नेंस स्ट्रक्चर में

OBCs का एक अहम राजनीतिक ताकत के रूप में उभरना, एलीट वर्ग के दबदबे के पारंपरिक पैटर्न से ज्यादा सबको साथ लेकर चलने वाली डेमोक्रेटिक भागीदारी की ओर एक बड़ा बदलाव दिखाता है।

बिहार के मगध इलाके में बसा गया जिला, ग्रामीण लोकल सेल्फ-गवर्नेंस में OBC की हिस्सेदारी के डायनामिक्स की जांच करने के लिए एक रोशनी डालने वाली केस स्टडी का काम करता है। अपनी अलग-अलग जातियों की बनावट और बड़ी OBC आबादी के साथ, गया जिला सबको साथ लेकर चलने वाले शासन को बढ़ावा देने में डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन से जुड़े मौकों और चुनौतियों, दोनों का उदाहरण है। पंचायती राज लागू करने के साथ जिले का अनुभव इस बात की कीमती जानकारी देता है कि राजनीतिक रिजर्वेशन के लिए संवैधानिक नियम कैसे हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए सही मजबूती में बदलते हैं।

पृष्ठभूमि

बिहार में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का ऐतिहासिक संदर्भ

बिहार में डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन की तरफ सफर 73वें कॉन्स्टिट्यूशनल अमेंडमेंट से बहुत पहले शुरू हो गया था, जब राज्य ने 1947 में ही पंचायती राज संस्थाओं को लागू कर दिया था (EduRev, 2024)। 1961 के बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद एक्ट ने तीन-लेवल सिस्टम के लिए बुनियादी

ढाँचा बनाया, जिसमें गाँव के लेवल पर ग्राम पंचायतें, ब्लॉक लेवल पर पंचायत समितियाँ और जिला लेवल पर जिला परिषदें शामिल थीं। हालाँकि, इन शुरुआती कोशिशों में बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिसमें शक्तियों का सीमित बंटवारा, कम पैसे वाले संसाधन और ऊँची जाति के अमीर लोगों के पक्ष में पारंपरिक पावर स्ट्रक्चर का बने रहना शामिल था।

73वें संविधान संशोधन का पास होना बिहार के शासन की दिशा में एक अहम मोड़ था। संवैधानिक आदेश के बाद, बिहार सरकार ने 1993 में बिहार पंचायती राज एक्ट लागू किया, जिसे बाद में बिहार पंचायती राज एक्ट 2006 से बदल दिया गया, जिसने PRIs (टेस्टबुक , 2025) को बनाने और चलाने के लिए एक बड़ा कानूनी ढाँचा दिया। इस कानून ने पूरे राज्य में 8,053 ग्राम पंचायतें, 533 पंचायत समितियाँ और 38 जिला परिषदें बनाई, जिससे जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं का एक बड़ा नेटवर्क बना (बिहार सरकार, 2025)।

बिहार में 73वें अमेंडमेंट को लागू करना बिना चुनौतियों के नहीं था। मार्च 1996 में पटना हाई कोर्ट के दखल, जिसने कुछ रिजर्वेशन प्रोविजन को गैर-संवैधानिक घोषित कर दिया, की वजह से पंचायत चुनावों में काफी देरी हुई (द एकेडमिक, 2024)। अगस्त 2000 में सुप्रीम कोर्ट के अंतरिम आदेश के बाद ही राज्य चुनाव करा पाया, हालाँकि SCs, STs और महिलाओं के लिए चेयरपर्सन पदों के लिए संवैधानिक रूप से जरूरी रिजर्वेशन के बिना।

स्थानीय स्वशासन में ओबीसी समावेशन

बिहार के लोकल गवर्नेंस फ्रेमवर्क में OBCs को शामिल करना, संवैधानिक नियमों, राज्य-स्तरीय पॉलिसी पहल और जमीनी स्तर पर लोगों को इकट्ठा करने के बीच एक मुश्किल तालमेल को दिखाता है। जहाँ 73वें अमेंडमेंट में SCs और STs के लिए आबादी के अनुपात के आधार पर रिजर्वेशन का प्रावधान था, वहीं OBCs को शामिल करना राज्य सरकारों की मर्जी पर छोड़ दिया गया था। बिहार इस मामले में एक पायनियर के तौर पर उभरा, जिसने संवैधानिक न्यूनतम सीमा से आगे बढ़कर व्यापक रिजर्वेशन पॉलिसी लागू की।

बिहार पंचायती राज एक्ट 2006 ने OBCs और EBCs के लिए जरूरी रिजर्वेशन तय किए, जिसमें यह पक्का किया गया कि इन समुदायों को चुने हुए पदों पर बराबर का रिप्रेजेंटेशन मिले। खास तौर पर, यह एक्ट SCs, STs और महिलाओं के लिए मौजूदा रिजर्वेशन के अलावा EBCs के लिए 20% रिजर्वेशन देता है (जागरण, 2025)। इस आगे बढ़ने वाले तरीके ने पिछड़े समुदायों के सामने आने वाली खास चुनौतियों और पुराने नुकसानों को दूर करने के लिए उनके लिए अफरमेटिव एक्शन की जरूरत को पहचाना।

बिहार के पॉलिटिकल माहौल में OBC के शामिल होने की अहमियत को कम करके नहीं आंका जा सकता। जैसा कि पॉलिटिकल एनालिस्ट के ऑब्जर्वेशन से पता चलता है, OBC बिहार की आबादी का 36% हैं, जो उन्हें राज्य का सबसे बड़ा वोटिंग ब्लॉक बनाता है (इंडिया टुडे, 2025)। हालाँकि, यह संख्या अपने आप प्रोपोर्शनल पॉलिटिकल पावर में नहीं बदली है, जो सही रिप्रेजेंटेशन पक्का करने में रिजर्वेशन जैसे इंस्टीट्यूशनल सिस्टम की अहमियत को दिखाता है।

सैद्धांतिक ढाँचा

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण: वैचारिक आधार

जानकारों के हिसाब से, डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन में सरकार के ऊपर से नीचे के लेवल पर पावर, रिसोर्स और जिम्मेदारियों का ट्रांसफर शामिल है, साथ ही डेमोक्रेटिक अकाउंटैबिलिटी और नागरिकों की भागीदारी के लिए सिस्टम भी शामिल हैं (रिसर्च ट्रांगल इंस्टीट्यूट, 1997)। यह फ्रेमवर्क डीसेंट्रलाइजेशन के तीन तरीकों में फर्क करता है: डीकेंसंट्रेशन (एडमिनिस्ट्रेटिव डीसेंट्रलाइजेशन), फिस्कल डीसेंट्रलाइजेशन, और डीवोल्यूशन (डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन), जिसमें बाद वाला सबसे बड़ा तरीका है जिसमें चुनी हुई लोकल बॉडीज को फैसले लेने का अधिकार ट्रांसफर किया जाता है।

डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन की थ्योरेटिकल बुनियाद गवर्नेंस के असर और डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी के बारे में कई खास मान्यताओं पर टिकी है। सबसे पहले, प्रॉक्सिमिटी प्रिंसिपल बताता है कि लोकल सरकारें, नागरिकों के ज्यादा करीब होने के कारण, लोकल जरूरतों और पसंद को समझने और उन पर जवाब देने के लिए बेहतर स्थिति में होती हैं (वर्ल्ड बैंक, 2000)। दूसरा, पार्टिसिपेशन हाइपोथिसिस का तर्क है कि डीसेंट्रलाइजेशन पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन और सिविक इन्वॉल्वमेंट के लिए ज्यादा आसान रास्ते देकर नागरिकों की भागीदारी को बढ़ाता है। तीसरा, अकाउंटैबिलिटी मैकेनिज्म यह मानता है कि लोकल चुनावी प्रोसेस दूर की सेंट्रल अथॉरिटीज की तुलना में रिस्पॉन्सिव गवर्नेंस के लिए ज्यादा मजबूत इंसेंटिव पैदा करती हैं।

भारत के संदर्भ में, पंचायती राज संस्थाओं के जरिए डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन को डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स ऑफ स्टेट पॉलिसी के आर्टिकल 40 में दिए गए संवैधानिक निर्देश को पूरा करने के एक तरीके के तौर पर देखा जाता है, जिसमें गाँव की पंचायतों को सेल्फ-गवर्नमेंट की यूनिट के तौर पर बनाने की बात कही गई है (UTs के लिए SEC, 2023)। 73वें अमेंडमेंट ने इस जरूरी नियम को एक न्यायसंगत अधिकार बना दिया, जिससे राज्यों के लिए लोकल गवर्नमेंट बनाने और उन्हें मजबूत बनाने की संवैधानिक जिम्मेदारियाँ बनीं।

हाशिए पर पड़े समुदायों का सशक्तिकरण

डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन और हाशिए पर पड़े समुदायों, खासकर वृद्धों के एम्पावरमेंट के बीच का रिश्ता, थ्योरी के हिसाब से पॉलिटिकल इन्क्लूजन और रीडिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस के कॉन्सेप्ट पर आधारित है। इस मामले में, एम्पावरमेंट में पॉलिटिकल इंस्टीट्यूशन तक फॉर्मल एक्सेस और कम्युनिटी वेलफेयर पर असर डालने वाले फैसले लेने के प्रोसेस को प्रभावित करने की असली क्षमता, दोनों शामिल हैं (फोरम ऑफ फेडरेशन, 2021)।

लोकल गवर्नेंस के जरिए पॉलिटिकल एम्पावरमेंट कई तरह से काम करता है। डिस्क्रेटिव रिप्रेजेंटेशन यह पक्का करता है कि पॉलिटिकल संस्थाओं में मार्जिनलाइज्ड ग्रुप्स की साफ मौजूदगी हो, जो एक्सक्लूजन के पुराने तरीकों को चुनौती दे और कम्युनिटी के सदस्यों के लिए रोल मॉडल दे। सबसे

रिप्रेजेंटेशन सिर्फ मौजूदगी से आगे बढ़कर यह देखता है कि पॉलिसी के फैसलों और रिसोर्स एलोकेशन में मार्जिनलाइज्ड कम्युनिटीज के हितों और प्रायोरिटीज को ठीक से दिखाया गया है या नहीं।

पंचायती राज संस्थाओं के जरिए OBC एम्पावरमेंट को समझने का थ्योरेटिकल फ्रेमवर्क पार्टिसिपेटरी डेमोक्रेसी की थ्योरी पर आधारित है, जो डेमोक्रेटिक प्रोसेस में नागरिकों की भागीदारी की अंदरूनी वैल्यू पर जोर देता है। यह अप्रोच बताता है कि पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन न सिर्फ इंस्ट्रूमेंटल मकसद (खास पॉलिसी नतीजे पाना) बल्कि डेवलपमेंट के मकसद भी पूरे करता है, जिससे नागरिकों की कैपेसिटी, नॉलेज और सिविक एफिकेसी की भावना बढ़ती है (कृष्णा, 2013)।

लेकिन, डीसेंट्रलाइजेशन के जरिए हाशिए पर पड़े समुदायों का एम्पावरमेंट अपने आप या गारंटीड नहीं होता है। सामाजिक-आर्थिक असमानता, पढ़ाई-लिखाई में कमी और मजबूत पावर रिलेशन जैसी स्ट्रक्चरल रुकावटें डेमोक्रेटिक संस्थाओं की बदलाव लाने की क्षमता को कम कर सकती हैं। जैसा कि रिसर्च से पता चलता है, अंदरूनी सामाजिक-आर्थिक रुकावटों को दूर किए बिना सिर्फ इंस्टीट्यूशनल बदलाव से असली एम्पावरमेंट के बजाय एलीट लोगों का कब्जा या दिखावटी रिप्रेजेंटेशन हो सकता है।

बिहार का वर्तमान विश्लेषण

बिहार में ग्रामीण स्थानीय शासन मॉडल

बिहार का ग्रामीण लोकल गवर्नेंस फ्रेमवर्क तीन-टियर सिस्टम के जरिए चलता है, जिसे गांव से लेकर जिला लेवल तक पूरी कवरेज पक्का करने के लिए डिजाइन किया गया है। गांव के लेवल पर, ग्राम पंचायतें लोकल सेल्फ-गवर्नमेंट की मुख्य यूनिट के तौर पर काम करती हैं, जो डेवलपमेंट स्कीम को लागू करने, लोकल इंफ्रास्ट्रक्चर को बनाए रखने और ग्रामीण समुदायों को बेसिक सर्विस देने के लिए जिम्मेदार हैं। राज्य में अभी 8,053 ग्राम पंचायतें हैं जो लगभग 1.15 लाख वार्ड को कवर करती हैं, जिससे डेमोक्रेटिक रिप्रेजेंटेशन का एक बड़ा नेटवर्क बनता है (बिहार सरकार, 2025)।

बीच के लेवल में ब्लॉक लेवल पर पंचायत समितियां होती हैं, जो कई गांवों में डेवलपमेंट के कामों को कोऑर्डिनेट करती हैं और गांव लेवल के इंस्टीट्यूशन और डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन के बीच जरूरी लिंक का काम करती हैं। ये 533 पंचायत समितियां डेवलपमेंट प्रोग्राम की प्लानिंग और उन्हें लागू करने में अहम भूमिका निभाती हैं, खासकर उन प्रोग्राम में जिनमें गांवों के बीच कोऑर्डिनेशन या खास टेक्निकल एक्सपर्टीज की जरूरत होती है।

सिस्टम के टॉप पर, 38 जिला परिषदें जिला-लेवल प्लानिंग और कोऑर्डिनेशन बॉडी के तौर पर काम करती हैं, जो जिला डेवलपमेंट प्लान बनाने और अलग-अलग सरकारी स्कीमों का कन्वर्जेंस पक्का करने के लिए जिम्मेदार हैं। जिला परिषदें निचले लेवल पर होने वाले झगड़ों के लिए अपील करने वाली बॉडी के तौर पर भी काम करती हैं और नीचे की पंचायत संस्थाओं के काम करने के तरीके पर नजर रखती हैं।

बिहार के पंचायत सिस्टम की एक खास बात यह है कि हर ग्राम पंचायत लेवल पर ग्राम कचहरी बनाई जाती है, जिससे गांव के लोगों को आसानी से न्याय मिल सके। इन संस्थाओं के पास झगड़ों में बीच-बचाव करने और 1,000 रुपये तक का जुर्माना लगाने का अधिकार है, जिससे लोकल झगड़े सुलझाने के तरीकों की बहुत जरूरत पूरी होती है।

बिहार के पंचायती राज सिस्टम का ऑपरेशनल फ्रेमवर्क, वार्ड लेवल पर वार्ड सभा बनाकर, जिसके चेयरमैन चुने हुए वार्ड मेंबर होते हैं, पार्टिसिपेटरी गवर्नेंस के लिए कमिटमेंट दिखाता है। वार्ड इम्प्लीमेंटेशन और मैनेजमेंट कमेटियों के सपोर्ट से ये संस्थाएं, लोकल फैसले लेने और स्कीम को लागू करने में लोगों की भागीदारी के लिए प्लेटफॉर्म का काम करती हैं। इसके अलावा, वार्ड लेवल पर विजिलेंस कमेटियां गवर्नेंस प्रोसेस में ट्रांसपेरेंसी और अकाउंटैबिलिटी पक्का करने के लिए ओवरसाइट मैकेनिज्म देती हैं।

OBC भागीदारी पर प्रगति और प्रभाव

बिहार में डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन लागू करने से ठोस पॉलिटिकल हिस्सेदारी के लिए अच्छे नतीजे मिले हैं, हालांकि इन कामयाबियों को राज्य के मुश्किल सोशल डायनामिक्स के बड़े संदर्भ में समझना होगा। अनुभव से पता चलता है कि रिजर्वेशन पॉलिसी लोकल लेवल पर ठोस पॉलिटिकल रिप्रेजेंटेशन के लिए पहले कभी नहीं हुए मौके बनाने में मददगार रही हैं।

बिहार के पंचायती राज संस्थानों पर रिसर्च से पता चलता है कि डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन से OBCs समेत हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए “कुछ हद तक बेहतर सामाजिक समावेश” हुआ है, हालांकि पूरी तरह से मजबूती पाने में अभी भी चुनौतियाँ हैं (SAGE जर्नल्स, 2021)। EBCs के लिए 20% पदों का जरूरी रिजर्वेशन, और जनरल OBC रिप्रेजेंटेशन के साथ, लोकल गवर्नेंस स्ट्रक्चर में पिछड़े वर्ग की काफी भागीदारी हुई है।

2021 के पंचायत चुनावों के डेटा से पता चलता है कि पंचायत सिस्टम के अलग-अलग लेवल पर OBC का कितना रिप्रेजेंटेशन है। मुखिया पदों के लिए, पिछड़े वर्गों (OBC और EBC दोनों को मिलाकर) को कुल 8,072 पदों में से 1,357 रिजर्व सीटें मिलीं, जो लीडरशिप रोल का लगभग 16.8% है (नवभारत टाइम्स, 2021)। ग्राम पंचायत सदस्य लेवल पर, पिछड़े वर्गों को कुल 113,307 पदों में से 8,028 रिजर्व सीटें मिलीं, जिससे गांव लेवल पर फैसले लेने वाली बॉडी में उनका अच्छा-खासा रिप्रेजेंटेशन पक्का हुआ।

OBC की भागीदारी का असर सिर्फ नंबरों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि पॉलिसी के ठोस नतीजों तक भी है। स्टडीज से पता चलता है कि पंचायती राज संस्थाओं में OBC नेताओं ने पिछड़े समुदायों की खास जरूरतों को पूरा करने वाली डेवलपमेंट स्कीमों को प्राथमिकता दी है, जिसमें स्कूल डेवलपमेंट प्रोग्राम, रोजगार पैदा करने की कोशिशें और एजुकेशनल इंफ्रास्ट्रक्चर का विकास शामिल है। OBC में बढ़ती पॉलिटिकल समझ की वजह से सरकारी स्कीमों के लिए ज्यादा मजबूत मांगें उठी हैं और वेलफेयर प्रोग्राम बेहतर तरीके से लागू किए गए हैं।

लेकिन, OBC की भागीदारी में हुई तरक्की को लगातार चुनौतियों के हिसाब से देखना होगा। रिसर्च से पता चलता है कि 'सरपंच पति' (प्रॉक्सी लीडरशिप) का कॉन्सेप्ट अभी भी चिंता का विषय है, जहाँ औपचारिक रूप से चुने गए प्रतिनिधि नाममात्र के लिए काम कर सकते हैं, जबकि असली फैसले लेने की ताकत परिवार के दूसरे सदस्यों या कम्युनिटी लीडर्स के पास होती है (EPRA जर्नल्स, 2020)। यह बात खास तौर पर महिला प्रतिनिधियों पर असर डालती है और उन OBC नेताओं पर भी असर डाल सकती है जिनके पास आजाद अधिकार का इस्तेमाल करने के लिए सोशल कैपिटल या रिसोर्स की कमी होती है।

2005 के बाद OBC पॉलिटिक्स के टूटने से मोस्ट बैकवर्ड क्लास (MBCs) अहम पॉलिटिकल एक्टर के तौर पर उभरे हैं, और उनका आगे बढ़ना "पंचायतों को मजबूत बनाने और टीचरों की भर्ती" (द वायर, 2025) से आसान हुआ है। यह पॉलिटिकल बदलाव जाति-आधारित लामबंदी के डायनामिक नेचर और पॉलिटिकल उभार के लिए एक प्लेटफॉर्म के तौर पर लोकल गवर्नेंस की लगातार अहमियत को दिखाता है।

गया जिला केस स्टडी

गया जिले का सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ

दक्षिण बिहार के मगध इलाके में बसा गया जिला, अपनी मुश्किल डेमोग्राफिक बनावट और ऐतिहासिक महत्व की वजह से लोकल गवर्नेंस में OBC की हिस्सेदारी की जांच के लिए एक जबरदस्त केस स्टडी पेश करता है। जिले का जाति ढांचा पूरे बिहार में पाए जाने वाले बड़े पैटर्न को दिखाता है, जिसमें पारंपरिक ऊंची जातियों और अनुसूचित जातियों के साथ-साथ OBC और EBC की भी अच्छी-खासी आबादी है।

गया का पॉलिटिकल माहौल जाति-आधारित लामबंदी से काफी प्रभावित रहा है, जिसमें अलग-अलग समुदाय पॉलिटिकल रिप्रेजेंटेशन और रिसोर्स एलोकेशन के लिए अपने दावे करते रहे हैं। हाल के पॉलिटिकल डेवलपमेंट इस इलाके में OBC वोटर्स की स्ट्रेटेजिक अहमियत को दिखाते हैं। 2020 के असेंबली इलेक्शन के दौरान, कांग्रेस ने मगध डिवीजन की पांच जनरल सीटों पर चुनाव लड़ा, जिसमें गया जिले के टेकारी और वजीरगंज भी शामिल थे, जिसमें उसने ऊंची जाति के कैंडिडेट उतारे लेकिन उसे कम सफलता मिली (टाइम्स ऑफ इंडिया, 2025)।

गया में बदलते पॉलिटिकल माहौल बिहार के चुनावी माहौल में बड़े बदलावों को दिखाते हैं। पॉलिटिकल बातचीत में "OBC के सपोर्ट में रुख" के उभरने, जिसका उदाहरण जाति जनगणना और रिप्रेजेंटेशन के मुद्दों पर ज्यादा जोर है, ने जिले में OBC पॉलिटिकल हिस्सेदारी के लिए नए मौके और चुनौतियाँ पैदा की हैं (टाइम्स ऑफ इंडिया, 2025)। यह पॉलिटिकल बदलाव खास तौर पर इसलिए जरूरी है क्योंकि गया की आबादी में OBC और EBC का एक बड़ा हिस्सा है।

गया जिले के एडमिनिस्ट्रेटिव डेटा से लोकल गवर्नेंस इंस्टीट्यूशन्स का एक बड़ा नेटवर्क पता चलता है जो OBC पार्टिसिपेशन के लिए प्लेटफॉर्म देते हैं। जिले में कई ब्लॉक हैं, हर एक की अपनी पंचायत समिति है, और कई ग्राम पंचायतें हैं जो पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन के लिए एंट्री पॉइंट का काम करती हैं। अलग-अलग एडमिनिस्ट्रेटिव लेवल पर ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर्स, सर्कल ऑफिसर्स और रेवेन्यू ऑफिसर्स की मौजूदगी OBC कम्युनिटीज और लोकल गवर्नेंस स्ट्रक्चर्स के बीच कई इंटरफेस बनाती है (गया जिला, 2018)।

स्थानीय शासन में ओबीसी की भागीदारी

73वें संविधान संशोधन के लागू होने के बाद से गया जिले के लोकल गवर्नेंस स्ट्रक्चर में OBCs की हिस्सेदारी काफी बदली है। फील्ड ऑब्जर्वेशन और एडमिनिस्ट्रेटिव रिकॉर्ड बताते हैं कि OBC कम्युनिटीज ने पंचायती राज संस्थाओं में रिप्रेजेंटेशन पाने के लिए रिजर्वेशन के मौकों का ज्यादा इस्तेमाल किया है, हालांकि जिले के अलग-अलग ब्लॉक और गांवों में इस हिस्सेदारी की क्वालिटी और असर काफी अलग-अलग है।

गया के ग्रामीण इलाकों में, OBC की पॉलिटिकल हिस्सेदारी कई वजहों से आसान हुई है। पारंपरिक सामंती ढांचों में तुलनात्मक गिरावट, पढ़ाई-लिखाई के बढ़े हुए मौकों और आर्थिक विविधता के साथ, पिछड़े समुदायों के बीच ज्यादा पॉलिटिकल दबदबे के लिए हालात बने हैं। अलग-अलग ब्लॉक में OBC नेताओं के उभरने से रोल मॉडल मिले हैं और लोकल गवर्नेंस के जरिए पॉलिटिकल तरक्की की गुंजाइशें दिखी हैं।

पंचायती राज संस्थाओं के जरिए केंद्र सरकार की अलग-अलग स्कीमों को लागू करने से OBC नेताओं को शासन में अपना असर दिखाने के मौके मिले हैं। महात्मा गांधी नेशनल रूरल एम्प्लॉयमेंट गारंटी एक्ट (MNREGA), प्रधानमंत्री आवास योजना और अलग-अलग एजुकेशनल पहल जैसे प्रोग्राम ने OBC प्रतिनिधियों को अपने चुनाव क्षेत्रों में अपनी साख और सपोर्ट बनाने के लिए प्लेटफॉर्म दिए हैं।

लेकिन, गया के लोकल गवर्नेंस में ठोस हिस्सेदारी को भी बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। पारंपरिक पावर स्ट्रक्चर, भले ही कमजोर हो गए हों, लेकिन कई गांवों में पॉलिटिकल डायनामिक्स पर असर डालते रहते हैं। ऊंची जाति के समुदायों के बीच आर्थिक संसाधनों और सोशल कैपिटल का जमाव, असरदार OBC लीडरशिप के लिए इनफॉर्मल रुकावटें पैदा करता है, तब भी जब रिजर्वेशन के जरिए फॉर्मल रिप्रेजेंटेशन मिल जाता है।

सफल परिणाम और जारी चुनौतियाँ

गया जिले के लोकल गवर्नेंस में OBC की भागीदारी के अनुभव से अच्छी सफलताएँ और लगातार चुनौतियाँ दोनों मिली हैं, जो भारत के जाति-आधारित समाज में डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन के मुश्किल डायनामिक्स को दिखाती हैं।

सफल नतीजों में, चुने हुए पदों पर OBCs के बढ़े हुए प्रतिनिधित्व से पिछड़े समुदायों को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। OBC नेताओं ने कल्याणकारी योजनाओं को बेहतर ढंग से लागू करने में अहम भूमिका निभाई है, खासकर पिछड़े वर्गों को टारगेट करने वाली योजनाओं जैसे OBC छात्रों के लिए स्कॉलरशिप, स्कूल डेवलपमेंट प्रोग्राम और रोजगार पैदा करने की पहल। OBC प्रतिनिधियों की मौजूदगी ने समुदाय की खास जरूरतों और शिकायतों पर स्थानीय संस्थाओं की जवाबदेही को भी बढ़ाया है।

जेंडर और जाति-आधारित रिजर्वेशन के मेल से OBC महिलाओं का एम्पावरमेंट खास तौर पर ध्यान देने लायक रहा है। बिहार की पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 50% रिजर्वेशन की प्रोग्रेसिव पॉलिसी, OBC रिजर्वेशन के साथ मिलकर, OBC महिलाओं के लिए फॉर्मल पॉलिटिकल प्रोसेस में हिस्सा लेने के बहुत ज्यादा मौके बनाए हैं (IJFMR, 2024)। इस दोहरे एम्पावरमेंट ने एक ही समय में पारंपरिक जेंडर और जाति के ऊँच-नीच के सिस्टम को चुनौती दी है।

OBC प्रतिनिधियों के सपोर्ट से शुरू की गई एजुकेशनल कोशिशों से स्कूल के इंफ्रास्ट्रक्चर में सुधार, टीचर की जवाबदेही बढ़ाने और पिछड़े वर्ग के बच्चों के एनरोलमेंट रेट में बढ़ोतरी के मामले में अच्छे नतीजे मिले हैं। एम्पावरमेंट के रास्ते के तौर पर एजुकेशन पर फोकस, OBC समुदायों में ह्यूमन कैपिटल डेवलपमेंट के महत्व के बारे में बढ़ती पॉलिटिकल समझ को दिखाता है।

इन कामयाबियों के बावजूद, गया के लोकल गवर्नेंस में ठठ की हिस्सेदारी का ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाने में बड़ी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। पैसे की तंगी पंचायती राज संस्थाओं की बड़े डेवलपमेंट प्रोग्राम लागू करने की क्षमता को कम कर रही है, जिससे OBC प्रतिनिधियों को बहुत कम रिसोर्स के साथ काम करना पड़ रहा है। राज्य और केंद्र सरकार के ट्रांसफर पर निर्भरता लोकल प्रतिनिधियों की आजादी को कम करती है और कम्युनिटी की जरूरतों को असरदार तरीके से पूरा करने की उनकी क्षमता को कम करती है।

पारंपरिक जाति व्यवस्था में मौजूद सामाजिक रुकावटें, ठठ लीडरशिप के लिए बड़ी रुकावटें बनी हुई हैं। असर के इनफॉर्मल नेटवर्क, आर्थिक संसाधनों पर कंट्रोल, और सोशल कैपिटल के फायदे, ऊँची जातियों के समुदायों के पक्ष में बने हुए हैं, जिससे OBC के राजनीतिक असर पर हल्की लेकिन लगातार रुकावटें आ रही हैं। अमीर लोगों का कब्जा, जहाँ बड़े ग्रुप अपने फायदे के लिए औपचारिक संस्थाओं का गलत इस्तेमाल करते हैं, हाशिए पर पड़े समुदायों की सही डेमोक्रेटिक हिस्सेदारी के लिए लगातार चुनौतियाँ खड़ी करता है।

चुनौतियाँ

ओबीसी के सामने राजनीतिक भागीदारी में आने वाली बाधाएं

बिहार के लोकल गवर्नेंस सिस्टम में OBCs के लिए सही पॉलिटिकल हिस्सेदारी का सफर कई तरह की चुनौतियों से भरा है, जो पर्सनल, कम्युनिटी और सिस्टमिक लेवल पर काम करती हैं। ये रुकावटें इनक्लूजन के लिए कॉन्स्टिट्यूशनल प्रोविजन और लगातार बनी रहने वाली सोशियो-इकोनॉमिक असमानताओं के बीच के मुश्किल तालमेल को दिखाती हैं, जो पॉलिटिकल मौकों और नतीजों को लगातार प्रभावित करती रहती हैं।

OBC की असरदार पॉलिटिकल हिस्सेदारी में सबसे बड़ी रुकावटों में से एक है सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन। रिसर्च से पता चलता है कि “बिहार में पिछड़े समुदायों के 98 लाख परिवार महीने में ₹. 6,000/- से कम कमाते हैं” (SC ऑब्जर्वर, 2024), जो पॉलिटिकल हिस्सेदारी को कम करने वाली आर्थिक दिक्कतों को दिखाता है। गरीबी पॉलिटिकल हिस्सेदारी में कई रुकावटें पैदा करती है, क्योंकि बुनियादी गुजारे के लिए जूझ रहे लोगों और परिवारों के पास पॉलिटिकल कामों में लगाने के लिए कम समय, रिसोर्स और एनर्जी होती है (NCBI, 2009)।

पढ़ाई-लिखाई की कमी OBC की पॉलिटिकल हिस्सेदारी पर असर डालने वाली एक और बड़ी चुनौती है। कम लिटरेसी रेट और अच्छी एजुकेशन तक सीमित पहुँच की वजह से OBC कम्युनिटी के लोग मुश्किल गवर्नेंस प्रोसेस में अच्छे से शामिल नहीं हो पाते, अपने हक और अधिकार को समझ नहीं पाते, और फॉर्मल पॉलिटिकल फोरम में अपनी बात नहीं रख पाते। सिविक एजुकेशन की कमी इन चुनौतियों को और बढ़ा देती है, क्योंकि कई नागरिक डेमोक्रेटिक प्रोसेस और हिस्सेदारी के मौकों से अनजान रहते हैं।

पारंपरिक सामाजिक ऊँच-नीच के बने रहने से OBC की राजनीतिक मजबूती में अनौपचारिक रुकावटें आती रहती हैं। संवैधानिक सुरक्षा और आरक्षण नीतियों के बावजूद, जाति के आधार पर गहरा भेदभाव सामाजिक मेलजोल, आर्थिक मौकों और राजनीतिक रिश्तों पर असर डालता है। ये सांस्कृतिक रुकावटें अक्सर OBC की राजनीतिक दावेदारी के खिलाफ सामाजिक दबाव, जानकारी और संसाधनों तक पहुँच में भेदभाव, और ताकतवर ग्रुप्स की तरफ से सही पावर शेयरिंग के विरोध के रूप में सामने आती हैं।

पॉलिटिकल इंस्टीट्यूशनल रुकावटें भी OBC की हिस्सेदारी को रोकती हैं। मुश्किल ब्यूरोक्रेटिक प्रोसेस, पार्टी में सख्त हायरार्की, और पॉलिटिकल पार्टियों में युवा लीडरशिप के लिए कम मौके, OBC पॉलिटिशियन बनने की चाह रखने वालों के लिए बड़ी रुकावटें खड़ी करते हैं (TIJER, 2023)। चुनाव कैंपेन के लिए फाइनेंशियल रिसोर्स की कमी, पॉलिटिकल नेटवर्क तक सीमित एक्सेस, और मेंटरशिप के मौकों की कमी इन चुनौतियों को और बढ़ा देती है।

गया जिले में सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक बाधाएं

गया जिले का खास मामला यह दिखाता है कि लोकल लेवल पर OBC पॉलिटिकल हिस्सेदारी के लिए बड़ी चुनौतियाँ कैसे सामने आती हैं, जो खास ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वजहों से बनती हैं जो गवर्नेंस के तरीके पर असर डालती हैं।

गया में आर्थिक रूप से अलग-थलग होना एक लगातार चुनौती बनी हुई है, जहाँ कई OBC परिवार खेती और उससे जुड़े कामों पर निर्भर हैं, जिनसे उन्हें कभी-कभी और अक्सर कम इनकम होती है। अलग-अलग तरह के आर्थिक मौकों की कमी से OBC मिडिल क्लास का विकास रुक जाता है, जो राजनीतिक लामबंदी के लिए लीडरशिप और रिसोर्स दे सकता है। आर्थिक आजादी के बिना, कई OBC लोग आर्थिक रूप से दबदबे वाले ग्रुप के असर और दबाव के आगे कमजोर रहते हैं।

गया में सामाजिक रुकावटें पारंपरिक ऊँच-नीच के असर को दिखाती हैं, भले ही डेमोक्रेटिक सुधारों और सामाजिक बदलाव से ये कमजोर हो गए हैं। गांवों में जगह के हिसाब से अलग-अलग तरह के काम करने का तरीका, आम संसाधनों तक अलग-अलग पहुँच, और OBC की अपनी बात कहने पर अनौपचारिक सामाजिक रोक-टोक राजनीतिक हिस्सेदारी को रोकती रहती है। ये रुकावटें OBC महिलाओं के लिए खास तौर पर ज्यादा हैं, जिन्हें जेंडर और जाति के आधार पर भेदभाव का दोहरा बोझ झेलना पड़ता है।

गया में OBC नेताओं की चाहत रखने वालों के लिए रोल मॉडल और पॉलिटिकल मेंटर की कम मौजूदगी, पॉलिटिकल डेवलपमेंट में एक बड़ी रुकावट है। पहले से मौजूद OBC पॉलिटिकल नेटवर्क की कमी और पारंपरिक एलीट ग्रुप्स के बीच पॉलिटिकल अनुभव और एक्सपर्टीज का जमावड़ा, पिछड़े वर्ग के पॉलिटिकल उम्मीदवारों के लिए एंट्री और आगे बढ़ने में रुकावटें पैदा करता है।

जानकारी में अंतर भी गया के गवर्नेंस प्रोसेस में OBC की असरदार भागीदारी के लिए मुश्किलें खड़ी करता है। सरकारी स्कीमों, अधिकारों और हकों, और पॉलिटिकल प्रोसेस के बारे में जानकारी तक सीमित पहुँच, OBC समुदायों की लोकल गवर्नेंस संस्थाओं के साथ सही तरीके से जुड़ने की क्षमता को कम करती है। डिजिटल डिवाइड, जो टेक्नोलॉजी एक्सेस में बड़ी असमानताओं को दिखाता है, इन जानकारी के अंतरों को और बढ़ाता है।

गया के ग्रामीण इलाकों में इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी पॉलिटिकल हिस्सेदारी में असल रुकावटें पैदा करती है। खराब ट्रांसपोर्टेशन नेटवर्क, कम्युनिकेशन की सुविधाएं और मीटिंग की कम जगह OBC समुदायों की ऑर्गनाइज होने, कोऑर्डिनेट करने और पॉलिटिकल प्रोसेस में असरदार तरीके से हिस्सा लेने की कबिलियत को कम करती है। ये इंफ्रास्ट्रक्चर की चुनौतियां ठेकेदार समुदायों की महिलाओं और बुजुर्ग सदस्यों के लिए खास तौर पर परेशानी वाली हैं।

गया के ग्रामीण इलाकों से रोजगार के मौकों के लिए शहरी इलाकों में माइग्रेशन की वजह से OBC की लगातार पॉलिटिकल हिस्सेदारी के लिए और भी मुश्किलें खड़ी हो रही हैं। जैसे-जैसे ठेकेदार समुदायों के आर्थिक रूप से एक्टिव सदस्य रोजी-रोटी के लिए माइग्रेट करते हैं, बाकी आबादी में असरदार पॉलिटिकल संगठन और रिप्रेजेंटेशन के लिए जरूरी ह्यूमन रिसोर्स और लीडरशिप कैपेसिटी की कमी हो सकती है।

नीति अनुशंसाएँ

OBC की भागीदारी बढ़ाने की रणनीतियाँ

बिहार के लोकल गवर्नेंस में OBCs के सामने आने वाली चुनौतियों को दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर पॉलिसी में दखल देने की जरूरत है, जो स्ट्रक्चरल रुकावटों और कैपेसिटी की कमी, दोनों को टारगेट करें। ये सुझाव सफल एम्पावरमेंट पहलों से मिले बेस्ट प्रैक्टिस और सबको साथ लेकर चलने वाली पॉलिटिकल हिस्सेदारी को बढ़ावा देने के असरदार तरीकों पर रिसर्च इनसाइट पर आधारित हैं।

आर्थिक सशक्तिकरण कार्यक्रमों को मजबूत करना

सही पॉलिटिकल हिस्सेदारी के लिए आर्थिक रूप से मजबूत होना एक जरूरी शर्त है। बिहार सरकार को OBC समुदायों के लिए खास तौर पर बनाए गए टारगेटेड रोजी-रोटी प्रोग्राम लागू करने चाहिए, जिसमें स्किल डेवलपमेंट की पहल, एंटरप्रेन्योरशिप सपोर्ट स्कीम और क्रेडिट सुविधाओं तक पहुँच शामिल हो। सफल जीविका मॉडल पर आधारित सेल्फ-हेल्प ग्रुप प्रोग्राम को बढ़ाने से, आर्थिक संगठन के लिए ऐसे प्लेटफॉर्म मिल सकते हैं जो अक्सर पॉलिटिकल मोबिलाइजेशन नेटवर्क में बदल जाते हैं (IJFMR, 2024)।

पिछड़े समुदायों के लिए आर्थिक मौके बढ़ाने के खास काम के साथ, जिला लेवल पर खास OBC डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन बनाने से लगातार मजबूती के लिए इंस्टीट्यूशनल सिस्टम बनेंगे। इन कॉर्पोरेशन को OBC एंटरप्रेन्योर्स और वर्कर्स की आर्थिक कबिलियत बढ़ाने के लिए वैल्यू चेन डेवलपमेंट, मार्केट लिंकेज और टेक्नोलॉजी ट्रांसफर पर ध्यान देना चाहिए।

शैक्षिक और कौशल विकास को बढ़ावा देना

OBC को लंबे समय तक मजबूत बनाने और पॉलिटिकल हिस्सेदारी के लिए पढ़ाई-लिखाई में तरक्की बहुत जरूरी है। OBC स्टूडेंट्स के लिए टारगेटेड स्कॉलरशिप प्रोग्राम, कॉम्पिटिटिव एग्जाम के लिए कोचिंग की सुविधा और रहने की जगह वाले एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन शुरू करने से पढ़ाई-लिखाई की कमी को दूर करने में मदद मिल सकती है। OBC युवाओं में हायर एजुकेशन को बढ़ावा देने पर खास ध्यान देना चाहिए, क्योंकि पॉलिटिकल अवेयरनेस और हिस्सेदारी बढ़ाने में एजुकेशन को हमेशा एक अहम वजह माना गया है (कृष्णा, 2013)।

OBC समुदायों के लिए खास तौर पर बनाए गए सिविक एजुकेशन प्रोग्राम पंचायती राज संस्थाओं, NGOs और एजुकेशनल संस्थाओं के जरिए लागू किए जाने चाहिए। इन प्रोग्राम में डेमोक्रेटिक अधिकारों और जिम्मेदारियों, गवर्नेंस प्रोसेस और लीडरशिप स्किल डेवलपमेंट पर फोकस होना चाहिए। लोकल भाषाओं और कल्चर के हिसाब से सही पढ़ाने के तरीकों का इस्तेमाल इन एजुकेशनल इंटरवेंशन के असर को बढ़ा सकता है।

संस्थागत क्षमता निर्माण

OBC की भागीदारी के लिए असरदार प्लेटफॉर्म बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की संस्थागत क्षमता को मजबूत करना जरूरी है। इसमें चुने हुए प्रतिनिधियों के लिए बड़े ट्रेनिंग प्रोग्राम देना, एडमिनिस्ट्रेटिव सपोर्ट सिस्टम को बेहतर बनाना और लोकल गवर्नेंस संस्थाओं की टेक्निकल क्षमताओं को बढ़ाना शामिल है। OBC प्रतिनिधियों के लिए खास ओरिएंटेशन प्रोग्राम उन्हें मुश्किल गवर्नेंस प्रोसेस को समझने और अपनी भूमिका को ज्यादा असरदार तरीके से निभाने में मदद कर सकते हैं।

ब्लॉक या जिला लेवल पर OBC रिसोर्स सेंटर बनाने से OBC पॉलिटिकल लीडर्स को लगातार सपोर्ट, जानकारी और नेटवर्किंग के मौके मिल सकते हैं। इन सेंटर्स को लोकल गवर्नेंस में OBC की भागीदारी को बेहतर बनाने के लिए लीगल एड, पॉलिसी एनालिसिस और कैपेसिटी बिल्डिंग सर्विस देनी चाहिए।

जवाबदेही तंत्र को मजबूत करना

लोकल गवर्नेंस प्रोसेस में ट्रांसपेरेंसी और अकाउंटैबिलिटी बढ़ाने से एलीट लोगों का कब्जा कम करने में मदद मिल सकती है और यह पक्का हो सकता है कि OBC रिप्रेजेंटेटिव अच्छे से काम कर सकें। सोशल ऑडिट मैकेनिज्म, पब्लिक इन्फॉर्मेशन सिस्टम और शिकायत सुलझाने के तरीकों को लागू करने से OBC की सही भागीदारी के लिए ज्यादा अच्छा माहौल बन सकता है।

डिजिटल गवर्नेंस की पहल, जिसमें नागरिकों की भागीदारी के लिए ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और ट्रांसपेरेंट फाइनेंशियल मैनेजमेंट सिस्टम शामिल हैं, इनफॉर्मल असर के मौकों को कम करके और OBC प्रतिनिधियों को असरदार गवर्नेंस के लिए बेहतर टूल देकर सबको बराबरी का मौका देने में मदद कर सकती हैं।

शैक्षिक और जागरूकता अभियान

OBC की पॉलिटिकल हिस्सेदारी बढ़ाने की किसी भी स्ट्रेटेजी में पूरी एजुकेशनल और अवेयरनेस पहल बहुत जरूरी होती हैं। इन कैंपेन को जानकारी की कमी को दूर करने, भेदभाव वाले रवैये को चुनौती देने और असरदार पॉलिटिकल भागीदारी के लिए जरूरी जानकारी और स्किल बनाने के लिए डिजाइन किया जाना चाहिए।

समुदाय-आधारित जागरूकता कार्यक्रम

लोकल कल्चरल तरीकों, कम्युनिटी नेटवर्क और भरोसेमंद संस्थाओं का इस्तेमाल करके जमीनी स्तर पर जागरूकता कैंपेन चलाने से OBC कम्युनिटी तक जरूरी नागरिक जानकारी असरदार तरीके से पहुँच सकती है। इन प्रोग्राम का फोकस कम्युनिटी के सदस्यों को उनके राजनीतिक अधिकारों, पंचायती राज संस्थाओं के काम करने के तरीके और गवर्नेंस प्रोसेस में हिस्सा लेने के मौकों के बारे में बताने पर होना चाहिए।

पारंपरिक बातचीत के तरीकों का इस्तेमाल, जिसमें लोक नाटक, कम्युनिटी मीटिंग और धार्मिक सभाएं शामिल हैं, यह पक्का करने में मदद कर सकता है कि जागरूकता कैंपेन लोकल कल्चरल माहौल से जुड़े और कम्युनिटी के उन सदस्यों तक पहुंचें जो फॉर्मल एजुकेशनल चौनलों के जरिए शायद नहीं पहुंच पाते।

मीडिया और संचार रणनीतियाँ

OBC पॉलिटिकल लीडरशिप और गवर्नेंस की कामयाबियों के सफल उदाहरणों को दिखाने वाली पूरी मीडिया स्ट्रेटेजी बनाने से पिछड़े समुदायों में उम्मीदें और भरोसा बनाने में मदद मिल सकती है। लोकल रेडियो प्रोग्राम, कम्युनिटी न्यूजपेपर और सोशल मीडिया कैंपेन जानकारी शेयर करने और पॉलिटिकल बातचीत को बढ़ावा देने के लिए प्लेटफॉर्म का काम कर सकते हैं।

OBC कम्युनिटी के सदस्यों को सिटिजन जर्नलिस्ट और कम्युनिटी कम्युनिकेटर के तौर पर ट्रेनिंग देने से यह पक्का करने में मदद मिल सकती है कि अवेयरनेस कैंपेन कल्चर के हिसाब से सही हों और कम्युनिटी की जरूरतों और हितों को अच्छे से टारगेट करें।

शैक्षिक संस्थान भागीदारी

सिविक एजुकेशन और पॉलिटिकल अवेयरनेस को करिकुलम में शामिल करने के लिए एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन के साथ मिलकर काम करने से OBC पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन के लिए लंबे समय की नींव बनाने में मदद मिल सकती है। यूनिवर्सिटी और कॉलेजों को ऐसे आउटरीच प्रोग्राम बनाने के लिए बढ़ावा देना चाहिए जो OBC स्टूडेंट्स और कम्युनिटी मेंबर्स को सिविक एजुकेशन और लीडरशिप ट्रेनिंग दें।

OBC स्टडीज और एम्पावरमेंट पर फोकस करने वाले एकेडमिक सेंटर बनाने से रिसर्च, पॉलिसी एनालिसिस और कैपेसिटी बिल्डिंग की कोशिशों में मदद मिल सकती है, साथ ही कम्युनिटी के पॉलिटिकल डेवलपमेंट के लिए इंटेलेक्चुअल रिसोर्स भी मिल सकते हैं।

प्रौद्योगिकी-सक्षम जागरूकता

डिजिटल प्लेटफॉर्म और मोबाइल टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करके जानकारी तक पहुंचने में आने वाली भौगोलिक और सामाजिक रुकावटों को दूर करने में मदद मिल सकती है। सरकारी योजनाओं, राजनीतिक प्रक्रियाओं और नागरिक अधिकारों के बारे में जानकारी देने वाले मोबाइल एप्लिकेशन बनाने से OBC समुदायों के युवा सदस्यों तक पहुंचा जा सकता है, जो डिजिटल नेटवर्क से तेजी से जुड़ रहे हैं।

ऑनलाइन ट्रेनिंग मॉड्यूल और वर्चुअल मेंटरशिप प्रोग्राम पॉलिटिकल स्किल डेवलपमेंट के लिए फ्लेक्सिबल और आसान मौके दे सकते हैं, खासकर OBC महिलाओं और युवाओं के लिए जिन्हें ट्रेडिशनल ट्रेनिंग प्रोग्राम में शामिल होने में दिक्कतें आ सकती हैं।

निष्कर्ष

बिहार के ग्रामीण लोकल सेल्फ-गवर्नेंस सिस्टम में डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन और OBC की भागीदारी की जांच, जिसमें गया जिले की केस स्टडी पर खास ध्यान दिया गया है, एक मुश्किल माहौल दिखाती है जिसमें बड़ी उपलब्धियाँ और लगातार चुनौतियाँ दोनों हैं। 73वें कॉन्स्टिट्यूशनल अमेंडमेंट के लागू होने से बेशक OBC की राजनीतिक भागीदारी के लिए पहले कभी नहीं देखे गए मौके बने हैं, जिससे ग्रामीण शासन के तरीके पूरी तरह बदल गए हैं और अमीर लोगों के दबदबे के पुराने तरीकों को चुनौती मिली है।

पूरे बिहार में 8,000 से ज्यादा ग्राम पंचायतों को शामिल करते हुए बड़े पंचायती राज नेटवर्क बनाना और पिछड़े वर्गों के लिए रिजर्व रिप्रेजेंटेशन देना, एक बहुत बड़ा इंस्टीट्यूशनल बदलाव दिखाता है। बिहार सरकार की लागू की गई प्रोग्रेसिव रिजर्वेशन पॉलिसी, जिसमें EBCs के लिए 20% रिजर्वेशन और OBCs के लिए प्रोपोर्शनल रिप्रेजेंटेशन शामिल है, ने पॉलिटिकल हिस्सेदारी के लिए ऐसे फॉर्मल प्लेटफॉर्म बनाए हैं जो पहले इन समुदायों के लिए उपलब्ध नहीं थे। गया जिले का मामला दिखाता है कि कैसे इन इंस्टीट्यूशनल बदलावों ने OBC पॉलिटिकल लीडरशिप और लोकल गवर्नेंस प्रोसेस में असर के लिए ठोस मौकों में बदलाव किया है।

लेकिन, एनालिसिस से यह भी पता चलता है कि सिर्फ फॉर्मल इंस्टीट्यूशनल बदलाव ही सही एम्पावरमेंट की गारंटी के लिए काफी नहीं है। गरीबी, पढ़ाई-लिखाई की कमी और रिसोर्स तक सीमित पहुँच जैसी लगातार सामाजिक-आर्थिक रुकावटें, OBC समुदायों की मौजूद पॉलिटिकल मौकों का पूरा इस्तेमाल करने की क्षमता को रोकती रहती हैं। पारंपरिक सामाजिक ऊँच-नीच और कल्चरल रुकावटें, कमजोर होने के बावजूद, पॉलिटिकल रिश्तों को बनाने और OBC रिप्रेजेंटेशन के असर को कम करने में असरदार बनी हुई हैं।

बिहार में डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन का अनुभव दिखाता है कि सोशियो-इकोनॉमिक एम्पावरमेंट, एजुकेशनल एडवांसमेंट और कल्चरल ट्रांसफॉर्मेशन के लिए इंस्टीट्यूशनल रिफॉर्म के साथ कॉम्प्लिमेंट करना कितना जरूरी है। गया जिले और बिहार के दूसरे हिस्सों से आने वाली सक्सेस स्टोरीज दिखाती हैं कि जब सपोर्टिव हालात हों, तो OBC कम्युनिटीज अपने हितों को आगे बढ़ाने और इनक्लूसिव डेवलपमेंट में योगदान देने के लिए डेमोक्रेटिक इंस्टीट्यूशन का असरदार तरीके से इस्तेमाल कर सकती हैं।

आगे चलकर, OBC पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन का सस्टेनेबिलिटी और विस्तार लगातार पॉलिसी इनोवेशन, रिसोर्स कमिटमेंट और सोशल बदलाव पर निर्भर करेगा। इस आर्टिकल में बताई गई सिफारिशें – जिसमें इकोनॉमिक एम्पावरमेंट, एजुकेशनल एडवांसमेंट, इंस्टीट्यूशनल कैपेसिटी बिल्डिंग और अवेयरनेस कैम्पेन शामिल हैं – डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन की ट्रांसफॉर्मेटिव पोटेंशियल को मैक्सिमाइज करने के लिए एक रोडमैप देती हैं।

बिहार के अनुभव का बड़ा असर राज्य की सीमाओं से आगे तक जाता है, और यह उन दूसरे इलाकों के लिए भी जानकारी देता है जो सबको साथ लेकर चलने वाले शासन और पिछड़े समुदायों को मजबूत बनाने जैसी ऐसी ही चुनौतियों से जूझ रहे हैं। बिहार जैसे मुश्किल सामाजिक माहौल में डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन को लागू करने से मिली सीख, पूरे भारत और दूसरे विकासशील लोकतंत्रों में पॉलिसी पर होने वाली बहसों और सुधार की कोशिशों को दिशा दे सकती है।

आखिरकार, ग्रामीण लोकल सेल्फ-गवर्नेंस में OBC की सही भागीदारी की ओर यात्रा एक पूरी हुई उपलब्धि के बजाय एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। संवैधानिक सुधार और संस्थागत बदलाव से बनी नींव जरूरी ढांचा देती है, लेकिन डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन की पूरी क्षमता को समझने के लिए स्ट्रक्चरल असमानताओं को दूर करने और हाशिए पर पड़े समुदायों को मजबूत बनाने के लिए लगातार कमिटमेंट की जरूरत होती है। बिहार और गया जिले का मामला इस बदलाव लाने वाली कोशिश में मौजूद संभावनाओं और चुनौतियों, दोनों को दिखाता है, जो इनक्लूसिव डेमोक्रेसी और सोशल जस्टिस को आगे बढ़ाने के लिए कमिटेड जानकारों, पॉलिसी बनाने वालों और प्रैक्टिशनर्स के लिए कीमती जानकारी देता है।

बिहार में डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन का एक्सपेरिमेंट लगातार बढ़ रहा है, जिसे बदलते पॉलिटिकल डायनामिक्स, सोशल मूवमेंट और पॉलिसी इनोवेशन ने आकार दिया है। जैसे-जैसे OBC कम्युनिटी अपने पॉलिटिकल अधिकारों पर जोर दे रही हैं और गवर्नेंस की जिम्मेदारियाँ निभा रही हैं, वे न सिर्फ अपने एम्पावरमेंट में योगदान दे रहे हैं, बल्कि ग्रामीण भारत में डेमोक्रेसी को मजबूत करने और इनक्लूसिव डेवलपमेंट को बढ़ावा देने के बड़े प्रोजेक्ट में भी योगदान दे रहे हैं। इस कोशिश की सफलता आखिर में सिर्फ चुने हुए पदों पर OBC रिप्रेजेंटेटिव की संख्या से नहीं, बल्कि डेमोक्रेटिक प्रोसेस में उनकी सार्थक भागीदारी से गवर्नेंस की क्वालिटी, डेवलपमेंट के नतीजों और सोशल जस्टिस में होने वाले बड़े सुधारों से मापी जाएगी।

संदर्भ

1. बार्नेट, CC, मिनिस, HP, और वैनसैट, J. (1997). डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन. रिसर्च ट्राएंगल इंस्टीट्यूट.
2. सेज जर्नल्स. (2021). डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन और हाशिए पर पड़े समुदायों का सोशियो-पॉलिटिकल इन्क्लूजन: बिहार, इंडिया के मधुबनी जिले में मुसहर समुदाय पर एक स्टडी. जर्नल ऑफ सोशल इन्क्लूजन स्टडीज, 7(2), 123-145.
3. EPRA जर्नल्स. (2020). भारत में पंचायती राज सिस्टम के जरिए महिला प्रतिनिधित्व और ग्रामीण विकास – उभरते ट्रेंड्स और चुनौतियाँ. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यूज, 7(3), 45-67.
4. आईजेएफएमआर. (2024). बिहार में पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण के परिणाम. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 6(3), 78-92.
5. बिहार सरकार. (2025). पंचायती राज विभाग.
6. एडूरेव. (2024). बिहार में स्थानीय स्वशासन. बीपीएससी अध्ययन सामग्री, 12(4), 234-251.
7. गया जिला. (2018). जिला संपर्क निर्देशिका. बिहार सरकार.
8. अकादमिक. (2024). बिहार में पंचायती राज व्यवस्था की स्थिति. अकादमिक रिसर्च जर्नल, 15(2), 156-178.
9. जागरण. (2025). बिहार पंचायत चुनाव में मुखिया और सरपंच पदों के लिए आरक्षण में बदलाव. दैनिक जागरण, 20 जून.
10. नवभारत टाइम्स. (2021). बिहार पंचायत चुनाव 2021: SC/ST और OBC के लिए आरक्षित सीटें. नवभारत टाइम्स, 25 अगस्त.
11. आईजेएफएमआर. (2024). नया बिहार: कुशासन से सुशासन तक. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 6(2), 123-145.
12. टाइम्स ऑफ इंडिया. (2025). राहुल के OBC समर्थक भाषण से मगध क्षेत्र में ऊंची जाति के कांग्रेस नेता असहज हो गए हैं. टाइम्स ऑफ इंडिया, 6 सितंबर.
13. द वायर. (2025). मार्जिन से मेंडेट तक: बिहार के चुनावों में रिप्रेजेंटेशन की मांग. द वायर, 21 सितंबर.
14. IASGYAN. (2024). बिहार चुनाव के बारे में EBC वोटर्स की वैल्यू. UPSC करंट अफेयर्स, 31 दिसंबर.
15. टेस्टबुक। (2025)। बिहार पंचायती राज एक्ट ग्राम पंचायत का समय। सरकारी परीक्षा की तैयारी, 26 सितंबर।
16. इंडिया टुडे. (2025). नीतीश की विरासत बनाम राहुल गांधी की चाल: बिहार के EBC वोटर्स का दिल कौन जीतेगा? इंडिया टुडे, 29 सितंबर.

17. UTs के लिए SEC. (2023). भारत में पंचायती राज का 73वां संशोधन. केंद्र शासित प्रदेश चुनाव आयोग, 31 मई.
18. रिसर्च ट्राएंगल इंस्टीट्यूट. (1997). डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन. यूनाइटेड स्टेट्स एजेंसी फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट.
19. दृष्टि IAS. (2019). पंचायती राज संस्था (PRI). महत्वपूर्ण संस्थाएं, 1 जुलाई.
20. फेडरेशन का फोरम। (2021). लोकल गवर्नमेंट वॉचर ग्रुप्स के एम्पावरमेंट में लीड कर रही है: इंडिया और साउथ अफ्रीका के केस। 19 दिसंबर।
21. आईजेएफएमआर. (2025). 73वें संविधान संशोधन के प्रभाव का आकलन. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 7(1), 234-256.
22. वर्ल्ड बैंक. (2000). डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन. इंडिपेंडेंट इवैल्यूएशन ग्रुप.
23. कृष्णा, ए. (2013). लोकल लेवल पर डेमोक्रेसी में गरीब लोगों की भागीदारी. ड्यूक यूनिवर्सिटी वर्किंग पेपर, 45-67.
24. SC ऑब्जर्वर. (2024). बिहार सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में 65 परसेंट रिजर्वेशन कोटे को लेकर क्या चुनौती दी है? 28 जुलाई.
25. टीजेईआर. (2023). भारत में राजनीति में युवाओं की भागीदारी: चुनौतियाँ और अवसर. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग एंड रिसर्च, 10(12), 251-267.
26. NCBI- (2009). पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन - कम्युनिटी-बेस्ड रिहैबिलिटेशन. नेशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजी इन्फॉर्मेशन.

कृषि पद्धति परिवर्तन का स्वरूप: नालंदा जिला एक भौगोलिक अध्ययन

सोनू कुमार

शोध-छात्र, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

प्रो० (डॉ०) विभा सिंह

पर्यवेक्षिका, विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, गया कॉलेज, गया, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रमुख भूमिका है तथा वर्ष 2024-25 में देश की सकल जीडीपी में 16 प्रतिशत योगदान रहा है। जनगणना 2011 के अनुसार देश के 69 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं और उनका प्रमुख व्यवसाय है। भारत में वर्ष 1965-1968 के बीच हरित क्रांति की शुरुआत हुई जिसका प्रभाव पूरे देश पर पड़ा। जिसका मुख्य उद्देश्य खाद्यान्न की कमी को दूर करना था इसके लिए संश्लेषित बीजों, उन्नत सिंचाई, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग करके कृषि क्षेत्र में क्रांति लाया गया जिससे कृषि पद्धति में परिवर्तन आया। बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है, राज्य का कृषि क्षेत्र 77 प्रतिशत जनसंख्या को रोजगार प्रदान करता है तथा राज्य की 88 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। नालंदा जिला राज्य की अग्रणी जिलों में से एक है। कृषि इस क्षेत्र की रीढ़ है, नालंदा की कृषि यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित और नियंत्रित होता है। हरित क्रांति का प्रभाव जिले की कृषि क्षेत्र पर भी पड़ा जिसके कारण यहाँ की कृषि पद्धति में परिवर्तन आया। पहले जहाँ कृषि परंपरागत तरीके से होता था परंतु धीरे-धीरे कृषि ने आधुनिक स्वरूप प्राप्त कर लिया। यहाँ की कृषि के अंतर्गत खेतों की जुताई, हल-बल से ट्रैक्टर, सिंचाई में परंपरागत तरीके, जल निकासी का स्थान, नवीन डीजल और विद्युत पम्प सेटों ने लिया है। परंपरागत बीजों के स्थान पर संश्लेषित बीजों का प्रयोग होने लगा। आधुनिक नवीन विधियों का प्रयोग, वैज्ञानिक तकनीक से खेती, धान, गेहूँ की खेती के लिए जीरो टिलेज, पैडी ट्रांसप्लान्टर श्री विधी से कृषि किया जा रहा है जिससे यहाँ की कृषि पद्धति में परिवर्तन आया जिससे कृषि व कृषि संबद्ध क्षेत्र का विकास हुआ तथा फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुआ है।

सूचक शब्द:- कृषि पद्धति, हरित क्रांति, वैज्ञानिक तकनीक, नवीन विधियाँ

परिचय

आजादी के बाद देश में 1960 के दशक में हरित क्रांति के कारण कृषि क्षेत्र में परिवर्तन आया। इससे पहले कृषि मुख्य रूप से मानसून पर आधारित, पारंपरिक और श्रम-प्रधान थी। लेकिन हरित क्रांति, वैज्ञानिक तकनीकों, उन्नत बीजों, नवीन कृषि उपकरणों, बाजार-उन्मुख फसल प्रणाली, सिंचाई का विस्तार तथा सरकारी योजनाओं के कारण कृषि पद्धति के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया। आज कृषि मात्र जीविका का साधन नहीं है अपितु यह क्षेत्र व्यावसायिक और लाभ-उन्मुख में परिवर्तन हो चुका है। बिहार राज्य जो कृषि प्रधान राज्य है, नालंदा जिला कृषि उत्पादन के मामले में राज्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ की उपजाऊ मिट्टी, मानसूनी वर्षा, सिंचाई व्यवस्था, उपलब्ध श्रमशक्ति ने जिले की कृषि को हमेशा से मजबूती प्रदान की है। जलवायु परिवर्तन, किसानों की आय में वृद्धि की आकांक्षा, बाजार की मांग, रोजगार के विकल्प, वैज्ञानिक शोध, नवीन तकनीक, संसाधनों की उपलब्धता, जनसंख्या का दबाव, प्रवास के कारण पिछले दो-तीन दशकों में नालंदा के कृषि पद्धति के स्वरूप में परिवर्तन आया है। पहले जहाँ खेती चावल और गेहूँ पर केन्द्रित था वहीं अब सब्जियाँ, वाणिज्यिक फसलों, पशुपालन डेयरी, मत्स्य पालन की कृषि हो रही है।

अध्ययन क्षेत्र

नालंदा, बिहार के मगध प्रमण्डल के अंतर्गत स्थित एक महत्वपूर्ण जिला है जो बिहार राज्य के दक्षिण भाग में बसा हुआ है। इसे सीखने की प्राचीन भूमि के रूप में भी जाना जाता है। भगवान बुद्ध और महावीर के निवास स्थान के रूप में सीखने की जगह थी। अपनी प्राचीन शैक्षिक एवं बौद्ध विरासत के कारण विश्वविख्यात है। यहाँ का भौगोलिक ढाँचा कृषि गतिविधियों के लिए अत्यंत अनुकूल माना जाता है, क्योंकि यहाँ की मिट्टी, जलवायु, सिंचाई-सुविधाएँ, जल उपलब्धता तथा स्थल रूप विविध फसलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त है। यह 24 डिग्री 57 मिनट से 25 डिग्री 27 मिनट उत्तरी अक्षांश एवं 85 डिग्री 9 मिनट पूरब से 85 डिग्री 56 मिनट पूर्वी देशांतर तक विस्तृत है। जिले में कुल 03 अनुमंडल, 20 ब्लॉक तथा 249 ग्राम पंचायत है।

परिकल्पना

- 1. तकनीकी हस्तक्षेप ने नालंदा जिला में पारंपरिक कृषि पद्धति को आधुनिक कृषि प्रणाली में परिवर्तित किया है।
- 2. कृषि पद्धति परिवर्तन से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुआ है।

उद्देश्य

- 1. कृषि पद्धति परिवर्तनों के प्रमुख कारणों का विश्लेषण करना।
- 2. कृषि पद्धति परिवर्तनों के प्रभावों का अध्ययन करना।

विधियाँ

इस अध्ययन के अंतर्गत नालंदा जिले में कृषि पद्धति परिवर्तन के स्वरूप को समझने के लिए वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति अपनायी गयी है। आंकड़ों का संग्रहण प्राथमिक व द्वितीयक स्रोतों से किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों के अंतर्गत किसानों से प्रश्नावली, व्यक्तिगत साक्षात्कार, वहाँ के खेतों का निरीक्षण के माध्यम से एकत्रित किए गए हैं। प्रश्नावली और साक्षात्कार के अंतर्गत नालंदा जिला के कुल 03 अनुमण्डलों राजगीर, बिहारशरीफ व हिलसा के 120 बड़े और छोटे किसानों को सम्मिलित किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत आर्थिक सर्वेक्षण, जिला कृषि कार्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र की रिपोर्ट व सरकारी योजनाओं के दस्तावेजों, पत्रिकाओं की सहायता ली गई है।

कृषि पद्धति परिवर्तन का कारण

देश में कृषि क्षेत्र में हरित क्रांति के बाद अनेक स्तर पर बदलाव आया। यह बदलाव सिर्फ उपकरणों और वैज्ञानिक तकनीकों तक ही सीमित नहीं है अपितु इसके अन्य कारण भी हैं जिसमें प्राकृतिक कारक जिसमें जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों में परिवर्तन, बाढ़ व सुखा जैसी प्राकृतिक आपदाएँ शामिल हैं। तकनीकी कारक जिसमें कृषि यंत्रीकरण, उन्नत बीज, आधुनिक सिंचाई तकनीक है, वहीं सामाजिक कारक के अंतर्गत शिक्षा और जागरूकता का स्तर बढ़ना, परिवारों का स्वरूप में बदलाव, कृषि का व्यवसायीकरण शामिल है। सरकारी नीतियाँ एवं योजना, इसके अंतर्गत प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, कृषि यंत्रीकरण पर सब्सिडी, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, कृषि विज्ञान केन्द्र की योजनाएँ, फसल विविधिकरण, दलहन, तिलहन, बागवानी सब्जियों की खेती शामिल है। ये सभी कारणों से नालंदा जिला के कृषि पद्धति में परिवर्तन हुआ है।

प्राकृतिक कारक

इसके अंतर्गत जलवायु परिवर्तन एक मुख्य कारण है। पहले जिले की कृषि मानसून पर आधारित थी, नदी, तालाबों के पानी से अपने खेतों की सिंचाई करते थे। जिले में 20 से अधिक छोटी-बड़ी नदियाँ हैं परंतु पिछले 40 वर्षों में मात्र तीन नदियों के सहारे यहाँ का कृषि कार्य किया जा रहा है। मानसूनी वर्षा में कमी देखने को मिल रहा है, जिसके कारण सुखाड़ की समस्या क्षेत्र में हो जाती है। इसे दूर करने के लिए यहाँ के कृषक पंपसेटों के माध्यम से खेतों की सिंचाई, मल्टिचंग तकनीक, ड्रिप सिंचाई अपना रहे हैं। नदियों की बात करें तो जिले में अधिकांश नदियाँ बरसाती हैं इन नदियों में जल झारखंड राज्य के कोडरमा पहाड़ी से आता है। जिले के कई नदियाँ नाले का शकल ले चुकी हैं। कृषि करने के लिए औसत 1000 मिमी. वर्षा चाहिए लेकिन जिले की औसत वर्षा पिछले कई वर्षों से उतार-चढ़ाव रहा है। तालिका 1.1 के अनुसार वर्ष 2018-19 में 699.9 मिमी., लेकिन कोरोना काल में पर्यावरण स्वच्छ होने के कारण 1150.9 मिमी. वर्षा हुआ। परंतु वर्ष 2023-24 में 747.0 मिमी. वर्षा हुआ जिससे पता चलता है कि यहाँ का वार्षिक वर्षा में उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है।

तालिका-1.1: नालंदा जिला में वार्षिक वर्षा

(वर्षा मिमी. में)

वर्ष	वार्षिक वर्षा
2018-19	699.9
2019-20	938.4
2020-21	1150.9
2021-22	700.7
2022-23	684.2
2023-24	747.0

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार, 2010-24

सामाजिक कारक

सामाजिक कारक के अंतर्गत मुख्य रूप से शिक्षा और जागरूकता का स्तर बढ़ना, परिवारों का स्वरूप बदलना, ग्रामीण मजदूरी पैटर्न में बदलाव आदि शामिल है। नालंदा जिला में पिछले कई वर्षों में सरकारी प्रयासों जिसमें हर 1 कि.मी. पर प्राथमिक विद्यालय, हर पंचायत में हाई स्कूल, पोषक योजना,

साइकिल योजना, छात्रवृत्ति के कारण जिले में शिक्षा के स्तर में बदलाव आया है जिसके कारण सरकारी योजनाओं को समझने, प्रयोग करने में असानी होती है जो कृषि पद्धति में बदलाव का एक कारण बना। परिवार भी धीरे-धीरे संयुक्त से एकल हो गये जिसके कारण खेतों का आकार छोटा हो गया। पहले लोग जीवन निर्वाह कृषि करते थे जिसके कारण खेती करने के बाद आजीविका के लिए दूसरे शहर में मजदूरी करने जाते थे परंतु वर्तमान में कृषि में रोजगार मिलने से व सरकारी सहायता मिलने से उसमें कमी आयी है। इन सभी सामाजिक कारकों ने जिले की कृषि पद्धति में बदलाव में अहम भूमिका निभाई। साथ ही बढ़ती जनसंख्या दबाव के कारण नालंदा जिले की कृषि पद्धति में बदलाव आया।

तालिका-1.2 के अनुसार जिले का साक्षरता दर में विकास हुआ है। वर्ष 2001 की जनगणना और 2011 की जनगणना आंकड़े से पता चलता है कि कुल 11.2 प्रतिशत वृद्धि दशकीय परिवर्तन हुआ है। वहीं तालिका 1.3 से स्पष्ट पता चलता है जिले में जनसंख्या वृद्धि दर वर्ष 1941-51 में 17.89 प्रतिशत था तो वर्ष 2001-2011 में 21.39 प्रतिशत था। आंकड़ों से पता चलता है कि जनसंख्या दशकीय अन्तर में वृद्धि हुआ है।

तालिका-1.2: नालंदा जिला में लिंग आधारित साक्षरता दर

(प्रतिशत में)

	व्यक्ति	पुरुष	महिला
2001 की जनगणना	53.2	66.4	38.6
2011 की जनगणना	64.4	79.4	53.1
दशकीय परिवर्तन	11.2	8.4	14.5

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, 2024-25

तालिका-1.3: नालंदा जिला के जनसंख्या में दशकीय अंतर

(प्रतिशत में)

वर्ष	प्रतिशत अन्तर
1941-51	17.89 प्रतिशत
1961-71	20.04 प्रतिशत
1981-91	21.73 प्रतिशत
1991-2001	18.64 प्रतिशत
2001-2011	21.39 प्रतिशत

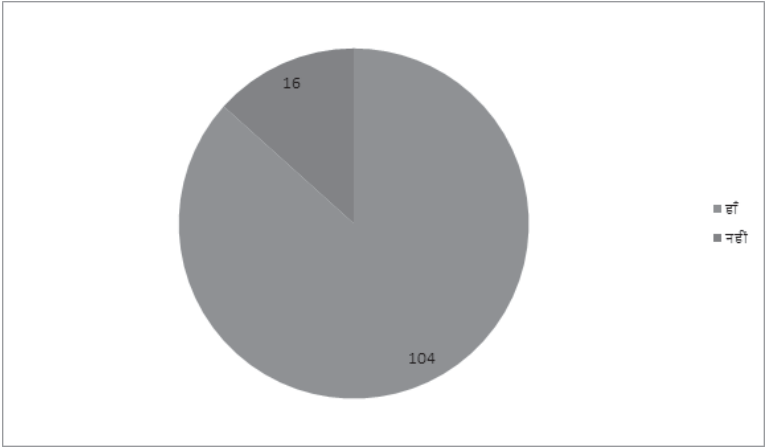
स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, 2024-25

प्राथमिक सर्वेक्षण के अंतर्गत जिले के 120 किसानों को सम्मिलित किया गया है जिसमें कुल 03 अनुमण्डलों यथा बिहारशरीफ, राजगीर, हिलसा के 40-40 किसानों को सम्मिलित किया गया है। जिले में किसानों से वार्तालाप व कृषि कार्य का अवलोकन करने से धरातल पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। किसान वैज्ञानिक तकनीक, कृषि उपकरण, नवीन विधियों से कृषि कार्य कर रहे हैं। बिहारशरीफ अनुमण्डल का कृषि अधिक आधुनिक रूप ले चुकी है कारण जिला कृषि कार्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र हरनौत, बागवानी कॉलेज नूरसराय सभी संस्थान बिहारशरीफ अनुमण्डल में अवस्थित हैं। हिलसा अनुमण्डल मुख्य रूप से कृषि क्षेत्र है क्योंकि शहरीकरण का प्रभाव बिहारशरीफ अनुमण्डल की अपेक्षा कम है, वहीं राजगीर अनुमण्डल पर्यटन दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्राथमिक सर्वेक्षण के दौरान किसानों से जब प्रश्न किया कि क्या कृषि करने के तरीके में पहले की अपेक्षा पिछले कुछ वर्षों में परिवर्तन आया है। 120 प्रतिदर्श किसानों में से 104 किसानों ने कहा कि परिवर्तन आया है। वहीं 16 किसानों ने कहा परिवर्तन नहीं हुआ है, इसके पीछे का कारण यह बताया कि उनके पास कम व छोटे जोत वाले खेत है। दूसरा प्रश्न किसानों से किया कि क्या कृषि पद्धति में जो परिवर्तन आया है उसमें प्राकृतिक व सामाजिक कारक तथा सरकारी योजनाओं का प्रभाव पड़ा है, तो 120 किसान प्रतिदर्श में से 36 किसानों प्राकृतिक कारक को जिम्मेदार बताया तो 22 किसानों ने सामाजिक कारक तो 52 किसानों ने सरकारी नीतियों व योजनाओं को कृषि पद्धति परिवर्तन के लिए जिम्मेदार बताया।

तालिका-1.4: नालंदा जिला के कृषि पद्धति हुआ है

विवरण	किसानों की संख्या
हाँ	104
नहीं	16
कुल	120

स्त्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित



चित्र संख्या-1.1: नालंदा जिला के कृषि पद्धति

तालिका-1.5: नालंदा जिला में कृषि पद्धति परिवर्तन के मुख्य कारक क्या है?

कारक	किसानों की संख्या	प्रतिशत
प्राकृतिक कारक	36	30
सामाजिक कारक	22	18.33
सरकारी नीतियाँ व योजनाएँ	62	51.66
कुल	120	100

स्त्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित

कृषि पद्धति परिवर्तन के प्रभाव

देश में हरित क्रांति के बाद कृषि क्षेत्र में परिवर्तन देखने को मिलता है जिसका प्रभाव कृषि के कई स्तरों पर हुआ। बिहार राज्य का नालंदा जिला जहाँ कृषि परंपरागत से आधुनिक रूप ले चुकी है जिसके कारण कृषि पद्धति में परिवर्तन आया है। उसका मुख्य प्रभाव कृषि फसलों के उत्पादन में वृद्धि, कृषि अन्य संबद्ध क्षेत्रों का विकास, कृषि क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि, महिलाओं की भागीदारी, किसानों की आय में वृद्धि, कृषि करने में नवीन विधियों का प्रयोग यहाँ के किसानों द्वारा किया जा रहा है। उदाहरण स्वरूप- इंडो-इजराइल विधि, जैविक विधि, मल्टिपिंग विधि आदि।

कृषि पद्धति परिवर्तन का फसलों, बागवानी व मत्स्य पालन पर प्रभाव

समय के साथ हर क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है। भारत के कृषि क्षेत्र में देश की आजादी के बाद भुखमरी, जनसंख्या दबाव, रोजगार का अभाव, निम्न आय की स्थिति के कारण कृषि क्षेत्र में परिवर्तन आवश्यक था। 1960 के दशक में कृषि क्षेत्र में हरित क्रांति का आगमन हुआ जिससे कृषि फसलों के उत्पादन में वृद्धि, कृषि संबंध क्षेत्रों का विकास, कृषि में रोजगार का सृजन, किसानों की आय में वृद्धि, व्यापारिक फसलों का उत्पादन आदि प्रभाव देखने को मिलता है। बिहार का नालंदा जिला कृषि क्षेत्र में अग्रणी है। पिछले दो-तीन दशकों में जिले के कृषि में परिवर्तन आया है जिसमें केन्द्र व राज्य सरकार की कृषि योजनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है उदाहरण स्वरूप प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना, राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-भवन), एग्रीकल्चर क्लिनिक और एग्रीकल्चर बिजनेस, राज्य सरकार की कृषि उपकरण अनुदान, चौपाल, मुख्यमंत्री बागवानी मिशन, बीज ग्राम योजना, जैविक खेती प्रोत्साहन, ई-किसान भवन निर्माण आदि। जिसका प्रभाव नालंदा जिला के कृषि पर पड़ा है। तालिका 2.1 के अनुसार वर्ष 2011-12 की तुलना में वर्ष 2023-24 में चावल उत्पादन में 31.8 हजार टन वृद्धि हुआ। गेहूँ में 165.7 हजार टन का वृद्धि, मक्का में 4.98 हजार टन व दलहन में 0.8 हजार टन का वृद्धि वर्ष 2011-12 की तुलना में वर्ष 2023-24 के उत्पादन में वृद्धि हुआ।

तालिका-2.1: नालंदा में मुख्य फसलों के उत्पादन पर प्रभाव

(क्षेत्रफल-हजार हे०, उत्पादन-हजार टन)

फसल		वर्ष 2011-12	वर्ष 2023-24
चावल	क्षेत्रफल	126.5	112
	उत्पादन	347.7	379.5

गेहूँ	क्षेत्रफल	69.1	91.6
	उत्पादन	144.6	310.3
मक्का	क्षेत्रफल	6.1	6.2
	उत्पादन	23.52	28.5
दलहन	क्षेत्रफल	24.03	20.7
	उत्पादन	20.5	21.3

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार 2011-12, 2023-24

कृषि संबद्ध क्षेत्र

मुख्य फसल चावल, गेहूँ, मक्का, दलहन के अतिरिक्त संबद्ध क्षेत्र बागवानी कृषि, मत्स्य पालन, बकरी पालन भी नालंदा जिले में दो दशकों में वृद्धि हुआ है जिससे यहाँ के किसानों को आय सृजन, रोजगार सृजन के साथ ही शिक्षित युवा वर्ग का झुकाव कृषि की तरफ हुआ है जिससे वो स्थानीय युवाओं और महिलाओं को रोजगार प्रदान कर रहे हैं। इस कार्य में बिहार सरकार भी कई योजनाओं, अनुदानों के माध्यम से मदद कर रही है। पलायन में भी कमी देखने को मिल रहा है। तालिका 2.2 के अनुसार वर्ष 2019-20 के तुलना में वर्ष 2022-23 में आम, बैंगन, फूलगोभी के उत्पादन में कमी देखने को मिलता है। सबसे ज्यादा 2019-20 की तुलना में वर्ष 2023-24 में प्याज व आम के उत्पादन में वृद्धि हुआ है। वहीं तालिका 2.3 के अनुसार नालंदा जिला में मछली उत्पादन व मत्स्य बीज उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि किया है। वर्ष 2009-10 में मछली उत्पादन 10 हजार टन था जो वर्ष 2023-24 में 20 हजार टन बढ़कर 30 हजार टन हो गया साथ ही मत्स्य बीज वर्ष 2009-10 में 143 लाख बीज से 97 लाख बीज की वृद्धि के साथ वर्ष 2023-24 में 240 लाख बीज हो गया।

तालिका-2.2: नालंदा जिला में बागवानी फसलों का उत्पादन

(उत्पादन-हजार टन)

फसल	वर्ष 2019-20	वर्ष 2022-23	वर्ष 2023-24
आम	30.81	30.83	34.31
बैंगन	141.16	141.21	129.21
फूलगोभी	64.41	64.45	63.56
आलू	656.31	887.02	653.54
प्याज	152.83	244.90	178.39

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार 2019-24

तालिका-2.3: नालंदा जिला में मछली व मत्स्य बीज उत्पाद

(उत्पादन-हजार टन, मत्स्य बीज-लाख में)

वर्ष	मछली उत्पादन	मत्स्य बीज
2009-10	10.00	143.00
2014-15	16.59	290.00
2019-20	22.30	170.00
2023-24	30	240

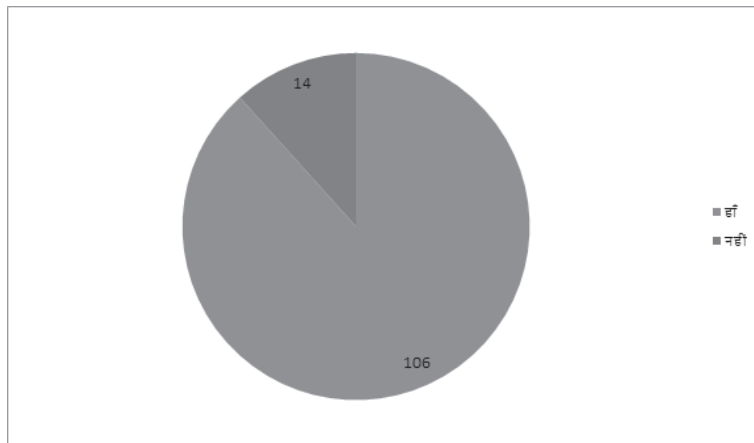
स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार 2009-24

प्राथमिक सर्वेक्षण करते हुए जिले के 03 अनुमण्डलों के किसानों से वार्तालाप किया, जिसमें बड़े, मध्यम व छोटे तीनों प्रकार के किसानों से किया तो हमने पाया कि जिले के कृषि पद्धति में जो बदलाव आया है उसका प्रभाव फसलों के उत्पादन पर भी पड़ा है साथ ही यहाँ के किसानों द्वारा उपज को पैक्स व मंडियों में बेचकर आय का सृजन करते हैं जिसमें पहले की अपेक्षा वृद्धि हुआ है। साथ ही सर्वेक्षण के दौरान पाया कि किसान फसलों के साथ-साथ बागवानी, मछली पालन, दुग्ध उत्पादन, बकरी पालन का भी कार्य करते हैं। हमने किसानों से प्रश्न किया कि क्या पहले की अपेक्षा अब फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुआ है। कुल 03 अनुमण्डलों के 120 किसानों में से 106 किसानों ने कहा कि उत्पादन में वृद्धि हुआ व 14 किसानों का कहना था कि उत्पादन में वृद्धि नहीं बढ़ा है। उसके बाद दूसरा प्रश्न किया कि कृषि के अतिरिक्त बागवानी, बकरी पालन, दुग्ध उत्पादन, मछली पालन का भी कार्य करते हैं। 120 किसानों में से 41 किसानों ने माना वे बागवानी, 18 किसानों द्वारा बकरी पालन, 24 किसानों द्वारा दुग्ध उत्पादन, 21 किसानों द्वारा मछली पालन तथा 16 किसान अन्य किसी भी प्रकार का कार्य नहीं करते हैं।

तालिका-2.4: जिले में किसानों द्वारा फसल उत्पादन में वृद्धि

वृद्धि	किसानों की संख्या
हाँ	106
नहीं	14
कुल	120

स्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित



चित्र संख्या-1.2: जिले में किसानों द्वारा फसल उत्पादन में वृद्धि

तालिका-2.5: जिले में कृषि संबद्ध क्षेत्र में संलग्न कृषक

कृषि संबद्ध क्षेत्र	किसानों की संख्या	प्रतिशत
बागवानी	41	34.16
बकरी पालन	18	15
दुग्ध उत्पादन	24	20
मछली पालन	21	17.5
कुछ नहीं	16	13.33
कुल	120	100

स्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित

निष्कर्ष:- देश के कृषि क्षेत्र में 1960 के दशक में जो हरित क्रांति आई और सरकारी प्रयासों यथा नीतियाँ व योजनाएँ जिसने देश की कृषि परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिसने देश में कृषि की दशा-दिशा को परिवर्तित कर दिया व कृषि पद्धति में परिवर्तन कर दिया। बिहार के नालंदा जिला में भी पिछले दो दशकों में यहाँ परिवर्तन देखने को मिलता है जिसके कारण नवीन वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग, वैज्ञानिक विधि, रसायनिक उर्वरक व कीटनाशकों का प्रयोग कर रहे हैं जिसका परिणाम यह है कि कृषि फसलों के उत्पादन में वृद्धि, कृषि संबद्ध क्षेत्र, जैसे-बागवानी, मछली पालन, मत्स्य बीजों का उत्पादन, दुग्ध उत्पादन आदि। जिससे किसानों की आय में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में रोजगार की उपलब्धता में वृद्धि देखने को मिलता है। यही कारण है कि नालंदा जिला में वर्ष 2011-12 में चावल उत्पादन, वर्ष 2012-13 में गेहूँ के उच्च उत्पादन, वर्ष 2015-16 व 2016-17 में मक्का उत्पादन तथा वर्ष 2017-18 में गेहूँ उत्पादन के लिए बिहार राज्य को कृषि कर्मण पुरस्कार मिला है।

संदर्भ-सूची

- आर्थिक सर्वेक्षण (2009-24): वित्त विभाग, बिहार सरकार
- कृषि जनगणना (2015-16): भारत सरकार
- शमी, एम0 (2006): कृषि भूगोल, पियर्सन प्रकाशन, नई दिल्ली
- गौतम, अलका (2020): आर्थिक भूगोल के तत्व, प्रकाशक शारदा पुस्तक भवन
- सागर, एस0 (2017): नालंदा जिले में भूमि उपयोग, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च पब्लिकेशन एण्ड रिव्यूज 5 (8), 1-6
- झा, ए0 (2012): नालंदा जिला का एक केस स्टडी, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल साइंस एंड रिसर्च, 2 (3), 92-98
- कुमार, आर0 (2015): नालंदा जिले में कृषि परिवर्तन के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव, इंडियन जर्नल ऑफ रूरल स्टडीज, 12 (2), 55-65

डॉ० बी०आर० अंबेडकर की राजनीति और भारतीय दलित चेतना का निर्माण: एक अध्ययन

डॉ० प्रतिमा कुमारी

स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध सार:-

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था ने सदियों से एक विकराल समस्या के रूप में अपनी जड़ें जमाई रखी हैं, जिसका परिणाम अस्पृश्यता की अमिट छाप के रूप में आज भी दिखाई पड़ता है। इस व्यवस्था ने समाज का विभाजन कर्म के आधार पर नहीं, बल्कि जन्म के आधार पर स्वीकार किया है, जो एक उदीयमान और विकसित भारत के उद्देश्यों को साकार करने के मार्ग में एक बड़ी चुनौती है। इसी पृष्ठभूमि में, डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर की राजनीति दलित समुदाय में आत्म-सम्मान की चेतना जागृत करने का एक अतुलनीय योगदान और 'भागीरथी प्रयत्न' मानी जाती है। यह चेतना उन लोगों के भीतर विकसित की गई जो एक ओर अंग्रेजों की गुलामी और दूसरी ओर सवर्णों के शोषण से पीड़ित थे। दलित चेतना की सैद्धांतिक समझ मौलिक रूप से वर्ण-व्यवस्था के कारकों में निहित अस्मिता पर केंद्रित है। अंबेडकरवादी दर्शन में यह माना जाता है कि चूंकि पूरी हिंदू व्यवस्था वर्ण तंत्र पर टिकी है, इसलिए वर्ग (बुर्जुआ-सर्वहारा) के नजरिए के बजाय सवर्ण-अवर्ण शब्दों का प्रयोग अधिक सार्थक होता है। अंबेडकर ने दलितों के सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे में सुधार लाने के लिए ऐसे तरीके अपनाए जिनसे भारत में एक सशक्त दलित चेतना का निर्माण हुआ। दार्शनिक हरबर्ट मार्क्यूस के शब्दों में, दलित चेतना एक सांस्कृतिक चेतना है, और इसी कारण यह विद्रोही चरित्र भी रखती है। यह चेतना न केवल सामाजिक समस्याओं पर सरकारी कार्यक्रमों के माध्यम से बल्कि दलितों के तमाम बौद्धिक और सामाजिक आंदोलनों के द्वारा भी विकसित हुई, जिससे दलित अपनी समस्याओं को विश्व पटल पर रखने में कामयाब हो पाए।

मूल शब्द:- जाति व्यवस्था, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, समावेशिता, न्याय, समानता।

प्रस्तावना:-

डॉ. अंबेडकर का राजनीतिक दर्शन समावेशिता, न्याय, और समानता के लोकतांत्रिक आदर्शों में निहित था। उन्होंने अपने संपूर्ण संघर्ष को तर्क और वैज्ञानिकता के मौलिक सिद्धांतों पर आधारित किया। अंबेडकर ने अंधविश्वास पर तर्क की विजय और शासन के लिए वैज्ञानिक तर्कसंगतता को आधारभूत शर्त माना। उन्होंने अपने लेखन में प्रदर्शित किया कि अस्पृश्यता प्राचीन हिंदू शास्त्रों में नहीं पाई जाती थी, बल्कि सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखने के लिए बाद में जोड़ी गई थी। इस तर्कसंगत दृष्टिकोण ने उन मिथकों को विखंडित करने में मदद की जो भेदभाव को वैध ठहराते थे।

अंबेडकर ने फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरणा लेते हुए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को अच्छे जीवन के तीन स्तंभों के रूप में पहचाना, लेकिन उन्होंने इन अवधारणाओं की व्याख्या भारतीय समाज की विशिष्ट चुनौतियों के संदर्भ में की। उन्होंने तर्क दिया कि राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक निरर्थक होगी जब तक सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त न हो। सामाजिक स्वतंत्रता का अर्थ गरिमा के साथ जीने, अपना व्यवसाय चुनने और बिना भेदभाव के समाज में पूरी तरह से भाग लेने की क्षमता थी। अंबेडकर का मानना था कि दलितों के लिए मंदिर में प्रवेश न कर पाना या सार्वजनिक कुएं से पानी न निकाल पाना जैसी सामाजिक अस्वतंत्रता, राजनीतिक अधीनता से कहीं अधिक अक्षम करने वाली थी, क्योंकि यह दैनिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती थी।

अंबेडकर के लिए, लोकतंत्र केवल सरकार का एक रूप नहीं था, बल्कि एक प्रकार का सामाजिक संगठन था। उन्होंने कहा कि लोकतंत्र की जड़ें सामाजिक संबंधों में, यानी समाज बनाने वाले लोगों के बीच जुड़े हुए जीवन के संदर्भ में खोजी जानी चाहिए। उनका यह दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि यदि व्यक्ति को व्यक्ति न समझा जाए, तो समस्या केवल कानून या शासन में नहीं है, बल्कि समाज की मूलभूत संरचना में है। इस प्रकार, उन्होंने राजनीतिक चेतना के निर्माण के लिए तर्क की संस्कृति और संवैधानिक सुधार दोनों को प्राथमिकता दी।

संघर्ष के प्रारंभिक चरण: नागरिक अधिकारों की पुनर्स्थापना और आत्म-सम्मान की स्थापना:-

डॉ. अंबेडकर की दलित चेतना को जागृत करने की प्राथमिक और सर्वविदित रणनीति “शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो” का त्रिसूत्र थी। उनके अनुसार, शिक्षा (Educate) केवल एक व्यक्तिगत आकांक्षा नहीं थी, बल्कि यह व्यक्तिगत मुक्ति और व्यवस्थागत बहिष्कार के विरुद्ध एक प्रतीकात्मक विरोध का कार्य थी। जहां दलितों को धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने या औपचारिक निर्देश प्राप्त करने के अधिकार से वंचित रखा जाता था, वहीं अंबेडकर ने शिक्षा के

माध्यम से सामाजिक बाधाओं को दूर करने की शक्ति का प्रदर्शन किया। संगठित होने (Organize) के उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924) जैसी संस्थाओं की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य दलितों के बीच शिक्षा और आर्थिक उत्थान को सुनिश्चित करना था।

महाड़ सत्याग्रह (1927): पानी नहीं, प्रतिष्ठा का संघर्ष:-

महाड़ सत्याग्रह 'अछूतों' द्वारा सार्वजनिक स्थानों तक पहुंच प्राप्त करने के लिए किए गए सबसे प्रारंभिक और महत्वपूर्ण संघर्षों में से एक था, जिसका उद्देश्य नागरिक अधिकारों की पुनर्स्थापना था। 25 दिसंबर 1927 को महाड़ सम्मेलन में डॉ. अंबेडकर ने स्पष्ट किया कि यह संघर्ष केवल पानी पीने के लिए नहीं था, क्योंकि वे इसके बिना भी जीवित थे। उन्होंने कहा, "हम केवल इसका पानी पीने के लिए चवदार तालाब पर नहीं जा रहे हैं। हम तालाब पर यह दावा करने जा रहे हैं कि हम भी दूसरों की तरह इंसान हैं"।

यह आंदोलन जाति व्यवस्था की एक गहरी नैतिक आलोचना थी, जिसने जातिगत व्यवस्था की गहरी जड़ें जमाए हुए स्वीकृति को चुनौती दी और समाज में समानता के मानदंड को स्थापित करने का प्रयास किया। महाड़ का समता संग्राम विषमतामूलक भारतीय समाज पर दलितों के अपने नेतृत्व में पहला हमला था, जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि राजनीतिक-आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्षों की अहमियत को भी रेखांकित किया जाना आवश्यक है।

मनुस्मृति दहन (1927): सांस्कृतिक गुलामी पर प्रतीकात्मक प्रहार:-

महाड़ सत्याग्रह के बाद, 25 दिसंबर 1927 को मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप से जलाया गया। यह कार्य अत्यधिक राजनीतिक चेतना से प्रेरित था। इस ग्रंथ को 'जनद्रोही और इंसानविरोधी' माना गया क्योंकि इसने जाति को अपमानित करने वाली, उसकी प्रगति को रोकने वाली, और दलितों की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक गुलामी को मजबूती देने वाली व्यवस्था को वैचारिक आधार प्रदान किया था।

मनुस्मृति दहन प्रतीकात्मक रूप से ब्राह्मणवादी तंत्र को चुनौती देने और पुरोहितशाही का विध्वंस करने का एक महत्वपूर्ण कार्य था। यह कार्रवाई यह सिद्ध करती है कि अंबेडकर ने नागरिक अधिकारों (जैसे पानी का अधिकार) और सांस्कृतिक स्वायत्तता (धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति) को अविभाज्य माना। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि राजनीतिक मुक्ति की शुरुआत सामाजिक रूढ़ियों और उनके वैचारिक स्रोतों को सीधे चुनौती देने से होती है। इसी क्रम में, नासिक के प्रसिद्ध कालाराम मंदिर में अछूतों के प्रवेश के लिए मार्च 1930 में दूसरा बड़ा सत्याग्रह किया गया, जिसने धार्मिक बहिष्कार के राजनीतिकरण को जारी रखा।

राजनीतिक संस्थाओं का निर्माण: शक्ति को 'मास्टर की' मानना:-

डॉ. अंबेडकर ने दृढ़ता से माना कि राजनीतिक शक्ति दलित उत्थान की 'मास्टर की' है। उनका उद्देश्य हाशिए पर पड़े लोगों को राजनीतिक आत्म-प्रतिनिधित्व के लिए एक ऐसा मंच प्रदान करना था, जो उनकी मांगों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके, उनके अधिकारों पर जोर दे सके और राज्य की नीतियों को सीधे प्रभावित कर सके। उन्होंने विभिन्न संगठनों के माध्यम से दलितों को एक संगठित राजनीतिक शक्ति में ढालने का प्रयास किया।

रणनीतिक संक्रमण और राजनीतिक चेतना का विकास:-

अंबेडकर की राजनीतिक यात्रा में संगठन की रणनीतियाँ उनकी सार्वभौमिक दृष्टि और सामाजिक वास्तविकता के बीच द्वंद्वात्मक संबंध को दर्शाती हैं। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी (ILP) की स्थापना (1936) में उनका ध्यान व्यापक श्रमिक वर्ग के मुद्दों पर था। हालांकि, उन्होंने जल्द ही महसूस किया कि अस्पृश्यता की गहरी जड़ें और जातिगत भेदभाव भारतीय समाज की एक विशिष्ट समस्या है।

इसलिए, 1942 में शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन (SCF) का निर्माण दलित राजनीति में एक सचेत और रणनीतिक बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है। SCF को एक स्वायत्त राष्ट्रीय-स्तरीय राजनीतिक दल के रूप में डिजाइन किया गया था, जो अनुसूचित जातियों के हितों के लिए समर्पित था और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसी प्रमुख राजनीतिक ताकतों से स्वतंत्र था। इस बदलाव ने दलित राजनीति को सुधारवादी और प्रतिक्रियावादी होने से हटाकर मुखर और संगठित बनाने की दिशा में मोड़ा। अंबेडकर की यह रणनीति तत्काल आवश्यकता (SCF) के माध्यम से जाति-आधारित शक्ति और दीर्घकालिक लक्ष्य (वर्ग/सार्वभौमिक एकता) दोनों को संतुलित करती थी। यह दर्शाता है कि अंबेडकर ने जाति को राजनीतिक लामबंदी के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण माना, लेकिन अंतिम उद्देश्य भारतीय समाज की संरचनात्मक बीमारी (जाति) को ठीक करना था, जिससे दलितों की मुक्ति सार्वभौमिक मुक्ति से जुड़ी थी।

संवैधानिक और वैधानिक हस्तक्षेप: चेतना का संस्थागतकरण:-

डॉ. अंबेडकर ने समझा कि सामाजिक न्याय को केवल आंदोलनों से नहीं, बल्कि राज्य के कानूनी और प्रशासनिक ढांचे के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है। उनकी कानूनी विशेषज्ञता और विभिन्न देशों के संविधानों का ज्ञान इस दिशा में महत्वपूर्ण साबित हुआ।

गोलमेज सम्मेलन और पृथक प्रतिनिधित्व की मांग:-

डॉ. अंबेडकर ने लंदन में आयोजित गोलमेज सम्मेलनों में दलितों का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने दलितों के लिए सामाजिक बहिष्कार करने वालों को कड़े दंड की व्यवस्था, सरकारी नौकरियों में सुरक्षित स्थान, उनकी उन्नति के लिए अलग विभाग, और विधानसभाओं में भी उनके लिए सुरक्षित स्थान की मांगें रखीं। अंबेडकर के तर्कों को सुनकर, ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमजे मैकडोनाल्ड ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल (कम्युनल अवार्ड) को स्वीकार कर लिया। यह मांग दलितों के लिए एक स्वायत्त राजनीतिक पहचान और सत्ता में प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

पूना पैक्ट (1932) और राजनीतिक समझौते का प्रभाव

पृथक निर्वाचन मंडल की घोषणा एक महत्वपूर्ण मोड़ था, लेकिन भारत में महात्मा गांधी और कट्टरपंथी हिंदुओं के कड़े विरोध के कारण, खासकर गांधी के आमरण अनशन के कारण, डॉ. अंबेडकर को 24 सितंबर 1932 को पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस समझौते के तहत, पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया, लेकिन दलितों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या बढ़ा दी गई।

पूना पैक्ट ने दलितों के प्रतिनिधित्व के सवाल को 'हिंदू फोल्ड' के भीतर सुलझाने की ओर मोड़ दिया। हालांकि इस समझौते ने दलितों के लिए प्रतिनिधित्व को सुरक्षित किया, इसने पूर्ण राजनीतिक स्वायत्तता की मांग को सीमित कर दिया। अंबेडकर ने इसके बाद संस्थागत सुरक्षा उपायों पर ध्यान केंद्रित किया, ताकि दलित चेतना को राज्य के मूलभूत सिद्धांत के रूप में स्थापित किया जा सके।

संविधान सभा में नेतृत्व: सामाजिक न्याय को कानूनी आधार:-

संविधान सभा में मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में, अंबेडकर ने सामाजिक न्याय और समावेशिता के सिद्धांतों को भारतीय संविधान में संस्थागत रूप दिया। उनका सबसे स्थायी योगदान भारतीय लोकतंत्र और संवैधानिक ढांचे को सुनिश्चित करना था। उन्होंने सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative Action) के माध्यम से वंचित समुदायों के लिए शिक्षा, रोजगार और विधायी निकायों में आरक्षण (जैसे अनुच्छेद 15(4), 16(4)) जैसे प्रावधानों को सुनिश्चित किया। अंबेडकर के संवैधानिक योगदान ने दलितों के आत्म-सम्मान और एजेंसी को कानूनी और प्रशासनिक ढांचे के भीतर स्थापित किया, जिससे सदियों पुरानी अस्पृश्यता को संवैधानिक रूप से समाप्त किया गया। इस प्रक्रिया ने सामाजिक आंदोलन की मांगों को स्थायी कानूनी अधिकारों में परिवर्तित करके दलित चेतना को एक अमूर्त पहचान से स्थायी कानूनी अधिकार में बदल दिया।

वैचारिक विखंडन: जाति व्यवस्था पर तार्किक और ऐतिहासिक प्रहार:-

दलित चेतना के निर्माण में अंबेडकर का बौद्धिक योगदान उनकी राजनीतिक कार्रवाई जितना ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने समझा कि राजनीतिक परिवर्तन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि सदियों की मानसिक दास्तानों को वैचारिक हथियारों से समाप्त न कर दिया जाए।

‘जाति का विनाश’ (Annihilation of Caste): वैचारिक घोषणापत्र

1936 में तैयार किया गया, ‘जाति का विनाश’ (Annihilation of Caste) हिंदू धर्मशास्त्रों और जाति व्यवस्था पर उनका सबसे निर्णायक बौद्धिक प्रहार है। इस पाठ में, अंबेडकर ने जाति प्रथा के समर्थकों की उस दलील का जोरदार विरोध किया कि यह केवल श्रम का विभाजन है, जो किसी भी सभ्य समाज के लिए जरूरी है। उन्होंने तर्क दिया कि जाति प्रथा केवल श्रम का विभाजन नहीं, बल्कि मेहनत करने वाले श्रमिकों का गैर-कुदरती विभाजन है।

यह विभाजन जन्म की ऊँची-नीची पर आधारित है, गतिशीलता की अनुमति नहीं देता, और विभिन्न वर्गों के बीच ऊँच-नीच की भावना पैदा करता है, जो दुनिया के किसी भी अन्य समाज में नहीं पाई जाती। इस वैचारिक विखंडन ने दलितों को यह विश्वास दिलाया कि उनकी निम्न स्थिति स्वाभाविक या धार्मिक नहीं है, बल्कि एक तर्कहीन सामाजिक संरचना है जिसे तार्किक आधार पर अस्वीकार किया जा सकता है। यह आलोचना दलितों के लिए एक विद्रोही ज्ञानमीमांसा (Rebellious Epistemology) का कार्य करती है।

इतिहास बोध का प्रसार और चेतना का विस्तार:-

अंबेडकर ने अपने लेखन, जैसे शूद्र कौन थे? और अछूत कौन और कैसे? के माध्यम से दलितों को उनके इतिहास की तर्कसंगत समझ प्रदान की। उन्होंने यह ऐतिहासिक रूप से सिद्ध किया कि अस्पृश्यता एक ब्राह्मणवादी चक्रव्यूह को बनाए रखने के लिए बाद में जोड़ी गई प्रथा थी। इस इतिहास बोध के प्रसार से दलित चेतना को आत्म-सम्मान और सांस्कृतिक जड़ता से मुक्ति का आधार मिला।

दलित महिला चेतना का आह्वान:-

डॉ. अंबेडकर ने दलित महिलाओं के अधिकारों को दलित मुक्ति के लिए केंद्रीय माना। उन्होंने दलित महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाले दोहरे दमनकृजाति और लिंगकृको पहचाना। उन्होंने महाड़ में अपने संबोधन में महिलाओं से सामाजिक समता लाने की लड़ाई में जोर से आगे आने की अपील की। उन्होंने यह भी कहा कि हिंदू धर्म में शूद्रों और स्त्रियों को धर्मोपदेश का अधिकार नहीं होता है, जबकि बौद्ध धर्म में स्त्री और पुरुषों को हर तरह से समानता का अधिकार हासिल होता है। उनका यह ध्यान दलित चेतना को केवल पुरुष-केंद्रित राजनीति तक सीमित न रखकर, समाज के सबसे हाशिए वाले वर्ग तक फैलाने का एक महत्वपूर्ण प्रयास था।

धर्मांतरण: राजनीतिक चेतना का अंतिम शिखर (नवयान बौद्ध धर्म):-

डॉ. अंबेडकर की राजनीति में धार्मिक रूपांतरण अंतिम और सबसे गहरा वैचारिक कदम था, जिसने दलित चेतना को सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक-कानूनी आयामों से परे ले जाकर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मुक्ति प्रदान की।

हिंदू धर्म का अंतिम अस्वीकरण और बौद्ध धर्म का चयन:-

1935 में, येवला सम्मेलन में अंबेडकर ने यह ऐतिहासिक ऐलान किया: “मैं हिंदू पैदा हुआ हूँ, लेकिन हिंदू मरूंगा नहीं”। उन्होंने यह अनुभव किया कि हिंदू धर्म के भीतर रहते हुए दलितों को वास्तविक समानता नहीं मिल सकती, क्योंकि जाति व्यवस्था की जड़ें धार्मिक ढांचे में थीं, जिसे केवल कानूनी सुधारों

से नहीं उखाड़ा जा सकता था। अंबेडकर ने ईसाई, इस्लाम और सिख धर्मों पर विचार किया, लेकिन अंततः उन्होंने बौद्ध धर्म को चुना क्योंकि यह समानता, अहिंसा और बुद्धि (Pradnya) पर बल देता है, तथा जाति-व्यवस्था को नकारता है। बीबीसी (BBC) लंदन में एक प्रसिद्ध प्रसारण में अंबेडकर ने समझाया कि वह बौद्ध धर्म को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि यह तीन सिद्धांतों प्रज्ञा (अंधविश्वास के विरुद्ध समझ), करुणा (दया), और समता (समानता) का संयोजन प्रदान करता है, जो कोई अन्य धर्म नहीं करता। बौद्ध धर्म व्यक्ति के कुशल कर्म (शुभ कर्म) पर बल देता है, न कि पूर्व जन्म के कर्मों या आत्मा पर, जो दलितों के लिए आत्म-सम्मान का आधार बना।

नवयान (नव-बौद्ध धर्म) की स्थापना और सांस्कृतिक स्वायत्तता

14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में, अंबेडकर ने लगभग आधे मिलियन दलितों के साथ बौद्ध धर्म अपनाया। इस आंदोलन को नवयान (Neo-Buddhism) कहा गया, जिसने महायान, थेरवाद और वज्रयान परंपराओं की शिक्षाओं को अस्वीकार कर दिया। अंबेडकर ने बौद्ध धर्म की पुनर्व्याख्या सामाजिक समानता और वर्ग संघर्ष के संदर्भ में की। यह धर्मांतरण केवल आध्यात्मिक घटना नहीं थी, बल्कि व्यक्तिगत मुक्ति और सामूहिक विरोध का एक सशक्त राजनीतिक कृत्य था, जिसने दलित समुदाय के आत्म-सम्मान और मुक्ति में योगदान दिया। धर्मांतरण के दौरान नए धर्मांतरितों को 22 प्रतिज्ञाएं दिलाई गईं, जो नवयान बौद्ध धर्म के सामाजिक आंदोलन पहलू को प्रदर्शित करती हैं और पारंपरिक बौद्ध धर्म से इसके विचलन को रेखांकित करती हैं। यह घोषणा दलितों को उस धार्मिक परंपरा से पूरी तरह से बाहर निकलने की अनुमति देती है जिसने उन्हें बहिष्कृत किया था, जिससे उन्हें सांस्कृतिक स्वायत्तता मिली।

धर्मांतरण के दूरगामी राजनीतिक निहितार्थ:-

धर्मांतरण के बाद के आंकड़े इस निर्णय के गहरे राजनीतिक प्रभाव को दर्शाते हैं। 1950 में भारत में बौद्ध धर्म से जुड़े लोगों की संख्या 5 लाख से कम थी, लेकिन अगले 10 वर्षों में दलितों के धर्मांतरण के जरिए यह संख्या बढ़कर 32 लाख से अधिक हो गई। हालांकि कुछ आलोचकों ने इस सामूहिक धर्मांतरण को एक राजनीतिक हथकंडा बताया, यह निर्विवाद है कि अंबेडकर ने बौद्ध धर्म के माध्यम से अपनी राजनीतिक दृष्टि का प्रचार किया। यह निर्णय दलित चेतना की सर्वोच्च अभिव्यक्ति थी, जिसने कानूनी और राजनीतिक सुरक्षा के बावजूद, सामाजिक समानता के मूल्य को प्राप्त करने के लिए आंतरिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को अनिवार्य माना।

डॉ. अंबेडकर की विरासत ने आधुनिक भारतीय राजनीति में दलितों की राजनीतिक चेतना को एक स्थायी आधार प्रदान किया है। उनके विचारों ने 1970 के दशक में दलित पैथर आंदोलन को वैचारिक सामग्री प्रदान की, जो सामाजिक सक्रियता के मोर्चे पर मुखर रहा। सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव मान्यवर कांशीराम और उनके द्वारा स्थापित बहुजन समाज पार्टी (बसपा) में दिखाई देता है। कांशीराम, जो अंबेडकर के लेखन और जीवन से गहराई से प्रभावित थे, ने अंबेडकर के सिद्धांत को अपनाया कि राजनीतिक शक्ति ही 'मास्टर की' है। बसपा की तीव्र चुनावी सफलता ने स्थापित किया कि दलित मुख्यधारा की राजनीति में एक महत्वपूर्ण शक्ति बन सकते हैं। हालांकि, कांशीराम ने अंबेडकर के 'जाति के विनाश' के लक्ष्य से रणनीतिक रूप से विचलन किया। उन्होंने दलितों को उनकी पहचान और आत्म-सम्मान के आधार पर लामबंद करने के लिए 'जाति प्रणाली को बढ़ावा देने' (Promote Caste System) के नारे को अपनाया। उनका विचार समतामूलक समाज के लिए जाति चेतना का राजनीतिकरण करना था, जिससे हाशिए के समुदायों को क्षेत्रीय रेखा में लाकर ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती दी जा सके।

वर्तमान में दलित चेतना के समक्ष चुनौतियाँ:-

अंबेडकर द्वारा स्थापित संवैधानिक सुरक्षा उपायों और विकसित हुई चेतना के बावजूद, भारतीय समाज में चुनौतियाँ बनी हुई हैं। जन्म के आधार पर विभाजन की समस्या आज भी दिखाई पड़ती है। गंभीर चिंता का विषय दलितों पर होने वाले अमानवीय अत्याचारों की निरंतरता है, जैसे खैरलांजी, मिर्चपुर, कुम्हेर और भगाना हत्याकांड। इसके अतिरिक्त, दलित चेतना के राजनीतिक फलक पर विभाजन और दुरुपयोग की समस्या भी है। यह देखा गया है कि अंबेडकर के नाम पर बने राजनीतिक दल दलितों के वोट बैंक का दुरुपयोग करके समुदाय को भ्रमित कर रहे हैं। दलितों के शोषण और दमन की घटनाओं को संसद में रखने में दलित और गैर-दलित राजनीतिज्ञ अक्सर नाकामयाब दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि सामाजिक आंदोलन या तो खरीद लिए जाते हैं या तोड़ दिए जाते हैं।

निष्कर्ष

डॉ. बी.आर. अंबेडकर की राजनीति दलित चेतना के निर्माण का एक समग्र और रणनीतिक प्रकल्प थी। उन्होंने शिक्षा को व्यक्तिगत मुक्ति के लिए एक प्रतीकात्मक कार्य के रूप में, नागरिक संघर्षों (महाड़) को मानवीय गरिमा के दावे के रूप में, संवैधानिक संस्थागतकरण को कानूनी सुरक्षा के आधार के रूप में, और धार्मिक रूपांतरण को अंतिम सांस्कृतिक स्वायत्तता के प्रतीक के रूप में उपयोग किया। अंबेडकर का कार्य यह स्थापित करता है कि दलित मुक्ति और भारतीय समाज का उपचार एक दूसरे से अविभाज्य है। उनकी विरासत आज भी समावेशिता, न्याय और समानता के लिए सतत संघर्ष की प्रेरणा स्रोत है, और यह भारतीय लोकतंत्र के विस्तार और उत्थान में एक महत्वपूर्ण शक्ति बनी हुई है।

संदर्भ सूची

1 प अम्बेडकर, बी.आर. पाकिस्तान आर द पार्टीशन आफ इंडिया.

2 प अम्बेडकर, बी.आर. (अनु. डॉ. अज्ञात, सुरेन्द्र). (2012). प्राचीन भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति. सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली.

3 प अम्बेडकर, बी.आर. अछूत कौन और कैसे?.

4. Ambedkar, B. R. The Annihilation of Caste.
5. Ambedkar, B. R. The Buddha and His Dhamma.
6. Darjee, Dilip Kumar (2025) Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar: A Review of His Struggle Against Caste Injustice and Legacy in Social and Constitutional Reform. Shikshan Sanshodhan: Journal of Arts, Humanities and Social Sciences.
7. Gore, M.S. (1993) The Social Context of an ideology, Ambedkar's Political and Social Thought Sage Publications, New Delhi.
8. Guru, Gopal (1991) Appropriating Ambedkar Economic and Political Weekly, Vol. 26, No. 27-28.
9. Omvedt, Gail (1994) Dalits and the Democratic Revolution: Dr. Ambedkar and the Dalit Movement in Colonial India Sage Publications, New Delhi.
10. Sahu, Janmejay (1948) Social Justice: Ideas of Dr.B.R. Ambedkar. Bloomsbury Publications, New Delhi.
11. सिंह रघुवीर (2000). डॉ. अम्बेडकर और दलित चेतना. कामना प्रकाशन, दिल्ली.
12. कंवल भारती. दलित विमर्श की भूमिका. इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद.
13. नानकचन्द और डॉ. के. पी. सिंह (2013). "आधुनिक भारतीय दलित चेतना में डॉ. अम्बेडकर के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन"।
14. पासवान, डॉ. चंद्रशेखर (1998). बौद्ध धर्म और आधुनिक दलित चेतना. दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.
15. गुप्ता, रमणिका (1998). दलित चेतना-सोच. जनलेखन प्रकाशन, बिहार.

भारत में लैंगिक न्याय और लिंग की राजनीति: एक अवलोकन

डॉ० धनंजय यादव

(असिस्टेंट प्रोफेसर) राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी.कॉलेज, सिवान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण), बिहार

शोध आलेख का सारतत्व :

भारत में लैंगिक न्याय और लिंग की राजनीति : एक अवलोकन का महत्वपूर्ण विषय है। आज की तारीख में भारतीय लोकतंत्र की प्रक्रिया के केंद्र में लैंगिक न्याय और लिंग की राजनीति को रखा जा रहा है। भारत के संविधान में लैंगिक न्याय विषयक प्रावधानों के बावजूद व्यवहारिक स्तर पर महिलाओं को अब भी असमानता, भेदभाव और पितृसत्तात्मक संरचनाओं का सामना करना पड़ता है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी, पंचायतों एवं शहरी निकायों में महिला आरक्षण एवं प्रतिनिधित्व को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक महिलाओं की स्थिति दर्शाती है कि लैंगिक न्याय केवल स्त्री-पुरुष समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह अंतःविषयक असमानताओं से भी जुड़ा हुआ है। भारत में LGBTQ+ समुदाय के अधिकारों को मान्यता मिलना, ट्रांसजेंडर अधिकार अधिनियम 2019 जैसे विधानों के माध्यम से भारत की समकालीन राजनीति में जेंडर विमर्श के नए आयाम को सामने लाया है। महिला आंदोलनों, निर्भया आंदोलन से लेकर 'रू मी टू' तक ने सामाजिक चेतना को प्रभावित किया है तथा सत्ता प्रतिष्ठानों को जवाबदेह बनाया है। संसद तथा राज्य विधान मंडलों में महिलाओं को एक - तिहाई आरक्षण प्रावधान की स्वीकृति दी गई है। इसके बाद भी राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र की कमी, सांस्कृतिक रूढ़िवादिता और आर्थिक असमानता जैसी चुनौतियाँ लैंगिक न्याय के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं। स्पष्टतः भारत में लैंगिक न्याय और लिंग की सकारात्मक राजनीति को स्थापित करने को आदर प्राप्त हो सकता है।

प्रमुख शब्दावली :

लिंग, लैंगिक न्याय, लैंगिक समानता, लैंगिक भेदभाव, नारीवाद, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, महिला सशक्तिकरण, लैंगिक शोषण, सामाजिक न्याय, संविधानिक प्रावधान, आरक्षण, लैंगिक हिंसा, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, राजनीतिक सहभागिता और न्याय, मान प्रतिनिधित्व का सिद्धांत, मानवाधिकार, वैधानिक और सामाजिक सुधार, कानूनी संरक्षण, लैंगिक संवेदनशीलता आदि।

प्रस्तावना :

भारत में लैंगिक न्याय और लिंग की राजनीति पर विमर्श की सार्थकता उनकी पृष्ठभूमि में भी निहित हो सकता है। भारतीय समाज में लिंग की भूमिका केवल जैविक भिन्नता तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ी रही है। प्राचीन काल से ही स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं को परिभाषित करने का कार्य समाज ने किया और इन भूमिकाओं ने राजनीतिक अवसरों, अधिकारों और सहभागिता पर भी असर डाला। आधुनिक लोकतांत्रिक भारत में समानता, स्वतंत्रता और न्याय के संवैधानिक आदर्शों को अपनाया गया, परंतु वास्तविकता में लैंगिक असमानता अभी भी मौजूद है। यही कारण है कि समकालीन राजनीति में लिंग का प्रश्न केवल प्रतिनिधित्व का विषय नहीं है, बल्कि न्याय, अधिकार और अवसर की समानता का मुद्दा है।¹ इस दृष्टि से यह विषय न केवल राजनीति विज्ञान के लिए बल्कि समाजशास्त्र, मानवाधिकार और न्याय की अवधारणाओं के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

भारतीय राजनीति और लिंग का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य गहरी जड़ों से जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में स्त्रियों को अपेक्षाकृत उच्च स्थान प्राप्त था और वे विद्या, सभा और यज्ञों में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं, किंतु उत्तर वैदिक काल में यह स्थिति बदलने लगी और स्त्रियों की भूमिकाएँ सीमित होकर घरेलू दायरे में सिमटने लगीं। महाकाव्य काल और धर्मशास्त्रीय परंपराओं में पितृसत्तात्मक व्यवस्था मजबूत हुई, जिससे स्त्रियों की राजनीतिक भागीदारी लगभग समाप्त हो गई। मध्यकालीन भारत में भी स्त्रियों की स्थिति दबी-कुचली रही, हालाँकि भक्ति और सूफी आंदोलनों ने उन्हें सामाजिक और धार्मिक स्तर पर कुछ हद तक अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया। औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी शिक्षा और समाज सुधार आंदोलनों ने स्त्रियों के अधिकारों और समानता की दिशा में नई चेतना जगाई। स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने राजनीति में उनकी भूमिका को पुनर्स्थापित किया² और स्वतंत्र भारत में संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से उन्हें समान अधिकार मिले। इस प्रकार, भारत में लिंग और राजनीति का इतिहास निरंतर उतार-चढ़ाव से भरा रहा है, जहाँ दमन और समानता की लड़ाई ने आज के लैंगिक न्याय के विमर्श को जन्म दिया।³ 'लिंग की राजनीति' की स्पष्टता हेतु इसकी अवधारणा और परिभाषा पर ध्यान देना आवश्यक है। लिंग की राजनीति का तात्पर्य केवल पुरुष और स्त्री के बीच जैविक भेद से नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं में उनकी भूमिकाओं और अवसरों से जुड़ा हुआ है। जब राजनीति में लिंग का प्रश्न उठता है, तो उसका आशय यह होता है कि सत्ता, संसाधन, अधिकार और प्रतिनिधित्व किस प्रकार पुरुष और स्त्री के बीच वितरित होते हैं। यह वितरण अक्सर असमान होता है, जिससे लिंग की राजनीति उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से लिंग की राजनीति का केंद्र समान अवसर, समान भागीदारी और न्याय की स्थापना है।

भारतीय राजनीति में लिंग का सैद्धांतिक आधार विभिन्न विचारधाराओं से निर्मित हुआ है। नारीवादी चिंतन ने यह स्पष्ट किया कि राजनीति केवल सत्ता और शासन की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ी होती है,⁵ जिनमें लिंग असमानता को बनाए रखा जाता है। उदारवादी नारीवाद ने शिक्षा, रोजगार और राजनीति में समान अवसर की माँग की, जबकि कट्टरपंथी नारीवाद ने पितृसत्ता को एक ऐसी संरचना के रूप में पहचाना, जो स्त्रियों को निर्णय-प्रक्रियाओं से दूर रखती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने लिंग की राजनीति को वर्ग और आर्थिक शोषण से जोड़कर देखा। इस प्रकार राजनीति में लिंग का प्रश्न केवल प्रतिनिधित्व का नहीं, बल्कि सत्ता और संसाधनों के असमान वितरण की गहरी संरचनात्मक समस्या है। भारतीय समाज में लिंग आधारित भूमिकाएँ ऐतिहासिक रूप से गढ़ी गई हैं। स्त्रियों को प्रायः घरेलू कार्यों, बच्चों की देखभाल और पारिवारिक जिम्मेदारियों तक सीमित कर दिया गया, जबकि पुरुषों को सार्वजनिक जीवन, उत्पादन और निर्णय लेने की भूमिकाओं में प्राथमिकता दी गई। इस सामाजिक संरचना ने महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को सीमित किया और उन्हें अधिकारों और अवसरों से वंचित रखा। हालाँकि समय-समय पर समाज सुधार आंदोलनों और संवैधानिक प्रावधानों ने इस असमानता को चुनौती दी, लेकिन व्यवहारिक स्तर पर आज भी लिंग आधारित भूमिकाएँ राजनीति में असमान प्रतिनिधित्व की वजह बनती हैं। यही कारण है कि राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति अक्सर प्रतीकात्मक बनकर रह जाती है और वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति पुरुषों के हाथों में केंद्रित रहती है।

राजनीति विज्ञान का एक महत्वपूर्ण पहलू लिंग और सत्ता संरचना संबंध का है। सत्ता का वितरण समाज में समान रूप से नहीं होता है, बल्कि यह विशेष समूहों और वर्गों के हित में केंद्रित होता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने लंबे समय तक सत्ता संरचना को पुरुष-प्रधान बनाए रखा, जिससे महिलाओं को राजनीति में हाशिये पर धकेला गया। सत्ता केवल राजनीतिक पदों तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह परिवार, समाज, संस्कृति और आर्थिक जीवन में भी प्रकट होती है। इन सभी क्षेत्रों में असमानताओं के कारण स्त्रियों की आवाज को दबाया गया और उन्हें निर्णय-प्रक्रिया से बाहर रखा गया।⁶ हालाँकि लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं और आरक्षण जैसे उपायों ने महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाया है, लेकिन सत्ता संरचना में पुरुषों का वर्चस्व अभी भी गहरा है। इस प्रकार लिंग और सत्ता का संबंध राजनीति में समानता और न्याय की दिशा में सबसे बड़ी चुनौती के रूप में सामने आता है।

भारत में लैंगिक न्याय की अवधारणा समानता और न्याय के व्यापक सिद्धांतों पर आधारित है, जिसमें पुरुष और महिला दोनों को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अवसरों में बराबरी का दर्जा देने पर बल दिया जाता है। इसका सैद्धांतिक पक्ष न केवल सामाजिक संरचना में समान भागीदारी को मान्यता देता है, बल्कि उन ऐतिहासिक असमानताओं को दूर करने पर भी केंद्रित है जो लंबे समय तक महिलाओं को द्वितीयक भूमिका में बाँधकर रखती रही हैं। भारतीय संविधान ने इस दिशा में ठोस आधार प्रदान किया है। अनुच्छेद 14, 15 और 16 में समानता और भेदभाव निवारण के स्पष्ट प्रावधान किए गए हैं,⁷ जबकि अनुच्छेद 39 और 42 जैसे नीति निर्देशक तत्व लैंगिक समानता और महिलाओं की गरिमा को संरक्षित करने की दिशा में मार्गदर्शक सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं।⁸ इस प्रकार लैंगिक न्याय केवल कानूनी अधिकार तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय के सिद्धांत से जुड़कर महिलाओं के सशक्तिकरण और उनके सम्मानित अस्तित्व को सुनिश्चित करता है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में लैंगिक विमर्श विशेष रूप से उभरकर सामने आया। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने न केवल आंदोलन को जनांदोलन का स्वरूप दिया, बल्कि राजनीतिक अधिकारों की दिशा में भी नए रास्ते खोले। गांधी, नेहरू और अन्य नेताओं ने महिलाओं की भूमिका को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख आधार माना। समाज सुधार आंदोलनों में भी राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और महात्मा फुले जैसे नेताओं ने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया, जिसने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिला भागीदारी की नींव को मजबूत किया। स्वतंत्रता के बाद भारतीय लोकतंत्र ने महिलाओं को मताधिकार, शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के अधिकार देकर लैंगिक न्याय की दिशा में ठोस प्रगति की। समय के साथ महिला संगठनों और आंदोलनों ने भी महिला अधिकारों के विकास को गति दी, जिसके परिणामस्वरूप आज भारतीय समाज में लैंगिक न्याय की अवधारणा सामाजिक और राजनीतिक विमर्श का अभिन्न हिस्सा बन चुकी है।

समकालीन भारत में लिंग की राजनीति एक अत्यंत महत्वपूर्ण विमर्श का विषय है, क्योंकि यह केवल सामाजिक असमानताओं को नहीं दर्शाती बल्कि राजनीतिक शक्ति-संरचना और लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की दिशा में भी नई संभावनाओं और चुनौतियों को उजागर करती है। चुनाव और प्रतिनिधित्व में महिलाओं की स्थिति आज भी अपेक्षाकृत कमजोर है। संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अब भी बहुत सीमित है, जबकि लोकतंत्र का आधार सभी वर्गों की समान भागीदारी पर टिका है। विभिन्न राजनीतिक दल महिलाओं को चुनावों में टिकट देने के मामले में पर्याप्त इच्छाशक्ति का परिचय नहीं देते, जिसके कारण उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व न्यूनतम स्तर पर बना हुआ है। हालाँकि स्वतंत्रता के बाद से महिलाओं के मताधिकार को संविधानिक रूप से सुनिश्चित किया गया और धीरे-धीरे कुछ क्षेत्रों में महिला नेताओं ने अपनी पहचान बनाई,⁹ फिर भी उच्च स्तर की राजनीति में उनकी उपस्थिति अभी भी असमान रूप से कम है।

स्थानीय निकायों और पंचायत स्तर पर महिला आरक्षण ने इस परिदृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया। 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायतों और नगर निकायों में एक-तिहाई सीटों पर महिलाओं के लिए आरक्षण ने उन्हें राजनीतिक रूप से सक्रिय होने का अवसर प्रदान किया। इससे ग्रामीण और शहरी स्तर पर बड़ी संख्या में महिलाएँ राजनीति में आईं और उन्होंने स्थानीय प्रशासनिक निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभाई। यह व्यवस्था न केवल महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करती है, बल्कि उन्हें नेतृत्व कौशल और सामाजिक सम्मान भी देती है। समय के साथ कई राज्यों ने महिला आरक्षण को 50 प्रतिशत तक बढ़ा दिया, जिससे ग्रामीण भारत में महिला नेतृत्व का दायरा और भी विस्तृत हुआ। हालाँकि आरक्षण की इस नीति ने राजनीतिक सहभागिता को बढ़ाया, परंतु जमीनी स्तर पर महिलाएँ अभी भी कई चुनौतियों से जूझ रही हैं, जैसे पुरुष परिजनों द्वारा 'प्रॉक्सी' प्रतिनिधित्व, सामाजिक दबाव और संसाधनों की कमी। महिला नेतृत्व की दिशा में भी भारत ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इंदिरा गांधी जैसी नेता ने न केवल भारत के प्रधानमंत्री के रूप में लंबे समय तक नेतृत्व किया बल्कि वैश्विक राजनीति में भी भारत की छवि को मजबूत किया।¹⁰ वर्तमान में भी अनेक महिला नेता राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीति में सक्रिय हैं और अपनी विशिष्ट पहचान बना रही हैं। लेकिन इसके बावजूद महिला नेताओं को सामाजिक पूर्वाग्रह, राजनीतिक हिंसा, चरित्र हनन और मीडिया के पक्षपात जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। नेतृत्व की भूमिका में महिलाओं की क्षमता पर संदेह करने वाली मानसिकता आज भी भारतीय समाज में गहराई से जड़ें जमाए हुए है, जो लिंग की राजनीति में असमानता को और गहरा करती है।

लैंगिक न्याय और कानूनी ढाँचा भारतीय समाज में लैंगिक असमानताओं को कम करने का सबसे मजबूत आधार है। भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता और गरिमा प्रदान करने के लिए कई प्रावधान किए हैं। अनुच्छेद 14 समानता के अधिकार की गारंटी देता है,¹¹ अनुच्छेद 15 लिंग के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है¹² और अनुच्छेद 16 रोजगार में समान अवसर सुनिश्चित करता है।¹³ इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 39 महिलाओं और पुरुषों को समान वेतन और उचित कार्य परिस्थितियों की दिशा में राज्य को निर्देशित करता है,¹⁴ जबकि अनुच्छेद 42 मातृत्व संरक्षण की व्यवस्था करता है।¹⁵ ये प्रावधान इस बात के प्रमाण हैं कि भारतीय संविधान ने लैंगिक न्याय को सामाजिक न्याय का आवश्यक अंग माना है। संविधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त भारत में महिलाओं के संरक्षण और सशक्तिकरण से संबंधित अनेक विशेष कानून बनाए गए हैं। दहेज निषेध अधिनियम (1961) ने विवाह संबंधी शोषण और आर्थिक दबाव को रोकने का प्रयास किया। घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम (2005) ने महिलाओं को पारिवारिक जीवन में हिंसा और उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान की। कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतिक्रिया) अधिनियम (2013) ने पेशेवर जीवन में महिलाओं की गरिमा और सुरक्षा को सुनिश्चित करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम उठाया। इसके अलावा मातृत्व लाभ अधिनियम और समान वेतन अधिनियम जैसे कानूनों ने महिलाओं की कार्यस्थल पर स्थिति को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

न्यायपालिका ने भी लैंगिक न्याय को सशक्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कई ऐतिहासिक निर्णयों ने महिलाओं के अधिकारों को मजबूत किया और समाज में लैंगिक समानता की दिशा में मार्ग प्रशस्त किया। विषाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) का निर्णय कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संबंधित कानूनी ढाँचे की नींव बना। शाह बानो केस (1985) ने तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं के भरण-पोषण अधिकार को एक नया आयाम दिया, जिसने व्यक्तिगत कानून और लैंगिक न्याय के बीच संतुलन पर बहस को जन्म दिया। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने 'त्रिपल तलाक' को असंवैधानिक ठहराकर महिलाओं के अधिकारों की रक्षा की दिशा में ऐतिहासिक कदम उठाया। इन निर्णयों ने यह स्पष्ट किया कि न्यायपालिका भारतीय लोकतंत्र में लैंगिक न्याय की स्थापना का एक सशक्त स्तंभ है।

समकालीन भारत में लिंग की राजनीति और लैंगिक न्याय एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। जहाँ एक ओर महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और नेतृत्व की चुनौतियाँ बनी हुई हैं, वहीं दूसरी ओर संवैधानिक प्रावधान, कानूनी ढाँचा और न्यायपालिका के हस्तक्षेप ने महिलाओं को समानता और गरिमा दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह यात्रा अभी अधूरी है, लेकिन इसके निरंतर प्रयास भारतीय लोकतंत्र को और अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में आगे बढ़ा रहे हैं।

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता एक गहरी जड़ें जमाए हुए समस्या है, जिसका प्रभाव शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक जीवन के लगभग हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में अभी भी लड़कियों और लड़कों के बीच अवसरों की असमानता मौजूद है। ग्रामीण इलाकों में बेटियों की शिक्षा को अनावश्यक समझने की मानसिकता प्रबल है, जिसके कारण बालिकाओं की उच्च शिक्षा तक पहुँच सीमित रह जाती है। हालाँकि सरकारी योजनाओं और पहल ने स्कूलों में लड़कियों की नामांकन दर को बढ़ाया है, लेकिन शिक्षा की गुणवत्ता, स्कूल तक सुरक्षित पहुँच और सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ अब भी बड़ी चुनौती बनी हुई हैं। स्वास्थ्य क्षेत्र में भी महिलाओं को अपेक्षाकृत कम प्राथमिकता दी जाती है, जिसके चलते मातृ मृत्यु दर, एनीमिया और पोषण की कमी जैसी समस्याएँ व्यापक हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं तक महिलाओं की पहुँच सीमित है, वहीं शहरी क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य खर्च की उच्च लागत और लैंगिक संवेदनशीलता की कमी बाधा बनती है।

रोजगार और आर्थिक अवसरों के क्षेत्र में लैंगिक असमानता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। महिलाओं की श्रम शक्ति भागीदारी पुरुषों की तुलना में काफी कम है, और जो महिलाएँ कार्यरत भी हैं, उन्हें समान कार्य के लिए समान वेतन नहीं मिलता। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति और अधिक दयनीय है, जहाँ उन्हें कानूनी और सामाजिक सुरक्षा का अभाव झेलना पड़ता है। उच्च पदों और नेतृत्व की भूमिकाओं में महिलाओं की भागीदारी अभी भी सीमित है, जिससे निर्णय प्रक्रिया में उनकी आवाज कमजोर पड़ जाती है। इसके अतिरिक्त लैंगिक हिंसा और अपराध, जैसे दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और बलात्कार जैसी घटनाएँ, महिलाओं के आत्मविश्वास और समान अवसरों को बाधित करती हैं। इन अपराधों की संख्या में वृद्धि यह दर्शाती है कि कानून बनने के बावजूद सामाजिक मानसिकता और पितृसत्तात्मक संरचनाएँ अब भी गहरे पैठी हुई हैं। ग्रामीण और शहरी परिप्रेक्ष्य में अंतर भी महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक परंपराएँ, अशिक्षा और आर्थिक निर्भरता महिलाओं को और अधिक वंचित बनाती हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में अवसर अधिक हैं, परंतु यहाँ भी लैंगिक असमानता, कार्यस्थल पर असुरक्षा और सामाजिक दबाव व्यापक रूप से मौजूद हैं। इन असमानताओं के बीच भारत में महिला आंदोलन और नारीवादी विमर्श ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में समाज सुधार आंदोलनों ने बाल विवाह, सती प्रथा और पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों से महिला शिक्षा और अधिकारों के प्रति चेतना का विकास हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने उन्हें न केवल राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूक किया बल्कि स्वतंत्र भारत में समान नागरिक अधिकारों की मांग को भी बल दिया। स्वतंत्रता के बाद नारीवादी आंदोलन ने महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया। 1970 और 1980 के दशकों में नारीवादी आंदोलनों ने दहेज हिंसा, बलात्कार और कार्यस्थल पर भेदभाव जैसे मुद्दों को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया।

समकालीन दौर में महिला संगठनों की भूमिका और अधिक व्यापक हो गई है। स्वायत्त महिला संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं और गैर-सरकारी संगठनों ने जमीनी स्तर पर महिलाओं के अधिकारों और समानता की लड़ाई को गति दी है। पंचायती राज में महिलाओं के लिए आरक्षण ने स्थानीय स्तर पर महिला नेतृत्व को बढ़ावा दिया, और महिला संगठनों ने उनके सशक्तिकरण में सहायक भूमिका निभाई। सामाजिक आंदोलनों के साथ-साथ कानूनी सुधारों के लिए दबाव बनाने और नीति निर्माण पर प्रभाव डालने में भी इन संगठनों का योगदान उल्लेखनीय रहा है। मीडिया और साहित्य ने भी लैंगिक विमर्श को समाज के व्यापक हिस्से तक पहुँचाने में भूमिका निभाई है। साहित्यकारों और पत्रकारों ने लैंगिक असमानता, महिला अधिकारों और नारीवादी चिंतन को मुख्यधारा में लाने का कार्य किया। फिल्मों, उपन्यासों और कविताओं के माध्यम से महिलाओं के संघर्ष और उनकी आकांक्षाओं को चित्रित किया गया है, जिससे समाज में संवेदनशीलता बढ़ी है।

लैंगिक असमानता और महिला आंदोलन के ऐतिहासिक और समकालीन स्वरूप से यह स्पष्ट होता है कि भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए केवल कानूनी उपाय पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सामाजिक चेतना, नारीवादी विमर्श और महिला संगठनों की सक्रिय भूमिका भी उतनी ही आवश्यक है। यह संघर्ष केवल अधिकारों की प्राप्ति का नहीं बल्कि समाज की सोच और संरचना में मूलभूत परिवर्तन का है, जो एक समतामूलक और न्यायपूर्ण समाज की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है।

समकालीन भारत में लैंगिक न्याय की राह में कई गंभीर चुनौतियाँ मौजूद हैं, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचे में गहराई से समाई हुई हैं। सबसे बड़ी चुनौती पितृसत्तात्मक मानसिकता है, जो महिलाओं की स्वतंत्रता और समानता को लगातार सीमित करती है। यह मानसिकता केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि शहरी और शिक्षित समाज में भी अपनी छाया बनाए रखती है। बेटियों की शिक्षा, विवाह, करियर विकल्प और सामाजिक जीवन में निर्णय लेने की स्वतंत्रता पर परिवार और समाज का नियंत्रण, महिलाओं को बराबरी का दर्जा नहीं मिलने देता। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी अक्सर प्रतीकात्मक रूप तक ही सीमित रहती है। पंचायतों और विधानसभाओं में महिला आरक्षण ने संख्या बढ़ाई है, लेकिन कई बार वास्तविक निर्णय पुरुष परिजन या परिवार के सदस्य ही लेते हैं, जिससे महिलाओं की राजनीतिक शक्ति सीमित हो जाती है। सामाजिक-आर्थिक असमानता भी लैंगिक न्याय की दिशा में बड़ी बाधा है। गरीब और वंचित वर्ग की महिलाएँ दोहरी मार झेलती हैं—एक ओर आर्थिक शोषण और दूसरी ओर लैंगिक भेदभाव। वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने महिलाओं को एक ओर नए अवसर दिए हैं, तो दूसरी ओर उन्हें वस्तुकरण और व्यावसायिक शोषण का शिकार भी बनाया है। विज्ञापनों और मीडिया में महिलाओं की छवि अक्सर उपभोक्तावादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत होती है, जिससे उनकी वास्तविक क्षमता और पहचान को हाशिये पर धकेला जाता है। इन चुनौतियों के बावजूद भारत में लैंगिक न्याय की ओर कई महत्वपूर्ण पहल और सुधार हुए हैं। सरकारी स्तर पर बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ जैसी योजनाओं ने बालिकाओं की शिक्षा और अस्तित्व की रक्षा पर ध्यान केंद्रित किया है। महिला आरक्षण विधेयक पर लगातार विमर्श और पंचायतों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण ने राजनीतिक क्षेत्र में उनकी स्थिति को सुदृढ़ किया है। राष्ट्रीय महिला आयोग जैसी संस्थाओं ने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और उनकी समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। घरेलू हिंसा अधिनियम, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से सुरक्षा अधिनियम और दहेज निषेध कानून जैसे विधिक प्रावधानों ने कानूनी सुरक्षा का ढांचा मजबूत किया है। गैर-सरकारी संगठनों और सिविल सोसायटी ने जमीनी स्तर पर महिलाओं के सशक्तिकरण और जागरूकता में अहम योगदान दिया है। इन संगठनों ने न केवल पीड़ित महिलाओं को सहयोग और न्याय दिलाने में सहायता की है, बल्कि नीति-निर्माण की प्रक्रिया पर भी प्रभाव डाला है। शिक्षा, मीडिया और टेक्नोलॉजी ने भी लैंगिक न्याय की दिशा में परिवर्तनकारी भूमिका निभाई है। शिक्षा ने महिलाओं को अपने अधिकारों और अवसरों के प्रति जागरूक किया है, मीडिया ने महिला मुद्दों को मुख्यधारा तक पहुँचाया है और टेक्नोलॉजी ने उन्हें डिजिटल दुनिया में नई संभावनाएँ प्रदान की हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर महिलाओं की आवाज को व्यापक पहचान मिली है, जिससे लैंगिक अन्याय के खिलाफ सामूहिक चेतना और आंदोलन खड़े हुए हैं।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में लैंगिक न्याय पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन और संधियों ने भारत सहित सभी देशों पर गहरा प्रभाव डाला है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित बीजिंग सम्मेलन और सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में लैंगिक समानता को प्रमुख लक्ष्य बनाया गया है, जिसने भारत को अपनी नीतियों और योजनाओं को लैंगिक संवेदनशील बनाने की दिशा में प्रेरित किया। भारत की स्थिति की तुलना जब विकसित देशों से की जाती है तो यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार के बावजूद राजनीतिक और आर्थिक भागीदारी में भारतीय महिलाएँ अब भी पीछे हैं। विकसित देशों में महिलाओं की कार्यबल भागीदारी और नेतृत्व में उपस्थिति कहीं अधिक सशक्त है, जबकि भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ अब भी प्रभावी हैं। हालांकि दक्षिण एशियाई संदर्भ में देखा जाए तो भारत ने महिला शिक्षा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और कानूनी सुधारों में महत्वपूर्ण प्रगति की है। वैश्विक नारीवादी विमर्श ने भारतीय राजनीति और समाज पर सीधा प्रभाव डाला है। पश्चिमी देशों में उभरे नारीवादी आंदोलनों और विचारधाराओं ने भारतीय महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी है। मीडिया और साहित्य के माध्यम से वैश्विक विमर्श भारत में पहुँचा और उसने महिला आंदोलनों को नई दिशा दी।

समकालीन भारत में लैंगिक न्याय की राह चुनौतियों और अवसरों का संगम है। पितृसत्तात्मक मानसिकता और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं जैसी बाधाएँ अभी भी बनी हुई हैं, परंतु सरकारी नीतियों, सामाजिक संगठनों और वैश्विक विमर्श के प्रभाव से सकारात्मक परिवर्तन की संभावनाएँ भी मजबूत हुई हैं। शिक्षा, कानून, मीडिया और तकनीक ने महिलाओं को नई शक्ति और पहचान दी है, जिससे भविष्य में लैंगिक न्याय की दिशा में और अधिक सशक्त कदम उठाए जा सकते हैं। भारत का यह अनुभव दर्शाता है कि लैंगिक न्याय केवल सामाजिक सुधार का प्रश्न नहीं है बल्कि यह लोकतांत्रिक विकास और मानवाधिकारों की संपूर्णता से जुड़ा हुआ मुद्दा है।

निष्कर्ष :

अबतक के अध्ययन से भारत में लैंगिक न्याय और लिंग की राजनीति से यह निष्कर्ष सामने आया है कि यद्यपि भारतीय समाज और राजनीति में महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं, फिर भी पितृसत्तात्मक मानसिकता, सामाजिक-आर्थिक असमानता और प्रतीकात्मक भागीदारी जैसी चुनौतियाँ गहराई से मौजूद हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में महिलाओं को मिले अवसरों ने उनकी स्थिति को सुदृढ़ किया है, परंतु वास्तविक समानता अभी भी एक दूर का लक्ष्य प्रतीत होती है। महिला आंदोलनों, नारीवादी विमर्श और वैश्विक प्रभावों ने भारतीय समाज को नए दृष्टिकोण दिए हैं, जिनसे महिलाओं के अधिकारों और न्याय के मुद्दे अधिक मुखर हुए हैं। भविष्य की संभावनाएँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि भारतीय लोकतंत्र किस हद तक अपनी नीतियों और संस्थाओं को अधिक संवेदनशील और समावेशी बनाता है। शिक्षा और जागरूकता के विस्तार से लैंगिक समानता को और गहराई तक पहुँचाया जा सकता है। तकनीक और मीडिया की भूमिका इस दिशा में महत्वपूर्ण होगी, जिससे महिलाओं की आवाज व्यापक स्तर पर सुनी जा सके। लैंगिक न्याय की दिशा में ठोस उपायों के रूप में समाज में पितृसत्तात्मक सोच को बदलने के लिए शिक्षा प्रणाली में लैंगिक संवेदनशील पाठ्यक्रम जोड़े जाने चाहिए। राजनीतिक प्रतिनिधित्व में महिलाओं को केवल संख्या नहीं बल्कि निर्णय-प्रक्रिया में वास्तविक भागीदारी दिलाने के उपाय किए जाएँ। कार्यस्थलों और समाज में यौन उत्पीड़न तथा हिंसा के खिलाफ कानूनों को और प्रभावी बनाया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा

देने के लिए स्वरोजगार और कौशल विकास की योजनाओं का विस्तार आवश्यक है। इन प्रयासों से न केवल महिलाओं की स्थिति मजबूत होगी बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था भी अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी बनेगी। स्पष्टतः प्रस्तुत विषय पर शोध आलेख महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची :

1. चक्रवर्ती, उमा (2003), लिंग, जाति और राष्ट्रवाद: भारतीय समाज की नारीवादी पुनर्पाठ, नई दिल्ली: महिला अध्ययन प्रकाशन, पृ. 42
2. मजूमदार, वीणा (2008), भारतीय महिला और राजनीतिक भागीदारी, दिल्ली: अवध पब्लिशिंग हाउस, पृ. 42
3. चटर्जी, पार्थ (1993). द नेशन एंड इट्स फ्रागमेंट्स: कॉलोनीयल एंड पोस्टकॉलोनीयल हिस्ट्रीज. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 54
4. नंदा, मीना (2014), भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 112
5. चक्रवर्ती, उमा (2003), लिंग, जाति और राष्ट्रवाद: भारतीय समाज की नारीवादी पुनर्पाठ, नई दिल्ली: महिला अध्ययन प्रकाशन, पृ. 64
6. मजूमदार, वीणा (2008), भारतीय महिला और राजनीतिक भागीदारी, दिल्ली: अवध पब्लिशिंग हाउस, पृ. 47
7. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 14 से 16 में उपबोधित
8. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 39 और 42 में उपबोधित
9. किश्वर, मधु (1999), भारतीय राजनीति में स्त्री की स्थिति, नई दिल्ली: मैकग्राइड पब्लिशर्स, पृ. 87
10. पंत, गिरीश (2012), इंदिरा गांधी: एक राजनीतिक विश्लेषण, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 203
11. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 14 में उपबोधित
12. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 15 में उपबोधित
13. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 16 में उपबोधित
14. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 39 में उपबोधित
15. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 42 में उपबोधित

बिबलियोग्राफी

प्राथमिक स्रोत (प्राइमरी सोर्सेज):

1. भारत सरकार। (2001)। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2001। नई दिल्ली : स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय।
2. भारत सरकार। (2005)। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005। नई दिल्ली : विधि एवं न्याय मंत्रालय।
3. भारत सरकार। (2013)। लैंगिक अपराध (संशोधन) अधिनियम 2013। नई दिल्ली : विधि एवं न्याय मंत्रालय।
4. भारत सरकार। (2006)। राष्ट्रीय महिला नीति 2006। नई दिल्ली : महिला एवं बाल विकास मंत्रालय।
5. राष्ट्रीय महिला आयोग। (2022)। वार्षिक प्रतिवेदन 2021-22। नई दिल्ली : राष्ट्रीय महिला आयोग।

द्वितीयक स्रोत (सेकेंडरी सोर्सेज) :

1. बासु, ए. (1995), द चौलेंज ऑफ लोकल फेमिनिज्म : विमेंस मूवमेंट इन ग्लोबल पर्सपेक्टिव, न्यूयॉर्क : वेस्टव्यू प्रेस।
2. अग्निहोत्री, एस. बी. (2000), जेंडर एंड ग्लोबलाइजेशन इन इंडिया, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. चटर्जी, पार्थ। (1993), द नेशन एंड इट्स फ्रैगमेंट्स : कोलोनीयल एंड पोस्टकोलोनीयल हिस्ट्रीज, प्रिंसटन : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. फोर्ब्स, जी. (1996), वीमेन इन मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. रेवथी, के. (2007), जेंडर एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया, हैदराबाद : ओरिएंट ब्लैकस्वान।
6. ठाकुर, एम. (2014)। पॉलिटिक्स ऑफ रिप्रजेंटेशन : विमेन्स मूवमेंट एंड रिजर्वेशन डिबेट इन इंडिया, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन्स।
7. पटेल, वी. (2010)। जेंडर इक्वालिटी एंड विमेन्स एम्पावरमेंट, नई दिल्ली : गीता प्रकाशन।
8. मिश्रा, ए. (2018)। भारतीय राजनीति में लैंगिक समानता, वाराणसी : भारती प्रकाशन।
9. त्रिपाठी, आर. (2017)। समकालीन भारत में नारीवाद और न्याय, दिल्ली : अनामिका प्रकाशन।
10. शर्मा, एस. (2019)। लैंगिक न्याय और भारतीय संविधान, पटना : ज्ञानदीप पब्लिशर्स।
11. वर्मा, के. (2020)। समकालीन भारत में लिंग राजनीति, जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स।
12. कुमारी, आर. (2009), वीमेन एंड लॉ इन इंडिया, नई दिल्ली : वाणी पब्लिशर्स।
13. डेसाई, एन. (2005), वीमेन इन इंडियन सोसाइटी, मुंबई : हिमालय पब्लिशिंग।
14. सुब्रह्मण्यम, एस. (2010)। इक्वालिटी एंड विमेन्स राइट्स, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन्स।
15. शाह, जी. (2012)। डालिट वीमेन एंड सोशल जस्टिस, जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स।

स्थानीय स्वशासन में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव विशेषतः बिहार राज्य के संदर्भ में

स्वीटी गुप्ता

(असिस्टेंट प्रोफेसर) राजनीति विज्ञान विभाग, गया कॉलेज, गया जी, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार

शोध आलेख का सारतत्व :

स्थानीय स्वशासन में महिला सशक्तिकरण भारतीय लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में उभरा है, जिसने न केवल महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाया है, बल्कि ग्रामीण और शहरी प्रशासन में उनकी निर्णायक भूमिका को भी सशक्त किया है। विशेषतः बिहार राज्य के संदर्भ में, 2006 के बाद से पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत आरक्षण ने स्थानीय शासन की संरचना में ऐतिहासिक परिवर्तन किए हैं। इस आरक्षण नीति ने उन महिलाओं को भी निर्णय प्रक्रिया में शामिल होने का अवसर दिया, जो पारंपरिक रूप से राजनीतिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर रही थीं। परिणामस्वरूप, बिहार में महिला मुखियाओं, वार्ड सदस्यों, जिला परिषद प्रतिनिधियों और सरपंचों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक पारदर्शिता, विकास योजनाओं की बेहतर निगरानी और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर संवेदनशीलता बढ़ी है। महिलाओं की बढ़ती भागीदारी ने शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पोषण, शराबबंदी, महिला सुरक्षा तथा सामाजिक कल्याण योजनाओं के क्रियान्वयन में सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। हालांकि, इस प्रगति के साथ कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं, जैसे-परिवार या पुरुष सदस्यों द्वारा प्रतिनिधित्व पर नियंत्रण (प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व), सीमित राजनीतिक प्रशिक्षण, सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ, पितृसत्तात्मक मानसिकता और संसाधनों तक सीमित पहुँच। फिर भी, विविध प्रशिक्षण कार्यक्रमों, स्वयं सहायता समूहों, डिजिटल साक्षरता और सरकारी समर्थन योजनाओं ने महिलाओं की क्षमता, आत्मविश्वास और निर्णय कौशल को सुदृढ़ किया है। बिहार का अनुभव संकेत देता है कि स्थानीय स्वशासन में महिला सशक्तिकरण न केवल लैंगिक समानता को आगे बढ़ाता है, बल्कि सुशासन और समावेशी विकास की दिशा में सतत परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में कार्य करता है।

कीवर्ड्स: महिला सशक्तिकरण, स्थानीय स्वशासन, बिहार, पंचायती राज, 50 प्रतिशत आरक्षण, राजनीतिक भागीदारी, महिला प्रतिनिधित्व, ग्रामीण शासन, प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व, सामाजिक परिवर्तन, सुशासन, सशक्तिकरण नीति, सामाजिक न्याय, समावेशी विकास, निर्णय प्रक्रिया, महिला नेतृत्व, शिक्षा और स्वास्थ्य, शराबबंदी आंदोलन, स्वयं सहायता समूह, डिजिटल साक्षरता, राजनीतिक प्रशिक्षण, पितृसत्तात्मक चुनौतियाँ, प्रशासनिक पारदर्शिता, स्थानीय विकास योजनाएँ, महिला सुरक्षा आदि।

प्रस्तावना :

स्थानीय स्वशासन लोकतांत्रिक प्रणाली का वह आधार है जो शासन को जनता के सबसे निकट लाता है और निर्णय-निर्धारण की प्रक्रिया को विकेंद्रीकृत कर लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करता है। लोकतंत्र का वास्तविक सार तभी साकार हो सकता है जब शासन केवल शीर्ष स्तर से संचालित न होकर नीचे के सामाजिक ढांचे में भी सक्रिय रूप से कार्य करे। इसी संदर्भ में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा विकसित हुई, जो ग्राम पंचायत, नगर निकाय, जिला परिषद जैसी संस्थाओं को अधिकार, जिम्मेदारियाँ और वित्तीय संसाधन प्रदान करती है। स्थानीय स्वशासन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि विकास योजनाएँ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाई जाएँ और लोगों को अपने जीवन से जुड़े निर्णय लेने की शक्ति मिल सके। इस व्यवस्था में समुदाय की सक्रिय भागीदारी सामाजिक न्याय, समावेशिता और समान अवसरों को प्रोत्साहित करती है।

73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों ने स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक आधार प्रदान करते हुए विकेंद्रीकरण के सिद्धांत को मजबूत किया। इन संशोधनों ने पंचायतों और नगर निकायों को विधिक, वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार दिए, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि गाँव और शहरों में रहने वाले लोग अपने स्थानीय प्रशासन के माध्यम से विकास की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाएँ। इसी संशोधन के माध्यम से महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गई, जिसने भारतीय लोकतंत्र में लैंगिक समानता की दिशा में ऐतिहासिक परिवर्तन उत्पन्न किया। महिलाओं को पहली बार एक बड़े पैमाने पर राजनीतिक हिस्सेदारी मिली और यह समझ विकसित हुई कि निर्णय-निर्धारण की प्रक्रिया में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं का योगदान भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ केवल महिलाओं को अधिकार प्रदान करना भर नहीं है, बल्कि ऐसी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का निर्माण करना भी है जिसमें महिलाएँ स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकें, अपनी क्षमता का उपयोग कर सकें और समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकें। सशक्तिकरण का वैचारिक आधार इस विचार पर टिका है कि महिलाएँ केवल परिवार की संरचना में ही नहीं, बल्कि प्रशासन, राजनीति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक क्षेत्रों में भी समान रूप से योगदान देने में सक्षम होती हैं। इसलिए उन्हें शिक्षा, रोजगार, आत्मनिर्भरता, सुरक्षा, संपत्ति अधिकार, राजनीतिक भागीदारी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और नेतृत्व का समान अवसर मिलना आवश्यक है।

भारत के सामाजिक ढांचे, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, महिलाओं की स्थिति ऐतिहासिक रूप से पुरुषों की अपेक्षा कमजोर रही है। पितृसत्तात्मक मूल्यों ने महिलाओं को घरेलू कार्यों तक सीमित किया, जिससे उनका प्रशासनिक एवं राजनीतिक अनुभव विकसित नहीं हो सका।¹ ऐसी परिस्थिति में स्थानीय स्वशासन महिलाओं के लिए नेतृत्व और सार्वजनिक भागीदारी का प्रारंभिक मंच बनकर उभरा। यहाँ महिला प्रतिनिधियों को न केवल अपने गाँव या वार्ड के मुद्दों को समझने का अवसर मिला, बल्कि योजनाओं के निर्माण, बजट की निगरानी, सामाजिक न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल-प्रबंधन और बुनियादी ढांचे के विकास जैसे मुद्दों पर भी अपनी भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हुआ।

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का सिद्धांत यह मानता है कि समाज के सभी वर्गों को शासन में भागीदारी का अवसर मिलना चाहिए। महिलाओं की भागीदारी से स्थानीय शासन की गुणवत्ता बढ़ती है क्योंकि महिलाएँ विकास के मुद्दों को अधिक संवेदनशील दृष्टि से देखती हैं। वे शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता और सामाजिक सुरक्षा से जुड़े प्रश्नों पर अधिक सजग रहती हैं। ऐसे मुद्दे स्थानीय विकास के मूल तत्व हैं, इसलिए महिला नेतृत्व स्थानीय शासन को अधिक मानवीय और सामुदायिक बनाता है।

73वें और 74वें संशोधनों में महिलाओं के आरक्षण का उद्देश्य मात्र प्रतिनिधित्व बढ़ाना नहीं था, बल्कि प्रशासनिक संरचना में लैंगिक दृष्टिकोण को शामिल करना था।² जब महिलाएँ निर्णय लेने की स्थिति में आती हैं तो वे उन समस्याओं पर प्रकाश डालती हैं जिन पर पहले ध्यान नहीं दिया जाता था, जैसे-महिला सुरक्षा, स्कूलों में बालिकाओं की उपस्थिति, गर्भवती महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ, घर-घर पेयजल, शौचालय निर्माण, घरेलू हिंसा की रोकथाम और शराबबंदी जैसे सामाजिक आंदोलन। इससे यह सिद्ध होता है कि स्थानीय स्वशासन महिलाओं को समाज परिवर्तन की सक्रिय शक्ति बनने का अवसर प्रदान करता है।

महिला सशक्तिकरण के सैद्धांतिक आधार में अमर्त्य सेन की 'क्षमता दृष्टिकोण' भी महत्वपूर्ण है, जिसमें कहा गया है कि व्यक्तियों की क्षमताओं का विस्तार तभी संभव होता है जब समाज उन्हें अपनी इच्छाओं और निर्णयों के अनुरूप जीवन जीने का अवसर दे। स्थानीय स्वशासन में महिलाओं की भागीदारी इसी क्षमता विस्तार का उदाहरण है। यह न केवल महिलाओं की व्यक्तिगत पहचान को मजबूती देता है, बल्कि सामुदायिक स्तर पर भी विकास और समानता को बढ़ावा देता है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन वह लोकतांत्रिक मंच बन गया है जिसने महिलाओं के लिए सार्वजनिक जीवन के नए द्वार खोले हैं। यह व्यवस्था महिलाओं को न केवल शासन प्रक्रियाओं से जोड़ती है, बल्कि उन्हें नेतृत्व, आत्मविश्वास, कौशल-विकास और समुदाय-निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने का अवसर भी प्रदान करती है। महिलाओं की भागीदारी से शासन अधिक संवेदनशील, पारदर्शी और समावेशी बनता है, जो लोकतांत्रिक समाज के विकास का आधार है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन और महिला सशक्तिकरण एक-दूसरे के पूरक हैं और साथ मिलकर सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक सशक्त ढांचा निर्मित करते हैं।

बिहार में महिला प्रतिनिधित्व का इतिहास भारतीय लोकतांत्रिक ढांचे में एक परिवर्तनकारी यात्रा को दर्शाता है, जिसने समाज में लैंगिक समानता की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति दर्ज की। पारंपरिक समाज संरचना के कारण लंबे समय तक महिलाएँ राजनीतिक और प्रशासनिक गतिविधियों से दूर रहीं। लेकिन 73वें संविधान संशोधन के बाद जब पूरे देश में पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण लागू हुआ, तब बिहार में राजनीतिक जागरूकता का एक नया अध्याय शुरू हुआ। प्रारंभिक आरक्षण 33 प्रतिशत था, लेकिन 2006 में बिहार सरकार ने एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए इसे 50 प्रतिशत कर दिया।³

यह निर्णय न केवल बिहार, बल्कि पूरे देश के लिए प्रेरणा बना और महिला नेतृत्व के विस्तार में एक मील का पत्थर साबित हुआ।

वर्ष 2006 के बाद बिहार की पंचायतों में महिला मुखियाओं, सरपंचों, पंचायत समिति सदस्यों और जिला परिषद प्रतिनिधियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। जहाँ पहले पंचायतों के कुल प्रतिनिधियों में महिलाओं की हिस्सेदारी लगभग नगण्य थी, वहीं आरक्षण के बाद यह आधी से अधिक हो गई। इससे महिलाओं को राजनीतिक रूप से आगे बढ़ने के औपचारिक अवसर मिले, जिन्हें पहले वे सामाजिक बाधाओं, पारिवारिक दबावों और आर्थिक निर्भरता के कारण नहीं प्राप्त कर पाती थीं। आरक्षण नीति का प्रभाव मात्र संख्यात्मक वृद्धि में नहीं, बल्कि गुणात्मक परिवर्तन में भी देखने को मिलता है। पहले महिलाओं के प्रतिनिधित्व को औपचारिक माना जाता था, लेकिन आरक्षण के लागू होने के बाद अनेक महिला प्रतिनिधियों ने वास्तविक नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। उन्होंने न केवल स्थानीय समस्याओं को समझा, बल्कि विकास कार्यों की निगरानी, योजनाओं के बजट का उपयोग, सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दों को उठाने और जनता की समस्याओं का समाधान करने में सक्रिय भूमिका निभाई।

बिहार में महिला प्रतिनिधित्व की यह वृद्धि कई सामाजिक-राजनीतिक परिणाम लेकर आई। सबसे पहले, इससे महिलाओं की सार्वजनिक उपस्थिति को सामान्यीकृत किया गया। जो महिलाएँ पहले घर से बाहर निर्णय लेने के लिए संकोच करती थीं, वे अब बैठकें आयोजित करने, सरकारी अधिकारियों से संवाद करने, सामाजिक मुद्दों पर अभियान चलाने और प्रशासनिक निर्णयों में अपनी आवाज रखने लगीं।⁴ इससे समाज में महिलाओं को लेकर दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन आया। दूसरे, महिलाओं के प्रतिनिधित्व ने प्रशासनिक पारदर्शिता को भी बढ़ाया। महिलाएँ आमतौर पर भ्रष्टाचार के मामलों में अधिक सतर्क रहती हैं, और कई बार पुरुष-प्रधान व्यवस्था में जो अनियमितताएँ सामान्य मानी जाती थीं, उन्हें महिला प्रतिनिधियों ने चुनौती देकर सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए। कई पंचायतों में महिलाओं द्वारा मनरेगा, राशन, स्वच्छता, पेयजल जैसी योजनाओं में भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के प्रयासों की सफलता के उदाहरण देखने को मिले। तीसरे, महिला प्रतिनिधित्व का प्रभाव सामाजिक न्याय की दिशा में भी महत्वपूर्ण रहा। महिलाएँ समाज के कमजोर वर्गों-दलितों, पिछड़ों, बच्चों, दिव्यांगों और महिलाओं-की समस्याओं को अधिक संवेदनशीलता से समझती हैं। इसलिए उनके नेतृत्व में कई स्थानों पर पोषण, टीकाकरण, स्कूल-नामांकन, मातृ स्वास्थ्य, घरेलू हिंसा और बाल-विवाह के मुद्दों पर सक्रिय हस्तक्षेप हुआ।⁵ इसके अलावा, बिहार के ग्रामीण समाज में 'महिला मुखिया' की पहचान ने नई सामाजिक भूमिकाओं का निर्माण किया। महिलाओं ने पंचायत स्तर पर विकास की प्राथमिकताओं को पुनःपरिभाषित किया, जहाँ बुनियादी सुविधाएँ, पेयजल, स्वच्छता, शौचालय, सड़क निर्माण, जल-संरक्षण और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को अधिक महत्व मिला। महिलाओं ने अपने जीवन-अनुभवों के आधार पर यह समझ विकसित की कि विकास केवल बड़े खर्च वाले प्रोजेक्टों से नहीं, बल्कि बुनियादी जरूरतों की पूर्ति से प्रारंभ होता है।

आरक्षण नीति ने एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन किया, जिसे राजनीति विज्ञान में पहली पीढ़ी के नेतृत्व का सशक्तिकरण⁶ कहा जाता है। अनेक महिलाएँ जो पहले राजनीति से परिचित नहीं थीं, उन्होंने प्रतिनिधित्व का अवसर मिलने पर नेतृत्व कौशल विकसित किया। धीरे-धीरे वे प्रशासनिक प्रक्रिया, सरकारी योजनाओं, वित्तीय प्रबंधन और जनसम्पर्क की कार्यप्रणाली को समझने लगीं। इससे उनके भीतर आत्मविश्वास और पहचान दोनों का विकास हुआ। हालाँकि, आरक्षण नीति के प्रभाव के साथ-साथ चुनौतियाँ भी सामने आईं। प्रमुख समस्या “प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व” की थी, जिसमें कई जगहों पर महिलाएँ नाममात्र की मुखिया बनीं और वास्तविक निर्णय उनके परिवार के पुरुष-पति, पिता या भाई-लेने लगे।⁷ समाजशास्त्रीय रूप से यह स्थिति अपेक्षित थी, क्योंकि पितृसत्ता लंबे समय से सामाजिक संरचना में गहराई से जमी हुई है। लेकिन समय के साथ अनेक महिलाएँ इस प्रॉक्सी स्थिति से बाहर निकलीं और स्वयं निर्णय लेने लगीं।

महिलाओं की भागीदारी को प्रशिक्षण कार्यक्रमों ने भी मजबूत किया। बिहार में जीविका समूह और विभिन्न NGO द्वारा संचालित नेतृत्व प्रशिक्षण ने महिला प्रतिनिधियों को शासन की प्रक्रियाओं से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे वे योजनाओं के बारे में जागरूक हुईं, दस्तावेजीकरण, फाइल-प्रबंधन और शिकायत समाधान प्रक्रिया के कौशल सीख सकीं। राजनीतिक रूप से भी महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। कई महिला मुखिया प्रदेश स्तर पर सम्मानित हुईं और कुछ ने आगे बढ़कर विधानसभा चुनावों में भी भाग लिया। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्राम स्तर पर आरंभ हुआ नेतृत्व व्यापक राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने लगा।

आरक्षण नीति ने बिहार की पंचायत व्यवस्था को लोकतांत्रिक, समावेशी और लैंगिक संतुलन की दिशा में आगे बढ़ाया है। यह नीति केवल महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने का उपकरण नहीं बनी, बल्कि उसने पूरे ग्रामीण समाज की सोच, राजनीतिक संस्कृति और विकास प्राथमिकताओं को बदलने में निर्णायक भूमिका निभाई है। बिहार का यह अनुभव यह सिद्ध करता है कि जब महिलाओं को समान अवसर और संस्थागत समर्थन मिलता है, तब वे नेतृत्व, शासन और समाज परिवर्तन में अत्यंत प्रभावी योगदान दे सकती हैं।

बिहार में पंचायतों के स्तर पर महिला नेतृत्व का उदय स्थानीय शासन की दिशा और संरचना को गहराई से प्रभावित करने वाला परिवर्तन है। महिलाओं के नेतृत्व ने न केवल प्रशासनिक प्रक्रियाओं में संवेदनशीलता और पारदर्शिता को बढ़ाया है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास के नए आयाम भी स्थापित किए हैं। पंचायत स्तर पर महिला प्रतिनिधियों का कार्यक्षेत्र अत्यंत विस्तृत होता है, जिसमें विकास परियोजनाओं की निगरानी, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का क्रियान्वयन, स्थानीय विवादों का समाधान, शिक्षा-स्वास्थ्य की व्यवस्था, स्वच्छता, जल-प्रबंधन, सड़क निर्माण, पोषण योजनाएँ और सामाजिक न्याय जैसे अनेक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभानी होती है। महिला मुखियाओं और वार्ड सदस्यों ने अपने नेतृत्व में सबसे पहले समुदाय के साथ संवाद स्थापित करने पर बल दिया। उनके द्वारा की गई बैठकों में अक्सर महिलाओं की उपस्थिति अधिक होती है, जिससे पंचायत के मुद्दों पर महिला दृष्टिकोण अधिक सशक्त रूप से सामने आता है। वे स्वयं उन समस्याओं को अधिक गहराई से समझती हैं जिनका सामना प्रतिदिन महिलाएँ और बच्चे करते हैं, इसलिए उनके समाधान भी अधिक व्यावहारिक और मानवीय होते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में महिला नेतृत्व का प्रभाव उल्लेखनीय रहा है। कई पंचायतों में महिला प्रतिनिधियों ने स्कूलों में नामांकन बढ़ाने, बालिकाओं की उपस्थिति सुनिश्चित करने, मध्याह्न भोजन योजना में सुधार, स्कूल भवनों की मरम्मत और शिक्षकों की अनुपस्थिति पर निगरानी जैसे कार्यों में सक्रिय हस्तक्षेप किया।⁸ उनका अनुभव बताता है कि शिक्षित समाज के विकास में महिलाएँ अधिक रुचि रखती हैं, इसलिए वे शिक्षा-केन्द्रित पहलों का नेतृत्व अधिक ऊर्जा के साथ करती हैं।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में महिलाओं ने टीकाकरण, प्रसव-पूर्व और प्रसव-बाद देखभाल, कुपोषण की समस्या, आंगनबाड़ी केंद्रों की कार्यप्रणाली और जलजनित रोगों की रोकथाम जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया। कई पंचायतों में महिला मुखिया ASHA और आशा-कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर स्वास्थ्य योजनाओं का सही क्रियान्वयन सुनिश्चित करती हैं। उनके संवेगात्मक जुड़ाव के कारण गर्भवती महिलाओं के लिए एम्बुलेंस सुविधा, पोषण आहार का वितरण, आयरन-फोलिक एसिड की गोलियों का वितरण और टीकाकरण अभियान पर बेहतर निगरानी हो पाती है।

स्वच्छता और पेयजल के क्षेत्र में महिलाओं के नेतृत्व में व्यापक परिवर्तन देखने को मिला है। महिलाएँ स्वच्छता से जुड़ी समस्याओं को व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तर पर महसूस करती हैं, इसलिए वे शौचालय निर्माण, जल-जमाव की रोकथाम, कचरा निस्तारण और पीने के पानी की स्वच्छ आपूर्ति सुनिश्चित करने में अधिक सक्रिय रहती हैं। बिहार में कई पंचायतों ने महिला मुखिया के नेतृत्व में स्वच्छ भारत अभियान को सफल बनाया, जहाँ घर-घर शौचालय निर्माण को प्राथमिकता दी गई और खुले में शौच को रोकने में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

पोषण के क्षेत्र में महिला प्रतिनिधियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। वे आंगनबाड़ी केंद्रों के माध्यम से बच्चों और गर्भवती-धাত্রि महिलाओं के पोषण स्तर में सुधार के लिए कार्यक्रमों को प्रभावी बनाती हैं। कई स्थानों पर महिला प्रतिनिधियों ने कुपोषित बच्चों की पहचान, पोषण आहार वितरण में पारदर्शिता और माताओं के साथ जागरूकता बैठकें आयोजित कर स्थिति में सुधार लाया।⁹

ग्रामीण विकास की योजनाओं में महिला नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका देखी गई है। मनरेगा के तहत मजदूरों को समय पर मजदूरी भुगतान, कार्यस्थलों पर सुविधाएँ उपलब्ध कराना, महिला मजदूरों की भागीदारी बढ़ाना और मनरेगा कार्यों में पारदर्शिता सुनिश्चित करने में महिला मुखियाओं ने उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल कीं।

जल-जीवन-हरियाली अभियान, वृक्षारोपण, तालाब संरक्षण और वर्षा जल संचयन जैसी पर्यावरणीय पहलों में भी महिलाओं ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कई पंचायतों में महिला मुखिया ने जल संरक्षण के लिए जागरूकता अभियान चलाए और सामुदायिक सहभागिता बढ़ाई।

महिला सुरक्षा और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में महिलाओं का नेतृत्व अत्यंत प्रभावशाली रहा है। घरेलू हिंसा, दहेज, बाल-विवाह, शराबबंदी और महिला उत्पीड़न जैसे मुद्दों पर महिलाओं ने साहसपूर्वक आवाज उठाई।¹⁰ कई पंचायतों में महिला मुखिया ने शराबबंदी के लिए सामूहिक अभियान चलाए और पुलिस-प्रशासन के सहयोग से अवैध शराब की बिक्री पर रोक लगवाई।

सामाजिक कल्याण योजनाओं जैसे वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन, दिव्यांग पेंशन, जन-धन योजना, उज्ज्वला योजना और प्रधानमंत्री आवास योजना के क्रियान्वयन में महिला प्रतिनिधियों ने पारदर्शिता बढ़ाई। वे सुनिश्चित करती हैं कि योजनाओं का लाभ वास्तविक पात्रों तक पहुँचे और किसी भी प्रकार की अनियमितता न हो। इन सभी कार्यों के साथ-साथ महिला प्रतिनिधियों को कई चुनौतियाँ भी झेलनी पड़ती हैं, जैसे संसाधनों की कमी, तकनीकी ज्ञान का अभाव, पुरुष सहयोगियों का हस्तक्षेप और सामाजिक रूढ़ियाँ। लेकिन अनेक महिलाओं ने इन चुनौतियों का सामना करते हुए प्रभावी नेतृत्व का परिचय दिया है। वे बैठकों में अपनी बात दृढ़ता से रखती हैं, सरकारी अधिकारियों से संवाद करती हैं और पंचायत के विकास के लिए लगातार प्रयास करती हैं। इन सभी पहलुओं से स्पष्ट होता है कि पंचायतों में महिला नेतृत्व केवल औपचारिक प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और विकास का सशक्त माध्यम बन चुका है। महिलाओं ने स्थानीय शासन को अधिक उत्तरदायी, संवेदनशील और समुदाय केन्द्रित बनाया है। उनका नेतृत्व प्रशासनिक दक्षता के साथ-साथ सामाजिक न्याय को भी मजबूत करता है। बिहार के ग्रामीण विकास की दिशा में महिला प्रतिनिधियों के योगदान ने यह सिद्ध कर दिया है कि जब समाज महिलाओं को नेतृत्व का अवसर देता है, तो वे न केवल स्वयं सशक्त होती हैं, बल्कि पूरे समुदाय को विकास की नई दिशा प्रदान करती हैं।

बिहार में स्थानीय स्वशासन के ढाँचे में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने के बावजूद वे अनेक चुनौतियों का सामना करती हैं, जो उनके नेतृत्व और निर्णय क्षमता को सीधे प्रभावित करती हैं। महिला प्रतिनिधियों के लिए सबसे बड़ी बाधाओं में से एक प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व की समस्या है, जिसमें निर्वाचित महिला प्रतिनिधि के स्थान पर उसके पति या परिवार का कोई पुरुष सदस्य निर्णय प्रक्रिया को नियंत्रित करता है।¹¹ इस प्रवृत्ति ने कई बार महिलाओं के स्वतंत्र राजनीतिक व्यक्तित्व को प्रभावित किया है। पंचायत भवनों में अक्सर “मुखिया-पति” या “सरपंच-पति” जैसे शब्द सुनाई देना इस समाज में गहरे पितृसत्तात्मक प्रभाव का संकेत है। महिलाएँ भले ही औपचारिक रूप से पद पर निर्वाचित होती हों, लेकिन वास्तविक शक्ति अक्सर पुरुषों के हाथ में बनी रहती है। यह स्थिति महिलाओं के आत्मविश्वास, सामाजिक पहचान और नेतृत्व निर्माण में गंभीर बाधा उत्पन्न करती है।

पितृसत्तात्मक मानसिकता महिला जनप्रतिनिधियों के सामने एक और बड़ी चुनौती के रूप में उपस्थित होती है। ग्रामीण समाज में यह धारणा अपेक्षाकृत प्रबल है कि निर्णय लेना और प्रशासनिक कार्य करना पुरुषों का क्षेत्र है, जबकि महिलाओं का क्षेत्र घरेलू दायित्व तक सीमित है। ऐसी मानसिकता महिलाओं के स्वतंत्र निर्णय की क्षमता को न केवल चुनौती देती है, बल्कि कई मामलों में उन्हें सार्वजनिक मंचों पर बोलने, बैठकों में सक्रिय भागीदारी लेने और प्रशासनिक अधिकारियों से संवाद स्थापित करने में भी संकोच उत्पन्न करती है। कई महिला प्रतिनिधियों के द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि जब वे पंचायत बैठकों में कोई सुझाव या आपत्ति रखती हैं, तो उन्हें अक्सर गंभीरता से नहीं लिया जाता,¹² जबकि वही बात यदि कोई पुरुष प्रतिनिधि कहे तो उसे तुरंत स्वीकार्यता मिलती है। यह असमान व्यवहार दर्शाता है कि लोकतांत्रिक ढाँचे में समान अवसर प्रदान किए जाने के बावजूद सामाजिक संरचनाएँ अभी भी महिलाओं के नेतृत्व को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाई हैं।

सीमित राजनीतिक प्रशिक्षण भी महिला प्रतिनिधियों के लिए बड़ी चुनौती है। पंचायत का कार्यक्षेत्र व्यापक है और इसमें विकास योजनाओं का क्रियान्वयन, बजट समझना, रिकॉर्ड प्रबंधन, सरकारी योजनाओं की निगरानी और आमजन से संवाद शामिल होता है। जो महिलाएँ पहली बार राजनीति में आती हैं उन्हें प्रशासनिक शब्दावली, तकनीकी प्रक्रियाओं और कानूनी प्रावधानों की जानकारी नहीं होती। यह कमी उनके कार्य-निष्पादन को प्रभावित करती है और कभी-कभी उन्हें ऐसे निर्णय लेने के लिए विवश करती है जो उन्हें स्वयं भी पूरी तरह समझ में नहीं आते। प्रशिक्षण कार्यक्रम सीमित हैं और कई बार महिलाएँ घरेलू ज़िम्मेदारियों और सामाजिक प्रतिबंधों के कारण इन कार्यक्रमों में शामिल भी नहीं हो पातीं। इससे नेतृत्व कौशल और प्रशासनिक दक्षता का विकास बाधित होता है।

आर्थिक निर्भरता भी महिला प्रतिनिधियों के स्वतंत्र निर्णय को प्रभावित करती है। अनेक महिला जनप्रतिनिधि स्वयं आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं हैं और अपनी आय-व्यय के लिए परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर रहती हैं। आर्थिक निर्भरता परिवार के भीतर भी और राजनीतिक क्षेत्र में भी निर्णयों पर नियंत्रण का रूप ले लेती है। महिला प्रतिनिधियों को अक्सर यह कहा जाता है कि योजनाओं में किसे लाभ देना है, किन ठेकेदारों से काम करवाना है या किन मुद्दों को उठाना है। इस प्रकार आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होना नेतृत्व की स्वायत्तता को सीमित करता है।

संसाधनों की कमी महिला नेतृत्व पर गहरा प्रभाव डालती है। कई पंचायतों में महिला प्रतिनिधियों को कार्यालय, संचार साधन, परिवहन, इंटरनेट, कंप्यूटर, प्रिंटर या सहायक कर्मचारी जैसे संसाधन पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं होते। कई बार उन्हें अपने घर से ही प्रशासनिक कार्य करना पड़ता है या कार्यालय तक पहुँचने में लंबी दूरी तय करनी पड़ती है, जिससे उनके कार्य की प्रभावशीलता प्रभावित होती है। संसाधनों की कमी होने पर वे तकनीकी और प्रशासनिक प्रक्रियाओं को समय पर पूरा नहीं कर पातीं, जिससे उनके नेतृत्व की छवि पर असर पड़ता है।¹³

प्रशासनिक तकनीकी जटिलताएँ भी महिला प्रतिनिधियों के लिए कठिनाइयाँ पैदा करती हैं। आज की पंचायत प्रणाली में अधिकतर कार्य ऑनलाइन पोर्टल, ई-गवर्नेंस सिस्टम, आधार आधारित सत्यापन और डिजिटल भुगतान प्रणाली के माध्यम से संचालित होते हैं। इस परिवर्तन ने प्रशासनिक प्रक्रियाओं को तो सरल बनाया है, किंतु डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण महिला प्रतिनिधियों के लिए यह नई चुनौती बन गया है।¹⁴ कई महिलाएँ स्मार्टफोन या कंप्यूटर का सहज उपयोग नहीं कर पातीं, जिससे वे अधिकारियों और कर्मचारियों पर निर्भर रहती हैं। इस निर्भरता का कभी-कभी दुरुपयोग भी होता है, जिससे भ्रष्टाचार, गलत जानकारी या निर्णयों में पक्षपात की संभावना बढ़ जाती है। डिजिटल अंतराल महिला नेतृत्व की कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाला वास्तविक कारक है।

निर्णय प्रक्रिया में पुरुष वर्चस्व भी महिलाओं की सक्रियता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। ग्राम सभा और पंचायत बैठकों में पुरुषों की संख्या अधिक रहती है और अक्सर महत्वपूर्ण निर्णय पुरुषों द्वारा ही लिए जाते हैं। महिलाओं को कई बार केवल औपचारिक रूप से सहमति देने के लिए बैठाया जाता है जबकि वास्तविक चर्चा में उन्हें शामिल नहीं किया जाता। कुछ मामलों में महिला प्रतिनिधियों की राय को नजरअंदाज किया जाता है या उन्हें बीच में बोलने भी नहीं दिया जाता। यह स्थिति लोकतांत्रिक ढाँचे के मूल सिद्धांतों-समान भागीदारी और समान अवसर-को कमजोर करती है। सामाजिक सुरक्षा का अभाव भी कई महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी को प्रभावित करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में धमकी, दबाव, चरित्र हनन की आशंका, राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और अपराध

ती तत्वों से भय भी महिलाओं के नेतृत्व को चुनौती देता है। वे कई बार आलोचना या विरोध की स्थिति में स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं, जिससे उनकी सक्रिय भूमिका सीमित हो जाती है।¹⁵ इन सभी चुनौतियों के बावजूद, महिला प्रतिनिधियाँ धीरे-धीरे इन बाधाओं को तोड़ रही हैं। लेकिन जब तक सामाजिक सोच में परिवर्तन नहीं आता, पुरुषों की मानसिकता समानता की दिशा में अग्रसर नहीं होती और महिलाओं को पर्याप्त प्रशिक्षण एवं संसाधन उपलब्ध नहीं होते, तब तक ये चुनौतियाँ अस्तित्व में बनी रहेंगी।

बिहार में स्थानीय स्वशासन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को मजबूत बनाने में अनेक कारक और सरकारी प्रयास महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन प्रयासों ने न केवल महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाई है बल्कि उनकी प्रशासनिक क्षमता, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक पहचान और निर्णय लेने की शक्ति को भी सुदृढ़ किया है। स्थानीय शासन में महिलाओं की सक्रियता बढ़ने का प्रमुख आधार आरक्षण नीति है, जिसने उन्हें अवसर प्रदान किए। लेकिन इन अवसरों को प्रभावी नेतृत्व में परिवर्तित करने में महिला सशक्तिकरण के कई अतिरिक्त कारकों ने योगदान दिया है।

सबसे महत्वपूर्ण कारकों में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका है। बिहार का जीविका कार्यक्रम (BRLPS) महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने का एक अत्यंत सफल मॉडल है। जीविका समूहों ने महिलाओं को बचत, ऋण, उद्यमिता, वित्तीय प्रबंधन और आत्मविश्वास का पहला मंच प्रदान किया।¹⁶ जब महिलाएँ आर्थिक रूप से मजबूत हुईं, तो उन्होंने समाज के सामने अपनी पहचान स्थापित की और नेतृत्व क्षमता विकसित की। पंचायत चुनावों में कई प्रतिनिधि वे महिलाएँ हैं जिन्हें प्रथम नेतृत्व अनुभव स्वयं सहायता समूहों से प्राप्त हुआ। समूहों ने महिलाओं को सार्वजनिक बोलने, बैठकों में भाग लेने, योजनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने और सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता प्रदान की।

कौशल विकास योजनाओं ने भी महिला नेतृत्व की मजबूती को दिशा दी है। विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों-जैसे कौशल विकास मिशन, जीविका-प्रेरित प्रशिक्षण, डिजिटल कौशल कार्यक्रम, कृषि एवं पशुपालन प्रशिक्षण, महिला उद्यमिता प्रशिक्षण-ने महिलाओं को न केवल आजीविका के अवसर दिए बल्कि प्रशासनिक कार्यों, योजनाओं की तकनीकी समझ और दस्तावेजी प्रबंधन में दक्ष बनाया।¹⁷ पंचायत प्रतिनिधि बन चुकी महिलाएँ इन कौशलों का उपयोग विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में करती हैं।

डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम स्थानीय शासन में महिलाओं की भागीदारी को क्रांतिकारी रूप से बदलने वाले कारकों में से एक है। स्मार्टफोन, इंटरनेट, व्हाट्सएप समूह, डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन पोर्टल के उपयोग ने अनेक महिला प्रतिनिधियों को सशक्त बनाया है। बिहार सरकार द्वारा पंचायत प्रतिनिधियों को डिजिटल प्रशिक्षण देना, पंचायत भवनों में इंटरनेट सुविधा उपलब्ध कराना और योजनाओं की निगरानी के लिए मोबाइल आधारित एप्स का उपयोग करना महिलाओं के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ। जब महिलाएँ स्वयं ऑनलाइन आवेदन, फंड ट्रैकिंग, कार्य मॉनिटरिंग या जन शिकायतों को समझने में सक्षम हुईं, तो उनकी प्रशासनिक क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

पंचायत प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी महिला सशक्तिकरण को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण हैं। कई संस्थाएँ-जैसे राज्य लोक प्रबंधन संस्थान, पंचायत राज विभाग और विभिन्न गैर-सरकारी संगठन-महिलाओं को पंचायत के अधिकार, वित्त प्रबंधन, ग्राम सभा संचालन, विकास योजनाओं की समझ और निर्णय लेने की प्रक्रिया में दक्ष बनाने के लिए प्रशिक्षण देते हैं। प्रशिक्षण के माध्यम से महिलाओं में राजनीतिक समझ, योजना प्रबंधन कौशल और सार्वजनिक संवाद क्षमता विकसित होती है। यह प्रशिक्षण महिलाओं को आत्मविश्वासी बनाने के साथ-साथ उनकी स्वतंत्र पहचान को भी स्थापित करता है।

सरकारी सहायता तंत्र भी महिला सशक्तिकरण का मजबूत आधार है। पंचायतों में महिला प्रतिनिधियों को विशेष सहायता, परामर्श, तकनीकी सहयोग और योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध करवाए जाते हैं। कई जिलों में महिला प्रतिनिधियों के लिए हेल्पलाइन, मार्गदर्शन केंद्र और शिकायत समाधान तंत्र तक स्थापित किए गए हैं। इससे महिलाएँ प्रशासनिक जटिलताओं को सरलता से समझ पाती हैं और अपने अधिकारों का सही उपयोग कर पाती हैं।

सामाजिक जागरूकता अभियान भी महिलाओं की भूमिका को मजबूत करते हैं। पंचायत स्तर पर शराबबंदी अभियान, बाल विवाह रोकथाम अभियान, स्वच्छता अभियान, बेटा बचाओ अभियान और स्वास्थ्य जागरूकता अभियानों में महिला प्रतिनिधियों ने नेतृत्वकारी भूमिका निभाई है। इन अभियानों ने महिलाओं को सामुदायिक नेतृत्व का सक्रिय अवसर प्रदान किया और उनकी सामाजिक स्थिति को सम्मानजनक बनाया।

महिला शिक्षा में सुधार और लड़कियों के स्कूल-कॉलेजों में नामांकन बढ़ने से भी महिलाओं में नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ है। शिक्षित महिलाएँ योजनाओं को समझने, दस्तावेज तैयार करने, अधिकारियों से संवाद स्थापित करने और ग्राम सभा में तर्क प्रस्तुत करने में सक्षम होती हैं। इससे स्थानीय शासन में उनकी प्रभावशीलता बढ़ती है। इन सभी कारकों ने बिहार की महिला प्रतिनिधियों के नेतृत्व को मजबूत बनाया है। इसके अतिरिक्त सरकारी योजनाओं-जैसे जल-जीवन-हरियाली अभियान, सात निश्चय योजना, स्वयं सहायता समूहों का विस्तार, महिला हेल्पलाइन, मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना-ने महिलाओं के सामाजिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण को नई दिशा प्रदान की है। जब महिलाओं को अवसर मिले और वे प्रशिक्षण, तकनीकी साधन और सामाजिक समर्थन से सशक्त हों, तो वे न केवल परिवार बल्कि पूरे समुदाय के विकास में प्रभावी भूमिका निभाती हैं।

बिहार में स्थानीय स्वशासन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण ने समाज, राजनीति और प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर व्यापक और सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। पंचायतों में महिलाओं की बढ़ी हुई भागीदारी ने न केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लोकतांत्रिक सिद्धांत को मजबूत किया है, बल्कि ग्रामीण विकास की दिशा भी परिवर्तित की है। आरक्षण से मिली राजनीतिक भागीदारी समय के साथ वास्तविक नेतृत्व क्षमता में बदलने लगी है और महिलाओं ने अपने निर्णय कौशल, सामाजिक सक्रियता, जन समस्याओं के समाधान और प्रशासनिक विवेक का परिचय दिया है।

स्थानीय शासन में महिलाओं के प्रवेश का सबसे बड़ा प्रभाव यह है कि निर्णय प्रक्रिया अब अधिक संवेदनशील, न्यायसंगत और सामाजिक रूप से समावेशी हुई है। महिलाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता, पेयजल, सड़क, आवागमन और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों को प्राथमिकता देती हैं। उनके नेतृत्व में पंचायतों में ऐसे कार्यों में तीव्रता आई है, जिनका सीधा संबंध नागरिक जीवन से है। उदाहरण के लिए, आंगनवाड़ी केंद्रों की निगरानी, विद्यालयों में मध्याह्न

भोजन की गुणवत्ता, गर्भवती महिलाओं को मिलने वाली सुविधाएँ, शौचालय निर्माण, और ग्राम स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं पोषण समिति की गतिविधियों में महिलाओं की सक्रियता ग्रामीण सामाजिक विकास को गति प्रदान करती है।

महिला प्रतिनिधियों के नेतृत्व ने पंचायतों में पारदर्शिता को भी बढ़ाया है। महिलाओं द्वारा फंड उपयोग, कार्य स्थल निरीक्षण और लाभार्थियों के चयन में निष्पक्षता देखी गई है। कई महिला मुखियाओं ने शराबबंदी, बाल विवाह रोकथाम, दहेज विरोध, घरेलू हिंसा रोकथाम और महिला सुरक्षा जैसे मुद्दों को पंचायत स्तर पर प्रभावी ढंग से उठाया है,¹⁸ जिससे स्थानीय समाज में सकारात्मक बदलाव आया है।

सामाजिक संबंधों और लैंगिक समानता पर भी महिला नेतृत्व का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पहले जहाँ महिलाओं की भूमिका घर तक सीमित थी, अब वे पंचायत बैठकों में बोल रही हैं, अधिकारियों से संवाद कर रही हैं, योजनाओं का निरीक्षण कर रही हैं और कई बार कठिन परिस्थितियों में भी निर्णय लेकर अपना नेतृत्व साबित कर रही हैं। इससे लड़कियों और युवा महिलाओं में राजनीतिक चेतना और आत्मविश्वास बढ़ा है। समाज में यह संदेश गया है कि महिलाएँ केवल घर चलाने में ही सक्षम नहीं, बल्कि सार्वजनिक नेतृत्व और प्रशासनिक दायित्वों को भी सफलतापूर्वक संभाल सकती हैं।

आर्थिक दृष्टि से भी महिला नेतृत्व का प्रभाव महत्वपूर्ण है। जीविका समूहों, स्वयं सहायता समूहों, स्थानीय उद्यमों और सरकारी सहायता के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। आर्थिक रूप से सक्षम महिलाएँ निर्णय लेने में अधिक स्वतंत्र होती हैं, सामाजिक कार्यक्रमों में सक्रिय रहती हैं और अपनी पंचायत के विकास में अधिक समर्पित रहती हैं।

राजनीतिक स्तर पर भी परिवर्तन स्पष्ट है। 2006 के बाद से महिला प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि ने बिहार में राजनीति के चरित्र को बदलने की प्रक्रिया शुरू की है। कई महिलाएँ लगातार दो या तीन कार्यकालों से जनप्रतिनिधि हैं, जिससे उनकी प्रशासनिक दक्षता मजबूत हुई है। अब वे केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधि नहीं बल्कि सक्रिय और प्रभावी नेता बन रही हैं। इन सभी सकारात्मक प्रभावों के बावजूद, कई चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। सामाजिक संरचना में गहरे बसे पितृसत्तात्मक विचार, प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व की प्रवृत्ति, डिजिटल साक्षरता की कमी, संसाधनों का अभाव और हिंसा या राजनीतिक दबाव जैसी स्थितियाँ अभी भी महिला नेतृत्व को सीमित करती हैं। लेकिन इन चुनौतियों के समाधान की संभावनाएँ भी उतनी ही प्रबल हैं।

बिहार में महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया आने वाले वर्षों में और भी सशक्त होगी, यदि कुछ प्रमुख कदम उठाए जाएँ। सबसे पहले, महिला प्रतिनिधियों के लिए नियमित और उन्नत स्तर के राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इससे महिलाओं में न केवल नेतृत्व कौशल विकसित होगा बल्कि डिजिटल प्रशासन, बजट प्रबंधन और नीतियों की समझ भी बढ़ेगी। दूसरा, पंचायत स्तर पर डिजिटल ढांचा मजबूत करना अत्यंत आवश्यक है। इंटरनेट, कंप्यूटर, तकनीकी सहायक और ऑनलाइन प्रशासनिक प्रशिक्षण के माध्यम से महिलाएँ डिजिटल शासन को सहज रूप से अपना सकेंगी। तीसरा, महिलाओं की सुरक्षा के लिए पंचायत और जिला स्तर पर विशेष तंत्र विकसित होना चाहिए, ताकि वे राजनीतिक दबाव या सामाजिक हिंसा से सुरक्षित रहकर नेतृत्व कर सकें। चौथा, सामाजिक जागरूकता अभियान महिलाओं की राजनीतिक भूमिका को सामाजिक वैधता प्रदान करेंगे। यदि समाज में यह समझ मजबूत होगी कि महिला नेतृत्व पंचायत के विकास के लिए लाभकारी है, तो प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व जैसी समस्याएँ स्वतः कम होंगी। अंततः, स्थानीय स्वशासन में महिलाओं की भागीदारी न केवल लोकतांत्रिक संरचना को मजबूत करती है बल्कि ग्रामीण समाज के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को भी गति प्रदान करती है। बिहार का अनुभव इस बात का प्रमाण है कि जब महिलाएँ नेतृत्व के अवसर प्राप्त करती हैं, तो वे न केवल अपने जीवन में बल्कि पूरे समाज के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला सकती हैं। इसलिए, भविष्य की संभावनाएँ अत्यंत उज्ज्वल हैं और यदि उचित नीतिगत समर्थन और संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ तो महिला सशक्तिकरण बिहार के विकास का एक स्थायी स्तंभ बन सकता है।

निष्कर्ष :

स्थानीय स्वशासन में महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में की गई समग्र चर्चा यह स्पष्ट करती है कि भारत, विशेषकर बिहार में, पंचायत स्तर पर महिलाओं की भागीदारी ने शासन की प्रकृति, उसकी कार्यप्रणाली और सामाजिक संरचना-तीनों को गहराई से प्रभावित किया है। 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों के द्वारा स्थापित विकेंद्रीकरण ने महिलाओं को न केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिया, बल्कि निर्णय-निर्धारण की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर भी प्रदान किया। बिहार में 2006 में लागू 50 प्रतिशत आरक्षण नीति ने अभूतपूर्व परिवर्तन लाया, जिसके परिणामस्वरूप लाखों महिलाएँ पंचायतों में मुखिया, सरपंच, पार्षद और वार्ड सदस्य के रूप में उभरीं। इससे ग्रामीण समाज में नेतृत्व की नई धारा विकसित हुई और शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पोषण, महिला सुरक्षा तथा नशामुक्ति जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय सुधार दिखाई देने लगे। इसमें चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। पितृसत्तात्मक मानसिकता, प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व, संसाधनों की कमी, तकनीकी ज्ञान का अभाव और प्रशासनिक जटिलताएँ अभी भी महिलाओं की प्रभावी भूमिका में बाधक हैं। इसके बावजूद स्वयं सहायता समूहों, जीविका कार्यक्रमों, कौशल विकास, डिजिटल साक्षरता और सरकारी प्रशिक्षणों ने महिला प्रतिनिधियों की क्षमता को मजबूत किया है, जिससे वे न केवल सामाजिक परिवर्तन की वाहक बनी हैं, बल्कि सुशासन की दिशा में ठोस योगदान भी दे रही हैं। सार रूप में, बिहार में स्थानीय स्वशासन के माध्यम से महिलाओं का सशक्तिकरण केवल राजनीतिक भागीदारी का विस्तार नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समावेशी विकास और लोकतंत्र की जमीनी मजबूती की दिशा में एक स्थायी परिवर्तन है। भविष्य में तकनीकी प्रशिक्षण, संसाधन-सुदृढ़ीकरण और लिंग-संवेदनशील नीतियों द्वारा यह प्रक्रिया और अधिक प्रभावी तथा व्यापक हो सकती है।

सन्दर्भ सूची :

- 1 शर्मा, रामकुमार (2018), भारतीय संविधान एवं स्थानीय स्वशासन, नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस, पृ. 112
- 2 अग्रवाल, एस.एन. (2016), भारत में पंचायती राज व्यवस्था, जयपुर, आर.बी.एस.ए. पब्लिकेशन्स, पृ. 45
- 3 शर्मा, रामकुमार (2018), भारतीय संविधान एवं स्थानीय स्वशासन, नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस, पृ. 108

- 4 तथैव, पृ. 112
- 5 सिंह, मीना (2017), भारत में पंचायती राज व्यवस्था और महिला नेतृत्व, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स, पृ. 98
- 6 तथैव, पृ. 100
- 7 देसाई, नीरजा एवं कृष्णराज, मैत्रेयी (2011), भारत में महिलाएँ और शासन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 176
- 8 मिश्रा, अरुण कुमार (2017), पंचायती राज संस्थाएँ और सामाजिक विकास, नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, पृ. 189
- 9 तथैव, पृ. 191
- 10 तथैव, पृ. 204
- 11 सिंह, मीना (2017), भारत में पंचायती राज व्यवस्था और महिला नेतृत्व, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स इंडिया, पृ. 104
- 12 तथैव, पृ. 106
- 13 तथैव, पृ. 114
- 14 तथैव, पृ. 115
- 15 तथैव, पृ. 128
- 16 सिंह, अलका (2019), स्वयं सहायता समूह और ग्रामीण विकास: बिहार का जीविका मॉडल, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स इंडिया, पृ. 92
- 17 तथैव, पृ. 110
- 18 देसाई, नीरजा एवं कृष्णराज, मैत्रेयी (2011), भारत में महिलाएँ और शासन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 190-191

बिहार में स्वतंत्रता संग्राम और महिलाओं का योगदान

प्रिया कुमारी

(शोधार्थी) इतिहास विभाग, वाई.बी.एन. यूनिवर्सिटी, राँची, झारखंड

प्रो० (डॉ०) श्रवण कुमार सिंह

(शोध पर्यवेक्षक), इतिहास विभाग, वाई.बी.एन. यूनिवर्सिटी, राँची (झारखंड)

शोध आलेख का एबस्ट्रेक्ट :

बिहार में स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण, व्यापक और प्रेरक रहा है। राष्ट्रव्यापी आंदोलनों असहयोग, सविनय अवज्ञा, नमक सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बिहार की महिलाओं ने न केवल सक्रिय उपस्थिति दर्ज की, बल्कि अनेक स्थानों पर नेतृत्व की भूमिकाएँ भी निभाईं। सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्तात्मक बाधाओं और सीमित स्वतंत्रताओं के बावजूद बिहार की महिलाओं ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में जिस साहस, त्याग और दृढ़ संकल्प का परिचय दिया, वह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की आत्मा को सशक्त बनाता है। इस शोध आलेख का उद्देश्य बिहार में महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता, सामाजिक प्रेरणा, बलिदान तथा संगठनात्मक भूमिका का विश्लेषण करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रभावती देवी, शीला राय, सुचेता कृपलानी, राजकुमारी अमृत कौर और अनगिनत ग्रामीण-शहरी महिलाओं ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रतिरोध को जन-जन तक पहुँचाया। महिलाओं ने सभाओं, जुलूसों, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, चरखा प्रचार, जेल यात्राओं और गुप्त संचारी गतिविधियों के माध्यम से आंदोलन को नई ऊँचाईयाँ प्रदान कीं। बिहार में महिलाओं की भागीदारी केवल राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं थी; उन्होंने शिक्षा, स्वदेशी, सामाजिक सुधार, दारूबंदी, ग्रामोदय और जनजागरण के क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके योगदान ने न केवल बिहार में, बल्कि पूरे देश में महिला नेतृत्व के नए आयाम स्थापित किए। यह शोध इस निष्कर्ष की ओर संकेत करता है कि बिहार की महिलाओं का योगदान स्वतंत्रता संग्राम का अविभाज्य अध्याय है, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया और भविष्य के महिला अधिकार आंदोलनों को प्रेरक शक्ति दी।

प्रमुख शब्दावली: बिहार, स्वतंत्रता संग्राम, महिला योगदान, प्रभावती देवी, सविनय अवज्ञा, असहयोग आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन, महिला नेतृत्व, चरखा आंदोलन, स्वदेशी, सत्याग्रह, महिला शिक्षा, ग्रामीण भागीदारी, सामाजिक सुधार, दारूबंदी आंदोलन, महिला संगठन, राजनीतिक जागरूकता, जेल आंदोलन, राष्ट्रीय चेतना, जनजागरण, महिला सशक्तिकरण, प्रतिरोध आंदोलन आदि।

प्रस्तावना :

बिहार का स्वतंत्रता संग्राम भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का वह सशक्त अध्याय है, जहाँ सामाजिक संरचना, ग्रामीण परिवेश, औपनिवेशिक नीतियाँ और सांस्कृतिक परंपराएँ एक साथ मिलकर राजनीतिक चेतना के उभार का आधार बनीं। बिहार ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष नियंत्रण, भू-राजस्व नीतियों की कठोरता, नील और अफीम की खेती, किसान-प्रजा की दयनीय स्थिति तथा जमींदारी व सामाजिक विषमता की जटिलताओं से लगातार जूझता रहा। यही कारण था कि स्वाधीनता का प्रश्न यहाँ केवल राजनीतिक विरोध का विषय नहीं रहा, बल्कि जीवन, सम्मान और सामाजिक न्याय की लड़ाई बन गया। इस व्यापक संघर्ष में महिलाओं का योगदान एक महत्वपूर्ण पहलू रहा, किंतु इससे पहले उस ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है जिसके भीतर यह चेतना विकसित हुई।

औपनिवेशिक शासन के आरंभिक दौर में बिहार की आर्थिक और सामाजिक संरचना पर ब्रिटिश नीतियों का गहरा प्रभाव पड़ा। स्थायी बंदोबस्त के तहत जमींदारों को अत्यधिक अधिकार दिए गए,¹ जिससे किसान दोहरी शोषण व्यवस्था के शिकार हुए। एक ओर जमींदारों की मनमानी वसूली और दूसरी ओर अंग्रेजी प्रशासनिक दमन ने ग्रामीण समाज को अस्थिर कर दिया। इस माहौल में आधुनिक शिक्षा का प्रसार सीमित था, विशेषकर महिलाओं की शिक्षा लगभग नगण्य थी। सामाजिक रूढ़िवादिता, परंपरागत समाज व्यवस्था और स्त्री-पुरुष के बीच कठोर भेदभाव ने महिलाओं को घरेलू दायित्वों तक सीमित रखा था। किंतु इसी समाज में जातीय-सामुदायिक स्तर पर सहकार, लोक परंपराओं में समान अधिकार की भावना और ग्रामीण स्वायत्तता के मूल्य अंतर्निहित रूप से मौजूद थे, जो आगे चलकर महिला चेतना के उदय का आधार बने।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में राष्ट्रीय आंदोलन की धारा जब पूरे भारत में फैलने लगी, बिहार भी उससे अछूता नहीं रहा। कांग्रेस के गठन, बंग-भंग आंदोलन और स्वदेशी आंदोलन ने बिहार के शिक्षित वर्ग, व्यापारियों, छात्रों और प्रबुद्ध महिलाओं तक एक नई राजनीतिक चेतना पहुँचाई।² यद्यपि उस समय महिलाओं की संख्या राजनीतिक गतिविधियों में कम थी, परंतु अखण्ड पढ़ने, घरों में होने वाली चर्चाओं में भाग लेने, चरखा कातने और स्वदेशी के प्रति सहानुभूति जताने जैसे माध्यमों से उनकी भागीदारी की एक नींव तैयार होने लगी। इसी समय बिहार में सामाजिक सुधार आंदोलनों-जैसे बाल-विवाह निषेध,

पर्दा प्रथा पर विचार, स्त्री शिक्षा का आरंभ, विधवा-पुनर्विवाह पर बहस-ने महिलाओं के मानसिक संसार को प्रभावित किया और आत्मसम्मान की भावना को जन्म दिया।

बीसवीं सदी की शुरुआत में जब गांधीजी का बिहार आगमन हुआ और चंपारण में सत्याग्रह की अलख जगाई गई, तो पूरा समाज अभूतपूर्व रूप से आंदोलित हुआ। चंपारण सत्याग्रह न केवल राजनीतिक संघर्ष था, बल्कि यह समाजिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरण की नींव भी बना। किसानों की पीड़ा के बीच महिलाओं की दयनीय स्थितियों पर भी चर्चा उठी, जिससे महिला-शिक्षा और स्वास्थ्य सुधार की दिशा में नए विचार सामने आए। गांधीजी की 'स्वराज' और 'स्वदेशी' की अवधारणा ने महिलाओं तक यह संदेश पहुँचाया कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि यह घर, परिवार और सामाजिक जीवन में सम्मान व समानता प्राप्त करने का मार्ग भी है। इस दौर में बिहार का समाज कई स्तरों पर परिवर्तन से गुजर रहा था। एक ओर अंग्रेजों की कठोर नीतियों से लोग त्रस्त थे, तो दूसरी ओर ग्रामीण समाज में राजनीतिक जागरण की चेतना तेजी से फैल रही थी।¹ किसान, मजदूर, छात्र, छोटे व्यापारी और निम्न-मध्य वर्ग के लोग राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मिलित होने लगे थे। इसका प्रभाव महिलाओं पर भी पड़ा। वे अब केवल घरेलू दायित्व निभाने वाली पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित नहीं रहीं, बल्कि राष्ट्रवादी विचारों की वाहक बनकर उभरने लगीं। पत्र-पत्रिकाओं, कथाओं और लोकगीतों में उत्पीड़न, दमन और स्वतंत्रता की आकांक्षा अभिव्यक्त होने लगी। गाँवों में 'महिला मंडल', 'स्वयंसेवी दल' और सामाजिक सुधार समितियों का गठन प्रारंभ हुआ, जिससे महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ा और सामाजिक मर्यादाओं को चुनौती देने की शक्ति विकसित हुई।

राजनीतिक जागरण की एक और विशेषता यह थी कि बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन केवल शहरी केंद्रों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह छोटे कस्बों, गाँवों और प्रखंड स्तर तक पहुँचा। स्थानीय नेताओं, शिक्षकों और कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने महिलाओं को सभाओं, चरखे के प्रशिक्षण, स्वदेशी वस्त्र निर्माण, दान संग्रह और बहिष्कार अभियानों में शामिल करना शुरू किया। धीरे-धीरे महिलाओं की उपस्थिति सार्वजनिक जीवन में बढ़ने लगी।² यह परिवर्तन भारतीय महिलाओं के इतिहास में महत्वपूर्ण था, क्योंकि यह उनकी राजनीतिक पहचान के निर्माण की प्रक्रिया की शुरुआत थी।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक आते-आते महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देने लगा था। सामाजिक रूढ़ियों में कमी आई, पर्दा प्रथा शिथिल हुई, शिक्षा का विस्तार हुआ और राष्ट्रीय आंदोलन ने महिलाओं को एक वैचारिक मंच प्रदान किया। इसके बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी पर कई सीमाएँ थीं-सामाजिक नियंत्रण, पारिवारिक दबाव, आर्थिक निर्भरता और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ। लेकिन इन सबके बीच भी महिलाएँ धीरे-धीरे अपने आसपास के वातावरण को बदलने लगीं। वे सभाओं में भाग लेने लगीं, घरों में स्वदेशी वस्त्र तैयार करने लगीं, दान संग्रह करने लगीं और पुरुषों के साथ स्वतंत्रता के मुद्दों पर चर्चा करने लगीं। इस परिवर्तन की सबसे बड़ी विशिष्टता यह थी कि स्वतंत्रता आंदोलन ने बिहार की महिलाओं तक यह संदेश पहुँचाया कि राष्ट्र सेवा और समाज सेवा दोनों समान हैं। महिलाओं ने यह समझना शुरू किया कि उनका योगदान केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि वे देश की उन्नति में समान रूप से योगदान दे सकती हैं। राष्ट्रीय आंदोलन ने महिलाओं को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर सक्रिय होने का अवसर उपलब्ध कराया, जिसने उनकी पहचान को नई दिशा दी।³ इसी वातावरण में बिहार की महिला चेतना का व्यापक विस्तार हुआ, और आने वाले वर्षों में असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की अभूतपूर्व भागीदारी दिखाई दी। लेकिन इस सक्रियता की जड़ें इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में निहित थीं-औपनिवेशिक दमन, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया, राष्ट्रीय चेतना का विकास और शिक्षा व सुधार आंदोलनों की भूमिका। यही वह सामाजिक और वैचारिक आधार था जिसने बिहार की महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम में एक संगठित और साहसी शक्ति के रूप में उभरने का अवसर दिया।

असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ऐसे निर्णायक चरण रहे जिनमें बिहार की महिलाओं ने अद्वितीय साहस, संगठित शक्ति और राष्ट्रभक्ति की मिसाल प्रस्तुत की। इन आंदोलनों ने पहली बार महिलाओं को घर की चारदीवारी से निकालकर सार्वजनिक जीवन में एक ऐसी भूमिका दी, जिसने न केवल राष्ट्रीय संघर्ष को सशक्त बनाया बल्कि महिलाओं के सामाजिक उत्थान की प्रक्रिया को भी तीव्र किया।⁴ बिहार की महिलाएँ पहले से ही सामाजिक सुधार आंदोलनों, खादी प्रचार और शिक्षा जागरण के माध्यम से राजनीतिक विचारधारा को आत्मसात कर चुकी थीं। अतः जब राष्ट्रव्यापी आंदोलनों का आह्वान हुआ, तो यहाँ की महिलाओं ने बड़ी संख्या में अपने पारिवारिक दायित्वों से ऊपर उठकर स्वतंत्रता की लड़ाई को अपनी पहचान का हिस्सा बना लिया।

असहयोग आंदोलन (1920-22) में महिलाओं की भागीदारी मुख्यतः स्वदेशी के प्रचार, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, चरखा कातने, धन संग्रह करने और सभाओं में शामिल होने के रूप में दिखाई दी।⁵

यद्यपि इस समय ठपीत की अधिकांश महिलाएँ पर्दा प्रथा का पालन करती थीं, फिर भी राष्ट्रीय चेतना की लहर ने उनके भीतर आत्मविश्वास जगाया। वे स्थानीय कांग्रेस समितियों के माध्यम से घर-घर जाकर चरखा वितरण, खादी बिक्री और स्वदेशी वस्त्रों के उत्पादन को बढ़ावा देती थीं। कई महिलाएँ शिक्षण संस्थानों और सरकारी कार्यक्रमों के बहिष्कार हेतु पुरुषों के साथ खेतों और गाँवों तक जाती थीं। असहयोग आंदोलन ने महिलाओं को पहली बार यह अनुभव कराया कि उनकी सक्रियता राष्ट्र निर्माण में निर्णायक सिद्ध हो सकती है।

सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-34) के समय बिहार में महिलाओं की भागीदारी और अधिक व्यापक और संगठित रूप में सामने आई। नमक कानून तोड़ने, धरने, जुलूसों, प्रदर्शनियों और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रत्यक्ष अवज्ञा ने महिलाओं में साहस की नई परंपरा विकसित की।⁶ बिहार के कई जिलों-पटना, मुजफ्फरपुर, गया, छपरा, दरभंगा, भागलपुर-में महिलाएँ नमक सत्याग्रह से प्रेरित होकर स्थानीय स्तर पर कानून उल्लंघन अभियानों में शामिल हुईं। वे ब्रिटिश वस्तुओं का खुलेआम बहिष्कार करतीं, दुकानों के सामने प्रदर्शन करतीं और स्वदेशी के समर्थन में जनजागरण चलातीं। ग्रामीण महिलाएँ समूहों में चरखा कातने और खादी उत्पादन को आंदोलन का हिस्सा बनाती थीं, जिससे यह संघर्ष केवल राजनीतिक न रहकर आर्थिक स्वावलंबन की प्रक्रिया से भी जुड़ गया। इस आंदोलन में महिलाओं की एक और महत्वपूर्ण भूमिका थी-ब्रिटिश दमन का खुला मुकाबला। पुलिस लाठीचार्ज, गिरफ्तारियाँ, जुर्माने और संपत्ति जब्ती जैसी कठोर कार्रवाइयों के बावजूद महिलाएँ पीछे नहीं हटीं। कई महिलाएँ जेल गईं, कई ने अपने परिवारों की जिम्मेदारी अकेले निभाई और कई ने पुरुष सदस्यों

के जेल जाने के बाद घरेलू और सामाजिक नेतृत्व की भूमिका संभाली। इस तरह महिलाओं ने आंदोलन को निरंतरता देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह भी उल्लेखनीय है कि इस चरण में महिलाओं का साहस केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि सामूहिक स्तर पर था। वे स्वयंसेवक दलों का गठन करतीं, प्रभात फेरियाँ निकालतीं, राष्ट्रीय गीत गातीं और युवतियों को प्रशिक्षण देतीं। इससे महिलाओं का एक नया राजनीतिक नेतृत्व उभरने लगा।

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन तो बिहार में महिलाओं की अभूतपूर्व भागीदारी का प्रतीक बन गया। यह वह समय था जब आंदोलन पूर्णतः जनांदोलन बन चुका था, और सभी वर्गों-किसान, मजदूर, छात्र, व्यापारी-के साथ महिलाएँ भी इसके केंद्र में थीं।⁹ गांधीजी के फ़रारो या मरोष के आह्वान ने महिलाओं को संघर्ष के सबसे कठिन चरण में भी दृढ़ता से खड़े होने के लिए प्रेरित किया। बिहार के अनेक जिलों में महिलाएँ जंगल सत्याग्रह, डाक-तार व्यवस्था को बाधित करने, सरकारी कार्यालयों के घेराव, सजलूसों के नेतृत्व और भूमिगत गतिविधियों में शामिल रहीं। वे राष्ट्रीय ध्वज लेकर सबसे आगे चलतीं और ब्रिटिश सैनिकों व पुलिस बलों का सामना बिना भय दिखाए करती थीं।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बिहार में महिलाओं की भूमिकाएँ बहुआयामी थीं। कुछ महिलाएँ प्रत्यक्ष आंदोलनकारी थीं; कुछ संदेशवाहक के रूप में भूमिगत नेताओं तक सूचनाएँ पहुँचाती थीं; कुछ राष्ट्रीय स्वयंसेवकों को भोजन, वस्त्र और सुरक्षित स्थान उपलब्ध कराती थीं। कई महिलाओं ने अपने घरों को आंदोलन के गुप्त केंद्रों में तब्दील कर दिया था। उल्लेखनीय है कि इस समय ब्रिटिश दमन चरम पर था, लेकिन इसके बावजूद महिलाओं ने अपनी निर्णायक उपस्थिति बनाए रखी।¹⁰ वे न केवल गिरफ्तार हुईं, बल्कि कई मामलों में अनसुनी यातनाएँ भी झेलीं, फिर भी संघर्ष जारी रखा। इन बहादुर महिलाओं की प्रेरणा ने बिहार के ग्रामीण समाज को आंदोलन की धारा से जोड़े रखा। इन आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी दो स्तरों पर प्रभावी रही-एक, उन्होंने सीधे आंदोलन को गति दी; और दूसरा, महिलाओं की शिक्षा, आत्मसम्मान और सामाजिक स्थिति में व्यापक परिवर्तन लाने में योगदान दिया। राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रियता ने महिलाओं के सामने नए अवसर खोले, जिससे वे सार्वजनिक मंचों पर बोलने, निर्णय लेने और नेतृत्व करने में सक्षम हुईं। इससे आगे चलकर स्वतंत्रता के बाद महिला आंदोलन और सामाजिक जागरण को एक मजबूत आधार मिला। यह भी उल्लेखनीय है कि बिहार की महिलाओं ने केवल राष्ट्रीय नेताओं के आह्वान पर नहीं, बल्कि स्थानीय स्तर पर स्वयं पहल करके कई प्रकार के आंदोलन चलाए। उन्होंने विद्यालयों, पंचायतों, महिला मंडलों और सामाजिक संगठनों के माध्यम से बदलाव लाने की प्रक्रिया को मजबूत किया। इन योगदानों ने बिहार के स्वतंत्रता संग्राम को जन-आधारित, व्यापक और समग्र स्वरूप प्रदान किया। इन आंदोलनों के माध्यम से बिहार की महिलाएँ राष्ट्र की राजनीतिक धारा का अभिन्न हिस्सा बन गईं।

बिहार की प्रमुख महिला स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में अमिट स्थान रखता है। ये महिलाएँ उस समय सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक सीमाओं और पारिवारिक जिम्मेदारियों को पार करते हुए स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हुईं, जब महिलाओं का सार्वजनिक जीवन में सक्रिय होना अत्यंत कठिन माना जाता था। फिर भी प्रभावती देवी, शीला राय, अनसूया केसरी, सुचेता कृपलानी, महात्मा गांधी के चंपारण आंदोलन से जुड़े स्थानीय महिला समूह तथा अनेक ग्रामीण महिलाओं ने अपने साहस और त्याग से बिहार को राष्ट्रवादी आंदोलन का सुदृढ़ केंद्र बनाया। इन महिलाओं का योगदान केवल राजनीतिक विद्रोह तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक सुधार, शिक्षा, चरखा प्रचार, स्वदेशी अभियान और ग्रामीण समाज के उत्थान में भी उन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।¹¹

प्रभावती देवी का नाम बिहार के स्वतंत्रता संग्राम में सबसे प्रमुख रूप में उभरता है। वे न केवल एक जुझारू स्वतंत्रता सेनानी थीं, बल्कि गांधीजी की विश्वसनीय सहयोगी और एक श्रेष्ठ समाज-सुधारक भी थीं। उन्होंने खादी, शिक्षा और महिला उत्थान को आंदोलन की आत्मा माना और चौमुखी नेतृत्व प्रदान किया। प्रभावती देवी का राजनीतिक जीवन असहयोग आंदोलन के समय ही आरंभ हो गया था। वे घर-घर जाकर विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिए महिलाओं को प्रेरित करतीं और स्वदेशी वस्त्र खरीदने के लिए अभियान चलाती थीं। उनकी संगठन क्षमता और उनके दृढ़ संकल्प ने बिहार की महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में आगे आने के लिए प्रेरित किया। ब्रिटिश शासन के दमन के दौरान उन्होंने कई बार जेल यात्राएँ कीं और न्याय के लिए अडिग रहीं।

शीला राय भी बिहार की उल्लेखनीय महिला स्वतंत्रता सेनानियों में शामिल थीं। वे देश में महिला शिक्षा, राजनीतिक जागरूकता और सामाजिक सुधार की अग्रदूत रहीं। भारत छोड़ो आंदोलन के समय उन्होंने अनेक जुलूसों और सभाओं का नेतृत्व किया और कई बार गिरफ्तारी का सामना किया। उनकी नेतृत्व क्षमता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वे ग्रामीण महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने के लिए गाँव-गाँव यात्राएँ करती थीं। शीला राय ने महिलाओं के लिए प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए और उन्हें सत्याग्रह, चरखा कातने और स्वदेशी वस्त्र निर्माण के कार्य में लगने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने आंदोलन को एक नई महिला नेतृत्व-परंपरा प्रदान की।

अनसूया केसरी भी बिहार की उन निर्भीक महिलाओं में थीं जिन्होंने ब्रिटिश शासन के अत्याचारों का डटकर सामना किया। वे मात्र राजनीतिक आंदोलनों में ही नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार की दिशा में भी सक्रिय रहीं।¹² उन्होंने दलित और पिछड़े वर्ग की महिलाओं को शिक्षा, श्रम और स्वावलंबन के लिए प्रेरित किया। उनके नेतृत्व में कई महिला मंडलों का गठन हुआ, जिसने ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना के विस्तार में योगदान दिया। भारत छोड़ो आंदोलन के समय उन्होंने भूमिगत गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और कई नेताओं को गुप्त सूचना पहुँचाने का कार्य किया।

सुचेता कृपलानी यद्यपि राष्ट्रीय स्तर की नेता थीं, लेकिन उनका बिहार से भी गहरा संबंध रहा। वे बिहार के स्वतंत्रता सेनानियों के संपर्क में रहती थीं और यहाँ की महिला राजनीतिक गतिविधियों को दिशा प्रदान करती थीं। उनके भाषण और संगठनात्मक कार्यों ने बिहार की महिलाओं को प्रेरित किया। वे भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान कई अभियानों में शामिल हुईं और बाद में स्वतंत्र भारत में प्रथम महिला मुख्यमंत्री बनकर महिला नेतृत्व की शक्ति का प्रमाण बनीं। उनकी उपस्थिति ने बिहार की महिला कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई।

सुचेता कृपलानी यद्यपि राष्ट्रीय स्तर की नेता थीं, लेकिन उनका बिहार से भी गहरा संबंध रहा। वे बिहार के स्वतंत्रता सेनानियों के संपर्क में रहती थीं और यहाँ की महिला राजनीतिक गतिविधियों को दिशा प्रदान करती थीं।¹³ उनके भाषण और संगठनात्मक कार्यों ने बिहार की महिलाओं को प्रेरित किया। वे भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान कई अभियानों में शामिल हुईं और बाद में स्वतंत्र भारत में प्रथम महिला मुख्यमंत्री बनकर महिला नेतृत्व की शक्ति का प्रमाण बनीं। उनकी उपस्थिति ने बिहार की महिला कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई।

राजकुमारी अमृत कौर का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में कई स्वास्थ्य और सफाई अभियानों का नेतृत्व किया और महिलाओं को शिक्षा और स्वास्थ्य सुरक्षा के महत्व को समझाया। वे कई सभाओं और जुलूसों में शामिल हुईं और महिलाओं के स्वावलंबन के मुद्दे को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा। उन्होंने यह संदेश दिया कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक लक्ष्य नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार की प्रक्रिया भी है।

बिहार की महिला स्वतंत्रता सेनानियों का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि अनेक महिलाएँ स्थानीय स्तर पर सक्रिय थीं, जिनके नाम इतिहास के औपचारिक दस्तावेजों में कम मिलते हैं, परंतु उनकी भूमिका अत्यंत प्रभावशाली थी। गाँवों की महिलाएँ स्वदेशी उत्पादन, चरखा कातने, खादी बिक्री, सत्याग्रहियों को आश्रय देने, संदेशवाहक बनने और जन-जागरण फैलाने का कार्य करती थीं। कई महिलाएँ ब्रिटिश पुलिस के सामने डटकर खड़ी होतीं, जुलूसों में राष्ट्रीय ध्वज लेकर सबसे आगे चलतीं और लाठीचार्ज का सामना करतीं। इन ग्रामीण महिलाओं ने पुरुषों के जेल जाने पर घर-परिवार और खेती की जिम्मेदारियाँ संभालकर आंदोलन को निरंतर बनाए रखा। अन्य प्रमुख महिला सेनानियों में पूनम देवी, कौशल्या देवी, रामदुलारी देवी, जयंती देवी, कमला सिन्हा, ताराबेन केसरी जैसे नाम भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन महिलाओं ने न केवल राजनीतिक आंदोलनों में भाग लिया, बल्कि सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जागरूकता फैलाने का कार्य भी किया। वे दारूबंदी, बाल विवाह उन्मूलन, विधवा-पुनर्विवाह के समर्थन, महिला शिक्षा और खादी प्रचार में भी अग्रणी थीं। उन्होंने साबरमती और वर्धा आश्रम की तर्ज पर स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए।¹⁴ महिलाओं की इस समर्पित भूमिका का प्रभाव यह हुआ कि बिहार का स्वतंत्रता आंदोलन जन-भागीदारी का व्यापक रूप ग्रहण कर गया। महिलाओं ने आंदोलन को नैतिक ऊर्जा प्रदान की, सामाजिक स्तर पर जन-जागरण फैलाया और स्वतंत्रता की अवधारणा को परिवार से लेकर समाज तक प्रसारित किया। उनका योगदान न केवल राजनीतिक संघर्ष में, बल्कि सामाजिक परिवर्तन में भी गहरा था। उनकी उपस्थिति ने स्वतंत्रता आंदोलन को संवेदनशीलता, साहस, समर्पण और सामूहिकता का नया आयाम दिया।

महिला संगठन, जन-जागरण और सामाजिक सुधार आंदोलनों में बिहार की महिलाओं की भागीदारी स्वतंत्रता आंदोलन का वह महत्वपूर्ण पक्ष है जिसने राजनीतिक संघर्ष को सामाजिक आधार प्रदान किया। महिलाओं ने केवल राजनीतिक आंदोलनों में प्रत्यक्ष भागीदारी ही नहीं की, बल्कि समाज के भीतर जागरूकता फैलाने, रूढ़ियों को चुनौती देने, सामाजिक कुरीतियों को मिटाने और जनसंगठन की शक्ति को मजबूत करने का कार्य भी किया। इस तरह वे स्वतंत्रता आंदोलन के सामाजिक स्तंभ के रूप में उभर कर सामने आईं। यह सहभागिता इसलिए भी महत्वपूर्ण थी क्योंकि उस समय महिलाओं का सार्वजनिक जीवन में आना परंपरागत समाज में सहज रूप से स्वीकार्य नहीं था, फिर भी उन्होंने साहसपूर्वक इस बाधा को पार किया।

बिहार में महिला संगठन मुख्यतः 1920 के बाद सक्रिय रूप से उभरने लगे, जब असहयोग आंदोलन ने आम जनमानस को राजनीतिक रूप से जागृत किया।¹⁵ प्रभावती देवी, शीला राय, अनसूया केसरी और अन्य महिला नेता महिलाओं के संगठित समूह बनाती थीं, जिनका मुख्य उद्देश्य था-महिलाओं को राजनीतिक विचारधारा से परिचित कराना, सामाजिक समस्याओं पर चर्चा करना, स्वदेशी को बढ़ावा देना, और ग्रामीण महिलाओं को जागरूक बनाना। इन महिला मंडलों में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, खादी उत्पादन, स्वच्छता और परिवार-कल्याण जैसे विषय प्रमुख रूप से शामिल रहते थे। महिलाएँ बड़ी संख्या में इन मंडलों से जुड़ी थीं क्योंकि इनमें सहभागिता सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय आंदोलन दोनों से संबंधित थी। इससे महिलाओं के नेतृत्व गुण विकसित हुए और वे स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने में सक्षम बनीं।

महिला स्वयंसेवी दलों की स्थापना भी इसी चरण में हुई। इन दलों का कार्य था-सभाओं का आयोजन, जुलूसों में अनुशासन बनाए रखना, महिला कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देना और जन-संचार का कार्य करना। इन दलों की सदस्याएँ प्रतीकात्मक पोशाक पहनतीं, राष्ट्रीय गीत गातीं, चरखा काततीं और घर-घर जाकर संदेश फैलातीं। इससे महिलाओं में राष्ट्रवाद की भावना गहरी होती गई और वे संगठित होकर आंदोलन का हिस्सा बनीं। स्वयंसेवी दलों की गतिविधियाँ ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में फैलीं और महिलाओं के लिए सार्वजनिक जीवन में प्रवेश आसान होने लगा।

बिहार में सामाजिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव स्वतंत्रता आंदोलन से पहले ही शुरू हो गया था। 19वीं सदी में बाल-विवाह उन्मूलन, विधवा-पुनर्विवाह, पर्दा प्रथा हटाने और महिला शिक्षा की आवश्यकता जैसे मुद्दों पर लगातार बहस हो रही थी। इन सुधारों ने महिलाओं में आत्मसम्मान जागृत किया और उन्हें यह अहसास कराया कि सामाजिक बदलाव के लिए उनकी भूमिका अनिवार्य है। स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने की प्रेरणा का एक आधार यह भी था कि महिलाएँ सामाजिक बंधनों से मुक्ति चाहती थीं और राष्ट्रीय आंदोलन उनके लिए यह अवसर लेकर आया।

महिलाओं ने सामाजिक सुधार अभियानों को कई तरीकों से गति दी। वे गाँवों में स्वच्छता अभियान चलातीं, दहेज और व्यसन विरोधी कार्यक्रम आयोजित करतीं, स्कूलों के लिए धन-संग्रह करतीं और विधवा-पुनर्विवाह के समर्थन में जागरूकता फैलातीं। दारूबंदी आंदोलन बिहार में विशेष रूप से महिलाओं से जुड़ा हुआ था, क्योंकि शराबबंदी का मुद्दा ग्रामीण जीवन से गहराई से संबंधित था। महिलाएँ दारू के ठेकों के सामने धरना देतीं, शराब उपभोग के विरोध में पुरुषों को समझातीं और घरों में नशा-मुक्ति का वातावरण बनातीं। यह सामाजिक सुधार आंदोलन केवल महिलाओं की नैतिक शक्ति का प्रतीक नहीं था, बल्कि इसने स्वतंत्रता आंदोलन को भी जन-समर्थन दिलाने में बड़ी भूमिका निभाई।

खादी और स्वदेशी का प्रचार भी महिला संगठनों का प्रमुख कार्य रहा। महिलाएँ चरखा काततीं, खादी का उत्पादन करतीं और इसे घर-घर पहुँचातीं। वे स्वदेशी वस्त्रों के उपयोग को सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय बनातीं और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को आंदोलन की आत्मा के रूप में प्रस्तुत करतीं। इससे स्वदेशी अभियान की गति बढ़ी और राष्ट्रीय आंदोलन को आर्थिक आधार मिला। खादी प्रचार ने महिलाओं को स्वावलंबन का मार्ग भी दिया और उन्हें घर के भीतर रहकर भी आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान करने की क्षमता प्रदान की।

जन-जागरण में महिलाओं की सक्रियता उल्लेखनीय थी। वे तेजस्वी भाषण देतीं, लोकगीतों और नाटकों के माध्यम से संदेश फैलातीं और मीटिंगों का आयोजन करतीं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ प्रभात फेरियाँ निकालतीं और राष्ट्रीय गीत गाकर स्वतंत्रता की ज्योति जगातीं। कई महिलाएँ पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखतीं और सामाजिक असमानता, ब्रिटिश दमन और राष्ट्रीयता पर अपने विचार व्यक्त करतीं। इससे महिलाओं का बौद्धिक विकास हुआ और समाज में उनकी विचारशील भूमिका स्थापित हुई।¹⁶

महिलाओं द्वारा किए गए ये सामाजिक सुधार प्रयास आंदोलन को अधिक व्यापक आधार देने में सफल हुए। जब महिलाएँ सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रिय हुईं, तो पुरुषों ने इसे सकारात्मक रूप से लिया और सामाजिक मान्यताओं में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। इससे समाज अधिक खुला और प्रगतिशील होने लगा, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हुआ। महिलाओं के इन सुधारात्मक कार्यों ने विशेष रूप से ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना की नींव रखी। इस पूरे आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि महिलाओं में नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ। वे केवल संगठित समूह की सदस्य नहीं रहीं, बल्कि आयोजक, शिक्षिका, प्रचारिका और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उभरीं। उन्होंने जन-जागरण को स्थायी रूप देने के लिए कई संस्थान स्थापित किए। ये संस्थाएँ आगे चलकर स्वतंत्रता के बाद भी महिला शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक उत्थान में योगदान देती रहीं। इस प्रकार, बिहार की

महिलाओं ने सामाजिक सुधार, जन-जागरण और संगठनवाद के माध्यम से न केवल राष्ट्रीय आंदोलन को ऊर्जा प्रदान की, बल्कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया को भी नई दिशा दी। उनकी भागीदारी ने सिद्ध किया कि स्वतंत्रता का संघर्ष केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की व्यापक प्रक्रिया है।

बिहार के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं के योगदान का ऐतिहासिक मूल्यांकन भारतीय इतिहास के उस पृष्ठ को खोलता है, जिसमें सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक जागरण और स्त्री-शक्ति के उभार का संगम दिखाई देता है। महिलाओं ने इस संघर्ष को केवल एक राजनीतिक आंदोलन के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे अपने आत्मसम्मान, सामाजिक समानता और अस्तित्व की लड़ाई के रूप में भी स्वीकार किया। उनके योगदान का मूल्यांकन यह स्पष्ट करता है कि बिहार का स्वतंत्रता आंदोलन इसलिए सशक्त और जन-आधारित बना क्योंकि इसमें महिलाओं की नैतिक शक्ति, संगठन क्षमता और सामाजिक नेतृत्व का समन्वय था।

स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं के योगदान को सबसे पहले इस दृष्टि से समझना आवश्यक है कि उन्होंने आंदोलन को व्यापक जनाधार देने में निर्णायक भूमिका निभाई। जब राष्ट्रीय आंदोलन बिहार के गाँवों और कस्बों में फैल रहा था, तब महिलाएँ घर-घर जाकर संदेश पहुँचाने, खादी बेचने, बहिष्कार अभियान चलाने और सभाओं में भाग लेने जैसे कार्य करती थीं। वे पर्दे में रहकर भी योजनाएँ बनातीं, पुरुषों को प्रेरित करतीं और घरों में आंदोलन के लिए अनुकूल वातावरण बनातीं।¹⁷

इस तरह उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन को सामाजिक संस्थान के रूप में विकसित किया और उसे जनता के जीवन से जोड़ दिया।

महिलाओं का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने नैतिक साहस और नागरिक अवज्ञा के मूल्यों को स्थापित किया। जब ब्रिटिश शासन दमन बढ़ाता था, तो महिलाएँ निर्भीक होकर सत्याग्रहियों के साथ खड़ी होती थीं। वे राष्ट्रीय ध्वज लेकर जुलूसों में सबसे आगे चलतीं, लाठीचार्ज और गिरफ्तारियों का सामना करतीं और जेल यात्राएँ करतीं। यह साहस न केवल पुरुष नेतृत्व के लिए प्रेरणा था, बल्कि सामाजिक मान्यताओं में भी परिवर्तन लाने वाला था। समाज ने पहली बार देखा कि महिलाएँ भी राजनीतिक जोखिम उठा सकती हैं, नेतृत्व संभाल सकती हैं और सामूहिक संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन ने महिलाओं में नेतृत्व के नए रूप विकसित किए। वे सभाओं का आयोजन करतीं, महिला स्वयंसेवी दलों का संचालन करतीं और सामाजिक सुधार समितियों का नेतृत्व करतीं। कई जिलों में महिलाओं ने भूमिगत गतिविधियों की जिम्मेदारी भी संभाली-सूचना पहुँचाने, आश्रय देने और गुप्त बैठकों का संचालन करने का कार्य किया। इससे यह स्थापित हुआ कि महिलाएँ राजनीतिक रणनीति, संगठन और संघर्ष संचालन में भी सक्षम हैं। यह नेतृत्व आगे चलकर स्वतंत्र भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में भी दिखाई दिया।

महिला योगदान का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उन्होंने आंदोलन को सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता के प्रश्नों से जोड़ा। महिलाओं ने दारुबंदी, बाल-विवाह उन्मूलन, विधवा-पुनर्विवाह, खादी प्रचार और शिक्षा जागरण जैसे मुद्दों पर विशेष जोर दिया क्योंकि ये उनके जीवन से गहराई से जुड़े हुए थे। उन्होंने यह सिद्ध किया कि स्वतंत्रता का अर्थ केवल ब्रिटिश शासन से मुक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक कुरीतियों से भी मुक्ति है। यह व्यापक दृष्टिकोण आंदोलन को नैतिक और सामाजिक आधार देने वाला था।

बिहार के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का एक विशिष्ट योगदान यह भी था कि उन्होंने लोक-संस्कृति, गीत, भजन, नाटक और कथाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया। महिलाओं द्वारा रचित और गाए गए कई लोकगीतों में स्वतंत्रता, त्याग और संघर्ष की भावना अभिव्यक्त होती है। इन गीतों ने ग्रामीण समाज में आंदोलन की भावना को गहरा बनाया और बच्चों तथा युवाओं को राष्ट्रीयता से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं ने आंदोलन को सांस्कृतिक आधार भी प्रदान किया।¹⁸

ग्रामीण महिलाओं का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे सैन्य बलों, पुलिस और सरकारी दमन का सीधे सामना करती थीं। पुरुषों के जेल जाने पर वे खेती, पशुपालन और घरेलू दायित्व को संभालते हुए आंदोलन को जारी रखती थीं। कई ग्रामीण महिलाएँ ब्रिटिश अधिकारियों को गुमराह कर भूमिगत नेताओं को बचाती थीं। यह साहसिक भूमिका बताती है कि महिलाएँ न केवल सहायक शक्ति थीं, बल्कि कई मामलों में नेतृत्व का केंद्र भी थीं।

महिलाओं के योगदान का मूल्यांकन करते समय यह भी समझना होगा कि उन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ-साथ स्त्री-जागरूकता का एक नया अध्याय भी लिखा। स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेने से महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ा और वे निर्णय लेने, बोलने और सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के लिए प्रेरित हुईं। यह प्रक्रिया स्वतंत्रता के बाद महिला अधिकार आंदोलन, शिक्षा के विस्तार और महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के लिए आधार बनी। इतिहासकारों के लिए चुनौती यह भी है कि कई महिला स्वतंत्रता सेनानियों के नाम दस्तावेजों में नहीं मिलते, परंतु उनका योगदान स्थानीय स्मृतियों, मौखिक परंपराओं और सामाजिक इतिहास में सुरक्षित है। ये अनाम महिलाएँ आंदोलन के वास्तविक आधार स्तंभ थीं। इसलिए बिहार के स्वतंत्रता संग्राम का मूल्यांकन तभी न्यायसंगत होगा जब इन अनाम महिला सेनानियों के कार्यों को भी इतिहास के दायरे में शामिल किया जाए।

बिहार की महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन को न केवल गति दी, बल्कि उसे मानवीय, नैतिक और सामाजिक शक्ति भी प्रदान की। उनका योगदान भारतीय राष्ट्रवाद को संवेदनशीलता, समर्पण और साहस का नया आयाम देता है। आधुनिक भारत में महिलाएँ जिस अधिकार-संपन्न स्थिति में दिखाई देती हैं, उसमें स्वतंत्रता संग्राम की इन महिलाओं की भूमिका आधारशिला के समान है। उनका संघर्ष केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रेरक स्रोत भी है।

निष्कर्ष :

बिहार में स्वतंत्रता संग्राम और महिलाओं के योगदान के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ की महिलाएँ राष्ट्रवादी चेतना, सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक प्रतिरोध की मजबूत आधारशिला रही हैं। उन्होंने न केवल घर-परिवार की पारंपरिक सीमाओं को पीछे छोड़ा, बल्कि स्वतंत्रता के लिए अपने जीवन, सम्मान और सुख-सुविधाओं तक का त्याग किया। बिहार की महिलाओं ने आंदोलन के हर चरण-स्वदेशी, असहयोग, नमक सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह और भारत छोड़ो आंदोलन-में साहस, त्याग और नेतृत्व का परिचय दिया। वे संदेशवाहक, आश्रयदाता, धनसंग्रहकर्ता ही नहीं, बल्कि जनसभाओं की वक्ता, जुलूसों

की अगुवाई करने वाली और ब्रिटिश दमन का प्रत्यक्ष सामना करने वाली क्रांतिकारी भी रहीं। राजकुमारी अमृत कौर, उषा मेहता, रामदुलारी देवी, कुंती देवी, अनीता देवी, और अनेक स्थानीय ग्रामीण महिलाओं ने संघर्ष को जमीनी स्तर पर जीवंत बनाए रखा, जिसके कारण स्वतंत्रता आंदोलन व्यापक और जनआधारित स्वरूप ग्रहण कर सका। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि बिहार की महिलाओं के योगदान को मुख्यधारा के इतिहास में पर्याप्त महत्व नहीं मिल पाया, जबकि स्वतंत्रता आंदोलन की सफलता में उनकी भूमिका निर्णायक थी। इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि महिलाओं ने स्वतंत्रता की चेतना को सामाजिक न्याय, समानता और सामुदायिक एकजुटता के साथ जोड़ा। उनका संघर्ष केवल राजनीतिक आजादी तक सीमित नहीं था, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन का भी वाहक बना। अतः बिहार की स्वतंत्रता सेनानी महिलाओं की भूमिका का पुनर्पाठ न केवल ऐतिहासिक न्याय की आवश्यकता है, बल्कि आज की सामाजिक-राजनीतिक संरचना में महिला नेतृत्व और भागीदारी को सशक्त बनाने की दिशा में प्रेरक आधार भी प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची :

- 1 ताराचंद (1961), भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृ. 112
- 2 बिपिन चंद्र (2009), आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ. 185
- 3 सुमित सरकार (2012), आधुनिक भारत (1885-1947), नई दिल्ली, मैकमिलन, पृ. 142
- 4 मिश्रा, रामशरण (2004), बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 98
- 5 कुमार, नीरजा (2010), भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 56
- 6 चंद्र, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला (2015), भारत का स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली, पेंगुइन, पृ. 214
- 7 देसाई, नीरा (1988), भारत की महिला आंदोलन, मुंबई, पॉपुलर प्रकाशन, पृ. 72
- 8 गांधी, महात्मा (1999), सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका (हिंदी अनुवाद), अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन, पृ. 201
- 9 शर्मा, सुरेन्द्र कुमार (2008), भारत छोड़ो आंदोलन : एक अध्ययन, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, पृ. 133
- 10 मजूमदार, आर.सी. (1963), भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, कलकत्ता, फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, पृ. 289
- 11 सिंह, रीता (2011), बिहार की महिला स्वतंत्रता सेनानियाँ, पटना, प्रभात प्रकाशन, पृ. 41
- 12 पाण्डेय, शारदा (2006), स्वतंत्रता संग्राम में स्त्री चेतना, वाराणसी, चौखम्बा प्रकाशन, पृ. 88
- 13 कृपलानी, सुचेता (1976), तमउमउडमत, नई दिल्ली, सागर पब्लिकेशंस, पृ. 67
- 14 गुप्ता, मंजू (2013), भारतीय महिला आंदोलन : इतिहास और विचार, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 121
- 15 सरकार, सुमित (2001), स्वदेशी आंदोलन और भारतीय राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, ओरिएंट लॉन्गमैन, पृ. 198
- 16 देवी, प्रभावती (संपा.) (1985), गांधी और महिलाएँ, पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. 52
- 17 थापर, रोमिला (2000), इतिहास और राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, पेंगुइन इंडिया, पृ. 164
- 18 कुमार, कपिल (2014), लोक-संस्कृति और राष्ट्रीय आंदोलन, नई दिल्ली, ग्रंथशिल्पी, पृ. 93

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और सामाजिक पुनरुत्थानवाद की परस्पर संबद्धता का अवलोकन

डॉ० कुमार रश्मि रंजन

वरिय सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, एम.एस.एस.जी.कॉलेज, अरेराज, पूर्वी चंपारण

शोध आलेख का सारतत्त्व :

भारतीय राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि इसकी जड़ें सांस्कृतिक चेतना, ऐतिहासिक स्मृति और सामाजिक पुनरुत्थान की प्रक्रियाओं में निहित रही हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने भारत की प्राचीन परंपराओं, मूल्यों, भाषाओं और धार्मिक-सांस्कृतिक विरासत को राष्ट्रीय एकता के आधार के रूप में प्रस्तुत किया, वहीं सामाजिक पुनरुत्थानवाद ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, जातिगत भेदभाव और लैंगिक असमानताओं के उन्मूलन का प्रयास किया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के सुधार आंदोलनों-जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन और अन्य सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों ने सांस्कृतिक आत्मबोध को पुनर्जीवित करते हुए सामाजिक सुधार को राष्ट्रनिर्माण से जोड़ा। इस आलेख में यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने सामाजिक पुनरुत्थानवाद को वैचारिक आधार प्रदान किया तथा सामाजिक सुधार आंदोलनों ने राष्ट्रवादी चेतना को व्यापक सामाजिक समर्थन दिलाया। सार रूप में, भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और सामाजिक पुनरुत्थानवाद परस्पर पूरक प्रक्रियाएँ रही हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक समरसता और आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रमुख शब्दावली: राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, सामाजिक पुनरुत्थानवाद, राष्ट्रीय एकता, अखंडता, उदारवाद, नारीवाद, सामाजिक समरसता, आधुनिकीकरण, सामाजिक सशक्तिकरण आदि।

प्रस्तावना :

भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद मूलतः हिन्दू समाज में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं को समाप्त करते हुए समता, सौहार्द और सामाजिक एकात्मता की स्थापना से संबंधित विचारों, प्रयासों और कार्यों का समुच्चय है। यह केवल अतीत की ओर लौटने का प्रयास नहीं है, बल्कि भारतीय समाज को उसकी मौलिक सांस्कृतिक चेतना से जोड़ते हुए उसे आधुनिक संदर्भों में पुनर्स्थापित करने का एक सार्थक प्रयास है। सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद का उद्देश्य हिन्दू धर्म एवं सनातन संस्कृति की उन मूल मान्यताओं, मूल्यों और परंपराओं की पुनःस्थापना करना है, जिनमें मानवतावाद, सहिष्णुता, समन्वय और सामाजिक समरसता निहित है। इसी कारण यह भारतीय समाज और राष्ट्र के एकीकरण का एक वैचारिक तथा व्यावहारिक प्रयास भी माना जाता है।

सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद का गहरा संबंध राष्ट्रीय संस्कृति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से है। जहाँ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र की पहचान को उसकी सांस्कृतिक विरासत, परंपराओं और ऐतिहासिक स्मृति से जोड़ता है, वहीं सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद समाज को आंतरिक रूप से सशक्त, संगठित और जागरूक बनाने का प्रयास करता है। दोनों ही अवधारणाएँ परंपराओं और ऐतिहासिक धरोहर के संरक्षण के साथ-साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता को बनाए रखने पर बल देती हैं। इस दृष्टि से सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक-दूसरे के पूरक हैं। भारत में इन अवधारणाओं को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वैचारिक संरचना तथा भारतीय जनता पार्टी की राजनीति और राजनीतिक संस्कृति से भी जोड़ा जाता है, जहाँ साझा संस्कृति को राष्ट्रीय चेतना का आधार माना गया है।

सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद को राष्ट्र के इतिहास की वास्तविक पुनर्स्थापना के रूप में भी देखा जाता है। यह स्वदेशी और स्व-संस्कृति के प्रति गहरी प्रतिबद्धता, राष्ट्र के प्रति समर्पण और समाज में एकत्व की भावना को स्थापित करने का प्रयास है। इसका मूल उद्देश्य मानव धर्म, सामाजिक सौहार्द और सांस्कृतिक सामंजस्य को सुदृढ़ करना है। भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, दोनों ही 'हिन्दुत्व' की अवधारणा का समर्थन करते हैं, जो किसी संकीर्ण मजहबी अर्थ में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सभ्यतागत संदर्भ में समझी जाती है। यहाँ हिन्दुत्व एक जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक आचरण का प्रतीक है।

भारतीय में सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद का सर्वाधिक प्रचलित और संगठित रूप सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के रूप में दिखाई देता है, जो 'अखण्ड भारत' की अवधारणा से प्रेरित है। यह व्यक्ति के जीवन को समाज, राष्ट्र और राष्ट्रीय इतिहास से जोड़ने की प्रक्रिया है। वस्तुतः भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद उत्सवधर्मी और सनातनी स्वरूप भी रखता है, जहाँ जीवन के प्रत्येक चरण-जन्म से लेकर मृत्यु तक-को उत्सव और संस्कार के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार यह भारतीय समाज की उत्सवधर्मिता को संरक्षित रखने और पुनर्स्थापित करने का एक राष्ट्रवादी प्रयास बन जाता है। यद्यपि सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद सनातन और हिन्दू संस्कृति से गहराई से जुड़ा हुआ है, फिर भी यह मजहबी संकीर्णता से मुक्त है। यह निष्पक्षता, श्रद्धा, विश्वास और समर्पण पर आधारित एक व्यापक

सांस्कृतिक दृष्टिकोण है। इसका उद्देश्य हिन्दू समाज की आंतरिक विसंगतियों को जड़ से समाप्त करना तथा समाज को विधर्मी प्रभावों और कुसंस्कृतियों से सुरक्षित रखना है। व्यापक अर्थों में यह न केवल भारतीय समाज, बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज की नैतिक और सांस्कृतिक परिशुद्धता की आकांक्षा करता है। इस वैचारिक परंपरा में राजाराम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज-सुधारकों के साथ-साथ पृथ्वीराज चौहान, वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप, राणा कुम्भा जैसे ऐतिहासिक राष्ट्रायकों की भूमिका और योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी भारत के इतिहास में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का निर्णायक काल रही, जब भारत ने मध्ययुगीन संरचनाओं से बाहर निकलकर आधुनिक युग में प्रवेश किया। इस काल में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों और ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों ने भारतीय धर्मों और संस्कृति को गहरे रूप से प्रभावित किया। इसके प्रतिकारस्वरूप सामाजिक-धार्मिक पुनर्जागरण आंदोलनों का उदय हुआ, जिनका उद्देश्य भारतीय समाज को आत्मगौरव, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक सुधार की दिशा में प्रेरित करना था। इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप सती प्रथा, जातिगत भेदभाव, महिला उत्पीड़न और अंधविश्वास जैसी कुरीतियों को समाप्त करने के प्रयास हुए। इन सुधार आंदोलनों के प्रमुख नेता-राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, वीरसलिंगम पंतुलु आदि-भारतीय समाज के पुनरुत्थान को ही राष्ट्रनिर्माण की आधारशिला मानते थे। उस समय जातीय असहिष्णुता, निरक्षरता, रूढ़िवादिता और महिलाओं की दयनीय स्थिति समाज की प्रमुख समस्याएँ थीं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए शिक्षित उदारवादी वर्ग ने सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थान का दायित्व संभाला। यद्यपि इन आंदोलनों की प्रकृति प्रायः धार्मिक रही और इनके राजनीतिक-आर्थिक विचार उग्र नहीं थे, फिर भी इन्होंने भविष्य के राष्ट्रीय आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की।

शिक्षा को सामाजिक पुनरुत्थान का प्रमुख साधन माना गया। आधुनिक शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, महिला शिक्षा, संपत्ति के अधिकार और सामाजिक समानता जैसे प्रश्नों को केंद्र में रखा गया। आर्य समाज, ब्रह्म समाज और थियोसॉफिकल सोसाइटी जैसे संगठनों ने सांस्कृतिक पुनर्निर्माण पर बल दिया। विशेष रूप से स्वामी विवेकानंद ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान को राष्ट्रीय गौरव और आत्मसम्मान से जोड़ा। उनकी शिक्षाओं ने भारतीय समाज में आत्मविश्वास और राष्ट्राभिमान की भावना को पुनर्जीवित किया। स्पष्टतः भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद और उससे उत्पन्न सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने न केवल सामाजिक सुधार की दिशा तय की, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन के लिए वैचारिक शक्ति भी प्रदान की। यह पुनरुत्थान भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना, ऐतिहासिक स्मृति और राष्ट्रीय एकता का आधार बना, जिसने आधुनिक भारत के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई।

देवेंद्रनाथ टैगोर (1817-1905) ने राममोहन राय के विचारों को प्रचारित करने के लिए 1839 ई० में कलकत्ता में तत्वबोधिनी सभा की स्थापना की। देवेंद्रनाथ टैगोर 1843 में ब्रह्म समाज में सम्मिलित हो गये। इनके द्वारा एक बंगाली मासिक तत्वबोधिनी पत्रिका द्वारा भारतीय इतिहास के क्रमबद्ध अध्ययन को बढ़ावा दिया गया। ये ब्रह्म समाज के 1866 ई० तक नेता बने रहे तथा राय द्वारा शुरू किए गए सामाजिक-धार्मिक सुधारों को आगे बढ़ाते रहें अर्थात् सांस्कृतिक पुनरुत्थान को गति देते हैं। 1857 ई० में ब्रह्म समाज में केशव चन्द्र सेन शामिल हुए तथा देवेंद्रनाथ का सहयोग करते रहें। इसी दौरान पुराने एवं रूढ़िवादी वर्ग, जिसके नेता देवेंद्रनाथ थे, के बीच समाज सुधार (मुख्यतया जाति प्रथा) तथा ब्रह्मवाद एवं हिंदू धर्म बीच संबंध जिसमें प्रगतिशील वर्ग जातिप्रथा को पूरी तरह से समाप्त करना चाहता था एवं ब्रह्मवाद को हिंदू धर्म से अलग मानता था। इसके विपरीत रूढ़िवादी वर्ग जाति प्रथा की सख्ती की आलोचना करते हुए भी इसे बरकरार रखना चाहता था तथा ब्रह्मवाद को हिंदू धर्म का समर्थक मानता था को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गए। इसके फलस्वरूप प्रगतिशील वर्ग पैतृक संस्था (जिसे आदि ब्रह्म समाज कहा जाता था) से 1865 ई० में अलग हो गया। 1866 ई० में एक नए संगठन के रूप में स्थापित हुआ, जिसे भारत के ब्रह्म समाज के नाम से जाना जाता था। इस संस्था ने बंबई एवं मद्रास सहित भारत के अन्य भागों में अपने भ्रमण द्वारा ब्रह्म समाज के संदेश को प्रचारित किया। इन्होंने समाज सुधार की मौलिक एवं व्यापक योजना की अपनाकर भक्ति को ब्रह्मवाद से जोड़ा। बाद में भारतीय संघ की स्थापना हुई (1870) ब्रिटिश सरकार को 1872 ई० का नेटिव मैरेज एक्ट (जिसे सिविल मैरेज एक्ट के नाम से जाना जाता है) लाने के लिए राजी कर लिया। इससे ब्रह्म विवाह कानूनी हो गया एवं दूल्हे एवं दुल्हन की न्यूनतम आयु 18 वर्ष तथा 14 वर्ष निर्धारित की गई। यह भी सामाजिक पुनरुत्थान का आधार बना। ब्रह्म समाज का दूसरा विच्छेद 1878 ई० में हुआ। जब सेना के समर्थकों के एक वर्ग द्वारा आनंद मोहन बोस एवं शिवनाथ शास्त्री के नेतृत्व में उसे छोड़कर साधारण ब्रह्म समाज स्थापित किया गया। इस विभाजन का कारण समाज की व्यवस्था के बारे में प्रश्न एवं सेन द्वारा नेटिव मैरेज एक्ट को भंग करना था।

दुर्गराम मंडाराम (1809-78), शिक्षित गुजरातियों के एक छोटे समूह का नेता था, जो 1830 ई० के दशक में समकालीन समाज का प्रभावशाली आलोचक बना। इस समूह के अन्य प्रमुख सदस्य दादोबा पांडरंग, दिनमणि शंकर, दलपत्रम भगुवायी एवं दामोदर दास थे। उन्होंने 1844 ई० में सूरत में मानव धर्म सभा की स्थापना की, जिसकी प्रत्येक रविवार को बैठक होती थी एवं इस बैठक में अपनी इच्छानुसार अन्य लोग भी भाग ले सकते थे। इनकी बैठक गुप्त रूप से होती थी। रामकृष्ण जयकर मंडली के अपने कार्यक्रम के एक भाग के रूप में मानव धर्म सभा ने जादूगरों एवं झाड़ू-फूंक करने वालों को अपनी कला दिखाने का विरोध किया। ये जाति प्रथा के भी आलोचक थे, लेकिन उन्होंने इसके विरुद्ध कोई सीधी कार्रवाई नहीं की। मानव धर्म सभा का एक क्रियाशील संगठन के रूप में छोटा जीवन था। 1846 ई० में दादोबा पांडरंग के बंबई लौट जाने के बाद यह विघटित हो गया तथा दुर्गराम मंडाराम द्वारा 1852 ई० में राजकोट चले जाने के बाद यह पूर्णतः समाप्त हो गया। यद्यपि इसकी एक छोटी आयु थी, लेकिन सभा के सदस्य, जो इसके विचार एवं आंदोलन से जुड़े थे, बाद में इनके द्वारा महाराष्ट्र एवं गुजरात के विकास के लिए कई कार्य किए गए। अतः यह कहा जा सकता है कि यह सभा महाराष्ट्र एवं गुजरात में बाद के विकासों से जुड़ी हुई थी। इसने स्थानीय स्तर पर ही सही लेकिन समाज में पुनरुत्थान को आधार प्रदान किया।

परमहंस मंडली का इतिहास मानव धर्म सभा एवं दादोबा पांडरंग (1814-82) से जुड़ा था। दादोबा ने धर्म विवेचन (1848 ई०) में अपना सिद्धांत प्रस्तुत किया। उन्होंने सात सिद्धांतों को सूचीबद्ध किया, जो इस नई संस्था का आधार बना। वे अग्रलिखित प्रकार के थे: (1.) केवल ईश्वर की पूजा होनी चाहिए। (2.) वास्तविक धर्म प्रेम एवं नैतिक व्यवहार पर आधारित होती है। (3.) आध्यात्म एक धर्म है। (4.) प्रत्येक व्यक्ति को चितन की स्वतंत्रता होनी चाहिए। (5.) हमारा दैनिक कार्य तर्क के अनुकूल होना चाहिए। (6.) संपूर्ण मानव समुदाय एक जाति है तथा (7.) अच्छा ज्ञान सभी को देना चाहिए। ये सिद्धांत हिंदू धर्म के लोकप्रिय बहुदेववाद, जाति प्रथा एवं ब्राह्मणों के ज्ञान पर एकाधिकार का खंडन करते हैं। 1849 ई० में दादोबा एवं उनके मित्रों ने बंबई में परमहंस

मंडली की एक मूल सामाजिक धार्मिक संस्था की स्थापना की तथा सभी सदस्यों को उसमें जाति प्रतिबंधों का परित्याग करने का वचन लेना पड़ता था। सभी नए सदस्यों को तथाकथित निम्न जाति द्वारा बनाया गया भोजन एवं पानी ग्रहण करना पड़ता था। सभी सदस्यों तथा समर्थकों के पर एक नियत सभा होती थी, जिसमें समाचारपत्र पढ़ते थे एवं विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक विषयों पर विचार करते। इस समुदाय ने दो मुख्य सिद्धांतों पर समझौता किया। पहला सिद्धांत था कि के किसी अन्य धर्म पर आक्रमण नहीं करेंगे और दूसरा अगर कोई भी धर्म ग्रामात्मिक का दावा करेगा तो उसे अस्वीकृत कर देंगे। इस संस्था की शाखाएं पूना, अहमदनगर एवं स्नागिरी में स्थापित हुई। मंडली ने मानव धर्म सभा का अनुसरण किया एवं जातिप्रथा, मूर्ति पूजा, रूढ़िवादी धार्मिक यज्ञ तथा ब्राह्मणों के प्रभुत्व को अस्वीकृत किया, जिसमें इसे कुछ सफलता मिली। इसके द्वारा गोपनीय संस्था के रूप में कार्य करना इसके हिंदू परंपरा, निष्ठा को खुली चुनौती देने की अनिच्छा को प्रदर्शित करता था। मानव धर्म सभा एवं परमहंस मंडली के विचार एक सामाजिक आर्थिक आंदोलन के रूप में कार्य की। यह सांस्कृतिक पुनरुत्थान की गति को आगे बढ़ाया।

ब्रह्म समाज की एक शाखा, इसकी स्थापना 1867 ई० में डॉ. आत्माराम पांडुरंग द्वारा बंबई में हुई। एम.जी. रानाडे एवं आर. जी. भंडारकर 1870 ई० में इससे जुड़े एवं इसे एक नई शक्ति प्रदान की। यह हिंदू धर्म में एक सुधार आंदोलन था जिसने अंतर्जातीय भोजन, विवाह, विधवा विवाह, महिलाओं तथा पिछड़े वर्ग के सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए अपना ध्यान केंद्रित किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना 1875 ई० में बंबई में की गई। आर्य समाज का सबसे विशिष्ट कार्य शुद्धि आंदोलन था। इसका अर्थ था- बलपूर्वक या अपनी इच्छा से दूसरे धर्मों में चले गए हिंदुओं का पुनः धर्म परिवर्तन कर हिंदू धर्म में लाना था। आर्य समाजियों द्वारा यह आंदोलन भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक एकता का प्रभावशाली साधन माना जाता था। आर्य समाज यद्यपि बंबई में स्थापित किया गया था, लेकिन शीघ्र ही यह पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात एवं देश के अन्य भागों में फैल गया। स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-83) 15 वर्ष (1845-60 ई० तक) घुमकंड तपस्वी के रूप में बिताए तथा याद में मथुरा के स्वामी विज्ञानंद से शिक्षा प्राप्त की। 1875 ई० में उन्होंने मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की। उनके धार्मिक एवं सामाजिक विचार तथा सुधार वेद को अपरिवर्तनीय एवं अमोघ मानते थे तथा मूर्ति पूजा, धार्मिक अनुष्ठान एवं पुरोहित (उनके अनुसार पुरोहित पुराणों की मदद जो गलतियों से भरा है हिंदू धर्म का दुरुपयोग करते हैं) के विरुद्ध थे। उनके द्वारा बाल विवाह और जन्म पर आधारित जाति प्रथा का विरोध किया गया; अंतर्जातीय विवाह एवं विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा दिया गया; पाश्चात्य विज्ञान के प्रसार को बढ़ावा दिया गया एवं प्राकृतिक संकट के समय समाज सेवा का संगठन किया गया। उन्होंने शुद्ध आंदोलन की शुरुआत की। वास्तविक रूप में भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान को इससे मजबूती मिली। दयानंद की मृत्यु (1883 ई०) के बाद शिक्षा की पद्धति के अनुसरण के प्रश्न पर आर्य समाज के दो समुदायों में मतभेद शुरू हुआ, जिसके परिणामस्वरूप इसका विभाजन 1892 ई० हुआ। एक समुदाय गुरुकुल समुदाय था जो स्वामी श्रद्धानंद के नेतृत्व में हिंदू शिक्षा की पारंपरिक पद्धति का समर्थक था। उसके द्वारा लड़कों के लिए संस्थाओं की स्थापना हुई, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण हरिद्वार में था। दूसरा समुदाय कॉलेज समुदाय था जिसके नेता लाला लाजपत राय एवं हंसराज थे इनके द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए कई दयानंद एंग्लो वैदिक (डी.ए.वी.) स्कूलों एवं कालेजों की स्थापना की गई, जिसमें लड़कियां एवं लड़के दोनों पढ़ते थे। इसमें सबसे महत्वपूर्ण संस्था लाहौर में थी। दोनों ही धारा से भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान को बल मिला था।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना 1897 ई० में स्वामी विवेकानंद द्वारा स्कूल, कालेजों, अस्पतालों, अनाथालयों, मानवतावादी सहायता एवं समाज सेवा के लिए बेलूर में की गई। रामकृष्ण मठ की स्थापना स्वामी विवेकानंद द्वारा रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा के प्रचार हेतु मठवासियों को अति में लाने के लिए 1887 ई० बाराणसी में की गई। बेलूर 1890 में मठ एवं मिशन दोनों का मुख्यालय बन गया, यद्यपि वैधानिक तौर पर मठ एवं मिशन अलग-अलग थे, लेकिन व्यवहारिक रूप दोनों एक संस्था मठ के सदस्य मिशन के मुख्य कार्यकारी सदस्य तथा मठ के (ट्रस्टी) मिशन की प्रबंध परिषद के सदस्य थे। रामकृष्ण परमहंस (1836-1886) का उनका जन्म पश्चिमी बंगाल के हुगली जिले के कमरपुर ग्राम में 1836 ई० में हुआ था। कलकत्ता के नजदीक दक्षिणेश्वर में ये 1856 ई० में माता काली मंदिर में पुजारी बने। 1860 ई० में उन्होंने एक नाबालिग लड़की शारदामणि से विवाह किया, जो बाद में दक्षिणेश्वर आ गई एवं अंत तक उनकी सेवा करती रही। ये धार्मिक मुक्ति के लिए गृहत्याग, चिंतन एवं भक्ति के पारंपरिक नियमों के पक्षधर थे। उनका मानना था कि ईश्वर प्राप्ति के कई साधन हैं तथा मानव सेवा हो ईश्वर की सेवा है। धार्मिक सुधार एवं सांस्कृतिक विकास को इससे बल मिला।

स्वामी विवेकानंद (1863-1902) का वास्तविक नाम नरेन्द्र दत्त था तथा 1863 ई० में कलकत्ता में इनका जन्म हुआ था। 1881 ई० में वे सर्वप्रथम अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के पास गए एवं इसके बाद वे उनके पास हमेशा जाने लगे। स्वामी विवेकानंद ने भारत में व्यापक रूप से भ्रमण किया, जिससे उन्हें लोगों के साथ नजदीक संबंध बनाने तथा भारत की सही स्थिति के बारे में जानकारी मिली। उनके द्वारा 1893 ई० में शिकागो (यू.एस.ए.) की विश्व धर्म संसद में भाग लिया गया, इससे हिंदू धर्म एवं भारत को प्रतिष्ठा बढ़ी। अमेरिका से वे यूरोप चले गए तथा 1897 ई० में भारत वापस आए। इसी बीच उन्होंने दो समाचारपत्रों का प्रकाशन शुरू किया-प्रबुद्ध भारत, मासिक अंग्रेजी में तथा उद्बोधना पाक्षिक बंगाली में। बाद में 1899 ई० में वे दूसरी बार अमेरिका गए तथा पेरिस (1900 ई०) में कांग्रेस में धर्म के इतिहास पर भी बोले। वे 1900 ई० में भारत लौटे तथा बीमारी के कारण 1902 ई० में उनको मृत्यु हो गई। उनके द्वारा अपने गुरु के धार्मिक संदेश को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया गया तथा इसे समकालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। उन्होंने यह बल दिया कि सामाजिक कार्य अनिवार्य है जिसके बिना इस संसार में ज्ञान का कोई उपयोग नहीं है। जाति प्रथा एवं वर्तमान हिंदू समाज के धार्मिक अनुदानों एवं समारोहों के निंदक थे। उन्होंने लोगों में स्वतंत्रता, समानता एवं मुक्त चिंतन की भावना विकसित करने का प्रयास किया। वस्तुतः इन्हें ही भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का मसीहा कहा जा सकता है।

थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना मैडम एच.पी. ब्लासको (1831-1919 ई० में) एक रूसी महिला तथा एच.एम. ओलकॉट (1832-1907) एक अमरीकी कर्नल द्वारा न्यूयार्क (यू.एस.ए.) में 1875 ई० में की गई। इसके तीन मुख्य उद्देश्य थे (1.) मनुष्यों में विश्वबंधुत्व स्थापित करना। (2.) प्राचीन धर्मों एवं दर्शनों के अध्ययन को प्रोत्साहन (3.) जीव एवं अजीव की रहस्यमयी क्षमताओं अध्ययन, जिसे रहस्यवाद कहा जाता है। वे 1879 में भारत आए तथा 1882 में मद्रास के निकट अदयार में अपना मुख्यालय स्थापित किया। बाद में श्रीमती एनी बेसेंट 1893 में भारत आई तथा 1907 में ऑलकॉट की मृत्यु के पश्चात

सोसायटी की अध्यक्ष बनीं बेसेंट के नेतृत्व में सोसाइटी ने हिंदू धर्म तथा इसके प्राचीन विचारों के पुनरुत्थान पर अपना ध्यान केंद्रित किया। हिंदू धार्मिक निर्देश प्रदान करने के उद्देश्य से उन्होंने वाराणसी में 1898 में सेंट्रल हिंदू स्कूल की स्थापना की, जिसे बाद में मदन मोहन मालवीय ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया। यंग बंगाल आंदोलन के संस्थापक हेनरी विवियन डेरोजियो थे जिनका जन्म कलकत्ता में 1809 में हुआ था। उन्होंने 1826 से 1831 तक हिंदू कालेज में अध्यापन किया था। हैजे के कारण 1831 में उनकी मृत्यु हो गई। उनके अनुयायी डेरोजियस कहे जाते हैं तथा उनका आंदोलन यंग बंगाल मूवमेंट के नाम से जाना जाता है। उन्होंने प्राचीन रीति-रिवाजों एवं परंपराओं का विरोध किया। उन्होंने महिला अधिकार एवं महिला शिक्षा की सिफारिश की तथा प्रेस एवं जन संगठनों के माध्यम से जनता को समकालीन सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक विषयों पर शिक्षित किया। उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता, जूरी द्वारा मुकद्दमों की सुनवाई, किसानों की रक्षा आदि के प्रश्नों पर जन आंदोलन किया।

पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने विधवा विवाह के लिए संघर्ष किया। उनके प्रयासों का फल 1856 में मिला, जब अंग्रेजों ने हिंदू विधवा विवाह विधेयक पारित हुआ। विवाह का विरोध बहुपति प्रथा का विरोध तथा महिला शिक्षा के लिए अभियान छेड़कर उन्होंने भारतीय महिलाओं के स्तर को ऊंचा उठाने में योगदान किया। इन्होंने संस्कृत अध्यापन को एक नई तकनीक तथा बंगाली में एक आधुनिक गद्य शैली विकसित की। इन्होंने कलकत्ता के संस्कृत महाविद्यालय में गेर ब्राह्मण छात्रों को प्रवेश दिया था। वहां पाश्चात्य विचारों का अध्ययन प्रारंभ करवाया।

गोपाल हरि देशमुख लोकहितवादी के नाम से प्रसिद्ध से महाराष्ट्र में नई शिक्षा एवं समाज सुधार के प्रवर्तक थे। उन्होंने हिंदू परंपरावादियों का कड़ा विरोध किया एवं धार्मिक तथा सामाजिक समानता की शिक्षा दी। एम. जी. राणाडे महाराष्ट्र का प्रमुख समाज-धर्म सुधारक प्रार्थना समाज के मुख्य सदस्यों में से एक थे। इन्होंने अगरकर द्वारा 1884 में स्थापित दक्कन शिक्षा समाज के प्रेरणा स्रोत थे। इन्होंने 1887 में इंडियन नेशनल सोशल कॉफ्रेंस की शुरुआत की।

गोपाल गणेश अगरकर ने महाराष्ट्र के प्रमुख चिंतकों में से एक थे तथा इन्होंने मानव तर्क शक्ति को अत्यधिक महत्व दिया। भारत के बीते समय के झूठे महिमामंडन के लिए परंपरा में पूर्णतः अंधविश्वास का विरोध किया। बी.जी. तिलक, वी. के. चिपलूकर एवं माधवराव नामजोशी के सहयोग से इन्होंने 1884 में पूना में दक्कन शिक्षा समाज की स्थापना की।

ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र के एक निचली जाति के सदस्य एवं अस्पृश्यों और गैर-ब्राह्मणों की स्थिति से परिचित थे, इन्होंने अपने सत्यशोधक समाज (1873) के माध्यम से जीवनपर्यंत उच्च जाति के वर्चस्व एवं ब्राह्मण श्रेष्ठता के विरुद्ध संघर्ष किया। इन्होंने महाराष्ट्र में विधवा पुनर्विवाह तथा महिला शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई। पर्दा प्रथा से बाहर निकल पाई थी। दोबारा लौटकर परंपरागत तरीके से घरेलू कार्यों में संलग्न हो गई। आत्माभिव्यक्ति के बढ़ते अवसर महिलाओं ने भी स्वयं को लोगों के सामने अभिव्यक्त करने के विभिन्न अवसरों का अनुभव किया, हालांकि पहले भी वे निश्चित तौर पर किसी अविभाज्य समूह में नहीं थीं। औपचारिक शिक्षा और विशेष रूप से महिलाओं द्वारा किए गए लेखन ने उन्हें एक स्वर उपलब्ध कराया। भारत की गुलामी की नई व्याख्या की आवश्यकता पुरुष सुधारकों का लक्ष्य प्रगति पर था। महिलाओं की स्थिति में सुधार के बिना समाज सुधार हो नहीं सकता था। औपनिवेशिक स्थिति में अपमानित वीं सदी के भारतीय शक्ति और क्षमता मुद्दे पर काफी अपमानित किए गए थे। वे अपनी हार दी। के कारणों की तलाश में थे और अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास कर रहे थे। 19वीं सदी की यूरोपीय महिलाओं की मजबूत स्थिति और भारतीय महिलाओं की दयनीय दशा के लिए भारतीय रीति-रिवाजों को दोषी ठहराने संबंधी यूरोपीय निष्कर्षों ने भारतीय को अपनी पराभव के कारण और सुधार के प्रेरक तत्व प्रदान किए।

आधुनिक भारत की तीन प्रतिज्ञा महान सुधारक स्वामी विवेकानंद के नेतृत्व में देवी की पूजा, मातृभूमि के प्रति श्रद्धा और स्त्री शिक्षा के प्रति समर्पण और उनकी स्थिति में सुधार हर आधुनिक व्यक्ति का संकल्प हो गया। विवेकानंद ने अपने समकालीन सुधारकों के कार्यों का सम्मान किया, भले ही वे राष्ट्र निर्माण के महान कार्य में अपर्याप्त थे। यह भारतीयों द्वारा ही होना था जो बौद्धिक लोगों द्वारा शिक्षित और सम्मति आयु अधिनियम 1891 में सम्मति आयु अधिनियम, जिसके तहत विवाह की आयु 10 से 12 वर्ष कर दी गयी थी। भारतीय महिलाओं की लैंगिकता पर नियंत्रण का आरोप लगाते हुए एक युद्ध-सा छेड़ दिया। इस समय तक देश के उच्च-शिक्षित और प्रभावी व्यक्ति राष्ट्रवादी राजनीति से जुड़े थे और महिलाओं का प्रश्न ऐसा नहीं था, जिस पर कि ब्रिटिश शासक और भारतीय शिक्षित वर्ग सहमत न होते। लेकिन ये मुद्दे अलग कर दिए गए क्योंकि इन नई महिलाओं ने खुद आगे बढ़कर अपने संगठनों की स्थापना की और समाज सुधार को प्राथमिकता महिलाओं की मुक्ति का आधुनिकीकरण से जुड़ाव-पुरुष सुधारकों द्वारा प्रस्तावित बदलाव महिलाओं की समस्याओं को हल नहीं कर सके। उन्हें अपने घर की महिलाओं को छोड़कर अन्य के जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी थी। अधिकांश को कानूनी प्रयासों की क्षमता पर भी संदेह था। फिर भी, इन सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने के मुद्दे को आधुनिकीकरण के एजेंडे में प्रथम स्थान दिया। इनके अभियानों और प्रयासों से नई संस्थाओं का गठन हुआ, जिसने नई पीढ़ी की महिला नेताओं को काफी सहायता की।

निष्कर्ष :

भारत में राष्ट्र-निर्माण और समाज-निर्माण की प्रक्रिया में धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। भारतीय समाज की संरचना केवल राजनीतिक परिवर्तनों से नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के पुनरुत्थान से भी निर्मित हुई है। मध्यकाल में विदेशी आक्रमणों और विशेषतः मुस्लिम शासन के दौरान हिन्दू समाज अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा के प्रयास में अनेक प्रकार की सामाजिक विकृतियों का शिकार हो गया। सामाजिक सुरक्षा और अस्तित्व की चिंता के कारण जातिगत कठोरता, रूढ़िवादिता, स्त्री-विरोधी प्रथाएँ और धार्मिक संकीर्णता जैसी बुराइयाँ समाज में गहराती चली गईं। वस्तुतः उत्तर वैदिक काल से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कुछ कुरीतियों के बीज विद्यमान थे, जो समय के साथ और अधिक जटिल तथा व्यापक रूप धारण कर गए। इन सामाजिक बुराइयों की समाप्ति की दिशा में निर्णायक पहल औपनिवेशिक काल में आरंभ हुई, जब अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार और सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज को आत्मावलोकन के लिए प्रेरित किया। आधुनिक शिक्षा ने तर्क, विवेक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया, जिससे रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर प्रश्न उठने लगे। साथ ही, ब्रह्म समाज, आर्य समाज और अन्य सुधार आंदोलनों ने सामाजिक समानता, स्त्री-उद्धार और मानवीय मूल्यों पर बल देकर समाज को नवचेतना प्रदान की। इन सुधार प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत में सांस्कृतिक

राष्ट्रवाद और सामाजिक पुनरुत्थानवाद को सशक्त आधार प्राप्त हुआ। सामाजिक सुधार की प्रक्रिया ने राष्ट्रीय चेतना को व्यापक सामाजिक समर्थन प्रदान किया, जबकि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने भारतीय समाज को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़कर एकता की भावना को मजबूत किया। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक पुनरुत्थान और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणाएँ लगभग पर्यायवाची बन गई हैं, क्योंकि दोनों का उद्देश्य सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक चेतना और सुदृढ़ राष्ट्र-निर्माण को सुनिश्चित करना है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. स्वामी विवेकानन्द (2022), कर्मयोग, श्री प्रकाशन, दिल्ली।
2. स्वामी विवेकानन्द (2023), राजयोग, साहित्य सरोवर।
3. बाल गंगाधर तिलक (2016), गीता रहस्य, विजय गोयल पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. राजाराम मोहनराय (1996), सति, बी. आर. पब्लिकेशन प्रा.लि., प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
5. राजाराम मोहनराय (2007), द इंग्लिश वर्क ऑफ राजाराम मोहनराय, ओरियंटल प्रेस, भवानीपुर
6. बालगंगाधर तिलक (1925), द आर्कैटिक होम इन द वेदा, मेसर्स तिलक ब्रोस गायकवार, वाडा पुना सिटी
7. इश्वरचन्द्र विद्यासागर (2012), हिन्दु विडो मैरेज, ओरियंट ब्लैकश्वान प्रा.लि. हैदराबाद
8. बी.आर. अम्बेडकर (2016), फिलॉस्फी ऑफ हिन्दुज्म, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली
9. ज्योतिबा फुले (2021), गुलामगिरी, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली
10. डा. एस पी. वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, विन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 1987
11. एच. कोहन, द आईडिया ऑफ नेशनलिज्म ए स्टडी ऑन इट्स ओरिजन एण्ड बैकग्राउंड, मैकमिलन, लंदन, वर्ष 1944
12. डा.डी डी पटनायक, कल्चरल नेशनलिज्म इन इंडियन पर्सपेक्टिव, सीरियल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016
13. रुडोल्फ रॉकर, नेशनलिज्म एण्ड कल्चर, सीविसी फ्राइड, न्यूयॉर्क, यू.एस.ए. वर्ष 1937
14. क्रिस्टिन सुरक, मेकिंग टी मेकिंग जापान, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यूके, 2012
15. कोसाकू योशिनो, कल्चरल नेशनलिज्म इन कंटेम्पोरी जापान, राउटलेग, यूके., 1992
16. बीबरान, एकेमी जापानीज कल्चरल नेशनलिज्म ऐट होम एण्ड इन द एशिया पसिफिक, ग्लोबल ओरिएण्टल, यूके, 2004
17. केथरीन इ. पॉल, फासिस्ट डाइरेक्टिव इजरा पाउंड एण्ड इटालीयन कल्चर नेशनलिज्म, ब्लेगसन यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.एस., 2016 .
18. 15. वनिका सत्कार, हिन्दू वाइफ हिन्दू नेशन, इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.एस. 2001
19. थिंगजी गु ओ, कल्चरल नेशनलिज्म इन कंटेम्पोरी चाइना, पहला संस्करण, राउटलेग, यू 4 2003

रणेन्द्र के उपन्यासों में आदिवासी चेतना और विकास-विमर्श का टकराव

सचिन गौतम

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

डॉ० शर्मिला

शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

शोध सारांश

आधुनिक हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्शों के उदय ने साहित्य को नए वैचारिक और सामाजिक सरोकार प्रदान किए हैं। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के बाद आदिवासी विमर्श ने विशेष रूप से साहित्य में एक सशक्त उपस्थिति दर्ज की है। आदिवासी विमर्श अन्य अस्मिता-विमर्शों से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें केवल सामाजिक भेदभाव या आर्थिक शोषण का प्रश्न ही नहीं, बल्कि जल, जंगल और जमीन से जुड़ी सांस्कृतिक अस्मिता तथा अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न केंद्रीय रूप से उपस्थित है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों ने आदिवासी समाज की जीवन-व्यवस्था में गहरा हस्तक्षेप किया है, जिसके परिणामस्वरूप उनका पारंपरिक जीवन, सांस्कृतिक विरासत और ऐतिहासिक स्मृतियाँ संकट में पड़ गई हैं। साहित्य ने इस संघर्ष को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण दायित्व निभाया है।

इस संदर्भ में रणेन्द्र के उपन्यास गायब होता देश और ग्लोबल गाँव के देवता आदिवासी जीवन-संघर्ष के सशक्त साहित्यिक दस्तावेज के रूप में सामने आते हैं। गायब होता देश मुंडा आदिवासियों के जीवन पर केंद्रित है, जहाँ विकास परियोजनाओं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, पूँजीवादी शक्तियों और प्रशासनिक तंत्र की मिली-भगत के कारण आदिवासियों को उनके पारंपरिक भू-क्षेत्र से विस्थापित किया जा रहा है। उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक विकास की अवधारणा किस प्रकार प्रकृति-विरोधी और मानव-विरोधी बनती जा रही है। आदिवासियों के लिए प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन और आस्था का आधार है। जल, जंगल और जमीन से उनका संबंध भावनात्मक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। इस उपन्यास में विस्थापन, हिंसा, हत्या, कर्ज-जाल, छल-कपट और कानून के दुरुपयोग के माध्यम से आदिवासियों की जमीन हड़पने की प्रक्रिया का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। परमेश्वर सिंह पाहन जैसे पात्र आदिवासी प्रतिरोध और संघर्ष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति बनकर उभरते हैं।

दूसरी ओर ग्लोबल गाँव के देवता असुर जनजाति के जीवन और संघर्ष को केंद्र में रखता है। यह उपन्यास असुरों के ऐतिहासिक मिथकीकरण, सांस्कृतिक दानवीकरण और समकालीन शोषण की परतों को खोलता है। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि प्रभुत्वशाली शक्तियाँ पहले किसी समुदाय को अमानवीय और असभ्य सिद्ध करती हैं, फिर उसके संसाधनों पर अधिकार जमाती हैं। शिक्षा, धर्म, राजनीति और पूँजीकृत सभी शक्तियाँ असुर जनजाति के शोषण में सहभागी बनती हैं। इसके साथ ही उपन्यास आदिवासी स्त्रियों की स्थिति, उनकी भूमिका, संघर्ष और समाज में उनकी अपेक्षाकृत सशक्त उपस्थिति को भी सामने लाता है।

बीज शब्द - आदिवासी विमर्श, अस्मिता, जल-जंगल-जमीन, विस्थापन, भूमंडलीकरण, पूँजीवाद, सांस्कृतिक विरासत, प्रतिरोध, रणेन्द्र, समकालीन हिंदी उपन्यास

आधुनिक काल में साहित्य में नवीन विमर्शों की शुरुआत हुई। स्त्री विमर्श व दलित विमर्श जैसे लेखन प्रभावी रूप से सामने आए। वर्तमान समय तक आते-आते अस्मितामूलक लेखन ने साहित्य में जोर पकड़ा तथा वृद्ध विमर्श, ट्रांसजेंडर विमर्श, आदिवासी विमर्श, दिव्यांग विमर्श जैसे कई विमर्श अस्तित्व में आये और इनसे संबंधित भरपूर साहित्य लिखा गया। वैसे तो सभी विमर्शों के लेखक अपनी सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए लिख रहे थे परंतु आदिवासी विमर्श इनसे कई मायनों में अलग था। आदिवासी अपनी पुरातन संस्कृति तथा रीति-रिवाजों को बचाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। ऐसा नहीं है कि आदिवासी विमर्श से पहले आदिवासी जीवन पर आधारित साहित्य नहीं लिखा गया, लेकिन पिछले बीस-पच्चीस सालों के दौरान भूमंडलीकरण व उदारीकरण की तीव्र होती प्रक्रिया के साथ जिस प्रकार से बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आदिवासियों के जीवन में हस्तक्षेप किया और इसके कारण इनके जल, जंगल और जमीन से संबंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण आरंभ हुआ, इसने आदिवासी जीवन में संघर्ष को और बढ़ाया। इस संघर्ष में सरकार व प्रशासन का हस्तक्षेप आदिवासियों के विरुद्ध तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पक्ष में रहा। इसके परिणामस्वरूप आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा का संकट

उपस्थित हो गया। यदि वे अपनी परंपरा व सांस्कृतिक पहचान को महत्व देते हैं तो उनका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है और यदि वे अपने अस्तित्व की रक्षा करते हैं तो उनकी सांस्कृतिक विरासत खतरे में पड़ जाएगी। इस प्रकार आदिवासियों के इस संघर्ष ने साहित्य की एक नई धारा को जन्म दिया। दलित विमर्श से प्रेरणा ग्रहण करते हुए आदिवासी लेखकों ने भी साहित्य में अपनी समस्याओं को उठाया। इन्ही लेखकों में से एक बहुचर्चित नाम रणेंद्र का है। आदिवासी जीवन से संबंधित इनके दो उपन्यास बहुत प्रसिद्ध रहे- 'गायब होता देश' और 'ग्लोबल गाँव के देवता'। दोनों उपन्यासों में आदिवासी जीवन के संघर्ष, उनकी परंपरा तथा संस्कृति का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है।

रणेंद्र का उपन्यास 'गायब होता देश' 2014 में प्रकाशित हुआ जो मुंडा आदिवासियों के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। आधुनिक विकास की दौड़ में सभ्य कही जाने वाली मनुष्य जाति इतनी अंधी हो गई है कि अंधाधुंध तरीके से प्राकृतिक संसाधनों का हास कर रही है। जो पेड़, पहाड़, झरने आदिवासियों के अपने थे, जिनको वे देवता मानकर पूजते थे, उनका उपयोग भी करते थे तथा संरक्षण भी करते थे- आज आधुनिक विकास के नाम पर उन प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किया जा रहा है। परिणामस्वरूप आदिवासी जनजातियों को अपने घरों से विस्थापित होना पड़ रहा है। उन घरों से जहाँ वर्षों से उनके पूर्वजों ने प्रकृति की अमूल्य निधि को सहेज कर रखा हुआ था तथा जिस प्रकृति के ऊपर उनका सारा जीवन निर्भर है। अगर मछली को पानी से अलग कर दें तो वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह पायेगी। यही स्थिति आदिवासी जनजातियों की है। वे अपने जल, जंगल और जमीन से इतनी गहराई से जुड़े हैं कि प्रकृति के प्रति उनका एक भावनात्मक लगाव सा हो गया है। उनकी रक्षा के लिए वे आंदोलन भी कर सकते हैं, लड़ भी सकते हैं और अपने प्राण भी दे सकते हैं। यह उपन्यास आदिवासियों के विस्थापन की समस्या पर प्रकाश डालता है। इसमें मुंडा आदिवासियों की विरासत पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया जाता है। विकास के नाम पर आदिवासियों को भ्रमित किया जाता है, बहलाया-फुसलाया जाता है और षड्यंत्र करके धीरे-धीरे उन्हें उनकी जमीन से बेदखल कर दिया जाता है। विरोध करने वाले लोगों को डराया धमकाया जाता है तथा प्रारंभ में तीन लोगों की हत्या करवा दी जाती है। मरने वाले लोगों में महत्वपूर्ण नाम परमेश्वर सिंह पाहन का है जो भारतीय सेना में पूर्व हवलदार थे तथा वीर चक्र से सम्मानित थे। परमेश्वर सिंह पाहन दुमली बांध परियोजना का विरोध करने वाले दल का नेतृत्व कर रहे थे। पूँजीवादी ताकतें अपने रुतबे का प्रयोग करके पुलिस फायरिंग में उनकी हत्या करवा देती है तथा स्पष्टीकरण के रूप में नक्सली संगठनों के साथ उनका संबंध बताकर उन्हें दोषी बना देती है। सभ्य कहे जाने वाले समाज के लोग आदिवासियों को इंसान भी नहीं समझते। पत्रकारिता से जुड़े अमरेन्द्र मिश्रा भी पूँजीवादियों का साथ देते हैं तथा आदिवासियों की मृत्यु पर कहते हैं कि 'तीन कोले ही तो मरे हैं, मनुष्य नहीं।' किशनपुर एक्सप्रेस के पत्रकार किशन विद्रोही जब परमेश्वर पाहन की हत्या के मसले को सुलझाने हीराहातु जाते हैं तो वहाँ रिपोर्टर अमरेन्द्र मिश्रा उन्हें गुमराह करते हुए बाँध के फायदे गिनवाने लगता है। जिस दुमली बाँध परियोजना के कारण आदिवासियों का जीवन तबाह होने वाला है, उनके गाँव नष्ट होने वाले हैं, उनका समाज, संस्कृति तथा परिवार सब खतरे में आने वाला है उस बाँध परियोजना की विशेषताएँ बताते हुए अमरेन्द्र मिश्रा कहता है- "आप ही सोचिए सर कि दुमली नदी पर दो सौ करोड़ का बाँध। दो सौ करोड़ सर! यह तो अग्रवाल साहब की ग्रीन एनर्जी कंपनी की ही औकात थी सर। क्या नहीं है इस प्रोजेक्ट में? बिजली भी, नहर भी, फ़ैक्टरी भी और खेतों के लिए पानी भी। विकास ही विकास। ये साले कोल्ह कहते हैं जान देंगे जमीन नहीं देंगे। दे दो जान। अभी तो तीनों लोग मराया है।" आदिवासी काशतकारी कानून के अंतर्गत आदिवासियों से उनकी भूमि कोई गैर आदिवासी नहीं खरीद सकता था। इस कानून के लिये आदिवासी जनजातियों ने तीस वर्षों तक कड़ा संघर्ष किया था। "आदिवासियों ने 1767-70 के भूमिज आंदोलन से शुरू कर 1901 के बिरसा उलगुलान तक जो खून बहाए थे, उस पवित्र खून के कतरों से सींचकर एक कानून बना था 'आदिवासी काशतकारी कानून।' इससे आदिवासी जमीनों को सुरक्षित कर दिया गया। वे गैर आदिवासियों को नहीं बेची जा सकती थी।" लेकिन अधिकतर कानूनों की भाँति इस कानून में भी कमियाँ थी। जैसे कुछ शर्तें पूरी हो जायें तो जमीन ट्रांसफर की जा सकती थी। इनमें स्कूल-अस्पताल निर्माण से संबंधित जनहित के मामले शामिल थे। कानून की ये कमी आदिवासियों के लिए जानलेवा वायरस सिद्ध हुई। जमींदारों व पूँजीपतियों ने आदिवासियों पर कर्जखोरी का आरोप लगाकर न्यायालय के जरिए कर्ज के बदले आदिवासियों की जमीनों को प्राप्त कर लिया। धीरे-धीरे आदिवासी अपनी जमीनों से बेदखल होना शुरू हो गए। इस स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं- "आदिवासी जमीन के प्लॉट दिन दहाड़े गायब होते जा रहे थे। सो बंद तहखानों की तड़पती आत्माओं की कराह, चीख, रुदन की कोई राहत नहीं थी।"

लेखक ने अपनी जमीन की रक्षा के लिए संघर्षरत मुंडा आदिवासियों के संघर्ष का सजीव चित्रण किया है तथा यह भी बताया है कि सभ्य समाज के पूँजीपति लोगों ने किस प्रकार बहला-फुसलाकर, छल-कपट से या डरा धमकाकर आदिवासियों से उनकी भूमि छीन ली। जिसने अपनी जमीन बचाने के लिए थोड़ा सा संघर्ष किया या विरोध करने की चेष्टा की उसकी आवाज को अप्रत्यक्ष रूप से दबा दिया गया। लेखक की इन बातों से इस प्रकार की घटनाओं की सत्यता उजागर होती है- "बारिश की धुन पर कई कहानियाँ भी सुनने को मिलती। न केवल गाँव की बल्कि शहर की भी। जबरिया जमीन हथियाने की कहानियाँ। जोजोडीह का बूढ़ा शनि मुंडा कैसे मुकदमा लड़ते-लड़ते पागल हो गया। हातमा बस्ती का रामेसर उरांव जमीन दलालों की धमकी-मारपीट-केंस मुकदमा से इतना तंग आ गया कि जहर खा लिया।"

लेखक की बातों से स्पष्ट है कि जो आदिवासी पूँजीपतियों के बहकावे में नहीं आये, उन्हें बल प्रयोग व दूसरे तरीकों से शांत करवा दिया गया। उपन्यास में आदिवासियों की बस्ती बलपूर्वक खाली करवाने से संबंधित एक घटना है। जब अंधेरी रात में कई ट्रक, बस व गाड़ियों में निरंजन बॉस के साथ पच्चीस-तीस हथियारबंद आदमी बस्ती खाली करवाने आए थे। निरंजन बॉस की धूर्तता का वर्णन करते हुए लेखक कहता है- "इन लोगों की नजर जिस जमीन, जिस टोला, जिस बस्ती पर पड़ गई, कोई-न-कोई उपाय लगाकर कब्जा लिया। धन से, छल से नहीं तो बल से। चाहे टाइम जितना लगे। उलिहातु, हिसीर, होलोग, हेसल, गोदा कितना नाम गिनायें। सबका हथ्र तो यही हुआ। साहब-सुहबा सब इनकी पॉकेट में। विक्टर तिग्गा जैसे हमारे अगुआ भी इनका ही संगी। दिन में 'जान देंगे जमीन नहीं देंगे' का नारा हमारे संग, दिन ढलते दारू चखना इनके संग।"

गाँव वालों को भी कहीं-न-कहीं इस बात का अंदेश था कि निरंजन बॉस के आदमी बस्ती खाली करवाने आयेंगे। इसलिए वे लोग भी अपने हथियार, तीर-धनुष, बरछी-भाला लेकर आत्मरक्षा के लिए तैयार हो जाते हैं। दोनों गुट आपस में भिड़ जाते हैं। तब विद्रोही सर जिले के सीनियर एस० पी०, सिटी एस०पी०, जिला कलेक्टर, एस डी एम० आदि पूरे प्रशासन के साथ वहाँ पहुँच जाते हैं और निरंजन बॉस को निराश होकर वहाँ से लौटना पड़ता है। जब

पूँजीपति लोगों का बल प्रयोग करके जमीन हथियाने वाला तरीका सफल नहीं होता तो वे छल से आदिवासियों की जमीन प्राप्त कर लेते हैं। अशोक पोद्दार और सविता पोद्दार 'जय माता दी आदिवासी कल्याण संस्थान' की स्थापना करते हैं। कई प्रकार के स्वयं सहायता समूह बनाते हैं तथा साथ ही कई लघु उद्योगों जैसे मोमबत्ती उद्योग और मुर्गी पालन आदि की स्थापना करके मुंडा आदिवासियों को काम देते हैं। काम मिलने के बाद उनको लोन के चक्कर में उलझा देते हैं। पूँजीपतियों का यह दुश्चक्र भोले-भाले आदिवासियों को समझ नहीं आता। वे उनके षड्यंत्र में फँसते जाते हैं तथा बाइक, स्कूटी, मोबाइल, टी०वी०, रेफ्रिजरेटर, वाशिंग मशीन आदि सब लोन पर खरीद लेते हैं। फिर एक बार अचानक से चोरी व गबन का आरोप लगाकर उनको काम से निकाल दिया जाता है। जिन उद्योगों व कारखानों में उनको काम दिया गया था, उनको तरह-तरह के बहाने बनाकर बंद कर दिया जाता है। नौकरी चले जाने के बाद सारी आदिवासी बस्ती कर्ज में डूब गई। लोन न चुकाए जाने के बाद उनकी बाइक, स्कूटी, मोबाइल, फ्रिज, टी०वी० आदि को जब्त कर लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बिना किसी बल प्रयोग के पूरी आदिवासी बस्ती सविता पोद्दार जैसे पूँजीपतियों के हाथों में चली गई। इस प्रकार लेखक ने उपन्यास में झारखंड के भू-माफियाओं द्वारा राजनीतिक व प्रशासनिक मिली-भगत से आदिवासियों की जमीन कब्जाये जाने का सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।

मुंडा आदिवासियों का संघर्ष सिर्फ अपनी जमीनों बचाने के लिए नहीं है बल्कि उनका संघर्ष अपने समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज तथा ऐतिहासिक धरोहर को बचाने के लिए भी है। इसका उदाहरण हमें उपन्यास के प्रथम अध्याय में ही देखने को मिल जाता है- “सरना वनस्पति जगत गायब हुआ, मरांग-बुरु बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए। गीत गाने वाली, धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखरने वाली हीरों से भरी सारी नदियाँ जिनमें 'इकीर बोंगा'- जल देवता का वास था, गायब हो गई। मुण्डाओं के बेटे-बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकर दिसुम गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।”⁶

इसी प्रकार परमेश्वर पाहन की हत्या की गुत्थी को सुलझाने के लिए आदिवासियों के गाँव जाते किशन विद्रोही की भेंट जब जायसवाल नामक दुकानदार से होती है तो वह उन्हें आदिवासियों के संघर्ष के इतिहास का परिचय देता है। उसकी बातों से स्पष्ट होता है कि संघर्ष करना तो आदिवासियों के सामान्य जीवन का एक हिस्सा बन गया है। लेकिन स्वयं को सभ्य कहने वाले प्रशासन में बैठे लोग उनका सांस्कृतिक-ऐतिहासिक महत्व नहीं समझ सकते- “कंपनी और सरकारी अधिकारियों का तो लगता है यहाँ के इतिहास से परिचय ही नहीं है। क्यों जरूरी है इतना बड़ा बाँध कि मुण्डाओं के पूर्वज पित्रों द्वारा खुद जंगल काट कर बसाये गये गाँव, खूटकट्टी उनमें डूब जायें? मुण्डाओं की संस्कृति इतिहास डूब जाये? सरना ससान और ससानदिरी की समझ ही नहीं है। मृत मुण्डाओं के कब्र पर गाड़े गये पत्थरों पर उनका पूरा वंशवृक्ष लिखा रहता है। सैकड़ों वर्षों के इतिहास दर्ज हैं सिसानदिरी के पत्थरों पर। बेतरतीब ढंग से नहीं गड़े हैं ये, इनके गाड़ने का भी अपना विज्ञान है।”⁷

वर्तमान समय का आदिवासी समाज दोहरे संघर्ष से गुजर रहा है। एक संघर्ष उस मानसिकता के विरुद्ध है जो उन्हें नीच, जंगली व असभ्य कहता है। इसमें रिपोर्टर अमरेन्द्र मिश्रा जैसे लोग शामिल हैं जो आदिवासियों की मृत्यु को इंसानों की मृत्यु तक नहीं समझते। दूसरा संघर्ष उन साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ है जो उनकी जल, जंगल व जमीन रूपी अमूल्य निधि पर अधिकार कर लेना चाहते हैं।

इनका एक और प्रसिद्ध उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' 2009 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास आदिवासियों की असुर जनजाति के ऊपर केंद्रित है। इसके माध्यम से लेखक ग्लोबल गाँव के व्यापारियों द्वारा असुर जनजाति के शोषण का वर्णन करते हैं। यह उपन्यास जहाँ आदिवासी समाज के अनदेखे सौंदर्य से हमारा परिचय करवाता है वहीं आदिवासी जीवन के संघर्ष से भी हमें अवगत करवाता है। इसमें झारखंड के असुर जनजाति के आदिवासियों की गाथा है जो अपनी नियति के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। एक और इनके विरुद्ध ग्लोबल गाँव के देवता हैं तो दूसरी और सांसद व विधायक हैं। तीसरी और शिवदास बाबा जैसे धर्म के ठेकेदार भी हैं। इन तीनों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे असुरों को अपनी नियति का आभास है अर्थात् उन्हें पता है कि वे जीत नहीं पायेंगे लेकिन फिर भी वे इस नियति को चुपचाप प्राप्त होना नहीं चाहते। वे अपने अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करना चाहते हैं। अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपनी मूलभूत सांस्कृतिक विरासत के लिये लड़ना उन्हें हार मानने से अधिक श्रेयस्कर लगता है।

जिस भूमि पर वे रहते हैं उस भूमि पर बड़ी-बड़ी व्यापारी कंपनियों ने खुदाई करके खनिज पदार्थों को निकाला है और उन खनिजों की कमाई से सुंदर नगर बसाये जा रहे हैं। दूसरी तरफ आदिवासियों को दोयम दर्जे के मजदूर की जिंदगी जीने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इस प्रकार उनका संघर्ष शोषणकारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति है।

उपन्यास का कथावाचक एक अध्यापक है जो असुरों के क्षेत्र में बाहर से आया है। इसे उपन्यासकार का प्रतिनिधि भी कह सकते हैं। यह प्रतिनिधि न केवल असुरों के संघर्ष को देखता है बल्कि स्वयं को उनके संघर्ष में शामिल भी कर लेता है। अम्बाटोली गाँव में मास्टर जी की भेंट असुर समुदाय के एक व्यक्ति लालचन असुर से होती है जो दिखने में गोरा-चिट्ठा है। उसे देखकर मास्टर जी के मन में बनी वो धारणा टूट जाती है जिसमें असुर काले-कलूटे भयानक राक्षसों के रूप में थे। मास्टर जी के माध्यम से लेखक ने आम लोगों के बीच फैली इस धारणा को तोड़ने का काम किया है। लालचन असुर के गोरे-चिट्ठे रूप को देखकर मास्टर जी सोचते हैं- “सुना तो था कि यह इलाका असुरों का है, किंतु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लंबे-चौड़े, काले-कलूटे, भयानक दाँत-वाँत निकले हुए, माथे पर सींग-वींग लगे हुए लोग होंगे। किंतु लालचन को देखकर सब उलट-पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उल्टी घूम रही थी।”⁸

असुर नाम सुनते ही भयानक छवि मन में आने के पीछे हमारा दोष नहीं है। इसका कारण महाभारत, रामायण, वैदिक साहित्य और पुराणों में किया गया उनका मिथकीकरण है। “प्रभुत्वशाली सत्ताएँ जिनका विनाश करना चाहती हैं, उनका पहले दानवीकरण करती हैं, फिर उन पर हमला करती हैं और बाद में उनकी जमीन तथा जीवन पर कब्जा करती हैं। भारत में यह प्रक्रिया वैदिक काल से लेकर आज तक चली आ रही है।”⁹

लेखक ने असुरों के प्रति लोगों की इसी संकुचित सोच को उजागर किया है। उपन्यास की कथावस्तु भौरापाट व उससे सटे हुए कंदापाट और अम्बाटोली के इर्द-गिर्द घूमती है। लेखक ने असुर जनजाति के संघर्ष का वर्णन करने के साथ-साथ आदिवासी ग्रामीण जीवन की संस्कृति व रीति-रिवाजों का भी वर्णन किया है। असुर देवताओं से संबंधित उनकी अनेक प्रकार की कथाएँ तथा उन पर आधारित अनेक अंधविश्वास आदिवासी समाज में देखे जा सकते हैं। इस उपन्यास में असुर गाँव में प्रचलित कई प्रकार के अंधविश्वासों का वर्णन है। आज भी अनेक आदिवासी गाँवों में बलि प्रथा प्रचलित है। आदिवासी लोगों के

समाज में यह बात प्रचलित है कि बलि देने से उनके देवता प्रसन्न होंगे तथा उन पर अपनी कृपा बनाए रखेंगे। इसी प्रकार का एक अंधविश्वास असुर जनजाति में प्रचलित है जिसमें यह माना जाता है कि फसल बोते समय बीज में मनुष्य का रक्त मिलाकर बोने से अच्छी पैदावार होती है। उपन्यास में इसका वर्णन आता है- “दरअसल अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिछड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है।”¹⁰ उपन्यास में कटिया नामक एक गाँव का वर्णन है जहाँ कुछ वर्ष पहले तक नर बलि प्रथा प्रचलित थी। लेखक ने आदिवासी ग्रामीण जीवन में साक्षरता जैसा विषय भी उपन्यास में उठाया है। असुर जनजाति में साक्षरता दर बिल्कुल निम्न है। गाँव के आधे से ज्यादा बच्चे तो बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं, कुछ बच्चे किसी प्रकार स्कूल की पढ़ाई पूरी कर भी लेते हैं तो उच्च शिक्षा तक नहीं पहुँच पाते। उपन्यास में सुनील, सोमा, ललिता, भीखा व रुमझुम जैसे लोग ही हैं जो कुछ पढ़े-लिखे हैं। असुर जनजाति के बच्चों के अशिक्षित रह जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें शिक्षा के प्रति ललक नहीं है, बल्कि यह है कि शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में अभी भी प्रत्येक स्थान पर उनके साथ भेदभाव जारी है। “भौरापाट का स्कूल आदिवासी बालिकाओं के लिए खोला गया था किंतु उसमें पढ़ने वाली असुर बिरजिया बच्चों की संख्या दस प्रतिशत से अधिक नहीं थी। ज्यादातर बच्चे हेडमिस्ट्रेस और टीचर्स के गाँव के और उनकी ही जाति उरांव-खड़िया, खेखार परिवार के थे।”¹¹

पाथरपाट में स्कूल का निर्माण करते समय सौ से अधिक असुर जनजाति के परिवारों को बेघर कर दिया गया था। किंतु पिछले तीस वर्षों से उस स्कूल में एक भी आदिवासी बच्चे को प्रवेश नहीं मिला था। साक्षरता के साथ-साथ आदिवासी स्त्रियों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। स्वयं को आधुनिक व सभ्य कहे जाने वाले समाज में जो स्त्रियों की स्थिति है उससे कहीं अधिक बेहतर स्थिति आदिवासियों की असुर जनजाति में देखने को मिलती है। यहाँ औरत को कमजोर नहीं समझा जाता बल्कि समझदारी का प्रतीक माना जाता है। समाज की मुख्यधारा में स्त्री के लिये ‘जनानी’ शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका शाब्दिक अर्थ है- जन्म देने वाली। इस नाम से यह अनुमान किया जा सकता है कि समाज ने स्त्री को सिर्फ संतानोत्पत्ति की एक वस्तु समझा है। असुर जनजाति में स्त्री को जनानी न कहकर ‘सयानी’ कहा गया है जिसका अर्थ होता है समझदार स्त्री। असुर जनजाति की स्त्रियों का जीवन भी कम संघर्ष से भरा हुआ नहीं है। उपन्यास में बुधनी और ललिता जैसी युवतियों को अगर छोड़ दें तो ऐसी बहुत सारी स्त्रियाँ हैं जिनका बेरहमी से शोषण किया जाता है। उनकी देह नकली जेवरों को सजाने लगती है। ऐसी मजबूर असुर स्त्रियों के लिए उपन्यास में एक गीत है- ‘मेठ संगे नजर मिलायले, मुंशी संग लासा लगयले, कचिया लोभे कुला डूबाले, रूपिया लोभे जात डूबाले।’ एक तरफ बुधनी और ललिता जैसी स्त्रियाँ हैं जो आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती हैं तो दूसरी तरफ मजबूर आदिवासी महिलाएँ हैं जिनका सभी प्रकार से गैर आदिवासियों व धर्माधिकारियों द्वारा शोषण किया जाता है।

रणेंद्र का यह उपन्यास उन कमजोर आदिवासियों की आवाज है जो कई शताब्दियों से दबाई जा रही है। असुर आदिवासी अपनी अस्मिता की लड़ाई वैदिक काल से लड़ रहे हैं। सैंकड़ों ग्रन्थ व पुराण देवासुर संग्राम के वृत्तांतों से भरे पड़े हैं। लंबे समय से असुर देवताओं से लड़ते आ रहे हैं, हारते आ रहे हैं और पुनः जीवित होते आ रहे हैं। किंतु अब उनकी लड़ाई ग्लोबल गाँव के सर्वशक्तिमानों से है जिसमें उनकी हार निश्चित है और यह हार उनकी आने वाली पीढ़ियों के साथ-साथ उनकी संस्कृति, रीति-रिवाजों तथा उनके गौरवशाली इतिहास को भी समाप्त कर देगी।

निष्कर्ष के रूप में कहें तो रणेंद्र के उपन्यासों में हमें आदिवासी जीवन के विविध आयाम दिखाई देते हैं। एक तरफ उनके सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाजों के दर्शन होते हैं तो दूसरी तरफ अपनी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा के लिए उनका संघर्ष दिखाई देता है। उनके उपन्यास आदिवासी अस्मिता का प्रश्न तो उठाते ही हैं साथ ही भूमण्डलीकरण से उत्पन्न साम्राज्यवाद के खतरे से भी हमें अवगत कराते हैं।

संदर्भ

1. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 41
2. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 77
3. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 78
4. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 84
5. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 100
6. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 03
7. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 50
8. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सं. 2009, पृष्ठ संख्या 11
9. शांडिल्य, सुंदरम्: आदिवासियों की वेदना और चेतना का नया पाठ, वाङ्मय आदिवासी विशेषांक-1, जुलाई 2013, पृष्ठ संख्या 183
10. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सं. 2009, पृष्ठ संख्या 12
11. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सं. 2009, पृष्ठ संख्या 20

गुरु नानक का पृथ्वी पर अवतरण

डॉ० हरबंस सिंह

हिन्दी अध्यापक, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, श्रीमुक्तसर साहिब, पंजाब

सारांश

पंद्रहवीं शताब्दी में गुरु नानक का अवतरण पृथ्वी को परमात्मा की ओर से एक बहुमूल्य और महत्वपूर्ण उपहार था। तत्कालीन पद-दलित मानवता का उद्धार करने के लिए गुरु नानक को अनेक प्रकार की परिस्थितियों अथवा समस्याओं का सामना करना पड़ा और प्रत्येक अवसर पर उनका कवि 'धुर की वाणी' बोल उठा। गुरु नानक की अंतरात्मा सात वर्ष की आयु में ही, जब उन्हें पढ़ने के लिए "पाधा" के पास भेजा गया, साहित्य की अमृत-धारा के रूप में फूट पड़ी। समय समय पर उनके मुख से उच्चरित वचन ही विपुल साहित्य बन गया।

प्रस्तावना

यह बड़े दुःख की बात है कि गुरु नानक की कोई स्व-हस्त-लिखित वाणी अथवा कोई अन्य दस्तावेज अब उपलब्ध नहीं है। फलस्वरूप, यह कहना कठिन है कि गुरु नानक अपनी वाणी किस किस लिपि में लिखते थे। गुरु नानक पढ़े लिखे थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनकी शिक्षा का प्रबन्ध तत्कालीन प्रचलित शिक्षा प्रणाली के अनुसार किया गया था। प्रथमतः उन्हें सात वर्ष की आयु में 'पाधा' के पास पाठशाला भेजा गया और जब उनके पिता बाबा कालू का मन बालक नानक की आध्यात्मिक चिन्तना के कारण पारस परिक शिक्षा ग्रहण करने में रुचि न रखने के फलस्वरूप सन्तुष्ट न हुआ।

तो उन्होंने नौ वर्ष की आयु में गुरु जी को तोरकी (फारसी) पढ़ने के लिए भेज दिया।¹ इन तथ्यों से भलीभाँति स्पष्ट है कि गुरु नानक विधिवत् पढ़े लिखे थे।

'आसा राग' के अंतर्गत संकलित गुरु नानक विरचित 'पट्टी' से, जो पांधा के पास पढ़ते समय गुरुजी ने उच्चारण की थी, सुस्पष्ट है कि वर्तमान गुरुमुखी वर्णमाला के अक्षरों का उच्चारण और क्रम (कुछ अंतर सहित)² गुरु नानक के अवतरण से पूर्व ही अपना विशिष्ट स्वरूप और अस्तित्व धारण कर चुके थे और जिन की शिक्षा गुरु जी ने पांधा से प्राप्त की थी। यह शिक्षा नाम मात्र नहीं थी, अपितु उन अक्षरों से सम्बन्धित आध्यात्मिक चिन्तन और सात्विक सूक्ष्मता को गुरु नानक ने अपनी दैवी प्रतिभा के द्वारा बड़ी वारीकी से समझा और अभिव्यक्त भी किया। इस तथ्य के प्रकाश में गुरुमुखी लिपि के आविष्कार का सम्बन्ध न गुरु नानक के साथ स्थापित हो सकता है और न ही गुरु अंगद के साथ। यह लिपि गुरु नानक से पूर्व पंजाब में विद्यमान और प्रचलित थी, भले ही यह सिद्ध-मात्रिका की वंशज रही हो, अथवा टाकरी का हो स-मात्रिक रूप। 'गुरुमुखी' नाम के अत्यन्त प्रचलित हो जाने के फल-स्वरूप इस लिपि का पहला नाम ऐसा काल-कवलित हुआ कि अब अनुमान का मरजीवडा भागीरथ प्रयत्न करने पर भी थाह प्राप्त नहीं कर रहा। हट्टर स्थित राय फिरोजा के स्मारक वाले कुएँ अथवा वापी में लगे हुए गुरु नानक के लगभग समकालीन शिला-लेख पर गुरुमुखी अक्षरों में अंकित स्मारक सम्बन्धी सूचना का उपलब्ध होना, पैड़ा मोखा का

जन्मसाखी लिखने के लिए गुरु अंगद के पास आने से पूर्व ही गुरुमुखी अक्षरों में पोथियाँ लिखने में सिद्धहस्त होना, हरिद्वार³, गया, काँगड़ा, दून के मन्दिरों, अमरनाथ और अन्य तीर्थों के पंडों के पास सुरक्षित बहियों में गुरु नानक के पूर्ववर्ती यात्रियों के हस्ताक्षर अथवा अन्य लिखित सामग्री 'लंडों' अथवा 'गुरुमुखी' में अंकित होना⁴, आदि अनेक तथ्य गुरुमुखी लिपि की प्राचीनता को गुरु नानक के अवतरण से पूर्व की सिद्ध करते हैं।

श्री जी० बी० सिंह ने भी अपनी पुस्तक 'गुरुमुखी लिपि: जन्म ते विकास' में इस लिपि को किसी विशेष गुरु द्वारा निर्मित नहीं माना है। उनका मत है कि अन्य लिपियों के समान 'गुरुमुखी' भी शनः शनः ब्राह्मी में से पैदा हुई है। किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों ने मिलकर एक समय, एक ही स्थान पर बैठ कर नहीं बनाई।⁵ श्री जी० बी० सिंह के स्वर में स्वर मिलाते हुए प्रो० प्रीतम सिंह ने भी अपना मत प्रकट किया है कि जहाँ तक गुरुमुखी लिपि के अक्षरों की ध्वनियों का सम्बन्ध है, वे किसी के बनाए हुए नहीं बनीं, वे पहले से ही ऐसी चली आ रही हैं और जहाँ तक अक्षरों के विकास का सम्बन्ध है, वे ब्राह्मी से आरम्भ होकर, विकास की ऐतिहासिक मंजिलों को पार करके, वर्तमान रूप के समान बन गया है, किसी व्यक्ति विशेष के बनाए नहीं बना। इसका 'गुरुमुखी' नाम, गुरुमुखों (श्रेष्ठ आध्यात्मिक पुरुषों) द्वारा प्रयोग में लाए जाने अथवा गुरुओं के मुख से उच्चरित वाणी के लिए व्यवहृत होने के फल-स्वरूप पड़ गया प्रतीत होता है।

गुरु नानक जब इस पुरातन लिपि और इस की सूक्ष्मताओं को जानते थे, तो निश्चय ही इसी में अपनी वाणी को लिखते होंगे। 'पट्टी

जन्मसाखी लिखने के लिए गुरु अंगद के पास आने से पूर्व ही गुरुमुखी अक्षरों में पोथियाँ लिखने में सिद्धहस्त होना, हरिद्वार, गया, काँगड़ा, दून के मन्दिरों, अमरनाथ और अन्य तीर्थों के पंडों के पास सुरक्षित बहियों में गुरु नानक के पूर्ववर्ती यात्रियों के हस्ताक्षर अथवा अन्य लिखित सामग्री 'लंडों' अथवा 'गुरुमुखी' में अंकित होना, आदि अनेक तथ्य गुरुमुखी लिपि की प्राचीनता को गुरु नानक के अवतरण से पूर्व की सिद्ध करते हैं।

श्री जी० बी० सिंह ने भी अपनी पुस्तक 'गुरुमुखी लिपि: जन्म ते विकास' में इस लिपि को किसी विशेष गुरु द्वारा निर्मित नहीं माना है। उनका मत है कि अन्य लिपियों के समान 'गुरुमुखी' भी शनः शनः ब्राह्मी में से पैदा हुई है। किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों ने मिलकर एक समय, एक ही स्थान पर बैठ कर नहीं बनाई। श्री जी० बी० सिंह के स्वर में स्वर मिलाते हुए प्र० प्रीतम सिंह ने भी अपना मत प्रकट किया है कि जहाँ तक गुरुमुखी लिपि के अक्षरों की ध्वनियों का सम्बन्ध है, वे किसी के बनाए हुए नहीं बनीं, वे पहले से ही ऐसी चली आ रही हैं और जहाँ तक अक्षरों के विकास का सम्बन्ध है, वे ब्राह्मी से आरम्भ होकर, विकास की ऐतिहासिक मंजिलों को पार करके, वर्तमान रूप के समान बन गया है, किसी व्यक्ति विशेष के बनाए नहीं बना।⁷ इसका 'गुरुमुखी' नाम, गुरुमुखों (श्रेष्ठ आध्यात्मिक पुरुषों) द्वारा प्रयोग में लाए जाने अथवा गुरुओं के मुख से उच्चरित वाणी के लिए व्यवहृत होने के फल-स्वरूप पड़ गया प्रतीत होता है।

गुरु नानक जब इस पुरातन लिपि और इस की सूक्ष्मताओं को जानते थे, तो निश्चय ही इसी में अपनी वाणी को लिखते होंगे। 'पटी लिखी - इस प्रारम्भिक उक्ति से ही यह सुस्पष्ट है कि यह गुरु जी ने लिखित रूप में प्रस्तुत की थी, मौखिक रूप में उच्चारण नहीं की थी। फलतः गुरु नानक उस समय की सामान्य रूप से प्रचलित लिपि में लिखने में सिद्ध-हस्त थे।

क्या गुरु नानक देव केवल 'पटी' में उल्लिखित पुरातन लिपि में ही लिखते थे अथवा किसी अन्य लिपि में भी लिखने का आवश्यक ज्ञान तथा अभ्यास रखते थे ? इस सम्बन्ध में निवेदन है कि गुरु जी ने 'पटी' की सरणी पर 'तोरकी (फारसी) लिपि में न तो कोई सीहरफ़ी लिखी है और न ही उन्होंने विदेशी वेशभूषा और भाषाओं के प्रति किसी प्रकार का कोई लगाव प्रकट किया है। वे तो उन देश-वासियों को सदैव धिक्कारते रहे जो अपनी भाषा और संस्कृति को नहीं अपनाते थे, यथा-

भाषा-सम्बन्धी:

1. खत्रीआ त धरम छोडिया मलेछ भाखिआ गही मिसटि सभ इक वरन होई धरम की गति रही
(आदि ग्रंथ, पृ० 663)
2. घरि घरि मीआ सभना जीआ बोली अवर तुमारी
(आदि ग्रंथ, पृ० 1191)

वेश-भूषा-सम्बन्धी:

1. नील वसत्र पहरि होवहि परवाणु।
मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु।
(आदि ग्रन्थ, पृ० 472)
2. नील वसत्र ले कपड़े पहिरै
तुरक पठाणी अमलकीआ।
(आदि ग्रन्थ, पृ० 470)

उक्त पंक्तियाँ जहाँ गुरु नानक की उदात्त और प्रबल राष्ट्रीय भावना की सूचक हैं, वहाँ गुरु नानक द्वारा स्व-रचित वाणी लिखने के लिए व्यवहृत लिपि कौन सी थी, इस की ओर भी संकेत करती हैं। सारांश यह कि गुरु नानक अपनी वाणी स्वयं लिखते थे, और जिस लिपि में लिखते थे वह निश्चय ही वर्तमान गुरुमुखी का पुरातन रूप था।

क्या उन्होंने अपनी समस्त वाणी स्वयं ही लिखी या लिपिकों ने भी ऐसा करने में उनको कुछ सहयोग दिया ? इस प्रश्न का उत्तर इतिहास के गर्भ में से ढूँढ़ निकालना होगा। कतिपय प्राचीन ग्रंथों में से ऐसे संकेत मिलते हैं कि कुछ लिपिक गुरु नानक की वाणी साथ-साथ लिखते जाते थे। इस सम्बन्ध में दक्षिण की यात्रा (उदासी) के दौरान में घेहो जाति के सैदो नामक व्यक्ति का गुरु जी के साथ होना 'पुरातन जन्मसाखी' में लिखा है। अनुभवी सरेवड़े के साथ विचार-विमर्श करते समय गुरु नानक ने जिस वाणी का उच्चारण किया था, उसे सैदो ने लिखा था-“तदहु सैदो घेहो लिखी सम्पूर्ण पड़णी।”⁸ साखी अंक 46 में सिद्धो के साथ हुई गोष्ठी के अवसर पर गुरु नानक ने जो वाणी उच्चारित की, उसको सैदो ने लिखा- वाणी सैदो जट जात घेहो लिखी” राजा शिवनाभ वाली साखी अंक 47 में उल्लिखित 'प्राण संगली' को “सैदो थै सम्पूर्ण की” माना है¹⁰ उत्तर खंड की यात्रा (उदासी) के दौरान उनके साथ हसू लोहार और सीहां छीवां नामक दो व्यक्ति थे। उस समय ब्रह्मदास पंडित को उपदेश देने के प्रकरण में गुरु नानक ने 'मलार राग की वीर' का उच्चारण किया। उस वाणी को हसू और सीहां छीवां दोनों ने लिखा- “ततु वाणी हसू लोहार और सीहैं छीवे लिखी।”¹¹ इसके अतिरिक्त ज्ञानी प्रताप सिंह ने 'पुरातन जन्मसाखी' से उद्धरण (“मनसुख तीन बरस वावे कोल रिहा गुरु बावे दी वाणी बहुत लिखिआ सू। पोथीत्रां लिख लीतिआ।”)¹² प्रस्तुत करते हुए बताया है कि “भाई मनसुख गुरुवाणी लिखने वाला पहला सिख हुआ है।”¹³

'गुरु प्रताप सूर्य' के अनुसार प्रथम गुरु की वाणी भाई मनसुख ने लिखी, दूसरे की पैड़ा मोखा ने और तीसरे की उनके पौत्र (मोहन के पुत्र) सहंसर राम ने।¹⁴ 'तवारीख गुरु खालसा' (प्रथम भाग, दूसरा अंक) में बूटा सिंह पंसारी, रावलपिंडी वाली प्राचीन हस्तलिखित प्रति का संबन्ध भाई बखता के साथ स्थापित करते हुए ज्ञानी ज्ञान सिंह ने उसे गुरुओं की वाणी को एकत्रित करके संकलित करने वाले उद्यम में संलग्न बताया है।¹⁵

इन उद्धरणों से इतनी बात स्पष्ट हो जाती है कि गुरु नानक की वाणी उनके अतिरिक्त कभी कभी उनके श्रद्धालु सिख एवं सहचर भी श्रद्धावश साथ-साथ अंकित करते जाते थे और तभी से ही गुरु नानक वाणी श्रद्धालु सिखों एवं अनुयायियों द्वारा संकलित होनी शुरू हो गई थी। यह सम्भव है कि मनसुख और

पैड़ा मोखा के तैयार किए क्रमशः प्रथम और द्वितीय गुरुओं के वाणी-संग्रह, तृतीय गुरु अमरदास तक पहुंचे हों और उन्होंने अपनी वाणी को उन्हीं संग्रहों की परम्परा में संकलित करवाने के लिए अपने पौत्र को कहा हो, क्योंकि वृद्ध अवस्था में संभवतः उन्होंने स्वयं लिखना पसंद न किया होगा। अनुमान है कि वही हस्तलिखित पोथियां बाबा मोहन तक पहुंची होंगी।

मनसुख ने गुरु नानक की वाणी का जो संकलन तैयार किया, उसके लिये वाणी को किस ढंग से एकत्रित किया, यह एक बड़ा विकट प्रश्न है जिसका उत्तर इतिहास देने से असमर्थ है। हो, इतना स्पष्ट है कि मनसुख सदा ही गुरु जी के साथ नहीं रहता था। अनेक साजियों की पृष्ठभूमि इस निर्णय पर पहुंचाने के लिए विवश करती है कि यात्राओं (उदासियों) के दौरान अधिकांश अवसरों पर जब गुरु नानक जिज्ञासुओं को उपदेश देते थे तो उस समय साधारणतः गुरु नानक, मरदाना और

उपदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति, बस ये तीन ही उपस्थित होते थे। उन अवसरों पर उच्चारण की गई वाणी कौन लिखता था ? इस प्रश्न के प्रकाश में प्रतीत होता है कि गुरु नानक अपनी वाणी को स्वयं ही लिखते होंगे फिर उसका संभवतः संशोधन भी करते होंगे और उसको कंठस्थ करके उसमें से स्थिति एवं अवस्था के अनुरूप पद्य उच्चारण करते होंगे। 'सिथ गोसटि' सदृश बृहताकार वाणी से ही सुस्पष्ट है कि पहले सिद्धों और गुरु जी में वादविवाद हुआ होगा और फिर उस पर आधारित वाणी की सर्जना की गई होगी। सिख दर्शन पर अवलम्बित इस रचना का पूर्वापर सम्बंध स्थापित करते हुए गुरु नानक द्वारा एक बार ही इसको गेय रूप में उच्चारण कर देने की बात अपील नहीं करती। इस की सर्जना वस्तुतः बड़ी गम्भीरता एवं विचारपूर्वक की गई थी। 'पटी लिखी पदांश से भी उक्त कथन को बल मिलता है और सिद्ध होता है कि यह रचना (पटी) पहले लिखी गई थी, आवेश रूप में गाई नहीं गई थी। क्योंकि उस समय तक तो मरदाना गुरु जी के सम्पर्क में आया ही नहीं था और उसके गुरु जी के सम्पर्क में आने से पूर्व की समस्त वाणी अनगाए अथवा केवल गुनगुनाए रूप में ही रही थी। 'पटी' कोई सामान्य स्तर की रचना नहीं, इसके लिए निश्चित रूप में चिन्तन करने और भावों तथा विचारों का पूर्वापर सम्बंध जोड़ने की आवश्यकता थी। फलस्वरूप, यह कहा जा सकता है कि यह रचना निश्चय ही गुरु नानक द्वारा लिखित रूप में प्रस्तुत की गई थी।

प्रो० साहेब सिंह ने 'गुरु नानक द्वारा अपनी वाणी को स्वयं संभाल कर रखने की बात' को भाई गुरदास की निम्नांकित पंक्ति-

पुछनि खोलह किताव नू
हिंदू वडा कि मुसलमानोई¹⁶
(वार 1/पउड़ी 33)

के आधार पर सिद्ध करते हुए लिखा है कि गुरु जी अपने पास बैठन

अथवा बस्ते के रूप में अपनी वाणी सुरक्षित रंगते थे।¹⁷ मनुष्यता को शान्त करने वाली वाणी को भावी जिज्ञासुओं के करवान हेतु सुरक्षित रखने के लिए गुरु नानक के मन में कोई इच्छा उत्पन्न नहीं हुई होगी? निश्चय ही इस प्रश्न का उत्तर हाँ में है। उन्होंने अपनी वाणी के संकलन का प्रयास अवश्य किया अथवा करवाया होगा।

गुरु अंगद के पास गुरु नामक की वाणी उग की (गुरु नानक की स्वहस्त-लिखित थी अथवा मनसुख की लिखी हुई थी। इसके सम्बंध में अब कुछ कहना कठिन है, परन्तु इतनी बात स्पष्ट है कि गुरु अंगद के पास गुरु नानक की वाणी निश्चय ही मौजूद थी, क्योंकि उनकी वाणी पर गुरु नानक के विचारों और शब्दावली का अत्यधिक प्रभाव है। इस सम्बंध में प्रो० साहेब सिंह ने कतिपय उद्धरण अपनी पुस्तक 'गुरबाणी ते इतिहास बारे' के पृष्ठ 22, 23 और 24 पर प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने यह मान्यता भी स्थापित की है कि गुरु अमरदास के पास पूर्ववर्ती दोगी गुरुओं की वाणी विद्यमान थी। इस सम्बंध में उनका तर्क है कि गुरु अमरदास ने एक तो अपनी समस्त वाणी केवल उन्हीं 17 रागों में उच्चारण की है जिनको गुरु नानक पहले ही अपनी वाणी के लिए प्रयुक्त कर चुके थे। दूसरे, दोनों गुरुओं द्वारा लिखित 'पटियों' में पर्याप्त सामीप्य है। तीसरे, दोनों गुरुओं की वाणियों में शब्दावली सम्बंधी बहुत समानता है। फलस्वरूप, गुरु अमरदास तक पूर्ववर्ती दो गुरुओं की वाणियाँ गुरु-गद्दी के पास ही सुनक्षित थीं और उत्तरोत्तर गुरु उसका बड़ी गंभीरता के साथ पठन पाठन करते थे, उसका प्रभाव भी ग्रहण करते आए थे और साथ-साथ अपनी वाणी भी संकलित करते जाते थे।

प्रो० साहेब सिंह उसी संकलित वाणी को आगामी गुरु रामदास के पास पहुँचा कर सन्तुष्ट हो जाते हैं।¹⁸ परन्तु पहले तीन गुरुश्रों की वाणियों में जितनी परस्पर समीपता है, उसका गुरु रामदास की वाणी में स्पष्ट अभाव है। प्रो० साहेब सिंह ने अपनी पुस्तक 'गुरबाणी ते इतिहास बारे' में गुरु रामदास की वाणी के साथ भी पहले तीन गुरुओं की वाणियों का साम्य सिद्ध करने के लिए अनेकशः उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, परन्तु यह प्रयत्न पूर्व निश्चित धारणा की पुष्टिवश हुआ है, तथ्य के अनुकूल नहीं, क्योंकि जितनी समीपता और भावसाम्य पहले तीन गुरुओं की वाणियों के उद्धरणों में है, उतना चौथे गुरु रामदास की वाणी के उद्धरणों में नहीं है। न ही गुरु रामदास ने अपनी वाणी के लिए केवल वही राग अपनाए हैं, जिनको पूर्ववर्ती तीन गुरु अपना चुके थे। उदाहरणतः गुरु रामदास ने पहले तीन गुरुओं द्वारा प्रयुक्त रागों के अतिरिक्त देवगंधारी, जैतसिरी, टोडी, वैराड़ी, नट-नारयाण, माली गौड़ी, गौड़, कानड़ा कल्याण आदि राग अधिक प्रयुक्त किए हैं। इन तथ्यों के प्रकाश में गुरु रामदास के पास पूर्ववर्ती तीन गुरुओं की वाणी के पहुँचने अथवा उपलब्ध न होने का सन्देह बना रहता है और प्रो० साहेब सिंह का तर्क इसका उपयुक्त समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाता।

आदि ग्रन्थ के प्रथम संकलन के समय बाबा मोहन के पास से गुरु अर्जुन द्वारा पूर्ववर्ती गुरुओं की वाणियों की प्रतियों (पोथियों) को मगवाए जाने की एक प्रसिद्ध अनुश्रुति है और गुरु ग्रन्थ साहब में संकलित "मोहन तेरे ऊँचे मन्दर महल अपारा" आदि गुरु-वाक्यों को तत्सम्बन्धी प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मैकालिफ, जी. बी. सिंह आदि विद्वान् इस मत के प्रबल समर्थक हैं परन्तु प्रो० साहेब सिंह उक्त पद्यों में प्रयुक्त 'मोहन' शब्द को परमात्मा के नाम का सूचक और शेष पद्य में अभिव्यक्त भाव को प्रभु-स्तवन मानते रहे।¹⁹ यहाँ साहेब सिंह का दृष्टि-कोण पूर्व निश्चित धारणा के वशीभूत प्रतीत होता है, क्योंकि उनकी धारणा उक्त पद्य की अन्तिम पंक्तियों से सामञ्जस्य स्थापित करती हुई प्रतीत नहीं होती। उक्त पद्य की निम्नांकित अन्तिम पंक्तियों का स्पष्ट एवं निर्विवाद सम्बन्ध बाबा मोहन के साथ ही बैठता है -

मोहन तू सफलु फलिआ सणु परवारे । मोहन पुत्र मीत भाई कुटंब सभि तारे।
तारिआ जहान लाहिआ अभिनानु जिनी दरसनु पाइआ।

बेअंत गुण तेरे कथे न जाही सतिगुर पुरख मुरारे।
बिनवति नानक टेक राखी जित लग तारिआ संसारे ।।।

(आदि ग्रन्थ, पृ० 248)

वस्तुतः गुरु अमरदास तक पूर्ववर्ती दो गुरुओं की वाणी गुरु-गद्दी के पास सुरक्षित रही और उनके देहान्त के पश्चात् पारिवारिक द्वैप अथवा किसी अन्य कारण के फलस्वरूप वह वाणी-संकलन आगामी गुरु (रामदास), जो गुरु अमरदास के दामाद थे, तक न पहुँच सका, और उसको किसी प्रकार बाबा मोहन ने, जो गुरु अमरदास के पुत्र थे, हथिया लिया। गुरु रामदास ने केवल अपनी वाणी ही अपने सुपुत्र गुरु अर्जुन को गुरु-गद्दी-अभिषेक के अवसर पर दी होगी और गुरु ग्रन्थ साहेब का संकलन करते समय गुरु अर्जुन को बाबा मोहन के पास सुरक्षित वाणी संग्रह को प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक हो गया होगा, तभी तो उन्होंने बार-बार विनम्रतापूर्वक प्रयत्न किया था।

प्र० साहेब सिंह ने निम्नांकित पद्य के द्वारा यह सिद्ध किया है कि पूर्ववर्ती गुरुओं का समस्त वाणी-संकलन गुरु अर्जुन के पास उपलब्ध था और आदि ग्रन्थ के सम्पादन के समय उमे देखकर प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने यह पद्य उच्चारण किया था:-

हम धनवन्त भागठ सच नाइ।
हरि गुण गावह सहज सुभाइ॥१॥
पीऊ दादे का खोली डिठा खजाना।
ता मेरै मनि भाइआ निधाना॥२॥
रतन लाल जा का कछू न मोल।
भरे भंडार अखुट अतोला॥२॥३॥१॥१००॥²⁰

आदि ग्रन्थ, पृ० 185-186)

प्र० साहेब सिंह द्वारा उद्धृत उक्त पद्य भी उनकी स्थापना का विरोध करता है, क्योंकि यह पद्य गुरु अर्जुन को गुरु नानक से लेकर गुरु रामदास तक वंश-परम्परा से प्राप्त वाणी को देखकर नहीं सुझा होगा, क्योंकि उनके अपने पास विद्यमान समस्त वाणी संग्रह को न जाने कितनी बार पहले गुरु अर्जुन ने खोल कर देखा अथवा पढ़ा होगा। इसके विपरीत यह आश्चर्ययुक्त 'पद्य' निश्चय ही उनके मुख से उस समय वरवस निकला होगा जब उन्होंने बाबा मोहन के पास से प्राप्त वाणी संग्रह को प्रथम बार खोलकर देखा होगा, क्योंकि उनके लिए वह अनुपम पैतृक निधि थी और जिससे उनके पिता और वे स्वयं चिरकाल से वंचित चले आ रहे थे।

सारांश यह, कि गुरु अर्जुन ने गुरु ग्रन्थ साहेब की मूल प्रति तैयार करते समय पहले तीन गुरुओं की वाणी बाबा मोहन वाली प्रतियों (पोथियों) द्वारा और गुरु रामदास की वाणी सीधी परम्परा से प्राप्त की थी। बड़े गम्भीर चिन्तन और परीक्षा के पश्चात् ही उन्होंने आदि ग्रन्थ का मूल संस्करण तैयार किया और इस प्रकार तब से गुरु नानक वाणी का प्रामाणिक स्वरूप परवर्ती एवं भावी अनुयायियों के लिए स्थिर कर दिया।

संदर्भ

- पुरातन जन्मसाखी; सं० भाई वीरसिंह; 1959 पृ० 1
- पुरातन जन्मसाखी, पृ० 6
(यहाँ यह भी स्पष्ट है कि तब तक बच्चों को पहले देशीय भाषा में शिक्षा दी जाती थी और तत्पश्चात् विदेशी भाषा में)।
- वर्तमान गुरुमुखी लिपि से 'पटी' वाली लिपि के अक्षरों का क्रम कुछ भिन्न है। 'पटी' का वर्णक्रम इस प्रकार है:- "स, इ, उ, ङ, क, ख, ग, घ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, ङ, ह, अ"
- जन्मसाखी भाई बाला वाली, लिथो संस्करण, पृ० 4-5
- ट्रिब्यून, मिति 31-7-1916 (ला० शिव दयाल) द्वारा 'गुरुमुखी लिपि: जन्म और विकास' प्रथम संस्करण, पृ० 151
- गुरुमुखी लिपि: जन्म और विकास, पृ० 75
- पंजाब, सं० एम० एस० रंधावा, पृ० 391
- पुरातन जन्मसाखी, पृ. 81
- पुरातन जन्मसाखी, पृ. 86
- पुरातन जन्मसाखी, पृ. 90
- पुरातन जन्मसाखी, पृ. 93
- अर्थात् मनसुख तीन वर्ष बाबा (नानक) के पास रहा, गुरु बाबा की वाणी बहुत लिखी थी, पोथियां लिख ली
- गुरमत लैकचर, ज्ञानी प्रताप सिंह, सं. दूसरा, पृ. 77
- गुतरप्रताप सूर्य, रास 1, अंशु 59
- तवारीक गुरु खालसा, ज्ञानी ज्ञान सिंह, लियो संस्करण, पृ. 724-25
- अर्थात् (मुल्ला लोग) पूछते कि मुस्तक को खोल लर (यह बताओ) कि हिंदू बड़ा है या मुसलमान।
- गुरुवाणी ते इतिहास बारे; साहेब सिंह, सिंह ब्रदर्स, माई सेवों, अमृतसर: 1960; 10 20
- गुरुवाणी ते इतिहास बारे, पृ. 32
- गुरुवाणी ते इतिहास बारे, पृ० 42
- गुरुवाणी ते इतिहास बारे, पृ० 36-37

भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति, 2020 की प्रासंगिकता

डॉ० सिद्धार्थ कुमार

विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, सुन्दरवती महिला महाविद्यालय, भागलपुर, ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध सारांश

भारत प्राचीन काल से ही ज्ञान की भूमि रही है। इस भूमि पर तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी, जगदल, वल्लभी, काशी, मथुरा, सारनाथ, जैसे प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे। जहाँ विश्व की प्राचीनतम विश्वविद्यालय रही है। इस विश्वविद्यालय में देश-विदेश के छात्र आते थे, जहाँ धर्म, आध्यात्म, नैतिक आचरण, तर्क-वितर्क, दर्शन, तत्व, हेतु विज्ञान, आयुर्वेद, धातु व रस विज्ञान का अध्ययन किया जाता था। हमारे प्राचीन शिक्षा प्रणाली की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। यही कारण है कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हमारे प्राचीन गौरवशाली ज्ञान परंपरा को शामिल किया है और नई शिक्षा प्रणाली की व्यवहारोमुख, समाजोपयोगी बनाया गया है। नई शिक्षा नीति द्वारा युवाओं में कौशल विकास, शोध एवं नवाचार में विकास कर उन्हें स्वावलंबन बनाने का प्रयास किया है। यानि इस शिक्षा नीति द्वारा छात्र अधिक से अधिक नवाचारशील, आत्मनिर्भर और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार हो सकेंगे। इस शिक्षा नीति द्वारा बच्चों के लिए खेल गतिविधियों, संगीत, कला और हाथों से किए जाने वाले कार्यों को शामिल किया गया है, जिससे वे अपनी रचनात्मक, समस्या समाधान, कौशल और सामाजिकता का विकास कर सकें। साथ ही बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा देने की सिफारिश की गई है। व्यवसायिक शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, चयन आधारित क्रेडिट प्रणाली-च्वाइस बेस्ट क्रेडिट सिस्टम (सीबीसीएस) पाठ्यक्रमों को शामिल कर नई शिक्षा नीति को व्यवहारिक बनाया है। साथ ही मूल्य आधारित शिक्षा-पर्यावरण, योग, स्वच्छता, नैतिक शिक्षा, संवैधानिक और वैश्विक मानव मूल्यों को सम्मिलित किया है। एक तरह से नई शिक्षा प्रणाली समतापूर्ण, समावेशी, सर्वव्यापीकरण पर आधारित है।

शब्द कुंजी - नई शिक्षा नीति, स्त्री शिक्षा, कौशल विकास, व्यवसायिक शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, समावेशी शिक्षा।

भूमिका रू. ज्ञान ही ऐसी पूँजी है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। किसी भी सभ्यता-संस्कृति की पहचान वहाँ की ज्ञान और तकनीकी विकास से आकलन करते हैं। ज्ञान-विज्ञान का भारतीय इतिहास काफी पुराना है। कहा जाता है कि जिस समय विश्व की सभ्यता या देश असभ्य व बर्बर जीवन जी रहा था, तभी भारत ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भरपूर विकास किया था। डॉ.एफ.डब्ल्यू. थॉमस ने लिखा है कि ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम उतने प्राचीन समय में प्रारम्भ हुआ हो।¹ वैदिक काल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा की शुरुआत हुई और भारतीय ज्ञान के उच्चतम पराकाष्ठा पर पहुँच गया। हमारे प्राचीन ज्ञान परंपरा में धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित, आयुर्विज्ञान, कला (वास्तुकला नृत्य, गायन, वादन, नाट्य, मूर्तिकला, चित्रकला), व्याकरण, साहित्य जैसे विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित विषयों का भरपूर विकास हुआ। साथ ही व्यवसायिक, ग्रहस्थ जीवनपयोगी जैसे समावेशी शिक्षा प्रणाली समाहित थे। भारतीय ज्ञान परंपरा में विश्व के प्रसिद्ध और बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों, जैसे-नालंदा, विक्रमशिला, जगदल, ओदंतपुरी, वल्लभी आदि विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई थी। जहाँ तर्क, दर्शन, धातु विज्ञान आदि लौकिक विषयों का अध्ययन अध्यापन होता था, जबकि विश्व में विश्वविद्यालय का नामोनिशान नहीं था। लेकिन उत्थान पतन के इतिहास में भारतीय शिक्षा का अवनीति हो गई। विदेशी आक्रांताओं ने भारतीय ज्ञान परंपरा के सभी विशेषताओं को मिटाने का प्रयास किया। ब्रिटिश सरकार ने सोची-समझी नीति के तहत भारतीय ज्ञान के गौरवशाली परंपरा को नष्ट करने का प्रयास किया। मैकाले के शिक्षा नीति से भारतीय शिक्षा के औपनिवेशीकरण हो गया। आजादी के बाद भी कमोवेश ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित ज्ञान परंपरा की मान्यता को ही स्थापित करने का प्रयास किया। आजादी के एक लम्बे दशक के बाद 2020 ई. में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू किया गया। नई शिक्षा नीति को इस प्रकार तैयार किया गया है कि भारत को एक समतापूर्ण एवं जीवंत ज्ञान समाज में बदलने तथा भारत एक बार फिर से वैश्विक ज्ञान के क्षेत्र में वैश्विक गुरु या महाशक्ति बन सके।

इस नई शिक्षा नीति में ऐसी विश्वसनीय शिक्षा व्यवस्था की परिकल्पना करती है, जो सभी के लिए समावेशी, गुणवत्तायुक्त शिक्षा और जीवनपर्यन्त ज्ञानार्जन अवसरों को सुनिश्चित करने तथा उत्पादन जीवन जीने, देश की विकासात्मक प्रक्रिया में भागीदारी करने, तेजी से बदलते, हर पल वैश्वीकृत होते, ज्ञान आधारित समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले ज्ञान, कौशल, अनिवृत्तियों और मूल्यों को धारण करने वाले विद्यार्थियों व स्नातकों को तैयार करने और भारत की विरासत की विविधता को स्वीकार करने वाली भारतीय परंपरा, संस्कृति और इतिहास का सम्मान करने वाले जिम्मेवार नागरिकों को तैयार करने व सामाजिक समरसता तथा धार्मिक भाईचारे को बढ़ावा देने में सक्षम हो।

जून, 2017 में मानव संसाधन विभाग मंत्रालय द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के ड्राफ्ट को तैयार करने के लिए डॉ. के. कस्तूरीरंजन की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट 2019 में जारी की। यह कमेटी 1986 से चली आ रही राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कुछ बदलाव करने की सलाह करती है। इस कमेटी के सिफारिश के आधार पर 30 जुलाई, 2020 को नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति जारी कर दी गई।²

शिक्षा का सर्वव्यापीकरण

नई शिक्षा नीति 2020 में व्यापक सुधार लाने का दस्तावेज है। यह नीति चार प्रमुख स्तंभों पर आधारित है- प्रवेश, सामान्य, गुणवत्ता और उत्तरदायित्व। इस शिक्षा नीति में वर्ष 2025 तक 50 प्रतिशत स्कूली छात्रों को कौशल और व्यावसायिक शिक्षा शुरू करने का एक विशिष्ट उद्देश्य स्थापित किया है।³ जिसका उद्देश्य वर्ष 2030 तक लगभग सभी छात्रों को सुविधा प्रदान करना है।⁴

व्यावसायिक शिक्षा

इस नीति में माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का एक ऐसा व्यवस्थित वह सुनियोजित कार्यक्रम बनाने की संस्तुति की गई है, जो छात्रों को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक होगा। स्कूल में व्यवसायिक शिक्षा जिसके अंतर्गत आई.टी और वोकेशनल विषय छठी कक्षा से ही प्रारंभ होगी। इसमें छात्रों को दी जाने वाली इंटरशिप भी शामिल है। इनसे न केवल बेरोजगारी की समस्या का समाधान या कम होगी, बल्कि उद्यमिता और नवाचार को भी बढ़ावा मिलेगा।

शिक्षा में लचीलापन

नई शिक्षा नीति में लचीले और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों को सम्मिलित किया है। आर्थिक रूप से कमजोर छात्र-छात्राएँ, या किसी अन्य कारणवश पढ़ाई रुक जाती है, तो दुबारा पढ़ाई शुरू कर सकते हैं, वह भी जहाँ पर छोड़ा था, वहाँ से शुरू करेगा, न कि प्रथम स्तर से। यानि चयन आधारित क्रेडिट सिस्टम (सीबीसीएस) लागू किया है, जो मल्टी एंट्री और मल्टी एक्जिस्ट प्रणाली पर आधारित है। इसमें मूल्य आधारित शिक्षा में पर्यावरण, स्वच्छता, मानवीय, नैतिक, संवैधानिक और वैश्विक मानव मूल्यों वाले विषयों को सम्मिलित किया है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन, ईसीसीई)

इस शिक्षा नीति में प्रारंभिक शिक्षा को अधिक समावेशी गुणवत्तापूर्ण और सुलभ बनाने का प्रयास किया है। इसलिए 5+3+3+4 संरचना को अपनाया गया है, जिसमें 3 से 8 वर्ष की आयु के बच्चे के लिए एक फाउंडेशनल स्टेज तैयार किया गया, जो 3 वर्ष के प्री स्कूल (आंगनबाड़ी) और कक्षा 1 एवं 2 को मिलाकर बनाया गया है।⁵ इस पहल का प्रमुख उद्देश्य बाल केंद्रित और खेल आधारित शिक्षण को बढ़ावा देना है, ताकि बच्चे सहज और रोचक तरीकों से सीख सकें। बच्चों के लिए खेल, गतिविधियाँ, संगीत, कला और हाथों से किए जाने वाले कार्यों को भी शामिल किया गया है, जिससे वे अपनी रचनात्मक, समस्या समाधान, कौशल और सामाजिकता का विकास कर सकें। इस नीति के तहत सबको समान अवसर सुनिश्चित करने पर बल दिया गया, विशेष रूप से हशिए पर खड़े समुदायों, वंचित वर्गों और दिव्यांग बच्चों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं।⁶ इसे प्रभावी बनाने के लिए आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं और शिक्षकों के प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया है।

डिजिटल शिक्षा और तकनीक

इस शिक्षा नीति में डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। इसके लिए विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म और तकनीकी संसाधनों के उपयोग पर विशेष जोर दिया है। शिक्षा को अधिक समावेशी, सुलभ और प्रभावी बनाने के लिए DIKSHA, SWAYAM, SWAYAM PRABHA, e-pathshala और राष्ट्रीय डिजिटल शिक्षा मंच (NDEAR) जैसे प्लेटफॉर्म विकसित किए गए हैं, जो विद्यार्थी को गुणवत्ता स्टडी मैटेरियल उपलब्ध कराने में सहायक है। इसके अलावा कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), वर्चुअल (VR), संवर्धित वास्तविकता (AR) और अन्य आधुनिक तकनीकों के माध्यम से शिक्षा को अधिक रोचक और अनुभावात्मक बनाया गया है।⁷ डिजिटल शिक्षा को सरल बनाने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक तकनीकी फोरम (NETF) की स्थापना का प्रस्ताव दिया गया है, जिसका उद्देश्य शिक्षकों और छात्रों को नवीनतम तकनीकों का प्रशिक्षण देना और डिजिटल संसाधनों तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करना है।

बहुभाषिता और मातृभाषा में शिक्षा

मातृभाषा में विषयवस्तु को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। दुनियाँ के अधिकांश विकसित देश अपने मातृभाषा में ही शिक्षा प्रदान करता है। इसलिए इस शिक्षा नीति के तहत यह सिफारिश की गई है कि कम से कम तीसरी कक्षा तक और यदि संभव हो तो पांचवी या आठवीं कक्षा तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा में होनी चाहिए।

भारतीय भाषाओं कला और संस्कृति का संवर्धन

भारत में भाषाओं की समृद्ध परंपरा रही है। बालकों को बहुभाषिकता को अपनाने की बात कही है। भारतीय भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन को भी बढ़ावा मिलेगा, जिससे भारतीय विविधता को बनाए रखा जा सकेगा। संस्कृत को स्कूली और उच्चतम शिक्षा संस्थानों की मुख्यधारा में शामिल करने की योजना है। नई शिक्षा नीति, 2020 में देश की भाषाओं के संवर्धन के मकसद से भारतीय अनुवाद और विवेचना संस्थान की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है। इस शिक्षा नीति में शास्त्रीय और मातृभाषा को शिक्षा के केंद्र में लाने का प्रयास कर पूरी शैक्षिक संरचना को ही नया कलेवर देने का सकारात्मक प्रयास किया है।⁸ कला, शिल्प आदि सभी को शिक्षा से जोड़कर उसके संरक्षण व संवर्धन की बात कही है।

गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अनुसंधान

इस शिक्षा नीति में एक अंतराष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान की स्थापना का सुझाव दिया गया है। यह संस्थान विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अंतर विषयक अनुसंधानों को बढ़ावा देना है।⁹ इस अन्तराष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान की स्थापना का उद्देश्य शिक्षा का ज्यादा से ज्यादा अन्तराष्ट्रीयकरण करना है। यानी ऐसे अवसर पैदा करने की बात कही गई है, जहां बड़ी संख्या में अन्तराष्ट्रीय छात्र अध्ययन के लिए भारत आ सकेंगे।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का वादा करती है। इसका एक प्रमुख लक्ष्य भारत को 2040 तक भारत को एक ज्ञानात्मक समाज में बदलना है। नई शिक्षा नीति में मातृभाषा में शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण आदि आत्मनिर्भर भारत, विकसित भारत और 2040 तक भारत को विश्व गुरु के लक्ष्य को हासिल करने वाली शिक्षा नीति है। सभी के लिए सामानता पर आधारित और समावेशी उत्तम शिक्षा की सुनिश्चित व्यवस्था करने के उद्देश्य से नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में शिक्षा तक सबकी पहुंच, सभी की भागीदारी और शिक्षक स्तर के मामले में विभिन्न वर्गों के बीच अंतर को समाप्त करने पर विशेष ध्यान दिया गया है। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों और क्षेत्रों के लिए शिक्षा में विशेष प्रावधान किया है। यानी सभी को स्कूली शिक्षा उपलब्ध कराने और ज्यादा बच्चों को स्कूलों में दाखिला पर जोर दिया है। इस नई शिक्षा नीति सिर्फ कौशल एवं अर्थोपार्जन तक ही सीमित नहीं रखा है, बल्कि जीवन के मूल्यों, सामाजिक मूल्यों, चारित्रिक व नैतिक मूल्यों के विकास हो, इसी को ध्यान में रखकर यह मसौदा तैयार किया है। यह नीति भारत को एक ज्ञान आधारित समाज के रूप में पुनः स्थापित करने की दिशा में एक निर्णायक कदम है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत के 21वीं सदी के आकांक्षापूर्ण लक्ष्य के अनुरूप है। इसमें भारत को ज्ञान के क्षेत्र में वैश्विक महाशक्ति के रूप में तब्दील करने का लक्ष्य रखा गया है। यह शिक्षा नीति 21वीं सदी की वैश्विक आवश्यकताओं से मेल खाती है। इस शिक्षा नीति में स्थानीयकरण और वैश्विकरण के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. रामबाबू गुप्त, भारतीय शिक्षा का इतिहास, रतन प्रकाशन, आगरा, 1992, पृ०3
2. मनीष गर्ग, सभी के लिए उत्तम शिक्षा, योजना, मासिक पत्रिका, सूचना एवं प्रशासन विभाग, दिल्ली फरवरी 2022, पृ०23-25
3. एनआईपीए, 2020, पृ०129
4. एनआईपी, 2020, खंड-3, पैरा 3.1
5. मनीष गर्ग, सभी के लिए उत्तम शिक्षा, योजना, पूर्वोक्त पृ०24
6. एनआईपी, 2020, पृ० 24-25
7. संतोष यादव, युवाओं में कौशल विकास, योजना, पूर्वोक्त, पृ०22
8. प्रीति सागर, मातृभाषा शिक्षण (संपा), मनोज कुमार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020, वर्षा, 2020, पृ०25-26
9. एनआईपी, 2020, पैरा 12.8, पृ०39

आयकर अधिनियम 2025 और कर सरलीकरण-एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल

विभागाध्यक्ष-लेखा एवं विधि विभाग (वाणिज्य संकाय) एस.आर.के. (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद (3000)

सारांश (Abstract)

आर्थिक वैश्वीकरण, डिजिटल क्रांति और व्यावसायिक जटिलताओं के परिप्रेक्ष्य में भारत ने प्रत्यक्ष कर प्रणाली में व्यापक पुनर्गठन किया है। आयकर अधिनियम 2025 कर सरलीकरण (Tax Simplification) के दृष्टिकोण से एक प्रमुख पहल माना जा रहा है। यह अधिनियम कर दरों और छूटों का पुनर्गठन, डिजिटल प्रशासन का विस्तार, फेसलेस असेसमेंट एवं विवाद-निवारण के सुधार, तथा छोटे करदाताओं के लिये सरल अनुपालन विकल्प जैसी विशेषताओं का संयोजन प्रस्तुत करता है। इस शोध-पत्र में 2025 के इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का सैद्धान्तिक व व्यावहारिक विश्लेषण किया गया है तथा इसके आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक प्रभावों का मूल्यांकन किया गया है तथा सार्थक नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किये गए हैं। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि यदि प्रभावी कार्यान्वयन और संक्रमण व्यवस्थाएँ सुनिश्चित की जाएँ तो यह अधिनियम कर अनुपालन में वृद्धि, कर आधार के विस्तार, निवेश प्रवाह में सकारात्मकता तथा कर प्रशासन की दक्षता में सुधार ला सकता है; किन्तु संक्रमणकालीन चुनौतियाँ और संभावित असमानता-प्रभावों का समुचित प्रबंधन आवश्यक है।

मुख्य शब्द (Keywords): आयकर अधिनियम 2025; कर सरलीकरण; डिजिटल कर प्रशासन; फेसलेस असेसमेंट; कर-आधार विस्तार; विवाद निवारण; MSME अनुपालन; राजस्व स्थिरता।

1. परिचय (Introduction)

भारतीय कर व्यवस्था पिछले कई दशकों से निरन्तर परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। आयकर अधिनियम 1961 ने व्यापक कर ढाँचा प्रदान किया, पर वर्षों से बढ़ती जटिलताओं, अनगिनत छूटों तथा नियमों के बारंबार परिवर्तन ने कर प्रणाली को बोझिल और अनुपालन-कठोर बना दिया। वैश्विक प्रतिस्पर्धा, डिजिटल अर्थव्यवस्था, और निवेश आकर्षण की आवश्यकता के कारण कर सरलीकरण अपरिहार्य हो गया। इसी पृष्ठभूमि में आयकर अधिनियम 2025-एक ऐसा विधेयक/अधिनियम है जो करदाताओं के लिये स्पष्ट और सरल नियम, कर प्रशासन की दक्षता तथा विवाद-निवारण की तीव्रता प्रस्तुत करता है। इस शोध पत्र में इस अधिनियम के प्रमुख तत्वों का विश्लेषण, संभावित प्रभाव, अवसर व जोखिम, तथा नीतिगत सिफारिशें प्रस्तुत की गई हैं।

2. साहित्य-समीक्षा (Review of Literature)

2.1 Kelkar Committees/Expert Group Reports on Direct Taxes (Various Years)- इन रिपोर्टों में प्रत्यक्ष कर प्रणाली के सरलीकरण व स्थिरता पर बल दिया गया है, कटौतियों एवं छूटों को सीमित करने एवं कर आधार को व्यापक बनाने की बात कही गयी है।

2.2 OECD Tax Policy Studies (Various Years)- इन अध्ययनों में कहा गया है कि कर सरलीकरण से निवेश-प्रवृत्ति एवं कर अनुपालन में सुधार होता है एवं फेसलेस प्रक्रियाएँ डिजिटलीकरण के साथ कर प्रशासन के लिए लाभदायी हैं।

2.3 World Bank Reports (Various Years)- इन रिपोर्टों में कहा गया है कि डिजिटल टैक्स प्रशासन और पारदर्शिता से कर आधार के विस्तार, टैक्स लीकेज घटाने और आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ने की संभावना है।

2.4 CBDT Reports (Annual)-(Various Years)- ये विभागीय अध्ययन डिजिटल फाइलिंग, टीडीएस/टीसीएस सुधार, तथा मेंमेउमदज के प्रारम्भिक लाभों का दस्तावेजीकरण प्रस्तुत करते हैं।

2.5 भारतीय जर्नल्स (EPW, IJE Studies)- इन लेखों ने यह दर्शाया है कि कर सरलीकरण से छोटे करदाताओं की भागीदारी बढ़ेगी किन्तु संक्रमण समन्वय तथा राजस्व असंतुलन का खतरा भी है।

3. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

- आयकर अधिनियम 2025 के प्रमुख प्रावधानों का व्यवस्थित विवेचना करना।
- अधिनियम के माध्यम से प्रस्तावित कर सरलीकरण के आर्थिक व प्रशासनिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

- कर-अनुपालन, कर-आधार विस्तार, राजस्व स्थिरता व निवेश पर अधिनियम के संभावित प्रभावों का मूल्यांकन करना।
- अधिनियम से जुड़ी चुनौतियों व जोखिमों की पहचान करना।
- नीति-निर्माताओं के लिये व्यावहारिक सुझाव एवं सुधार प्रस्ताव प्रस्तुत करना।

4. अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

प्रकार (Research Design): यह अध्ययन वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक है।

डेटा स्रोत: मुख्यतः द्वितीयक स्रोत-आधिकारिक दस्तावेज (CBDT/CBD), आयकर अधिनियम 2025 (मसौदा/अधिसूचनाएँ), वित्त मंत्रालय की रिपोर्टें, आर्थिक सर्वेक्षण, RBI/OECD/World ढंदा के प्रासंगिक प्रकाशन, तथा अकादमिक जर्नल। सीमित प्रायोगिक प्रमाण हेतु कर सलाहकारों/वित्तीय विशेषज्ञों के उपलब्ध साक्षात्कारों का भी अध्ययन किया गया है।

विश्लेषण विधियाँ: तुलनात्मक विश्लेषण (1961 अधिनियम बनाम 2025 अधिनियम), नीति-विश्लेषण और संभावित प्रभावों की परिकल्पना (scenario analysis)।

5. आयकर अधिनियम 2025- प्रमुख प्रावधान (Key Provisions of Income Tax Act 2025)

- सरलीकृत स्लैब व कर दर संरचना: व्यक्तिगत कर-दाताओं हेतु सीमित संख्या के स्लैब कॉर्पोरेट करों में स्पष्ट और प्रतिस्पर्धी दर-निर्धारण। वैकल्पिक न्यून कर-दर (simplified regime) का प्रावधान।
- छूटों व कटौतियों का पुनर्गठन: अनेक प्रदत्त छूटों/धाराओं का समेकन/अंत तथा केवल कुछ लक्षित सामाजिक कटौतियों का संरक्षण।
- डिजिटल कर प्रशासन का विस्तार: अनिवार्य ई-फाइलिंग, e-assessment, AI- आधारित जोखिम मूल्यांकन, एवं रियल-टाइम जानकारी के लिये TDS/TCS डेटा का अधिकतम उपयोग।
- फेसलेस असेसमेंट एवं विवाद-निवारण: ट्रिब्युनल व अपील प्रक्रिया में त्वरित कार्यवाही वैकल्पिक विवाद समाधान (ADR), प्री-लिटिगेशन मेकेनिज्म।
- छोटे करदाताओं हेतु सरलीकृत विकल्प: presumptive taxation का विस्तार, आसान रिटर्न फॉर्म और न्यूनतम दस्तावेजीकरण।
- गिग/डिजिटल अर्थव्यवस्था पर प्रावधान: फ्रीलांसर, गिग वर्कर्स एवं डिजिटल सेवा प्रदाताओं के लिये स्पष्ट कर नियम।
- अपराधिक विरोधी प्रावधान: फर्जी इनकम, हेराफेरी पर कठोर दंड व फेस्टनिंग नियम।

6. विश्लेषणात्मक अध्ययन (Analytical Study)

6.1 आय के स्लेब एवं कर की दरें-

वित्तीय वर्ष (2025-26)/कर निर्धारण वर्ष (2026-27) के लिए एक व्यक्ति करदाता के लिए कुल आय पर कर दरें निम्न हैं-

आय	कर की दरें
प्रथम 4,00,000₹. तक की आय	शून्य
4,00,000-8,00,000₹. तक	5 प्रतिशत
8,00,000-12,00,000₹. तक	10 प्रतिशत
12,00,000-16,00,000₹. तक	15 प्रतिशत
16,00,000 - 20,00,000₹. तक	20 प्रतिशत
20,00,000-24,00,000₹. तक	25 प्रतिशत
24,00,000 से अधिक	30 प्रतिशत

शिक्षा उपकर- गणित आयकर पर 4 प्रतिशत की दर से।

आयकर अधिनियम 2025 के एक मुख्य प्रावधान के अनुसार यदि किसी करदाता की कुल आय 12,00,000₹. तक है (वेतनभोगी करदाता की दशा में 12,75,000₹. तक) तो उस पर करदायित्व शून्य होगा अर्थात् सरकार ने 12,00,000₹. तक की आय अर्जित करने वाले मध्यमवर्गीय करदाताओं को आयकर से मुक्त करके उन्हें एक बड़ी आर्थिक राहत प्रदान की है।

6.2 कर सरलीकरण का आर्थिक तर्क (Economic Rationale for Tax Simplification)

सरल, स्पष्ट और स्थिर कर कानून निवेशकों और करदाताओं का भरोसा बढ़ाते हैं। छूटों व अपवादों की संख्या घटाने से नियमों की जटिलता कम होती है और प्रशासनिक लागत घटती है। इसके कारण: करदाता-भागीदारी (tax morale) बढ़ती है स्वैच्छिक अनुपालन को प्रोत्साहन मिलता है, प्रशासनिक संसाधनों का कुशल उपयोग संभव होता है, जाँच और प्रवर्तन पर संसाधन केन्द्रित किए जा सकते हैं।, कराधान में निश्चिन्तता से दीर्घकालिक निवेश की योजनाएँ बनाना सरल होता है।

6.3 डिजिटल प्रशासन और फेसलेस असेसमेंट-लाभ व चुनौतियाँ

लाभ: पारदर्शिता, भ्रष्टाचार में कमी, निर्णय-तेजी, लागत में कमी, और बड़े-डेटा के जरिये जोखिम-आधारित लक्षित जाँच।

चुनौतियाँ: डिजिटल ढाँचे की समतल उपलब्धता (डिजिटल विभाजन), डेटा-गोपनीयता व सुरक्षा, AI-निर्भर निर्णयों में पारदर्शिता की कमी, तथा छोटे करदाताओं का संक्रमण-लागत में वृद्धि।

6.4 छूटों का पुनर्गठन- लाभ व वितरणिक प्रभाव (Distributional Impact)

छूटों व कटौतियों को सीमित करने से कर-दर नीचे रखा जा सकता है परन्तु सामाजिक सुरक्षा-उन्मुख छूटों (जैसे सीनियर सिटीजन्स, निर्धन परिवारों हेतु) को संरक्षित रखना आवश्यक है ताकि वितरणिक न्याय बना रहे। यदि केवल उच्च आय वर्ग की कटौतियाँ हटायी गयीं तो कर-निष्पादन में समता बनेगी पर राजस्व पर अल्पकालिक दबाव आ सकता है। इसलिए फेज-इन रणनीति की आवश्यकता है।

6.5 MSME व छोटे करदाताओं पर प्रभाव

सरलीकरण से छोटे करदाताओं के लिये अनुपालन-भार कम होगा- presumptive regime का विस्तार, सरल रिटर्न और न्यूनतम दस्तावेजीकरण उन्हें औपचारिक अर्थव्यवस्था में लाने में सहायक होगा। किन्तु डिजिटल पोर्टल जटिलता और समय-समेतिक लागतें अस्थायी रूप से समस्या पैदा कर सकती हैं।

6.6 निवेश व राजस्व पर संभावित प्रभाव

सरलीकृत, स्थिर और पारदर्शी कर नियम विदेशी तथा घरेलू निवेश को आकर्षित कर सकते हैं। कर-बोझ में स्पष्टता से MNCs के निर्णय-प्रक्रियाओं में सकारात्मक बदलाव आयेगा। परन्तु छूटों में कटौती से अल्पकाल में राजस्व-वृद्धि सीमित हो सकती है; इसलिए संक्रमण अवधि में राजकोषीय प्रबंधन व कैश-फ्लो समन्वय जरूरी है।

6.7 विवाद-निवारण सुधार और न्यायिक बोझ में कमी

दीर्घकालिक विवादों का त्वरित समाधान कर प्रणाली की विश्वसनीयता बढ़ाता है। यदि ट्रिब्यूनलों की प्रक्रिया समय-बद्ध और डिजिटल हो, तो कर विवाद में कमी सम्भव है जिससे प्रशासनिक बोझ घटेगा तथा करदाताओं के समय व संसाधन बचत होगी।

6.8 डिजिटल अर्थव्यवस्था व गिग-वर्कर्स

नया अधिनियम स्पष्ट करता है कि गिग-वर्कर्स और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर आय अर्जन पर किस तरह कर लगेगा- परन्तु अनुपालन-सहायता एवं न्यून दर विकल्प उपलब्ध कराना अनिवार्य होगा ताकि करदाताओं का उत्पीड़न न हो।

7. विश्लेषणात्मक निष्कर्ष (Findings)

1. सरलीकरण सिद्धान्ततः लाभप्रद है। यह अधिनियम कर प्रणाली को सरल, अधिक पारदर्शी और पूर्वानुमेय बनाता है- जो स्वैच्छिक अनुपालन को प्रोत्साहित करेगा।
2. डिजिटल प्रशासन की उपयोगिता स्पष्ट है: फेसलेस असेसमेंट व AI-आधारित निगरानी से कर चोरी में कमी और प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि संभव है, पर डेटा सुरक्षा व डिजिटल समावेशन प्राथमिकता होनी चाहिए।
3. छोटी इकाइयों के लिये राहत मिलती है: presumptive व सरल रिटर्न विकल्प छोटे व्यवसायों को औपचारिक अर्थव्यवस्था से जोड़ने में सहायक होंगे-पर संक्रमण सहायता (training, easy portals) आवश्यक है।
4. राजस्व पर अल्पकालिक दबाव सम्भव: छूटों में कटौती और दर-समायोजन के कारण प्रारम्भिक वर्षों में राजस्व रीडिजाइन की आवश्यकता होगी, पर मध्यम एवं दीर्घावधि में कर-आधार विस्तार राजस्व वृद्धि का कारण बन सकता है।
5. वितरणिक प्रभाव सावधानी माँगते हैं: छूटों के संयोजन से सामाजिक सुरक्षा पर नकारात्मक प्रभाव न हो इसके लिए लक्षित रिलीफ व ट्रांजिशन सहायता अनिवार्य हैं।
6. विवाद-निवारण सुधार सकारात्मक: न्यायिक व प्रशासनिक बोझ घटाने में यह अत्यन्त उपयोगी होगा।

8. प्रस्तावित नीतिगत सुझाव (Policy Recommendations)

1. फेज-इन रणनीति अपनाई जायें। छूटों/कटौतियों को तत्काल खारिज करने के स्थान पर चरणबद्ध रूप से समाप्त करें ताकि राजस्व-वित्तीय सद्द्वयवस्था बनी रहे।
2. डिजिटल समावेशन पर जोर: ग्रामीण एवं छोटे करदाताओं के लिये प्रशिक्षण, सरल मोबाइल इंटरफेस, स्थानीय भाषा समर्थन और भुगतान विकल्प सुनिश्चित किये जायें।
3. डेटा-गोपनीयता व साइबर-सुरक्षा फ्रेमवर्क सुदृढ़ करें: AI/Big Data उपयोग के साथ कठोर गोपनीयता मानक लागू किये जायें।
4. विवाद निवारण को तीव्र बनायें: ADR, ऑनलाइन ट्रिब्यूनल और समय-बद्ध अपील पद्धति को कानूनी मजबूती दी जाये।
5. राज्य व केंद्र समन्वय: राज्यों के राजस्व पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को दूर करने के लिए क्षतिपूर्ति निधि एवं वित्त आयोग/निति आयोग के साथ समन्वित नीति-रचना बनायी जानी चाहिए।
6. निगरानी व प्रदर्शन संकेतक: प्रभाव मापन के लिये KPI, समय-समय पर पब्लिक रिपोर्टिंग और स्वतंत्र सर्वेक्षण का प्रावधान किया जाना चाहिए।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

आयकर अधिनियम 2025, कर सरलीकरण के उद्देश्य से उठाया गया एक महत्वाकांक्षी कदम है। यह अधिनियम कर-नियमों को सरल बनाकर, डिजिटल प्रशासन को बढ़ावा देकर और विवाद-निवारण तंत्र को मजबूत करके भारत की कर व्यवस्था को आधुनिक बना सकता है। वास्तविक लाभ तभी सुनिश्चित होंगे जब सरकार प्रभावी क्रियान्वयन, संक्रमण-समर्थन और सामाजिक-सुरक्षा समायोजन सुनिश्चित करे। अतः नीति-निर्माताओं को तकनीकी, प्रशासनिक और सामाजिक आयामों का समन्वित प्रबंधन करते हुए इन सुधार को लागू करना होगा ताकि कर प्रणाली अधिक निष्पक्ष, पारदर्शी और वृद्धि-उन्मुख बन सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची/Bibliography-

1. Central Board of Direct Taxes (CBDT) - Annual Reports (2020-2024).
2. Ministry of Finance, Government of India - Economic Survey (2022-23; 2023-24).
3. Kelkar Committee / Expert Group Reports on Direct Taxes (various years).
4. OECD - Tax Policy Studies (2020-2023).
5. World Bank - Reports on Tax Administration and Digitalization (2021-2023).
6. International Monetary Fund (IMF) - Fiscal Monitor & Tax Policy notes.
7. NITI Aayog - Policy Papers on Tax Reform and Ease of Doing Business.
8. Selected articles from Economic & Political Weekly, Indian Journal of Economics, and working papers from IIMs on tax simplification.
9. Media & professional commentaries by tax practitioners and CA/Tax consultants (2024-25).

ड्रोन के आविष्कार और प्रकार का अध्ययन

डॉ० विजय कुमार

शोध-निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (३०१००)

ममता कन्नौजिया

शोध-छात्रा, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (३०१००)

प्रस्तावना

ड्रोन, या मानवरहित हवाई वाहन (यूएवी), आधुनिक सैन्य, वाणिज्यिक और मनोरंजक गतिविधियों का अभिन्न अंग बन गए हैं।

लेकिन ड्रोन तकनीक का सफर, इसके आरंभ से लेकर आज हम जिस परिष्कृत तकनीक को देखते हैं, तक, दो शताब्दियों से भी ज्यादा समय तक फैला हुआ है, और यूएवी का पहला रिकॉर्डेड उपयोग 20वीं सदी में हुआ था।

यह शोध पत्र यूएवी के विकास का अन्वेषण करेगी, जिसमें प्रमुख मील के पथरों और शिखरों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा, जिसमें अब्राहम करीम का अग्रणी कार्य भी शामिल है, जिन्हें अक्सर “यूएवी तकनीक का जनक” माना जाता है।

ड्रोन का आविष्कार किसने और कब किया?

पहले ड्रोन के आविष्कार का श्रेय अक्सर करीम को दिया जाता है, जो एक एयरोस्पेस इंजीनियर और नवप्रवर्तक थे, जिनके 1970 और 1980 के दशक के काम ने आधुनिक यूएवी की नींव रखी। बगदाद में जन्मे और इजराइल में पले-बढ़े करीम को बचपन से ही विमानन और इंजीनियरिंग का शौक था।

उनकी सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि 1970 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका जाने के बाद आई, जहाँ उन्होंने लीडिंग सिस्टम्स, इंक. और कारम एयरक्राफ्ट जैसी कंपनियाँ स्थापित कीं। उन्होंने एक मानवरहित हवाई वाहन विकसित करना शुरू किया और अल्बार्टोस नामक एक ड्रोन प्रोटोटाइप बनाया।

हालाँकि यह प्रोटोटाइप आज के हल्के ड्रोनों से बिल्कुल अलग था!कृइसका वजन 200 पाउंड था!कृइस तकनीक ने अमेरिकी सेना और अमेरिकी रक्षा उन्नत अनुसंधान परियोजना एजेंसी (DARPA) का ध्यान आकर्षित किया।

DARPA के साथ अनुबंध के तहत, उन्होंने अल्बार्टोस तकनीक को विकसित करने में मदद की, जो अंततः प्रीडेटर ड्रोन बन गया, जो सैन्य इतिहास के सबसे सफल यूएवी में से एक है।

प्रीडेटर टोही और युद्ध अभियानों में एक महत्वपूर्ण संपत्ति बन गया, जिसने आधुनिक युद्ध में यूएवी की क्षमता को प्रदर्शित किया और आधुनिक ड्रोन युद्ध और निगरानी को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।

कारम के नवाचार प्रीडेटर तक ही सीमित नहीं रहे। ड्रोन तकनीक में उनके योगदान ने सैन्य और नागरिक दोनों अनुप्रयोगों में, अधिक उन्नत ड्रोनों के विकास को प्रभावित करना जारी रखा।

उनके काम ने आज हम जिन ड्रोनों को देखते हैं, उनके प्रसार की नींव रखी, जिससे वे मानवरहित हवाई वाहनों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए।

ड्रोन का आविष्कार कैसे हुआ?

हालाँकि ड्रोन उद्योग को आकार देने में करीम का काम महत्वपूर्ण था, ड्रोन का आविष्कार किसी एक घटना या व्यक्ति का परिणाम नहीं था, बल्कि सदियों से चली आ रही तकनीकी प्रगति और नवाचारों की एक श्रृंखला का परिणाम था।

पायलट रहित विमान बनाने का विचार 19वीं शताब्दी का है, जब आविष्कारकों और इंजीनियरों ने रिमोट-नियंत्रित और मानवरहित वाहनों के साथ प्रयोग करना शुरू किया।

मानवरहित विमान बनाने के शुरुआती प्रयासों में से एक 1783 में हुआ था, जब फ्रांसीसी आविष्कारक जोसेफ-मिशेल और जैक्स-एंटोने मोंटगोल्फियर ने पहला मानवरहित गर्म हवा का गुब्बारा लॉन्च किया था।

हालाँकि आधुनिक अर्थों में ड्रोन नहीं, इस घटना ने मानवरहित उड़ान के मानवता के अन्वेषण की शुरुआत को चिह्नित किया।

इसके बाद के वर्षों में, आविष्कारकों ने विमानन की सीमाओं को आगे बढ़ाया, जिसके परिणामस्वरूप 1898 में पहला रेडियो-नियंत्रित विमान विकसित हुआ।

निकोला टेस्ला द्वारा निर्मित इस नवाचार ने प्रत्यक्ष मानवीय हस्तक्षेप के बिना वाहनों को रिमोट कंट्रोल करना संभव बनाया, एक ऐसी अवधारणा जो आगे चलकर ड्रोन तकनीक की आधारशिला बन गई।³

ड्रोन इतिहास समयरेखा

ड्रोन का इतिहास समय के साथ एक आकर्षक यात्रा है, जो महत्वपूर्ण मील के पथर और तकनीकी सफलताओं से चिह्नित है। नीचे एक समयरेखा दी गई है जो ड्रोन तकनीक के विकास में प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालती है, जिसकी शुरुआत मानवरहित हवाई गुब्बारों, मॉडल विमानों से होती है, और अंततः आज हम जिसे आधुनिक ड्रोन के रूप में जानते हैं, उसका विकास हुआ:

1783 - पहला मानवरहित विमान

फ्रांसीसी आविष्कारक जोसेफ-मिशेल और जैक्स-एटिने मोंटगोल्फियर ने पहला मानवरहित गर्म हवा का गुब्बारा लॉन्च किया। ऊन और पुआल जलाने वाले स्टोव से ईंधन प्राप्त उनके लिनन और रेशम के गुब्बारे ने लगभग 6,000 फीट की ऊँचाई तक उड़ान भरी और 10 मिनट में एक मील से अधिक की यात्रा की। इस घटना ने मानवरहित उड़ान के क्षेत्र में मानवता के अन्वेषण की शुरुआत की और इतिहास में पहली बार मानव ने सशस्त्र ड्रोन का इस्तेमाल किया।

1849 - यूएवी का पहला सैन्य प्रयोग

ड्रोन के सबसे पहले दर्ज सैन्य प्रयोग में, ऑस्ट्रियाई सेना ने इटली के वेनिस पर हमला करने के लिए विस्फोटकों से लदे मानवरहित गुब्बारों का इस्तेमाल किया था। हालाँकि, हवा के रुख बदलने और ज्यादातर अपने लक्ष्य से चूक जाने के कारण आग लगाने वाले गुब्बारे काफी हद तक अप्रभावी साबित हुए।

1898 - पहला रेडियो-नियंत्रित यान

सर्बियाई-अमेरिकी आविष्कारक और इंजीनियर निकोला टेस्ला ने रेडियो-नियंत्रित नाव के अपने आविष्कार के साथ पहले रेडियो-नियंत्रित यान का प्रदर्शन किया। यह नाव केवल लगभग तीन फीट लंबी थी और जब यह यान पानी पर था, तो इसने रिमोट-नियंत्रित वाहनों की क्षमता का प्रदर्शन किया। इस नवाचार ने रिमोट-नियंत्रित विमानों के विकास की नींव रखी।

1917 - पहला हवाई टॉरपीडो

1917 में, डेटन, ओहायो निवासी अमेरिकी चार्ल्स एफ. केटरिंग ने अमेरिकी सेना के लिए पहला मानवरहित हवाई टॉरपीडो बनाया। इसे केटरिंग एरियल टॉरपीडो या “बग” के नाम से जाना जाता था और इसकी अधिकतम गति लगभग 50 मील प्रति घंटा और अधिकतम सीमा लगभग 75 मील थी। परीक्षण उड़ानों के परिणाम मिश्रित रहे और बग का कभी भी युद्ध में उपयोग नहीं किया गया। 50 से भी कम बग का उत्पादन किया गया और इसका पूर्ण आकार का पुनर्निर्माण डेटन, ओहायो स्थित संयुक्त राज्य वायु सेना के राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित है।

1935 - पहला आधुनिक ड्रोन

ब्रिटिश रॉयल नेवी ने डे हैविलैंड DH82B “क्वीन बी” पेश किया, जो लक्ष्य अभ्यास के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक दूर से नियंत्रित विमान था। DH82B के 412 मॉडल बनाए गए। क्वीन बी को पहले आधुनिक ड्रोन में से एक माना जाता है और इसने यूनाइटेड किंगडम में ड्रोन प्रौद्योगिकी कार्यक्रम की शुरुआत को चिह्नित किया।

माना जाता है कि “मधुमक्खी” के रूपक ने यूएवी का वर्णन करने के लिए “ड्रोन” शब्द के प्रयोग में योगदान दिया। हालाँकि, यह शब्द पूरे इतिहास में लोकप्रिय रहा है।

1936 - अमेरिकी ड्रोन कार्यक्रम की शुरुआत

अमेरिका ने 1936 में अपना ड्रोन कार्यक्रम शुरू किया, जिसमें “रेडियोप्लेन” विकसित किया गया, जिसे कर्टिस N2C-2 भी कहा जाता है। यह एक रिमोट-नियंत्रित प्रोपेलर विमान था जिसका उपयोग द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सेना में विमान-रोधी तोपचियों के प्रशिक्षण के लिए किया जाता था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 9,400 से अधिक रेडियोप्लेन OI-3 का उत्पादन किया गया था। युद्ध के बाद, एक अद्यतन रेडियोप्लेन BT-1 मॉडल के 60,000 से अधिक का उत्पादन किया गया। रेडियोप्लेन कार्यक्रम ने मानव रहित हवाई वाहनों के क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रवेश को चिह्नित किया।⁴

1943 - पहला प्रथम-व्यक्ति दृश्य विमान

1943 में, अमेरिकी वायु सेना और बोइंग ने BiQ-7 विकसित करने के लिए सहयोग किया, जो प्रथम-व्यक्ति दृश्य (FPV) उड़ान प्रणाली का एक प्रारंभिक प्रयास था। इस अपरिष्कृत एफपीवी तकनीक को संशोधित बम वर्षकों में एकीकृत किया गया था, जिनमें से अनावश्यक उपकरण हटा दिए गए थे और विस्फोटकों से भर दिए गए थे। एक मानव पायलट विमान को लक्ष्य की ओर मैन्युअल रूप से उड़ाता था, और जैसे ही वह दृष्टि में आता, वह ऑटोपायलट को सक्रिय कर देता और बाहर निकल जाता। इसके बाद बीक्यू-7 अपने लक्ष्य की ओर स्वायत्त रूप से आगे बढ़ता रहता।

हालाँकि, बीक्यू-7 युद्ध में काफी हद तक अप्रभावी साबित हुआ, और कई पायलट जो बाहर निकले, या तो मारे गए या पकड़े गए। अपनी चुनौतियों के बावजूद, एफपीवी उड़ान के इस शुरुआती प्रयास ने दूर से नियंत्रित हवाई प्रणालियों की क्षमता और महत्वपूर्ण चुनौतियों, दोनों को उजागर किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, जर्मन सेना ने “वी-1 फ्लाईंग बम” भी विकसित किया, जो एक प्रारंभिक क्रूज मिसाइल थी जिसमें प्रथम-व्यक्ति दृश्य (एफपीवी) प्रणाली थी। इस तकनीक ने ऑपरेटरों को लाइव वीडियो फीड का उपयोग करके मिसाइल को उसके लक्ष्य तक निर्देशित करने की अनुमति दी।

1964 - युद्ध में ड्रोन की पहली बड़े पैमाने पर सैन्य तैनाती

अमेरिका ने वियतनाम युद्ध के दौरान पहली बार बड़े पैमाने पर टोही यूएवी तैनात किए। उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए मॉडलों को रयान मॉडल 147 या लाइटनिंग बग्स कहा जाता था। 3,400 से ज्यादा ड्रोन तैनात किए गए थे, जिनमें से प्रत्येक ने औसतन तीन मिशन पूरे किए और फिर खो गए। इस दौरान, सेना ने लड़ाकू जाल, मिसाइल प्रक्षेपण और वस्तुओं के वितरण जैसे अतिरिक्त कार्यों के लिए भी ड्रोन का इस्तेमाल शुरू कर दिया।

1986 - RiQ2 पायनियर ड्रोन

संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेना और मरीन कॉर्प्स ने RiQ2 पायनियर ड्रोन पेश किया, जो खाड़ी युद्ध के दौरान टोही और निगरानी के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक यूएवी था। पायनियर आधुनिक युद्ध में सबसे पहले व्यापक रूप से इस्तेमाल किए जाने वाले ड्रोन में से एक बन गया।

1996 - प्रीडेटर ड्रोन

अब्राहम करीम द्वारा विकसित ड्रोन तकनीक पर आधारित, जनरल एटॉमिक्स ने 1996 में MiQ-1 प्रीडेटर जारी किया। प्रीडेटर सबसे प्रतिष्ठित सैन्य ड्रोन में से एक बन गया है, जो टोही और लक्षित हमलों में अपनी भूमिका के लिए जाना जाता है।

2006 - अमेरिकी नागरिक हवाई क्षेत्र में यूएवी की अनुमति

2006 में, संयुक्त राज्य अमेरिका के संघीय उड्डयन प्रशासन (FAA) ने विशिष्ट नियमों के तहत नागरिक हवाई क्षेत्र में यूएवी के उपयोग की अनुमति देना शुरू किया। यह संयुक्त राज्य अमेरिका में ड्रोन के व्यापक उपयोग की शुरुआत का प्रतीक है।

2013 - डीजेआई फैंटम ड्रोन

2013 में, एक चीनी प्रौद्योगिकी कंपनी, डीजेआई ने फैंटम ड्रोन लॉन्च किया, जो एक बेहद लोकप्रिय उपभोक्ता-अनुकूल यूएवी था जिसने ड्रोन बाजार में क्रांति ला दी। फैंटम का उपयोग में आसानी, किफायती मूल्य और उन्नत सुविधाएँ इसे शौकिया और पेशेवर दोनों तरह के लोगों के लिए एक लोकप्रिय विकल्प बनाती हैं। अब, ये ड्रोन और इसी तरह के उपभोक्ता मॉडल हर जगह देखे जा सकते हैं। क्यूआर कोडों से लेकर रियल एस्टेट लिस्टिंग और अन्य सभी चीजों के लिए उपयोग किए जाते हैं।

7 सामान्य प्रकार के ड्रोन

ड्रोन विभिन्न आकार और प्रकार के होते हैं, और प्रत्येक को विशिष्ट अनुप्रयोगों के लिए अलग-अलग विशेषताओं के साथ डिजाइन किया गया है। ड्रोन के कुछ सबसे आम प्रकार इस प्रकार हैं:

1. सैन्य ड्रोन: ये सबसे उन्नत और परिष्कृत ड्रोन हैं, जिनका उपयोग मुख्य रूप से टोही, निगरानी और युद्ध अभियानों के लिए किया जाता है। उदाहरणों में प्रीडेटर और आर्क्यू-4 ग्लोबल हॉक शामिल हैं।
2. उपभोक्ता ड्रोन: ये ड्रोन मनोरंजन, फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी के लिए डिजाइन किए गए हैं। डीजेआई फैंटम और माविक सीरीज, फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी जैसे कार्यों के लिए उपयोग किए जाने वाले उपभोक्ता ड्रोन के कुछ सबसे लोकप्रिय उदाहरण हैं।
3. वाणिज्यिक ड्रोन: इन ड्रोन का उपयोग कृषि, भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण और भवन निरीक्षण जैसे औद्योगिक अनुप्रयोगों के लिए किया जाता है। इनमें अक्सर विशिष्ट कार्यों के लिए उन्नत सेंसर और कैमरे लगे होते हैं।
4. कृषि ड्रोन: वाणिज्यिक ड्रोन का यह उपसमूह फसल निगरानी, सिंचाई और मृदा विश्लेषण जैसे कृषि कार्यों के लिए विशेष विशेषताओं के साथ डिजाइन किया गया है।
5. डिलीवरी ड्रोन: वाणिज्यिक ड्रोन का एक और सामान्य उपसमूह, अमेजन और गूगल जैसी कंपनियाँ ऐसे ड्रोन विकसित कर रही हैं जो सीधे ग्राहकों तक पैकेज पहुँचा सकें। ये ड्रोन दक्षता और सटीकता के लिए डिजाइन किए गए हैं और शहरों और आस-पड़ोस जैसे जटिल वातावरण में भी नेविगेट कर सकते हैं।
6. रेसिंग ड्रोन: ये छोटे, तेज गति वाले ड्रोन प्रतिस्पर्धी रेसिंग के लिए डिजाइन किए गए हैं। ये FPV सिस्टम से लैस हैं जो पायलटों को इन्हें सटीक रूप से नियंत्रित करने की अनुमति देते हैं।
7. खोज और बचाव ड्रोन: इन ड्रोन का उपयोग आपातकालीन स्थितियों में संकटग्रस्त लोगों, जैसे पैदल यात्रियों, स्कीयर और प्राकृतिक आपदा से बचे लोगों का पता लगाने और उनकी सहायता के लिए किया जाता है। खोज और बचाव ड्रोन अक्सर शरीर की गर्मी से ऊष्मा संकेतों का पता लगाने के लिए थर्मल इमेजिंग कैमरों और अन्य सेंसरों से लैस होते हैं।

ड्रोन का भविष्य

जैसे-जैसे ड्रोन तकनीक विकसित होती जा रही है, यूएवी का भविष्य भी आशाजनक दिख रहा है। ड्रोन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग के एकीकरण से उनकी क्षमताओं में वृद्धि होने की उम्मीद है, जिससे अधिक स्वायत्त संचालन और उन्नत निर्णय लेने की क्षमता संभव होगी।

ड्रोन तकनीक में सबसे रोमांचक विकासों में से एक शहरी हवाई गतिशीलता (यूएएम) की संभावना है। उबर और एयरबस जैसी कंपनियां यात्री परिवहन के लिए ड्रोन के उपयोग की संभावना तलाश रही हैं, जिससे शहरी परिवहन का एक नया तरीका तैयार हो रहा है जो यातायात की भीड़भाड़ को कम कर सकता है और यात्रा के समय को कम कर सकता है।

सैन्य क्षेत्र में, ड्रोन से राष्ट्रीय सुरक्षा और युद्ध में और भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की उम्मीद है, क्योंकि उनकी स्टील्थ तकनीक, सहनशक्ति और पेलोड क्षमता में प्रगति हो रही है।

जटिल कार्यों को पूरा करने के लिए एक साथ काम करने में सक्षम ड्रोन के “झुंड” का विकास भी क्षितिज पर है।

उपभोक्ता पक्ष में, बैटरी जीवन, कैमरा गुणवत्ता और उपयोग में आसानी में सुधार के साथ, ड्रोन अधिक सुलभ और किफायती होते जा रहे हैं। 5G तकनीक के उदय से ड्रोन और ऑपरेटरों के बीच रीयल-टाइम संचार में वृद्धि होने की उम्मीद है, जिससे अधिक सटीक नियंत्रण और डेटा ट्रांसमिशन संभव होगा।

ड्रोन के भविष्य को आकार देने में नियमन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

जैसे-जैसे नागरिक हवाई क्षेत्र में यूएवी का प्रचलन बढ़ रहा है, दुनिया भर की सरकारें सुरक्षा, गोपनीयता और संरक्षा सुनिश्चित करने वाले ढाँचे बनाने के लिए काम कर रही हैं। नवाचार और नियमन का संतुलन ड्रोन तकनीक की पूरी क्षमता को उजागर करने की कुंजी होगा।

मार्च 2021 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के एक रिपोर्ट में बताया गया कि 2020 में एक कारगु 2 ड्रोन ने लीबिया में मानवीय लक्ष्य पर हमला किया। यह संभवतः पहले मामले का संकेत है जब एक स्वायत्त हथियार-रोबोट ने इंसानों पर हमला किया।

तुर्की के बायरकटार टीबी-2 ड्रोन ने 2020 के नागोर्नो-करबाख युद्ध में अजरबैजान की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नासा भी अपने मिशनों में ड्रोन का इस्तेमाल करता है, जैसे इंजीन्यूटी हेलीकॉप्टर, जो 2021 से 2024 तक मंगल ग्रह पर काम कर रहा है।

ड्रैगनफ्लाई अंतरिक्ष यान विकासधीन है, जिसका उद्देश्य शनि के चंद्रमा टाइटन का अध्ययन करना है। यह 2027 में लॉन्च होगा और इसे शनि प्रणाली तक पहुँचने में सात अतिरिक्त वर्ष लग सकते हैं। छोटे यूएवी का विकास भी हो रहा है, जो बड़े क्षेत्रों का सर्वेक्षण करने में मदद करेंगे।⁶

संक्षेप में, ड्रोन का इतिहास मानवीय प्रतिभा और तकनीकी प्रगति की निरंतर खोज का प्रमाण है। गुब्बारों और रेडियो-नियंत्रित विमानों के शुरुआती दिनों से लेकर आज के परिष्कृत यूएवी तक, ड्रोन ने एक लंबा सफर तय किया है। भविष्य की ओर देखते हुए, यह स्पष्ट है कि ड्रोन हमारे जीवन में लगातार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहेंगे और हमारे आसपास की दुनिया के साथ हमारे व्यवहार को आकार देंगे। चाहे सैन्य, वाणिज्यिक या उपभोक्ता अनुप्रयोगों में, यूएवी की संभावनाएँ अपार हैं, और समाज पर उनका प्रभाव बढ़ता ही रहेगा।

संदर्भ

1. Mearsheimer, J. J. (2001). *The Tragedy of Great Power Politics*. W.W. Norton & Company.
2. Clark, Richard M.: *Uninhabited Combat Aerial Vehicles*, Air University Press: Maxwell Air Force Base, Alabama, 2000.
3. Biddle, S. (2004). *Military Power: Explaining Victory and Defeat in Modern Battle*. Princeton University Press.
4. Zoltán, Dudás; Ágoston, Restas; Sándor, Szabó; Károly, Domján; Pál, Dunai: *Human Factor Analysis in Unmanned Aerial Vehicle (UAV) Operations*, In: László, Náday; József, Padányi (szerk.) *Critical Infrastructure Protection Research: Results of the First Critical Infrastructure Protection Research Project in Hungary*, Zürich, Svájc: Springer International Publishing, (2016) pp. 47-58.
5. "Powering Solutions for Your Drone in 2024: New Fuels". *Commercial Uav News*.
6. Bailon-Ruiz, Rafael; Lacroix, Simon; Bit-Monnot, Arthur (2018). "Planning to Monitor Wildfires with a Fleet of UAVs". 2018 IEEE/RSJ International Conference on Intelligent Robots and Systems (IROS). IEEE. pp. 4729-4734. doi:10.1109/IROS.2018.8593859. ISBN 978-1-5386-8094-0.

स्कूली शिक्षा के विकास में खेलकूद, राष्ट्रीय सेवा योजना व सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्व

डॉ० कुलदीप

सहायक आचार्य, गुरु जंभेश्वर विश्वविद्यालय साइंस एंड टेक्नोलॉजी, हिसार

प्रस्तावना:

बालक के विकास में शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक दोनों प्रकार की गतिविधियों का समान महत्व है। सह-शैक्षणिक गतिविधि में विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ, खेलकूद, क्लब गतिविधियों, युवा सांसद, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय सेवा योजना, शिक्षा में कला, स्काउट एवं गाइड आदि शामिल हैं। प्रस्तुत लेख में सांस्कृतिक, राष्ट्रीय सेवा योजना व खेलकूद गतिविधियों का वर्णन किया गया है।

सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ:

शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक दोनों प्रकार की गतिविधियों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा की कोई भी प्रणाली जिसमें खेलकूद, राष्ट्रीय सेवा योजना व सांस्कृतिक गतिविधियों व अन्य सह-शैक्षणिक क्रिया को उचित स्थान प्राप्त नहीं होता तो अपूर्ण मानी जाती है। बालक के जिस पक्ष का विकास कक्षा कार्य में सम्भव नहीं होता है वह इन अतिरिक्त सह-शैक्षणिक गतिविधियों द्वारा बालकों में उनके गुणों यथा-अनुशासन, मर्यादा, समय, शिक्षकों के प्रति आदर की भावना आदि का विकास सम्भव है।

इतिहास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि जब शिक्षक शिक्षा का केन्द्र माना जाता था बालक के लिए खेलकूद, सांस्कृतिक गतिविधियों को कम महत्व दिया जाता हो। अब से कुछ वर्ष पूर्व की शिक्षा प्रणाली पर दृष्टि डालते हैं। तो स्पष्ट होता है कि तब भी बालकों को अध्ययन कार्य के अतिरिक्त खेलकूद, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय सेवा योजना के अवसर देना विद्यालय का दायित्व माना जाता है। वर्तमान समय में सह-शैक्षणिक गतिविधियों को अधिक से अधिक महत्व दिए जाने के प्रयास हो रहे हैं।

सांस्कृतिक गतिविधियाँ:-

सांस्कृतिक गतिविधियाँ पढ़ने और लिखने से पर कौशल विकसित करने का अवसर प्रदान करती है। वे छात्रों को नए कौशल हासिल करने में मदद करते हैं जिन्हें उनके जीवन में लागू किया जा सके:- जैसे नेतृत्व, टीमवर्क, सहयोग और समस्या-समाधान जो उन्हें स्कूली जीवन के लिए तैयार करते हैं।

सांस्कृतिक गतिविधियाँ क्यों महत्वपूर्ण हैं:-

सांस्कृतिक गतिविधियाँ छात्रों के समग्र विकास में योगदान देते हैं। भागीदारी के माध्यम से छात्रों में आत्मविश्वास, आत्म अभिव्यक्ति और मंच पद उपस्थिति विकसित होती है। वे अपने संचार कौशल, प्रस्तुति क्षमताओं को निखारते हैं और टीमों में काम करना सीखते हैं।

सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्व:-

1. शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार:-

सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने से पढ़ने गणित और ग्रेड में सुधार होता है। ये गतिविधियाँ छात्रों को उनके दिमाग को तरोताजा करने और मस्तिष्क के कार्य को बढ़ावा देने में मदद करती हैं।

2. आत्मविश्वास और आत्मसम्मान का निर्माण होता है।

प्रत्येक बालक के अपने कौशल व रुचियाँ होती हैं जब उन्हें यह पता लगाने का अवसर दिया जाता है कि वे किस चीज के प्रति जुनूनी हैं तो इससे उनका आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बढ़ता है।

3. प्रतिबद्धता की भावना बढ़ती है।

जब छात्र शैक्षणिक पाठ्यक्रम से परे गतिविधियों में भाग लेने हैं तो उन्हें अपने स्कूल के कार्य को इन सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ संतुलित करना चाहिए। इससे उन्हें अपनी जिम्मेदारियों को समझने और प्रतिबद्धता की भावना का विकसित करने में मदद मिलती है।

4. विभिन्न कौशल विकसित होते हैं:-

सांस्कृतिक गतिविधियां पढ़ने व लिखने के अलावा विभिन्न प्रकार के कौशल विकसित करने का अवसर प्रदान करती है। जैसे नेतृत्व, टीमवर्क, सहयोग और समस्या-समाधान जो उन्हें स्कूली जीवन के लिए तैयार करते हैं।

राष्ट्रीय सेवा योजना:-

राष्ट्रीय सेवा योजना भारत सरकार, युवा मामलों और खेल मंत्रालय की एक केन्द्रीय क्षेत्र को योजना है। जिसे औपचारिक रूप से 24 सितंबर 1969 को शुरू किया गया। यह ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के छात्रों और स्कूल के छात्र युवाओं को अवसर प्रदान करती है।

राष्ट्रीय सेवा योजना छात्र और छात्राओं को सृजनात्मक एवं रचनात्मक कार्यों के प्रति प्रेरित कर समाज सेवा का अवसर प्रदान करती है उनके व्यक्तित्व को निखारने एवं भविष्य में उन्हें कर्तव्यनिष्ठ संवेदनशील तथा उपयोगी नागरिक के रूप में संवारने का महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

राष्ट्रीय सेवा योजना के मुख्य उद्देश्य:-

1. स्वयंसेवकों में सामाजिक एवं नागरिक उत्तरदायित्व का विकास।
2. उस क्षेत्र की स्थानीय आबादी की समस्याओं को सुलझाने में अपने ज्ञान का उपयोग करे।
3. सामुदायिक भागीदारी को संगठित करने में कौशल हासिल करे।
4. स्वयंसेवकों में नेतृत्व गुणों और लोकतांत्रिक दृष्टिकोण को विकास।
5. आपातस्थितियों और प्राकृतिक आपदाओं के लिए स्वयंसेवकों में सहनशील का विकास करना।
6. स्वयंसेवकों द्वारा अखण्डता और राष्ट्रीय सद्भावना का अभ्यास।
7. जिस समुदाय में वे काम करते हैं उसकी आवश्यकताओं की पहचान करना और स्थानीय लोगों को अपने कार्य में शामिल करना।

खेलकूद गतिविधियां:-

खेल बालकों की स्वाभाविक किया है। भिन्न आयु वर्ग के बच्चे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते हैं। ये विभिन्न प्रकार के खेल बालकों के सम्पूर्ण विकास में सहायक होते हैं। खेल से बच्चों का शारीरिक विकास, सज्ञानात्मक विकास, सवेगात्मक विकास, सामाजिक विकास एवं नैतिक विकास को बढ़ावा मिलता है। खेल से बालकों की मनोवैज्ञानिक जरूरतें पूरी होती हैं तथा वह बालक को सामाजिक कौशलों के विकास का भी अवसर देता है।

पियाजे के अनुसार:-

खेलकूद बालकों की मानसिक क्षमताओं के विकास में एक बड़ी भूमिका निभाते हैं। पहले चरण में बालक संवेदन प्राप्त करने व कार्य संचालन करने का प्रयास करता है। दूसरे चरण में कल्पनाओं को रूप देने के लिए वस्तुओं को किमी के प्रतीक के रूप में उपयोग करने लगता है। अन्तिम चरण स्कूली शिक्षा में काल्पनिक भूमिकाओं के खेलों की तुलना में बालक नियमबद्ध खेल में सलग्न रहता है। खेलों से तार्किक क्षमता व स्कूल सम्बन्धी कौशलों को विकसित होने में मदद मिलती है।

वाईगोत्स्की के अनुसार:-

जटिल भूमिकाओं वाले खेलों में बालकों का अपने व्यवहार को संगठित करने का बेहतर व सुरक्षित अवसर मिलता है जो वास्तविक स्थितियों में नहीं मिलता। स्कूली स्थिति की तुलना में खेल बालकों के लिए एकाग्रता, स्मृति आदि उच्चतर स्तर पर काम करती है।

स्कूली शिक्षा में खेलों का महत्व:-

1. शारीरिक फिटनेस:-

आज की दुनिया में जहाँ बालक तेजी से निष्क्रिय होते जा रहे हैं, शारीरिक गतिविधि में शामिल होना अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। नियमित व्यायाम छात्रों को सक्रिय और स्वस्थ रहने में मदद कर सकता है और चिंता तथा अवसाद को नियंत्रित करने में मदद कर सकता है।

2. मानसिक स्वास्थ्य:-

नियमित शारीरिक गतिविधि तनाव और चिंता को कम करने, आत्म सम्मान को बढ़ाने और समग्र मनोदशा को बेहतर बनाने में मदद कर सकती है। खेलों में भाग लेने से छात्रों को लचीलापन और दृढ़ता विकसित करने में मदद मिल सकती है जो जीवन की चुनौतियों से निपटने के लिए आवश्यक गुण हैं।

3. सामाजिक कौशल:-

खेल और शिक्षा दोनों ही छात्रों को सामाजिक कौशल विकसित करने का एक अच्छा अवसर प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए टीम के खेलों में भाग लेने से छात्रों को एक काम करना, प्रभावी ढंग से संवाद करना और संघर्षों को हल करना सीखने में मदद मिल सकती है। ये आवश्यक कौशल जिन्हें स्कूल से लेकर कार्य स्थल तक जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू किया जा सकता है।

4. नेतृत्व कौशल:-

शिक्षा में खेलों को शामिल करने से न केवल शारीरिक फिटनेस का लाभ मिलता है बल्कि छात्रों के नेतृत्व कौशल विकसित करने के अवसर मिलते हैं। ये उनके लिए चुनौतियों, रोजगार संबंधी मुद्दों और जीवन में संघर्ष से निपटने में सक्षम होने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

5. शैक्षणिक प्रदर्शन:-

खेलकूद अकादमिक प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि जो छात्र खेलकूद और खेलों में भाग लेते हैं उनका अकादमिक प्रदर्शन बेहतर होता है क्योंकि वे अपने समय का बेहतर प्रबंध करने, ध्यान केंद्रित करने और प्रेरित रहने में सक्षम होते हैं।

निष्कर्ष:-

स्कूली शिक्षा के विकास में खेलकूद राष्ट्रीय सेवा योजना व सांस्कृतिक गतिविधियों को अपना ही महत्व है। इन गतिविधियों से बालकों में अनुशासन, संयम व शिक्षकों के प्रति आदर की भावना का विकास सम्भव है। इन गतिविधियों से बालकों में आत्मसम्मान और आत्म अभिव्यक्ति विकसित होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. पुर्गिस वी० आर० “भारत में नई शिक्षा” द सोसाइटी पब्लिकेशन (अंबाला कैट)
2. बघेला एच० एस० “शैक्षिक प्रशासन एवं विद्यालय संगठन” राजस्थान प्रकाशन जयपुर 2006
3. मिश्रा बी० एन० “अध्ययन भारतीय दृष्टि एन० सी० ई० आर० टी०” नई दिल्ली 1998
4. मुनीष राजा: शिक्षा और विकास के सामाजिक आयाम
5. मिलत एम० एल०: शिक्षा सिद्धान्त
6. सुशील कुमार शर्मा: शिक्षा के नये सरोकार प्रकाशन शिक्षा विभाग राजस्थान

बिहार में फसल विविधीकरण का महत्व और चुनौतियाँ: एक अवलोकन

देव नारायण महतो

शोध छात्र, अर्थशास्त्र, स्नातकोत्तर विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० नवल किशोर बैठा

एसोसिएट प्रोफेसर/प्राचार्य, एस. एन. एस. महाविद्यालय, मोतिहारी

सारांश

भारत जैसे देश में, अधिकांश किसानों के लिए कृषि आजीविका का साधन है, व्यवसाय नहीं। वर्तमान में, किसानों को खेती में कई जैव-सामाजिक-मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कम लागत पर आधारित व्यापक और विविध कृषि पद्धतियों का पारंपरिक दृष्टिकोण, जिसे 'फसल विविधीकरण' कहा जाता है, खेती को बचाने और जैव-सामाजिक-मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निपटने का एक वैकल्पिक तरीका हो सकता है।

फसल विविधीकरण एक फसल के क्षेत्रीय प्रभुत्व से अन्य फसलों की संख्या के क्षेत्रीय उत्पादन में बदलाव की प्रक्रिया है। यह किसी विशेष खेत पर कृषि उत्पादन में उपयोग की जाने वाली नई फसलों या फसल पद्धतियों की संख्या में वृद्धि करके किया जाता है, जबकि अतिरिक्त मूल्य और संबंधित विपणन अवसरों के साथ फसलों से विभिन्न रिटर्न पर विचार किया जाता है। फसल विविधीकरण एक ऐसी रणनीति है जिसमें घटते भूमि संसाधनों से विभिन्न फसलों की खेती करते हुए एक ही खेती योग्य भूमि पर उत्पादन बढ़ाया जाता है। अक्सर, इसका मतलब मौजूदा रोटेशन में अतिरिक्त फसलों को जोड़ना हो सकता है। फसल प्रजातियों की विविधता और फसल प्रजातियों के भीतर वैरिएटल और आनुवंशिक विविधता फसल विविधता बनाने वाले कारकों के कुछ उदाहरण हैं।

मूल शब्द: बिहार, कृषि, फसल विविधीकरण, मिट्टी की सेहत, उत्पादकता, महत्व, चुनौतियाँ

परिचय

फसल विविधीकरण का मतलब है जमीन के एक टुकड़े पर कई तरह की फसलें उगाना। यह कीटों, बीमारियों या प्रतिकूल मौसम के कारण फसल खराब होने के जोखिम को कम करने में मदद करता है। यह विशिष्ट पोषक तत्वों की कमी को कम करके मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार कर सकता है। फसल विविधीकरण बिक्री के लिए उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला की पेशकश करके कृषि आय को भी बढ़ा सकता है। यह एक अधिक संतुलित और टिकाऊ कृषि प्रणाली में योगदान देता है।

फसल विविधीकरण के उदाहरण

- एक किसान जो एक मौसम में गेहूं उगाता है और अगले मौसम में सोयाबीन उगाता है।
- एक ही बगीचे में टमाटर, मिर्च और खीरे जैसी सब्जियों का मिश्रण लगाना।
- बड़े पैमाने पर खेत में चक्रानुक्रम में मक्का और सोयाबीन को एक साथ उगाना।
- कुछ क्षेत्रों में बाढ़ग्रस्त खेतों में चावल और मछली दोनों की खेती की जा रही है।
- अंतरफसल, जहां मक्का और फलियां जैसी विभिन्न फसलों को एक ही खेत में निकट अंतराल पर उगाया जाता है।

फसल विविधीकरण के प्रकार

फसल विविधीकरण के विभिन्न प्रकार नीचे दी गई तालिका में दिए गए हैं।

फसल विविधीकरण के प्रकार	विविधीकरण की प्रकृति	संभावित लाभ
संरचनात्मक विविधता की प्रणाली	किसी विशेष क्षेत्र में फसलों को संरचनात्मक रूप से अधिक विविध बनाता है	कीटों का दमन
प्रजातीय विविधीकरण	एक ही प्रजाति की विभिन्न किस्मों के मिश्रण की खेती एक ही फसल में करना	रोगों का दमन, उत्पादन स्थिरता में वृद्धि
फसल चारों ओर खेती की विविधता प्रणाली	भोजन, दालें, तिलहन, सब्जियां आदि के साथ चारा घास उगाना।	कीटों का दमन, पशुपालन के अवसर
फसलों का चक्रिकरण	फसलों के चक्रीकरण के माध्यम से समय-समय पर विविधता (अनुक्रमिक फसल)	रोगों का दमन, उत्पादन स्थिरता में वृद्धि
स्थानिक विविधीकरण	फसलों की स्थानिक और लौकिक विविधता (एक ही खेत में दो या अधिक फसल प्रजातियों को उगाना)	कीटों, कीड़ों और बीमारियों का दमन, जलवायु परिवर्तन बफरिंग और उत्पादन में वृद्धि
एकीकृत विविधीकरण	फसलें और पेड़ एक साथ उगाना (स्थानिक और लौकिक विविधता)	कीटों का दमन और जलवायु परिवर्तन बफरिंग
विविध पारिस्थितिकी प्रणालियों के साथ फसलों और फसल प्रणालियों के मिश्रण के माध्यम से बड़े पैमाने पर विविध परिदृश्य विकसित करना	विविध पारिस्थितिकी प्रणालियों के साथ फसलों और फसल प्रणालियों के मिश्रण के माध्यम से बड़े पैमाने पर विविध परिदृश्य विकसित करना	कीटों का दमन और जलवायु परिवर्तन बफरिंग
सूक्ष्म-मैक्रोस्केल पर्यावरणीय विविधीकरण	मृदा और पर्यावरण के स्वास्थ्य को बनाए रखने के अलावा वार्षिक आय और रोजगार सृजन के लिए फसलों को अन्य कृषि घटकों के साथ एकीकृत करना।	कीटों, कीड़ों और बीमारियों का दमन, जलवायु परिवर्तन बफरिंग और उत्पादन, रोजगार के अवसर और आय में वृद्धि

फसल विविधीकरण का महत्व

फसल विविधीकरण मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों में सुधार करके भूमि-उपयोग दक्षता और फसल उत्पादन को बढ़ाने में योगदान देता है। फसल विविधीकरण से कीटों और खरपतवारों का फिर से उभरना, मिट्टी का क्षरण, पर्यावरण प्रदूषण, मिट्टी की लवणता, कृषि लाभ में कमी और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं को कम किया जा सकता है।⁴

इसके महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं में समझा जा सकता है-

जल संकट

धान, गेहूं और गन्ना उगाने वाले क्षेत्रों में 80% से अधिक जल संकट देखा जा रहा है, तथा हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और दिल्ली राज्यों में भूजल निष्कासन की दर 100% को पार कर गई है।

तिलहनों का अपर्याप्त उत्पादन

उपयोग की आवश्यकताओं के अनुरूप तिलहनों का उत्पादन अपर्याप्त होने के कारण आयात बिल बहुत अधिक हो जाता है। खाद्य तेल के आयात पर निर्भरता कम करना आवश्यक है।

जलवायु परिवर्तन

आपदाओं और मौसम संबंधी अनिश्चितताओं का एक क्रम, जैसे अनियमित वर्षा, पत्थर ओले, सूखा, बाढ़ आदि, जिनका सामना किसान खेती के दौरान करता है।

इनपुट लागत के अनुपात में उत्पादकता: पांच दशकों से अधिक समय से भारतीय कृषि को उत्पादकता बढ़ाने के लिए इनपुट लागत में वृद्धि से संबंधित गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

मिट्टी की सेहत में गिरावट

किसान उत्पादकता बढ़ाने के लिए लंबे समय से सरकार द्वारा प्रचारित हरित क्रांति फसल पद्धति, यानी चावल-गेहूँ-चावल का उपयोग कर रहे हैं। लंबे समय तक एक ही फसल पद्धति का पालन करने से मिट्टी से विशिष्ट पोषक तत्व समाप्त हो जाते हैं, जिससे उन पोषक तत्वों की कमी हो जाती है और मिट्टी में सूक्ष्म जीवों की आबादी कम हो जाती है।

संसाधनों के कुशल उपयोग में कमी

एकल-फसल पद्धति संसाधनों के कुशल उपयोग को भी कम करती है। इस प्रकार, विभिन्न फसलों और फसल पद्धतियों को अपनाकर एकल-फसल पद्धति को तोड़ना मिट्टी के स्वास्थ्य को बहाल करने और संसाधन-उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायता करता है।

अन्य मुद्दे

वर्तमान में मानव-वन्यजीव और/या मानव-फसल संघर्ष, वनों में आग, कार्बनिक पदार्थों की कमी, एकल कृषि, पौधों की बीमारी और संक्रमण, पलायन और युवाओं की कृषि के प्रति अनिच्छा समस्याओं का एक नया समूह है।

फसल विविधीकरण के लाभ

फसल विविधीकरण के विभिन्न लाभ नीचे सूचीबद्ध किए गए हैं। फसल विविधीकरण मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों में सुधार करके भूमि-उपयोग दक्षता और फसल उत्पादन को बढ़ाना संभव है।⁵

इसके अन्य लाभ निम्नलिखित हैं-

किसानों की आय में वृद्धि

फसलों का विविधीकरण कृषक समुदाय के आर्थिक विकास के लिए एक प्रमुख तनाव-मुक्ति विकल्प है।

प्राकृतिक जैव विविधता और उत्पादन में वृद्धि

यह प्राकृतिक जैव विविधता को भी बढ़ा सकता है, तथा इन तनावों पर प्रतिक्रिया करने के लिए कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की क्षमता को मजबूत कर सकता है।

कुल फसल विफलता का जोखिम कम करता है

यह जोखिम कम करता है क्योंकि विभिन्न फसलें जलवायु परिदृश्यों पर अलग-अलग प्रतिक्रिया करती हैं। जबकि ठंड एक फसल पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है, दूसरी फसल में उत्पादन बढ़ सकता है।

खाद्य सुरक्षा

फसलों का विविधीकरण खाद्य सुरक्षा के लिए बेहतर परिस्थितियाँ प्रदान करता है और किसानों को बाजार में बिक्री के लिए अधिशेष उत्पाद उगाने में सहायता करता है।

राष्ट्रीय और वैश्विक बाजारों तक पहुंच

यह किसानों को नए खाद्य उत्पादों और औषधीय प्रजातियों के साथ राष्ट्रीय और वैश्विक बाजारों तक पहुंचने में मदद कर सकता है।

मूल्य जोखिम का प्रबंधन

फसलों के विविधीकरण से मूल्य जोखिम को प्रबंधित करने में मदद मिल सकती है, क्योंकि इससे सभी उत्पादों को एक साथ कम बाजार मूल्य का सामना नहीं करना पड़ेगा, जिससे किसानों की लाभप्रदता बढ़ जाएगी।

संसाधनों का संरक्षण

फसल विविधीकरण अपनाने से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, चावल-गेहूँ की फसल प्रक्रिया में फलियों को शामिल करने से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर किया जा सकता है जो मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में मदद करता है।⁶

फसल विविधीकरण से संबंधित चुनौतियाँ

देश में कृषि योग्य भूमि का एक बड़ा हिस्सा पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर है। वहीं भूमि और जल संसाधनों के उप-इष्टतम और अति-उपयोग से पर्यावरण और कृषि के सतत अस्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पशुपालन या खेती, जीवाश्म ईंधन के बाद ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन में दूसरा सबसे बड़ा योगदानकर्ता है और वनों की कटाई, जल और वायु प्रदूषण तथा जैव विविधता की हानि का एक प्रमुख कारण है।⁷

- उन्नत किस्म के बीजों और पौधों की पर्याप्त आपूर्ति की आवश्यकता।
- भूमि के विखंडन से खेती का आधुनिकीकरण और मशीनीकरण अधिक कठिन हो जाता है।

- ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क, बिजली आपूर्ति, परिवहन, संचार आदि जैसी बुनियादी सुविधाएं बेहतर हो सकती हैं।
- फसल के बाद शीघ्र नष्ट होने वाले कृषि उत्पादों के प्रबंधन के लिए फसल-उपरांत प्रौद्योगिकियों और बुनियादी ढांचे की आवश्यकता।
- कृषि आधारित उद्योग कमजोर होने के कारण अनुसंधान, विस्तार और किसानों के बीच संबंध कमजोर हैं।
- किसानों में बड़े पैमाने पर अपर्याप्त कुशल मानव संसाधन और निरक्षरता।
- अधिकांश फसलों को अनेक प्रकार के रोग और कीट प्रभावित करते हैं।
- बागवानी फसलों के लिए खराब डेटाबेस का अस्तित्व।
- पिछले कुछ वर्षों में कृषि क्षेत्र में निवेश में कमी आई है।

फसल विविधीकरण के लिए प्रमुख रणनीतियाँ

फसल विविधीकरण के लिए प्रमुख रणनीतियों में शामिल हैं:

- फसल चक्र: किसान एक ही भूमि पर एक नियोजित क्रम में फसलें उगाते हैं। इससे कीट और रोग चक्र को तोड़ने में मदद मिलती है और पोषक तत्वों की मांग में बदलाव करके मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार होता है।
- अंतरफसल: एक ही खेत में विभिन्न फसलों को एक साथ बोने से भूमि का उपयोग अधिकतम हो सकता है, संसाधन दक्षता में सुधार हो सकता है, तथा कीटों की संवेदनशीलता कम हो सकती है।
- आवरण फसलें: ऑफ-सीजन के दौरान क्लोवर या राई जैसी आवरण फसलें लगाने से मृदा क्षरण को रोका जा सकता है, खरपतवारों को दबाया जा सकता है, तथा मृदा की उर्वरता को बढ़ाया जा सकता है।
- बहु-कृषि: एक साथ कई फसलें उगाने से, प्रायः पूरक विकास पैटर्न या पोषण संबंधी आवश्यकताओं के साथ, समग्र उपज में वृद्धि हो सकती है और जोखिम कम हो सकता है।
- कृषि वानिकी: एक ही भूमि पर पेड़, झाड़ियाँ और फसलें उगाने से कई लाभ मिलते हैं, जिनमें आय के स्रोतों में विविधता और पर्यावरणीय स्थिरता में सुधार शामिल है।
- फसल किस्म का चयन: किसान एक ही फसल प्रजाति की विभिन्न किस्मों का चयन कर सकते हैं जो विभिन्न परिस्थितियों या बाजार की मांग के अनुकूल हों।
- जैविक खेती पद्धतियाँ: जैविक खेती अक्सर विविध फसल चक्रों, आवरण फसलों और कम रासायनिक इनपुट के उपयोग के माध्यम से फसल विविधीकरण को प्रोत्साहित करती है।
- बाजार विश्लेषण: बाजार की मांग के आधार पर फसलों में विविधता लाने से किसानों को विशिष्ट बाजारों तक पहुंचने और मुनाफा बढ़ाने में मदद मिल सकती है।
- जलवायु-लचीली फसलें: बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल फसल किस्मों का चयन करने से जोखिम कम हो सकता है और लचीलापन बढ़ सकता है।
- मूल्य-संवर्धित उत्पाद: फसलों को जैम या जूस जैसे मूल्य-संवर्धित उत्पादों में संसाधित करने से किसानों के लिए आय के स्रोतों में विविधता आ सकती है।

फसल विविधीकरण: कृषि वानिकी और इसकी भूमिका

कृषि वानिकी एक आदिम और आदिवासी कृषि है जो देशी तकनीकी ज्ञान से प्रेरित है। यह एक स्थानिक और अस्थायी भूमि-उपयोग व्यवस्था है जिसमें पेड़, फसलें और पशुधन शामिल हैं और यह जैविक और अजैविक घटकों की पारिस्थितिक और आर्थिक अंतःक्रियाओं को संतुलित करता है। यह उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए पेड़ों और फसलों के बीच पूरकता का उपयोग करता है।⁸

फसल विविधीकरण के लिए सरकारी नीतियां और कार्यक्रम

भारत सरकार ने कृषि के समग्र विकास के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं, खास तौर पर फसल विविधीकरण के लिए।⁹ इनमें से कुछ पहलों की सूची नीचे दी गई है।

- भारत के पूर्वोत्तर भागों में बागवानी के एकीकृत विकास के लिए प्रौद्योगिकी मिशन की शुरुआत: कार्यक्रम का लक्ष्य अनुसंधान, उत्पादन, विस्तार, कटाई के बाद प्रबंधन, प्रसंस्करण, विपणन और निर्यात के बीच मजबूत संबंध स्थापित करके लक्षित क्षेत्र में कृषि के विस्तार को बढ़ावा देना है।
- राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना का कार्यान्वयन: इस योजना में खाद्यान्न, तिलहन और वार्षिक वाणिज्यिक तथा बागवानी फसलें शामिल हैं। छोटे और सीमांत किसानों को 50% सब्सिडी दी जाती है।
- कपास पर प्रौद्योगिकी मिशन को लागू करना: प्रौद्योगिकी मिशन में प्रौद्योगिकी उत्पादन, उत्पाद समर्थन और विस्तार पर स्वतंत्र लघु मिशन होंगे।
- वाटरशेड विकास निधि की स्थापना: वर्षा सिंचित भूमि को उन्नत करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर वाटरशेड विकास निधि की स्थापना की गई है।
- कृषि विपणन लचीलापन: उचित गुणवत्ता नियंत्रण और मानकीकरण प्रदान करके, घरेलू और विदेशी विपणन के लिए एक व्यापक, प्रभावी और ग्रहणशील विपणन प्रणाली के निर्माण पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

- बीज फसल बीमा पायलट कार्यक्रम (पीएसएससीआई): बीज उत्पादन से संबंधित जोखिम कारकों को दूर करने के लिए बीज फसलों के लिए एक बीमा कार्यक्रम शुरू किया गया है।

आगे की राह

अंतर-फसल, बहु-फसल और एकीकृत फसल: अंतर-फसल और पूर्ववर्ती या उत्तराधिकारी फसलों के रूप में नई फसलों को जोड़ने, फसल की संख्या में परिवर्तन (बहु-फसल), फसल प्रणाली को संशोधित करने और बदलती कृषि प्रथाओं के साथ एक नई मुख्यधारा की फसल पद्धति को अपनाने के माध्यम से फसलों और फसल के पैटर्न को बदलने की तत्काल आवश्यकता है।¹⁰

कृषि अनुसंधान के लिए वित्तपोषण

कृषि सब्सिडी के बजाय कृषि अनुसंधान या अध्ययन के लिए वित्तपोषण बढ़ाया जाना चाहिए।

बागवानी को प्राथमिकता देना

सिंचाई, निवेश, ऋण और बाजार से संबंधित मुख्य मुद्दों पर ध्यान देकर तिलहन, दलहन और बागवानी की ओर फसल विविधीकरण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

राज्य सरकारों की ओर से समन्वित कार्रवाई

हालांकि सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य के उपयोग को अपनाया है, लेकिन राज्य सरकारों की ओर से भी समन्वित कार्रवाई की आवश्यकता है, जिससे उच्च मूल्य वाली और कम पानी की खपत वाली फसलों की ओर रुख करने में सुविधा हो, ताकि किसानों की आय को निरंतर दोगुना करने के उद्देश्य को पूरा किया जा सके।

वृक्ष विविधता

कृषि भूमि पर वृक्षों की भूमिका, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से, फसल प्रणाली की मजबूती के साथ-साथ प्रतिकूल बाह्य प्रभावों के प्रति अवरोध को भी दर्शाती है।

नीतियों की समीक्षा

विभिन्न क्षेत्रों की सापेक्ष लाभप्रदता को प्रभावित करने वाली वृहद नीतियों का कठोर मूल्यांकन और समायोजन, तथा परिणामस्वरूप, विविधीकरण की प्रकृति और गति को प्रभावित करना।

कृषि बाजारों पर बाध्यकारी बाधाओं की पहचान करना

2006 में एपीएमसी अधिनियम के निरस्त होने के बावजूद, नए बाजारों के निर्माण और मौजूदा बाजारों में सुविधाओं को सुदृढ़ करने के लिए निजी निवेश नहीं हुआ, जिसके परिणामस्वरूप बाजार घनत्व कम रहा। इसके अलावा, अनाज की खरीद में सरकारी एजेंसियों की भागीदारी और खरीद का पैमाना भी कम बना हुआ है। इस प्रकार, किसान व्यापारियों की दया पर निर्भर हैं जो किसानों से खरीदे गए कृषि उत्पादों के लिए बेईमानी से कम दाम तय करते हैं। अपर्याप्त बाजार सुविधाएं और संस्थागत व्यवस्थाएं कम कीमत प्राप्ति और कीमतों में अस्थिरता के लिए जिम्मेदार हैं।¹¹

बिहार में खाद्यान्न की खरीद के संबंध में, प्राथमिक कृषि सहकारी समिति (पीएसीएस) को किसानों से सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) पर अनाज, विशेष रूप से गेहूं, खरीदने का कार्य सौंपा गया है। किसानों से हुई बातचीत के आधार पर जमीनी स्तर पर मिले साक्ष्य बताते हैं कि खरीद प्रक्रिया एक निश्चित मात्रा और समय तक ही सीमित है। हालांकि, इन प्रतिबंधों को अत्यधिक मनमाना माना जाता है। इसके अलावा, पीएसीएस उस समय गेहूं की खरीद नहीं करती जब उसे करनी चाहिए, क्योंकि वास्तव में बाजार में गेहूं की अधिकता होती है, जिसके परिणामस्वरूप किसानों को कम दाम मिलते हैं। दुर्भाग्य से, पीएसीएस में भी किसानों को एमएसपी से काफी कम दाम मिले हैं। पीएसीएस में अपनी उपज बेचने के बाद उन्हें समय पर भुगतान नहीं मिला, और उचित मूल्य का न मिलना कृषि उत्पादन बढ़ाने में सबसे बड़ी बाधा है।¹²

फसल विविधीकरण के निम्न स्तरों के लिए बाध्यकारी बाधाओं की पहचान करना

फसलों में अधिक विविधता लाने के लिए दो आवश्यक तत्व हैं: मजबूत बाजार संबंध और प्रभावी उत्पादक संगठन।

हाल ही में, बिहार सरकार ने राज्य के विभिन्न हिस्सों में किसान उत्पादक संगठन (एफपीओ) स्थापित करने की पहल शुरू की है। एफपीओ के तहत, किसानों को संगठित किया जाता है ताकि वे अपने उत्पादों का सफलतापूर्वक विपणन कर सकें और बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभ प्राप्त कर सकें। एफपीओ किसानों को नवाचार करने, विविधीकरण करने और नई कृषि पद्धतियों को अपनाने में सक्षम बनाते हैं ताकि वे बाजार की मांग के अनुसार बेहतर गुणवत्ता वाले उत्पाद तैयार कर सकें। एफपीओ फसल उत्पादन गतिविधियों में विविधता लाने का एक प्रभावी माध्यम है क्योंकि विपणन गतिविधियों का सामूहिक रूप से संगठन द्वारा ध्यान रखा जाता है।¹³

हितधारकों से बातचीत से पता चला कि कुछ गांवों में किसान किसान संगठन (एफपीओ) के बारे में जानते थे, लेकिन उन्होंने मिलकर कोई एफपीओ गठित नहीं किया था। कुछ गांवों में एफपीओ पंजीकृत तो थे, लेकिन वे निष्क्रिय पाए गए। अधिकांश किसान आशावादी थे कि एफपीओ कृषि उपज के विपणन में मौजूदा समस्याओं को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जमीनी स्तर पर इस तरह के संगठनात्मक ढांचे का अभाव सामूहिक सौदेबाजी

के माध्यम से बेहतर कीमतें प्राप्त करने में बाधा है। चूँकि चावल, गेहूँ और मक्का जैसी पारंपरिक फसलों के लिए आमतौर पर सुरक्षित बाजार होते हैं, इसलिए नई फसलें उगाने के लिए भूमि का उपयोग किसानों के लिए कुछ जोखिम भरा होता है। यह विशेष रूप से सब्जियों के मामले में सच है, जिनकी कीमतें मांग और आपूर्ति के अंतर के कारण अक्सर घटती-बढ़ती रहती हैं। इस प्रकार, एफपीओ के माध्यम से सामूहिक विपणन की कमी किसानों को लाभदायक फसल विविधीकरण अपनाने से हतोत्साहित करती है। इसी तरह, कानूनी बाधाएं संविदा खेती को अपनाने से रोकती हैं, जो फसल विविधीकरण के निम्न स्तर का संभावित समाधान प्रदान करती है।¹⁴

निष्कर्ष

भारत को ऐसी फसलों और किस्मों की पहचान करने की आवश्यकता है जो विभिन्न प्रकार के वातावरण और किसानों की प्राथमिकताओं के अनुकूल हों।

बिहार कृषि उपज बाजार अधिनियम (एपीएमसी) के निरस्त होने से निजी क्षेत्र के निवेशकों को बिहार में कृषि बाजार स्थापित करने और चलाने में पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिला। राज्य सरकार कृषि बाजारों के विकास, जिनमें कोल्ड स्टोरेज/भंडारण सुविधा भी शामिल है, में निजी निवेश को आकर्षित करने के लिए कर छूट जैसे कुछ प्रोत्साहन तंत्र तैयार कर सकती है।

किसानों द्वारा कृषि उपज की सीधी बिक्री के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना महत्वपूर्ण है। सरकार को परिवार कल्याण संगठनों (एफपीओ) को बढ़ावा देना और उन्हें मजबूत बनाना चाहिए। एफपीओ को सफल संचालन सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रारंभिक वित्तीय सहायता भी प्रदान की जानी चाहिए। एफपीओ के सदस्यों को नियमित रूप से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वे सामूहिक रूप से लाभप्रद तरीके से एफपीओ का संचालन और प्रबंधन कैसे करें और समूहगत विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से कैसे सुलझाएं।

सरकार को फसल विविधीकरण और संविदा खेती पर एक व्यापक नीति तैयार करनी चाहिए। इस नीति में किसानों को कम मूल्य वाली अनाज आधारित प्रणाली से उच्च मूल्य वाली फल और सब्जी आधारित प्रणाली की ओर विविधता लाने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किए जाने चाहिए। सरकार की नीति को साथ ही साथ पर्याप्त भंडारण और प्राथमिक प्रसंस्करण अवसंरचना स्थापित करने में निजी निवेश को प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि ग्रेडिंग, छाँटाई और अन्य प्रक्रियाओं को सुचारू रूप से किया जा सके। संविदा खेती में शामिल किसानों और कृषि-व्यापार फर्मों दोनों के लिए समान अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

सन्दर्भ

1. Guha, Ranjit (1996) A Rule of Property for Bengal: An Essay on the Idea of Permanent Settlement. Duke University Press, Page 8.
2. Government of Bihar. (2020). Agricultural Road Map (2017-2022). Department of Agriculture, Government of Bihar.
3. <https://agcensus.nic.in>
4. Agricultural Census 2015-16 - All India Report, Page 67, Talika 17.
5. <https://pib.gov.in/PressReleaseDetail.aspx?PRID=1946814>
6. https://www.nabard.org/auth/writereaddata/tender/BIH_PATNA.pdf
7. Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana - Compendium of Guidelines and State Performance, Publisher Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Page 44-46.
8. National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD), 2023 SHG-based Microfinance and Farm Mechanization Support in Eastern India, Page 22-26.
9. बिहार एग्रो प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन (2024) किसान उत्पादक संगठनों की भूमिका और प्रभाव - एक वर्षीय प्रतिवेदन (2023-24), प्रकाशन पटना ठा.च पृष्ठ 17ख 19।
10. Singh, A. & Verma, R. (2022). "Community-Based Approaches to Soil and Water Conservation in Eastern India." Journal of Rural Development and Sustainability, 14(3), Page. 117-132. 11. https://www.nabard.org/auth/writereaddata/tender/2004212715SFP_Bihar.pdf
12. Bihar State Disaster Management Authority (2021), Annual report on floods and droughts in Bihar, Government of Bihar Page. 16-21.
13. सिंह, अजय कुमार (2020) बिहार की कृषि व्यवस्था और ग्रामीण विकास, पटना: आनंद प्रकाशन।
14. Sharma, R.K. (2018) Rural Economy of Bihar Kolkata:

बिहार की मलिन बस्तियों में सामाजिक व स्वास्थ्य समस्याएँ

श्रीमती अनुप्रिया कुमारी

शोध छात्रा, अर्थशास्त्र विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० नवल किशोर बैठा

एसोसिएट प्रोफेसर/प्राचार्य, एस. एन. एस. महाविद्यालय, मोतिहारी

सारांश

बिहार की मलिन बस्तियों (झुग्गी-झोपड़ियों) में मुख्य समस्याएँ बुनियादी सुविधाओं का अभाव (स्वच्छ पानी, शौचालय, बिजली), खराब स्वच्छता और स्वास्थ्य (बीमारियाँ), गरीबी और बेरोजगारी, असुरक्षित और घटिया आवास, सामाजिक बुराईयाँ (अपराध, नशा), और शिक्षा की कमी हैं, जहाँ लोगों को अक्सर सरकारी योजनाओं का लाभ भी नहीं मिल पाता और वे विकास से वंचित रह जाते हैं, जिससे बच्चों के भविष्य और पूरे समाज पर नकारात्मक असर पड़ता है।

कोई भी सभ्य समाज गैरबराबरी, भेदभाव एवं सुविधाओं में दोहरे मानदण्ड को उचित सिद्ध करने का प्रयास नहीं करेगा। लेकिन भारत की राजनीतिक अर्थव्यवस्था ने मलिन बस्तियों में रहने वाले जनसमुदाय को समान नागरिक सुविधाओं से वंचित किया है।

शहरी गरीबों के संदर्भ में मलिन बस्तियों को समावेशी बनाने के लिये पृथक डेटा की आवश्यकता है। टिकाऊ, मजबूत और समावेशी बुनियादी ढाँचे के निर्माण के लिये आवश्यक कार्रवाई की जानी चाहिये। शहरी गरीबों के सामने आने वाली अनूठी चुनौतियों को बेहतर ढंग से समझने के लिये हमें 'ऊपर से नीचे के दृष्टिकोण' को अपनाने की आवश्यकता है।

इस प्रकार, शहरी विकास को समावेशी होना है क्योंकि बड़े शहरों में मलिन बस्तियों की समस्या एक बड़ी समस्या है। यदि उनकी चुनौतियों का ठीक से समाधान नहीं किया गया तो विकास को समावेशी विकास नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शोध लेख में बिहार विशेष कर चंपारण जिले की मलिन बस्तियों की समस्या, उनके उसके कारण और संभावित समाधान पर चर्चा की गई है।

मूल शब्द: संस्तरणीय औद्योगिक विकास, पड़ोस, प्राकृतिक संसाधन, कुपोषण।

प्रस्तावना

वर्तमान समाज में नगरीय मलिन बस्तियाँ समाजवैज्ञानिकों के अध्ययन में प्रमुखता से स्थान ग्रहण कर रही हैं, फिर चाहे वह नागरिकों के आपसी रिश्तों, आजीविका के स्रोतों, शिक्षा की समस्या, मनोरंजन एवं रोजमर्रा के जीवन की सुविधाओं यथा- आवागमन, सड़क, बिजली, पेयजल की सुविधा, दूषित जल व कूड़ा निस्तारण के साथ ही स्वास्थ्य सेवाओं आदि की ओर ध्यान आकर्षित किया है। कुछ समाज वैज्ञानिकों ने नगरीय क्षेत्र में होने वाले अपराधों पर भी अध्ययन करने का प्रयास किया है।

तीव्र एवं अनियोजित नगरीकरण ने औद्योगिक विकास के साथ अवैध आवासीय कॉलोनिजों, सुविधारहित नगरीय मलिन बस्तियों को जन्म दिया है। संस्तरणीय औद्योगिक विकास ने व्यक्ति और समुदाय स्तर पर संस्तरण में वृद्धि की है।¹

अनिल कुमार (2018) ने राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों का विश्लेषण कर पाया कि नगरीय क्षेत्रों में होने वाली महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का प्रमुख कारण संस्तरणीय औद्योगीकरण है। इस व्याख्या हेतु उन्होंने सामाजिक जीवन के लिए सात मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के सन्दर्भ में भारतीय नगरों का विश्लेषण करते हुए नारी हिंसा में संस्तरणीय औद्योगीकरण एवं नव-उदारवादी आर्थिक व्यवस्था पर प्रश्न खड़ा किया है।²

नगरीय क्षेत्र की स्वास्थ्य समस्याओं के अध्ययन के सन्दर्भ में सुजाथा वी. (2017) का सटीक दिखाई पड़ता है कि किसी भी क्षेत्र के अध्ययन में सांस्कृतिक प्रतिमान, वहाँ के सूक्ष्म भेदों को खोल सकते हैं। यद्यपि आर्थिक औसत एवं कथानक, स्वास्थ्य अध्ययनों के लिए अनुपूरक के रूप में सर्वोत्तम

उपकरण माने जा सकते हैं, लेकिन यह एकमात्र उपकरण नहीं हो सकते हैं एवं समाजशास्त्र इन्हें प्रासंगिक विश्लेषण के रूप में उपयोग करता है। इस अध्ययन में इन्हीं सांस्कृतिक प्रतिमानों के माध्यम से नगरीय मलिन बस्तियों की स्वास्थ्य समस्याओं का अध्ययन किया जा रहा है।³

नगरीय समाज के अध्ययन की पृष्ठभूमि

नगरीय समुदाय पर अध्ययन की परम्परा पुरानी है। इसकी जड़ें टॉनीज के “समुदाय एवं समाज” (1887) के अध्ययन एवं इमाइल दुर्खीम के “समाज में श्रम विभाजन” (1893) के रूप में देखी जा सकती हैं। टॉनीज ने पूर्व औद्योगिक एवं औद्योगीकृत समाजों में मानव अन्तःक्रियाओं के प्रकारों पर चित्रण किया है। उनका तर्क है कि पूर्व औद्योगिक समाज की दुनिया परिवार, नातेदारी एवं पड़ोस के घनिष्ठ धागों से बंधी होती है। इस समुदाय (सरल/घनिष्ठ समाज) में व्यक्ति एक दूसरे के बारे में अधिक जानकारी रखते हैं। जबकि समिति (जटिल/आधुनिक समाज) की नगरीय दुनिया में सम्बन्ध व्यक्तिपरक, कार्य एवं निहित स्वार्थ पर आधारित होते हैं। इस समाज में सामुदायिक घनिष्ठता की भावना का अभाव पाया जाता है। इमाइल दुर्खीम सामाजिक सम्बन्धों को जटिल श्रम विभाजन के रूप में देखते हैं।⁴

मलिन बस्तियों में सामाजिक व स्वास्थ्य समस्याएं

भेदभाव भारतीय समाज में स्थापित जाति आधारित संस्तरणीय व्यवस्था, जिसमें अनुसूचित जातियों एवं अन्य पिछड़ी जातियों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाकर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है, जो नगरीय मलिन बस्तियों में भी कायम है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भी उन्हें अल्प मजदूरी, श्रम शोषण, असुरक्षा सहित पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है तो दूसरी ओर मीडिया एवं सामाजिक गतिशीलता के प्रभावस्वरूप भी वह अपने अधिकारों को प्राप्त कर पाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। समाज का कोई भी स्वरूप –सरल, जटिल, ग्रामीण अथवा नगरीय, विकसित अथवा विकासशील सभी समाजों में विभिन्न प्रकार के भेदभाव विद्यमान रहते हैं।⁵

दूसरे शब्दों में कहें तो प्रत्येक समाज में सभी लोग समान नहीं हो सकते। भारतीय समाज में जातिगत एवं लैंगिक विषमताएं प्रमुख एवं सर्वाधिक कठोर हैं।

लैंगिक विषमता का तात्पर्य

लिंग/जेण्डर के आधार पर स्त्रियों एवं पुरुषों में भेद से है। लैंगिक विषमता सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं जैविक आदि सभी क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। कुछ विचारक इसे (लैंगिक विषमता को) सामाजिक व्यवस्था से जोड़कर देखते हैं, जो संस्थागत एवं सार्वभौमिक हैं। विकासशील एवं अविकसित देशों में स्त्रियों को समुचित शिक्षा का अवसर नहीं प्राप्त है, साथ ही सम्पत्ति में समानता के अभाव, सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य में शारीरिक निर्बलता का नाम देकर नारी शोषण आज भी कायम है। नगरीय मलिन बस्तियों में भी यह असमानता एवं भेदभाव कायम है। सामाजिक संरचना में विद्यमान यह भेदभाव अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ी जातियों के समस्त सदस्यों एवं विशेषतः महिलाओं को सामान्य नागरिक अधिकारों से वंचित करती हैं। इसलिए मलिन बस्तियों के निवासियों की स्वास्थ्य समस्याएं अधिक जटिल हैं।⁶

हिंसा एवं अपराध

उदारीकरण के फलस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में विशेषतः तृतीयक क्षेत्र में स्त्रियों की सहभागिता बढ़ी है। मनो-सामाजिक दबाव बन रहा है। वर्तमान में होने वाले इण्टरनेट, सोशल एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अतिप्रयोग के परिणामस्वरूप महिलाओं एवं दलितों के प्रति हिंसा को बढ़ाने के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती है (कुमार, 2018:43)। नगरीय मलिन बस्तियों में रहने वाले बहुत से सदस्यों के पास उनके नागरिकता प्रमाण भी उपलब्ध नहीं होते हैं। शिक्षा एवं रहन-सहन की निम्नता के कारण स्थायी व सम्मानजनक रोजगार के अवसर नहीं मिलते हैं, जिससे इन क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों के सभी सदस्य किसी न किसी अकुशल कार्यों में लिप्त रहते हैं जैसे- महिलाएं व किशोरिया घरों की साफ-सफाई, बर्तन साफ करने, कूड़ा बीनने आदि का कार्य करती हैं। औद्योगिक इकाइयों वाले शहरों में यह महिलाएं सिलाई, जरदोजी एवं अन्य कम आमदनी वाले कार्यों में भी लगती हैं। इस प्रकार के कार्यों के दौरान वह आर्थिक, शारीरिक, मानसिक एवं यौनिक हिंसा के जोखिम से रूबरू होती रहती हैं। कई बार शोषण एवं वंचना से बचने के कारण अथवा साथी समूह के दबाव में वह हिंसा एवं अपराध का रास्ता अपना लेती हैं।

बच्चे घरों की साफ-सफाई, कूड़ा बीनने आदि का कार्य करते हैं। कुछ शहरों में बच्चे सिलाई कारखानों में धागा काटने, जरदोजी एवं अन्य कम आमदनी वाले कार्यों में भी लगते हैं। कई बार यह बच्चे बुरी संगति के कारण नशे, चोरी एवं यौनिक हिंसा में लिप्त हो जाते हैं, जिससे वह जीवन की मुख्य धारा से जुड़ने से पूर्व ही समाज के विरुद्ध एक असामाजिक रास्ता अपना लेते हैं। वयस्क पुरुष भारी कार्य, कम आमदनी एवं नशावृत्ति के कारण मलिन बस्तियों में रहने वाले पुरुष पहले परिवार के बच्चों एवं महिलाओं के प्रति हिंसा करते हैं।⁷

बिहार की मलिन बस्तियां

बिहार में पटना, मुजफ्फरपुर, सहरसा, सासाराम जैसे शहरों में कई मलिन बस्तियां (Slums) हैं, जहाँ लोग अक्सर घटिया घरों में रहते हैं और उन्हें पानी, स्वच्छता, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी का सामना करना पड़ता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी प्रवास और गरीबी के कारण बढ़ती जा रही हैं, जिससे कई सामाजिक-आर्थिक चुनौतियां पैदा होती हैं।

पटना, मुजफ्फरपुर, सहरसा, और सासाराम जैसे शहरी क्षेत्रों में प्रमुख मलिन बस्तियां पाई जाती हैं, जहाँ की आबादी काफी है।⁸

समस्याएं

संयुक्त राष्ट्र ने एक बस्ती को शहरी क्षेत्र में एक ही छत के नीचे रहने वाले व्यक्तियों के समूह के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें निम्नलिखित पाँच सुविधाओं में से एक या अधिक की कमी है”:⁹

- 1) टिकाऊ आवास
- 2) पर्याप्त रहने का क्षेत्र
- 3) बेहतर जल तक पहुंच
- 4) बेहतर स्वच्छता सुविधाओं तक पहुंच; तथा
- 5) सुरक्षित स्वामित्व

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में स्लम आबादी लगभग 65 मिलियन है जो शहरी भारत का 17% और भारत की कुल जनसंख्या का 5.4% है। 2011 में महाराष्ट्र की 1.18 करोड़ आबादी झुग्गियों में रहती थी, उसके बाद आंध्र प्रदेश में लगभग 1.02 करोड़ थी। इन दोनों राज्यों में भारत की 6.55 करोड़ स्लम आबादी (2011 की जनगणना) का एक तिहाई से अधिक हिस्सा है।¹⁰

भारत का शहरी विकास अभी तक समावेशी नहीं है क्योंकि मलिन बस्तियों के सामने कई चुनौतियाँ हैं:

- असुरक्षित आवास: लोग अक्सर प्लास्टिक, मिट्टी और धातु की चादरों से बने घरों में रहते हैं, जो मौसम से सुरक्षा नहीं देते।
- बुनियादी सुविधाओं का अभाव: पीने के पानी, शौचालय और स्वच्छता की कमी है, जिससे बीमारियाँ फैलती हैं (जैसे हैजा, दस्त)। स्लम क्षेत्रों में रहने वाले लोग टाइफाइड और हैजा जैसी जलजनित बीमारियों के साथ-साथ कैसर व एचआईवी/एड्स जैसी अधिक घातक बीमारियों के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं।¹¹
- गरीबी और बेरोजगारी: लोग अक्सर दिहाड़ी मजदूरी और अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करते हैं, जिससे आय कम और असुरक्षित होती है। एक विकासशील देश में झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले अधिकांश लोग अनौपचारिक क्षेत्र से अपना जीवन यापन करते हैं जो न तो उन्हें वित्तीय सुरक्षा प्रदान करता है और न ही बेहतर जीवन के लिये पर्याप्त आय उपलब्ध कराता है, जिससे वे गरीबी के दुष्चक्र में फँस जाते हैं।
- शिक्षा और स्वास्थ्य: बच्चों को स्कूल जाने में मुश्किल होती है और वे बाल श्रम में फँस जाते हैं; स्वास्थ्य सुविधाएं बहुत खराब होती हैं।
- सामाजिक चुनौतियाँ: स्लम क्षेत्रों को आमतौर पर ऐसे स्थान के रूप में देखा जाता है, जहाँ अपराध काफी अधिक होते हैं। अक्सर सामाजिक बहिष्कार, अपराध (बाल अपराध, वेश्यावृत्ति), और नशीली दवाओं के दुरुपयोग जैसी समस्याएं होती हैं। यह स्लम क्षेत्रों में शिक्षा, कानून व्यवस्था और सरकारी सेवाओं के प्रति आधिकारिक उपेक्षा के कारण है।¹²

कारण

मलिन बस्तियों के विकसित होने के दो मुख्य कारण हैं: जनसंख्या वृद्धि और शासन। दुनिया भर के देश तेजी से शहरीकरण की ओर बढ़ रहे हैं क्योंकि ज्यादा से ज्यादा लोग ग्रामीण इलाकों से शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं और प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धि जारी है। आज, दुनिया की आधी से ज्यादा आबादी शहरी इलाकों में रहती है। जनसंख्या वृद्धि और गरीबी के कारण नगरीय क्षेत्रों के गरीब व्यक्ति मलिन बस्तियों में रहने के लिये विवश होते हैं तथा अनुमान है कि वर्ष 2026 तक कुल जनसंख्या का 40% शहरी क्षेत्रों में निवास करेगा, जिससे भूमि की मांग में अत्यधिक वृद्धि होगी।

- ग्रामीण-शहरी प्रवास: रोजगार की तलाश में गांवों से शहरों में पलायन।
- गरीबी: बिहार में उच्च गरीबी दर (55.3%) के कारण लोग झुग्गियों में रहने को मजबूर हैं।
- सीमित किफायती आवास: शहरों में सस्ते घरों की कमी और मांग का बढ़ना।
- सरकारी प्रयास: बिहार राज्य आवास बोर्ड (BSHB) जैसी संस्थाएं किफायती आवास बनाने की कोशिश कर रही हैं, लेकिन मांग बहुत ज्यादा है।¹³
- सामाजिक पहल: कुछ समाजसेवी और संगठन शिक्षा और जागरूकता फैलाकर इन बस्तियों में सुधार लाने की कोशिश कर रहे हैं।

स्लम बस्तियों में रहने वाले लोग बुनियादी जरूरतों से वंचित हैं। रोटी, कपड़ा, मकान, इलाज, शिक्षा, स्वच्छता जैसी आवश्यकताएं इनसे दूर हैं।

बस्तियों में रहने वाले कुछ पुरुष और महिलाएं मतदाता पहचान पत्र रखते हैं और मतदान करते हैं, लेकिन हर बार उन्हें यह अनुभव होता है कि वोट मांगने वाले नेता फिर कभी नहीं आते। यहां के निवासियों के पास शहरी होने का प्रमाण पत्र और आधार कार्ड है, लेकिन राशन कार्ड नहीं है।

राशन कार्ड के अभाव में आयुष्मान कार्ड भी नहीं बन पाया है, जिससे वे सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं के लाभ से वंचित हैं। उज्ज्वला योजना का लाभ भी उन्हें नहीं मिल पाया है। लकड़ियां और खरपतवार इकट्ठा कर खाना बनाना उनकी मजबूरी है।

विधवा, वृद्धा और दिव्यांग पेंशन का लाभ कुछ ही लोगों को मिल रहा है। बैंक या डाकघर में खाता न होने के कारण वे अपनी जरूरतों के लिए पैसे जमा नहीं कर सकते। बच्चों की शिक्षा भी प्रभावित हो रही है, और कुपोषण के कारण उनका शारीरिक और मानसिक विकास बाधित हो रहा है।

नियमित टीकाकरण अभियान भी इन बस्तियों में नहीं चलाया गया है। आवास योजना, पुनर्वास या पुनर्विकास योजनाओं का लाभ भी इन बस्तियों तक नहीं पहुंचा है। चंपारण जिले की मलिन बस्तियों के लोग आज भी बुनियादी सुविधाओं की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जैसे कि मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, शौचालय, शुद्ध पेयजल, जलनिकासी व्यवस्था और स्वस्थ वातावरण।¹⁴

संक्षेप में, बिहार की मलिन बस्तियां गरीबी, खराब बुनियादी ढांचे और सामाजिक चुनौतियों का केंद्र हैं, जिससे निवासियों का जीवन अमानवीय हो जाता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

नगरीय मलिन बस्तियों में निवास करने वाले लोगों को सभी नागरिक सुविधायें समान रूप से मुहैया नहीं हो पा रही हैं। इसके कारण आर्थिक से अधिक सामाजिक व सांस्कृतिक हैं क्योंकि इन मलिन बस्तियों में निवास करने वाली अधिकांश निम्न जातियां, अशुद्ध व अल्पआय वाले पेशों से जुड़ी होती हैं। नाले तथा गटर की सफाई वाले हों अथवा कूड़ा इकट्ठा करने वाले सभी इसी समुदाय से आते हैं। यहां तक कि जिन लोगों ने पूर्व में सामाजिक कुरीतियों से बचने के लिए इस्लाम कबूल किया होगा वह आज कूड़ा बीनने वाले बन गये हैं। नातेदारी एवं विवाह रूपी संस्थाओं द्वारा परिवार व समाज में आर्थिक रूप से कमजोर परिवार की महिलाओं को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में लिंग विभेदीकरण की दोहरी तलवार लटकती रहती है। नगरीय मलिन बस्तियों की महिलाओं में ग्रामीण महिलाओं की अपेक्षा गतिशीलता एवं अर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है। वह मानती हैं कि सरकारी, गैर-सरकारी प्रयासों एवं कानूनी प्रावधानों ने नारी सशक्तिकरण की दिशा में सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। किन्तु सामाजिक कुरीतियों, बलात्कार एवं स्वास्थ्य समस्याओं के कारण उनके जीवन में कठिनाइयों का दौर जारी है। अधिकांश राहत कोष और लाभ झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों तक नहीं पहुँचते हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि इन बस्तियों को सरकार द्वारा आधिकारिक तौर पर मान्यता नहीं दी जाती है।

स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्या दूर करने हेतु घर में भी महिलाओं को सशक्त बनाने की आवश्यकता है, जैसे- साक्षरता स्तर, कम-कीमत में संतुलित आहार, के लिए भोजन उपभोग प्रतिमानों में बदलाव आदि को अपनाना होगा, इससे कुपोषण के स्तर में सुधार होगा। समाज में व्याप्त गैरबराबरी जो कि जाति, धर्म, लिंग अथवा आयु के आधार पर को संवैधानिक रूप से समाप्त किया जा चुका है, जिसे सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से समाप्त किया जाना चाहिए तभी भारतीय समाज में सतत विकास सम्भव हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार, अनिल (2018) महिलाओं के विरुद्ध अपराध: भारत में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रभावों का विश्लेषण, शोधमंथन, खण्ड-09, अंक: 01.
2. Agarwal, Lokesh, et. al. (2014) Current Status of Nutrition among under Five Children of Slum Areas of Agra. Journal of Evolution of Medical and Dental Sciences; Vol. 3, Issue 58, pp- 13120-13125, DOI: 10.14260/jemds/2014/374
3. Bentley, Abigail et. al. (2015) Malnutrition and infant and young child feeding in informal settlements in Mumbai, India: findings from a census, Food Science & Nutrition Vol. 3, No. 3; pp 257-271; doi: 10.1002/fsn3.21
4. Dean, H. & Taylor-Gooby, P. (1992) Dependency Culture: The Explosion of a Myth. Harvester Wheatsheaf, Hemel Hempstead.
5. Durkheim, E. (1893/1997). The Division of Labor in Society, New York: Free Press.
6. Gafford, Farrah (2007) Urban Community Studies, (ed. Ritzer 2007), Blackwell Encyclopedia of Sociology, Oxford, Blackwell Publishing Ltd.
7. Hoskins, Janet and Frank, Gelya (2007) Biography, in (ed. Ritzer 2007), Blackwell Encyclopedia of Sociology, Oxford, Blackwell Publishing Ltd.
8. Park, Robert E. and Burgess, Ernest (1929) The City, Chicago: University of Chicago Press.
9. Sujatha, V. (2017) What Is the Sociology behind Health Status and Health-seeking Behaviour? Sociological Bulletin, Vol. 66, No. 3, 286-301.
10. Suttles, Gerald (1968) The Social Order of the Slum: Ethnicity and Territory in the Inner City. Chicago: University of Chicago Press.
11. Tonnies, F. (1887/1957) Community and Society (Gemeinschaft und Gesellschaft), Martino Fine Books.
12. Wilkinson, R. (1996) Unhealthy Societies: The Afflictions of Inequality, New York, Routledge.
13. Whyte, William (1943) Street Corner Society, Chicago: University of Chicago Press.
14. Zorbaugh, Harvey W. (1929) The Gold Coast and Slum: A Sociological Study of Chicago's Near North Side, Chicago: University of Chicago Press.

वैश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति-संरक्षण, परिवर्तन एवं चुनौतियाँ

डॉ० श्याम लाल निराला

शासकीय जमुना प्रसाद वर्मा स्नातकोत्तर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र का विषय “वैश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति: संरक्षण, परिवर्तन एवं चुनौतियाँ” है। वैश्वीकरण ने विश्व को एक साझा मंच प्रदान किया है, जहाँ आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और सांस्कृतिक स्तर पर तीव्र आदान-प्रदान हो रहा है। इस प्रक्रिया का भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। एक ओर भारतीय संस्कृति की समृद्ध परंपराएँ, मूल्य, भाषा, कला और जीवन-दर्शन वैश्विक स्तर पर पहचान प्राप्त कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य प्रभाव के कारण सांस्कृतिक समरूपता, उपभोक्तावाद और भौतिकवाद को बढ़ावा मिला है। भारतीय संस्कृति का मूल आधार ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’, सहिष्णुता और विविधता में एकता रहा है। वैश्वीकरण के कारण जीवन-शैली, खान-पान, पहनावा, पारिवारिक संरचना और सामाजिक व्यवहार में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देते हैं। युवा पीढ़ी वैश्विक संस्कृति से अधिक प्रभावित हो रही है, जिससे पारंपरिक मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण की चुनौती उत्पन्न हुई है। यह शोध-पत्र भारतीय संस्कृति के संरक्षण के उपायों, जैसे शिक्षा, मीडिया, साहित्य, लोककलाओं और सांस्कृतिक जागरूकता की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है। साथ ही यह विश्लेषण करता है कि किस प्रकार भारतीय संस्कृति परिवर्तन को आत्मसात करते हुए अपनी मौलिकता बनाए रख सकती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण न तो पूर्णतः नकारात्मक है और न ही पूर्णतः सकारात्मक; आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय समाज संतुलित दृष्टिकोण अपनाते हुए अपनी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करे और समयानुकूल परिवर्तन को स्वीकार करे।

(मुख्य शब्द: वैश्वीकरण, भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक संरक्षण, सांस्कृतिक परिवर्तन, चुनौतियाँ, पाश्चात्य प्रभाव, सांस्कृतिक पहचान)

प्रस्तावना

वैश्वीकरण आधुनिक विश्व की एक प्रभावशाली और व्यापक प्रक्रिया है, जिसने मानव जीवन के लगभग सभी पक्षों को प्रभावित किया है। आर्थिक उदारीकरण, तकनीकी विकास, संचार क्रांति और अंतरराष्ट्रीय संपर्कों के विस्तार ने विश्व को एक वैश्विक गाँव में परिवर्तित कर दिया है। इस प्रक्रिया का प्रभाव केवल आर्थिक या राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसका गहरा असर सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर भी पड़ा है। ऐसे में भारतीय संस्कृति, जो अपनी प्राचीनता, विविधता और सहिष्णुता के लिए जानी जाती है, वैश्वीकरण के प्रभावों से अछूती नहीं रह सकती।

भारतीय संस्कृति का इतिहास हजारों वर्षों पुराना है। इसमें वेद, उपनिषद, बौद्ध और जैन दर्शन, भक्ति एवं सूफी परंपरा, लोकसंस्कृति और आधुनिक विचारधाराओं का समन्वय दिखाई देता है। ‘विविधता में एकता’ भारतीय संस्कृति की मूल पहचान रही है। किंतु वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में पश्चिमी जीवन-शैली, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ और बाजार-आधारित संस्कृति का प्रभाव तेजी से बढ़ा है। परिणामस्वरूप, भारतीय समाज में जीवन-मूल्यों, पारिवारिक संरचना, भाषा, खान-पान और सामाजिक व्यवहार में निरंतर परिवर्तन देखने को मिल रहा है (Appadurai, 1996)।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि वैश्वीकरण ने भारतीय संस्कृति को किस प्रकार प्रभावित किया है। क्या यह प्रभाव केवल सांस्कृतिक क्षरण की ओर संकेत करता है, या इसमें नए अवसर और संभावनाएँ भी निहित हैं? एक ओर भारतीय योग, आयुर्वेद, संगीत, नृत्य और अध्यात्म को वैश्विक पहचान मिली है, वहीं दूसरी ओर स्थानीय भाषाएँ, लोककलाएँ और पारंपरिक मूल्य हाशिए पर जाते दिखाई देते हैं (Nanda, 2009)। यही द्वंद्व इस अध्ययन की केंद्रीय समस्या है।

यह शोध-पत्र भारतीय संस्कृति के संरक्षण, परिवर्तन और उससे जुड़ी चुनौतियों का विश्लेषण करता है। इसमें यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि वैश्वीकरण को पूरी तरह अस्वीकार करना संभव नहीं है, परंतु उसे बिना विवेक अपनाना भी सांस्कृतिक असंतुलन पैदा कर सकता है। इसलिए आवश्यक है कि भारतीय समाज एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाए, जिसमें सांस्कृतिक आत्मबोध बना रहे और समयानुकूल परिवर्तन को स्वीकार किया जाए (Singh, 2012)।

इस प्रकार, यह प्रस्तावना शोध-पत्र की पृष्ठभूमि तैयार करती है और इस बात को रेखांकित करती है कि वैश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति पर विचार करना न केवल प्रासंगिक है, बल्कि अत्यंत आवश्यक भी है।

वैश्वीकरण: अवधारणा एवं स्वरूप

वैश्वीकरण एक बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत विश्व के विभिन्न देशों, समाजों और संस्कृतियों के बीच पारस्परिक संपर्क, निर्भरता और आदान-प्रदान में तीव्र वृद्धि हुई है। सामान्य अर्थों में वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से भौगोलिक सीमाएँ शिथिल होती हैं और आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ वैश्विक स्तर पर संचालित होने लगती हैं। आधुनिक संचार साधनों, सूचना-प्रौद्योगिकी और परिवहन के विकास ने इस प्रक्रिया को अत्यधिक तीव्र बना दिया है (Giddens, 1990)।

वैश्वीकरण की अवधारणा को समझने के लिए इसके विभिन्न आयामों पर ध्यान देना आवश्यक है। आर्थिक वैश्वीकरण इसके सबसे प्रमुख रूपों में से एक है, जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विस्तार, मुक्त व्यापार, विदेशी निवेश और वैश्विक बाजार की अवधारणा शामिल है। उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक पूँजी से जोड़ा है, जिससे उत्पादन और उपभोग के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया है (Stiglitz, 2002)।

सामाजिक और सांस्कृतिक वैश्वीकरण भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इसके अंतर्गत विचारों, मूल्यों, जीवन-शैलियों, फैशन, भोजन, संगीत और मनोरंजन का वैश्विक प्रसार होता है। उपग्रह चौकलों, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने सांस्कृतिक सीमाओं को लगभग समाप्त कर दिया है। परिणामस्वरूप एक ओर सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा मिला है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक समरूपता और प्रभुत्व की समस्या भी उभरकर सामने आई है (Tomlinson, 1999)।

तकनीकी वैश्वीकरण ने समय और दूरी की अवधारणा को ही बदल दिया है। डिजिटल क्रांति ने ज्ञान और सूचना को सुलभ बनाया है, जिससे शिक्षा, संचार और सामाजिक संपर्क के नए रूप विकसित हुए हैं। यह तकनीकी विकास वैश्वीकरण को गति देने वाला एक प्रमुख कारक है, जिसने स्थानीय समाजों को वैश्विक नेटवर्क से जोड़ दिया है (Castells, 2000)।

वैश्वीकरण का स्वरूप न तो पूर्णतः सकारात्मक है और न ही पूर्णतः नकारात्मक। इसके सकारात्मक पक्षों में विकास के नए अवसर, ज्ञान का विस्तार, सांस्कृतिक संवाद और वैश्विक सहयोग शामिल हैं। वहीं इसके नकारात्मक प्रभावों में असमानता, सांस्कृतिक वर्चस्व, स्थानीय परंपराओं का क्षरण और पहचान का संकट प्रमुख हैं। इसलिए वैश्वीकरण को एक तटस्थ प्रक्रिया न मानकर, शक्ति-संतुलन और प्रभाव के संदर्भ में समझना आवश्यक है।

इस प्रकार, वैश्वीकरण एक ऐसी समग्र प्रक्रिया है, जिसने आधुनिक विश्व की संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति पर इसके प्रभावों का अध्ययन तभी सार्थक हो सकता है, जब वैश्वीकरण की अवधारणा और स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझा जाए।

भारतीय संस्कृति का स्वरूप

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध संस्कृतियों में से एक है, जिसका विकास हजारों वर्षों में निरंतर परिवर्तन और समन्वय की प्रक्रिया के माध्यम से हुआ है। यह संस्कृति किसी एक धर्म, भाषा या जीवन-पद्धति तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें विविधताओं का अद्भुत संगम दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप समावेशी, सहिष्णु और मानवीय मूल्यों पर आधारित रहा है, जिसने इसे समय के साथ जीवंत बनाए रखा है (Sharma, 2010)।

भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वैदिक, उत्तर-वैदिक, बौद्ध, जैन, भक्ति और सूफी परंपराओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और गीता जैसे ग्रंथों ने भारतीय जीवन-दर्शन को दिशा प्रदान की है। 'धर्म', 'कर्म' और 'मोक्ष' की अवधारणाएँ भारतीय सांस्कृतिक चेतना के केंद्रीय तत्व रहे हैं। साथ ही, अहिंसा, करुणा और सह-अस्तित्व जैसे मूल्य सामाजिक जीवन में गहराई से स्थापित हुए हैं (Radhakrishnan, 1951)।

“विविधता में एकता” भारतीय संस्कृति की सबसे विशिष्ट विशेषता मानी जाती है। भारत में अनेक भाषाएँ, धर्म, जातियाँ, रीति-रिवाज और जीवन-शैलियाँ पाई जाती हैं, फिर भी एक सांस्कृतिक सूत्र इन्हें जोड़ता है। क्षेत्रीय संस्कृतियाँ, लोकपरंपराएँ, त्योहार और कला-रूप भारतीय संस्कृति को बहुरंगी स्वरूप प्रदान करते हैं। यही विविधता इसकी शक्ति भी है और पहचान भी (Béteille, 1991)।

भारतीय संस्कृति के स्वरूप में कला और साहित्य का विशेष स्थान है। शास्त्रीय संगीत और नृत्य, लोकसंगीत, चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध किया है। साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत, पालि, प्राकृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं तक एक सुदीर्घ परंपरा देखने को मिलती है। ये सभी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ समाज के मूल्यों और संवेदनाओं को प्रतिबिंबित करती हैं (Thapar, 2004)।

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष इसका गतिशील स्वरूप है। यह संस्कृति समय-समय पर बाहरी प्रभावों को आत्मसात करती रही है और उन्हें अपने अनुकूल ढालती रही है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति न तो स्थिर रही है और न ही संकीर्ण। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में इसी लचीलेपन और आत्मसात करने की क्षमता के कारण भारतीय संस्कृति के सामने नए अवसर और नई चुनौतियाँ दोनों उपस्थित हुई हैं।

इस प्रकार, भारतीय संस्कृति का स्वरूप परंपरा और परिवर्तन के संतुलन पर आधारित रहा है। इसके इसी स्वरूप को समझे बिना वैश्वीकरण के प्रभावों का समुचित विश्लेषण संभव नहीं है।

वैश्वीकरण का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव

वैश्वीकरण के प्रभाव ने भारतीय संस्कृति को बहुआयामी रूप से प्रभावित किया है। यह प्रभाव केवल सतही परिवर्तनों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसने जीवन-शैली, सामाजिक संबंधों, मूल्यों और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की संरचना को भी गहराई से प्रभावित किया है। भारतीय समाज, जो परंपरा और सामूहिकता पर आधारित रहा है, वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप तेजी से बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का सामना कर रहा है।

सबसे स्पष्ट प्रभाव जीवन-शैली में दिखाई देता है। शहरीकरण, उपभोक्तावाद और वैश्विक बाजार की संस्कृति के कारण खान-पान, पहनावा और रहन-सहन में व्यापक परिवर्तन हुआ है। फास्ट फूड, ब्रांडेड वस्त्र और पश्चिमी फैशन भारतीय समाज, विशेषकर युवाओं, में लोकप्रिय हो रहे हैं। इसके साथ ही पारंपरिक भोजन, हस्तनिर्मित वस्त्र और स्थानीय उत्पादों का स्थान सीमित होता जा रहा है (Nayar, 2011)।

पारिवारिक और सामाजिक संरचना पर भी वैश्वीकरण का गहरा प्रभाव पड़ा है। संयुक्त परिवार प्रणाली का स्थान धीरे-धीरे एकल परिवार ले रहा है। रोजगार और शिक्षा के लिए लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान या देश में जाना पारिवारिक संबंधों की प्रकृति को बदल रहा है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता को महत्व मिलने से पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों में शिथिलता देखी जा रही है (Beck, 2000)।

मीडिया और सूचना-प्रौद्योगिकी वैश्वीकरण के सांस्कृतिक प्रभावों के प्रमुख माध्यम हैं। टेलीविजन, इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से वैश्विक संस्कृति का तीव्र प्रसार हुआ है। फिल्मों, विज्ञापनों और डिजिटल प्लेटफॉर्मों ने सौंदर्य, सफलता और जीवन के आदर्शों की नई परिभाषाएँ गढ़ी हैं, जो कई बार भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से टकराती हैं (Kellner, 1995)।

हालाँकि, वैश्वीकरण के प्रभाव पूरी तरह नकारात्मक नहीं हैं। भारतीय योग, आयुर्वेद, शास्त्रीय संगीत, नृत्य और अध्यात्म को वैश्विक स्तर पर व्यापक स्वीकृति मिली है। इससे भारतीय संस्कृति की अंतरराष्ट्रीय पहचान सुदृढ़ हुई है और सांस्कृतिक आत्मविश्वास को भी बल मिला है (Alter, 2004)।

इस प्रकार, वैश्वीकरण ने भारतीय संस्कृति को एक द्विधात्मक स्थिति में ला खड़ा किया है, जहाँ एक ओर परिवर्तन और आधुनिकता के नए अवसर हैं, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक क्षरण और पहचान के संकट की आशंका भी है। इन प्रभावों को संतुलित दृष्टि से समझना ही आगे के विश्लेषण का आधार बनता है।

सांस्कृतिक परिवर्तन के सकारात्मक पक्ष

वैश्वीकरण के संदर्भ में भारतीय संस्कृति में आए परिवर्तनों को केवल नकारात्मक दृष्टि से देखना उचित नहीं होगा। इस प्रक्रिया ने भारतीय संस्कृति को कई सकारात्मक अवसर भी प्रदान किए हैं, जिनसे न केवल उसका विस्तार हुआ है, बल्कि उसकी वैश्विक पहचान भी सुदृढ़ हुई है। सांस्कृतिक परिवर्तन का यह पक्ष भारतीय समाज के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोलता है।

वैश्वीकरण का एक प्रमुख सकारात्मक प्रभाव भारतीय संस्कृति की अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति के रूप में सामने आया है। योग, ध्यान, आयुर्वेद, भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य आज विश्व के अनेक देशों में अपनाए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की घोषणा इस बात का प्रमाण है कि भारतीय सांस्कृतिक परंपराएँ वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त कर रही हैं (IJSJ, 2004)। इससे न केवल भारत की सांस्कृतिक छवि सशक्त हुई है, बल्कि सांस्कृतिक गर्व की भावना भी विकसित हुई है।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान वैश्वीकरण का एक अन्य महत्वपूर्ण सकारात्मक पक्ष है। विभिन्न संस्कृतियों के संपर्क से नए विचार, रचनात्मकता और नवाचार को बढ़ावा मिला है। भारतीय साहित्य, सिनेमा और कला ने वैश्विक मंच से संवाद स्थापित किया है। भारतीय फिल्मों, विशेषकर हिंदी सिनेमा, प्रवासी भारतीयों के माध्यम से वैश्विक संस्कृति का हिस्सा बनी हैं और सांस्कृतिक सेतु का कार्य कर रही हैं (Rajadhyaksha, 2003)।

शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में भी वैश्वीकरण ने सकारात्मक भूमिका निभाई है। अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थानों और डिजिटल माध्यमों के माध्यम से भारतीय विद्यार्थियों और विद्वानों को वैश्विक ज्ञान-संसाधनों तक पहुँच मिली है। इससे विचारों की विविधता और बौद्धिक खुलापन बढ़ा है, जो सांस्कृतिक विकास के लिए आवश्यक है (Sen, 2005)।

पर्यटन और सांस्कृतिक उद्योग के विकास ने भी भारतीय संस्कृति को नया आयाम दिया है। सांस्कृतिक पर्यटन के माध्यम से ऐतिहासिक धरोहरों, लोककलाओं और परंपराओं को संरक्षण के साथ-साथ आर्थिक समर्थन भी मिला है। हस्तशिल्प, हथकरघा और पारंपरिक कलाएँ वैश्विक बाजार से जुड़कर जीविका का सशक्त माध्यम बनी हैं (UNESCO, 2013)।

इस प्रकार, वैश्वीकरण के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक परिवर्तन केवल परंपराओं के ह्रास का संकेत नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय संस्कृति के विस्तार, सशक्तिकरण और पुनर्परिभाषा के अवसर भी प्रदान करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन सकारात्मक पक्षों को पहचानते हुए उन्हें सुदृढ़ किया जाए।

सांस्कृतिक परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव

वैश्वीकरण के कारण भारतीय संस्कृति में जहाँ कुछ सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं, वहीं इसके कई नकारात्मक प्रभाव भी स्पष्ट रूप से सामने आए हैं। इन प्रभावों ने पारंपरिक जीवन-मूल्यों, सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक पहचान के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। विशेष रूप से विकासशील समाजों में वैश्वीकरण का प्रभाव असंतुलित रूप में दिखाई देता है।

पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता प्रभाव भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण का सबसे प्रमुख नकारात्मक पक्ष है। पश्चिमी जीवन-शैली, फैशन, खान-पान और उपभोग की प्रवृत्तियाँ भारतीय समाज, विशेषकर युवाओं, को तेजी से प्रभावित कर रही हैं। परिणामस्वरूप पारंपरिक रीति-रिवाज, स्थानीय परिधान और स्वदेशी खान-पान के प्रति आकर्षण कम होता जा रहा है (Tomlinson, 1999)। यह स्थिति सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता को कमजोर करती है।

उपभोक्तावाद और भौतिकवाद का प्रसार भी वैश्वीकरण का एक गंभीर दुष्परिणाम है। विज्ञापन और मीडिया के माध्यम से भोगवादी जीवन-शैली को सफलता और सुख का पर्याय प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे नैतिक मूल्यों, सादगी और सामूहिकता की भावना में ह्रास देखा जा रहा है। व्यक्ति केंद्रित सोच समाज में बढ़ती प्रतिस्पर्धा, तनाव और असंतोष को जन्म दे रही है (Bauman, 2001)।

स्थानीय भाषाओं और लोकसंस्कृतियों पर भी वैश्वीकरण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजी भाषा का बढ़ता वर्चस्व और वैश्विक मीडिया की एकरूपता के कारण कई क्षेत्रीय भाषाएँ और लोककलाएँ हाशिए पर चली गई हैं। इससे सांस्कृतिक विविधता के क्षरण और सांस्कृतिक समरूपता का खतरा उत्पन्न हो गया है (UNESCO, 2009)।

पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में भी विघटन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। संयुक्त परिवार व्यवस्था का कमजोर होना, पीढ़ियों के बीच संवाद की कमी और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना में कमी, वैश्वीकरण से जुड़ी जीवन-शैली का परिणाम मानी जा सकती है (Beck, 2000)।

इस प्रकार, सांस्कृतिक परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव भारतीय संस्कृति की जड़ों को प्रभावित कर रहे हैं। यदि इन प्रभावों को समय रहते समझकर संतुलित न किया गया, तो सांस्कृतिक पहचान और मूल्य-व्यवस्था के समक्ष गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है।

भारतीय संस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता

वैश्वीकरण के तीव्र प्रभावों के बीच भारतीय संस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। संस्कृति केवल परंपराओं, रीति-रिवाजों या कलात्मक अभिव्यक्तियों का संग्रह नहीं होती, बल्कि वह समाज की सामूहिक चेतना, मूल्य-व्यवस्था और पहचान का आधार होती है। जब किसी समाज की संस्कृति कमजोर पड़ती है, तो उसकी सामाजिक एकता और नैतिक दिशा भी प्रभावित होती है। इसी कारण भारतीय संस्कृति के संरक्षण का प्रश्न केवल अतीत से जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य दोनों से संबंधित है।

भारतीय संस्कृति ने सदैव सहिष्णुता, सह-अस्तित्व और मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दी है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी अवधारणाएँ आज के वैश्विक संघर्ष और असहिष्णुता के दौर में अत्यंत प्रासंगिक हैं। किंतु वैश्वीकरण के प्रभाव में उपभोक्तावाद, व्यक्तिवाद और त्वरित लाभ की मानसिकता इन मूल्यों को कमजोर कर रही है। ऐसी स्थिति में सांस्कृतिक संरक्षण समाज को नैतिक संतुलन प्रदान करने का कार्य करता है (Sen, 2005)।

सांस्कृतिक पहचान का संरक्षण विशेष रूप से विकासशील देशों के लिए आवश्यक है। वैश्विक सांस्कृतिक प्रवाह अक्सर शक्तिशाली देशों की संस्कृति को केंद्र में रखता है, जिससे स्थानीय और स्वदेशी संस्कृतियाँ हाशिए पर चली जाती हैं। यदि भारतीय संस्कृति का सचेत रूप से संरक्षण नहीं किया गया, तो भाषाएँ, लोकपरंपराएँ, लोककलाएँ और पारंपरिक ज्ञान-प्रणालियाँ धीरे-धीरे लुप्त हो सकती हैं (UNESCO, 2009)। यह केवल सांस्कृतिक हानि नहीं होगी, बल्कि ज्ञान और अनुभव की सदियों पुरानी विरासत का भी नुकसान होगा।

संरक्षण का अर्थ संस्कृति को जड़ बनाना नहीं है। भारतीय संस्कृति की विशेषता उसका लचीला और आत्मसात करने वाला स्वरूप रहा है। इसलिए संरक्षण का उद्देश्य यह होना चाहिए कि संस्कृति अपने मूल मूल्यों और आत्मा को बनाए रखते हुए समयानुकूल परिवर्तन को स्वीकार करे। परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन ही सांस्कृतिक संरक्षण की कुंजी है (Nanda, 2009)।

इसके अतिरिक्त, सांस्कृतिक संरक्षण सामाजिक उत्तरदायित्व से भी जुड़ा हुआ है। यह केवल सरकार या संस्थाओं का कार्य नहीं है, बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेषकर शिक्षा जगत, मीडिया और युवाओं की इसमें सक्रिय भूमिका आवश्यक है। जब तक समाज स्वयं अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूक और संवेदनशील नहीं होगा, तब तक संरक्षण के प्रयास प्रभावी नहीं हो सकते।

इस प्रकार, भारतीय संस्कृति का संरक्षण वैश्वीकरण के युग में एक विकल्प नहीं, बल्कि एक अनिवार्यता है। यह संरक्षण न केवल अतीत को सुरक्षित रखने के लिए, बल्कि भविष्य को सांस्कृतिक रूप से सशक्त और संतुलित बनाने के लिए आवश्यक है।

संरक्षण के उपाय एवं प्रयास

वैश्वीकरण के प्रभावों के बीच भारतीय संस्कृति के संरक्षण के लिए ठोस, व्यावहारिक और समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। संस्कृति का संरक्षण केवल स्मृति-चिह्नों या उत्सवों तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे दैनिक जीवन, शिक्षा और सामाजिक व्यवहार का सक्रिय हिस्सा बनाया जाना चाहिए। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर सुनियोजित उपाय आवश्यक हैं।

शिक्षा प्रणाली सांस्कृतिक संरक्षण का सबसे प्रभावी माध्यम है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भारतीय इतिहास, संस्कृति, दर्शन, लोकपरंपराओं और भाषाओं को समुचित स्थान दिया जाना चाहिए। पाठ्यक्रमों के माध्यम से छात्रों में सांस्कृतिक चेतना, मूल्य-बोध और अपनी विरासत के प्रति सम्मान विकसित किया जा सकता है। साथ ही, पारंपरिक ज्ञान-प्रणालियों जैसे योग, आयुर्वेद और भारतीय दर्शन को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करना आवश्यक है (NCERT, 2018)।

मीडिया और साहित्य भी सांस्कृतिक संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। टेलीविजन, सिनेमा, डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया के माध्यम से भारतीय संस्कृति को सकारात्मक और संतुलित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि मीडिया केवल उपभोक्तावादी मूल्यों को बढ़ावा देगा, तो सांस्कृतिक असंतुलन गहराएगा। इसके विपरीत, लोककथाओं, परंपराओं और सामाजिक मूल्यों पर आधारित रचनात्मक सामग्री सांस्कृतिक जागरूकता को सुदृढ़ कर सकती है (Kellner, 1995)।

लोककलाओं, हस्तशिल्प और पारंपरिक व्यवसायों का संरक्षण भी अत्यंत आवश्यक है। कलाकारों और शिल्पकारों को आर्थिक, सामाजिक और संस्थागत समर्थन प्रदान कर उनके जीवन-यापन को सुरक्षित बनाया जा सकता है। सांस्कृतिक उत्सव, मेलों और प्रदर्शनियों के माध्यम से लोकसंस्कृति को न केवल जीवित रखा जा सकता है, बल्कि उसे नई पीढ़ी से भी जोड़ा जा सकता है (UNESCO, 2013)।

सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। नीतियों, योजनाओं और कानूनों के माध्यम से सांस्कृतिक धरोहरों, भाषाओं और परंपराओं का संरक्षण किया जा सकता है। साथ ही, स्थानीय समुदायों की सहभागिता सुनिश्चित करना आवश्यक है, क्योंकि संस्कृति का वास्तविक वाहक समाज स्वयं होता है (Thapar, 2004)।

इस प्रकार, भारतीय संस्कृति के संरक्षण के उपाय तभी प्रभावी हो सकते हैं, जब वे समग्र दृष्टिकोण पर आधारित हों। शिक्षा, मीडिया, समाज और राज्य के संयुक्त प्रयासों से ही वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक संतुलन और निरंतरता बनाए रखी जा सकती है।

वैश्वीकरण के युग में चुनौतियाँ

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में भारतीय संस्कृति के समक्ष अनेक जटिल और बहुस्तरीय चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। ये चुनौतियाँ केवल सांस्कृतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक स्तर पर भी गहरा प्रभाव डालती हैं। बदलती जीवन-शैली, तकनीकी प्रभुत्व और वैश्विक बाजार की प्राथमिकताएँ सांस्कृतिक संतुलन को लगातार चुनौती दे रही हैं।

सबसे बड़ी चुनौती युवा पीढ़ी और सांस्कृतिक चेतना से जुड़ी है। वैश्विक मीडिया, सोशल नेटवर्किंग साइट्स और डिजिटल मनोरंजन के प्रभाव में युवा वर्ग तेजी से वैश्विक संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक मूल्यों, भाषाओं और रीति-रिवाजों के प्रति रुचि कम होती जा रही है। पीढ़ियों के बीच संवाद की कमी से सांस्कृतिक निरंतरता बाधित हो रही है (Tapscott, 2009)।

स्थानीय और क्षेत्रीय संस्कृतियों पर भी गंभीर संकट दिखाई देता है। वैश्विक संस्कृति प्रायः एकरूपता को बढ़ावा देती है, जिससे स्थानीय परंपराएँ, बोलियाँ और लोककलाएँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगती हैं। यह स्थिति सांस्कृतिक विविधता के लिए खतरा उत्पन्न करती है, जो भारतीय संस्कृति की मूल शक्ति रही है (UNESCO, 2009)।

तकनीकी विकास स्वयं में चुनौती और अवसर दोनों है। डिजिटल माध्यमों ने संस्कृति के प्रसार को आसान बनाया है, किंतु साथ ही उन्होंने सतही उपभोग और त्वरित मनोरंजन को भी बढ़ावा दिया है। सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ कई बार बाजार की माँग के अनुसार ढल जाती हैं, जिससे उनकी मौलिकता और गहराई प्रभावित होती है (Castells, 2000)।

एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौती सांस्कृतिक असंतुलन और पहचान के संकट की है। जब वैश्विक और स्थानीय मूल्यों के बीच स्पष्ट समन्वय नहीं बन पाता, तब व्यक्ति भ्रम और द्वंद्व की स्थिति में आ जाता है। यह स्थिति सामाजिक तनाव, मूल्य-संकट और सांस्कृतिक विच्छेदन को जन्म दे सकती है (Bauman, 2001)।

इस प्रकार, वैश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति के समक्ष चुनौतियाँ जटिल और गहन हैं। इनसे निपटने के लिए केवल संरक्षण के प्रयास पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि एक सजग, विवेकपूर्ण और रचनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित कर सके।

संतुलन की आवश्यकता: संरक्षण एवं परिवर्तन

वैश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति के समक्ष सबसे बड़ी आवश्यकता संरक्षण और परिवर्तन के बीच संतुलन स्थापित करने की है। संस्कृति कोई स्थिर या जड़ संरचना नहीं होती, बल्कि वह समय, परिस्थितियों और समाज के साथ निरंतर विकसित होती रहती है। इसलिए न तो परंपरा से पूर्णतः चिपके रहना व्यवहारिक है और न ही परिवर्तन के नाम पर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कट जाना उचित है। संतुलित दृष्टिकोण ही भारतीय संस्कृति को जीवंत और प्रासंगिक बनाए रख सकता है।

भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है कि उसने बाहरी प्रभावों को पूरी तरह अस्वीकार करने के बजाय उन्हें आत्मसात किया है। ऐतिहासिक रूप से देखें तो भारतीय समाज ने विभिन्न संस्कृतियों, विचारधाराओं और जीवन-पद्धतियों को अपनाते हुए भी अपनी मौलिक पहचान को बनाए रखा है। यही आत्मसात करने की क्षमता आज के वैश्वीकरण के संदर्भ में भी मार्गदर्शक बन सकती है (Radhakrishnan, 1951)।

संरक्षण और परिवर्तन के संतुलन में 'चयनात्मक ग्रहण' की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ यह है कि वैश्विक प्रभावों में से वही तत्व अपनाए जाएँ, जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के अनुकूल हों और समाज के समग्र विकास में सहायक हों। उदाहरण के लिए, तकनीकी प्रगति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैश्विक संवाद को अपनाया जा सकता है, जबकि उपभोक्तावादी अतिरेक और सांस्कृतिक अनुकरण से सावधानी बरतनी आवश्यक है (Sen, 2005)।

शिक्षा और सामाजिक संवाद इस संतुलन को स्थापित करने के प्रभावी माध्यम हो सकते हैं। जब नई पीढ़ी को अपनी संस्कृति की जड़ों, उसके मूल्यों और उसकी प्रासंगिकता से परिचित कराया जाता है, तब वह आधुनिकता को भी अधिक विवेकपूर्ण ढंग से स्वीकार कर पाती है। इससे सांस्कृतिक आत्मविश्वास विकसित होता है, जो परिवर्तन को भय के बजाय अवसर के रूप में देखने में सहायक होता है (Nanda, 2009)।

संतुलन की यह प्रक्रिया केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि सामाजिक और नीतिगत स्तर पर भी आवश्यक है। सांस्कृतिक नीतियाँ ऐसी हों, जो परंपराओं के संरक्षण के साथ-साथ रचनात्मक नवाचार को भी प्रोत्साहित करें। लोककलाओं, भाषाओं और सांस्कृतिक उद्योगों को आधुनिक संदर्भ में पुनर्परिभाषित करना इसी संतुलन का उदाहरण है।

इस प्रकार, संरक्षण और परिवर्तन के बीच संतुलन भारतीय संस्कृति के भविष्य की कुंजी है। यही संतुलन वैश्वीकरण के दबावों के बीच सांस्कृतिक निरंतरता, पहचान और सृजनात्मकता को बनाए रखने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यह प्रक्रिया न तो पूर्णतः नकारात्मक है और न ही पूर्णतः सकारात्मक। वैश्वीकरण ने जहाँ भारतीय संस्कृति के समक्ष नई चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं, वहीं उसने उसके विस्तार, वैश्विक पहचान और पुनर्संरचना के अवसर भी उपलब्ध कराए हैं। इस द्विधात्मक स्थिति को समझना ही इस शोध-पत्र का मूल उद्देश्य रहा है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैश्वीकरण के प्रभाव भारतीय समाज के जीवन-शैली, मूल्यों, पारिवारिक संरचना, भाषा और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। उपभोक्तावाद, भौतिकवाद और पाश्चात्य प्रभावों के कारण पारंपरिक मूल्यों और स्थानीय संस्कृतियों पर दबाव बढ़ा है। इसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक पहचान और नैतिक संतुलन के समक्ष संकट की स्थिति उत्पन्न हुई है।

साथ ही, यह भी सत्य है कि वैश्वीकरण ने भारतीय संस्कृति को अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया है। योग, आयुर्वेद, संगीत, नृत्य और भारतीय दर्शन को वैश्विक स्तर पर मान्यता मिली है, जिससे सांस्कृतिक आत्मविश्वास सुदृढ़ हुआ है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान, शिक्षा और तकनीकी विकास ने भारतीय समाज को अधिक खुला और संवादशील बनाया है।

इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति की शक्ति उसका लचीला, समावेशी और आत्मसात करने वाला स्वरूप है। यदि भारतीय समाज विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए चयनात्मक ग्रहण की नीति पर चले, तो वह वैश्वीकरण के दबावों के बीच भी अपनी सांस्कृतिक मौलिकता को सुरक्षित रख सकता है। इसके लिए शिक्षा, मीडिया, नीति-निर्माण और सामाजिक सहभागिता की संयुक्त भूमिका अत्यंत आवश्यक है।

अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति का संरक्षण अतीत की रक्षा मात्र नहीं है, बल्कि यह भविष्य की सांस्कृतिक दिशा को निर्धारित करने की प्रक्रिया है। वैश्वीकरण के युग में संतुलन, जागरूकता और सांस्कृतिक आत्मबोध के माध्यम से ही भारतीय संस्कृति अपनी पहचान बनाए रखते हुए निरंतर विकसित हो सकती है।

संदर्भ सूची

1. Appadurai, A. (1996). *Modernity at Large: Cultural Dimensions of Globalization*. Minneapolis: University of Minnesota Press, पृ. 27-47d
2. Bauman, Z. (2001). *Globalization: The Human Consequences*. Cambridge: Polity Press, पृ. 64-89d
3. Beck, U. (2000). *What Is Globalization?* Cambridge: Polity Press, पृ. 19-42d
4. Béteille, A. (1991). *Society and Politics in India*. London: Athlone Press, पृ. 112-130d
5. Castells, M. (2000). *The Rise of the Network Society*. Oxford: Blackwell Publishers, पृ. 367-402d
6. Giddens, A. (1990). *The Consequences of Modernity*. Stanford: Stanford University Press, पृ. 52-74d
7. Kellner, D. (1995). *Media Culture: Cultural Studies, Identity and Politics*. London: Routledge, पृ. 1-25d
8. Nanda, M. (2009). *The God Market: How Globalization Is Making India More Hindu*. New Delhi: Penguin Books, पृ. 88-115d
9. Nayar, P. K. (2011). *Globalization and Culture*. New Delhi: Pearson Education, पृ. 41-67d
10. NCERT (2018) भारतीय संस्कृति एवं विरासत. नई दिल्ली: एनसीईआरटी, पृ. 15-38d
11. Radhakrishnan, S. (1951). *Indian Philosophy* (Vol. I). London: George Allen & Unwin, पृ. 22-56d
12. Rajadhyaksha, A. (2003). *Indian Cinema in the Time of Globalization*. New Delhi: Oxford University Press, पृ. 73-96d
13. Sen, A. (2005). *The Argumentative Indian*. New Delhi: Penguin Books, पृ. 285-312d
14. Sharma, R. S. (2010). भारतीय संस्कृति का इतिहास. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ. 1-29d
15. Singh, Y. (2012). *Culture, Change and Identity*. New Delhi: Rawat Publications, पृ. 101-128d
16. Thapar, R. (2004). *Cultural Pasts: Essays in Early Indian History*. New Delhi: Oxford University Press, पृ. 3-24d
17. Tomlinson, J. (1999). *Globalization and Culture*. Chicago: University of Chicago Press, पृ. 83-107d
18. UNESCO (2009). *Investing in Cultural Diversity and Intercultural Dialogue*. Paris: UNESCO Publishing, पृ. 45-62d
19. UNESCO (2013). *Creative Economy Report*. Paris: UNESCO, पृ. 155-178d
20. Tapscott, D. (2009). *Grown Up Digital: How the Net Generation Is Changing Your World*. New York: McGraw-Hill, पृ. 98-121d

आधुनिक भारत में खाद्य सुरक्षा और सहकारिता

डॉ० प्रियंका

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, नेहरू कॉलेज छिबरामऊ, कन्नौज, उ०प्र०

खाद्य सुरक्षा सतत् विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्राथमिक चिंताओं में से एक है। खाद्य सुरक्षा केवल बाजार में खाद्यान्नों की उपलब्धता पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि आम जन की इन वस्तुओं की बाजार से खरीद तक पहुँच और ये उपभोक्ताओं के लिए कितनी सुलभ हैं, इस पर भी निर्भर करती है। भंडारण की कमी, कटाई के बाद होने वाला नुकसान और अक्षम खाद्य वितरण प्रणालियाँ खाद्य सुरक्षा के लिए चुनौतियाँ उत्पन्न करती हैं। भारत सरकार ने 2023 में सहकारी क्षेत्र में विश्व के सबसे बड़े खाद्यान्न भंडारण कार्यक्रम की शुरुआत की। इस पहल के नवाचारपूर्ण दृष्टिकोण को रेखांकित करना और अनाज की खरीद और कुशल भंडारण के लिए प्राथमिक कृषि साख समितियों की भूमिका का मूल्यांकन करना, इस पहल के उद्देश्यों को साकार करने में सहायक है। वर्तमान में कृषि उपज की प्रभावी ग्रेडिंग, छंटाई और संचालन खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में मदद कर सकती है, वर्तमान में सहकारिताएं अब बहुआयामी और बहुउद्देश्यीय बन चुकी हैं और इन्हें खाद्य सुरक्षा के पुनरुत्पादक मॉडलों की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिससे सामूहिक विकास के दृष्टिकोण पर विश्वास रखते हुए अर्थव्यवस्था को निचले स्तर से देश में आवश्यक गति प्रदान की जा सके।

भारत के पास विश्व की कुल खेती योग्य भूमि (138 करोड़ हेक्टेयर) का 11 प्रतिशत (16 करोड़ हेक्टेयर) हिस्सा है, जबकि यहाँ विश्व की कुल जनसंख्या (790 करोड़) का 18 प्रतिशत (140 करोड़) भाग निवास करता है। यह संकेत करता है कि वैश्विक खेती योग्य भूमि का केवल 11 प्रतिशत हिस्सा होने के बावजूद, भारत को विश्व की 18 प्रतिशत जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। खाद्य एवं कृषि संगठन के 2021 के सांख्यिकीय आंकड़े दर्शाते हैं कि भारत का कुल खाद्यान्न उत्पादन 311 मिलियन मीट्रिक टन है, जबकि इसकी कुल भंडारण क्षमता केवल 145 मिलियन मीट्रिक टन है। इसका अर्थ है कि भंडारण क्षमता में 166 मिलियन मीट्रिक टन की कमी है।

जहाँ अन्य देश भंडारण संरचनाओं के मामले में पूरी तरह आत्मनिर्भर हैं, वहीं भारत में भंडारण अवसंरचना में 47 प्रतिशत की कमी है। भारत में अपर्याप्त भंडारण संरचनाओं की यह स्थायी बाधा कटाई के बाद होने वाले नुकसान और खाद्य वितरण प्रणालियों की अक्षमता के साथ लगातार बनी हुई है। इन सीमाओं के बीच, भारत सरकार द्वारा 2023 में सहकारी क्षेत्र में विश्व की सबसे बड़ी अनाज भंडारण योजना की शुरुआत खाद्य सुरक्षा के लिए एक वरदान के रूप में सामने आई है। इस पहल को प्राथमिक कृषि साख समितियाँ 'पैक्स' आगे बढ़ा सकती हैं। 'पैक्स' के विविधीकरण के साथ, इसकी भागीदारी कृषि इनपुट्स, ऋण और विविध अवसंरचना सेवाओं के प्रावधान तक विस्तृत किया जायेगा। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और उसे सक्षम बनाने में इनकी भागीदारी से सामुदायिक सशक्तीकरण, ग्रामीण विकास को बढ़ावा देकर किया जा सकता है।

भारत में 1.1 लाख से अधिक प्राथमिक कृषि साख समितियाँ हैं, जिनमें 13 करोड़ किसान सदस्य हैं। कृषि सहकारिताओं ने छोटे और सीमांत किसानों को विभिन्न व्यावसायिक मॉडलों के माध्यम से सहयोग प्रदान किया है, जहाँ कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए इनपुट सेवाएं उपलब्ध कराई गईं। ये व्यावसायिक मॉडल बाजार तक पहुँच, प्रौद्योगिकी, प्रशिक्षण और भंडारण संरचनाओं जैसी सेवाएं प्रदान करते हैं। तमिलनाडु में, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत 94 प्रतिशत उचित मूल्य की दुकानों का संचालन सहकारिताओं द्वारा किया जाता है। मदर डेयरी ने दूध और सब्जियाँ निश्चित दरों पर उपलब्ध कराईं। अमूल भारत में दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा देने वाली एक सफल सहकारी संस्था है, जिसकी कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ निम्न हैं-

S. No.	Title	Date
1.	Amul launches Fresh Milk in the United States of America - March 2024	23 rd March 2024
2.	GCMMF open branch in Kutch	16 th Sep. 2023
3.	Press Release - Asian Games 2022	04 th sep. 2023
4.	GCMMF - Won 11 Awards at exchange4media health and wellness awards	12 th aug. 2023
5.	GCMMF sales Turnover - 2022-23	1st april 2023
6.	Amul Organic - Official Partner - IPL	30 th March 2023

महाराष्ट्र में अकादमी ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज ने जनजातीय और ग्रामीण समुदायों के लिए अनाज बैंक स्थापित किए हैं, जहाँ सदस्य अतिरिक्त अनाज जमा कर सकते हैं और अनाज के रूप में ऋण प्राप्त कर सकते हैं, जिसे अगली फसल के समय चुकाया जा सकता है। राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन महासंघ (नेफेड) आवश्यक वस्तुओं जैसे दालें और प्याज का बफर स्टॉक बनाए रखता है। सहकारिताएं केंद्रीकृत खरीद और भंडारण प्रणाली के निर्माण के लिए एक सहभागी उपाय प्रस्तुत कर सकती हैं। वर्तमान में संचालन और प्रबंधन से जुड़ी समस्याएं 'पैक्स' स्तर पर खरीद और भंडारण प्रणालियों के क्रियान्वयन को सीमित करती हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सहकारिताओं को आर्थिक विकास के एक प्रभावी साधन के रूप में मान्यता दी है और उनके सामर्थ्य का उपयोग करने की आवश्यकता पर बल दिया है, जिसे 'सहकार से समृद्धि' के दृष्टिकोण में समाहित किया गया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में सहकारिता मंत्रालय ने 'पैक्स' के विविधीकरण के लिए एक दूरदर्शी योजना को भी प्रस्तुत करने की रूपरेखा तैयार की है।

वर्तमान भारत में खाद्य भंडारण संरचनाओं की अक्षमता और अपर्याप्तता तथा इनके खाद्य सुरक्षा पर संभावित प्रभाव का दस्तावेजीकरण किया गया है। खराब वेयरहाउसिंग अवसंरचना के कारण किसानों को संकटग्रस्त बिक्री करनी पड़ती है, जिससे उनको वित्तीय नुकसान होता है। खराब भंडारण संरचना के कारण प्रतिवर्ष कुल खाद्यान्न का 10-15 प्रतिशत नुकसान होता है, जिसका वित्तीय असर लगभग 90,000 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष होता है (गुलाटी एट अल., 2024)। खाद्य भंडारण प्रणालियों में सुधार करते हुए सहकारी मॉडल को जोखिम शमन और नुकसान में कमी लाने हेतु एक प्रशासनिक संरचना के रूप में मूल्यांकित किया गया है। भारतीय खाद्य निगम के गोदाम भंडारण अवसंरचना की कमी, अनाज की बर्बादी, गुणवत्ता में गिरावट, उच्च भंडारण लागत और खाद्यान्नों के अधिक लक्षित वितरण जैसी समस्याओं से ग्रस्त हैं।

पैक्स को विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त बनाया गया है। पीएमएफएमई योजना और कृषि अवसंरचना निधि जैसी योजनाओं ने 'पैक्स' को ग्रामीण आजीविका सुनिश्चित करने और सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में विशेष मदद की है। 31 मई, 2023 को भारत सरकार के सहकारिता मंत्रालय ने 'दुनिया की सबसे बड़ी अनाज भंडारण योजना' को मंजूरी दी, जिसके तहत 1.25 लाख करोड़ के निवेश को जुटाने का लक्ष्य है। यह योजना अगले पांच वर्षों में 700 लाख टन भंडारण क्षमता सृजित करने का उद्देश्य रखती है। इस पहल का लक्ष्य देशभर में 67,000 सक्रिय पैक्स को अतिरिक्त खाद्यान्न भंडारण क्षमता के निर्माण में शामिल करना है। इस परियोजना का एक प्रमुख उद्देश्य अपर्याप्त भंडारण क्षमता की समस्या का समाधान करना है, जो भारी मात्रा में फसल कटाई के बाद नुकसान का कारण रही है। उचित भंडारण सुविधाओं की कमी के कारण खाद्यान्न की कई बार हैडलिंग करनी पड़ती है, जिससे गुणवत्ता में गिरावट आती है और बर्बादी होती है। इसके अतिरिक्त, निकट भंडारण इकाइयों के अभाव में होने वाला अधिक परिवहन खर्च किसानों पर अतिरिक्त बोझ डालता है, जिससे उन्हें अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस परियोजना का उद्देश्य समुदाय स्तर पर एक मजबूत और विकेन्द्रीकृत भंडारण नेटवर्क स्थापित करना है, जिससे भंडारण क्षमता संबंधी चुनौतियों को कम किया जा सके और कृषि आपूर्ति श्रृंखला की समग्र दक्षता में सुधार हो। 'पैक्स' स्तर पर गोदामों का निर्माण कर भंडारण ढांचे का विकेन्द्रीकरण किया जाए। किसान स्थानीय स्तर पर अपनी उपज संग्रहित कर सकेंगे, जिससे परिवहन लागत और फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान में कमी आएगी। 'पैक्स' प्रत्यक्ष खरीद एजेंसी के रूप में कार्य कर सकती हैं, जिससे न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद में सुधार आयेगा। यह पहल किसानों की आय बढ़ाने में मदद करेगी और 'पैक्स' को बहु-कार्यात्मक व्यावसायिक इकाइयों में परिवर्तित करेगी। 'पैक्स' के लिए भंडारण अवसंरचना की सुशासन प्रणाली को सुनिश्चित करने हेतु खाद्यान्न भंडारण की दिशा में 2025 तक की प्रगति संकेतकों में 11 राज्यों की 11 'पैक्स' में गोदामों का निर्माण शामिल है। इसके अतिरिक्त, 500 'पैक्स' में गोदाम निर्माण हेतु शिलान्यास भी शामिल हैं, जो इस परियोजना के तेजी से विस्तारीकरण और भारत सरकार की योजना को मूर्त रूप देने की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। इसका क्रियान्वयन भारत सरकार की विभिन्न मौजूदा योजनाओं जैसे एआरएफ, एएमआई, कृषि यंत्रीकरण और पीएमएफएमई के अभिसरण के माध्यम से किया जा रहा है। विभिन्न योजनाओं का एकीकरण संसाधनों का प्रभावी उपयोग और अधिकतम प्रभाव सुनिश्चित करता है।

देश में खाद्यान्न भंडारण नेटवर्क तैयार करने की समग्र योजना को संस्थागत सहायता प्रदान करने के लिए कृषि अवसंरचना कोष (एआईएफ), कृषि यंत्रीकरण उप मिशन (एएमआई), पीएमएफएमई, उप मिशन ऑन एग्रीकल्चरल मेकेनाइजेशन (एसएमएम), राष्ट्रीय कोल्ड चेन विकास योजना, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी), राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) और ग्रामीण भंडारण योजना प्रमुख भूमिका निभाएंगे। एएमआई योजना 'पैक्स' के गोदाम भवनों के लिए 33 प्रतिशत की सब्सिडी प्रदान करती है। देश में लगभग 14 करोड़ किसान परिवारों के कृषि अवसंरचना विकास से संबंधित मुद्दों को संबोधित करने के लिए भारत सरकार ने 15 मई, 2020 को एक लाख करोड़ रुपये के कृषि अवसंरचना कोष (एआईएफ) की घोषणा की थी, जिसे कृषि एवं किसान कल्याण विभाग द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। इस योजना का उद्देश्य व्यवहार्य कृषि परियोजनाओं के लिए मध्यम और दीर्घकालिक वित्त जुटाना और आकर्षित करना है। एआईएफ के तहत लिए गए ऋणों पर 2 करोड़ रुपये की सीमा तक अधिकतम 7 वर्षों के लिए प्रति वर्ष 3 प्रतिशत ब्याज अनुदान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, नाबार्ड 'पैक्स' के लिए 1 प्रतिशत की अतिरिक्त ब्याज सब्सिडी भी प्रदान करता है। हालांकि, इस परियोजना में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, फिर भी इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। प्रमुख मुद्दों में से एक है-योजना को लागू करने में शामिल विभिन्न एजेंसियों के बीच समन्वय। इसमें सरकारी विभागों, सहकारी समितियों और वित्तीय संस्थानों सहित कई हितधारक शामिल हैं, जिससे निर्बाध समन्वय सुनिश्चित करना एक जटिल प्रक्रिया बन जाता है।

इसके अतिरिक्त समय पर धन वितरण और भूमि उपलब्धता जैसे कारक भी परियोजना की सफलता प्रभावित करते हैं। इन चुनौतियों का समाधान एक सुव्यवस्थित संस्थागत तंत्र से ही संभव है, जो क्रियान्वयन प्रक्रिया को सरल बना सके। यह अपेक्षा की जाती है कि सहकारिता मंत्रालय अन्य संबंधित मंत्रालयों/विभागों से परामर्श कर, इस योजना के लिए एक एकल खिड़की वाली प्रमुख कार्यान्वयन एजेंसी की भूमिका निभाएगा, ताकि समुदाय स्तर पर सदस्य-स्वामित्व एवं सदस्य-प्रबंधित भंडारण अवसंरचना नेटवर्क की स्थापना सुनिश्चित हो सके। इस योजना के लिए आवश्यक शासन तंत्र को दर्शाया गया है।

‘पैक्स’ के सदस्यों के लिए उपयुक्त जागरूकता और प्रशिक्षण सामग्री तैयार करना आवश्यक है। समर्पित प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रमों से ‘पैक्स’ के सदस्यों को स्थानीय स्तर पर भंडारण अवसंरचना स्थापित करने के लिए आवश्यक कौशल और क्षमताएं प्राप्त होंगी। इसके अलावा, वे तैयार भंडारण सुविधाओं का सुरक्षित खाद्यान्न भंडारण और निपटान हेतु प्रभावी उपयोग कर सकेंगे, जिससे खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित हो सकेगी।

प्रशिक्षण में इन्वेंट्री प्रबंधन, गुणवत्ता मूल्यांकन, डिजिटल खरीद प्लेटफॉर्म का और नियामकीय अनुपालन समय की आवश्यकता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों से पेशेवर प्रबंधकों की एक ऐसी टीम तैयार होगी जो सामुदायिक स्तर पर बेहतर सेवाएं प्रदान कर सकेगी और खाद्य सुरक्षा की दिशा में बनाई गई अवसंरचना का कुशलतापूर्वक संचालन कर सकेगी।

स्थानीय स्तर पर ‘पैक्स’ के लिए गोदाम निर्माण हेतु भूमि अधिग्रहण एक बड़ी चुनौती हो सकती है, विशेष रूप से घनी आबादी वाले क्षेत्रों में। खाद्यान्न भंडारण योजना के समयबद्ध क्रियान्वयन हेतु गाँव पंचायतों से परामर्श करते हुए छोटे-छोटे भूखंडों की पूलिंग करना आवश्यक है, जिससे स्थानीय स्तर पर भंडारण अवसंरचना की रूपरेखा बनाई जा सके। यह तंत्र ग्रामीण समुदाय की आवश्यकताओं को, विशेष रूप से घनी बस्तियों एवं तालुको में, पूरा करने में सहायक सिद्ध होगा।

पात्रता से पहले ‘पैक्स’ की वित्तीय वहन क्षमता का मूल्यांकन करना आवश्यक है। यद्यपि संस्थागत निकायों द्वारा ‘पैक्स’ को आत्मनिर्भर बनाने हेतु कई सरल वित्तपोषण उपाय उपलब्ध कराए गए हैं जैसे ब्याज में छूट, सब्सिडी और क्रेडिट गारंटी – फिर भी ‘पैक्स’ को यह सुनिश्चित करना होगा कि वे बाहरी सहायता बंद होने के बाद भी संचालन को दीर्घकालिक रूप से बनाए रखने हेतु स्पष्ट योजना तैयार करें। इस संदर्भ में ‘पैक्स’ को निम्नलिखित जोखिमों का मूल्यांकन करना चाहिए। शासन तंत्र की पारदर्शिता, संचालन और मानव संसाधन प्रबंधन, जवाबदेही, आंतरिक और बाहरी जोखिम। इस प्रकार की तैयारी से ‘पैक्स’ की भागीदारी को और अधिक प्रोत्साहन मिलेगा तथा योजना की सफलता सुनिश्चित होगी।

‘पैक्स’ का कंप्यूटरीकरण प्रदर्शन, पारदर्शिता और जवाबदेही को बेहतर बनाने के लिए प्रमुख प्रदर्शन संकेतकों की निगरानी हेतु डैशबोर्ड के उपयोग में सहायक होगा। डिजिटलीकरण और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के अनुप्रयोग से सभी संबंधित पक्ष डेटा आधारित सुशासन की ओर अग्रसर हो सकेंगे, जिससे ‘पैक्स’ के कार्यों में स्मार्ट तकनीक का समावेश होगा और कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने एक संस्थागत ढांचा तैयार किया है, जिसके अंतर्गत कार्यक्रमगत गतिविधियों की निगरानी एक अंतर-मंत्रालयी समिति द्वारा की जाती है। यह समिति प्रगति का आकलन करती है और समय पर रणनीतिक मार्गदर्शन व नीतिगत दिशा-निर्देश प्रदान करती है।

राज्य स्तर पर राज्य सहकारी विकास समितियाँ कार्यान्वयन की निगरानी करती हैं, जबकि जिला स्तर पर जिला सहकारी विकास समितियाँ योजना के सुचारु क्रियान्वयन की जिम्मेदारी संभालती हैं। इस प्रकार की संरचित व्यवस्था निगरानी, जवाबदेही और समस्याओं के समाधान में मददगार सिद्ध होती है।

भंडारण अवसंरचना की सफलता में किसानों की भागीदारी अत्यंत आवश्यक है। इसलिए किसानों को भंडारण और खरीद प्रक्रिया में शामिल करने के लिए जन-जागरूकता अभियानों की सख्त आवश्यकता है। ऐसे अभियान किसानों को शिक्षित करेंगे और उनकी भागीदारी को प्रोत्साहित करेंगे, जिससे योजना की स्वीकार्यता और प्रभावशीलता बढ़ेगी।

खाद्य सुरक्षा के दो प्रमुख घटक होते हैं बफर स्टॉक और सार्वजनिक वितरण प्रणाली। ‘पैक्स’ द्वारा संचालित यह पहल नियंत्रित भंडारण सुविधाएं प्रदान करेगी, जिससे फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान में कमी आएगी। ग्रामीण क्षेत्रों में भंडारण सुविधाओं का व्यापक नेटवर्क तैयार होने से निम्नलिखित लाभ होंगे: बफर स्टॉक की मजबूती, स्टॉक प्रबंधन में सुधार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दक्षता में वृद्धि।

इसके अलावा, ऑनलाइन खरीद प्लेटफॉर्म के माध्यम से ‘पैक्स’ किसानों और सरकारी एजेंसियों के साथ सीधे संवाद कर सकेंगे। परिणामस्वरूप, एक प्रभावी और कुशल शासन तंत्र विकसित होगा, जो गुणवत्तायुक्त भंडारण और संचालन, किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्ति, ग्रामीण आजीविका में सुधार और सतत् विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में सुधार करेगा। यदि इस पहल को ‘पैक्स’ के माध्यम से सामुदायिक स्तर पर सही ढंग से लागू किया जाए, तो यह सतत् विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होगी।

निष्कर्षतः विश्व की सबसे बड़ी खाद्यान्न भंडारण योजना एक परिवर्तनकारी कदम है, जिसका उद्देश्य सामुदायिक स्तर पर हस्तक्षेपों के माध्यम से खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना है। ‘पैक्स’, जो कि किसानों के सहकारी संगठन हैं, देशभर में खाद्यान्न भंडारण क्षमता स्थापित करके इस योजना की पहुँच और विस्तार सुनिश्चित करने को तैयार हैं। डिजिटल तकनीकों से सुसज्जित और योजनागत ढाँचे से जुड़े ‘पैक्स’, खाद्यान्न खरीद प्रक्रिया से जुड़ी दीर्घकालिक चुनौतियों को कम कर सकते हैं। गाँव स्तर पर विकेन्द्रीकृत भंडारण सुविधा किसानों की पहुँच बढ़ाएगी, परिवहन लागत और कटाई के बाद की हानि को कम करेगी। यह पहल खाद्य सुरक्षा को मजबूत करने के साथ-साथ मौजूदा अवसंरचना के आधुनिकीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम है। सुनियोजित शासन प्रणाली के माध्यम से ‘पैक्स’ को एक सक्षम संस्था के रूप में विकसित किया जा सकता है जो खाद्यान्न भंडारण का प्रबंधन कर सके। योजना का उद्देश्य अधिक ‘पैक्स’ को अपने दायरे में शामिल कर और विस्तार करना है। विभिन्न हितधारकों के बीच समन्वय तंत्र को सुदृढ़ करना मौजूदा चुनौतियों से पार पाने के लिए आवश्यक है। भूमि अधिग्रहण और धन आवंटन जैसे क्रियान्वयन संबंधी मुद्दों का समय पर समाधान सुनिश्चित करना इस परियोजना की सफलता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सुनियोजित दृष्टिकोण और सरकार के निरंतर समर्थन के साथ, इस पहल में भारत में खाद्यान्न भंडारण संरचना में क्रांति लाने, फसल के बाद होने वाले नुकसान को कम करने और किसानों को बेहतर भंडारण समाधान एवं उनकी उपज के लिए बेहतर मूल्य प्राप्ति के माध्यम से महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करने की क्षमता है।

संदर्भ सूची-

1. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली-110055, 2012
2. <https://rural.nic.in>
3. मिश्र, एस0के0 एवं वी0के0 पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, वर्ष 1998
4. कुरुक्षेत्र, जुलाई 2025
5. योजना, नवम्बर 2024
6. इण्डियन इकोनामी - एस.के. मिश्रा, वी.के. पुरी, संस्करण 2004
7. कुरुक्षेत्र, सितम्बर 2024
8. योजना, जून 2025
9. <https://agriinfra-dac-gov-in@>
10. <https://sarkariyojana.com/agriculture-infrastructure-fund/>
11. <https://amul.com/index.php>

गोदान के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक यथार्थ

डॉ० रीना देवी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, चौधरी ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय पूंडरी (कैथल)

सार:

गोदान मुंशी प्रेमचंद का अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास था। प्रेमचंद ने इसे 1936 में लिखा था। यह स्वीकार किया जा सकता है कि यह गोदान उपन्यास भारतीय ग्रामीण समाज की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इस उपन्यास ने भारत में ग्राम व्यवस्था की वास्तविकता को खूबसूरती से समझाया है। गोदान उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने सफलतापूर्वक यह दिखाया था कि होरी महतो नामक किसान साहूकार से इसलिए भयभीत था क्योंकि वहां साहूकार पैसे पर ब्याज दर बहुत अधिक वसुलता था। गोदान उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया था कि होरी साहूकार का पैसा चुकाने में असमर्थ था। यह स्वीकार किया जा सकता है कि गोदान उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने सफलतापूर्वक यह प्रदर्शित किया था कि गांवों में साहूकार हमेशा से किसानों का शोषण करते आए हैं। गोदान उपन्यास से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था अत्यधिक शोषणकारी है क्योंकि इसने गरीब लोगों का पूरी तरह से शोषण किया है। यह माना जा सकता है कि यह उपन्यास भारतीय गांवों की कठोर वास्तविकता को उजागर करता है और साथ ही भारतीय किसानों की आर्थिक स्थिति को भी दर्शाता है। मुंशी प्रेमचंद ने गोदान उपन्यास में विस्तार से बताया है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था अंधविश्वासों और झूठे रीति-रिवाजों से भरी हुई है। होरी ऋण और पारंपरिक रीति-रिवाजों से पीड़ित रहा है। मुंशी प्रेमचंद ने इस बात पर जोर दिया कि गोदान उपन्यास के मुख्य पात्र होरी के निधन के बाद उनके परिवार को पंडित जी को एक गाय दान करने के लिए मजबूर किया गया था। क्योंकि गाय को बहुत पवित्र और दयालु प्राणी माना जाता है इसलिए भारतीय गांवों में इसका दान करना एक महान परोपकार माना जाता है। लेकिन होरी के परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि वे पंडित जी को गाय दान कर सकें। इसलिए गाय के बदले होरी महतो के परिवार द्वारा पंडित जी को पैसे दिए गए थे। परंपरागत हिंदू समाज में, यह सभी के लिए एक सामान्य सिद्धांत है कि स्वर्ग में अच्छा स्थान पाने के लिए प्रत्येक हिंदू के लिए गाय दान करना अनिवार्य था। स्वर्ग के प्रलोभन में आकर, होरी महतो के परिवार को पंडित जी को एक गाय दान करने के लिए मजबूर किया गया था। इस शोध पत्र में लेखक ने मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' के माध्यम से भारतीय ग्रामीण समाज की सामाजिक वास्तविकता को उजागर करने का बेहतर प्रयास किया है।

मुख्य शब्द: गोदान, प्रेमचंद, होरी, उपन्यास

भूमिका:

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय समाज लंबे समय से अंधविश्वास और रूढ़ियों से पीड़ित रहा है। गोदान उपन्यास उस समय मुंशी प्रेमचंद द्वारा भारतीय समाज की वास्तविकता को दर्शाने के लिए लिखा गया था। इसका मतलब यह है कि यह उस समय के भारतीय समाज की वास्तविकता को प्रकट करने के लिए लिखा गया था जो तुच्छ अंधविश्वासों पर आधारित है। जब हम आज के भारतीय पारंपरिक हिंदू समाज को देखते हैं उनमें चली आती हुई कुरीतियों, अंधविश्वासों को, सामाजिक समस्याओं को देखते हैं तो बरबस सन् 1936 में प्रेमचन्द्र द्वारा लिखी हुई गोदान उपन्यास की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। गोदान उपन्यास आज भी उतना ही प्रासंगिक है क्योंकि उस समय की समस्या आज भी भारतीय ग्रामीण समाज में कायम है।

'गोदान' गो-दान यह हिंदू धर्माचार का शब्द है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि गाय का दान मृतक की आत्मा को शांति प्रदान करने में सहायक होता है। गोदान इसलिए कराया जाता है कि मृत हिंदू व्यक्ति आसानी से गाय (गो) दान के माध्यम से असाध्य वैतरणी नदी पार कर भगवान के घर (स्वर्गलोक) पहुँच जाए। हिंदू धर्म के सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। तत्पश्चात् एक हिंदू व्यक्ति की मृत्यु के बाद दान की हुई वह गाय ब्राह्मण को दान कर दी जाती है। यह हिंदू समाज का कर्मकाण्डी रूप है। यह कर्मकाण्डी रूप अमीर गरीब ऊँच-नीच नहीं देखता है। हिंदू समाज का व्यक्ति जिसका पूरा जीवन अभाव में बीतता है कष्ट में बीतता है उसे अपनी गाय अपनी मृत्यु के बाद दान करनी होगी। हिंदू समाज का व्यक्ति गाय ब्राह्मण को दान कर परलोक को सुखमय बनाना चाहता है इन सब ब्राह्मणवादी कर्मकाण्डी विधान से। यह कैसा ब्राह्मणवादी कर्मकाण्डी विधान है? गोदान उपन्यास में यह दिखाया गया है कि पूरा जीवन गाय पाने की साध मन में संजोए रख कर होरी महतो का मरना और उसके मरणोपरान्त गाय के एवज में परिवार की एकमात्र संचित सम्पत्ति सवा रूपया ब्राह्मण को यह कहकर दान कर देना की महाराज (ब्राह्मण) होरी के घर में न गाय है न बछिया है न पैसा है। यही (सवा रूपया) पैसे हैं यही होरी का गोदान है।' यह व्यंग और करुणा से भरा एक कर्मकाण्डी आर्थिक शोषण का सामाजिक षड्यन्त्र नहीं है तो क्या है? इस उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने भारतीय ब्राह्मणवादी पारंपरिक रीति-रिवाजों पर आपत्ति जताई थी। इस उपन्यास के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद यह कहना चाहता है कि ब्राह्मणवादी अनुष्ठान एक हिंदू व्यक्ति के लिए अच्छे नहीं हैं क्योंकि वे अतार्किक आस्था और अतार्किक विश्वास पर आधारित हैं। इस उपन्यास

के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद यह कहना चाहता है कि इन ब्राह्मणवादी अनुष्ठानों में कोई गुण और तर्क नहीं है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मुंशी प्रेमचंद ने हिंदू धर्म की निरंतर चली आ रही ब्राह्मणवादी रस्मों पर गंभीर चिन्ता जताई थी² यह उपन्यास ग्रामीण हिंदू समाज की सामाजिक और आर्थिक असमानता को दर्शाता है। इस उपन्यास के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद ने भारतीय निरक्षर हिंदू ग्रामीण समाज को जागृत करने का प्रयास किया है।

गोदान के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक यथार्थ

इस गोदान उपन्यास में लेखक यह उजागर करने का प्रयास करता है कि 'गोदान' उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक यथार्थ ही भारतीय ग्रामीण जीवन की गरीबी, शोषण, जातिगत भेदभाव और सामंती व्यवस्था की क्रूर सच्चाई को दर्शाता है क्योंकि भारतीय सामाजिक व्यवस्था की संरचना ही ऐसी है। जहाँ होरी जैसे किसान कर्ज और परंपराओं के बोझ तले पिसते हैं। गोदान उपन्यास हमें बताता है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी कई प्रकार के सामाजिक भेदभाव मौजूद हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में जाति के आधार पर सामाजिक भेदभाव बहुत स्पष्ट है और इस उपन्यास में होरी महतो को भी जाति के आधार पर भेदभाव का सामना करना पड़ा है³ यह उपन्यास ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच के अंतर, मानवीय रिश्तों में गिरावट और सामाजिक रूढ़ियों के दमनकारी प्रभाव को उजागर करता है, जो आज भी प्रासंगिक है और यह 'गोदान' उपन्यास शोषण के अंतहीन चक्र को चित्रित करता है। परंपरागत हिंदू समाज में, मृतकों के कल्याण के लिए धन दान करना एक सामान्य सिद्धांत है यहां भी ऐसा ही है मृत आत्मा की शांति के लिए गाय दान की जाती है। इसका अर्थ यह था कि गाय का दान स्वर्ग प्राप्त करने का सरल मार्ग है। इसलिए इस उपन्यास का नाम गोदान मुंशी प्रेमचंद द्वारा चुना गया था। गोदान उपन्यास के कुछ मूलभूत सामाजिक यथार्थ हैं जिनकी चर्चा नीचे की पंक्तियों में की गई है।

गोदान में मुख्य सामाजिक यथार्थ :

किसान का शोषण: प्रेमचंद के गोदान उपन्यास में होरी महतो के माध्यम से यह दिखाया गया है कि किस तरह जमींदार, महाजन, पुरोहित और सरकारी अधिकारी मिलकर किसान का हर तरह से शोषण करते हैं उसे कर्ज के जाल में फंसाते हैं और उसकी जमीन-जायदाद छीन लेते हैं

जातिगत भेदभाव: गोदान उपन्यास में उच्च और निम्न जातियों के बीच की खाई, सामाजिक मानदंडों और अन्याय को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दलितों और गरीबों के साथ कैसा व्यवहार परंपरागत हिंदू समाज में किया जाता है।

साहूकारों और कर्ज का दुष्चक्र: यह माना जा सकता है कि यह उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि पीढ़ी दर पीढ़ी ऋण लेना और फिर कर्ज में डूब जाना जो भारतीय किसान का भाग्य बन जाता है यह उपन्यास 'गोदान' की केंद्रीय वास्तविकता है।

आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद: इस उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने आदर्शवाद की बजाय, भोगे हुए यथार्थ को महत्व दिया है और दिखाया है कि कैसे एक सामान्य हिंदू व्यक्ति अपनी सामाजिक परिस्थितियों का शिकार होता है

ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच संघर्ष इस उपन्यास में, मुंशी प्रेमचंद ने गांव के सरल जीवन और भारतीय शहर के दिखावटी, आधुनिक भारतीय (लेकिन नैतिक रूप से भ्रष्ट) जीवन के बीच विरोधाभास और संघर्ष को दर्शाया है।

रूढ़िवादिता और बुराईयाँ: प्रेमचंद ने गोदान के इस उपन्यास में दिखाया है कि विवाह, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक रीति-रिवाजों, जैसे दहेज प्रथा और बेमेल विवाहों के नाम पर होने वाला दिखावा और दबाव किस प्रकार सामाजिक बुराई को जन्म देता है।

मानवीय संवेदनशीलता और रिश्तों का क्षरण: मुंशी प्रेमचंद ने गोदान उपन्यास में जीवनशैली में बदलाव और आर्थिक दबावों के कारण पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों में आई दूरी और असंवेदनशीलता को दर्शाया है।

इस उपन्यास के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद यह कहना चाहता है कि भारतीय समाज के हर हिंदू की तरह होरी भी गाय खरीदना चाहता था। क्योंकि हिंदू परिवार में घर में गाय की उपस्थिति शुभ मानी जाती है। साथ ही होरी का मानना है कि एक गाय उनके परिवार की कुछ भौतिक जरूरतों को पूरा कर सकती है। होरी की एकमात्र इच्छा अपने परिवार की दूध की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक गाय खरीदने की थी। लेकिन होरी के पास गाय खरीदने के लिए पैसे नहीं थे। उसकी खेती अच्छी नहीं चल रही थी। होरी ने गाय खरीदने के लिए कुछ पैसे जुटाने की कोशिश की, लेकिन सभी प्रयास विफल रहे। उसने साहूकार से कुछ पैसे लिए थे इसलिए वह साहूकार का कर्जदार बन गया था। पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण होरी बीमार हो गया था। बीमारी के बाद होरी की मृत्यु हो गई और गाय खरीदने की उसकी इच्छा अभी भी अधूरी रह गई थी। यदि कोई व्यक्ति उस समय के भारत को समझना चाहता है, तो उसे निश्चित रूप से 'गोदान' का उपन्यास पढ़ना चाहिए क्योंकि इसमें उस समय और स्थान की परिस्थितियों का सटीक वर्णन किया गया है। होरी की गहरी पीड़ा पाठकों को मुंशी प्रेमचंद गहरी सहानुभूति से भर देती है⁴ प्रारंभ में, संयुक्त परिवार के विघटन का दर्द होरी को तोड़ देता है, लेकिन गाय दान करने की उसकी छोटी सी इच्छा उसे सहारा देती है, और वह इसी छोटी सी इच्छा को मन में लिए इस संसार से विदा लेता है।

यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता पूर्व के भारत का एक आकर्षक परिचय देने वाली यह उपन्यास गोदान एक साथ एक ग्रामीण नृवंश-विज्ञान, एक मार्मिक मानवीय वृत्तांत और एक अंत-दृष्टिपूर्ण औपनिवेशिक इतिहास एक लेखा-जोखा है। यह कहा जा सकता है कि गोदान में, प्रेमचंद ने एक गरीब किसान होरी और उसके परिवार के अस्तित्व और आत्मसम्मान के लिए संघर्ष की कहानी के माध्यम से उत्तर भारतीय गांव में आर्थिक और सामाजिक संघर्षों को खूबसूरती से चित्रित किया है। यह कहना चाहता है कि गोदान उपन्यास होरी और उसके परिवार के अस्तित्व के लिए किए गए संघर्ष की कहानी थी। उनका संघर्ष अपने गांव में बेहतर जीवन के लिए था⁵

गोदान स्वतंत्रता-पूर्व का उपन्यास था और इसमें गांवों के वातावरण का व्यापक रूप से वर्णन किया गया है। मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित 'गोदान' (गाय का उपहार) औपनिवेशिक भारत में रहने वाले एक गरीब किसान होरी महतो के दुखद जीवन की मार्मिक कहानी है। होरी महतो गाय का मालिक बनने का सपना देखता है, लेकिन कर्ज, जमींदारों, साहूकारों और पुजारियों के शोषण और ग्रामीण जीवन की कठोर वास्तविकताओं से कुचल जाता है। यह उपन्यास

गरीबी, जाति, सामाजिक अन्याय और महिलाओं के संघर्ष जैसे विषयों को उजागर करता है, जबकि होरी अपनी गरिमा बनाए रखने और अपने पवित्र कर्तव्य (धर्म) को निभाने का प्रयास करता है⁶ गाय होरी के लिए धार्मिक और सामाजिक दोनों ही तरह से प्रतिष्ठा का प्रतीक थी। गाय खरीदकर वह खुद को एक मजबूत किसान साबित करना चाहता है। उसे लगता है कि गाय खरीदकर वह अपने समाज में सफल व्यक्ति बन सकता है। उसे लगता है कि गाय खरीदने से उसके गांव में उसकी सामाजिक स्थिति सुधर जाएगी। इस कदम से गांव में उसकी छवि और सम्मान में सुधार होगा।

इस उपन्यास के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद यह कहना चाहता है कि समृद्धि और मोक्ष के प्रतीक गाय को खरीदने के उसके अथक प्रयास अंततः उसकी मृत्यु का कारण बनते हैं। मृत्यु के बाद उसका अंतिम कार्य अपनी पत्नी को प्रतीकात्मक रूप से प्याय का उपहार देना होता है, जो दुख के अंतहीन चक्र को दर्शाता है⁸ होरी सनातन हिंदू धर्म के सभी रीति-रिवाजों का पालन करना चाहता है, लेकिन खराब आर्थिक स्थिति के कारण वह ऐसा ठीक से नहीं कर पाता है। क्योंकि होरी मेहतो का मानना है कि यदि वह हिंदू धर्म के सभी रीति-रिवाजों का पालन करेगा तो वह स्वर्ग के लिए पात्र होगा। यह उपन्यास दर्शाता है कि हिंदू समाज की प्राचीन पारंपरिक रस्मों ने गरीब लोगों को किस प्रकार प्रभावित किया।

प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में भारतीय ग्रामीण महिलाओं की स्थिति, उनके सामाजिक शोषण और उनके भीतर पनपने वाले प्रतिरोध को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है, जहां धनिया जैसी महिला पात्रों ने सामाजिक रूढ़ियों और सामाजिक रीति-रिवाजों के खिलाफ आवाज उठाई थी⁹ और झुनिया ने भारतीय सामाजिक बाधाओं को तोड़कर अपने नारी अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी थी। प्रेमचंद भारतीय ग्रामीण महिलाओं को न केवल समस्याग्रस्त मानते थे, बल्कि उन्हें संघर्षरत, सशक्त महिलाएं और मानव जीवन के रथ का एक समान पहिया भी मानते थे¹⁰, जो भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

निष्कर्ष

यह स्वीकार किया जा सकता है कि यह गोदान उपन्यास एक दर्दनाक उपन्यास था जो मुख्य पात्र होरी मेहतो के जीवन और अस्तित्व के संघर्ष पर आधारित था। इस उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने दिखाया है की होरी मेहतो गोदान में एक बहुत ही मेहनती किसान था लेकिन उसका सारा संघर्ष व्यर्थ साबित हुआ था क्योंकि उसके पास गाय खरीदने की क्षमता नहीं थी। गाय खरीदना होरी मेहतो की आखिरी इच्छा थी लेकिन उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। लेकिन हिंदू धर्म की रीति-रिवाजों के अनुसार, होरी मेहतो की मृत्यु के बाद गाय को पंडित जी को दान करना आवश्यक है। यह उपन्यास दर्शाता है कि परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु होने पर किसी व्यक्ति को गाय दान करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। यह उपन्यास दर्शाता है कि किस प्रकार हिंदू समाज की रूढ़िवादी रीति-रिवाजों ने भारतीय गांवों के गरीब लोगों का शोषण किया। इस उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने दिखाया है कि भारतीय संकीर्ण रीति-रिवाज किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके परिवार को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। यह उपन्यास दिखाता है कि कैसे साहूकार किसानों को उच्च ब्याज दर पर ऋण देकर उनका शोषण करते हैं। मुंशी प्रेमचंद ने इसे विस्तार से बताया है की इस साहूकार व्यवस्था ने गरीबों का आर्थिक रूप से बहुत शोषण किया है। यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का उपन्यास 'गोदान' एक यथार्थवादी उपन्यास था और यह 'गोदान' उपन्यास भारतीय सामाजिक व्यवस्था की सही तस्वीर दिखाने में सफल साबित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. सुनीता, "उपन्यासकार प्रेमचंद की सामाजिक चेतना", साहित्य संहिता पत्रिका, 1.11, 2015, पृष्ठ-21-24.
2. कामना कौशिक, "गोदान": सामाजिक समस्याओं का दर्पण, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 13.1, 2025, पृष्ठ- 25-33.
3. नीलम कुमारी, "प्रेमचंद और हमारा समय", पूर्वोत्तर प्रभा पत्रिका, 1.1.2021, पृष्ठ -47-53.
4. किरण शर्मा, "मुंशी प्रेमचंद का 'गोदान': 20वीं सदी के प्रारंभिक भारतीय समाज और संस्कृति का प्रतिबिंब", कला और साहित्य पत्रिका, 4.2, 2025, पृष्ठ- 22-24.
5. कृतिका राय और सौम्या श्रीवास्तव, "प्रेमचंद के गोदान में जातिगत गतिशीलता का अनावरण", एसपीएल जर्नल ऑफ लिटरेरी हर्मेन्यूटिक्स: स्वतंत्र आलोचनात्मक सोच की एक द्विवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, 3.2.2023, पृष्ठ-207-218.
6. के. शाहीन और पी. बशीर खान, "शोषणकारी सामंती व्यवस्था: मुंशी के गोदान में सामाजिक-आर्थिक संघर्ष", थिंक इंडिया जर्नल, 12.10, 2019, पृष्ठ- 9696-9701.
7. कौशल कुमार शर्मा, "प्रेमचंद के उपन्यासों की सामाजिक उपादेयता", आईजेएलआरपी: इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लीडिंग रिसर्च पब्लिकेशन, 6.2.2025, पृष्ठ- 1-7.
8. मनमोहन मीणा, "प्रेमचंद के उपन्यासों का ऐतिहासिक संदर्भ और उनकी सामाजिक उपादेयता", आईजेएमआरएआईडीआर जर्नल ऑफ एडवांसेज इन डेवलपमेंटल रिसर्च, 16.1.2025, पृष्ठ -1-7.
9. सुरजान चौधरी, गोदान: स्त्री विश्लेषण, जर्नल ऑफ एडवांसेज इन डेवलपमेंटल रिसर्च, 16.1.2025, पृष्ठ -1-4.
10. किरण शर्मा, "गोदान में नारी सशक्तिकरण का चित्रण: एक आलोचनात्मक विश्लेषण." जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड कल्चरल स्टडीज, 3.6, 2024, पृष्ठ -28-30.

“हाशिए से मुख्यधारा तक: आधुनिक भारत में निम्न-वर्गीय (दलित) आंदोलनों का सामाजिक-ऐतिहासिक विश्लेषण”

प्रो० प्रियंका शर्मा

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, पंडित दीन दयाल उपाध्याय शासकीय गर्ल्स पीजी कॉलेज, राजाजीपुरम, लखनऊ

सारांश

भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना मूलतः वर्ण-आधारित रही है, जिसमें सामाजिक पदानुक्रम ने कुछ वर्गों को विशेषाधिकार प्रदान किए, जबकि एक विशाल जनसमूह को सदियों तक हाशिए पर धकेल दिया गया। जाति-व्यवस्था के अंतर्गत ‘शूद्र’ तथा तथाकथित ‘अस्पृश्य’ वर्ग सामाजिक अपमान, बहिष्कार और दमन के साथ-साथ आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संसाधनों से वंचना के शिकार रहे। यह संरचना ब्राह्मणवादी सामाजिक प्रभुत्व को सुदृढ़ करने का माध्यम बनी, जिसके परिणामस्वरूप निम्न-वर्गीय समुदायों का उत्पीड़न एक संस्थागत यथार्थ के रूप में स्थापित हो गया।

आधुनिकता के आगमन के साथ शिक्षा, तर्कबुद्धि और संवैधानिक चेतना के प्रसार ने इस जड़ सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी। समानता, स्वतंत्रता और न्याय जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति बढ़ती जागरूकता ने दलित समाज को संगठित होने तथा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलनों से लेकर बीसवीं शताब्दी के संगठित दलित आंदोलनों तक, यह संघर्ष सामाजिक प्रतिरोध से आगे बढ़कर राजनीतिक हस्तक्षेप और लोकतांत्रिक सहभागिता की दिशा में विकसित हुआ।

प्रस्तुत शोध दलित आंदोलनों के ऐतिहासिक विकास, वैचारिक पृष्ठभूमि और सामाजिक-राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार हाशिए पर स्थित समुदायों ने संगठित संघर्ष, सांस्कृतिक चेतना और राजनीतिक सक्रियता के माध्यम से मुख्यधारा में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

मुख्य शब्द: दलित, निम्न-वर्गीय आंदोलन, जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणवादी वर्चस्व, सामाजिक बहिष्कार, सामाजिक न्याय, आधुनिकता, शिक्षा एवं चेतना, राजनीतिक पहचान, लोकतांत्रिक सहभागिता

प्रस्तावना

‘दलित’ शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के ‘दलित’ शब्द से मानी जाती है, जिसका आशय है खुरकुचला हुआ, दबाया हुआ अथवा सामाजिक रूप से अपमानित। सामाजिक संदर्भ में यह शब्द उन वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है, जिन्हें भारतीय जाति-व्यवस्था ने ऐतिहासिक रूप से बहिष्कार, दमन और अमानवीय परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया। उन्नीसवीं शताब्दी के महान समाज सुधारक महात्मा ज्योतिराव गोविंदराव फुले ने इस शब्द का प्रयोग उन समुदायों के लिए किया, जिन्हें वर्ण-व्यवस्था के निचले पायदान पर रखकर मानवोचित अधिकारों से वंचित किया गया।

संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में ‘दलित’ शब्द मुख्यतः अनुसूचित जातियों के लिए प्रयुक्त होता है, किंतु दलित विमर्श के चिंतकों के अनुसार इसकी अवधारणा केवल संवैधानिक श्रेणी तक सीमित नहीं है। यह उन सभी समुदायों को समाहित करती है, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर संरचनात्मक वंचना के शिकार रहे हैं। भारतीय पौराणिक ग्रंथों और महाकाव्यों-रामायण तथा महाभारत-में वर्णित शंबूक और एकलव्य की कथाएँ जातिगत अन्याय की सांस्कृतिक जड़ों को उजागर करती हैं, जहाँ ज्ञान, साधना और प्रतिभा पर सामाजिक प्रतिबंध लगाए गए।

आधुनिक भारत में दलित प्रश्न केवल सामाजिक उत्पीड़न का विषय नहीं रहा, बल्कि वह एक सशक्त राजनीतिक और वैचारिक विमर्श के रूप में विकसित हुआ। औपनिवेशिक काल में शिक्षा, तर्कशीलता और संवैधानिक चेतना के प्रसार ने दलित समाज में आत्म-बोध और अधिकार-बोध को जन्म दिया। डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में दलित आंदोलन ने अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष को नैतिक अपील से आगे बढ़ाकर अधिकार-आधारित और संस्थागत राजनीतिक आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया।

स्वतंत्रता के बाद यह आंदोलन सामाजिक सुधार, सांस्कृतिक प्रतिरोध, संगठित राजनीतिक संघर्ष और लोकतांत्रिक सहभागिता के विभिन्न चरणों से होकर गुजरा। इस प्रकार, दलित आंदोलन भारतीय समाज में केवल हाशिए पर स्थित वर्गों की पीड़ा का आख्यान नहीं, बल्कि समानता, गरिमा और सामाजिक न्याय की पुनर्संरचना का एक ऐतिहासिक प्रयास है।

1. जाति-व्यवस्था, सामाजिक वर्चस्व और दलित अवधारणा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज की संरचना प्राचीन काल से ही वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था के अंतर्गत विकसित हुई है, जिसने सामाजिक संबंधों को एक कठोर पदानुक्रम में बाँध दिया। ऋग्वैदिक काल में वर्णों की अवधारणा अपेक्षाकृत कर्म-आधारित मानी जाती थी, किंतु उत्तरवैदिक एवं स्मृति-काल में यह व्यवस्था जन्म-आधारित होकर सामाजिक असमानता और वर्चस्व का स्थायी आधार बन गई (श्रीनिवास, 1966)। चातुर्वर्ण्य प्रणालीब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अंतर्गत शूद्रों को सेवा-कार्य तक सीमित कर दिया गया तथा उन्हें शिक्षा, संपत्ति और सत्ता से वंचित रखा गया। कालांतर में यही शूद्र और अतिशूद्र वर्ग 'अस्पृश्य' घोषित किए गए, जिन्हें सामाजिक जीवन की मूलभूत सुविधाओं से भी बाहर कर दिया गया (मेंडेलसन एवं विच्चियानी, 1998)।

ब्राह्मणवादी सामाजिक वर्चस्व ने धार्मिक ग्रंथों, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक नियमों के माध्यम से इस असमानता को वैधता प्रदान की। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में शूद्रों के प्रति दंडात्मक दृष्टिकोण और अपमानजनक प्रावधान सामाजिक बहिष्कार के सांस्कृतिक आधार बने (वर्मा, 1978)। रामायण और महाभारत में शूद्र तथा एकलव्य की कथाएँ इस तथ्य को उजागर करती हैं कि ज्ञान, तपस्या और प्रतिभा पर भी जातिगत प्रतिबंध लागू थे। इस प्रकार, जाति-व्यवस्था केवल सामाजिक विभाजन की प्रणाली नहीं, बल्कि एक सुदृढ़ सत्ता-संरचना थी, जिसने वर्चस्व और अधीनता के संबंधों को ऐतिहासिक रूप से पुनरुत्पादित किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में महात्मा ज्योतिराव फुले ने 'दलित' शब्द का प्रयोग शूद्र-अतिशूद्र समाज की ऐतिहासिक पीड़ा और दमन को अभिव्यक्त करने के लिए किया (ओमवेद्ट, 1994)। दलित विमर्श के चिंतकों के अनुसार 'दलित' केवल एक जातिगत पहचान नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक वंचना से उपजी सामूहिक चेतना है (शाह, 2001)। इस प्रकार, दलित अवधारणा भारतीय समाज में असमानता की ऐतिहासिक जड़ों को समझने की एक वैचारिक कुंजी प्रदान करती है।

2. आधुनिकता, शिक्षा और चेतना: दलित आत्मबोध के उदय की प्रक्रिया

औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज में आधुनिकता का प्रवेश दलित चेतना के विकास में निर्णायक सिद्ध हुआ। आधुनिक शिक्षा, मुद्रण माध्यमों, न्यायिक संस्थाओं और मानवाधिकार की अवधारणाओं ने पारंपरिक जाति-आधारित सोच को चुनौती दी (चंद्रा, 1999)। शिक्षा ने दलित समाज को आत्म-विश्लेषण और आत्म-सम्मान का बोध कराया, जिससे सामाजिक सुधार की चेतना विकसित हुई। यह वह ऐतिहासिक चरण था, जब दलित समाज ने स्वयं को केवल उत्पीड़ित वर्ग के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की संभावित शक्ति के रूप में देखना प्रारंभ किया।

इस प्रक्रिया में महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। फुले ने ब्राह्मणवादी वर्चस्व को वैचारिक स्तर पर चुनौती देते हुए शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का साधन माना। 1873 में स्थापित सत्यशोधक समाज ने शूद्र-अतिशूद्र समाज में समानता, तर्कशीलता और आत्मसम्मान की भावना को सुदृढ़ किया (नटराजन, 1959)। सावित्रीबाई फुले द्वारा स्त्री-शिक्षा का प्रसार दलित और वंचित समाज में चेतना के विस्तार का क्रांतिकारी कदम सिद्ध हुआ।

भक्ति आंदोलन भी दलित चेतना के प्रारंभिक स्रोतों में से एक रहा। कबीर, रैदास और अन्य संतों ने जाति-आधारित भेदभाव का विरोध करते हुए मानव-समानता और आत्मिक स्वतंत्रता का संदेश दिया। यद्यपि यह आंदोलन संगठित राजनीतिक रूप नहीं ले सका, फिर भी इसने सामाजिक चेतना के स्तर पर जाति-व्यवस्था की वैधता को गंभीर चुनौती दी (श्रीनिवास, 1966)।

3. डॉ. भीमराव अंबेडकर और दलित आंदोलन का संस्थागत एवं वैचारिक रूपांतरण

डॉ. भीमराव अंबेडकर का योगदान दलित आंदोलन के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ के रूप में देखा जाता है। उन्होंने दलित प्रश्न को नैतिक अपील और सीमित सामाजिक सुधार के दायरे से बाहर निकालकर अधिकार-आधारित, संस्थागत और राजनीतिक संघर्ष का स्वरूप प्रदान किया (कीर, 1962)। उनका स्पष्ट मत था कि जब तक जाति-व्यवस्था का उन्मूलन नहीं होगा, तब तक सामाजिक न्याय की स्थापना संभव नहीं है। उनकी कृति 'ददपीपसंजपवद वी बेंजम जाति-प्रथा पर सबसे सशक्त वैचारिक प्रहार के रूप में मानी जाती है (ओमवेद्ट, 2004)।

अंबेडकर के नेतृत्व में महाडू सत्याग्रह और कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन ने दलितों के सामाजिक अधिकारों को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाया। इन आंदोलनों ने दलित समाज में यह चेतना विकसित की कि अधिकार दान में नहीं, बल्कि संगठित संघर्ष के माध्यम से प्राप्त किए जाते हैं (जाफरलोत, 2003)। पृथक निर्वाचक मंडल की माँग के माध्यम से अंबेडकर ने दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को केंद्रीय प्रश्न बनाया।

स्वतंत्र भारत में अंबेडकर की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका भारतीय संविधान के निर्माण में रही। संविधान में समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को संस्थागत रूप देते हुए उन्होंने अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण, मौलिक अधिकार और कानूनी संरक्षण की व्यवस्था सुनिश्चित की (शाह, 2002)। यह दलित आंदोलन का औपचारिक संस्थानीकरण था, जिसने संघर्ष को स्थायित्व प्रदान किया।

1956 में अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करना दलित आंदोलन के वैचारिक रूपांतरण का प्रतीक था। यह कदम जाति-आधारित पहचान से मुक्ति का सांस्कृतिक-राजनीतिक वक्तव्य था (राजशेखर, 2003)। स्वतंत्रता के बाद दलित पैथर आंदोलन, बहुजन समाज पार्टी और अन्य दलित संगठनों ने अंबेडकरवादी विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए दलित राजनीति को मुख्यधारा में स्थापित किया (ओमवेद्ट, 1994)।

4. उत्तर-औपनिवेशिक काल में दलित आंदोलन:

स्वतंत्रता के बाद, विशेषतः 1960 के दशक से, दलित आंदोलन एक ऐसे चरण में प्रवेश करता है जहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिरोध राजनीतिक चेतना और संगठित संघर्ष में रूपांतरित होने लगता है। यह वह काल था जब आंदोलन केवल संवैधानिक सुधारों या नैतिक अपीलों तक सीमित न रहकर प्रत्यक्ष सत्ता-संरचनाओं को चुनौती देने लगा। 1970 के दशक में उभरा दलित पैथर आंदोलन इस उग्र प्रतिरोध का सशक्त प्रतीक था, जिसने जाति-आधारित उत्पीड़न

को 'संरचनात्मक हिंसा' और 'वर्ग-संघर्ष' के रूप में पुनर्परिभाषित किया (ओमवेदट, 1993)। साहित्य, कविता और सड़क-राजनीति के माध्यम से इस आंदोलन ने दलित अस्मिता को आक्रामक और आत्मविश्वासी अभिव्यक्ति दी।

इसी क्रम में नामांतर आंदोलन ने यह स्पष्ट किया कि दलित संघर्ष केवल सामाजिक सम्मान की माँग नहीं, बल्कि ज्ञान, ऐतिहासिक स्मृति और संस्थागत मान्यता के लिए भी है। इस आंदोलन के दौरान हुई जातीय हिंसा ने यह उजागर किया कि दलितों की लोकतांत्रिक आकांक्षाएँ प्रभुत्वशाली जातियों के वर्चस्व को कितनी गहराई से चुनौती देती हैं (गुप्ता, 1979; ओमवेदट, 1994)। 'लॉन्ग मार्च' दलित राजनीतिक चेतना का ऐसा निर्णायक क्षण सिद्ध हुआ जिसने आंदोलन को स्थानीय दायरे से निकालकर राष्ट्रीय विमर्श से जोड़ा।

1990 के दशक के बाद दलित आंदोलन का एक नया स्वरूप उभरता है, जहाँ प्रतिनिधित्व, सत्ता-भागीदारी और नीतिगत हस्तक्षेप केंद्रीय लक्ष्य बनते हैं। बहुजन समाज पार्टी सहित विभिन्न दलित राजनीतिक दलों ने लोकतांत्रिक संस्थाओं के भीतर हस्तक्षेप की रणनीति अपनाई (जाफरलोत, 2003)। यद्यपि इससे दलित राजनीति को सत्ता तक पहुँच मिली, किंतु कुछ विद्वानों ने इसे आंदोलन के उग्र और परिवर्तनकारी चरित्र के क्षीण होने के रूप में भी देखा है (राव, 2009)।

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में उभरा तथाकथित "दलित स्प्रिंग" इस आंदोलन का समकालीन रूप है। सोशल मीडिया, वैकल्पिक पत्रकारिता और विश्वविद्यालयीय आंदोलनों के माध्यम से दलित युवाओं ने जातिगत अन्याय के विरुद्ध नए विमर्श रचे। रोहित वेमुला की संस्थागत मृत्यु (2016) ने शहरी और शैक्षणिक सार्वजनिक क्षेत्रों में दलित चेतना को व्यापक स्तर पर सक्रिय किया (डाउलिंग, 2020)। इस चरण में दलित आंदोलन ने लोकतांत्रिक सार्वजनिक क्षेत्र में निर्णायक हस्तक्षेप आरंभ किया।

5. मुख्यधारा में समावेशन, सीमाएँ और समकालीन चुनौतियाँ:

दलित आंदोलनों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही है कि उन्होंने भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा को केंद्रीय राजनीतिक प्रश्न के रूप में स्थापित किया। आरक्षण नीति, अत्याचार निवारण अधिनियम, प्रतिनिधित्व और पहचान-राजनीतिख्ये सभी दलित संघर्षों के प्रत्यक्ष परिणाम हैं (वाकिल, 1985; शाह, 2002)। इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र को मात्र संख्यात्मक बहुमत की प्रणाली न रहकर सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त नैतिक व्यवस्था के रूप में पुनर्परिभाषित किया।

फिर भी, मुख्यधारा में समावेशन अपने साथ कई अंतर्विरोध भी लेकर आया। एक ओर दलित नेतृत्व सत्ता-संरचनाओं में शामिल हुआ, वहीं दूसरी ओर आंदोलन का एक हिस्सा नौकरशाहीकरण और राजनीतिक अवसरवाद की ओर उन्मुख हुआ (गुरु, 2005)। भूमि, शिक्षा, रोजगार और सांस्कृतिक वर्चस्व के रूप में जाति-आधारित असमानताएँ आज भी गहराई से विद्यमान हैं (मेंडेलसन एवं विच्जियानी, 1998)। इससे यह स्पष्ट होता है कि संवैधानिक प्रावधान सामाजिक यथार्थ को पूर्णतः रूपांतरित नहीं कर सके हैं।

समकालीन भारत में दलित आंदोलन के समक्ष नव-उदारवादी अर्थव्यवस्था, निजीकरण, डिजिटल असमानता और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जैसी नई चुनौतियाँ उभर रही हैं। ये शक्तियाँ सामाजिक न्याय की अवधारणा को 'कल्याण' तक सीमित करने का प्रयास करती हैं (जाओल, 2008)। साथ ही, दलित स्त्रीवाद और अंतःविभागीय विमर्श यह रेखांकित करते हैं कि आंदोलन के भीतर भी लैंगिक और आंतरिक असमानताएँ मौजूद हैं (रेगे, 2006)।

समग्र निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत में दलित आंदोलनों की यात्रा केवल सामाजिक प्रतिरोध की कथा नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र के नैतिक, वैचारिक और संरचनात्मक विकास की निर्णायक प्रक्रिया रही है। जाति-आधारित वर्चस्व, सामाजिक बहिष्कार और सांस्कृतिक अपमान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जन्मे ये आंदोलन प्रारंभ में अस्तित्व और गरिमा की पुनःस्थापना के संघर्ष के रूप में उभरे, किंतु समय के साथ वे संगठित राजनीतिक चेतना और संवैधानिक हस्तक्षेप के सशक्त माध्यम बनते चले गए।

औपनिवेशिक काल में आधुनिक शिक्षा और समानता के विचारों से उत्पन्न आत्मबोध को डॉ. भीमराव अंबेडकर ने वैचारिक स्पष्टता और संस्थागत संरचना प्रदान की। परिणामस्वरूप दलित आंदोलन नैतिक आग्रहों से आगे बढ़कर अधिकार-आधारित लोकतांत्रिक संघर्ष के रूप में स्थापित हुआ। स्वतंत्रता के बाद यह आंदोलन सामाजिक सुधार से राजनीतिक हस्तक्षेप की दिशा में अग्रसर हुआ, जहाँ उग्र प्रतिरोध, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और लोकतांत्रिक साधनों का समन्वय दिखाई देता है।

उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भ में दलित आंदोलनों ने यह स्पष्ट किया कि 'हाशिया' कोई स्वाभाविक स्थिति नहीं, बल्कि सत्ता-संरचनाओं द्वारा निर्मित ऐतिहासिक अवस्था है। यद्यपि प्रतिनिधित्व और कानूनी संरक्षण ने दलित समाज को मुख्यधारा में स्थान दिया, किंतु सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ और नव-उदारवादी नीतियाँ आज भी दलित मुक्ति के मार्ग में गंभीर बाधाएँ बनी हुई हैं।

समकालीन दौर में डिजिटल माध्यमों और युवाओं की भागीदारी ने दलित आंदोलन को नए प्रतिरोध-रूप प्रदान किए हैं, वहीं यह आंदोलन स्वयं के भीतर मौजूद आंतरिक असमानताओं से भी मुठभेड़ कर रहा है। अतः दलित आंदोलन को एक पूर्ण या स्थिर प्रक्रिया न मानकर एक सतत विकसित होने वाले सामाजिक-ऐतिहासिक संघर्ष के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा।

संदर्भ सूची

- ओमवेदट, गेल. दलित और लोकतांत्रिक क्रांति. सेज पब्लिकेशंस, 1994।
- शाह, घनश्याम (संपा.). सामाजिक आंदोलन और राज्य. सेज पब्लिकेशंस, 2002।

- चंद्रा, विपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; पाणिक्कर, के. एन.; महाजन, सुचेता. स्वतंत्रता के बाद भारत. पेंगुइन बुक्स, 1999।
- जाफरलोट, क्रिस्टोफ. भारत की मौन क्रांति : उत्तर भारत में निम्न जातियों का उदय. परमानेंट ब्लैक, 2003।
- मेंडेलसन, ओलिवर एवं विच्छियानी, मारिका. अस्पृश्य : भारत के दलितों की स्थिति. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998।
- राजशेखर, वी. टी. दलित : भारत के काले अस्पृश्य. क्लैरिटी प्रेस, 2003।
- कीर, धनंजय. डॉ. अंबेडकर : जीवन और मिशन. पॉपुलर प्रकाशन, 1962।
- ओमवेदट, गेल. अंबेडकर : प्रबुद्ध भारत की ओर. पेंगुइन वाइकिंग, 2004।
- श्रीनिवास, एम. एन. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. ओरिएंट लॉन्गमैन, 1966।
- वर्मा, वी. पी. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 1978।
- ओमवेदट, गेल. क्रांति का पुनराविष्कार: भारत में नए सामाजिक आंदोलन. एम. ई. शार्प, 1993।
- गुप्ता, दीपांकर. “मराठवाड़ा दंगों की समाजशास्त्रीय व्याख्या”. सोशल साइंटिस्ट, 1979।
- राव, अनुपमा. आधुनिक भारत में दलित राजनीति. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 2009।
- डाउलिंग, डेविड ओ. “दलित स्प्रिंग के संकेत”. जर्नल ऑफ मैगजीन मीडिया, 2020।
- गुरु, गोपाल. “दलित स्त्रीवादी अस्मिता की समझ”. सेज प्रकाशन, 2005।
- वाकिल, ए. के. भारत में आरक्षण नीति और अनुसूचित जातियाँ. आशीष पब्लिशिंग हाउस, 1985।
- रेगे, शर्मिला. जाति लेखन, स्त्री लेखन. जुबान प्रकाशन, 2006।
- जाओल, निकोलस. “दलितों के विरुद्ध हिंसा और नैतिक आक्रोश”. साउथ एशिया जर्नल, 2008।

मुण्डा मोन रे मुण्डा कुड़ी (मुण्डारी गीतों और कविताओं में महिलाओं का स्थान)

ब्युला भेंगरा

शोधार्थी, इतिहास विभाग रांची विश्वविद्यालय, रांची

झारखण्ड के मुण्डा और उराँव जनजाति का आरंभिक इतिहास मौखिक स्रोतों के आधार पर भी लिखित है। उनके इतिहास पर शोधपरक कार्य ईसाई मिशनरियों द्वारा आरंभ किया गया। मुण्डाओं के जन-जीवन पर आधिकारिक रूप से कार्य करने का श्रेय सर्वप्रथम कर्नल ई.टी. डाल्टन को दिया जाता है, जिन्होंने मुण्डा जन-जीवन को “द कोल्स ऑफ छोटेनागपुर” लेख में दर्शाया और यह लेख ‘जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल’ में प्रकाशित हुआ। 1871 ई० में नौट्राट का मुण्डारी भजनों का एक संकलन प्रकाशित हुआ। 1905 में रवेरेण्ड एफ हन् द्वारा रचित ‘कुदुख फोक लोर’ प्रकाशित हुआ जो कि उराँव जनजाति धर्म, रीति, रिवाज एवं पर्वों से सम्बन्धित लोकगीतों का संग्रह है।

मुण्डा धर्म, जनजीवन, परम्पराओं पर सर्वाधिक सराहनीय कार्य फा० जे० हॉफमैन ने किया है, मुण्डारी व्याकरण, मुण्डारी डिक्शनरी के अतिरिक्त फा० हॉफमैन ने ‘एन्साइक्लोपीडिया मुण्डारिका’ (1930-79) की रचना की। फादर पी० पोनेट की मुण्डा एथिक्स (1978) तथा फादर वॉल एक्जम की 1982 में प्रकाशित “द रिलिजस सिस्टम ऑफ द मुण्डा ट्राइव” मुण्डा धार्मिक जीवन और उनके परम्परागत इतिहास पर प्रकाश डालने वाले उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। भारतीय विद्वानों में एस०सी० राय प्रमुख हैं जिन्होंने “मुण्डाज एण्ड देयर कंट्री” (1912 ई०) में मौखिक स्रोतों का मानवशास्त्रीय तथा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत कर मुण्डाओं के आरंभिक इतिहास को लिखने का साहस किया।

झारखण्ड के मुण्डा जनजाति के संस्कृति, समाज, जन जीवन की ऐतिहासिकता तथा गतिशीलता को समझने का सबसे आसान स्रोत परम्परा से चली आ रही गीतों, अवदानों, कहानियों में ही पाई जा सकती है जिसका आरंभिक विद्वानों ने अपने लेखन के स्रोतों में भरपूर उपयोग किया है।

मुण्डाओं के धर्म में सर्वशक्तिमान एवं सर्वश्रेष्ठ देवता का स्थान सिंगबोंगा का है जिसने इस सृष्टि और मानव की रचना की है। मुण्डाओं के मध्य अन्य देवता भी हैं और देवी (स्त्री रूप) को भी ‘बोंगा’ का स्थान प्राप्त है जैसे-

नगे एरा:- नगे एरा ‘दलदली जमीन’ की देवी मानी जाती है, यह ‘सिङबोंगा मिसि’ (सिंगबोंगा की बहन) के नाम से जानी जाती है। मुण्डाओं के ‘अग्नि वर्षा’ धर्मगाथा में नगे एरा के शक्ति और चरित्र देखने को मिलता है। यह एक ऐसी पूज्य देवी है जिन्हें मुण्डा जाति श्रद्धा से पूजती है। इन्हें मुण्डा जाति की संरक्षिका के रूप में स्थान प्राप्त है। प्राचीन गीत ‘सोसो बोंगा’ में सिंगबोंगा के साथ, मिसी सिंगबोंगा को भी बराबर का स्थान प्राप्त है:-

सोसो बोंगा

अहो सिंग बोंगा रजा, दड़िबि कुँअरि
आमः दिसुम दो, अमअः गमय दो,
बिलअकन गेअ दो, हसब्अकन गेअदो,
पुरुबो कोना रे, पछिमो कोना रे,
उतरों कोनारे, दखिनो कोनारे,
अमअः सिरजन, अमअः उपजन।

अर्थात्

हे सिंगबोंगा राजा, दैवी कुँ अरि (मिसी सिंगबोंगा) सिंगबोंगा की बहन, तुम्हारा ही सृष्टि, तुम्हारा ही गगन-वर्षा, पूरव से पश्चिम हर कोने में आपका ही सृष्टि फैला हुआ है, आपका ही सृजन है आपका ही उपजाया हुआ सब कुछ है।

चण्डी बोंगा:- यह मुण्डाओं की एक ऐसी पूज्य देवी है जो गाँव के सरना कुंज में निवास करती है यह मुण्डाओं को आकस्मिक विपत्ति के समय सुरक्षा प्रदान करती है। मुण्डा विश्वास करते हैं कि बीहड़ जंगल का रास्ता चण्डी बोंगा की कृपा से ही पार किया जा सकता है। इनकी पूजा साल वृक्ष की छाया में पाहन द्वारा किया जाता है।

मुण्डा जनजाति अनेक बोंगाओं की उपासना करते हैं जिनमें ‘कल्याणकारी बोंगा’ तथा ‘बनिता बोंगा’ अनिष्टकारी बोंगा हैं, ऐसा माना जाता है। यह विश्वास है कि प्रसव पीड़ा या शिशु के छठी के पूर्व मृत स्त्रियाँ ‘चुरीन (चुड़ैल) बन जाती है। वैसी गमर्भवती स्त्रियाँ जिनका गर्भस्थ भ्रूण क्रमशः जीवन युक्त हो जाता है। “बरजियकन” कहलाती है अर्थात् ‘एक शरीर में दो जीव’ वाली स्त्री हो जाती है। यदि इसी अवस्था में उसकी मृत्यु हो जाती है तो वह ‘चुरीन’

बन जाती है। ऐसा माना जाता है कि यह कभी सुन्दर स्त्री या जानवर का रूप धारण कर सकती है। इसकी पीठ खोखली और एड़ी उल्टी होती है। वह पुरुष के संसर्ग के लिये ललयित रहती है। बीमार औरतों को सपने में डराने आती है। उसे औरतों से ईर्ष्या होती है अतः जहाँ चुरीन डेरा है वहाँ पुरुष अपने साथ एक औरत को लेकर बिना डरे निकल सकता है। विश्वास है कि वह बिमारियाँ भेजती है उसके प्रभाव से व्यक्ति लगातार हंस्ता या रोता है या पागल होकर मर जाता है या व्यक्ति का जीभ बाहर खींच लेती है। मुण्डा किसी दुर्घटना को प्रायः इन अदृश्य आत्माओं द्वारा किया हुआ मानते हैं।

मुण्डाओं के मन में अटूट विश्वास जो कि धर्म के रूप में दिखाई देती है। अदृश्य-लोक शक्ति, बोंगाओं की शक्ति और उनके चरित्र पर है। इसी विश्वास और व्यवस्था के कारण कालान्तर में जादू-टोना की व्यवस्था का जन्म हुआ। मुण्डाओं के छोटानागपुर प्रवेश के काफी पहले ही यह व्यवस्था उनके मध्य थी। जादू-टोना की प्रणाली सम्पूर्ण यूरोप और एशिया प्रायद्वीपों में प्रचलित थी तथा मुण्डा लोग आर्यों के भारत आने से सहस्रों वर्ष पूर्व जादू-टोना से प्रभावित थे। यूरोप की अधिकांश जातियों में और भारत में भी जादू-टोना (विच-क्रैफ्ट) का गुण साधारणतः मर्दों की अपेक्षा औरतों में अधिक पाया जाता था और अब भी पाया जाता है।⁴ मुण्डा धर्म में भी जादू टोना से सम्बन्धित धर्म-गाथाओं में उनकी देवी स्वरूपा 'नागे-एरा' की साधना होती है। असुर अवदान में सिङ्बोगा ने असुर विधवाओं को बोंगा का दर्जा दिया है। 'नागे-एरा' असुर अवदान के पूर्व की देवी है जिन्होंने अग्नि-वर्षा में विनष्ट सम्पूर्ण जाति की सुरक्षा के लिये स्त्री पुरुष को नष्ट होने से बचा लिया था। छोटानागपुर प्रवेश तथा हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आने के उपरांत मुण्डाओं में एक ऐसी ही देवी पार्वती के रूप में प्रचलित हुई। जादू-टोना के क्षेत्र में जो सात बहनों का नाम आया है उसमें पार्वती सबसे बड़ी है जादू टोना से सम्बन्धित एक ऐसी धर्मगाथा भी मुण्डा परम्परा में प्रचलित है जिसमें सिंगबोंगा की दो पत्नियों में सबसे बड़ी पार्वती थी जो डायन के काम में सिद्धहस्त थी।

छोटानागपुर में अंग्रेजों के आगमन के पहले मुण्डा-समाज जादू-टोना तथा डायन-बिसाही के प्रकोप से पूरी तरह प्रभावित था। डायन-बिसाही के संदेह में स्त्रियों को पकड़ कर लोग नंगा घुमाते तथा पीट-पीट कर मार भी डालते थे या उस स्त्री को गाँव से निकाल देते या परिवार उसकी रक्षा के लिये आगे आता तो उसके पूरे घर को जला दिया जाता था। ऐसा भी वर्णन आया है कि कुछ डायनों को पकड़ कर पेड़ में उल्टा टांग दिया जाता था और नीचे आग जला दी जाती थी जब तक कि तड़प-तड़प कर उसकी मौत न हो जाए। ए०वॉन एक्जम लिखते हैं- One wonder there was ever such a time: before arrival of the British convicted witches and wçards were beaten to death or hanged, head down, at a tree branch wall above the ground, and a slow fire was lit below they died a horrible death."

जादू-टोना और डायन (स्त्री) की दीक्षा:-

जादू-टोना की सम्पूर्ण प्रणाली धर्म के विपरीत हो जाती है। AVan. Exam- "Magic Stands as the anti system of religion"⁵ इस सम्बन्ध में कोई भी जानकारी द्वितीयक स्रोत से पाई जा सकती है क्योंकि कोई भी डायन अपने को डायन नहीं कहती, मुण्डाओं को देवडाओं (भूत-भगाने वाले) पर विश्वास है, डायन से सम्बन्धित कुछ सूचनाएँ वे देवडा से और कुछ अपने अनुभव और आँखों से देख कर बताते हैं। डायन की दुनिया में सोहराई काली घनी अमावस्यीय रात का काफी महत्व है, इस रात को अपनी विद्या को साधती हैं, तथा अपने गुरु से दीक्षा भी लेती है, सोहराई की घनी रात गाँव से दूर झाड़ू-झंखाड़ू साफ की हुई जगह पर एकत्रित होती हैं अपने साथ कई चीजें लेकर आती हैं, कहा जाता है रात के अंधेरे में पूरी तरह निर्वस्त्र होकर कमर पर झाड़ू बांधती है सभी एक वृत्त में खड़े होकर बायें पैर के घुटने पर तेल भरा मिट्टी का दीया रखती है। अंधेरी रात में डायन विद्या सीखती हैं जिसे आम लोग देखने का साहस नहीं कर पाते। ये डायन चूहा, बिल्ली या किसी घरेलू पशु का रूप धारण कर सकती है गाँवों में यह विश्वास फैला हुआ है कि डायनों काली बिल्ली का रूप धारण कर घर में मंडराती है और रोग-व्याधियाँ लाती है।

ईसाई धर्म के प्रचार, नये कानून तथा मुण्डाओं द्वारा पढ़ने लिखने के बाद कुछ जागरूकता आई है किन्तु अब भी कई गाँव में डायन, चुरीन बनिता बोंगा में निहित विश्वास देखा जा सकता है जिसके परिणाम में गाँव की महिलाओं को असहनीय कष्ट का सामना करना पड़ता है।

मुण्डा समाज अपना जन-जीवन, दर्शन, परम्पराओं को गीतों के रूप में अब तक सम्पत्ति की तरह संजो कर रखे हैं, उनके गीतों अवदानों और मौखिक परम्पराओं में इतिहास को ढूँढ़ा जा रहा है, इन्हीं गीतों और कविताओं के माध्यम से मुण्डा समाज में अतीत से लेकर वर्तमान तक महिलाओं की क्या स्थिति रही है उन्हें समाज में कौन सा स्थान प्राप्त है यह समझने की छोटी कोशिश इस लेख में की जाएगी। मुण्डा जाति गीत प्रिय रही है हर मौसम चाहे जिन्दगी हो या प्रकृति उन्हें नाचते गाते ही देखा जा सकता है। उनका जीवन संगीतमय है, जब भी जिसने भी उनके जीवन को जानना चाहा उन्हें गीतों में ढूँढ़ा है। गीत और कविताएँ उनकी ऐसी सम्पत्ति है जिसे कोई दूसरा चाह कर भी अपना नहीं कह सकता और यह भी सच है उनका इतिहास है, उनका अस्तित्व है तो इन्हीं गीतों के कारण।

रामदयाल मुण्डा द्वारा सम्पादित पुस्तक "हिसिर" हार में लिखित काशीनाथ सिंह काण्डे द्वारा रचित कविता में स्त्री के प्रति आगाध प्रेम तथा उसे पाने की इच्छा इस प्रकार व्यक्त की गई है-

मुण्डा

अएअः नङ्गेन जी गे लो तन

सोंगोति जनते

तएओमते पीरिति

तएओमते कएः लेल इरिन् जन

अएअः नङ्गेन जी गे लो तन

डटरेः मिलि केन

तीरे सकोम चुड़ि

हिन्दी अनुवाद

उसके लिये जी जल रहा है।

दोस्ती होने के बाद

प्रेम भी हुआ था

उसके बाद हमसे छिप गई

उसी के लिये जी जल रहा है।

मिस्सी से उसने दांत रंगे थे

हाथ में सकोम और चूड़ी थी

इनि लेल्ले जी त् भुलओ लेन
 अएअः नङगेन जी गे लो ता
 होटोः रे मुङ माला
 रङ्ग नीले साड़ी
 इनिः लेल्ले कुङम् रे अङ लेन
 अएअः नङगेन जी गे लो तन
 होड़ोमो जिमा लिअः
 कजि चब लिअः
 तएओम्ते कएःगे जपःन् जन
 अएअः नगेन जी गे लो तन ६
 अमः दोगो छएल
 डङि होर हटिअ
 गगरि चटु दःम अगु
 अमः दोगो छएल
 निद सिङि अमदोम् नकिः सुपिद
 अमः दोगो छएल

लुतुर जपः सए सुनुपिदकान
 चपु केनम् चपु केन
 अमः दोगो छएल
 सुपिद दो बाते बिउरकन
 अमः दोगो छएल

सुपिद रेचिरे जी तम्
 बो रेचिरे रसिक
 अमः दोगो छएल
 डङि दः रे अम्दोम् लेपेल् उम्बुल
 अमः दोगो छएल

तमाङ् के वैकुण्डी गाँव के रहने वाले श्री बुदु बाबू की प्रसिद्ध कृति प्रीतपाला और रामायण पाला है जिसमें उन्होंने अपनी अनेक कविताओं को प्रेम तथा वीर रस में वर्णन किया है। दोनों ही काव्य ग्रंथों की रचना स्थानीय संस्कृति की भूमिका में की है प्रीतपाला के कृष्ण, राधा और अन्य गोपियाँ आदिवासी समाज के युवक, युवतियों के प्रतिनिधि हैं इसी तरह लंका विजय के लिये निकला हुआ वानर दल और कोई नहीं, कर्म और संघर्षशील आदिवासी समाज ही है। उनके कविताओं में आदिवासी समाज की स्त्री को देवी, रानी, माँ प्रेमिका, सांवरी सुंदर युवती, संगिनी, सखी, फूल कुमारी, करुपा औरत, ललिता के रूप में अर्थात् स्त्री के प्रत्येक रूप को वर्णित किया गया है। प्रीतपाला के एक गीत “बिर बितर प्रभु गोपाल” में गोपाल की रास लीला का वर्णन इस प्रकार है-

बिर बितर प्रभु गोपाल
 बड़ तदए नीला चमत्कार
 झिक मिक जुलतन
 सोबेन ब्रजधनी
 राधा विनन्दिनी
 सोबेन को हिअकन हो
 एल.एल.एल एलबु लेल
 सिंग बोङ्ग बड़तद नीला हो
 एल.एल.एल एबनु लेल
 दोल, दोल, दोल, दोल

वन के बीच प्रभु गोपाल
 रचे हुए हैं रास लीला चमत्कार
 झिल मिल चमक रहा है
 सारी ब्रज नारियाँ
 राधा आदि युवतियाँ
 सभी आई हुई है
 चलो, चले, चलो, चलो
 सिंगबोंगा ने रास लीला रची है
 आओ, आओ हम देखने चले
 चलो, चलो, चलो, चलो

उसी में मेरा मन रचा था
 उसी के लिये जी जल रहा है
 गले में मूँगे की माला थी
 लाल और नीली साड़ी
 उसे देख मेरा मन बहला था
 उसी के लिये जी जल रहा है
 मैंने उसे अपना शरीर दे दिया था
 बातें सब शेष थीं
 किन्तु बाद में वह फिर नहीं मिली
 उसी के लिये जी जल रहा है।
 तुम्हारा रंगीलापन
 डाड़ी के रास्ते
 गागरी भरने जाती हो
 तुम्हारा छैलापन भी खूब है
 रात दिन खोपा ही बनाती है
 तुम्हारा छैलापन भी खूब है।

कान से सरा तिरछा सा जूड़ा
 छूती हो छूती हो
 तुम्हारा छैलापन भी खूब है
 तुम्हारा खोपा फूलों से भरा है
 तुम्हारा छैलापन भी खूब है

क्या तुम्हारा मन जूड़े में है,
 क्या तुम्हारा प्राण फूलों में है
 तुम्हारा छैलापन भी खूब है
 डाड़ी के पानी में अपनी छाया देखती हो
 तुम्हारा छैलापन भी खूब है

मुण्डा समाज में कई गीतकार हुए जिन्होंने अपने इतिहास को परंपरागत रूप में संभाल कर रखा है उनके संघर्ष की गाथा, भारत आगमन की गाथा और संघर्षभरी यात्रा की घटनाएँ, दुश्मनों से युद्ध और अपनों को खोने का गम, विजय की गीतों की धुन सभी रंग समाए हुए हैं। निकोदिम करेकेट्टा “सलायन” की कविता भी कोतेमा रे (कहाँ हो तुम) में एक पत्नी अपने पति को ढूँढ़ती हैं और पागलों की तरह भटकती है जो इस प्रकार निर्गत है-

चि कोतेमा रे

बुरू चेतन टुकुको आते	जंगलों के ऊपर, चट्टानों के ऊपर से
सलंगि बुरू चुटिको आते	ऊँचे ऊँचे पर्वत की चोटियों से
अमगेड़े लेल होराकेना रे	तुम्हारा ही इन्तजार कर रही हूँ
चि आमदो कोतेमा रे॥	आप कहाँ चले गए हैं॥
सेंदेरा तेमा चि करेंगा तेमा	क्या तुम शिकार करने गए हो
मपअः तेमाचि तुपुड़े तेमा	क्या तुम युद्ध में गए हो
अद् जनाम चिम सोद जना	क्या तुम खो गए हो।
जिऊ तइग् दो लोकोद केना	मेरा जी घबरा रहा है।
पीटि पलन हातु गोटकोरे	बाजारों में घूम-घूम कर
कुलि कुपुलि जगर बंकेडा कोरे	बातों-बातों में तुम्हे ही पूछ रही हूँ।
अम गेई पिचा बड़ातना रे	तुम्हें ही ढूँढ़ रही हूँ।
चि कोतेम चिका जना	पता नहीं तुम्हें क्या हो गया है।
अमअः दुलड़ पहम फिकिर रे	तुम्हारे प्यार की चिन्ता में
जिउ तइ दो मुकुड़े जना रे	दिल तो उदास हो गया है।
मेदअः दो पिरिल पिरिल तन	आँखें भर आई हैं।
कुडम रटि दोपोल दोपोल तन१	हृदय जोर-जोर से धड़क रहा है।

मुण्डा जीवन रसिक जीवन कहा जाता है क्योंकि उनके पास प्रत्येक मौसम प्रत्येक परिस्थिति के गीत हैं वे नाचते गाते, झूमते अपनी जीवन बिताते हैं स्वच्छंद ताल, नदी, नाले जंगलों में गीतों को गाते फिरने वाले जाति हैं जिस प्रकार अपनी जमीन से उन्हें प्रीति है उसी तरह अपने लोगों से लगाव है हर पर्व त्योहार विधि, विधान के अलग अलग गीत तथा अलग अलग राग हैं जैसे ‘नावा’ जब नयी फसल घर आती है तो नवाखानी किया जाता है तब ‘नावा’ राग की गीतें गायी जाती हैं, करमा, जाइर, मागे ऐसी कई राग हैं जिन्हें मुण्डा विभिन्न मौकों पर गाते और नाचते हैं लेकिन इन गीतों में अधिकांशतः स्त्री को केन्द्र बनाकर गीत बनाए गए हैं या प्रकृति और स्त्री का सुंदर तादात्म्य स्थापित किया जाता है अधिकांश गीतों में प्रेमी प्रेमिका के प्रेम रस के गीत मिलते हैं वहीं एक भाई का अपनी बहन के लिये अगाध प्रेम को प्रगट किया गया है जैसे एक जदुर गीत में जब कोई स्त्री ब्याह कर अपने आसमान से घर और भाई बंधुओं को छोड़कर अपने पति के गांव जाती है तो इस प्रकार उसके लिये गीत जादुर राग में गाए जाते हैं।

एंगाम आपुमेकों.....

तुम्हारे माँ-बाप.....

एंगाम आपुमेको रिम्बिल ओड़ाः
सालु सुगा लेकाम लांदा-जागार
हागाम बारेमेको कोलोम राचा
जालिआ माराः लेकाम सेने बेड़ा ए ॥
सामाडोम लेकागेको जोगाओताद मेआ
ओड़ाः दुआर राटिम सिंगारतादा
गोतोम लेका गेको जोतोनाताद मेआ
हाटिआ होरा राटिम मासाकाल तादा ॥
आम लेलेल नांगेनेगेः तुरेनताना
सिगि तुरोः मुलि तुरेतान सिंगि
आम चिना नांगेनेगेः मुलुगेनताना
चाण्डुः मुलुः मुलि मुलुःतान चाण्डुः ॥

तुम्हारे माँ-बाप का आसमान-सा घर
तुम लाल सुग्गा की तरह हँसती हो।
तुम्हारे भाई-बंधुओं का खलिहान-सा आंगन
तुम झबराए मयूर की तरह चलती-फिरती हो॥
तुम्हें सोने की तरह जुगाया गया ह
घर-द्वार तक तुमसे श्रृंगारित है।
तुम्हें धी की तरह संजोया गया है
गाँव-गली तक तुमसे प्रकाशित है॥
तुम्हें देखने को ही उगता है
पूरब में उगता हुआ सूरज।
तुम्हें निहारने को ही निकलता है
पश्चिम में उदीयमान चाँद ॥

राग-कारामा

“आम लेका गुरिः गिड़ि” (तुम्हारी ही तरह मैं गोबर फेंकती हूँ) इस गीत में एक बहिन अपनी ब्याही गई दीदी को सम्बोधित करते हुए गीत गाती है, वह घर के सारे काम करती है, गोबर फेंकती है, खेतों में काम करती है, उसकी मन की इच्छा है कि वह अपनी बड़ी दीदी की तरह सुंदर दिखे, वह भी साड़ी पहने वह भी बालों को संवारे और बड़ी बहन की तरह नाचना चाहती है। मुण्डाओं के गीतों में मुण्डा समाज की स्पष्ट रूपरेखा दिखाई देती है। स्त्री रूप का इतना महत्व है कि अनेक उपमाओं में स्त्री की उपमा दी गई है। चाहे वह प्रकृति हो या पूजनीय देवी, बेटी को बेटा की ही तरह पाल-पोस कर बढ़ाया जाता है जितना महत्व बेटे का है उतना ही महत्व बेटी का भी है, मुण्डा समाज में बेटे बेटी में कोई भेदभाव नहीं है वे स्वच्छंद हैं वे अपना जीवन साथी खुद चुन सकती हैं उन्हें बड़े प्यार से पाला पोसा जाता है। रामदयाल मुण्डा की “सेलेद” पुस्तक में भी स्त्रियों पर केंद्रित कई गीत हैं उनमें से एक गीत इस प्रकार है-

आम लेका गुरिः गिड़ि	तुम्हारी ही तरह मैं गोबर फेंकती हूँ
आम लेका कामि दाड़ि।	तुम्हारी ही तरह मैं काम करती हूँ।
आमलोःते औ सुसुना।	तुम्हारी ही तरह मैं भी नाचूँगी।
दाइगो, ओ, ओ दाइगो	दीदी, हे दीदी
आमलेका सुपिदतो मे	तुम्हारी तरह मेरी जूड़ा बांध दो।
आमलेका पाएलातो में।	तुम्हारी ही तरह मेरा आँचल संवार दो

आम जपाः ताइकोः आते	तुम्हारे पास रहकर
आमलेका बाइकोः आते,	तुम्हारी ही तरह बनकर
आमलोःते औ जामाना।	तुम्हारी संगति में रहूँगी।
दाइगो, ओ ओ दाइगो	दीदी हे दीदी,
आम लेंका सुपिदतो में	तुम्हारी तरह मेरा जुड़ा बांध दो।
आमलेका पाएलातो में।	तुम्हारी ही तरह मेरा आँचल संवार दो।

सोंजोकोम सुकुजान रे	संयोग से अगर तुम्हें अच्छा लगे
सोंजोकोम बापाइजान रे	संयोग से अगर तुम्हें मंजूर हो।
आमलोःते ओदो हिरूमना।	तुम्हारे साथ मैं सौतन बन कर रहूँगी।
दाइगो, ओ, ओ दाइगो	दीदी, हे दीदी
आमलेका सुपिदतो में	तुम्हारी तरह मेरा जूड़ा बांध दो
आमलेका पाएलातो में।	तुम्हारी ही तरह मेरा आँचल सवार दो।

मुण्डा परिवार में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान है वह परिवार सम्मालती है घर बाहर सभी कामकाजों कि देखरेख करती है वह घर की चारदिवारी में बंद नहीं रहती पति के हाथ से हाथ मिलाकर काम करती है। वह परिवार की क्रियाशील धुरी है। इस समाज में बहु विवाह की प्रथा तो है किन्तु सम्बन्ध विच्छेद की घटनाएँ बहुत कम घटित होती हैं। जब कोई नवविवाहित बार-बार अपने पति का धर छोड़कर मायके भाग जाती है तथा समझाने पर भी अपने पति के साथ रहना नहीं चाहती तो गाँव के वरिष्ठ जिम्मेदार दोनों पक्षों का निर्णय सुनने के बाद पति पत्नी के बीच का सम्बन्ध विच्छेद घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार का सम्बन्ध विच्छेद समाज के द्वारा मान्य होता है। सम्बन्ध विच्छेद की एक अन्य परिस्थिति है जब पति स्वयं अपनी पत्नी को निम्नलिखित कारणों से त्यागता है:- (1) अपंग हो (2) बांझ हो (3) रसोई तैयार करने से इन्कार करे, (4) चरित्रहीन हो, (5) पति के साथ रहना अस्वीकार करे।¹²

कोई मुण्डा व्यक्ति मनमाने ढंग से पत्नी को त्याग नहीं सकता, उनकी पत्नी केवल शारीरिक उपभोग की वस्तु नहीं होती। पत्नी को त्यागने से पूर्व अनेक बिन्दुओं पर विचार किया जाता है। मुण्डा समाज पति-पत्नी के सम्बन्धों पर कड़ी नजर रखता है, पूरा समाज एक दूसरे के सुख-दुःख का सहभागी होता है।

मुण्डा समाज में महिलाओं के व्यक्तित्व निर्माण में गितिः ओड़ाः का महत्वपूर्ण भूमिका है। यह इस समाज की एक प्राचीन संस्था रही है जो अब लुप्त हो चुकी है। गाँव के युवक युवतियों के सोने के लिये गाँव के अखाड़ा के निकट झोपड़ीनुमा हॉल बना दिया जाता है यह लड़कों के लिए अलग और किशोरियों के लिये अलग बना होता है। जहाँ किशोरियों के लिये निर्मित गितिः ओड़ाः की देख रेख गाँव की वृद्ध विधवा करती है। अखाड़ा में किशोर किशोरियाँ नृत्य करते हैं, अलग-अलग, राग तथा धुन की ऐतिहासिक गीतें सिखाई जाती हैं इन गीतों में उनका वास्तविक इतिहास होता है। जहाँ उस पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। मांदर, डोल, नगाड़े की ताल पर झूमते हुए इन गीतों को सीखते हैं। रात में सोने से पूर्व इन्हें प्रशिक्षित, शिक्षित किया जाता है उन्हें अपने इतिहास, गौरवमय परम्परा, धर्मगाथा आदि से परिचय कराया जाता है। यहाँ बालिकाएँ पाठशाला से भी अधिक उपयोगी शिक्षा ग्रहण करती हैं न केवल मौखिक शिक्षा प्राप्त करती हैं बल्कि यहाँ उन्हें विभिन्न शिल्पों में भी प्रशिक्षित किया जाता है।

मुण्डा समाज में यौन सम्बन्धों को लेकर अधिक वर्जनाएँ नहीं हैं। यदि कोई लड़की बहुत दिनों तक कुँवारी रहती है तो यह अस्वाभाविक नहीं है कि वह रात में घूमे दिन में सोये।¹⁴ प्रस्तुत गीत में एक लड़की को उल्लू और हापू पक्षियों को उपमान के रूप में रखा गया है-

चिमिन् सिरिमा गोम् डिण्डलेद - कब तक कुँवारी रहोगी
कोकोर लेक निदम् अतिड जन - कोकोर के समान रात में चर रही हो।
चिमिन् कलोमेगोम् डडगुअलेद - कितने समय तक उल्लू की तरह जागोगी
हपु: लेक सिडिगम दुडुमजन - हापू की तरह दिन में सोती हो

जब लड़की माँ बाप के घर में पलती बढ़ती है तो उनके साये में स्वच्छंद रहती है वह चमकती और फुदकती फिरती है। कई गीतों में लड़की की उपमा चमकने कुदकने वाली नदी की चिरपी मछली के साथ की गई है। फुदकने वाली अएरा मछली को भी उपमान बनाया गया है अर्थात् लड़की बड़ी नदी की चिरपी मछली के सामान चमकती फिरती है और अएरा के समान फुदकती फिरती है इन गीत के पंक्तियों में यही कहा गया है

मरड् गड़ा चिरपि लेका मइनम् - बेटी तुम तो नदी की चिरपी के समान हो
बिजिर बिजिर मइन - बेटी तुम चमक रही हो
हुडिड गड़ाएनयर लेक मइनम् - छोटी नदी की आएरा के समान बेटी तुम तो
बिअन् बोयोन मइन - फुदकती फिरती हो।

इस प्रकार मुण्डा मन को समझ पाना थोड़ा मुश्किल है क्योंकि उनके गीतों के पंक्तियों में लड़कियों को प्रकृति के कई और उपमानों का प्रयोग कर भाव को व्यक्त किया गया है उन्हें आग, पानी, आँधी, कुहासे, पहाड़, जंगल, नदी फूल, पक्षी, मछलियाँ जैसे कई प्रकृति के उपमानों से प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है, सम्बोधन प्रकृति का है पर संकेत स्त्री की ओर किया गया है।

कई गीतों में लड़की को चाँद और सूरज के समान बताया गया है-

समडोम लेक गेको जोगओ लेद् मेअ
बले: ए मुल: चण्डु लेकम् मता जना
पुर्णिम चण्डु लेकम् मेदू मुअडजन
तुरे तन सिडिग लेकम् मरेसल केद

अर्थात्

तुमको सोने के समान जुगाकर रखा, तुम दूज के चाँद के समान बड़ी हुई, पूर्णिमा के चाँद के समान तुम्हारा मुख सुंदर हुआ, उगते हुए सूरज के समान तुम्हारी ज्योति फैली। इसमें एक लड़की के सयानी होने की अवस्था का वर्णन है।

इस प्रकार मुण्डा समाज में स्त्री रूप के विभिन्न रंग हैं, वे स्वच्छंद हैं परदे में नहीं उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में नारीसत्तात्मकता का भी अनुभव होता है, हर मौसम के गीतों में स्त्री रूप का वर्णन आता है।

अतः इस समाज में जहाँ एक ओर तो डायन कहकर मार दिया जाता है वहीं देवी के विभिन्न रूपों में स्त्री शक्ति की आराधना भी की जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिंज डॉ० दिवाकर, मुण्डा एवं उराँव का धार्मिक इतिहास, ओरियंट पब्लिकेशन दिल्ली, 1996, पृ०सं०-1
2. सरजोम बा (मुण्डारी गद्य-पद्य संग्रह बी०ए० कक्षाओं के लिये), राँची विश्वविद्यालय, राँची, जी०ई०एल० चर्च प्रेस, राँची, 1976, 77
3. वही, पृ० सं०-84
4. वही, पृ० सं०-86
5. वही, पृ० सं०-88
6. सम्पादक, मुण्डा, रामदयाल, हिसिर, लेखक, काशीनाथ सिंह काण्डे, सहकारी प्रकाशन समिति, मोहराबादी, राँची, जी०ई०एल० चर्च प्रेस, राँची, बिहार, 1967, पृ०सं०-12
7. वही, पृ०सं०-15
8. सम्पादक, मुण्डा रामदयाल, मुण्डारी गीतकार श्री बुदु बाबू और उनकी रचनाएँ प्रीतपाला और रामायणपाला, अदिवासी साहित्य परिषद, 1978, पृ०सं०-10
9. डॉ० बडायुद्ध, मनसिद्ध, होड़ो जगर, गअ:इदि-जमुईइदि जमा जी०ई०एल चर्च प्रेस, राँची, 2011, पृ०सं०-89
10. डॉ० मुण्डा, रामदयाल सेलेद (विविधा), साइल, राकब पुथी सेन्टर, बिराटी कोलकाता, 2005, पृ०सं०-351
11. वही, पृ०सं०-31
12. डॉ० तिग्गा, सुसन्ता, मुण्डाओं के संरक्षक: फादर हॉफमैन (1877-1925 ई०), के०के० पब्लिकेशन्स इलाहाबाद, 2015, पृ०सं०-102
13. वही, पृ०सं०-103
14. डॉ० लाल, नागेश्वर, मुण्डारी और उसकी कविता, पुस्तकम् नारायण मार्केट, पटना, 1986, पृ०सं०-63

मृणाल पाण्डे के कथा - साहित्य में समकालीन यथार्थ

कु० जया पाण्डेय

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, दिग्विजयनाथ स्तानकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर

सारांश -

प्रस्तुत शोध समकालीन हिन्दी कथा साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाकार मृणाल पाण्डे के कथा संसार में निहित समकालीन यथार्थ का विस्तृत, विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। मृणाल पाण्डे की कहानियाँ आधुनिक भारतीय समाज की आंतरिक संरचनाओं, मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं, स्त्री-पुरुष संबंधों, सत्ता और शोषण की सूक्ष्म प्रक्रियाओं तथा परम्परा और आधुनिकता के अंतर्विरोधों को गहराई से अभिव्यक्त करती है। मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य केवल स्त्री विमर्श तक सीमित नहीं है, बल्कि एक समग्र सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज है। सामाजिक, मानसिक, आर्थिक और सांस्कृतिक यथार्थ के बहुस्तरीय चित्रण के माध्यम से उनकी कथाएँ पाठक को आत्ममंथन और सामाजिक चेतना की ओर प्रेरित करती हैं।

मुख्य शब्द - मृणाल पाण्डे, कथा साहित्य, समकालीन यथार्थ, स्त्री चेतना, मध्य वर्ग, समकालीन जीवन, सामाजिक संरचना।

हिन्दी कथा साहित्य में समकालीन यथार्थ का विशेष महत्व रहा है। हिन्दी कथा साहित्य में समकालीन सामाजिक यथार्थ का चित्रण साहित्य की जीवंतता और प्रासंगिकता को बनाए रखने का प्रमुख माध्यम रहा है। साहित्य अपने समय के समाज, उसकी चेतना, समस्याओं, और अंतर्विरोधों को अभिव्यक्ति करता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में तीव्र सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तन हुए- शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार, स्त्री चेतना का विकास, उपभोक्ता और सत्ता ख संरचनाओं का विस्तार। इस परिवर्तनों ने समकालीन सामाजिक यथार्थ को जटिल और बहुआयामी बना दिया है।

मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य इसी समकालीन यथार्थ से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनकी कहानियाँ आज के बदलते समाज की संवेदनशील नब्ज पर हाथ रखती हैं। वे आधुनिकता के दावों के पीछे छिपी असमानताओं, स्त्री के सूक्ष्म रूपों को उजागर करती हैं। इस दृष्टि से मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य समकालीन सामाजिक यथार्थ का सशक्त और प्रामाणिक दस्तावेज है।

समकालीन यथार्थ का अर्थ केवल वर्तमान घटनाओं का चित्रण नहीं, बल्कि समाज में व्याप्त वास्तविक जीवन स्थितियों, समस्याओं, संघर्षों और संरचनाओं के सच्चे चित्रण से है। यह यथार्थ स्थिर नहीं होता, बल्कि निरन्तर परिवर्तनशील होता है। मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में समकालीन यथार्थ का संबंध स्त्री जीवन, पारिवारिक तनाव, सामाजिक असमानता, सत्ता के दबाव और आधुनिकता की चुनौतियों से जुड़ा हुआ है। उनके लिए यथार्थ केवल बाह्य घटनाओं का चित्रण नहीं, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक द्वन्द्वों और मानसिक संघर्षों की अभिव्यक्ति भी है।

मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में समाज का बहुआयामी चित्रण मिलता है। उनके पात्र सामान्य जीवन से लिए गए हैं, जो रोजमर्रा की समस्याओं से जूझते हुए दिखाई देते हैं। ये पात्र किसी आदर्श संसार के प्रतिनिधि नहीं, बल्कि वास्तविक समाज की उपज हैं। उनके कथा संसार में स्त्री केवल पीड़िता नहीं, बल्कि संघर्षशील और आत्मचेतस् प्राणी के रूप में उभरती हैं। मृणाल पाण्डे का कथा संसार समकालीन समाज की वास्तविकताओं का सजीव दस्तावेज है। मृणाल पाण्डे का यथार्थ जीवन के सूक्ष्म अनुभवों से निर्मित है। वे बड़े सामाजिक नारों के स्थान पर छोटे-छोटे प्रसंगों, संबंधों और मनोवैज्ञानिक स्थितियों के माध्यम से समकालीन यथार्थ को सामने लाती हैं।

मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में स्त्री जीवन समकालीन यथार्थ का सबसे सशक्त और केन्द्रीय पक्ष है। उनकी स्त्रीपात्र न तो पारंपरिक अर्थों में आदर्श नारी हैं और न ही केवल पीड़िता। वे सामाजिक परिस्थितियों से जूझती हुई, सोचती, समझती और निर्णय लेने का प्रयास करती हुई स्त्रियाँ हैं। उनकी कहानियों में विवाह संस्था के भीतर स्त्री की स्थिति, पारिवारिक अपेक्षाएँ, भावनात्मक उपेक्षा और असमान सत्ता-संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। 'एक नीच ट्रेजेडी', 'हमसफर', 'सुपारीफुआ', 'रिक्ति', 'दरम्यान', 'गर्मियाँ', 'उमेश जी', 'चिमगादड़े', 'लड़कियाँ' और 'एक थी हँसमुख दे', आदि कहानियों में स्त्री के दोनों रूपों का चित्रण मिलता है। जहाँ एक ओर वह धर्म, शर्म और समर्पण की बेड़ियों में जकड़ी हुई अपने आप को स्वीकार कर लेती है तो वहीं दूसरी ओर उस जकड़न को तोड़ने का वह भरपूर प्रयास करती हुई दिखाई देती है। जहाँ एक ओर विवाह के बंधन में बंध कर स्वयं के अस्तित्व को भूलकर दूसरों की इच्छानुसार ढलने वाली शांता का चित्रण है ख "एकदम सपाट और आयामहीन औरत जिसे खड़ी कर दो तो खड़ी हो जाएगी, धक्का दे दो तो लद् से गिर पड़ेगी। न तो उससे बात की जा सकती है और न ही तर्क या झगड़ा। शायद उसने अपनी अनुभूतियों और चेतन-तंतुओं को ऐसा भीतर सिकोड़ लिया है कि आदर-अपमान दुःख ख सुख किसी का भी उस पर असर नहीं होता। पति के चिल्लाने ख खखारने के साथ दिन शुरू होता है और उसी के खराटों के साथ खत्मा।" तो वहीं दूसरी ओर प्रश्न उठाने वाली स्त्री का भी चित्रण मिलता है 'एक थी हँसमुख दे' कहानी में राजकुमारी स्त्री, विरोधी मानसिकता के प्रति अपना विरोध व्यक्त करती है। स्त्रियों की परछाई से दूर भागने वाले गुरु जी से हंसमुख दे प्रश्न करती हैं कि "गुरु जी आप अपनी माँ के पेट से निकलकर भी क्या गंगा स्नान करने भागे थे? दूध क्या आप बैल का पीते हैं? धरती भी तो स्त्री जाति है, अब आप उसके सीने पर उपजा अन्न कैसे ग्रहण करते हैं? राजगुरु इस वामा तर्क से आग बबूला हो गए।" कार्यरत स्त्रियों के सन्दर्भ में दोहरी जिम्मेदारियाँ सामाजिक दबाव और आत्मनिर्भरता

की जटिलता समकालीन यथार्थ के रूप में उभरती हैं। मृणाल पाण्डे की कहानियों में स्त्री घरेलू दायरे से बाहर निकलकर सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता की आकांक्षा व्यक्त करती हैं। किन्तु यह स्वतंत्रता संघर्षों और विरोधाभासों से भरी हुई है। 'उमेश जी' कहानी में महिला जब पहली बार ऑफिस जाती है तो पुरुषों द्वारा उसके साथ जो व्यवहार होता है उसे महिला इस प्रकार व्यक्त करती है "एक आदमी ने यूँ ही हाथ बढ़ाकर हरिहरन की मेज छूने की ऐसी चतुर कोशिश की, कि आस्तीन मेरी पीठ से रगड़ भी खाते। दूसरा मेरी पीठ से सटकर बेवजह मेरे सिर के ऊपर से हरिहरन की मेज पर चढ़े कागज पढ़ने का नाट्य करता गुनगुनाता रहा ख्र हूँ ऊँ ...ऊँ...ऊँ"³ पितृसत्तात्मक समाज, पारिवारिक दबाव और सामाजिक उपेक्षाएँ स्त्री के मार्ग में बाधा बनती हैं। यह यथार्थ समकालीन समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करता है।

मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में परिवार एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था के रूप में उभरता है किन्तु यह संस्था आदर्श रूप में नहीं, बल्कि टूटन और तनावग्रस्त दिखाई देती है। आधुनिकता, आर्थिक दबाव, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ और मूल्यगत परिवर्तन पारिवारिक संबंधों को प्रभावित करते हैं। 'पितृदाय', 'कोहरा और मछलियाँ', 'अंधेरे से अंधेरे तक', 'अब्दुला', 'व्यक्तिगत', 'कौवे', 'लक्का-सुन्नी', 'दूरियाँ' और 'रिक्ति' आदि कहानियों में इन्हीं पारिवारिक यथार्थ को दिखाया गया है। 'पितृदाय' कहानी में पिता-पुत्र सम्बन्धों की असफलता पर प्रकाश डाला गया है। पिता की तबीयत खराब होने पर नायक (पुत्र) परेशान होकर कहता है- "सात समन्दर पार से मरने को यहीं आना था तुम्हें? जन्म भर मुझे नफरत से देखा, फिर मेरे ही मत्थे मरने आये। ठण्डा हुआ जी तुम्हारा मेरा अपमान कराके?..... पहले अपनी ऐंट से घुला-घुलाकर माँ को मारा, फिर लड़की की गृहस्थी चूस खायी अब मुझे खा लो। मरते भी नहीं कि पिण्ड छूटे हमारा।"⁴ मृणाल पाण्डे की कहानियों में पारिवारिक यथार्थ परत दर परत खुलता है। यह सम्बन्ध केवल भावनात्मक नहीं बल्कि सत्ता नियंत्रण और अपेक्षाओं से भी जुड़े होते हैं। पति-पत्नी, माता-पिता और संतान के संबंधों में छिपे तनाव सामाजिक संरचना की सच्चाई को उजागर करते हैं। उनकी कहानियों में पारिवारिक नैतिकता अक्सर स्त्री के लिए बंधन बन जाती है, जबकि पुरुष के लिए वही नैतिकता अपेक्षाकृत लचीली दिखाई देती है। पति-पत्नी के संबंधों में संवेदनहीन पीढ़ियों के बीच टकराव और पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ उनकी कहानियों में यथार्थ रूप से चित्रित है। यह पारिवारिक यथार्थ समकालीन समाज की उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ पारंपरिक संरचनाएँ बदल रही हैं।

समकालीन यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक और आर्थिक असमानता है। नौकरी की असुरक्षा, आर्थिक निर्भरता, उपभोक्तावादी संस्कृति और वर्गीय भेद उनके पात्रों के जीवन को प्रभावित करते हैं। आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री के लिए मुक्ति का माध्यम बनती है किन्तु इसके साथ नए सामाजिक व मानसिक दबाव भी जुड़ जाते हैं। 'उमेश जी' कहानी में स्त्री के इसी स्थिति का चित्रण हुआ है- "उमेश जी से नौकरी माँगने को आने वाली हर लड़की के साथ इस दफ्तर में ऐसा ही जलालत भरा बर्ताव होता होगा, कमाल है फिर भी लड़कियाँ आती हैं, नौकरी माँगने, जैसे कि खुद मैं।"⁵ उमेश जी जैसे लोगों की संख्या समाज में पर्याप्त मात्रा में है जो यह सोचते हैं कि लड़कियों को रोजगार के नाम पर शोषित किया जा सकता है। यह आर्थिक यथार्थ समाज की वर्गीय संरचना को समझने में सहायक सिद्ध होता है और कथा साहित्य को समकालीन सामाजिक गहराई प्रदान करता है।

मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य राजनीति और सत्ता के प्रभाव से अछूता नहीं है। वे सत्ता की निरंकुशता प्रशासनिक उदासीनता और राजनीतिक अवसरवादिता को उजागर करती है। इनकी कहानियों में प्रशासनिक तंत्र की संवेदनहीनता, संस्थागत भेदभाव और शक्ति संबंध व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं। यह प्रस्तुति समकालीन यथार्थ को अधिक विश्वसनीय बनाती है।

परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य का प्रमुख आयाम है। उनके पात्र आधुनिक जीवन मूल्यों को अपनाना चाहते हैं। किन्तु सामाजिक-सांस्कृतिक बंधन उन्हें रोकते हैं। 'एक नीच ट्रैजेडी' नामक कहानी में पीढ़ीगत अन्तराल को दर्शाया गया है। नयी पीढ़ी पुराने थोपे गये आदर्शों और मूल्यों के खिलाफ विद्रोह में उतरती है तो पुरानी पीढ़ी उन्हीं मूल्यवत्ता से चिपकी रहना चाहती है। फलतः संघर्ष की स्थिति पैदा होती है। अम्मा गुरु गम्भीर स्वर में कहती है "तोड़ना तो बहुत आसान है, पर मैं पूछती हूँ कि जो यह हमारी यंगर पीढ़ी तोड़ जा रही है उसे रिप्लेस किससे करेगी? यानि की हमारी एक संस्कृति है, एक मर्यादा है।"⁶ परंपरा और आधुनिकता के बीच चल रहा द्वन्द्व तो "अब यह पीढ़ियों का टकराव तो एक चक्र सा है।"⁷ यह द्वन्द्व विशेष रूप से स्त्रीपात्रों के जीवन में तीव्र रूप से दिखाई देते हैं। 'एक नीच ट्रैजेडी', 'कैंसर', 'लकीरें' आदि कहानियों में इसी समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है।

आधुनिक समाज में बाजार और उपभोक्तावाद का प्रभाव निरंतर बढ़ रहा है। मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में यह प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है उनके पात्र उपभोक्तावादी मानसिकता, दिखावे और भौतिक सुखों की दौड़ में फंसे हुए नजर आते हैं 'पितृदाय', 'अन्धेरे से अन्धेरे तक', 'दुर्घटना' आदि कहानियों में इनका वर्णन बखूबी हुआ है। यह बाजारवादी यथार्थ मानवीय संबंधों को भी प्रभावित करता है। संवेदना, नैतिकता और आत्मीयता धीरे-धीरे हाशिए पर चली जाती है।

मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य मानसिक यथार्थ को विशेष महत्व देता है। अकेलापन, असंतोष, पहचान का संकट और आत्मसंघर्ष उनके पात्रों के जीवन में व्याप्त है। 'कर्कशा' कहानी में भग्नों का पति शराबी है काम-काज भी ठीक से नहीं करता जिसके कारण घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है। ऐसे में मानसिक तनाव व आत्मपीड़न को झेलती भग्नी चुप नहीं रहती कहती है- "सुभे हो गयी। पड़े-पड़े सो रहे हैं घर में पानी का नाम नहीं। गर्मी ऐसी ना मुराद है। खुद उठ कर चाय बनानी हो तो पता चले। अभी तो वही लगी है सब के बाप की लौड़ी।"⁸ 'कगार पर' नामक कहानी में विष्णु अकेलेपन से दुःखी होकर अत्यधिक नशा करने लगता है और अंततः नींद की गोलियों का अत्यधिक सेवन कर अपनी जान दे देता है। अकेलेपन का चित्रण 'धूप-छाँह' और 'समुद्र की सतह से दो हजार मीटर ऊपर' कहानियों में हुआ है। यह मानसिक स्थिति सामाजिक दबावों और बदलती परिस्थितियों की देन है, जो उनके कथा साहित्य को गहन मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करती है। मृणाल पाण्डे का यथार्थ बोध के बल आलोचनात्मक नहीं, बल्कि गहरी मानवीय संवेदना से युक्त है। वे अपने पात्रों के प्रति सहानुभूति रखती हैं और उनके संघर्षों को समझने का प्रयास करती हैं। यही संवेदना उनके कथा साहित्य को निराशावाद से बचाती है और उसे मानवीय धरातल पर स्थापित करती है। उनका यथार्थ पाठक को सोचने और आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है।

मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य विशेष रूप से शहरी मध्यमवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं को उजागर करता है। आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा का दबाव, नैतिक दोहरापन और संबंधों में स्वार्थ- ये सभी तत्व उनके कथा साहित्य में प्रमुख रूप से उपस्थित हैं। मध्यमवर्गीय पात्र बाहरी रूप से संतुलित दिखते हैं किन्तु भीतर से असंतोष और तनाव से ग्रस्त होते हैं। यह आन्तरिक द्वन्द्व समकालीन यथार्थ की एक महत्वपूर्ण पहचान है, जिसे मृणाल पाण्डे अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रस्तुत करती है।

मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में नैतिक मूल्यों का संकट एक प्रमुख विषय है। आधुनिक समाज में सफलता, धन और प्रतिष्ठा की होड़ में नैतिक दुविधाओं से जूझते हुए दिखाई देते हैं। क्या सही है और क्या गलत, इसका निर्णय कठिन हो जाता है। यह नैतिक संकट समकालीन यथार्थ की गहरी सच्चाई को सामने लाता है।

समग्र रूप से देखा जाए तो मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य समकालीन भारतीय समाज का विस्तृत, संवेदनशील और आलोचनात्मक दस्तावेज है। उन्होंने अपने कथा लेखन के माध्यम से स्त्री अस्मिता, सामाजिक असमानता, मध्यवर्गीय विडम्बनाओं, राजनीतिक हस्तक्षेप और नैतिक संकट जैसे विषयों को गहराई से प्रस्तुत किया है।

उनका यथार्थ बोध मानवीय संवेदना से युक्त है जो उनके कथा साहित्य को विशिष्ट बनाता है। इस प्रकार मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य में समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति को नई ऊँचाई प्रदान करती है और उनकी रचनाएँ भविष्य के साहित्यिक विमर्श के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं।

सन्दर्भ सूची

1. पाण्डे, मृणाल : यानि कि एक बात थी (दरम्यान), पृव-30
2. पाण्डे, मृणाल : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी (एक थी हंसमुख दे), पृव-50
3. पाण्डे, मृणाल : चार दिन की जवानी तेरी (उमेश जी), पृव-31
4. पाण्डे, मृणाल : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी (पितृदाय), पृव-30
5. पाण्डे, मृणाल : चार दिन की जवानी तेरी (उमेश जी), पृव-35
6. पाण्डे, मृणाल : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी (एक नीच ट्रेजडी), पृव-79
7. पाण्डे, मृणाल : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी (एक नीच ट्रेजडी), पृव-79
8. पाण्डे, मृणाल : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी (कर्कशा), पृव- 212

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे, मृणाल : एक स्त्री का विदागीत, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1985
2. पाण्डे, मृणाल : यानि की एक बात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
3. पाण्डे, मृणाल : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
4. पाण्डेय मृणाल : चार दिन की जवानी तेरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995

द्वितीय नगरीकरण कालीन कृषि व्यवस्था का अध्ययन, मगध साम्राज्य के विशेष सन्दर्भ में

जय प्रकाश यादव

(असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास), डॉ० भीमराव अम्बेडकर, राजकीय महाविद्यालय औडेन्य पड़रिया, मैनपुरी, उत्तर प्रदेश
(शोध- छात्र), भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

डॉ० दिनेश मांडोत

शोध-पर्यवेक्षक, (प्रोफेसर) इतिहास विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

साराशः

विश्व परिप्रेक्ष्य में सभ्यता के विकासक्रम को क्रमशः यायावर आखेटक खाद्य संग्रहण प्रधान, पशुचारण और कृषि प्रधान समाज के रूप में देख सकते हैं। कृषि ही अन्ततः मानव जीवन का आधार बनी। कृषि का प्रारम्भिक सूत्र नवपाषाणकाल से प्रारम्भ होता है। तदन्तर क्रमशः संशोधित, परिवर्धित होता हुआ विकास के नवसोपान को पार करते हुए भौतिक काल तक एक अभिनव आयाम प्राप्त करता है। 600 ई०पू० से 200 ई०पू० की कालावधि अर्थव्यवस्था के बुनियादी आर्थिक परिवर्तन के दृष्टिकोण से विशिष्ट है साथ ही साथ क्रान्तिकारी परिवर्तनों के साथ उदित होती है तथा कुछ नये आयाम और प्रश्न भी प्रस्तुत करती है। इस कालावधि की अर्थसंरचना के कई उत्प्रेरक तत्व हैं, जैसे कृषि में लौह तकनीक का प्रयोग जिससे कृषि उत्पादन में कई गुना तक वृद्धि हुई। प्रस्तुत शोध पत्र में हम कृषि क्रमिक विकास की विवेचन करेंगे।

मुख्य शब्दावली: द्वितीय नगरीकरणकालीन, कृषि व्यवस्था, मगध साम्राज्य।

द्वितीय नगरीकरण कालीन कृषि व्यवस्था:

द्वितीय नगरीकरण कालीन अर्थव्यवस्था में कृषि का सर्वप्रमुख स्थान हो गया था और कृषि भूमि का पर्याप्त विस्तार किया गया था। धर्मसूत्र साहित्य में बैलों को हल में जोतने, बीज बोने और सीता (कुंड) के पूजने के लिए अलग-अलग धार्मिक क्रियाएं करने का विधान है। जब फसल तैयार हो जाती थी तो किसान नवसस्येष्टि यज्ञ करता था। सूत्रकाल में कृषक अपनी परम्परा के अनुसार कृषि सम्बन्धी नियम बनाते थे तथा राजा उसे लागू करता था। राजा कृषक तथा कृषि सामग्री पर नियंत्रण रखता था। पाणिनि ने नकद भूमिकर लेने तथा अनाज के लिए कर्ज देने की स्वीकृति दी है। अष्टाध्यायी में दो प्रकार की फसल का उल्लेख है—

(i) अकृष्टपच्या-बिना परिश्रम से उत्पन्न (प्राकृतिक उपज)।

(ii) कृष्टपच्या-परिश्रम से उत्पन्न।

पाणिनि ने जिस क्षेत्र को बोने में एक प्रस्थ बीज लग जाये उसे प्रस्थिक कहा है। सम्भवतः भूमि की माप का इस समय यही पैमाना था। खेती की भूमि के लिए 'कर्ष', हल चलायी भूमि के लिए 'सीत्य', जुती भूमि को 'शुनासीर' कहा जाता था। सख्त भूमि को जोतने के लिए प्रयुक्त हल को 'जित्य' कहा गया है। हल रखने के आधार पर किसानों के तीन वर्ग बताये गये हैं—

(i) अहलि-जिसके पास निज हल न हो

(ii) सुहलि-उत्तम हल रखने वाले

(iii) दुर्हलि-पुराना या घिसा हुआ हल रखने वाला।

बौद्ध काल से पूर्व मौर्य काल तक कृषि का चित्रण बौद्ध-जैन ग्रंथों से मिलता है। बौद्ध संघ अपनी भूमि किसी को भी खेती के लिए देता था और उत्पादन का भाग लेता था। 'केवल जनजातीय लोगों में ही सामूहिक कृषि का चलन था। कृषक आपस में ही अपनी समस्या सुलझाते थे पर विरोध होने पर राजा के पास बेहिचक जा सकते थे।' पुरोहितों को भी कृषि भूमि दी जाती थी। किसी-किसी कृषक को राज्य के हिस्से की कृषि से होने वाले अन्न का एक भाग पुरोहित को देने की स्वीकृति दी जाती थी। 'रञ्जुग्राहक' खेत की पैमाइश करता था। खेतों की सीमा निर्धारित की जाती थी तथा उनका बंटवारा किया जाता था। इससे व्यक्तिगत कृषि को बल मिला।

ऋतु को ध्यान में रखकर खेती की जाती थी। वर्षा ऋतु में धान, तिल आदि की खेती की जाती थी तथा शरद ऋतु में गेहूँ, जौ, चना तथा अन्य दालों की। अतः इस समय के लोग रबी, खरीफ तथा जायद के फसल से परिचित होंगे। प्रो० आर०एस० शर्मा के अनुसार, धान का रोपण या पौध लगाने की प्रणाली का प्रारम्भ सर्वप्रथम बुद्ध के काल में हुआ। बिहार में 'चिरां व' 'सोनपुर तथा उत्तर प्रदेश में 'सौहगौरा', 'इमलीडीह', 'नरहन आदि के उत्खनन से धान के साक्ष्य मिले हैं।

राज्य तथा ग्रामवासियों के सम्मिलित प्रयास से नहरें बनाई जाती थीं। शाक्य और कोलिय गणराज्यों ने रोहिणी नदी पर सिंचाई के लिए बांध बनवाया था। राज्य सिंचाई की सुविधा के लिए इंजीनियरों की नियुक्ति करता था। ऐसा लगता है कि खेती की पहले की अपेक्षा अब किसानों को अधिक जानकारी प्राप्त है। अच्छे औजार (लोहे के उपकरण) के प्रयोग से इस समय के लोग अपनी आवश्यकता से अधिक उपज को बेच देते थे। इससे व्यापार को प्रोत्साहन मिला।

मौर्य काल की सबसे प्रमुख समस्या थी बढ़ती जनसंख्या और घटता उत्पादन और भोजन की समस्या का हल, बिना समुचित कृषि व्यवस्था के सम्भव नहीं था। इसके लिए कौटिल्य ने अनेक उपाये सुझाए हैं, जिससे दोनों में संतुलन बैठाया जा सके। कौटिल्य ने राजा के लिए 'वार्ता' का अध्ययन अनिवार्य माना था।

वृत्तोपयस्त्रयीम् आन्वीक्षिकी च शिष्टेभ्यः। वार्ताम् अध्यक्षेभ्यः, दण्डनीति वाम्य प्रयोक्तृभ्यः।

कृषि को व्यवस्थित ढंग से कराने तथा इसके उत्पाद में वृद्धि को कौटिल्य ने राजा के कर्तव्यों तथा दायित्वों में शामिल किया था। कृषि को वे अन्य व्यवसायों से इसलिए भी श्रेष्ठ मानते थे क्योंकि इससे मिलने वाले लाभों के सम्बन्ध में कुछ निश्चितता होती है। कौटिल्य के अनुसार, यदि कोई किसान किसी खेती योग्य भूमि को बिना जोते-बोये परती ही रखता है तो राजा को चाहिए कि ऐसे किसान से उस भूमि को छीनकर किसी जरूरतमन्द दूसरे किसान को दे दे। खेती करने की शर्त पर यदि कोई जमीन ले और उसमें खेती न करे तो हर्जाना वसूल करना चाहिए। इस समय कृषि कार्य की उपयोगिता तथा इसके विस्तार को इतना अधिक महत्त्व दिया गया था कि कुछ विशेष क्षेत्र जैसे-ब्राह्मण, सोमरण्य, देवस्थान, यज्ञस्थान और अन्य पूजा स्थानों को छोड़कर आवश्यकता पड़ने पर सभी जगह करने की अनुमति थी। कृषि कार्य को समुचित ढंग से कराने हेतु अनेक अधिकारी जैसे समाहर्ता (राज्य की ओर से कृषि की देखरेख करने के लिए) तथा सीताध्यक्ष की नियुक्ति की गयी थी। सीताध्यक्ष (राजकीय भूमि पर कृषि कार्य) के लिए आवश्यक था कि वह कृषिशास्त्र (कृषितंत्र), शल्वशास्त्र (खेतों की नाप-जोख) और वृक्षायुर्वेद (वनस्पतिविज्ञान) का ज्ञाता हो। अशोक के काल में 'प्रादेशिक' और 'रज्जुक' नामक अधिकारी भी कृषि व्यवसाय से जुड़े थे और राज्य कृषि के संरक्षण के निमित्त सदा तत्पर रहता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि कृषि कार्यों में दासों को लगाये जाने की व्यवस्था थी, जो एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक विकास था।

कृषि भूमि दो प्रकार की थी-सीता (राजकीय) और व्यक्तिगत। परती भूमि और वन को भी कृषि योग्य बनाने के लिए सलाह दी गयी है। इस समय फसल पूर्ववर्ती कालों की तरह ही हो रही थी। यद्यपि ईख की खेती की अपेक्षा चावल की खेती को उत्कृष्ट माना गया था। अशोक के द्वितीय शिलालेख में औषधि उत्पादन का विवरण मिलता है। युद्धकाल में कृषक अछूते रहते थे तथा अन्य जातियों की अपेक्षा इनकी संख्या कहीं अधिक थी। जो कृषक सरकारी हल, बैल एवं बीज आदि का उपयोग करते थे, उन्हें उपज का केवल चौथा अथवा पाँचवा 'भाग' ही मिलता था। भाग नामक कर अन्न के उत्पादन पर दिया जाने वाला राजकर था।

खाद के प्रयोग के संदर्भ में कौटिल्य ने निर्देश दिया है-पशुओं की हड्डी और गोबर की मिली-जुली खाद उस समय खेतों में दी जाती है। मछली की खाद में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है। वह विशेषतः जड़ों तथा अनाजों के लिए उपयोगी होती है। इन खादों को किस सीमा तक उपयोग किया जाता था, यह कहना कठिन है।

सिंचाई के लिए कौटिल्य का कहना है कि ग्रामीणों को परस्पर मिलकर बांध बनाकर सिंचाई का प्रबन्ध करना चाहिए। सुदर्शन झील का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसी उद्देश्य से कराया था और वहाँ अपना गर्वनर पुष्य गुप्त को नियुक्त किया था। अशोक ने इसे पुनः निर्मित कराया और वहाँ अपना गर्वनर तुशाष्प को नियुक्त किया। रहट, चरस, पनचक्की आदि का भी प्रयोग होता था। राज्य की ओर से भी नहरों आदि का परीक्षण करने के लिए पदाधिकारी नियुक्त किये गये थे। ये सिंचाई की गयी भूमि को नापते थे तथा उस पर सिंचाई कर (उत्पादन का 1/3, 1/4, 1/6) लेते थे।

कौटिल्य परती भूमि और वन को भी खेती के योग्य बनाने की संभावनाओं को खोजते हैं। कौटिल्य तीन तरह की फसलों का विवरण देते हैं। पहली कोटि की फसलें शालि, ब्रीहि, कोदो, तिल, कबुनी, दारद, वरम इत्यादि वर्षा के प्रारम्भ काल में, दूसरी कोटि की फसलें मूंग, उरद और शिम्ब वर्षा के मध्य तथा तीसरी कोटि की फसलें कुशुम्भ, मसूर, कुलबी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी और सरसों वर्षा के अन्त में। कृषि कार्यों के निमित्त नियुक्त पदाधिकारी 'सीताध्यक्ष' नाम से संबोधित था। अधिकतर सरकारी कर्मचारियों का वेतन भी 'पणों' में दिया जाता था। तात्पर्य यह कि मौर्य युग कृषि के विस्तारीकरण का युग तो था ही। उसकी संभावनाओं की पहचान और उसके असीमित-दोहन का काल भी था। कृषि अर्थव्यवस्था के लाभ पहली बार इतने स्पष्ट रूपों में सामने आते हैं।

सिंचाई की व्यवस्था कृषि से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण विषय है। तत्कालीन कालावधि में लोग न सिर्फ इसके महत्व से परिचित थे अपितु इसकी बेहतरी के लिए उद्यम भी करते थे। धर्मसूत्रों में राजा और प्रजा दोनों से तालाब एवं कुएँ बनवाए जाने की अपेक्षा की गई है। पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप 600 ई०पू० से 200 ई०पू० के पकी मिट्टी के अनेक छल्लेदार कुएँ (रिंग वेल) प्रकाश में आये हैं। ऐसे कुएँ हस्तिनापुर, पुराना किला, रोपड़, उज्जैन, मथुरा और नासिक में प्राप्त होने के साथ ही पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकांश उत्खनित ऐतिहासिक स्थलों में पाए गए हैं।

मौर्य युग में खेती के विकास में जो सर्वप्रधान कारक सिद्ध हुआ था, वह था राज्य द्वारा सिंचाई सुविधाओं का सुचारू प्रबन्धन एवं किसानों के हित में निर्बाध जलापूर्ति का नियमन। 'मौर्य काल में सिंचाई कर (उद्रक भाग) भी लिया जाता था।' सिंचाई हेतु सरकारी प्रयासों की अभिलेखीय पुष्टि भी होती है। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख के माध्यम से यह तथ्य सामने आता है कि मौर्य शासकों चन्द्रगुप्त और अशोक के राजत्वकाल में उनके प्रान्तीय प्रशासकों द्वारा सुदर्शन झील का निर्माण एवं मरम्मत कराया गया।

सिंचाई की इतनी उत्तम व्यवस्था के बाद भी इस कालावधि में अकाल जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती थीं। 'महावग्ग' में एक अकाल का उल्लेख है जिसमें लोग मांस भक्षण को बाध्य हुए थे। 'जैन कथाओं' में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में अकाल का उल्लेख हुआ है। सोहगौरा और महास्थान के अभिलेख भी अकालग्रस्त गंगाघाटी में जन सहायता का उल्लेख है। यहाँ यह स्पष्ट करना समीचीन प्रतीत होता है कि उस समय अकाल जैसी स्थिति प्रायः कम ही आती थी और आती भी थी तो उसका प्रकोप आज कल की अपेक्षा कम ही होता था।

किन्तु यह भी सत्य है कि फसलों का विनाश कई कारणों से हो जाता था, उदाहरण स्वरूप चिड़ियों, चोरों, पशुओं एवं कीड़ों-मकोड़ों के द्वारा, 'फसलों की विभिन्न बीमारियों के द्वारा', कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोपों के द्वारा (जैसे-ओलावृष्टि) एवं कभी अतिवृष्टि तो कभी अनावृष्टि के द्वारा।

इस कालावधि में अकाल जैसी विकट स्थिति प्रायः कम ही आती थी। इसका एक प्रमुख कारण वनों एवं वृक्षों के प्रति लोगों का लगाव एवं उनका संरक्षण भी था। बुद्ध और महावीर ने इनकी रक्षा के लिए जन-मानस को तैयार किया था। आध्यात्मिक लोग बहुधा वनों और उपवनों में शान्ति लाभ के लिए निवास करते थे। गौतम बुद्ध अनेक बार काशी के मृगदाय में ठहरे थे। अशोक ने अपनी राजाज्ञा द्वारा जंगलों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास किया था। यह पर्यावरणीय प्रेम था अथवा उनकी उपयोगिता या आर्थिक उपादेयता का प्रतिफल, यह निश्चित नहीं किया जा सकता।

कौटिल्य ने यह व्यवस्था दी है कि दुर्भिक्ष के समय राजा को भू-राजस्व माफ कर देना चाहिए। डायोडोरस ने 'भूमि लगान' तथा 'भूमि कर' में अन्तर किया है। 'लगान' को भूमि पर और 'कर' को उपज पर लगाया जाने वाला कर बताया है। घोषाल ने दो तरह के भूमि करों का वर्णन किया है। एक तो 'भाग' जो पूर्व वैदिक काल के 'बलि' की तरह का लगान कर था। अर्थशास्त्र में बलि का अर्थ वह उपकर प्रतीत होता है जो राजा उपज के भाग के अतिरिक्त प्रजा से लेता था। दूसरा 'हिरण्य' जो फसलों पर नकदी के रूप में लिया जाता था। हिरण्य कर कुछ विशिष्ट फसलों पर लगाया जाता था, और नकद धन के रूप में वसूल किया जाता था।

600 ई.पू. से 200 ई.पू. की कालवधि में अर्थव्यवस्था के अन्य महत्वपूर्ण अवयव पशुपालन का विश्लेषण भी समीचीन प्रतीत हो रहा है। पशुपालन पर और ध्यान दिया जाने लगा था, क्योंकि कृषि कार्य में पशुओं की उपयोगिता बढ़ गयी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन जनजीवन में विविध पशु-पक्षियों का महत्वपूर्ण स्थान था एवं उनके बारे में विस्तृत जानकारी भी थी। अशोक ने भी अपने राजाज्ञाओं द्वारा पशुनक्षियों की हिंसा कम करने का प्रयत्न किया।

पालतू पशुओं में गाय को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था। क्योंकि खाद्य पदार्थ के रूप में दूध का महत्वपूर्ण स्थान था साथ ही साथ इसकी संततियाँ बैलों के रूप में कृषि कार्य की आधारशिला थे। पालि तथा वैदिक ग्रन्थों में गो हत्या के अनेक संदर्भों को देखते हुए इसे आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ और स्वागत योग्य कदम माना जाना चाहिए। इनका मांस भी विशिष्ट अतिथियों को खिलाए जाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप सोनपुर, खजुरी, नरहन, आगियावीर, घूँसी और अन्य कई स्थानों में गाय, बैल और अन्य पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं जिन पर काटने के निशान हैं। 'मध्य गंगा घाटी में पशु के अवशेष नरहन, सेनुआर, मल्हर, कोल्डिहवा और महगड़ा से प्राप्त हुए हैं। उत्खनन के फलस्वरूप खैराडीह, लहुरादेव, राजा नल का टिला, यूँसी और टोकवा से भी पशुओं के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। घुरियापुर, इमलीडीह, वैना, भूनाडीह से प्राप्त पशुओं की हड्डियाँ अध्ययन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है। विभिन्न पुरास्थलों से प्राप्त पशुओं के अवशेष समकालीन जीवन में पशुपालन के प्रभाव को प्रकाशित करते हैं। पालि ग्रन्थों में हमें उत्तरापथ से घोड़ों के व्यापार के बारे में जानकारी मिलती है।' घोड़ों के साथ-साथ हाथी भी सैन्यबल का महत्वपूर्ण हिस्सा था। वस्तुतः बौद्धों की शिक्षाओं के फलस्वरूप पशुपालन के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदला। ब्राह्मण विचारधारा में धर्म के कृत्य-कर्मकाण्ड में पशुबलि की प्रथा तथा जनजातियों की आखेटक वृत्ति दोनों ही कृषि के लिए पशु संरक्षण की अवधारणा के विपरीत था।

राजस्व व्यवस्था का मेरूदण्ड भू-राजस्व व्यवस्था थी। अतएव विशेष रूप से भू-राजस्व व्यवस्था पर विश्लेषण उपयुक्त एवं तर्क संगत प्रतीत होता है। अब अधिशेष और उपभोग की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था थी। परिजनों के द्वारा नहीं, विधिवत नियुक्त अधिकारियों द्वारा राजस्व वसूली होती थी। अब केवल जनजातीय समाज नहीं रह गया था, बल्कि इसके साथ-साथ एक व्यवसायिक समाज भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा था। प्राक् मौर्यकालीन राजस्व व्यवस्था के सन्दर्भ में धर्म सूत्रों के विवरणों के आधार पर यह निष्कर्ष लगभग सर्वस्वीकृत प्रतीत होता है कि प्रजा की रक्षा के निमित्त राजा उनकी आय के छोटे भाग का अधिकारी था। 'पालि बौद्ध साहित्य में 'बलि' तथा 'भाग' शब्द आते हैं जो उपज के एक हिस्से को अभिव्यक्त करते हैं।' भाग साधारणतया उपज का छोटा भाग होता था किन्तु यह सदा या सर्वत्र छोटा भाग नहीं रहा। भूमि कर की कोई एक निश्चित दर नहीं थी और सामान्य रूप से भूमि के वर्गीकरण एवं मूल्यांकन के बाद ही कोई कर निर्धारित किया जाता रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि आपात कालीन स्थितियों में लोगों को नकदी के रूप में भी कुछ धनराशि देनी पड़ती थी।'

मौर्य युगीन भू-व्यवस्था में कराधान की बड़ी सुनियोजित पद्धति के दर्शन होते हैं। अर्थशास्त्र से यह ज्ञात होता है कि 'गोप' नामक अधिकारी ग्राम की समस्त भूमि का लेखा-जोखा रखता था। 'उसके बाद 'समाहर्ता' ग्राम में निरीक्षकों के द्वारा एक बार फिर 'सर्वे' कराता था। उसी के आधार पर करारोपण या कर मुक्ति निश्चित होती थी।'

श्री एम0एच0 गोपाल' और 'श्री ए0एन0 बोस' अर्थशास्त्र के ही एक अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मौर्य काल में सिंचाई कर भी लिया जाता था। अर्थशास्त्र में पशुपालन के व्यवसाय में लगे लोग भी करों से अछूते नहीं थे। मुर्गियों और सुअरों पर उनके मूल्य के 1/2 भाग, छोटे पशुओं पर 1/6, गाय, भैंस, ऊँट इत्यादि पर उनके मूल्य का 1/10 भाग कर लिया जाता था। आपात करों के बारे में भी कुछ संकेत मिलता है। 'प्रणय' तथा 'सेना भक्त' नामक कर ऐसा ही आपात कर था।

फसलों की बर्बादी हो जाने पर नई भूमि को कृषि योग्य बनाकर खेती करने पर। राजस्व में छूट दी जाती थी। कुछ पवित्र स्थलों जैसे लुम्बिनी वन के निवासियों को कर में छूट दी गई थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजा को ही कर मुक्ति का पूरा अधिकार था और यह भी कि राजा और प्रजा के मध्य सामन्तशाही जैसी कोई व्यवस्था नहीं विकसित हुई थी।

कपास की खेती के उल्लेख भी जातक एवं अन्य बौद्ध साहित्य में वर्णित है। खेतों में कपास की चुगाई का कार्य अधिकांशतः स्त्रियां ही करती थीं। महाजनक जातक से विदित होता है कि स्त्रियों द्वारा धुनकी से कपास की धुनाई का कार्य किया जाता था। रीज डेविड महोदय का मानना है कि सम्भवतः सर्वप्रथम कपास की खेती की शुरुआत बौद्ध युग से ही हुई क्योंकि इसका प्राचीनतम उल्लेख भी सूत्र साहित्य एवं बौद्ध ग्रन्थों ही प्राप्त होता है।

उपर्युक्त फसलों के अतिरिक्त दैनिक जीवन निर्वाह से सम्बन्धित अन्य उपज के भी साक्ष्य जातक साहित्य से प्राप्त होते हैं, इनमें 'मटर', 'उड़द', 'सरसों', 'मसूर', 'सन, तथा 'पान' आदि प्रमुख हैं। तत्कालीन समाज के दैनिक जीवन में इनका उपयोग आम तौर पर किया जाता था।

जातक साहित्य में अन्नों के उत्पादन के साथ-साथ मसालों की खेती के साक्ष्य भी प्राप्त होते हैं। इन मसालों में 'मिर्च', 'लहसुन', 'हल्दी', 'अदरक', 'हींग', जीरा, आदि प्रमुख थे। सम्भवतः विभिन्न व्यञ्जनों को तैयार करते समय रसास्वादन के लिए इन मसालों का विशेष आकर्षण रहा होगा।

जातक कथाओं में सब्जी की उपज के भी साक्ष्य प्राप्त होते हैं। सब्जी बेचने के कई रोचक प्रसंग इन कथाओं में प्राप्त होते हैं। तरकारी बेचने वालों को कुजड़े, शब्द से संबोधित किया गया है। इन उपजों में खीर, लौकी, कद्दू आदि सब्जियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

निष्कर्ष/परिणाम:

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में नवपाषाण काल से लेकर मौर्य युग तक कृषि एवं उसकी तकनीक का क्रमशः विकास हुआ। प्रारम्भ में जहाँ कृषि कार्य सीमित क्षेत्र में होता था, वहीं तकनीक के विकास के साथ कृषि क्षेत्र में विस्तार होने से अन्न उत्पादन में भी वृद्धि हुई। अतिशय अन्न उत्पादन से व्यापार-वाणिज्य का विकास हुआ। भारत चूँकि एक कृषि प्रधान देश रहा है अगर इसके विभिन्न युगों की समृद्धि की बात की जाए तो इसमें कृषि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह न केवल जीविका का एक प्रमुख साधन रहा है, अपितु आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सन्दर्भ

1. कौसाम्बी, डी0डी0, 1956, एन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री, बंबई, 1956
2. मिश्र, जी0एस0पी0, 1983, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था,
3. मिश्रा, जयशंकर, 1974, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,
4. मिश्र, जी0एस0पी0, 1983, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था,
5. शर्मा, रामशरण, 1992, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं,
6. शर्मा, राम शरण, 1992, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास,
7. गोपाल, एम0एच0 मौर्यन पब्लिक फाइनैस,
8. अतीन्द्रनाथ बोस, सोशल एण्ड रूरल इकोनामी ऑफ नार्दर्न इण्डिया,
9. मिश्र, जी0एस0पी0 1983, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था,
10. महावमण, 3.1-3, चुल्लवम्ण, 5.32.1
11. जैकोबी, जैन सूत्रान, 2
12. डेविडू, रिज, डायलाग्स ऑफ दि बुद्ध, खंड-1
13. प्रकाश, ओम, 2001, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, खण्ड द्वितीय,
14. रामशरण शर्मा, 1992, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक रचनाएं,

बंगला भाषा एवं साहित्य तथा हिन्दी भाषा और साहित्य का अंतर्संबंध

डॉ० उपेन्द्र प्रसाद

हिंदी विभागाध्यक्ष, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत की भाषाओं का परिवार भले ही एक नहीं है लेकिन उन सबका साहित्यिक रूप लगभग मिलता-जुलता है। आज की हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, असमी, पंजाबी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयाली आदि के साहित्य को देखें तो उनमें सार रूप में एक जैसी प्रवृत्तियाँ की धारा प्रवाहमान है।

विभिन्न प्रदेशों और जनपदों को सांस्कृतिक विशेषताओं की छाप अलग-अलग प्रदेश का अलग-अलग ढंग से उन पर पड़ा है। 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल मानते हैं कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्रवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है। तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चलता है।'

अलग-अलग प्रदेशों में राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आधार-भूमि भारतीय साहित्य की लगभग बराबर थी और हर जगह अलग-अलग काल में जनता के चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला। भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओं के विकास के चरण भी लगभग समान हैं। सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य पर रामायण, पुराण, संस्कृत के अभिजात, साहित्य, जयदेव की कृतियाँ, बौद्ध-जैन तथा अन्य धर्मों के साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। सबसे पहली प्रवृत्ति जो भारतीय वाङ्मय में प्रायः सर्वत्र समान मिलती है।

वह है नाथ साहित्य। तमिल, तेलगू, कन्नड़, हिन्दी, मराठी और बंगला सभी में इसका प्रभाव पड़ा है। चारण काव्य भी अधिकांश में प्रायः समान है। संत काव्य की धारा भी भारतीय वाङ्मय ही सबसे प्रबल प्रवृत्ति है वैष्णव काव्य की जो तमिल, मलयाली, हिन्दी, मराठी गुजराती, बंगला, उड़िया, असमिया में खूब देखी जा सकती है। आधुनिक साहित्य के विकास की रेखाएँ तो सभी भारतीय साहित्य में और अधिक समान रही हैं। भारतीय वाङ्मय में आधुनिकता का समारम्भ लगभग समकालिक है। हमारे देश में विविधता में एकता लाने की कोशिश चिरकाल से की गई और इस कार्य में हमारे साहित्यकारों ने विशेष योग दिया। वैदिक साहित्य के द्वारा सारे देश में एक-सी धार्मिक भावना, एक ही संत पद्धति और एक-सा दार्शनिक आधार प्रतिष्ठित हुआ था। भाषाओं और साहित्य की विपुलता ही भारतीय साहित्य की प्रमुख विशेषता ही है। समूचा भारतीय साहित्य रामायण और महाभारत से प्रेरणा लेकर बना है। लोकभाषाओं में सहस्रों गान का आधार भी यही दो ग्रंथ हैं। भारतीय भाषाओं में कदाचित्त सबसे समृद्ध आधुनिक साहित्य बंगला का ही है। ऐसा नहीं कि बंगला भाषा का प्राचीन साहित्य-समृद्ध नहीं था, लेकिन आधुनिक साहित्य में इसका साहित्य समृद्धतमा है इसमें कोई शक नहीं। 10 वीं शताब्दी के आसपास यह मागधी अपभ्रंस से प्रस्फुटित हुआ व्युत्पत्ति की दृष्टि से बंगाल से संबंधित होने के कारण इसका नाम बंगला पड़ गया। चंद्रवंश के बलिराणा के पुत्र बंग के नाम पर इस प्रदेश का नाम बंगाल पड़ा। डॉ. सतेंद्र मानते हैं कि "चीनी प्रमाण से विदित होता है कि भारत के बौंग लौंग प्रदेश के नागवंश के लुक-लाभ ने अन्नाम में राज्य स्थापित किया था यह बौंग लौंग ही तो बंगला है जिससे बंगाल व्युत्पन्न हुआ है।"²

बंगला साहित्य का समयकाल बंगला साहित्य के इतिहास लेखक डॉ. सुकुमार सेन ने तीन भागों में बाँटा है—

1. आदिकाल-13-14 वीं शताब्दी तक माना जाता है।
2. मध्यकाल-15-18 वीं शताब्दी तक है।
3. आधुनिक काल-19 वीं शताब्दी से अब तक माना जाता है।

हिन्दी और बंगला का अगर भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करें तो दोनों भाषाओं में कई समानता और असमानता के बिन्दु देखने को मिलते हैं। हिन्दी में रूपान्तरशील वर्ग के विशेषण लिंग और वचन से प्रभावित होते हैं। किन्तु बंगला के विशेषण रूपान्तर रहित ही रहते हैं। हिन्दी जैसे 'अच्छा' लिंग और वचन के अनुसार 'अच्छे और अच्छी' हो जाते हैं लेकिन बंगला में 'भाल' विशेषण परिवर्तित नहीं होता लेकिन हिन्दी का सुन्दर बंगला में भी ठीक वैसा ही प्रचालित है। हिन्दी और बंगला दोनों ही भाषाओं में पूर्ण संख्यावाचा विशेषण के रूप में समानता दिखाई पड़ती है। कुछेक को छोड़ के। अपूर्ण संख्या वाचक विशेषण के रूप में हिन्दी और बंगला में प्रायः समान है। जैसे हिन्दी में तिहाई, पौएड, उसी तरह से बंगला तेहाई, पौन प्रचलित है। हिन्दी और बंगला के परिमाण वाचक सार्वनामिक विशेषण की व्युत्पत्ति के स्रोत समान है। इस तरह से हम देखते हैं कि दोनों में पार्थक्य की अपेक्षा समानता ज्यादा है। बंगला और देवनागरी लिपि भी समान है तथा दोनों भाषाओं की ध्वनियों में भी समानता है। 'लेकिन हिन्दी सीखते समय हिन्दी के ध्वनि व्यवस्था के कारण बंगला भाषी को कठिनाई होती है।'³

बंगला साहित्य का आदिकाल

बंगला साहित्य का अरंभिक विकास रहस्यवादी भावों से भरे चर्यापद से होता है। चर्यापद में बंगला के ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के भी संकेत मिलते हैं। इस ग्रंथ की रचना 10 वीं शताब्दी के आसपास हुई है जो बंगला की सर्वप्रथम साहित्यिक रचना है। इसमें प्रायः उस युग के सिद्धों की रचनाएँ हैं यद्यपि चर्यापदों की मूल प्रेरणा प्रबल धार्मिक भावना से भरी थी लेकिन उसमें साहित्यिक गरिमा का अभाव नहीं था। कूट शैली में तथा सूत्र शैली में चर्यापदों की रचना हुई है। जिसका वैराग्यपूर्ण प्रयोग आज के धार्मिक लोक साहित्य में भी देखा जा सकता है। चर्यापदों के गीतों की कुछ मार्मिक पंक्तियाँ आज हमारे घरों में कहावतें बन चुकी हैं। इसी कारण इस काल में 'हिन्दी बौद्ध काल' के नाम से भी पुकारा गया है। चर्यागीतों में बंगाल के तत्कालीन हिन्दू और बौद्ध धर्मों तथा सांस्कृतियों का सुन्दर संयोग प्रयोग लक्षित होता है। चर्यापदों के बाद 2-3 शताब्दियाँ तक कोई विशिष्ट रचना नहीं मिलती। जो भी रचनाएँ प्राप्त होती हैं वे संस्कृत की रचनाएँ हुई हैं। गीत-गोविन्द की रचना में तत्कालीन समाज की खूब जानकारी मिलती है। इसी समय बंगला भाषा के नाथ साहित्य भी मिलता है। चर्यागीत पालयुग में रचे गये। गीत-गोविन्द को बंगला गीत नाट्य का पूर्व रूप कुछ विद्वान मानते हैं।

बंगला साहित्य का पूर्व मध्यकाल

बंगला में 14वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक साहित्य रचना का क्रम पुनः प्रारंभ हो जाता है। इसमें सर्वप्रथम और अग्रणी कवि हैं। राधा कृष्ण विषयक गीतों के रचयिता महान वैष्णव कवि चंडीदास। इन्होंने लगभग 1000 गीत रचे। जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं का गान है और यहीं से राधाकृष्ण से संबंधित काव्य से बंगाली साहित्य प्रारंभ होता है। जयदेव, विद्यापति, चंडीदास की राधाकृष्ण की कविताओं ने इस युग के साहित्य को रस में भर दिया। मध्ययुग के इस साहित्य को इन रचनाकारों के कारण धार्मिक श्रृंगार भावना तथा गेयता का आधार प्राप्त हुआ तथा धार्मिकता के आधार पर धर्म मंगल साहित्य परम्परा का विकास हुआ। सहजिया सम्प्रदाय में इस प्रकार के मंगल काव्य के बीज मिलते हैं। मंगल काव्य की इस परम्परा में 'मानस मंगल काव्य' हरिदत्त कृत तथा धर्म मंगल आदि ग्रंथ लिखे गये जो लोक साहित्य का अपूर्व थाती है।

15वीं सदी के एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं कृतिवास ओझा। जिन्होंने बंगला रामायण की रचना की। इसके कारण इन्हें सवश्रेष्ठ कवि कहा जाता है। इस रामायण में भगवान राम को विष्णु का अवतार मानकर कविता लिखी गई। श्री चैतन्य का अभ्युदय इसी 15वीं शताब्दी में हुआ। जो न 'केवल बंगला साहित्य के इतिहास में बल्कि प्रांत के सांस्कृतिक इतिहास में भी युगांतरकारी घटना थी।'¹⁴

चैतन्य का प्रभाव आस-पास के प्रान्तों पर भी पड़ा। यह इतना व्यापक था जो किसी भी समसमयिक, सामाजिक और राजनैतिक घटना से बड़ा था। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के बीच लगभग हर साहित्य पर चैतन्य का प्रभाव था और उनका निवास स्थान 'नवदीप' उस समय के बंगाली संस्कृति का केंद्र बन गया। हालांकि चैतन्य के पहले से ही वैष्णव धारा प्रवाहित हो रही थी लेकिन इनके बाद वह धारा और तेजी से आगे बढ़ी। इस समय दो तरह के साहित्य लिखे गये-गीत, काव्य और चरित काव्य। गीतकारों में मुरारी गुप्त, नरहरि सरकार, वासुदेव घोष और रामानंद वसु के अलावा ज्ञानदास, बलराम दास भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा रचित राधाकृष्ण के प्रेमगीत हिन्दू, मुस्लिम सभी वर्गों में बहुत लोकप्रिय हुए। कृष्ण विषयक वैष्णव कविताएँ मुख्यतः राधाकृष्ण के प्रेम पर आधारित हैं। बंगला वैष्णव कविताएँ केवल भाव के ही दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि उनमें अधिकतर का कलात्मक सौंदर्य अनुपम है। 18 वीं शताब्दी के पश्चात् वैष्णव साहित्य के अन्तर्गत चरित्र साहित्य का सृजन आरंभ हुआ। चैतन्य भागवत, चैतन्य मंगल, चैतन्य चरितामृत, प्रेम विलास, नरोत्तम विलास, भक्ति रत्नाकर आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

चैतन्य के दो शताब्दियों के बाद के बंगला साहित्य में एकान्ततः वैष्णव साहित्य सृजन का युग नहीं। इसके बाद दो तरह के और साहित्य सामने आये अनुवाद साहित्य और मंगल काव्य बंगला का अनुवाद साहित्य मुख्यतः भारत के दो प्रसिद्ध महाकाव्यों रामायण एवं महाभारत और बंगला के सर्वप्रिय पुराण, भागवत पुराण पर आधारित हैं। सबसे लोकप्रिय अनुवाद काशी रामदास कृत महाभारत है। मंगल काव्यों में सबसे प्राचीन 'चंडी मंगल' (1475 ई.) है जिसके प्रथम कवि हैं माणिक दत्त मुकुंद राम चंडी मंगल साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। जिन्हें बंगाल का चौसर कहा जाता है। मयूर भट्टा धर्म मंगल काव्य का आदिकवि है। पूर्वी बंगाली गीत की रचना भी इसी काल में हुई है।

उत्तर मध्यकालीन बंगला साहित्य

18 वीं शताब्दी को बंगला काव्य के हास काल कहा जाता है क्योंकि काव्य क्षेत्र में कोई बड़ा प्रयास नहीं किया गया है। इस समय के कवि भालचंद्र में अलंकृत शैली के दर्शन होते हैं। विद्यासुन्दर की कथा का 18 वीं शताब्दी में बोलबाला था। कवि रामप्रताप सेन ने भी 'कलिका मंगल' रचना में विद्यासुन्दर कथा को लिया है। मध्यकालीन बंगला साहित्य में मुसलमान आश्रयदाताओं ने अनुवादकों से हमारे धर्मग्रंथों के कई अनुवाद कराके बंगला साहित्य को समृद्ध किया।

आधुनिक काल का बंगला साहित्य

बंगला साहित्य का आधुनिक काल लगभग 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इस समय नवाब सिराजुद्दौला का पराभव हुआ और अंग्रेज यहाँ स्थापित हुए। 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना बंगला गद्य के इतिहास में सचमुच एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस कॉलेज के माध्यम से बंगला पाठ्य पुस्तक लिखने का संगठित प्रयास हुआ। पत्र-पत्रिकाएँ भी इस समय निकलने लगी। 'बंगाल गजट' पहला पत्र था जिसके प्रकाशक और संपादक गंगा किशोर भट्टाचार्य थे। 'समाचार-दर्पण', 'संवाद-कौमुदी', 'समाचार चंद्रिका', 'बंगदूत', 'संवाद प्रभाकर' जैसे पत्र का प्रकाशन इसी समय तक प्रारंभ हो गया। 19 वीं शताब्दी के पहले का गद्य बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं था लेकिन राममोहन राय ने बंगला गद्य को प्राणमय बनाया। देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने भी अच्छे गद्य लेखन किये पर इस युग में बंगला गद्य लेखकों में ईश्वर चंद्र विद्यासागर सबसे अग्रणी थे। रविन्द्र नाथ टैगोर ने भी गहरी छाप छोड़ी, भूदेव मुखर्जी, निबंध लेखन में और राजनारायण वसु हास्य विनोद गद्य लेखन में उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक बंगला कविता

इसका प्रारंभ 1840 में हुआ। पाश्चात्य समाज के संपर्क के बाद बंगला के नूतन काव्य सृजन की प्रवृत्ति तुरन्त नहीं आयी। प्रारंभ में विषय धार्मिक और प्रेमपरक था। आधुनिक बंगला कविता में ईश्वर गुप्त के प्रथम आधुनिक प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। इसके बाद मधुसूदन दत्त हैं जिसमें आधुनिकता देखने को मिलती है। 1859 में मधुसूदन दत्त ने 'शर्मिष्ठा' नामक पहला नाटक लिखा। मधुसूदन की कृति का आधार बंगला के पहले महाकव्य में 'मेघनाथ पद्य' से है।

जिनमें पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस युग में रंगा ला, हेमचंद्र, नवीन चंद्र ने अलग से गीत लिखे। हेमचंद्र ने देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी तो बिहारी लाल के प्रकृति सौंदर्य के चित्रण के साथ मानव प्रेम भी है। इसी कारण इन्हें टैगोर का अग्रगामी कवि कहा जाता है।

बंगला साहित्य में यात्रा का प्रचलन था जो नाट्य अभिव्यंजना का लोकप्रिय देशी रूप था। यह नाटक मूक अभिनव के द्वारा संगीतमय प्रस्तुति की जाती थी। योगेंद्र चंद्र गुप्त, ताराचंद्र सिकंदर, हरचंद्र घोष, यतीन्द्र मोहन ठाकुर, रामनारायण, मधुसूदन आदि प्रसिद्ध नाट्यकार हुए। 18 वीं शताब्दी में नाटककार चंद्रघोष ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं जो उच्चकोटि के अभिनेता, रंगमंच प्रबंधक और प्रयोक्ता थे। इनके नाट्य मेधा में देशी और विदेशी दोनों का मिश्रण था। इस काल के एक और जनप्रिय लेखक अमृतलाला वसु हैं जो कामदी और प्रहसनकार के रूप में प्रसिद्ध थे। द्विजेंद्र लाल राय जो प्रसिद्ध गीतकार भी थे, देशभक्तिपूर्ण ऐतिहासिक नाटक लिखा है। रवि ठाकुर ने भी बंगला नाटक को समृद्धि प्रदान की।

बंगाल उपन्यास 1850 के आसपास प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में 'कादम्बरी' और 'स्वप्न वासदत्ता' का अनुवाद बंगला में हुआ है जो कथा लेखन के आधार भी बने। 'नव बाहु विलास' उपन्यास का प्रारंभिक प्रयास है। वस्तुतः बंगला में उपन्यास का प्रारंभ बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने उपन्यास 'दुर्गेश नंदिनी' (1865) के रोमानी उपन्यास से हुआ। बंकिम चंद्र निबंधकार के रूप में भी प्रसिद्ध थे। इन्होंने खूब उपन्यास लिखे जिससे समसामयिक उपन्यासकारों का उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली। बंकिम के बाद रविन्द्रनाथ टैगोर और शरद चंद्र चटर्जी ने उपन्यास विद्या को बहुत ही समृद्धि प्रदान की। इन्होंने उपन्यास में एक निश्चित परिवर्तन किया। शरद सामाजिक उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त थे तो रविन्द्र नाथ अपने उपन्यास में नूतन समाज चेतना तथा गहरी मानवीय भावना की अभिव्यक्ति की। रवीन्द्र नाथ टैगोर तो आजीवन अपनी साधना से बंगाली साहित्य को बहुत ही समृद्धि प्रदान की। उनका काव्य संग्रह 'गीतांजली' विश्वमान अत्यंत लोकप्रिय काव्य में जिन पद इन्हें नोबेल पुरस्कार मिला है। रवीन्द्र नाथ हमारे साहित्य की लगभग पूरी एक शताब्दी का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके निबंध, साहित्य आलोचना, लेख, संस्मरण, अनुवाद और चित्रकारी सभी धरोहर हैं। ये जितने बड़े मौलिक कलाकार थे उतने ही बड़े समीक्षक भी थे। अर्थात् बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने सबसे ज्यादा देशभक्तिपूर्ण कविताएँ भी लिखी। उनके अगणित प्रेमगीत और कविताओं ने मानव हृदय का कोई तार अछूता नहीं छोड़ा। उनके दूंदों में अनंत वैविध्य था। इन्होंने कई प्रतीकात्मक नाटक भी लिखे।

रविन्द्र नाथ के बाद काव्यकारों में करुणानिधि बंद्योपाध्याय, जतीन्द्र मोहन बागची, कुमुद रंजन मालि, जीवनानंद दास प्रमुख हैं। इसका संग्रह 'गीतांजली' जैसा ही धूम मचाई थी। इसके बाद बुद्धदेव, सुधींद्रदत्त, अमिय चक्रवर्ती, अजीत दत्त, साम्यवादी सुभाष मुखोपाध्याय, सुकान्त भट्टाचार्य, सुनील गंगोपाध्याय आदि उल्लेखनीय हुए हैं।

शरद के बाद कथाकारों में विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय, ताराकांत बंद्योपाध्याय, शैलजा नंद मुखर्जी, प्रेमनंद मित्र, बुद्धदेव बोस, राजशेखर बसु, प्रमोद कुमार सान्याल, विमल मित्र, सतीन्द्र नाथ भादुड़ी, गजेन्द्र कुमार मित्र, शंकर और समरेश बसु आदि प्रसिद्ध कथाकार हुए हैं।

आधुनिक बंगला नाटक कथा साहित्य की तरह समृद्ध नहीं है। फिर भी रवीन्द्र नाथ राहा, महेन्द्रनाथ गुप्त, सच्चिन्द्र सेन, सलिल सेन, उत्पल दत्त, अजीत गंगोपाध्याय, मोहित चट्टोपाध्याय, बाद सरकार आदि के नाटक विद्या को बहु विधि विस्तार दिया है। निबंध और आलोचना के क्षेत्र में सुनीति कुमार चाट्टर्ज्या, शशिभूषण दास गुप्त, सुकुमार सेन, विनय घोष, आशुतोष भट्टाचार्य ने बंगला साहित्य के आलोचना को आगे बढ़ाया। निबंध के क्षेत्र में सुधीन्द्रनाथ गुप्त, बुद्ध देव बसु विशेष थे।

इन सारे विश्लेषणों का सार यह है कि आदिकाल से लेकर अब तक बंगला साहित्य में जो हर काल में अन्तःधारा बही है, वह वैसी ही जैसी अन्य भारतीय भाषाओं में बही है। हिन्दी साहित्य के छायावाद पर रविन्द्रनाथ टैगोर के रहस्यवादी गीतों का बूख प्रभाव पड़ा है। वह प्रभाव छायावादी कवियों के सौंदर्यबोध प्रकृति चित्रण भारतीय चिन्तन के साथ-साथ शैलिक प्रभाव रविन्द्र नाथ ठाकुर का छायावाद पर देखा जा सकता है। इसके अलावा कथा साहित्य में प्रेमचंद के ऊपर शरद चंद्र का प्रभाव सामाजिक संदर्भों के उद्घाटन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी नाटकों पर भी बंगला नाटक का प्रभाव देखा जा सकता है। इतिहास विदित है कि भारतेन्दु अपने बंगाल यात्रा के समय वहाँ के रंगमंच से प्रभावित होकर हिन्दी नाटक की शुरुआत की थी। यह बात हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास से स्पष्ट हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रामचंद्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ. कैलाश चंद्र भट्टिया- भारतीय भाषाएं, पृ. 76
3. सं. भोलानाथ तिवारी- प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
4. कमल सिंह - संपर्क भाषा हिन्दी और भारतीय भाषाएं, पृष्ठ 190, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-6
5. डॉ. नागेन्द्र - भारतीय साहित्य, पृष्ठ 321

विचारधारा के अर्थों का विकास

डॉ० अभिनय कुमार

हिन्दी विभाग, सहायक प्राध्यापक, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

विचारधारा कोट या कुर्ते जैसी कोई चीज नहीं है, जब मन किया एक उतारा और दूसरा पहन लिया। मेरे विचार से विचारधारा कुछ दूसरी ही चीज है। उसे आदमी मजबूती से पकड़ता है। वह समर्पण मांगती है। उसके लिए निष्ठा चाहिए, गहरा आंतरिक विश्वास चाहिए। उसी निष्ठा और गहरे विश्वास में से सब तरह के अभाव, कष्ट, निन्दा, अपमान और जेल, यातना सबकुछ सहने और जरूरत पड़ने पर अपने प्राण तक दे देने की ताकत आती है। जहां ये निष्ठा और समर्पण और अकुंठ विश्वास नहीं है, वहां फिर विचारधारा कैसी? अब सवाल पैदा होता है कि विचारधारा से हमारा क्या मतलब है? विचार तो आसानी से समझ में आता है। सबके मन में कभी कोई विचार आता रहता है। अभी मैं अपने बारे में सोच रही हूँ, फिर अपने वर्ग के विषय में सोचने लगी, फिर देश की ज्वलंत समस्या—जैसे भारत-पाक संबंध या फिर आरक्षण नीति के बारे में सोचने लगी। किसान अपने खेतों के बारे में विचार करता है, गृहणी अपने घर-परिवार के बारे में। नेतागण के मन में कुछ दूसरे ही तरह के विचार आते रहते हैं—कैसे विधानसभा या लोकसभा का टिकट दुबारा-तिबारा हासिल किया जाय, मंत्रिमण्डल में कैसे घुसा जाय आदि-आदि। यानी कि सबके पास अपने-अपने विचार होते हैं और आदमी उन्हीं में गोते खाता रहता है। इसलिए विचार तो सब समझते हैं, पर विचारधारा जरा टेढ़ी खीर मालूम होती है। अमृत राय विचारधारा पर विचार करते हुए लिखते हैं, “‘विचार’ और ‘धारा’ दोनों ही शब्द संस्कृत से हिन्दी में आये हैं और हिन्दी के अपने हैं, लेकिन उन दोनों का सामासिक पद जो ‘विचारधारा’ है वह कदाचित् हमारे यहां का पुराना प्रयोग नहीं है। मेरा अनुमान है कि वह अंग्रेजी से हिन्दी में आया है और ‘आइडियॉलोजी’ का रूपांतर है।”

‘विचारधारा’ के अर्थ के विकास का इतिहास एक जटिल स्वरूप धारण किए हुए है। कहीं विचारधारा ‘विचारों के विज्ञान’ के रूप में परिभाषित है तो कहीं ‘छद्म चेतना’ के रूप में। कहीं इसे ‘लेखक की वर्गीय चेतना’ के रूप में देखा गया है तो कहीं ‘विश्वदृष्टि’ के रूप में। और फिर आज के उत्तर आधुनिक समय में जबकि विचारधारा के अंत के फतवे जारी किए जा रहे हैं तो समस्या यह है कि आज के संदर्भ में विचारधारा से क्या अर्थ लगाएं? वास्तव में, ‘विचारधारा’ की किसी एक कालखंड में, किसी एक विचारक द्वारा, किसी एक संदर्भ में दी गई व्याख्या को ही आखिरी मानना एक भूल होगी। अतः हमें विचारधारा के अर्थ का वास्तविक स्वरूप निर्धारण हेतु इसके विकासक्रम तथा उस विकासक्रम में उभरते हुए इसके अर्थों की प्रकृति एवं उसके प्रयोजनों को ध्यान में रखना होगा।

विचारधारा की अवधारणा आधुनिक चिंतन की उपज है। सामान्यतः विचारधारा के अर्थ की व्याख्या मार्क्सवाद के संदर्भ में की जाती है लेकिन मार्क्स के पूर्व ही डीट्रेसी और नेपोलियन आदि ने विचारधारा के अर्थ के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। फ्रांस के बुद्धिजीवी दार्शनिक डीट्रेसी ने 1797 ई. में पहली बार ‘विचारधारा’ शब्द का प्रयोग करते हुए इसे सामाजिक प्रक्रिया को समझने के लिए ‘विचारों के विज्ञान’ के रूप में परिभाषित किया। विचारधारा का प्रयोग ज्ञानमीमांसा तथा भाषाविज्ञान में भी हुआ है। नेपोलियन ने ‘विचारधारा’ की व्याख्या करते हुए विचारों के विज्ञान के रूप में इसकी आलोचना की। हेगेल तथा मार्क्स के मध्य के समय में धर्म, समाज तथा विचार प्रक्रिया पर लंबी बहस चली। फायरेबारव अपने ग्रंथ ‘एसेंस ऑफ क्रिश्चनरी’ में लिखते हैं कि विचारधारा का आस्थावाद से विरोध तथा भौतिकवाद और विवेकवाद से गहरा संबंध है।

विचारधारा के अर्थ के विकास में मार्क्स-एंगेल्स का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी रचनाओं में विचारधारा का अर्थ सब जगह एक समान नहीं है। विचारधारा की धारणा में परिवर्तन और विकास हुआ है। “जर्मन विचारधारा” नामक पुस्तक में मार्क्स-एंगेल्स ने विचारधारा को ‘छद्म चेतना’ कहा है जबकि “राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना को योगदान” नामक पुस्तक में इसे एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ की विशिष्ट सामाजिक चेतना के रूप में परिभाषित किया है। विचारधारा को यथार्थवाद का विरोधी मानने वाले आलोचक अपने मत के समर्थन में मार्क्स-एंगेल्स के ‘जर्मन विचारधारा’ वाले मत-जिसमें कि विचारधारा को भ्रम, अवास्तविक और यथार्थ का उल्टा प्रतिबिम्ब कहा गया है—को प्रस्तुत करते हैं। पर वास्तव में इसमें मार्क्स-एंगेल्स ने मुख्य रूप से धर्म और दर्शन की चर्चा की है, साहित्य और कला की नहीं। अर्थात् वे धर्म और दर्शन द्वारा प्रतिपादित, विचारधारा को ‘छद्म चेतना’ अथवा ‘यथार्थ का उल्टा प्रतिबिम्ब’ कहते हैं। उनके अनुसार विचारधारा का वास्तविक अर्थ—विशिष्ट सामाजिक चेतना या वर्ग चेतना ही है। इसी चेतना के माध्यम से जनता अपने शोषण को पहचानती एवं उसके विरुद्ध संघर्ष करती है।

मार्क्स का मानना है कि विचारधारा स्वयं ऐतिहासिक होती है। इतिहास प्रक्रिया उसके स्वरूप एवं चरित्र का निर्माण करती है। सामाजिक वास्तविकता तथा अंतर्विरोधों में परिवर्तन के फलस्वरूप विचारधारा में परिवर्तन होता है। एक समय की प्रगतिशील विचारधारा, दूसरे समय में प्रतिक्रियावादी विचारधारा बन जाती है। विचारधारा शाश्वत नहीं होती है। विचारधारा की धारा विकासशील धारा है।

मार्क्स ने विचारधारा को ‘छद्म चेतना’ के रूप में देखा। ‘छद्म चेतना’ में धार्मिक, आध्यात्मिक विश्वचेतना की बात की। मार्क्स का मानना है कि ‘विचारधारा छद्मचेतना के संदर्भ में उस चीज को इंगित करती है जो उल्टी रूप में है।’ पूंजीवाद पर विचार करते हुए मार्क्स का मानना है कि, ‘पूँजीवाद उत्पादन की ऐसी व्यवस्था है जिसमें पूँजीपति वर्ग का अधिकार होता है। श्रमिक की स्वतंत्रता है कि वह अपने श्रम को बेच सके। इसके बरवस पूँजीपति की स्वतंत्रता है कि वह इस श्रम को खरीद सके। मुक्त बाजार में हर आदमी को हर जगह, हर तरह की खरीद-बिक्री की छूट होनी चाहिए। इस प्रक्रिया

में श्रम से लेकर आत्मा, परमात्मा सबकी खरीद-बिक्री होती है। मार्क्स का कहना है कि पूंजीवाद में सिर्फ खरीद बिक्री की स्वतंत्रता है, लेकिन उसे इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि मानों वह जीवन का कोई महत्वपूर्ण कार्य हो। शासक वर्ग की विचारधारा पर वे लिखते हैं, हर समय और समाज में शासक वर्ग का विचार ही मुख्य विचार हुआ करते हैं। "The ideas of the ruling class are in every epoch the ruling ideas?"²

एंगेल्स ने स्वतंत्र रूप से 'एंटी ड्यूटिंग' नामक पुस्तक में विचारधारा की चर्चा की है। उनके अनुसार विचारधारा वह है जहां विचार से वस्तुजगत का संबंध होता है। तथ्यों से विचार तक की यात्रा करने के बजाय विचारों से तथ्यों तक पहुंचते हैं। इस यात्रा में जहां अंतराल पड़ता है, उसे कल्पना से पूर्ण करते हैं। 1833 में मेटरिंग को लिखे पत्र से भी एंगेल्स की विचारधारा संबंधी अवधारणा का पता चलता है। यहां वे लिखते हैं "प्रत्येक विचारधारा जब एक बार पैदा होती है, तो वह पहले से मौजूद धारणाओं से अपना विकास करती है। विचारधारा, विचारों की वस्तुजगत से स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करती है। विचारक के विचार, वस्तुजगत से प्रभावित तो होते हैं, लेकिन इस बारे में वह सचेत नहीं होता।"³ एंगेल्स ने विचारधारा की दार्शनिक से ज्यादा मनोवैज्ञानिक व्याख्या की। बाद के दिनों में Freud ने जिसे 'रेशनलाइजेशन' कहा उससे यह काफी साम्यता रखता है।

एंगेल्स ने भी विचारधारा को इतिहास के साथ परिवर्तनशील माना है। मध्यकाल में धर्म व आध्यात्मिकता संपूर्ण समाज को आच्छादित करने वाली विचारधारा प्रक्रिया के रूप में की जिसका रूप और अर्थ पूंजीवाद के विकास के साथ बदलता है। पूंजीवाद के विकास के साथ मजदूर वर्ग की विचारधारा भी पैदा होती है। अतः विचारधारा का स्वभाव ऐतिहासिक होता है।

विचारधारा के अर्थ संबंधी इस विमर्श को लेनिन के प्रवेश से एक नया आयाम मिलता है। लेनिन ने जनसंघर्ष के बीच में विचारधारा पर विचार किया। उन्होंने विचार तथा व्यवहार की एकता तथा उनके आपसी संबंध पर विचार किया तथा इससे विचारधारा के सकारात्मक अर्थ का विकास हुआ। लेनिन के विचारधारा को वर्ग तथा वर्ग-चेतना से जोड़कर देखा। अलग-अलग वर्ग की अलग-अलग विचारधारा होती है। एक वर्ग की सामाजिक स्थिति से उसकी विचारधारा का निर्माण होता है।

लेनिन ने समाजवाद को पहली बार एक विचारधारा माना और वैज्ञानिक समाजवाद को सर्वहारा वर्ग की विचारधारा कहा। वर्गों के परस्पर संबंधों के होते हुए भी कोई वर्गहीन विचारधारा नहीं हो सकती। हर विचारधारा ऐतिहासिक स्थिति से तय होती है। मजदूर वर्ग अपनी स्थिति से एवं इतिहास के विश्लेषण से भी विचारधारा का ज्ञान अर्जित करता है। लेनिन के अनुसार 'छद्म चेतना' से मुक्ति ही वैज्ञानिक विचारधारा है क्योंकि धार्मिक विचारधारा में छद्म चेतना उपस्थित रहती है।

जार्ज लुकाच ने लेनिन की विचारधारा संबंधी अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए मार्क्सवाद को विचारधारा तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद को संघर्षशील मजदूर वर्ग की विचारधारा कहा। बुर्जुवा विचारधारा की छद्मता का कारण उसकी ऐतिहासिक स्थिति होती है। विचारधारा में छद्म अंश तब ज्यादा होती है, जब वह भाववादी होती है। लुकाच कला तथा साहित्य को भी विचारधारा का एक हिस्सा मानते हैं।

विचारधारा के अर्थ के विकास में इटली के प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता 'एन्दोनियो ग्राम्शी' का महत्वपूर्ण स्थान है। विचारधारा के सकारात्मक अर्थ का विकास करते हुए उन्होंने मार्क्सवादी चिंतन की भाषा व दिशा बदल दी। उन्होंने मार्क्सवाद के स्थान पर एक नया शब्द रखा—"व्यवहार तथा अनुभव का दर्शन"। ग्राम्शी के समय में फ्रैंकफर्ट स्कूल का दौर था जहां विचारधारा के 'छद्म चेतना' वाली बात महत्वपूर्ण थी। लेकिन ग्राम्शी ने इसे स्वीकार नहीं किया। वे दो तरह की विचारधारा की बात करते हैं—एक आवयविक विचारधारा जो विभिन्न वर्गों की विचारधारा से निर्मित होती है तथा दूसरी ऐच्छिक या यादृच्छिक विचारधारा, जो वैयक्तिक, पीढ़ीगत या कुछ लोगों द्वारा भी निर्मित हो सकती है। ग्राम्शी ने विचारधारा के संदर्भ में वर्चस्वशीलता की अवधारणा प्रस्तुत की। उनकी मान्यता है कि समाज का वास्तविक संघर्ष 'वर्चस्व का संघर्ष' है। विचारधारा वर्चस्व का माध्यम तथा साधन दोनों है तथा यह संघर्ष, प्रतिरोध के बोध का भी माध्यम है। लेनिन से थोड़ा भिन्न दृष्टिकोण रखते हुए ग्राम्शी मानते हैं कि विचारधारा मुक्तिधर्मी ही नहीं होती बल्कि पराधीन भी बनाती है। ग्राम्शी ने अपने चिंतन को विकसित करने का साधन मूल रूप से 'जनता' को बनाते हुए 'लोकमत' संबंधी अवधारणा विकसित की। उनके पूर्व जनचेतना (कॉमनसेंस) शब्द निंदापरक था इसके विपरीत उन्होंने जनचेतना की जगह साधुमत (गुडसेंस) का प्रयोग करते हुए कहा कि लोकमत में ही आम जनता की जिन्दगी के अनुभव होते हैं।

विचारधारा के अर्थ के इस विकास परंपरा में 'लुई अल्यूसर' का विचारधारा संबंधी चिंतन इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इसका उत्तर आधुनिकता पर गहरा प्रभाव पड़ा। विचारधारा की आलोचना की जो प्रवृत्ति उत्तर आधुनिकता में है, उसके मूल में अल्यूसर का ही चिंतन है। अल्यूसर ने विचारधारा के संबंध में समग्रतावादी प्रकृति की आलोचना की। वे विचारधारा को भौतिकवादी मानते हैं।

गोल्डमान ने विचारधारा के यथार्थ के संदर्भ में 'विश्वदृष्टि' शब्द का प्रयोग किया। 'विश्वदृष्टि' से उनका तात्पर्य आम राय के विकसित रूप से है जिसमें समाज तथा प्रकृति दोनों शामिल हैं। मनुष्य सामाजिक जीवन में जीते हुए दुनिया के बारे में अपनी विशेष रुचि किसी साहित्यिक पाठ की परीक्षा द्वारा यह देखने में है कि किस सीमा तक यह उस सामाजिक वर्ग अथवा समूह की विचार-संरचना (अथवा 'विश्व-दृष्टि') को व्यक्त करता है।⁴

'पियरे माशरे' मुख्य रूप से अर्थ में मौजूद द्वंद्वों पर ध्यान देते हैं। ध्यान रखने की बात है कि अर्थ में द्वंद्व और रूप में द्वंद्व दोनों अलग-अलग होते हैं। माशरे के लिए "कृति जो कहती है उससे कहीं अधिक जो नहीं कहती है उसके कारण विचारधारा से बंधी होती है।"⁵

पूंजीवादी समाज में विचारधारा की क्रियाशीलता की व्याख्या करते हुए अर्डोनो, लावेलस आदि विचारकों ने पूंजीवादी समाज की विचारधारा की आलोचना की। इसकी बुनियादी मान्यता यह है कि पूंजीवादी युग में हर चीज का बाजारीकरण हुआ है। जिसके चलते पूंजीवादी विचारधारा में मूल अभिप्राय को छुपाने की प्रवृत्ति होती है। बाजार की संस्कृति में विचारधारा का वस्तुकरण हो जाता है।

उत्तर आधुनिकतावाद तथा विचारधारा के संबंध के संदर्भ में प्रसिद्ध विचारक देबोर का मानना है कि वस्तुतः उत्तर आधुनिक समाज 'दृश्यों की दुनिया' है। इस प्रक्रिया में विचारधारा केवल विचार के तौर पर ही काम नहीं करती है बल्कि उसका भौतिक रूप भी दिखाई देता है। उत्तर आधुनिक समाज में प्रस्तुतीकरण वस्तु से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रसिद्ध विचारक ब्रादीला मानते हैं कि विचारधारा ने 'छद्म चेतना' का रूप धारण कर लिया है। आगे चलकर उत्तर आधुनिकता के मुख्य प्रतिनिधि चिन्तक फूको विचारधारा के विभेदों को ही अस्वीकार कर देते हैं और 'डेनियल बेल' (1960) विचारधारा के अंत का घोषणा पत्र जारी करते हैं। तर्क का नकार उत्तर आधुनिकता की बुनियादी विशेषताओं में से एक है। उत्तर आधुनिकता के सबसे कठोर आलोचक हाबरमास ने कहा कि तर्क द्वारा तर्क का नकार वास्तव में पद्धतिगत गड़बड़ है। कुछ ऐसी ही पद्धति बेल की भी है। उपर्युक्त विश्लेषण के पश्चात् विचारधारा के अर्थ

के संदर्भ में कुछ बातें निर्धारित की जा सकती हैं। विचारधारा के तीन संदर्भ हैं—रचना, बोध और आलोचना। विचारधारा सिर्फ विचारों की धारा नहीं है। यह रचना की उत्पत्ति व प्रभाव तथा अंतर्वस्तु व रूप दोनों की संघटना में होती है। हर विचार विचारधारा नहीं है। विचार विचारधारा तब होता है जब जीवन जगत का सामान्यीकरण हो, एक विशेष प्रकार का बोध हो। विचारधारा अंतर्विरोधों को ढकने का भी काम करती है। विचारधारा का एक स्वभाव यह भी होता है कि वह अपने को सबसे अधिक विश्वसनीय सिद्ध करने का प्रयास करती है।

लुई आल्थुशे से:—प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक विचारक लुई आल्थुशे बीसवीं शताब्दी में बीस वर्षों तक 1970-80 के दशक में यूरोप के मार्क्सवादी चिंतन में महत्वपूर्ण रहे हैं।

उनके लेखन की बुनियादी विशेषता है कि उन्होंने मार्क्सवाद और संरचनावाद को मिलाने की कोशिश की है। संरचनावादी दृष्टि से मार्क्सवाद को पढ़ने की कोशिश भी है। इस प्रक्रिया में उन्होंने यूरोप के दूसरे विचारकों संरचनावादियों के अलावा फ्रायड से भी मदद ली है। विचारधारा और चेतना के बारे में उनके विचार 70 के दशक से 80 के दशक तक अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं।

कला का विचारधारा से संबंध

कला विचारधारा से ही पैदा होती है। वह विचारधारा की ओर संकेत भी करती है। लेकिन वह विचारधारा से अपने को अलग भी करती है। विचारधारा से कला Retreat करती है। कला के जन्म के समय विचारधारा से गहरा संबंध होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. विचारधारा और साहित्य—हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, अमृत राय—1984
2. आलोचना का उत्तर-समय—प्रधान संपादक नामवर सिंह, 2005
3. Idiology—David McLellan, World View, 1998.
4. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका—हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, मैनेजर पाण्डेय।
5. कक्षा—व्याख्यान।

“भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं प्राचीन भारत में मातृत्व शक्ति का अध्ययन”

विनोद कुमार

इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान प्रणाली अध्ययन के विभिन्न स्तरों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ऐसी बानगी पेश करती है, जहां हम तर्कों को भावनात्मकता से ऊपर रख सकते हैं तथा ऐसी शोध शक्ति को हासिल करने की ओर अग्रसर हो सकने के अनंत संभावनाओं के द्वार खोल देती है। इस लेख का उद्देश्य प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का अवलोकन करते हुए एक तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास है। विभिन्न कालखंडों में महिलाओं की स्थिति को गहराई से परीक्षण करने का प्रयास किया गया है तथा उन कारणों को चिन्हित भी करने की कोशिश की है जिनके कारण उनकी दशा में नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं।

हड़प्पा सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। यद्यपि स्पष्ट लिखित संकेत को पढ़ना संभव नहीं हो सका है फिर भी अवशेषों को अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह सभ्यता मातृ सत्ता केन्द्रित थी। उदाहरण के लिए मूर्तियां और मातृ देवी की पूजा मातृ वंशीय परंपरा एवं मातृत्व की विशेष प्रतिष्ठा को उजागर करती है फिर कृषि एवं उर्वरता का महत्व, उर्वरता - सांस्कृतिक तथा स्त्री शक्ति की पूजा प्रचलित थी साथ ही समकालीन विश्व की सभ्यताओं से तुलना करने पर बात स्पष्ट हो जाती है।

ऋग्वैदिक काल में कुल मिलाकर महिलाओं की स्थिति अच्छी थी। यद्यपि वीर पुत्रों की कामना की जाती थी परन्तु पुत्रियों के जन्म को हतोत्साहित नहीं किया जाता। सामान्यतः लड़कियों का विवाह 16-17 वर्ष की अवस्था में होता था। उनका उपनयन संस्कार किया जाता तथा उन्हें शिक्षा भी दी जाती थी। वे पति के साथ यज्ञ लेती थीं वे सभा की में कार्यवाही में भी हिस्सा लेती थीं। इस काल में कुछ शिक्षित महिलाओं का भी विवरण मिलता है। यथा घोषा, अपाला, विश्वरा, लोपामुद्रा आदि।

उत्तरवैदिक काल में यद्यपि महिलाओं की स्थिति परवर्ती काल की तुलना में अच्छी थी परन्तु तुलनात्मक रूप में महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट आयी। ऐतरेय ब्राह्मण नामक ग्रन्थ में यह कहा गया कि पुत्र परिवार का रक्षक होता है जबकि पुत्री दुःख का कारण। फिर हमें यह भी सूचना मिलती है कि इस काल में महिलाओं का सभा में प्रवेश वर्जित हो गया।

उपनिषद् एवं पुराणों में अनेक स्त्री देवी को भी सम्मान के साथ स्थान दिया है उदाहरण के लिए शक्ति की देवी के रूप में दुर्गा, धन की देवी लक्ष्मी, विद्या की देवी सरस्वती जी का विवरण है साथ अनेक देवी जैसे सविता, अदिति आदि का जिक्र हुआ है।

बुद्धकाल में सामाजिक व्यवस्था जटिल हुई इसका प्रभाव महिलाओं की सामाजिक दसा पर पड़ा। इस काल में महिलाओं को सामाजिक दशा नीचे गिरी इसके निम्न लिखित कारण थे -

प्रथम - उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी कम हुई। दूसरे, वर्ण व्यवस्था की शुद्धता को बनाए रखने के लिए महिलाओं को पुरुषों के अधीन करना आवश्यक था। जैसा कि हमें ज्ञात होता है इस काल में महिलाओं को पुरुषों के अधीन किया गया तथा हमें पहली बार दहेज प्रथा के भी साक्ष्य मिलता है बौद्ध ग्रन्थ से यह सूचना मिलती है कि कौशल राजकुमारी के साथ विवाह के विज में मगध के शासक विम्बिसार को काशी का क्षेत्र दहेज के रूप में प्राप्त हुआ था। महिलाओं के प्रति बौद्धपंथ का दृष्टिकोण थोड़ा नरम प्रतीत होता है उसने गृहस्थ जीवन से परित्यक्त महिलाओं को बौद्ध संघ के रूप में एक विकल्प प्रस्तुत किया अर्थात् महिलाएँ भी बौद्ध संघ की सदस्यता ग्रहण कर सकती थीं। फिर भी महात्मा बुद्ध ने पुरुष एवं महिलाओं के बीच समानता के स्तर को बनाकर नहीं रख सके। उन्होंने महिला भिक्षुणियों को पुरुष भिक्षुओं के परिवेक्षण में रख दिया था।

मौर्यकाल; में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में समाज को 4 वर्णों में विभाजन किया गया है यथा - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। कौटिल्य ब्राह्मणों की विशेषाधिकारों की बात करते हैं परन्तु वह एक व्यावहारिक चिंतक हैं। अतः शूद्रों, अछूतों एवं महिलाओं के प्रति उनकी दृष्टि नरम है। कौटिल्य ने शूद्रों को आर्य कहा है।

साथ ही कौटिल्य ने शूद्रों को शिल्प और सेवा के साथ-साथ कृषि का भी अधिकार दिया है। अर्थशास्त्र के लेखक के रूप में वह राज्य के आर्थिक आधार को मजबूत देखना चाहता था इसलिए उसने शूद्रों को भी उत्पादन में विशेष महत्व दिया। उसी प्रकार वह चांडालों को छोड़ कर अन्य अंत्यज समूहों के प्रति नरम दृष्टि रखता है। महिलाओं के प्रति भी उसकी दृष्टि नरम है वह महिलाओं को पुनर्विवाह का अधिकार देता है साथ ही जहां धर्मशास्त्र के लेखकों ने 4 प्रकार के विवाह को अनुमति दी है वहीं कौटिल्य सभी 8 प्रकार के विवाहों को अनुमति देता है। जहां 4 प्रकार के विवाह धर्म्य कहे जाते थे वहीं 4 प्रकार के विवाह को अधर्म्य। परन्तु कौटिल्य ने अधर्म्य प्रकार के विवाह को भी मान्यता दी है। साथ ही इस प्रकार के विवाह के लिए उसने तलाक की भी व्यवस्था स्वीकार की है।

क्या धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र परंपरा में स्त्रियों के लिए सामाजिक नियम वर्णाश्रम प्रथा के आधार पर बने थे इसकी आलोचनात्मक समीक्षा अपरिहार्य हो जाती है।

प्राचीन काल के सामाजिक व्यवस्था का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था था। अतः इस काल के प्रमुख चिंतकों के द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था के सफल संचालन के लिए ब्राह्मणवादी विशेषाधिकार एवं महिलाओं को पुरुषों के अधीन करने पर बल दिया गया। धर्मशास्त्र इसका ज्वलंत उदाहरण है। यद्यपि कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने भी ब्राह्मणों के विशेषाधिकार एवं पुरुषों की श्रेष्ठता पर बल दिया है किंतु चूँकि उसकी दृष्टि एक विशिष्ट प्रकार की राजनीतिक अर्थव्यवस्था (Political economy) से प्रेरित है इसलिए महिलाओं के प्रति उसकी दृष्टि धर्मशास्त्र की तुलना में नरम रही है।

धर्मशास्त्र के लेखक ने महिलाओं के अधिकारों पर चोट की तथा उन्हें पुरुषों के अधीन कर दिया। गौतम, बौधायन, वशिष्ठ, आपस्तम्ब जैसे लेखकों ने वैदिककालीन चिंतकों की तुलना में कठोर दृष्टिकोण अपनाया है। धर्मसूत्र में विधवा पुनर्विवाह को भी हतोत्साहित करने का प्रयास किया गया है। उन्हें संपत्ति के अधिकार से भी वंचित रखा गया है। बौधायन लिखता है कि पुत्री को तभी सम्पत्ति मिले जब कोई सपिंड न हो (अपने परिवार के साथ-साथ अपने पड़ोसियों में कोई उत्तराधिकारी न हो)। उसी प्रकार इस काल में दहेज प्रथा का भी प्रचलन आरंभ हो गया था। वहीं दूसरी तरफ कौटिल्य विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार देता है। कुछ विशिष्ट स्थिति में महिलाओं को तलाक का भी अधिकार देता है। गणिकाओं (वेश्याओं) के प्रति भी उसकी दृष्टि नरम है। वह उन्हें रूपाजीवा कहता है जिससे राज्य को आमदनी प्राप्त होती थी।

वस्तुतः कौटिल्य की प्राथमिकता धर्मशास्त्र के लेखकों से अलग है। वह राज्य को एक ठोस आर्थिक आधार तथा सरकार को विशिष्ट शक्ति प्रदान करना चाहता है। इसलिए धर्मशास्त्र के लेखक के विपरीत सामाजिक मुद्दों पर उसकी दृष्टि थोड़ी लचीली है। इस प्रकार अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र के दृष्टिकोण का मूल्यांकन करते हुए इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है।

मौर्योत्तर काल में उसी प्रकार वर्ण की शुद्धता को बनाये रखने के लिए मनु संहिता में महिलाओं को पुरुषों के अधीन कर दिया। इस काल में विधवा विवाह पर पाबंदी लगा दी गयी तथा बाल विवाह को प्रोत्साहन दिया गया फिर मनु ने महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार से भी वंचित रखा। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु संहिता ने ही परवर्ती काल की कठोर हिन्दु सामाजिक व्यवस्था को आधारशिला निर्मित कर दी।

गुप्तकाल:- गुप्तकाल में महिलाओं की दशा पर दृष्टिपात करने पर एक विसंगति उजागर होती है। एक तरफ समकालीन साहित्य एवं कला में महिलाओं का आदर्शकृत चित्र प्रस्तुत किया गया है वहीं दूसरी तरफ व्यावहारिक रूप में उनकी सामाजिक दशा में गिरावट नजर आती है। राजपरिवार की महिलाओं की उच्च स्थिति दर्शायी गयी है। चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने सिक्के में लिच्छवी राजकुमारी 'कुमारदेवी' की छवि प्रस्तुत की। फिर प्रभावती गुप्त एक अत्यधिक प्रभावशाली महिला नजर आती हैं। इसने वाकाटक राज्य व्यवस्था में अहम भूमिका निभाई तथा गुप्त राजवंश और वाकाटक राजवंश को एक दूसरे से जोड़े रखा। विशाखदत्त के 'देवीचन्द्र गुप्तम्' में ध्रुवस्वामिनी का बड़ा भव्य व्यक्तित्व प्रस्तुत किया गया है। उच्च वर्ग की महिलाओं को उचित शिक्षा प्रदान की जाती थी वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में महिलाओं को दी जाने वाली शिक्षा का जिक्र हुआ है। उसी प्रकार महिलाओं को संपत्ति का अधिकार भी प्राप्त हुआ। याज्ञवल्क्य महिलाओं को संपत्ति का अधिकार देते हैं। इस काल में 'स्त्रीधन' में शामिल किए जाने वाले मदों की संख्या में भी विस्तार हुआ। परंतु परीक्षण करने पर मिथक और वास्तविकता का अंतर स्पष्ट हो जाता है। व्यवहारिक रूप में महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट आयी। अगर हम इस काल में महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों पर दृष्टिपात करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि उच्च पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे, जबकि शूद्र एवं महिलाएँ प्राकृत भाषा का। इस काल में बाल विवाह को प्रोत्साहन दिया गया। कालिदास की रचना 'मेघदूत' से यह ज्ञात होता है कि उज्जैन के महाकाल मंदिर में देवदासिया रखी जाती थीं। सबसे बढ़कर इस काल में (सती प्रथा) का पहला पुरालेखीय साक्ष्य 'एरण अभिलेख' के रूप में देखने को मिलता है। कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में सीमित रूप में पर्दा प्रथा का भी जिक्र है जब दुष्यन्त के दरबार में शकुंतला अपना मुख ढक लेती है। पांचवी सदी से पुरुषों के गोत्र के अनुसार महिलाओं के गोत्र भी बदलने लगे। जहाँ तक महिलाओं के संपत्ति के अधिकार का प्रश्न है तो यह वास्तविकता कम मिथक अधिक था। महिलाएँ उस संपत्ति का स्वतंत्र उपभोग नहीं करती थीं वरन् उन्हें पुरुष मुखिया के निर्देशन में काम करना होता था। इसलिए कुल मिलाकर गुप्तकाल में महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट ही देखी गई। इस गिरावट का संबंध कहीं-न-कहीं वर्ण व्यवस्था की जटिलता एवं ब्राह्मणवादी पुनरुत्थान से था।

प्राचीन भारत में मातृत्व शक्ति की स्थिति का गहराई से अवलोकन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि विभिन्न कालखंडों में उनकी स्थिति पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव पड़ता रहा परंतु समाज में ठहराव तथा विकास को प्रेरित करने में उनकी सदैव महती भूमिका बनी रही। वर्तमान समय में जब संपूर्ण मानव समाज कई चुनौतियों से जूझ रहा है ऐसे में मातृत्व शक्ति को पुनर्समरण तथा पुनर्स्थापित कर भारत माता के सम्मान तथा विश्व पटल पर उनकी विश्वैभरा छवि को आत्मसात करने और जनकल्याण की अवधारणा को फलीभूत करने का गौरव प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ-

1. ऋग्वेद - विशेषकर मंडल 10 (घोषा, लोपामुद्रा, अपाला के उल्लेख)।
2. अथर्ववेद - स्त्रियों और मातृत्व से संबंधित सूक्त।
3. बौद्ध साहित्य - दीर्घनिकाय, विनयपिटक (महापजापति गोतमी और भिक्षुणी संघ)।
4. कौटिल्य का अर्थशास्त्र - पुस्तक III और IV (विवाह, स्त्रियों के अधिकार, पुनर्विवाह)।
5. मनुस्मृति - अध्याय 5 और 9 (स्त्रियों की स्थिति, विवाह नियम, संपत्ति)।
6. याज्ञवल्क्य स्मृति - (स्त्रीधन और संपत्ति अधिकार)।
7. बौधायन, आपस्तम्ब, वशिष्ठ धर्मसूत्र - स्त्रियों पर सामाजिक नियम।
8. वात्स्यायन का कामसूत्र - शिक्षा और स्त्रियों की भूमिका।

9. कालिदास - अभिज्ञान शाकुंतलम्, मेघदूत (स्त्रियों और सामाजिक जीवन)।
10. विशाखदत्त - देवीचन्द्रगुप्तम् (ध्रुवस्वामिनी का उल्लेख)।
11. गुप्तकालीन अभिलेख - एरण अभिलेख (सती प्रथा का प्रथम उल्लेख)।
12. Altekar, A- S- & The Position of Women in Hindu Civilization (अंग्रेजी में प्रामाणिक ग्रंथ)।
13. Sharma, R. S. - Material Culture and Social Formations in Ancient India.
14. Thapar, Romila & A History of India, Vol- I (स्त्रियों की स्थिति पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण)।
15. Jaiswal, S. - Women in Early India: Situations and Transitions.

1947 से ऑपरेशन सिंदूर तक: भारत-पाकिस्तान सशस्त्र संघर्ष का इतिहास

डॉ० पंकु कुमार

इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सारांश

पहले गेम में हुए घातक हमले के पश्चात भारत ने ऑपरेशन सिंदूर के अंतर्गत सैन्य हवाई हमले और भारत में हुई हत्या का कड़ा जवाब दिया। पाकिस्तान ने भी इसका हवाला देते हुए जवाबी कराए करते हुए हवाई हमला किया। इसका परिणाम यह निकला, कि दोनों परमाणु पड़ोसियों के मध्य तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई। शुरु है कि अमेरिका की सेना से युद्ध विराम ने एक पूर्ण युद्ध को रोकने में काफी सहायता दी। पाकिस्तान हमेशा, 1947 से ही भारत के विरुद्ध युद्ध की साजिश रचता आ रहा है। यह कोई नई बात नहीं, बल्कि हमारी राष्ट्रीय यात्रा का एक मूलभूत सत्य है। स्पष्ट करें कि यह पाकिस्तान-पोषित अलगाववाद व आतंकवाद के विरुद्ध भारत के लोगों के राष्ट्रवाद की लड़ाई है। श्रोताओं को याद दिलाएँ कि 1947 से लेकर अब तक हम भारतीय पाकिस्तान-प्रायोजित अलगाववाद, आतंकवाद और युद्ध के शिकार रहे हैं। आप बताएँगे कि भारत ने चार युद्धों में पाकिस्तान को निर्णायक रूप से हराया है, लेकिन पाकिस्तान की शत्रुतापूर्ण मंशाएँ आज भी बनी हुई हैं, चाहे वह सीधे युद्ध के माध्यम से हो या फिर प्रॉक्सी वार आतंकवाद के जरिये। इस परोक्ष युद्ध में, पाकिस्तान ने लगातार टारगेट किलिंग, सामूहिक नरसंहार और हमारी सेना व पुलिस पर हमले किए हैं। जम्मू-कश्मीर में, पाकिस्तान ने 1947 से अलगाववाद व आतंकवाद को निरंतर जारी रखा है, लेकिन जम्मू-कश्मीर के राष्ट्रवादी नागरिकों ने अपनी जान का बलिदान देकर भारत की अखंडता को बचाए रखा है। अंत में, कारगिल विजय दिवस केवल कारगिल के बारे में नहीं है यह हमारे सामूहिक बलिदान और प्रतिरोध की क्षमता को याद करने का दिन है। यह हमारे बलिदानियों के संघर्ष को याद करते हुए एक प्रण, एक प्रतिज्ञा लेने का दिन है कि हमें इस निरंतर थोपी गई लड़ाई में जीत हासिल करनी है।

मूल शब्द: भारत-पाकिस्तान विभाजन, आतंकवाद, आपरेशन सिंदूर, राष्ट्रवाद, अनुच्छेद 370, पहलगाम हमला

भूमिका

1947 में जम्मू-कश्मीर पर पाकिस्तान का हमला एक सोची-समझी साजिश थी। व 1947 में पाकिस्तान को जब ये समझा आया कि जम्मू-कश्मीर का अधिमिलन भारत में ही होगा, इसलिए पाकिस्तान सेना और जिन्ना ने सैन्यबल से जबरन जम्मू-कश्मीर पर कब्जा करने की योजना बनाई। हमले की योजना का मास्टरमाइंड पाकिस्तान सेना के वरिष्ठ अधिकारी लेफ्टिनेंट जनरल अकबर खान थे, जिन्होंने “कश्मीर मिशन” नाम से इसका ब्लूप्रिंट तैयार किया। हमलावरों को लाहौर, एबटाबाद, पेशावर, मरदान और कोहाट जैसे शहरों में प्रशिक्षण शिविरों में प्रशिक्षित किया गया। अकबर खान ने अपनी रिपोर्ट “रेडर्स इन कश्मीर” में खुद स्वीकार किया है कि लड़ाकों को कैसे हथियार प्रशिक्षण दिया गया और पाकिस्तानी सरकार ने कैसे वित्तीय, रसद और हथियारों की मदद की थी। व सितंबर 1947 से, पाकिस्तानी हमलावरों ने सीमावर्ती हिंदू-सिख बहुल गाँवों पर हमले शुरू कर दिए थे।¹ 18 अक्टूबर को, तत्कालीन सरसंघचालक गुरु गोलवलकर जी ने महाराजा हरि सिंह से मुलाकात की और उन्हें शेष भारत के साथ विलय के लिए राजी कर लिया। व यह पाकिस्तानी सेना द्वारा सुनियोजित “ऑपरेशन गुलमर्ग” था, जिसकी योजना पाकिस्तान सेना के डायरेक्टर ऑफ वेपन्स एंड इक्विपमेंट मेजर जनरल अकबर खान ने बनाई थी। 20 सितंबर 1947 को रावलपिंडी में एक गुप्त बैठक हुई थी, जिसमें लियाकत अली खान और अन्य वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों ने हिस्सा लिया था। बाद में, भारतीय सेना ने बारामूला में जब्त किए गए दस्तावेजों में पाकिस्तानी सेना के रेडियो संदेश पाए, जो हमलावरों को निर्देश दे रहे थे। ब्रिटिश खुफिया रिपोर्ट (नवंबर 1947) ने पुष्टि की कि पाकिस्तान की 7वीं इन्फैंट्री डिवीजन और 9वीं फ्रंटियर फोर्स रेजिमेंट के सैनिक हमले में शामिल थे। हमलावरों के पास पाकिस्तानी सेना के मानचित्र और रसद योजनाएँ थीं। 1948 में, जब भारतीय सेना ने जवाबी कार्रवाई शुरू की, तो पाकिस्तान ने खुले तौर पर अपनी सेना को युद्ध में उतार दिया, जिसमें 15,000 से अधिक नियमित सैनिक शामिल थे। जम्मू-कश्मीर का भारत के साथ विलय लगभग तय होने की स्थिति में, 22 अक्टूबर 1947 को छद्मवेश में पाकिस्तानी सशस्त्र सेना ने मुजफ्फराबाद के रास्ते जम्मू-कश्मीर में प्रवेश किया।²

1965 का भारत-पाकिस्तान युद्ध

पाकिस्तान ने अगस्त 1965 में “ऑपरेशन जिब्राल्टर” शुरू किया, जिसके तहत हजारों सैनिकों ने जम्मू-कश्मीर में घुसपैठ की। इसके बाद भारत ने पंजाब (अमृतसर, फिरोजपुर) और राजस्थान (बाड़मेर) में सीमा पार करके पाकिस्तान पर हमला बोल दिया। भारत ने एक जोरदार जवाबी हमला किया, और 22-23 सितंबर को संयुक्त राष्ट्र द्वारा युद्धविराम की घोषणा से पहले पाकिस्तान के 1,800 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। दोनों तरफ भारी नुकसान हुआ,

जिसमें लगभग 3,000 भारतीय और 3,800 पाकिस्तानी सैनिक मारे गए।³ 1965 के भारत-पाक युद्ध के दौरान, असल उत्तर की लड़ाई (8-10 सितंबर) में भारतीय सैनिकों ने पाकिस्तान के तकनीकी रूप से श्रेष्ठ अमेरिकी पैटन टैंकों का सामना करते हुए असाधारण शौर्य और रणनीति का प्रदर्शन किया। भारत के पुराने टैंक बेड़े, (जिसमें शेरमैन, एएमएक्स-13 और सीमित संख्या में संचुरियन टैंक शामिल थे) होने के बावजूद, भारतीय सैनिकों ने खेमकरण के पास गन्ने के खेतों में पानी भरकर एक शानदार जाल बिछाया, जिससे इलाका दलदल में बदल गया। इस रणनीति ने कई भारी बख्तरबंद पैटन टैंकों को दलदल में रेंगने पर मजबूर कर दिया,⁴ जिससे पैटन टैंकों की स्पीड और मारक क्षमता कमजोर हो गई। भारतीय सेना ने गन्ने के खेतों में भीतर छिपी एक मजबूत घोड़े की नाल के आकार की रक्षा पंक्ति बनाई ताकि फंसे हुए पाकिस्तानी टैंकों पर घात लगाकर हमला किया जा सके। यह लड़ाई द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सबसे बड़ी टैंक लड़ाइयों में से एक बन गई, जिसके परिणामस्वरूप लगभग 97 पाकिस्तानी टैंक, जिनमें 72 पैटन टैंक शामिल थे, नष्ट हो गए या पकड़ लिए गए, जिसके कारण इस क्षेत्र को “पैटन नगर” (टैंकों का कब्रिस्तान) कहा जाने लगा।⁵

1971 भारत-पाकिस्तान युद्ध

1971 के युद्ध में भारत ने पूर्वी और पश्चिमी दोनों मोर्चों पर पाकिस्तान को हराया, जिससे बांग्लादेश का निर्माण हुआ। यह युद्ध 3 दिसंबर 1971 को पाकिस्तान द्वारा भारत पर पूर्व-नियोजित हवाई हमलों के साथ शुरू हुआ था। भारत ने मुक्ति बाहिनी गुरिल्लाओं का समर्थन करते हुए पूर्वी पाकिस्तान में तेजी से सैन्य कार्रवाई की और 16 दिसंबर तक ढाका पर कब्जा कर लिया। उसी दिन लगभग 93,000 पाकिस्तानी सैनिकों ने आत्मसमर्पण किया,⁶ जो कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सबसे बड़ा सैन्य आत्मसमर्पण था। जुलाई 1972 में हुए शिमला समझौते के तहत भारत और पाकिस्तान ने सभी विवादों को द्विपक्षीय बातचीत के माध्यम से सुलझाने पर सहमति जताई। इसके तहत जम्मू-कश्मीर में युद्धविराम रेखा को नियंत्रण रेखा में बदला गया। इसके बावजूद पाकिस्तान ने बार-बार कश्मीर मुद्दे का अंतरराष्ट्रीयकरण करने की कोशिश की।⁷

कारगिल युद्ध (1999): परवेज मुशर्रफ की साजिश, भारत का जवाब

1998 में भारत और पाकिस्तान दोनों ने परमाणु परीक्षण किए, जिसके बाद दोनों देशों में कूटनीतिक बातचीत फिर शुरू हुई थी। फरवरी 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी लाहौर गए, और भारत-पाकिस्तान के संबंधों में सुधार की आशा जगी। इसी दौरान पाक सेना प्रमुख जनरल परवेज मुशर्रफ ने लाहौर समझौते को धोखा देकर कारगिल की साजिश रची। तरीका वही पुराना, गुपचुप तरीके से अपने सैनिकों को स्थानीय मुजाहिदीन के भेष में पार भेजा, और द्रास, बटालिक, तोलोलिंग, टाइगर हिल जैसे भारतीय पोस्टों पर कब्जा कर लिया।⁸ पाकिस्तान की योजना थी कि भारत की ‘लेह-कारगिल-सियाचिन’ की सप्लाई लाइन काट दी जाए। सियाचिन के करीब ऊँचाई वाले क्षेत्रों पर कब्जा करके भारत को रणनीतिक रूप से मजबूर किया जाए। यह सब ऐसे समय किया गया जब भारतीय सेना की अधिकांश अग्रिम चौकियाँ सर्दियों में खाली होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर कश्मीर को फिर से “फ्लैशपॉइंट” के रूप में उभारने की योजना थी।⁹ मई 1999 में चरवाहों की रिपोर्ट और टोही उड़ानों से घुसपैठ का पता चला। भारत ने तुरंत “ऑपरेशन विजय” शुरू किया और 13,000-18,000 फीट की ऊँचाई पर भीषण लड़ाई लड़ी। सबसे पहले भारतीय वायु सेना ने “ऑपरेशन सफेद सागर” चलाया, ये पहला मौका था जब IAF ने इतने ऊँचे युद्धक्षेत्र में ऑपरेशन किया था, जो इतना सफल रहा कि बाद में दुनिया भर में हाई-एल्टीट्यूड वॉरफेयर को सीखने-सिखाने में इस युद्ध को सिलेबस में शामिल किया गया। कैप्टन विक्रम बत्रा, कैप्टन अनुज नायर, लेफ्टिनेंट नवदीप सिंह, ग्रेनेडियर योगेंद्र यादव जैसे वीरों ने सर्वोच्च बलिदान देकर टाइगर हिल, तोलोलिंग, प्वाइंट 5140, प्वाइंट 4875 जैसी महत्वपूर्ण चोटियों को दुश्मन से मुक्त करा लिया। सीमित संसाधनों और कठिन परिस्थितियों के बावजूद दुश्मन को पीछे हटने को मजबूर किया। भारत ने फिर पाकिस्तान की साजिश को तथ्यों के साथ उजागर किया कि यह युद्ध स्वयं पार पाकिस्तानी सेना द्वारा किया गया घुसपैठ है, न कि कोई स्थानीय मुजाहिदीनों की साजिश। अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत को व्यापक समर्थन मिला। अमेरिका ने पाकिस्तान को के पार से फौरन वापस जाने का आदेश दिया, और नवाज शरीफ को वाशिंगटन में क्लिंटन ने फटकार लगाई।¹⁰

2000-2015 के बीच आतंकी हमलों और नरसंहारों का दौर

1999 कारगिल युद्ध के बाद पाकिस्तान ने महसूस किया कि पारंपरिक युद्ध में वह भारत से नहीं जीत सकता। इसलिए उसने 2000 के बाद घुसपैठ और प्रॉक्सी वॉर को ही मुख्य रणनीति बना लिया। इस बार पाकिस्तान का वार सिर्फ जम्मू-कश्मीर तक सीमित नहीं था, बल्कि इस दौरान पाकिस्तान-पोषित आतंकी संगठनों ने देशभर में आतंकी हमलों को अंजाम दिया।

छत्तीसगढ़पुरा (2000): जब सिख समुदाय के लोग होली की तैयारी में थे, आतंकियों ने कश्मीर के शांत गाँव में रात के अंधेरे में दस्तक दी। 36 सिखों को एक कतार में खड़ा कर गोलियों से भून दिया गया। यह हमला कश्मीर में सांप्रदायिक उकसावे की सबसे खौफनाक शुरुआत थी।¹¹

कालुचक (2002): तीन आतंकियों ने जम्मू में सैन्य छावनी के पास एक बस को रोका। उसमें सैनिकों के परिवार, बच्चे और महिलाएँ थीं। वे एक-एक को उतारकर गोली मारते गए। 10 बच्चों समेत 31 निर्दोष मारे गए कृ यह भारत की आत्मा को झंझोड़ देने वाला हमला था।

डोडा-ऊधमपुर हत्याकांड (2006): रामनवमी की रात को आतंकियों ने गाँवों में घुसकर हिंदू परिवारों को निशाना बनाया। कई घरों में घुसकर बुजुर्गों, महिलाओं और बच्चों को बेरहमी से मार डाला। डोडा और ऊधमपुर में 35 से ज्यादा ग्रामीण मारे गए।¹²

सुरक्षाबलों पर हमले

संसद हमला (2001): दिल्ली के दिल में, लोकतंत्र की सबसे बड़ी संस्था पर जैश-ए-मोहम्मद और लश्कर के आतंकियों ने हमला किया। उनका मकसद संसद में जनसंहार कर भारत को अराजकता में धकेलना था। 9 सुरक्षाकर्मी शहीद हुए, लेकिन आतंकियों को सीमा तक पहुँचने नहीं दिया गया।¹³

जम्मू-कश्मीर विधानसभा हमला (2001): एक आत्मघाती हमलावर विस्फोटक भरी गाड़ी लेकर विधानसभा परिसर में घुसा। फिर गोलीबारी शुरू हुई। 38 लोग मारे गए यह सीधा लोकतांत्रिक संस्थाओं को खत्म करने की साजिश थी।¹⁴

ऊधमपुर और गुरदासपुर हमले (2015): सीमावर्ती इलाकों में पाकिस्तानी आतंकियों ने गाड़ियों और थानों को निशाना बनाया। गुरदासपुर में थाने पर घुसकर कई घंटे तक गोलीबारी हुई। इन हमलों ने दिखाया कि खतरा अब जम्मू तक सीमित नहीं रहा।

शहरी सीरियल ब्लास्ट

मुंबई (2003): गेटवे ऑफ इंडिया और झवेरी बाजार – देश की रफ्तार और सपनों का शहर कृ एक ही दिन दो धमाकों से हिल गया। कुल 52 लोग मारे गए। यह हमला बताता है कि आतंक अब शहरों के दिल तक घुस चुका है।¹⁵

दिल्ली (2005): दिवाली से दो दिन पहले, जब बाजार सबसे ज्यादा भरे होते हैं, आतंकियों ने सरोजिनी नगर, पहाड़गंज और गोविंदपुरी में बम फोड़ दिए। 62 लोग मारे गए, त्योहार मातम में बदल गया।¹⁶

मुंबई लोकल ट्रेन बम धमाके (2006): 11 जुलाई 2006 को, मुंबई लोकल ट्रेन में 7 बम धमाके हुए, जिसमें कुल 209 निर्दोष जानें गईं, 700 घायल हुए। ये हमला भारत की जीवन रेखा, लोकल ट्रेनों पर सीधा हमला था।¹⁷

2008 जयपुर, अहमदाबाद, दिल्ली: तीनों शहरों में सिलसिलेवार बम धमाके किए गए। जिनमें कुल 150 से अधिक निर्दोष लोग मारे गए। इंडियन मुजाहिदीन नाम से हमले की जिम्मेदारी लेने वाले गुट का मकसद था देशभर में डर फैलाना। इस आतंकी संगठन के सीधे तार पाकिस्तान से जुड़े सामने आए।¹⁸

सांप्रदायिक उद्देश्य से की गई हिंसा (धार्मिक स्थलों श्रद्धालुओं पर हमले)

2000 में पहलगाम में 21 श्रद्धालु मारे गए। 2001 और 2002 में श्रीनगर और अनंतनाग में हमले कर कुल 35 श्रद्धालु मारे गए। 2017, अनंतनाग में अमरनाथ यात्रा से लौट रही बस पर आतंकियों ने गोलीबारी की, 8 श्रद्धालु मारे गए, 18 घायल। यह हमला लश्कर-ए-तैयबा द्वारा रचा गया था। 2002, रघुनाथ मंदिर पर दो बार हमला कर धार्मिक स्थलों को आतंक का केंद्र बनाया गया, इस हमले में कुल 25 से अधिक श्रद्धालु मारे गए।

सीमा घुसपैठ: 2000 से 2015 तक लगातार घुसपैठ होती रही, सैकड़ों मुठभेड़ हुईं, जिसमें भारतीय सेना के दर्जनों जवानों ने वीरगति प्राप्त की और सैकड़ों आतंकी मारे गए। किश्तवाड़, पुंछ, राजौरी, कुपवाड़ा ये सीमावर्ती इलाके सबसे ज्यादा घुसपैठ और आतंकी ठिकानों का केंद्र बने रहे।

5 अगस्त 2019: अनुच्छेद 370 का हटना और पाकिस्तान की साजिशों का खात्मा

5 अगस्त 2019 को अनुच्छेद 370 और 35ए का संसद से खत्म के साथ ही, आतंक-अलगाववाद की सोच की ताकत को भी खत्म कर दिया गया। इससे पाकिस्तान को भी बड़ा झटका लगा। पाकिस्तान ने दुनियाभर में रोना-धोना मचाया, लेकिन किसी ने एक न सुनी। यहीं पर पाकिस्तान को भारत की राजनयिक और कूटनीतिक शक्ति का भी अहसास हुआ। यहाँ जम्मू-कश्मीर ने नई सुबह शुरू हुई।¹⁹

पहलगाम हमला और ऑपरेशन सिंदूर: हताश पाकिस्तान का नया पैतरा और भारत का निर्णायक जवाब

जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 370 हटने के बाद विकास, पर्यटन और सामान्य जनजीवन में अभूतपूर्व सुधार देखने को मिला। पर्यटन चरम पर था, 2024 के पहले 6 महीनों में रिकॉर्ड 1.5 करोड़ से ज्यादा पर्यटक कश्मीर आए थे। कश्मीरी युवा स्टार्टअप, खेल, शिक्षा और टूरिज्म में आगे बढ़ रहे थे। अंतर्राष्ट्रीय मीडिया से कश्मीर को लेकर खबरें आ तो रही थीं, लेकिन बदलते, आगे बढ़ते कश्मीर की। जी-20 की मीटिंग्स की खबरें। 15 अगस्त पर इतने झंडे फहराए गए, जितने शेष भारत के किसी अन्य राज्य में भी नहीं दिखाई दिए थे। यह सब बात पाकिस्तान और उसके आतंकी आकाओं को खटकने लगी और पहलगाम में टूरिस्टों पर हमला किया गया। धर्म पूछकर निर्दोषों की हत्या की गई। आम कश्मीरी की आर्थिक लाइफलाइन बन चुके टूरिस्टों पर हमला करने की अपने-आप में ये पहली घटना थी। इससे पाकिस्तान की हताशा या छटपटाहट समझ आती है। इस हमले में जैश-ए-मोहम्मद (द रेजिस्टेंस फ्रंट) की भूमिका सामने आई।²⁰ इनकी कमान सीधे-सीधे के हाथ में है। इस बार भारत ने इंतजार नहीं किया, तैयारी की, लेकिन एक निर्णायक हमला किया पाकिस्तान में मौजूद आतंकी अड्डों पर। नाम दिया गया “ऑपरेशन सिंदूर”। ये कार्रवाई सिर्फ जवाब नहीं था, बल्कि एक “डॉक्ट्रिन बदलाव” था। ऑपरेशन सिंदूर के जरिये पाकिस्तान के अंदरूनी शहरों में और पीओजेके में बने 9 आतंकी ठिकानों पर टारगेटेड इंटेलिजेंस-ड्रिवन स्ट्राइक की गई। इस हमले के तहत पाकिस्तान में मौजूद कई आतंकी मॉड्यूल को समाप्त किया गया।

भारत की ये आक्रामक नीति सिर्फ रक्षा नहीं, ‘एक्टिव डिनायल एंड प्री-एम्पशन’ पर आधारित थी, यानी हमला होने से पहले आतंक के ठिकानों को नेस्तनाबूद करना। आतंकियों को, और उनके आकाओं को ये बताना कि अब वो भी, कहीं भी सुरक्षित नहीं रहेंगे। घर में घुसकर वार होगा, और सटीक होगा, निर्णायक होगा। ऑपरेशन सिंदूर के जरिये इतना बड़ा और साहसिक कार्रवाई, वो भी एक परमाणु शक्ति देश के घर में घुसकर भारत मारेगा, इतना किसी ने नहीं सोचा था। अपनी इज्जत बचाने के लिए पाकिस्तान ने ड्रोन अटैक किया जरूर, लेकिन उसको भी भारत के अपने आत्मनिर्भर डिफेंस सिस्टम ने नाकामयाब कर दिया। पाकिस्तान के लिए ये और बड़ा झटका था। इसके बाद भारत ने पाकिस्तान के कम से कम 11 एयरबेस पर एक साथ हमला किया, मिसाइल, ड्रोन व रॉकेट के जरिये। वो भी इस सटीकता के साथ कि पाकिस्तान के डिफेंस रडार सिस्टम को एक-डेड बल की भी खबर न हुई। यहीं वो क्षण था, जब पाकिस्तान को समझ आया और यूएस के सामने भारत पर स्ट्राइक रोकने के लिए दबाव बनाने की गुहार लगानी पड़ी। पाकिस्तान कभी रुकेगा नहीं, भारत को पीओजेके की मुक्ति के लिए काम करना है और पाकिस्तान की साजिश का खात्मा करना है।²¹

निष्कर्ष

दोनों देशों के मध्य 1947 से ऑपरेशन सिंदूर तक तनाव की स्थिति देखने को मिला। जिसमें पाकिस्तान, भारत के प्रति लगातार हमला करता रहा जिसका जवाब भारत हर समय देते रहा। दोनों देशों के ऐतिहासिक संघर्ष, विश्वास और बहादुरी से परिपूर्ण शांति के प्रति भारत की क्रांति के समीक्षा में लगातार अत्याचारियों द्वारा हत्याएं किया गया। लेकिन भारत हर चुनौतियों के साथ देश ने भी नैतिकता और समझदारी से जवाब देता रहा। जैसे-जैसे पाकिस्तान से भारत को खतरा बढ़ता रहा वैसे-वैसे भारत ने भी अपनी रणनीति पाकिस्तान के प्रति बदलता रहा सिद्धांत अस्थिर और दृढ़ संकल्प के साथ।

संदर्भ सूची

1. वसीम अहमद खान, भारत-चीन-पाकिस्तान संबंध, डिसकवरी पब्लिकेशन हाऊस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2024, पृष्ठ 4
2. द टाइम्स ऑफ इंडिया (समाचार पत्र), 20 अक्टूबर, 2020
3. हिंदुस्तान (समाचार पत्र), 19 सितम्बर, 2025
4. एनआईओए, स्वतंत्रता पश्चात प्रमुख युद्ध, पृष्ठ 51
5. रचना विष्ट रावत, भारत-पाक युद्ध की गाथाएँ, प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2025, पृष्ठ 4
6. केके नंदा, 1971 भारत-पाक युद्ध, 161 इन्फैन्ट्री विग्रेड, किशोर गाथा, प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2024 पृष्ठ 204
7. रिपोर्ट, विदेश मंत्रालय, 2 जुलाई, 1972
8. शिखा अखिलेश सक्सेना, कारगिल युद्ध वीरता और देशभक्ति की सत्यगाथा, प्रभात पब्लिकेशन, 2024 पृष्ठ 96
9. हरिंदर ववेजा, कारगिल की अनकही कहानी, प्रभात पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 298
10. जनरल वीपी मलिक, कारगिल एक अभूतपूर्व विजय, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 302
11. द टाइम्स ऑफ इंडिया, 23 अप्रैल 2025
12. द न्यूयार्क टाइम्स, 2 मई 2006
13. आरपी सिंह, पाकिस्तान-चीन संबंध और भारत बुक क्राफ्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ 75
14. रिपोर्ट, भारतीय दूतावास, वाशिंगटन, यूएसए, 20 नवम्बर, 2025
15. जनार्दन सिंह, आतंकवाद एक परिचय, सनराइज बुक, नई दिल्ली, 2021
16. आरपी सिंह, पाक-चीन संबंध और भारत, बुक क्राफ्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ 75
17. जनार्दन सिंह, आतंकवाद एक परिचय, सनराइज बुक, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 108-109
18. नवभारत टाइम्स, 20 नवंबर, 2025
19. संजय कुमार शर्मा, भारत-चीन संबंध बदलता परिदृश्य, इविनस पब्लिकेशन, छतीसगढ़, 2020, पृष्ठ 234
20. हिन्दुस्तान टाइम्स (समाचार पत्र), 24 अप्रैल, 2025
21. पीआईबी, 14 अप्रैल, 2025

नरेद्र मोदी कार्यकाल में भारत-नेपाल संबंध: एक विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० विनोद कुमार यादव

राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय छपरा

शोध सार

भारत और नेपाल के बीच द्विपक्षीय संबंध, जो ऐतिहासिक रूप से 'रोटी-बेटी' के रिश्तों और खुली सीमाओं के अद्वितीय प्रतिमान पर आधारित रहे हैं, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के कार्यकाल (2014-वर्तमान) के दौरान अपने सबसे परिवर्तनकारी और जटिल दौर से गुजरे हैं। यह कालखंड अपार आशाओं और गहरे कूटनीतिक विश्वास के साथ शुरू हुआ था, जब 2014 में 'नेबरहुड फर्स्ट' (पड़ोसी पहले) की नीति के तहत काठमांडू की यात्रा ने संबंधों में एक नई ऊर्जा का संचार किया था। मोदी का 'हिट' मंत्र एक आधुनिक और संपर्क-केंद्रित साझेदारी का वादा करता था। हालाँकि, जनवरी 2026 तक आते-आते, यह संबंध अभूतपूर्व उतार-चढ़ाव का साक्षी बना है। 2015 का अघोषित नाकाबंदी, 2020 का मानचित्र विवाद, और 2025 में नेपाली मुद्रा पर विवादित मानचित्र के प्रकाशन ने राजनीतिक संबंधों में गहरी दरारें पैदा की हैं। इसके विपरीत, इसी दशक में ऊर्जा व्यापार और भौतिक कनेक्टिविटी के क्षेत्र में ऐतिहासिक उपलब्धियाँ भी हासिल की गईं, जैसे कि पेट्रोलियम पाइपलाइन का निर्माण, क्रॉस-बॉर्डर रेलवे का संचालन, और 10,000 मेगावाट बिजली निर्यात समझौता।

मूल शब्द - परिवर्तन, जटिल, कूटनीतिक, कनेक्टिविटी, ऐतिहासिक, संरचनात्मक।

प्रस्तावना

यह प्रतिवेदन पिछले बारह वर्षों के घटनाक्रमों का गहन विश्लेषण करता है। यह विश्लेषण न केवल उच्च-स्तरीय राजनीतिक यात्राओं और समझौतों तक सीमित है, बल्कि इसमें संरचनात्मक बदलावों, जैसे कि गोरखा भर्ती का निलंबन (अग्निपथ योजना के कारण), चीन के बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव का बढ़ता प्रभाव, और नेपाल में हालिया राजनीतिक उथल-पुथल (2025 का 'जेन जी' विद्रोह) के सामरिक निहितार्थों को भी शामिल किया गया है। यह रिपोर्ट यह समझने का प्रयास करती है कि कैसे भारत अपनी पारंपरिक 'बफर स्टेट' की अवधारणा से आगे बढ़कर नेपाल के साथ एक व्यावहारिक और आर्थिक रूप से एकीकृत साझेदारी की ओर बढ़ रहा है।

राजनीतिक परिदृश्य: 'नेबरहुड फर्स्ट' से रणनीतिक व्यावहारिकता तक

मई 2014 में जब नरेन्द्र मोदी ने भारत के प्रधानमंत्री का पद संभाला, तो उन्होंने सार्क देशों के नेताओं को अपने शपथ ग्रहण समारोह में आमंत्रित कर अपनी विदेश नीति की प्राथमिकता स्पष्ट कर दी थी। नेपाल, जो भारत के लिए रणनीतिक और सांस्कृतिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है, इस नीति का केंद्र बिंदु था।

अगस्त 2014 में, नरेन्द्र मोदी ने नेपाल की द्विपक्षीय यात्रा की, जो 17 वर्षों में किसी भारतीय प्रधानमंत्री की पहली नेपाल यात्रा थी। नेपाल की संविधान सभा को संबोधित करते हुए, मोदी ने एक ऐसे रिश्ते की वकालत की जो संप्रभु समानता पर आधारित हो, न कि पारंपरिक 'बड़े भाई' के दृष्टिकोण पर। उन्होंने 'हिट' का मंत्र दिया जिसका अर्थ था हाईवेज, इन्फॉर्मेशन वेज, और ट्रांस-वेज।

इस यात्रा ने नेपाल में भारत के प्रति धारणा को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर की लाइन ऑफ क्रेडिट की घोषणा और विद्युत व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर ने यह संकेत दिया कि भारत अब केवल वादों तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि परियोजनाओं के कार्यान्वयन पर जोर देगा। इस दौर को भारत-नेपाल संबंधों का 'स्वर्णिम अध्याय' माना जा सकता है, जहाँ विश्वास और सहयोग अपने चरम पर थे।

2015 का संविधान संकट और नाकाबंदी: एक निर्णायक मोड़

2014 की सद्भावना 2015 के अंत में नाटकीय रूप से समाप्त हो गई। सितंबर 2015 में नेपाल द्वारा नया संविधान अपनाया जाना द्विपक्षीय संबंधों में एक बड़ा अवरोध बन गया। भारत ने नेपाल से आग्रह किया था कि वह तराई क्षेत्र में रहने वाले मधेशी और थारू समुदायों की चिंताओं को संबोधित करते हुए एक 'समावेशी संविधान' अपनाए।

जब नेपाल ने इन चिंताओं को दरकिनार करते हुए संविधान प्रख्यापित किया, तो तराई क्षेत्र में हिंसक विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए। इसके परिणामस्वरूप भारत-नेपाल सीमा पर आपूर्ति श्रृंखला पूरी तरह से बाधित हो गई, जिसे नेपाल ने भारत द्वारा लगाई गई "अघोषित नाकाबंदी" करार दिया।

- आर्थिक प्रभाव: इस नाकाबंदी का प्रभाव विनाशकारी था। अप्रैल 2015 के भूकंप से उबर रहे नेपाल के लिए यह एक दोहरा झटका था। नेपाल की जीडीपी वृद्धि दर, जो 5.7% अनुमानित थी, गिरकर 0.8% रह गई। अनुमानों के मुताबिक, इस नाकाबंदी से नेपाल को लगभग 1 बिलियन डॉलर का नुकसान हुआ।
- मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक प्रभाव: इस घटना ने नेपाल में भारत विरोधी राष्ट्रवाद को जन्म दिया। के.पी. शर्मा ओली, जो उस समय प्रधानमंत्री थे, ने इसे नेपाल की संप्रभुता पर हमला बताया और राष्ट्रवाद के प्रतीक के रूप में उभरे। इस घटना ने नेपाल को चीन की ओर धकेलने में उत्प्रेरक का काम किया, जिसके परिणामस्वरूप 2016 में चीन के साथ पारगमन और परिवहन समझौता हुआ।

नेतृत्व का अस्थिर दौर (2016-2025)

नाकाबंदी के बाद के वर्षों में काठमांडू में राजनीतिक अस्थिरता ने भारत के लिए कूटनीतिक चुनौतियां पेश कीं। नेपाल में प्रधानमंत्री पद के लिए 'म्यूजिकल चेयर' का खेल चलता रहा, जिसमें के.पी. शर्मा ओली, पुष्प कमल दहाल 'प्रचंड' और शेर बहादुर देउबा बारी-बारी से सत्ता में आए।

- ओली का कार्यकाल (2018-2021, 2024-2025): ओली का कार्यकाल भारत के लिए सबसे कठिन रहा। उन्होंने घरेलू राजनीति में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए लगातार भारत विरोधी बयानबाजी का सहारा लिया। 2024 में जब वे पुनः प्रधानमंत्री बने, तो उन्होंने पदभार संभालने के बाद अपनी पहली विदेश यात्रा के रूप में भारत को न चुनकर एक लंबी परंपरा को तोड़ा, जो नई दिल्ली के लिए एक स्पष्ट कूटनीतिक संदेश था।
- देउबा और प्रचंड का संतुलन: शेर बहादुर देउबा के कार्यकाल (2021-2022) को संबंधों में 'सामान्यीकरण' के दौर के रूप में देखा गया, जहाँ विवादास्पद मुद्दों को ठंडे बस्ते में डालकर विकास परियोजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया गया। प्रचंड ने अपनी 2023 की भारत यात्रा के दौरान व्यावहारिकता का परिचय दिया और 10,000 मेगावाट बिजली निर्यात जैसे दीर्घकालिक समझौतों पर हस्ताक्षर किए, यद्यपि उनका झुकाव चीन की ओर भी स्पष्ट रहा।

2025 का 'जेन जी' विद्रोह और अंतरिम सरकार

वर्ष 2025 के उत्तरार्ध में नेपाल की राजनीति में एक भूकंपीय बदलाव आया। सितंबर 2025 में, भ्रष्टाचार, आर्थिक कुप्रबंधन और सोशल मीडिया प्रतिबंधों के खिलाफ युवाओं के नेतृत्व में हुए व्यापक विरोध प्रदर्शनों ने के.पी. शर्मा ओली को इस्तीफा देने पर मजबूर कर दिया।

इस विद्रोह के परिणामस्वरूप, पूर्व मुख्य न्यायाधीश सुशीला कार्की को अंतरिम प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। उनका जनादेश मार्च 2026 में चुनाव कराने तक सीमित है। यह घटनाक्रम भारत के लिए एक नई चुनौती और अवसर दोनों प्रस्तुत करता है।

- चुनौती: भारत की पारंपरिक पकड़ पुराने राजनीतिक दलों और नेताओं के माध्यम से थी, जिन्हें इस जन-विद्रोह ने खारिज कर दिया है।
- अवसर: सुशीला कार्की एक गैर-राजनीतिक व्यक्तित्व हैं, जिससे भारत को परियोजनाओं पर ध्यान केंद्रित करने और किसी विशिष्ट राजनीतिक दल के साथ दिखने के बजाय 'स्टेट-टू-स्टेट' संबंधों को मजबूत करने का मौका मिलता है।

सीमा विवाद: मानचित्रों का कूटनीतिक युद्ध

पिछले एक दशक में, सीमा विवाद तकनीकी चर्चाओं से निकलकर राष्ट्रवाद का मुख्य मुद्दा बन गया है। यह विवाद मुख्य रूप से सुगौली संधि (1816) की व्याख्या और काली नदी के उद्गम स्थल को लेकर है।

कालापानी-लिपुलेख-लिम्पियाधुरा विवाद

विवाद का मूल काली नदी के उद्गम स्रोत की पहचान में निहित है।

- भारत का पक्ष: भारत का मानना है कि काली नदी कालापानी के पास से निकलती है, इसलिए नदी के पूर्व का हिस्सा नेपाल है और पश्चिम का हिस्सा (लिपुलेख सहित) भारत का है।
- नेपाल का पक्ष: नेपाल का दावा है कि नदी का उद्गम लिम्पियाधुरा से होता है, जो कालापानी से काफी उत्तर-पश्चिम में है। इस आधार पर, नेपाल पूरे 335 वर्ग किलोमीटर के त्रिकोणीय क्षेत्र (कालापानी, लिपुलेख, लिम्पियाधुरा) पर अपना दावा करता है।

मई 2020 में, जब भारतीय रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने कैलाश-मानसरोवर यात्रा को सुगम बनाने के लिए लिपुलेख तक एक लिंक रोड का उद्घाटन किया, तो नेपाल में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। के.पी. ओली की सरकार ने, घरेलू राजनीतिक दबाव और राष्ट्रवाद को भुनाने के उद्देश्य से, नेपाल के संविधान में संशोधन कर देश का नया राजनीतिक मानचित्र जारी किया। इस नए मानचित्र में कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा को नेपाल का अभिन्न अंग दिखाया गया।

इस कदम ने कूटनीतिक बातचीत के दरवाजे लगभग बंद कर दिए, क्योंकि अब यह मुद्दा नेपाल के संविधान का हिस्सा बन गया है, जिसे बदलना किसी भी भविष्य की सरकार के लिए राजनीतिक आत्महत्या के समान होगा।

2024-2025 का करेंसी नोट विवाद

तनाव एक बार फिर तब भड़क उठा जब 2024 में नेपाल राष्ट्र बैंक ने घोषणा की और 2025 में 100 रुपये के नए नोट जारी किए, जिन पर वही विवादास्पद मानचित्र छपा था।

- भारत की प्रतिक्रिया: भारतीय विदेश मंत्री एस- जयशंकर ने इसे "एकतरफा और ऐतिहासिक रूप से अस्थिर" कदम करार दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि कागज पर मानचित्र बदलने से जमीनी हकीकत नहीं बदलती। भारत ने इस बार आर्थिक नाकाबंदी जैसा कोई कदम नहीं उठाया, बल्कि ओली सरकार के साथ उच्च-स्तरीय राजनीतिक संवाद को सीमित कर दिया।

- विशेषज्ञों की राय: कूटनीतिक विशेषज्ञों का मानना है कि नोटों पर मानचित्र छापना ओली सरकार द्वारा अपने घटते जनाधार को बचाने के लिए खेला गया एक 'राष्ट्रवादी कार्ड' था, जिसने द्विपक्षीय विश्वास को गहरा आघात पहुँचाया है।

सुरक्षा और रक्षा सहयोग: गोरखा संबंध में दरार

मोदी कार्यकाल के दौरान भारत-नेपाल संबंधों में सबसे बड़ा संरचनात्मक बदलाव सैन्य सहयोग के क्षेत्र में आया है, विशेष रूप से भारतीय सेना में गोरखा सैनिकों की भर्ती को लेकर।

अग्निपथ योजना और भर्ती का निलंबन

2022 में भारत सरकार ने 'अग्निपथ' योजना शुरू की, जिसके तहत सैनिकों (अग्निवीरों) की भर्ती केवल 4 वर्षों के लिए की जाएगी और उनमें से केवल 25% को ही स्थायी किया जाएगा।

- नेपाल का विरोध: नेपाल सरकार ने अगस्त 2022 में गोरखा भर्ती रैलियों को निलंबित कर दिया। नेपाल का तर्क है कि यह योजना 1947 के त्रिपक्षीय समझौते (भारत, नेपाल और यूके) की भावना का उल्लंघन करती है, जिसके तहत गोरखा सैनिकों को भारतीय सैनिकों के समान सेवा शर्तें (जिसमें पेंशन शामिल है) मिलनी चाहिए।
- आर्थिक और सामाजिक प्रभाव: पेंशन नेपाली पहाड़ियों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ रही है। 4 साल बाद 75% युवाओं के बिना पेंशन वापस लौटने से नेपाल में बेरोजगारी और सामाजिक अस्थिरता का खतरा है।
- वर्तमान स्थिति (2026): जनवरी 2026 तक, भारतीय सेना में गोरखाओं की कोई नई भर्ती नहीं हुई है। इससे भारतीय सेना की गोरखा बटालियनों में 14,000 से अधिक सैनिकों की कमी हो गई है।

ईपीजी रिपोर्ट का गतिरोध

2016 में गठित प्रबुद्ध व्यक्ति समूह का उद्देश्य 1950 की शांति और मैत्री संधि सहित सभी द्विपक्षीय संधियों की समीक्षा करना था। समूह ने 2018 में अपनी रिपोर्ट तैयार कर ली थी, लेकिन भारत ने इसे औपचारिक रूप से स्वीकार नहीं किया है।

- रिपोर्ट के विवादास्पद बिंदु: लीक हुई जानकारी के अनुसार, रिपोर्ट में खुली सीमा को विनियमित करने (आईडी कार्ड की आवश्यकता) और 1950 की संधि में संशोधन की सिफारिशें हैं, जिन्हें भारत अपनी सुरक्षा के लिए प्रतिकूल मानता है।

ईपीजी रिपोर्ट को स्वीकार न करना नेपाल में इस धारणा को पुख्ता करता है कि भारत केवल अपनी शर्तों पर संबंध चाहता है और नेपाल की चिंताओं के प्रति संवेदनशील नहीं है।

कनेक्टिविटी और अवसंरचना: सहयोग का नया इंजन

जहाँ राजनीतिक संबंध उतार-चढ़ाव भरे रहे, वहीं मोदी सरकार ने 'कनेक्टिविटी' को संबंधों का आधार बनाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

रेलवे कूटनीति

- जयनगर-कुर्था-बिजलपुरा: यह नेपाल का पहला ब्रॉड-गेज रेलवे लिंक है, जो अब पूरी तरह से चालू है। जयनगर (भारत) से बिजलपुरा (नेपाल) तक की रेल सेवा ने सीमा पार लोगों की आवाजाही को सुगम बनाया है और इसे बर्दीबास तक विस्तारित किया जा रहा है।
- रक्सौल-काठमांडू रेलवे: इसे चीन के केरुंग-काठमांडू रेलवे के जवाब के रूप में देखा जाता है। भारत की कोंकण रेलवे ने इसका 'फाइनल लोकेशन सर्वे' पूरा कर लिया है। हालाँकि, यह परियोजना अभी भी वित्तपोषण मॉडल (अनुदान बनाम ऋण) पर अटक रही है, क्योंकि नेपाल इसे पूरी तरह से भारतीय अनुदान के रूप में चाहता है।

ऊर्जा अवसंरचना: पेट्रोलियम पाइपलाइन

मोतिहारी-अमलेखगंज पेट्रोलियम पाइपलाइन, जिसका उद्घाटन 2019 में किया गया था, दक्षिण एशिया की पहली क्रॉस-बॉर्डर पेट्रोलियम पाइपलाइन है। इसने नेपाल को ईंधन आपूर्ति सुरक्षित करने में क्रांतिकारी बदलाव किया है।

द्वितीय चरण: 2024 में इसके दूसरे चरण का निर्माण शुरू हुआ, जिसके तहत पाइपलाइन को चितवन के लोथर तक बढ़ाया जा रहा है और वहाँ एक आधुनिक ग्रीनफील्ड टर्मिनल का निर्माण किया जा रहा है। इससे टैंकरों द्वारा ढुलाई की लागत और पर्यावरण प्रदूषण में भारी कमी आएगी।

एकीकृत चेक पोस्ट

व्यापार को सुगम बनाने के लिए, भारत ने रक्सौल-बीरगंज, जोगबनी-विराटनगर, रूपैडिहा-नेपालगंज और सुनौली-भैरहवा में एकीकृत चेक पोस्ट का निर्माण किया है। इन आधुनिक सुविधाओं ने कार्गो निकासी के समय को कम किया है, हालाँकि गैर-शुल्क बाधाएं अभी भी एक समस्या बनी हुई हैं।

जल विद्युत और ऊर्जा सहयोग: एक बड़ा बदलाव

मोदी कार्यकाल में जल विद्युत सहयोग का प्रतिमान 'जल साझाकरण' (सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण) से बदलकर विशुद्ध 'व्यापारिक ऊर्जा सहयोग' की ओर स्थानांतरित हो गया है।

10,000 मेगावाट का महा-समझौता

2023 में प्रधानमंत्री प्रचंड की भारत यात्रा के दौरान, दोनों देशों ने अगले 10 वर्षों में नेपाल से भारत को 10,000 मेगावाट बिजली निर्यात करने का ऐतिहासिक समझौता किया।

- महत्व: यह समझौता नेपाल के लिए 'गेम चेंजर' है। जल विद्युत नेपाल का सबसे बड़ा निर्यात उत्पाद बन सकता है, जो भारत के साथ उसके विशाल व्यापार घाटे को कम करने में मदद करेगा।
- त्रिपक्षीय व्यापार: 2024 में पहली बार, नेपाल ने भारतीय ग्रिड का उपयोग करते हुए बांग्लादेश को 40 मेगावाट बिजली का निर्यात शुरू किया, जो उप-क्षेत्रीय ऊर्जा एकीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम है।

परियोजना स्तर पर प्रगति और विफलता

- सफलता: भारतीय सार्वजनिक उपक्रम एसजेवीएन द्वारा विकसित की जा रही 900 मेगावाट की अरुण-3 परियोजना निर्माण के अंतिम चरण में है और 2026 तक इसके चालू होने की उम्मीद है। यह भविष्य की परियोजनाओं (जैसे लोअर अरुण) के लिए एक मॉडल बन गया है।
- विफलता: महाकाली संधि का केंद्र बिंदु, 'पंचेश्वर बहुउद्देशीय परियोजना', 30 वर्षों बाद भी मृतप्राय है। मोदी के 2014 के धक्का (चनौ) के बावजूद, पानी के बंटवारे और डूब क्षेत्र के मुद्दों पर सहमति न बन पाने के कारण इसकी विस्तृत परियोजना रिपोर्ट 2025 में भी अंतिम रूप नहीं ले सकी।

चीन का कारक: सामरिक चुनौती

नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव मोदी सरकार के लिए सबसे बड़ी विदेशी नीति चुनौती रहा है। नेपाल अब भारत और चीन के बीच एक 'बफर स्टेट' न रहकर सामरिक प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र बन गया है।

बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव

नेपाल ने 2017 में चीन के ठप् पर हस्ताक्षर किए थे। हालांकि, 2025 तक, बीआरआई के तहत किसी भी बड़ी परियोजना का निर्माण पूरा नहीं हुआ है, और कार्यान्वयन की गति 'ग्लेशियर' जैसी धीमी रही है।

पोखरा अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा: चीन के एक्जिम बैंक से 212 मिलियन डॉलर से अधिक का ऋण लेकर बनाया गया यह हवाई अड्डा 'ऋण जाल' कूटनीति का प्रतीक बन गया है। 2023 में उद्घाटन के बाद से, यह अंतरराष्ट्रीय उड़ानों को आकर्षित करने में विफल रहा है और नेपाल के लिए एक सफेद हाथी साबित हो रहा है। भ्रष्टाचार की जांच ने इस परियोजना की साख को और गिरा दिया है।

केरुंग-काठमांडू रेलवे

चीन की महत्वाकांक्षी केरुंग-काठमांडू रेलवे परियोजना भू-तकनीकी और वित्तीय चुनौतियों से जूझ रही है। इसकी अनुमानित लागत 3 बिलियन डॉलर से अधिक है और इसका 98% हिस्सा सुरंगों और पुलों से बना होगा। नेपाल चाहता है कि चीन इसे अनुदान के रूप में बनाए, जबकि चीन इसे ऋण के रूप में देख रहा है। 2025 तक, यह परियोजना केवल व्यवहार्यता अध्ययन के चरण में है।

सांस्कृतिक कूटनीति: साझा विरासत

मोदी सरकार ने 'सॉफ्ट पावर' का उपयोग करते हुए धार्मिक और सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने का प्रयास किया है।

रामायण सर्किट

- जनकपुर (माता सीता की जन्मस्थली) और अयोध्या (भगवान राम की जन्मस्थली) को जोड़ने के लिए 'रामायण सर्किट' की परिकल्पना की गई।
- बस सेवा: 2018 में मोदी और ओली ने जनकपुर-अयोध्या बस सेवा का उद्घाटन किया। हालाँकि, परिचालन संबंधी मुद्दों के कारण यह सेवा अनियमित रही है।
- सिस्टर सिटी: काठमांडू-वाराणसी, जनकपुर-अयोध्या और लुम्बिनी-बोधगया के बीच 'सिस्टर सिटी' समझौते किए गए हैं, जिनका उद्देश्य धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देना है।

भविष्य की राह (2026 और आगे)

जनवरी 2026 की स्थिति में, भारत-नेपाल संबंध एक नाजुक मोड़ पर हैं।

- राजनीतिक पुनर्गठन: मार्च 2026 में होने वाले चुनावों के बाद नई सरकार का गठन भारत के लिए संबंधों को 'रीसेट' करने का अवसर होगा। सुशीला कार्की की अंतरिम सरकार के दौरान, भारत को राजनीतिक बयानबाजी से बचकर विकास परियोजनाओं (जैसे रक्सौल रेलवे, पाइपलाइन) को तेजी से पूरा करने पर ध्यान देना चाहिए।
- अग्निपथ का समाधान: गोरखा भर्ती का मुद्दा भावनात्मक और रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण है। भारत को या तो नेपाली गोरखाओं के लिए विशेष प्रावधानों पर विचार करना होगा या इस ऐतिहासिक सैन्य संबंध के समाप्त होने के लिए तैयार रहना होगा।

- चीन का मुकाबला: भारत को चीन की 'चेकबुक डिप्लोमेसी' का मुकाबला अपनी 'प्रोजेक्ट डिलीवरी' से करना होगा। पोखरा हवाई अड्डे की विफलता ने नेपाल में चीनी ऋण के प्रति सतर्कता बढ़ाई है, जिसका लाभ भारत उठा सकता है।

निष्कर्ष

नरेंद्र मोदी का कार्यकाल भारत-नेपाल संबंधों में यथार्थवाद (त्मसंपेड) का युग रहा है। 2014 की भावुकता 2015 की कड़वाहट में बदली, और अब यह एक लेन-देन आधारित साझेदारी में विकसित हो रही है। भविष्य के संबंध साझा संस्कृति पर कम और साझा हितों ऊर्जा सुरक्षा, कनेक्टिविटी और आर्थिक एकीकरण पर अधिक निर्भर होंगे।

संदर्भ सूची

1. इंडियन काउंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स: "भारत-नेपाल संबंध-एक नई शुरुआत" (अगस्त 2014)।
2. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार: "भारत-नेपाल द्विपक्षीय संबंधों पर संक्षिप्त विवरण"।
3. डॉ. अमित कुमार: "प्रधानमंत्री मोदी की नेपाल यात्रा और रणनीतिक निहितार्थ" (2014)।
4. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स: "नरेन्द्र मोदी कार्यकाल में भारत-नेपाल संबंध: एक विश्लेषण" (टवस 9, 2021/2024)।
5. दृष्टि IAS: "भारत-नेपाल बिजली समझौता और क्षेत्रीय ग्रिड कनेक्टिविटी" (करेंट अफेयर्स विश्लेषण, 2024)।
6. ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन: "नेपाल की पनबिजली परियोजना: भारत-नेपाल संबंधों का गेम-चेंजर" (2023)।
7. डीडी न्यूज: "भारत-नेपाल सीमा पार बिजली व्यापार और नए समझौते" (अक्टूबर 2025 रिपोर्ट)।
8. संस्कृति: "भारत-नेपाल सीमा विवाद: लिपुलेख और सुगौली संधि का ऐतिहासिक संदर्भ" (2025)।
9. दैनिक जागरण: "HIT से सुपरहिट तक: पीएम मोदी का नेपाल विजन" (जून 2023)।
10. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ स्कॉलरली पेपर्स: "21वीं सदी में भारत-नेपाल संबंध और पड़ोस प्रथम नीति" (सितंबर 2024)।
11. रीवोई हिंदी: "भारत और नेपाल के बीच 400 KV बिजली परियोजनाओं पर हस्ताक्षर" (अक्टूबर 29, 2025)।
12. पीआरएस इंडिया: "भारत की 'पड़ोसी प्रथम' नीति पर संसदीय समिति की रिपोर्ट" (जुलाई 2023)।
13. जी न्यूज हिंदी: "भारत-नेपाल संबंधों के 70 वर्ष और आधुनिक चुनौतियाँ" (विशेष कवरेज)।
14. रिसर्च रिनफोर्समेंट: "भारत-नेपाल संबंध: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में" (अकादमिक जर्नल, 2020-2025 संकलन)।

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन: (निजी आलू शीत गृहों (फर्रुखाबाद) के विशेष संदर्भ में)

जितेंद्र पाठक

(असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र) डॉ० भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, औडेन्य पड़रिया, मैनपुरी
शोध छात्र, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, अमरोहा, उत्तर प्रदेश

डॉ० रंजीत वर्मा

शोध पर्यवेक्षक, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, अमरोहा, उत्तर प्रदेश

शोध सार (Abstract):

भारत की अर्थव्यवस्था में असंगठित क्षेत्र की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें महिला श्रम की भागीदारी निरंतर बढ़ रही है। इसके बावजूद इस क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति आज भी असुरक्षित और कमजोर बनी हुई है। प्रस्तुत शोध-पत्र उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जनपद में स्थित निजी आलू शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में महिलाओं की आय, मजदूरी, रोजगार की प्रकृति, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक सुरक्षा तथा आर्थिक शोषण जैसे पक्षों का विवेचन किया गया है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि कम मजदूरी, मौसमी रोजगार, सामाजिक सुरक्षा के अभाव तथा लैंगिक असमानता के कारण महिला श्रमिक आर्थिक रूप से सशक्त नहीं हो पा रही हैं। यह शोध-पत्र महिला सशक्तीकरण हेतु आर्थिक सुधारों और नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्दावली (Key Words): असंगठित क्षेत्र, महिला श्रमिक, आर्थिक स्थिति, शीत गृह, मजदूरी, लैंगिक असमानता, फर्रुखाबाद

1. प्रस्तावना (Introduction):

किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति का आकलन उनकी आर्थिक भूमिका और आर्थिक स्वतंत्रता के आधार पर किया जा सकता है। भारत जैसे विकासशील देश में महिलाओं की आर्थिक स्थिति ऐतिहासिक रूप से कमजोर रही है, विशेषकर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की। असंगठित क्षेत्र में रोजगार की अनिश्चितता, कम मजदूरी, श्रम अधिकारों का अभाव तथा सामाजिक सुरक्षा की कमी महिलाओं को आर्थिक रूप से निर्भर बनाए रखती है। भारतीय समाज की आर्थिक संरचना में असंगठित क्षेत्र का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। देश की अधिकांश कार्यशील जनसंख्या इसी क्षेत्र में संलग्न है, जिसमें महिलाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ती जा रही है। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएँ परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, किंतु इसके बावजूद उनकी आर्थिक स्थिति, कार्य परिस्थितियाँ और सामाजिक सुरक्षा अत्यंत कमजोर बनी हुई हैं। इस क्षेत्र में नियमित रोजगार, निश्चित आय, सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ तथा श्रम कानूनों का लाभ प्रायः उपलब्ध नहीं होता, जिससे महिलाओं का जीवन असुरक्षा और अनिश्चितता से घिरा रहता है।

फर्रुखाबाद जनपद में स्थित निजी आलू शीत गृह असंगठित क्षेत्र का एक प्रमुख स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इन शीत गृहों में बड़ी संख्या में महिलाएँ आलू की छंटाई, सफाई, भराई, बोरो की सिलाई तथा लोडिंग से संबंधित सहायक कार्यों में कार्यरत हैं। ये कार्य प्रायः अल्प मजदूरी, अधिक श्रम और अस्थायी प्रकृति के होते हैं। महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी दी जाती है तथा कार्य के घंटे भी अनियमित होते हैं। मौसमी रोजगार होने के कारण वर्ष के कुछ महीनों में ही उन्हें काम मिल पाता है, जिससे उनकी आय सीमित और अस्थिर बनी रहती है।

कम आय, महंगाई, पारिवारिक दायित्व और सीमित शैक्षिक स्तर के कारण इन महिलाओं की आर्थिक स्थिति कमजोर रहती है। इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य, पोषण, बच्चों की शिक्षा तथा सामाजिक जीवन पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कई महिलाएँ ऋणग्रस्तता और बचत के अभाव से भी जूझती हैं।

उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जनपद में आलू उत्पादन एवं भंडारण एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि है। यहाँ स्थित निजी आलू शीत गृहों में बड़ी संख्या में महिलाएँ मौसमी एवं अस्थायी श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं। ये महिलाएँ परिवार की आजीविका में योगदान देती हैं, किंतु उनकी आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाता। इस संदर्भ में यह शोध-पत्र महिलाओं की आर्थिक स्थिति का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study):

1. शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं की आय एवं मजदूरी की स्थिति का अध्ययन करना।
2. महिलाओं के रोजगार की प्रकृति एवं स्थिरता का विश्लेषण करना।
3. महिलाओं की आर्थिक निर्भरता एवं पारिवारिक भूमिका का आकलन करना।
4. सामाजिक सुरक्षा एवं सरकारी योजनाओं की पहुँच का अध्ययन करना।
5. महिलाओं के आर्थिक शोषण एवं लैंगिक असमानता का विश्लेषण करना।

3. अनुसंधान पद्धति (Research Methodology):

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक आँकड़े साक्षात्कार एवं अवलोकन विधि से तथा द्वितीयक आँकड़े पुस्तकों, सरकारी रिपोर्टों एवं शोध-पत्रों से प्राप्त किए गए हैं। अध्ययन क्षेत्र फर्रुखाबाद जनपद के निजी आलू शीत गृह हैं, जहाँ कार्यरत महिला श्रमिक अध्ययन की इकाई हैं।

4. असंगठित क्षेत्र और महिला श्रम:

A असंगठित क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का वह महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें श्रम कानूनों का प्रभाव सीमित होता है और रोजगार की प्रकृति अस्थायी तथा अनियमित होती है। इस क्षेत्र में महिला श्रम की भागीदारी अत्यधिक है, क्योंकि यहाँ प्रवेश की शर्तें सरल होती हैं और औपचारिक शिक्षा या तकनीकी कौशल की अनिवार्यता नहीं होती। ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों की महिलाएँ घरेलू जिम्मेदारियों के साथ आय अर्जन हेतु असंगठित क्षेत्र की ओर आकृष्ट होती हैं। असंगठित क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ रोजगार औपचारिक नियमों से संचालित नहीं होता। यहाँ न तो श्रमिकों को स्थायी रोजगार मिलता है और न ही सामाजिक सुरक्षा। महिलाएँ इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में कार्यरत हैं क्योंकि उन्हें कम मजदूरी पर अधिक कार्य के लिए उपलब्ध माना जाता है। शीत गृह असंगठित क्षेत्र का ऐसा ही उदाहरण हैं, जहाँ महिला श्रम का व्यापक उपयोग होता है।

महिलाएँ असंगठित क्षेत्र में कृषि, घरेलू उद्योग, निर्माण कार्य, शीत गृह, बीड़ी उद्योग, घरेलू कार्य तथा छोटे व्यापारों में श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं। इसके बावजूद उन्हें प्रायः कम मजदूरी, लंबे कार्य घंटे और असुरक्षित कार्य स्थितियों का सामना करना पड़ता है। समान कार्य के लिए पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम पारिश्रमिक दिया जाना एक सामान्य समस्या है। इसके अतिरिक्त मातृत्व लाभ, स्वास्थ्य सुरक्षा, पेंशन एवं बीमा जैसी सुविधाओं का अभाव उनके आर्थिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है।

असंगठित क्षेत्र में महिला श्रम अक्सर अदृश्य या अल्प-मूल्यांकित रहता है, जिससे उनका सामाजिक दर्जा कमजोर बना रहता है। आर्थिक निर्भरता कम करने के प्रयासों के बावजूद शोषण, अस्थिर आय और सीमित अवसर उनके सशक्तिकरण में बाधक बनते हैं। अतः महिला श्रम की स्थिति में सुधार हेतु सामाजिक सुरक्षा, न्यूनतम मजदूरी और लैंगिक समानता को सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है।

5. शीत गृहों में महिलाओं के कार्य का स्वरूप:

शीत गृहों में महिलाओं के कार्य का स्वरूप मुख्यतः श्रमप्रधान, सहायक तथा अस्थायी प्रकृति का होता है। निजी आलू शीत गृहों में महिलाएँ आलू की छंटाई, सफाई, ग्रेडिंग, बोरो में भराई, बोरी सिलाई तथा भंडारण से संबंधित कार्यों में प्रमुख रूप से संलग्न रहती हैं। ये कार्य शारीरिक रूप से श्रमसाध्य होते हैं, जिनमें लंबे समय तक खड़े रहकर या झुककर काम करना पड़ता है। अधिकांश कार्य हाथों से किए जाते हैं और तकनीकी साधनों का प्रयोग सीमित होता है। महिलाओं को प्रायः मौसमी आधार पर रोजगार मिलता है, जो आलू की आवक और भंडारण अवधि पर निर्भर करता है। कार्य के घंटे अनियमित होते हैं तथा अतिरिक्त कार्य के लिए अलग से पारिश्रमिक नहीं दिया जाता। सुरक्षा उपायों, जैसे दस्ताने, मास्क या उचित प्रकाश व्यवस्था का अभाव उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। ठंडे वातावरण में लगातार कार्य करने से महिलाओं को शारीरिक थकान, सर्दी-जुकाम तथा अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शीत गृहों में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में सहायक कार्यों तक ही सीमित रखा जाता है, जिससे उनके कार्य को कम महत्व दिया जाता है। इसके बावजूद वे परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस कार्य को करने के लिए विवश रहती हैं।

6. आय एवं मजदूरी की स्थिति:

असंगठित क्षेत्र के शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं की आय एवं मजदूरी की स्थिति सामान्यतः असंतोषजनक पाई जाती है। निजी आलू शीत गृहों में महिलाओं को प्रायः दैनिक या ठेके के आधार पर मजदूरी दी जाती है, जो न तो नियमित होती है और न ही पर्याप्त। मजदूरी की दर अक्सर स्थानीय श्रम बाजार पर निर्भर करती है तथा इसमें न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का पूर्णतः पालन नहीं किया जाता। समान कार्य करने के बावजूद महिलाओं को पुरुष श्रमिकों की तुलना में कम पारिश्रमिक प्राप्त होता है, जो लैंगिक असमानता को दर्शाता है।

महिलाओं की आय मौसमी रोजगार पर आधारित होने के कारण वर्ष के कुछ ही महीनों तक सीमित रहती है। कार्य के घंटे बढ़ने पर भी अतिरिक्त मजदूरी या ओवरटाइम का भुगतान प्रायः नहीं किया जाता। कम आय के कारण महिलाओं की बचत क्षमता अत्यंत कम होती है, जिससे वे आकस्मिक आवश्यकताओं, स्वास्थ्य व्यय या बच्चों की शिक्षा पर पर्याप्त खर्च नहीं कर पातीं। कई महिलाएँ आय की अनियमितता के कारण साहूकारों या स्वयं सहायता समूहों से ऋण लेने के लिए विवश हो जाती हैं।

इस प्रकार, शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं की आय एवं मजदूरी की अस्थिरता उनकी आर्थिक असुरक्षा को बढ़ाती है और उनके जीवन स्तर को प्रभावित करती है।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि अधिकांश महिला श्रमिकों को दैनिक मजदूरी के आधार पर भुगतान किया जाता है। मजदूरी की दर न्यूनतम मजदूरी मानकों से कम पाई गई। समान कार्य के लिए पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम मजदूरी दी जाती है। यह आर्थिक असमानता महिलाओं की कमजोर सौदेबाजी शक्ति को दर्शाती है।

7. रोजगार की अस्थिरता एवं मौसमी प्रकृति:

शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं का रोजगार अत्यंत अस्थिर एवं मौसमी प्रकृति का होता है। निजी आलू शीत गृहों में कार्य मुख्यतः आलू की आवक, भंडारण और निकासी की अवधि पर निर्भर करता है। इन गतिविधियों के सक्रिय रहने के दौरान ही महिलाओं को काम उपलब्ध हो पाता है, जबकि शेष समय उन्हें बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। इस मौसमी स्वरूप के कारण महिलाओं की आय निरंतर नहीं रह पाती और आर्थिक असुरक्षा बनी रहती है।

रोजगार की अनिश्चितता के चलते महिलाएँ भविष्य की योजना बनाने, बचत करने या स्थायी निवेश करने में असमर्थ रहती हैं। कई बार कार्य की अचानक समाप्ति से परिवार की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रोजगार की यह अस्थिरता महिलाओं को अन्य असंगठित एवं कम वेतन वाले कार्यों की तलाश करने के लिए विवश करती है। परिणामस्वरूप उनका जीवन संघर्षपूर्ण बना रहता है और सामाजिक सुरक्षा के अभाव में उनका सशक्तिकरण बाधित होता है।

शीत गृहों में कार्य मौसमी होता है। आलू भंडारण के समय रोजगार उपलब्ध होता है, किंतु शेष अवधि में महिलाओं को बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। इस अस्थिरता के कारण महिलाओं की आय अनियमित रहती है और वे भविष्य के लिए बचत नहीं कर पातीं।

8. आर्थिक निर्भरता एवं पारिवारिक भूमिका:

असंगठित क्षेत्र के शीत गृहों में कार्यरत महिलाएँ प्रायः आर्थिक रूप से पूर्णतः स्वतंत्र नहीं हो पातीं। उनकी आय सीमित, अनियमित एवं मौसमी होने के कारण परिवार की कुल आय में उनका योगदान सहायक मात्र रह जाता है। अधिकांश मामलों में महिलाएँ पति या परिवार के अन्य पुरुष सदस्यों की आय पर आंशिक रूप से निर्भर रहती हैं। इसके बावजूद उनकी आय घरेलू खर्च, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पारिवारिक स्तर पर महिलाओं की भूमिका दोहरी होती है। एक ओर वे श्रमिक के रूप में आर्थिक योगदान देती हैं, वहीं दूसरी ओर घरेलू कार्य, बच्चों की देखभाल और पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन भी करती हैं। सीमित आय और सामाजिक परंपराओं के कारण आर्थिक निर्णयों में उनकी भागीदारी कम रहती है। इस प्रकार आर्थिक निर्भरता और पारिवारिक दायित्व महिलाओं पर अतिरिक्त बोझ डालते हैं, जिससे उनका सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण प्रभावित होता है।

यद्यपि महिलाएँ परिवार की आय में योगदान देती हैं, फिर भी उनकी आर्थिक भूमिका को गौण माना जाता है। आर्थिक निर्णयों पर पुरुषों का नियंत्रण बना रहता है। महिलाओं को अपनी आय के उपयोग का स्वतंत्र अधिकार नहीं मिल पाता, जिससे उनकी आर्थिक निर्भरता बनी रहती है।

9. सामाजिक सुरक्षा एवं आर्थिक असुरक्षा:

असंगठित क्षेत्र के शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा की सुविधाएँ अत्यंत सीमित रूप में उपलब्ध होती हैं। उन्हें स्वास्थ्य बीमा, मातृत्व लाभ, पेंशन, भविष्य निधि या दुर्घटना बीमा जैसी योजनाओं का लाभ प्रायः नहीं मिल पाता। कार्यस्थल पर सुरक्षा उपायों के अभाव और अनियमित रोजगार के कारण महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी जोखिमों का सामना करना पड़ता है, जिसका सीधा प्रभाव उनकी आय और जीवन स्तर पर पड़ता है।

आर्थिक असुरक्षा का प्रमुख कारण कम एवं अनियमित आय, मौसमी रोजगार और बचत के अवसरों का अभाव है। आकस्मिक बीमारी, पारिवारिक संकट या बेरोजगारी की स्थिति में महिलाएँ ऋण लेने के लिए विवश हो जाती हैं। सामाजिक सुरक्षा के अभाव में भविष्य के प्रति असुरक्षा की भावना बनी रहती है, जिससे उनका आत्मविश्वास और सामाजिक स्थिति कमजोर होती है। अतः इन महिलाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है।

10. सरकारी योजनाएँ एवं उनकी पहुँच:

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक उत्थान हेतु केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, उनकी आर्थिक असुरक्षा को कम करना तथा उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना है। प्रमुख योजनाओं में प्रधानमंत्री श्रम योगी मानधन योजना, ई-श्रम कार्ड योजना, प्रधानमंत्री जन-धन योजना, आयुष्मान भारत योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना तथा उज्ज्वला योजना शामिल हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को ऋण एवं बचत की सुविधा भी प्रदान की जाती है।

फिर भी निजी आलू शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं तक इन योजनाओं की पहुँच सीमित दिखाई देती है। इसका मुख्य कारण जागरूकता का अभाव, निरक्षरता, डिजिटल सुविधाओं की कमी तथा पंजीकरण की जटिल प्रक्रिया है। कई महिलाएँ अस्थायी एवं मौसमी श्रमिक होने के कारण आवश्यक दस्तावेज

प्रस्तुत नहीं कर पातीं। वहीं कुछ मामलों में नियोक्ताओं द्वारा श्रमिकों का औपचारिक पंजीकरण न किए जाने से भी महिलाएँ योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाती हैं।

अतः यह आवश्यक है कि सरकारी योजनाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाए, पंजीकरण प्रक्रिया को सरल बनाया जाए तथा स्थानीय स्तर पर सहायता केंद्र स्थापित कर महिलाओं की योजनाओं तक प्रभावी पहुँच सुनिश्चित की जाए।

11. समाजशास्त्रीय विश्लेषण:

समाजशास्त्रीय दृष्टि से महिलाओं की आर्थिक स्थिति वर्ग, लिंग एवं सत्ता संबंधों से जुड़ी हुई है। शीत गृहों में कार्यरत महिलाएँ उत्पादन की महत्वपूर्ण कड़ी हैं, किंतु उन्हें आर्थिक लाभों में समान भागीदारी नहीं मिलती। यह स्थिति संरचनात्मक असमानता को उजागर करती है। निजी आलू शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण यह दर्शाता है कि उनका जीवन असंगठित क्षेत्र की संरचनात्मक चुनौतियों और लैंगिक असमानताओं से गहराई से प्रभावित है। शीत गृहों में महिलाओं का कार्य मुख्यतः श्रमप्रधान और सहायक प्रकार का होता है, जहाँ समान कार्य के लिए उन्हें पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी दी जाती है। यह लैंगिक विभाजन न केवल आर्थिक असमानता उत्पन्न करता है, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और निर्णय लेने की क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

सामाजिक-आर्थिक वर्ग और शिक्षा स्तर भी महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करते हैं। निम्न वर्ग और अल्पशिक्षित महिलाएँ रोजगार के सीमित विकल्पों के कारण शीत गृहों में कार्य करने के लिए बाध्य हैं। पितृसत्तात्मक पारिवारिक ढाँचे में वे घरेलू दायित्वों के साथ-साथ आर्थिक योगदान भी देती हैं, लेकिन पारिवारिक आर्थिक निर्णयों में उनकी भागीदारी सीमित रहती है।

रोजगार की अस्थिरता, मौसमी प्रकृति और सामाजिक सुरक्षा की कमी महिलाओं में आर्थिक असुरक्षा और भविष्य के प्रति चिंता उत्पन्न करती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह स्पष्ट है कि असंगठित क्षेत्र में महिला श्रमिकों की स्थिति केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं द्वारा भी प्रभावित होती है। इसलिए उनकी सशक्तिकरण नीतियाँ केवल रोजगार तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और समान अवसर सुनिश्चित करने पर भी केंद्रित होनी चाहिए।

12. निष्कर्ष (Conclusion):

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति अनेक चुनौतीपूर्ण कारकों से प्रभावित है। निजी आलू शीत गृहों में महिलाओं का कार्य श्रमप्रधान, अस्थायी और मौसमी होता है, जिससे उनकी आय अनियमित और अपर्याप्त रहती है। लैंगिक असमानता के कारण समान कार्य के लिए उन्हें पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है, और सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं बीमा जैसी सुविधाएँ प्रायः अनुपलब्ध रहती हैं। महिलाएँ परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में योगदान देती हैं, लेकिन घरेलू दायित्वों और पितृसत्तात्मक संरचना के कारण उनका सशक्तिकरण सीमित रह जाता है। रोजगार की अस्थिरता, सामाजिक सुरक्षा की कमी और सरकारी योजनाओं तक सीमित पहुँच उनकी आर्थिक असुरक्षा को बढ़ाती है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि निजी आलू शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति कमजोर एवं असुरक्षित है। कम मजदूरी, रोजगार की अस्थिरता, सामाजिक सुरक्षा का अभाव तथा लैंगिक असमानता महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में प्रमुख बाधाएँ हैं। महिला सशक्तिकरण हेतु आर्थिक अवसरों का विस्तार, श्रम कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन तथा सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था अनिवार्य है। अतः शीत गृहों में कार्यरत महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए आवश्यक है कि उन्हें नियमित आय, समान मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा और सरकारी योजनाओं तक प्रभावी पहुँच सुनिश्चित की जाए। इसके साथ ही जागरूकता, शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से उनका आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण किया जा सकता है।

संदर्भ सूची (References):

1. इंदिरा, एस. (2018). असंगठित क्षेत्र में महिला श्रमिक: सामाजिक एवं आर्थिक आयाम. नई दिल्ली: सामाजिक विज्ञान प्रकाशन।
2. सक्सेना, आर. (2017). महिला श्रम और असमानता. लखनऊ: ज्ञान भवन।
3. भारत सरकार, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय (2020). ई.श्रम पोर्टल तथा असंगठित क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय नीति. नई दिल्ली: भारत सरकार।
4. डी'सूजा, जे. (2019). "महिलाएँ और असंगठित क्षेत्र: भारतीय संदर्भ", भारतीय समाजशास्त्र जर्नल, 25(3), 45-62।
5. चतुर्वेदी, पी. (2021). अर्थव्यवस्था में असंगठित क्षेत्र की भूमिका. मुंबई: अर्थ जनता पब्लिकेशन।
6. सेन, सुजीता (2016). "ग्रामीण महिला श्रमिकों की स्थितियाँ", ग्रामीण अध्ययन मासिक, 12(7), 78-90।
7. नायडू, ए. (2018). महिला मजदूर और सामाजिक सुरक्षा. चेन्नई: सामाजिक न्याय प्रकाशन।
8. भारतीय राष्ट्रीय जनगणना (2011). महिला श्रम भागीदारी एवं रोजगार आँकड़े. नागपुर: भारत सरकार।
9. रॉय, एस. (2022). श्रम, लिंग और असंगठित क्षेत्र. कोलकाता: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
10. मिश्रा, के. (2019). "सरकारी योजनाएँ और महिला श्रमिकों की पहुँच", सार्वजनिक नीति समीक्षा, 8(2), 102-118।

कमार जनजातियों में प्राचीन वैवाहिक मान्यताएं एवं विवाह गीत का समाजशास्त्रीय एवं नृजातीय अध्ययन

कविता सोम

शोधार्थी, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

डॉ० हेमलता बोरकर वासनिक

सहप्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

सारांश -

छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बाहुल्य राज्य है जिनमें कमार जनजाति की गणना महत्वपूर्ण जनजाति की गणना में की जाती है। यह जनजाति अतिप्राचीन है और अपनी समृद्ध परम्पराओं और रीति रिवाजों के नाम से प्रसिद्ध है कमार जनजाति में विशेष रूप से विवाह की परम्परा छत्तीसगढ़ राज्य की समृद्ध परंपराओं में से एक मानी जाती है। प्रस्तुत शोध पत्र छत्तीसगढ़ की कमार जनजाति की पारंपरिक विवाह प्रथा का अध्ययन करता है। यह शोध पत्र अनुभवजन्य प्राथमिक तथ्यों पर आधारित है। इस शोध पत्र हेतु कुल 271 कमार जनजातियों का चयन उद्देश्यपूर्ण निर्देशन द्वारा किया गया है। कमार जनजाति में विवाह को षबिहाव कहा जाता है। यह अध्ययन विवाह की प्रक्रिया, सामाजिक मान्यताओं, लिंग आधारित भूमिल तथा आधुनिकता के प्रभावों का विश्लेषण करता है। यह शोध पत्र इस जनजाति की सांस्कृतिक अस्मिता और पारंपरिक विवाह प्रणाली के संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करता है। विवाह प्रथाओं से संबंधित तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार - निर्देशिका उपकरण का उपयोग किया गया है। इसके अलावा सहभागी अवलोकन के माध्यम से भी प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया गया है। आज, वर्तमान आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) के युग में भी कमार जनजाति में विवाह की प्राचीन परंपरा जीवित है।

शब्द कुंजी - कमार जनजाति, विवाह, परम्परा, समाज

प्रस्तावना-

छ.ग. राज्य एक जनजातीय बाहुल्य राज्य है यहाँ कुल 32% जनजातियों निवास करती हैं। छ.ग. राज्य में कुल 5 जनजातियों को विशेष संरक्षित पिछड़ी जनजाति का दर्जा दिया गया है। इसमें कमार जनजाति भी शामिल है। कमार जनजाति यह सदियों से निवास रात है। यह जनजाति अपने सांस्कृतिक मान्यताओं एवं सामाजिक मूल्यों के कारण जानी एवं पहचानी जाती है। इस जनजाति के लोग अभी भी आधुनिकता से दूर हैं। जो अपनी विशिष्ट जीवनशैली, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक ढांचे के लिए जानी जाती है। कमार समाज में विवाह न केवल दो व्यक्तियों का संबंध है, बल्कि यह परिवारों और समुदायों के बीच सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गठबंधन का माध्यम भी होता है।

उद्देश्य-

- कमार जनजातियों में प्रचलित विवाह के स्वरूप, मान्यताओं एवं विवाह गीतों का अध्ययन करना।

शोध साहित्य की समीक्षा-

प्रेमी, जितेन्द्र कुमार एवं सोती प्रवीण कुमार (2013) का अध्ययन विशेष पिछड़ी ;अदिम जनजाति कमार: एक नृजातिवृत्तांतमक परिदृश्य पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन दर्शाता है कि आज के समय में कमारों की जीवनशैली बदल रही है। बाहरी संस्कृतियों का असर बढ़ रहा है लेकिन शिक्षा स्वास्थ्य और आधुनिक सुविधाओं की कमी है। विकास योजनाएँ भी इन तक पूरी तरह नहीं पहुँच पातीं। कई बार असमान अवसरों और गरीबी के कारण लोग नक्सलवाद जैसी समस्याओं की ओर भी आकर्षित हो जाते हैं।

मीना, हरिचरण (2017) भारतीय जनजाति समुदाय की वैवाहिक परम्पराओं पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन दर्शाता है कि भारतीय जनजातियाँ आज भी अपनी वैवाहिक परंपराओं के प्रति गहराई से जुड़ी हुई हैं। विवाह न केवल एक सामाजिक अनुबंध है, बल्कि यह सांस्कृतिक पहचान, परंपरा और सामूहिकता का भी प्रतीक है। जनजातीय विवाह प्रणाली भारतीय संस्कृति की विविधता और गहराई को उजागर करती है।

बन्सो नुरुटी (2019) प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ की जनजाति संस्कृति 'माड़िया जनजाति के विशेष संदर्भ में है। प्रस्तुत अध्ययन बस्तर संभाग के अबुझमाड़ क्षेत्र के माड़िया जनजाति पर केन्द्रित किया गया है। अबुझमाड़ क्षेत्र के लगभग 500 उत्तरदाताओं में से 100 अर्थात् 20 प्रतिशत उत्तरदाता का चयन उद्देश्य

पूर्ण निर्देशन द्वारा किया गया है। इन्होंने माड़िया जनजाति के धार्मिक क्रियाओं व उत्सवों में किये जाने वाले नृत्य के संदर्भ में अध्ययन किया है। जिसमें धार्मिक नृत्य, विवाह नृत्य, कक्साड़ नृत्य, जात्रा नृत्य, गेड़ी नृत्य, गौर नृत्य शामिल है। जिनसे अध्ययन में पाया गया कि 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में कक्साड़ नृत्य, जात्रा नृत्य, गेड़ी नृत्य, व गौर नृत्य किया जाता है। 20 प्रतिशत उत्तरदाता के परिवार में काक्साड़, जात्रा, गेड़ी व गौर नृत्य किया जाता है। जिससे यह पाया गया कि माड़िया जनजाति में सबसे अधिक काक्साड़, जात्रा, गेड़ी व गौर नृत्य प्रचलित है।

अंधारे, अंकिता, मेहता, सुनील कुमार at all (2020), ने मुरिया जनजाति में विवाह संस्कार पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन बस्तर जिले के लोहाण्डीगुड़ा क्षेत्र के मुरिया जनजाति पर केंद्रित है इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मुरिया जनजाति के विवाह स्वरूप में समयानुसार परिवर्तन हुए हैं। लमसेना व पैटूल विवाह जैसी प्राचीन प्रथाएँ विलुप्तप्राय हो गई हैं। पहले वधूमूल्य के रूप में धान, चावल, पशु आदि दिए जाते थे, किंतु अब दहेज जैसी प्रथाएँ भी प्रचलित हो चुकी हैं। यह परिवर्तन श्रीनिवास के संस्कृतिकरण सिद्धांत की पुष्टि करता है, जहाँ निम्न जातियाँ उच्च जातियों की संस्कृति अपनाती हैं। साथ ही, पैटूल विवाह की अवधारणा आधुनिक शहरी समाज के 'लीव-इन-रिलेशन' में भी दृष्टिगोचर होती है, जिससे जनजातीय परंपराओं का आधुनिक और पाश्चात्य संस्कृति पर प्रभाव स्पष्ट होता है।

गजेन्द्र कुमार(2024) “कमार जनजाति के विविध संस्कार” पर आधारित है। अध्ययनों से स्पष्ट है कि कमार जनजाति का जीवन गहन धार्मिक आस्था, सामुदायिक परंपराओं और प्रकृति-आधारित जीवन शैली पर आधारित है। उनके संस्कार सामाजिक एकजुटता, पूर्वजों की स्मृति और पुनर्जन्म की मान्यता से गहराई से जुड़े हुए हैं। आधुनिक समय में यद्यपि बाहरी संस्कृति और शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा है, फिर भी इनके पारंपरिक संस्कार जनजातीय पहचान और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित किए हुए हैं।

सोमा महतो (2025) मुंडा जनजाति का विवाह संस्कार पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन दर्शाता है कि मुंडा जनजाति का विवाह संस्कार उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं का जीवंत प्रतीक है। विवाह को केवल दो व्यक्तियों का मिलन न मानकर इसे परिवारों और समुदायों के बीच संबंधों को सुदृढ़ करने का माध्यम माना जाता है। विवाह प्रक्रिया में अगुआ की भूमिका, वधू मूल्य निर्धारण, मंडपाच्छादन, हल्दी-तेल की रस्म और सिंदूरदान जैसे अनुष्ठान विशेष महत्व रखते हैं। 'बगाउती बोंगा' द्वारा नवदम्पति का प्रकृति और ग्राम्य देवताओं से संबंध स्थापित किया जाता है। साथ ही 'सकम चिरा' यानी विवाह विच्छेद की परंपरा सामाजिक स्पष्टता और अनुशासन को बनाए रखती है।

शोध प्रारूप-

- विवरणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध प्रारूप

अध्ययन पद्धति-

प्रस्तुत शोध पत्र अनुभव जन्य तथ्यों पर आधारित हैं। यह शोध पत्र छत्तीसगढ़ राज्य के कमार जनजातियों पर केंद्रित है। छत्तीसगढ़ राज्य में कमार जनजाति मुख्य रूप से धमतरी जिले के तीन विकासखण्डों में निवास करती है अध्ययन हेतु चयनित क्षेत्र नगरी एवं मगरलोड हैं। नगरी में जनजाति कमार परिवारों की कुल संख्या 1248 एवं मगरलोड में कमार जनजाति परिवार की संख्या 448 है। अध्ययन हेतु 1696 का 16% अर्थात 271 कमार परिवारों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया है। प्रस्तुत शोध- पत्र पूर्णतः गुणात्मक शोध पर केंद्रित है, जिसके अंतर्गत कमार जनजातियों का में प्रचलित मान्यताओं का समजशास्त्रीय एवं नृजातीय प्रस्तुतीकरण किया गया है।

कमार जनजाति की अनोखी विवाह परंपरा

कमार जनजाति में सामाजिक गोत्र व्यवस्था के अनुसार डिहिवार के उपस्थिति में दोनों परिवारों के रजामंदि, लड़का -लड़की के रजामंदि होने पर ही वर वधु का चयन किया जाता है। सबसे पहले विवाह के लिए वर पक्ष द्वारा फूफू (लड़के की बुआ) की पुत्री को मान्यता दी जाती है। इस परंपरा के अनुसार वर का कोई परिजन बुआ से जाकर पूछता है –“क्या आप अपनी पुत्री का विवाह हमारे पुत्र से करना चाहेंगी?” यदि बुआ सहमति देती हैं, तो “महला” (नेग/भेंट) देकर रिश्ता तय किया जाता है। लेकिन यदि किसी कारणवश फूफू अपनी पुत्री देने से मना कर देती हैं, तब वर पक्ष वर की फूफू से अनुमति ले कर अन्य स्थान पर लड़की देखने जाते हैं उसके बाद समधान विपरीत गोत्र का व्यक्ति विवाह योग्य लड़की होने की जानकारी देता है तब लड़की पक्ष से सहमति मिलते ही वर पक्ष औपचारिक रूप से वधू के घर पहुँचता है। जब वर पक्ष, वधु पक्ष के गृह ग्राम में जाकर लड़की को पसंद करता है। तब उसके परिजन वधु पक्ष को अपने गृह ग्राम में देखने के लिए आमंत्रित करते हैं। यदि वधु को भी वर पसंद होता है तब वधु पक्ष के लोग वर के गृह / ग्राम को देखने जाते हैं वधु पक्ष के लोग जब वर पक्ष के गृह ग्राम को देख कर आते हैं, और जब उन्हें पसंद आ जाता है तब वर पक्ष को संदेश भेजते हैं कि हमें यह रिश्ता पसंद है तब फिर से वर पक्ष, वधु पक्ष के गृह ग्राम आकर एक बॉटल मंद, नारियल और पैसे देकर रिश्ता तय करते हैं। व महला नेगहा (सगाई) की तिथि निर्धारित करते हैं। महला नेगहा (सगाई) में सत्ता जोहार के रूप में नरियो (नारियल), मंद, अगरबत्ती, गुर (गुड़), चौक (चावल), चिवड़ा, धूप, दुल्ही नोनी सती (जड़ी, चुड़ी, मुंदरी, लुगरा) आदि लेकर जाते हैं। वधु पक्ष में महला नेगहा में 50 से 100 लोग जाते हैं, तथा वहा जाने के बाद वधु पक्ष के लोग वर पक्ष के सभी व्यक्ति का पैर धोकर गुलाल लगाकर व कान में दुबी लगाकर सम्मान दे कर स्वागत करते हैं तत्पश्चात सर्व प्रथम वर पक्ष के वरिष्ठ व्यक्ति कन्या के पास जाकर फिर से सुनिश्चित करते हैं कि वह विवाह करने को तैयार है कि नहीं। कन्या के पास जाकर कहा जाता है कि “नोनी आज तुम्हा देऊदे दुल्हा बाबु आया दुल्ही नोनी आया दोनो के मन कराय की नई कराय, मन कराय तो होये बला नई पसंद आयेछे ता नई देवस हव बताते तहान दोई लोकझु माहला नेघा होई जायती” हिन्दी में भावार्थ “वर पक्ष से युवती को पुछा जाता है कि नोनी आज तुमसे पुछ रहे हैं कि दुल्हा और दुल्हन दोनों का मन हो तो आज माहला नेघा हो जाने दे अगर हां बोलोगे तो करेंगे अन्यथा नहीं करेंगे। युवती के रजामंदी होने पर युवक के पास जा कर उसकी रजामंदी ली जाती है दोनों के हां बोलने पर “सत्ता जोहार” को वधु पक्ष व समाज के सामने दिखाया जाता है और पुछा जाता है अगर समाज व वधु पक्ष

को भी सभी समान अच्छा लगा व पूर्ण लगा तो आगे की रस्म होती है। अगर नहीं तो बताते हैं कि ऐ - ऐ माहला नेचा के समान कमती है” उसे पूर्ण करने के बाद वधु का श्रृंगार समान उसे तैयार होने के लिए दे दिया जाता है। इसके बाद वर - वधु को लकड़ी के पीढ़े में चॉवल के आटे से रंगाली बना कर उसके ऊपर खड़ा कर वर - वधु को नारियल देते हैं और सर्व प्रथम धरती में हुम-जग दे कर व गुलाल छिड़क कर मंद तर्पण किया जाता है उसके बाद वर-वधु की पूजा कि जाती है दोनो को अगल-बगल खड़ा कर उनका सिर जोड़ा जाता है फिर हुम जग देकर दोनो के पैर में मंद तरपा जाता है अगर परिवारिक क्षमता होती है तो मुंदरी (अंगूठी) पहनाने की रस्म भी किया जाता है



चित्र क्रमांक 1 कमार जनजाति में सगाई

इसके बाद समाजिक भोज किया जाता है। भोजन के बाद वर पक्ष व वधु पक्ष विवाह की तिथि निर्धारित करते हैं वर वधु पक्ष के क्षमता के अनुसार विवाह की तिथि निर्धारित करते हैं। माहला नेचा के बाद अगर वर-वधु चाहे तो स्वेच्छानुसार वर -वधु को बिना विवाह के अपने घर कुछ दिनों के लिए ले जा सकता है यह नियमवर-वधु के आपस में सामजस्य स्थापित करने के लिए किया जाता है यदि इसी बीच वर-वधु के मध्य शारीक संबंध बन जाता है तो वधु पक्ष को सुचित कर वर-वधु का विवाह कर दिया जाता है इसे माहला बिहाव के नाम से भी जाना जाता है और यदि इसी बीच वर व वधु के मध्य आपसी सामजस्य स्थापित नहीं होता है तो या लकड़ी मना कर देती है तो इस स्थिति में वधु पक्ष को बुला कर समाजिक बैठक किया जाता है। व वर-वधु को समझाया जाता है। यदि वह इस विवाह से इनकार कर देते हैं तो कुछ समाजिक दण्ड ले कर जैसे पैसे व समाजिक भोज व मंद ले कर दोनो को स्वतंत्र कर दिया जाता है। यदि माहला नेचा “सगाई” के बाद वर पक्ष वधु के बिना आते हैं तब वह विवाह कर पुरे रिती-रिवाज के साथ वधु को घर ले जाता है। वर पक्ष - वधु पक्ष विवाह की तिथि तय करते हैं विवाह के तय होने के 15 दिन पहले वर पक्ष, वधु पक्ष के गृह ग्राम जाते हैं और करार बांधते हैं कि अब 15 दिन बाद “बिहाव करबो” उसी दिन वर-वधु के घर मड़वा गड़ाया जाता है। जिसे कमारी भाषा में “मान्डो गड़ाई” कहा जाता है। मंडो गड़ाई की रस्म समधान पक्ष (विपरीत गोत्र) द्वारा किया जाता है उसी दिन सेम्हर लकड़ी का मान्डो गड़ाया जाता है। जिसे सेम्हर लकड़ी को छिलकर विशेष आकृति उकेरी जाती है। परिवार के पुरुष सदस्य उसकी पूजा कर अपने देवी - देवताओं का स्मरण कर मंद तरप कर उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। और मड़वा लकड़ी को घर लाकर आंगन में गाड़ते हैं।



चित्र क्रमांक 2 सम्हर लकड़ी का मंडो (मड़वा)

उसके 15 दिनों तक फिर बिहाव घर में नेवता भत्ता (निमंत्रण) देने का कार्य किया जाता है। व समान खरीदी घर का साज-सज्जा का कार्य चलता है। पहले कमार जनजाति में विवाह निमंत्रण अपने समाज में घर के मुख्य दरवाजे पर जामुन डाल को लगाकर दिया करते थे परन्तु आधुनिकीकरण के चलते अब कमार जनजाति में भी शादी कार्ड की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है लोग घर घर जाकर शादी कार्ड बांटते हैं। कमार समाज में सर्वप्रथम विवाह निमंत्रण परिवार के देवी-देवताओं को दिया जाता है। उसके बाद ही समाज - परिवार को विवाह का निमंत्रण दिया जाता है। घर में विभिन्न रंगो से दिवालों पर शुभ - विवाह व वर वधु का नाम लिख कर सुंदर - सुंदर पुष्प व पत्ते बना कर चित्रकारी की जाती है। कमार जनजाति में विवाह के समय गोदना गोदवाने की प्रथा भी प्रचलित है। यदि विवाह के अवसर पर वधु के शरीर पर पहले से गोदना नहीं होता है तो विवाह से पूर्व वधु को गोदना गोदवाया जाता है।



चित्र क्रमांक 3 विवाह से पहले गोदना

सेमर लकड़ी के माण्डो गढ़ाई के 15 दिन बाद विवाह के मुख्य रस्मे की जाती है। विवाह के मुख्य रस्मे करने के लिए व्यक्ति विशिष्ट का चुनाव किया जाता है विवाह के मुख्य रस्में विवाहित जोड़ा करता है जिससे जनजाति के लोग महलिया - महालीन कहते हैं यह व्यक्ति विशेष वर वधु के बड़े भैया-भाभी या बड़ी बहन -जीजा जी को बनाया जाता है इनके अनुपस्थिति में विवाह के मुख्य रस में मामा मामी करते हैं



चित्र क्रमांक 4 चूलमाटी



चित्र क्रमांक 5 देवतेला

उसके बाद विवाह के प्रथम दिन चुलमाटी, देवतेला, मान्डो परघाई का रस्म किया जाता है जिसमे सर्वप्रथम पुरुष वर्ग के 5-6 व्यक्ति परा मे मंद, छिन का मौर, नारियल, छेना आग, आगरबत्ती, हुम जग, चावल आटा, गुलाल लेकर देवस्थल जाते है वहां देवी देवताओं पर मंद तरप कर छेना आग में हुम जग देकर पूजा की जाती है व देवी देवताओं को निमंत्रण दे कर अच्छे से विवाह संपन्न होने की कामना किया जाता है। घर वापस आने के बाद घर परिवार के सदस्य (महिला पुरुष चुलमाटी के लिए जाते है जिसमें महिलाएं धरती माता की गोबर व चावल आटे के लोई (मेचि) व मंद, गुलाल छेना धूप से पूजा कर सांबर से खोद कर थोड़ा सा मिट्टी मड़वा के लिए लाते है इसके बाद महिला पुरुष मिलकर मांडो परघाने जाते है। जिसमें महुआ लकड़ी की पूजा कर घर लाकर सेमर लकड़ी से बने मान्डो के साथ गड़ा दिया जाता है, व वर/ वधु के लिए उसी महुआ लकड़ी का बैठने का आसन बनाया जाता है। फिर मान्डो लगाने के बाद मंडप को सजाया जाता है। मान्डो (मंडप) को सजाने के लिए चावल का उपयोग किया जाता है जिसे विभिन्न प्रकार के रंगों से रंगा जाता है और उसी रंगीन चावल से मान्डो को सुसज्जित किया जाता है। यह सब नियम कमार समाज में शाम के समय किया जाता है।



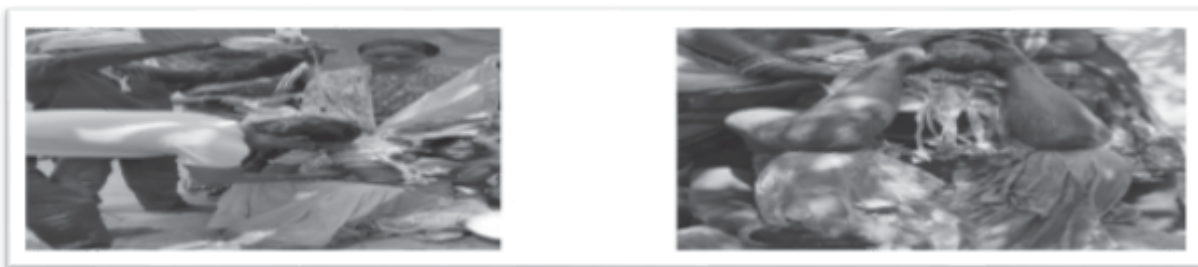
चित्र क्रमांक 6 मंडो

मंडप का कार्य पूर्ण हो जाने पर वर-वधु को चोर तेल चढ़ाया जाता है। यह नियम बंद कमरे में महलीया -महलीन के द्वारा किया जाता है। इसमे महलीया-महलीन दुल्हे को कमरे में ले जाते है और कच्चे हल्दी और तेल चढ़ाते है। इस समय वर-वधु का सफेद वस्त्र पहनाया जाता है व छिंद पत्ते का मौर बाधा जाता है। जिस कमरे में विवाह होते तक वर/वधु को रखा जाता है उसी कमरे में चोर तेल चढ़ाया जाता है। उस कमरे में चावल का रंगोली (चौधर पुरना) बनाई जाती है। कमरे के बीच में चावल रख कर मिट्टी का कलश रखा जाता है जिसकी 7 बार परिक्रमा किया जाता है हर एक परिक्रमा पूरी होने पर तेल हल्दी पहले कलश को फिर ऊपर से नीचे वर/वधु को चढ़ाया जाता है। विवाह होते तक वर/ वधु के कमरे में झाडू करना मना होता है। यह नियम होने के बाद वर/ वधु को कमरे से बाहर लाया जाता है फिर मंडो(मड़वा) पर ले जाया जाता है



चित्र क्रमांक 8 बांस की चटाई व चटाई के ऊपर महुआ की लकड़ी

है, जो तीर के सहारे ऊपर से नीचे की ओर बहता है। जब वह तेल हाथ तक पहुंचता है, तो उसे वर/वधु को पिलाया जाता है। जहाँ पहले बांस की चटाई बिछाई जाती है। चटाई के ऊपर महुआ की लकड़ी रखी जाती है। इसके बाद वर अथवा वधु द्वारा महुआ लकड़ी पर मुट्ठी भर चावल तीन बार छोड़ा जाता है और श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया जाता है। तत्पश्चात उन्हें उसी स्थान पर बैठाया जाता है। इसके उपरांत एक दोने (पत्ते से बना पात्र) में सगाई के वक्त दिया गया नारियल, चावल और खड़ी हल्दी रखकर वर/वधु के हाथ में पकड़ाया जाता है। फिर मड़वा के चारों ओर सात महिला एवं पुरुषों को खड़ा किया जाता है। इसके बाद एक विशेष व्यक्ति जिसे 'महेलिया' कहा जाता है, एक कुंवारी धागा (जो पहले कभी प्रयोग में न लाया गया हो) लेकर मड़वा की सात बार परिक्रमा करता है। परिक्रमा करते हुए वह उस धागे को चारों ओर खड़े महिला-पुरुषों को पकड़ाता जाता है। इस प्रक्रिया में यह विशेष ध्यान रखा जाता है कि धागा न तो छोटा पड़े और न ही टूटे। यदि कुंवारी धागा छोटा पड़ जाए अथवा टूट जाए, तो इसे अपशुभ (अशुभ संकेत) के रूप में माना जाता है। देवी खदेवताओं से क्षमा याचना करने के बाद दूसरा कुंवारी धागा मंगाया जाना होता है। यह धागा विवाह मंडप, जिसे मड़वा कहा जाता है, में स्थापित किया जाता है। साथ ही छिंद का मौर भी बांधा जाता है। इसके पश्चात अन्य कुंवारी धागे को लेकर सात बार भंवर घुमाई जाती है और फिर उसे सात व्यक्तियों द्वारा पकड़ा जाता है। इस प्रक्रिया में सात आम के पत्तों को मोड़कर बांधा जाता है और अंततः वही कुंवारी धागा वर या वधु को बांधा जाता है। इस विशेष रस्म को 'कान-कान परना' कहा जाता है। वर-वधु के साथ-साथ महलिया और महलीन को भी कुंवारी धागा में तेल हल्दी लगा कर बांधा जाता है। इसके बाद तेल-हल्दी चढ़ाने की रस्म की जाती है। इसमें वर/वधु के ऊपर हाथ रखा जाता है, और हाथ के ऊपर तीर रखा जाता है। फिर महलिया उस तीर पर फल्ली का तेल डालता



चित्र क्रमांक 9 तेल हल्दी की रस्म

तत्पश्चात वर/वधु को तेल-हल्दी चढ़ाई जाती है। इस रस्म में परा के ऊपर किसी बर्तन में तेलखहल्दी रखी जाती है फिर सबसे पहले मड़वा (मंडो) को तीन बार तेल-हल्दी चढ़ाई जाती है, और फिर वधु/वर को पैर से सिर तक तीन बार तेल-हल्दी लगाई जाती है। अन्तः इस रस्म से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि तेल चढ़ाई रस्म का मकसद न केवल वर व कन्या को तेल के द्वारा उनके त्वचा को सुंदर बनाना है अपितु परिवार के सदस्यों का आशीर्वाद भी प्रदान करता है। इस रस्म से परिवार के सदस्यों एवं वर/ कन्या के मध्य न केवल मधुर संबंध की स्थापना करना है अपितु परिवार के सदस्यों के बीच आपसी सहमती को प्रदर्शित करता है। तेल-हल्दी की रस्म के दौरान 'कमारी तेल गीत' गाया जाता है, जो इस प्रकार है-

।।कमार तेल गीत।।

दुलही नोनी क तेल चघो बड़ा मया लागो।
मायी हाथे तेल चघो, मायी हाथे तेल चघो बड़ा मया लागो।
बाबा हाथे तेल चघो, बाबा हाथे तेल चघो बड़ा मया लागो।
काका हाथे तेल चघो, काका हाथे तेल चघो बड़ा मया लागो।
काकी हाथे तेल चघो, काकी हाथे तेल चघो बड़ा मया लागो।

कमार तेल गीत (हिन्दी अनुवाद)

दुल्हन को तेल को तेल चढ़ा, दुल्हन को तेल चढ़ा बहुत अच्छा लगा।
 माँ के हाथों से तेल चढ़ा, माँ के हाथों से तेल चढ़ा बहुत अच्छा लगा।
 पिता के हाथों से तेल चढ़ा, पिता के हाथों से तेल चढ़ा बहुत अच्छा लगा।
 चाचा के हाथों से तेल चढ़ा, चाचा के हाथों से तेल चढ़ा बहुत अच्छा लगा।
 चाची के हाथों से तेल चढ़ा, चाची के हाथों से तेल चढ़ा बहुत अच्छा लगा।

यह रस्म सर्वप्रथम वर/वधु के माता-पिता द्वारा की जाती है, उसके बाद ही परिवार के अन्य सदस्य तेल हल्दी की रस्म करते हैं। यह समस्त रस्में कमार जनजाति में संध्याकाल (शाम के समय) संपन्न की जाती हैं। सभी रस्में पूर्ण होने के बाद भड़ौनी (गीतभड़ौनी गीत छत्तीसगढ़ का पारंपरिक विवाह गीत है, जिसे स्त्रियाँ- पुरुष विवाह अवसरों पर गाते हैं। इसमें हास-परिहास, नोंक-झोंक और मजाक के माध्यम से विवाह समारोह को आनंदमय बनाया जाता है।) के साथ - साथ 'बिहार नाच' प्रारंभ होता है। इसके उपरांत महिला और महिला वर/वधु को उसके स्थान से उठाते हैं, फिर महिला मिट्टी के कलश (करसा) को अपने दोनों हाथों से पकड़ता है और महिला वर / वधु के उंगली को और वर / वधु की बहन परा को पकड़ कर मंडो की परिक्रमा के वर / वधु को कमरे के भीतर ले जाए है इसके पश्चात वहाँ उपस्थित सगे-संबंधी (महामन), स्त्री-पुरुष पारंपरिक पेय 'मंद' का सेवन कर देर रात्रि तक विवाह नृत्य (बिहाव नाचा) में सम्मिलित होते हैं। अगली सुबह परंपरागत रूप से कुछ समय तक बिहाव नाचा होने के पश्चात वर व वधु का तेल-हल्दी उतारने की रस्म सम्पन्न की जाती है। तेल-हल्दी उतारने की रस्म के दौरान गाया जाने वाला 'कमारी गीत' इस प्रकार है:

शादी में तेल उतारने का गीत

कमार - गीत

उत्तरा - उत्तरा तेल उता याथी- बाबा चो हाथे कि तेलीन घर चो तेल यायी, मरार घर चो मउड़
 से-री लोयो रीला- रोला - 2

कि उत्तरा - उत्तरा तेल हरदी-कका काकी चो हाथे कचो घर लेल काकी, कचो हरदी चो मउड़?-2

तेलीन घरचो तेल यायी, मरार घर चो मउड़-2

कमार घर चो पड़ा नोना, बनिया घर चो हवद

रीरी लोयो रीला-रीला - 2

कि उत्तरा 2 उत्तरा नोना, भाऊद-बुहुद चो हाथे-2 कि कचो घर भउड़ दादा, कचो घर चो हवद ?

मरार घर चो भउड़ दादा, बनिया घर चो हवद

से री लोयो रीला-रोला-2

कि उत्तरा-2 उलरा तेल हवद चाची - बाबा चो हाथे कचो घर चो करसा नोना, कचो घर चो मउड़ ?

कुम्हार घर चो करना नोना, मरार घर चो मउड़

तुम्हय लेलय उलस्य नोना - 2

से-री लोयो रीला नोना

हिन्दी अनुवाद

उतरो उतरो तेल उतरो माता पिता के हाथ मे, कि तेली घर के तेल

माँ, मरार घर के सेहरा री री लोयो रीला रीला2।

कि उतरो उतरो तेल हल्दी चाचा चाची के हाथों किसके घर तेल

और किसके घर के सेहरा?

कि तेली घर के तेल और मरार घर के सेहरा, कमार घर का परा और

बनिया घर हल्दी री री लोयो रीला रीला -2 ।

कि उतरो उतरा बेटा भैया भाभी के हाथों कि किसके घर का

सेहरा दादा, किसके घर का हल्दी?

मरार घर का सेहरा दादा, बनिया घर का घर का हल्दी री री लोयो

रीला रीला-2।

कि उतरो उतरो तेल हल्दी माता - पिता के हाथों, किसके घर का

करसा बाबू, किसके घर का सेहरा ?
कुम्हार घर का करसा बाबू, मरार घर का सेहरा, तम्हय तेल उतरय बाबू-2
, री री लोयो रीला रीला -2।



चित्र क्रमांक 10 परी की रस्मे

उसके बाद वर/वधू को परी में बैठाकर एक कपड़े से ढक दिया जाता है। फिर महलीन अपने माथे पर कुमकुम लगाकर, उसी कुमकुम से सात बार अपने माथे को वर/वधू के माथे से स्पर्श करती है। इसके पश्चात वर/वधू को परी में बैठाकर महिलाएँ और पुरुष मिलकर उन्हें झुलाते हैं, और फिर स्नान के लिए ले जाया जाता है। तथा वर / वधू को स्नान करते समय सिर के ऊपर परी को रखा जाता है व उसमें पानी डाला जाता है पानी परी से हो कर वर/ वधू के सिर में गिरता है उसके बाद वह स्नान करते हैं वर/वधू के स्नान के बाद उन्हें विवाह के लिए तैयार किया जाता है वर/वधू के तैयार हो जाने पर परिवार के सदस्य उनके पैर दूध और जल से धोते हैं। तत्पश्चात वर को देवस्थल ले जाया जाता है। विवाह के दिन वर को देवस्थल ले जाकर पूजा कराई जाती है। इस दौरान देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए चावल छिड़का जाता है। व वर अपने पुरखों का आशीर्वाद मानकर देव-स्थल की छड़ी अपने साथ रखता है।



चित्र क्रमांक 11 देवस्थल की छड़ी

पूजा उपरांत, वर की माता एवं चाचीयां उसे कमरे से बाहर लाती हैं और परंपरा अनुसार माउर सौंपती (वर को जलते हुए मिट्टी के कलश और दीपक से आंच दी जाती है) इसके बाद वर घर से बाहर निकलता है और घर के मुख्य द्वार पर चावल छिड़कता है। फिर वह 'गौर गुड़ी' (गौरी पूजा स्थल) में भी चावल छिड़कता है। अंत में, वर अपने यात्रा के साधन (जैसे-गाड़ी या अन्य वाहन) में चढ़ने से पहले उसमें भी चावल छिड़कता है और फिर उसमें बैठकर विवाह स्थल के लिए प्रस्थान करता है। वधू के गृहग्राम पहुंचने के पश्चात, वर एवं वर पक्ष का पारंपरिक रीति-रिवाजों के अनुसार बड़े धूमधाम से स्वागत किया जाता है। स्वागत के उपरांत, उन्हें भोजन कराया जाता है। तत्पश्चात, वधू पक्ष का एक सदस्य, उत्सव की उमंग और प्रेम के प्रतीक स्वरूप, वर को अपनी गोद में उठाकर घर के मुख्य द्वार से मंडवे (विवाह मंडप) तक ले जाता है। मंडवे के चारों ओर एक बार घूमने के बाद वह वर को पुनः मुख्य द्वार पर ले आता है। इसके पश्चात वधू की छोटी बहनें हर्षोल्लास के साथ द्वार पर आती हैं और पारंपरिक विधि से वर का स्वागत करती हैं। इस स्वागत में वे वर को दातुन कराती हैं, पान खिलाती हैं, पानी पिलाती हैं, माथे पर टीका करती हैं और फूलों की माला पहनाती हैं। इसके उपरांत, एक मनोरंजक शरारत के रूप में वे वर के हाथ से 'धूकना' (जो कि हवा करने वाला बाँस का पारंपरिक पंखा होता है) छीन लेती हैं। यह रस्म हँसी-ठिठोली और स्नेह का प्रतीक होती है। इस दिलचस्प और प्रेमभावना से भरे स्वागत के पश्चात, वर वधू की बहनों को 'नेग' (उपहार) के रूप में रुपये-पैसे भेंट करता है, विवाह की अगली रस्म में, वधू पक्ष की महिलाएँ एक कलश (करसा) में दीप प्रज्वलित कर द्वार पर आती हैं। वे वर के चारों ओर परिक्रमा करती हैं और 'परक्षन' की रस्म निभाती हैं- इसमें वे दीपक की लौ से अपने हाथों को गरम कर वर के मस्तक पर टिकाती हैं, जिससे वर को शुभाशीर्वाद प्रदान किया जाता है।

जब वधु पक्ष की सभी महिलाएं यह रस्म पूर्ण कर लेती हैं, तब वधु पक्ष के पुरुष वर्ग के लोग वर के पैर के पास बलि चढ़ाते हैं, जिसे स्थानीय परंपरा में 'धुरपाइए' कहा जाता है। उसके बाद वर को मण्डप (मंडो) में लाया जाता है, जहाँ विवाह की आगे की विधियाँ विधिपूर्वक प्रारंभ होती हैं। मड़वे (मण्डप) में पहले वर को विधिपूर्वक बैठाया जाता है। तत्पश्चात समाधान द्वारा पूजा सम्पन्न होने के बाद लगन जोड़ा वधु के कक्ष में पहुँचाया जाता है। वधु के पूर्ण रूप से तैयार हो जाने पर वर पक्ष से उनके बड़े भाई अथवा मामा, वधु को मौर प्रदान करने हेतु आते हैं। इस अवसर पर वधु की बहनें हास-परिहास करते हुए उन्हें गुलाल एवं चावल का आटा लगाती हैं। इसके उपरांत वर के मामा अथवा बड़े भाई, वधु को नेघ अर्पित कर लौट जाते हैं।



चित्र क्रमांक 12 कमार दुल्हन

इसके पश्चात वधु को उसकी माता और चाची साथ मिलकर मड़वे तक लाती हैं। वधु को मड़वे में लाने के पश्चात वर और वधु को एक चादर के आमने-सामने खड़ा कराया जाता है वह वर वधु के हाथ में सात खर सात दाने चावल के दिए जाते हैं वह पर्दा हटाते ही वर और वधु एक दूसरे के ऊपर चावल को छिड़कते हैं व दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ते हैं और इस चादर से दोनों को ढक दिया जाता है ढकने के पश्चात दोनों मड़वा की परिक्रमा करते हैं इसके पश्चात वधु के माता-पिता दोनों मिलकर वर और वधु के पाँव धोते हैं फिर वधु का भाई 'टिकावन' देता है, फिर परिवार के अन्य सदस्य - जैसे चाचा-चाची, बुआ-मामा, मामा-मामी, और अन्य नाते-रिश्तेदार खर सभी वर और वधु को क्रमशः टिकावन देते हैं। इन रस्मों के उपरांत विवाह की प्रमुख विधि - फेरे (भाँवर या भावर पराई) - प्रारंभ होती है। कमार जनजाति की परंपरा के अनुसार, वधु पक्ष में वर व वधु को 3 भाँवर (फेरे) करवाए जाते हैं, जबकि वर पक्ष में, यानी वर के गृह ग्राम में 4 भाँवर पूरे करवाए जाते हैं।

कमार गीत

(लगन के समय गाये जाने वाला)

एक भोंवार पड़ियो, एक भोंवार पड़ियो हो नोना चो रेगना, हो नोना चो रेगना।
दुई भोंवार पड़ियो, दुई भोंवार पड़ियो हो नोना चो रेगना, हो नोना चो रेगना।
तीन भोंवार पड़ियो, तीन भोंवार पड़ियो हो नोना चो रेगना, हो नोना चो रेगना।
चार भोंवार पड़ियो, चार भोंवार पड़ियो हो नोना चो रेगना, हो नोना चो रेगना।
पांच भोंवार पड़ियो, पांच भोंवार पड़ियो हो नोना चो रेगना, हो नोना चो रेगना।
छोब भोंवार पड़ियो, छोब भोंवार पड़ियो हो नोना चो रेगना, हो नोना चो रेगना।
सात भोंवार पड़ियो, सात भोंवार पड़ियो हो नोना चो रेगना, हो नोना चो रेगना।

कमार गीत (हिन्दी अनुवाद)

एक फेरा पड़ा है, एक फेरा पड़ा है जी दुल्हे का चलना, हां दुल्हे का चलना।
दो फेरा पड़ा है, दो फेरा पड़ा है जी दुल्हे का चलना, हां दुल्हे का चलना।
तीन फेरा पड़ा है, तीन फेरा पड़ा है जी दुल्हे का चलना, हां दुल्हे का चलना।
चार फेरा पड़ा है, चार फेरा पड़ा है जी दुल्हे का चलना, हां दुल्हे का चलना।
पांच फेरा पड़ा है, पांच फेरा पड़ा है जी दुल्हे का चलना, हां दुल्हे का चलना।
छः फेरा पड़ा है, छः फेरा पड़ा है जी दुल्हे का चलना, हां दुल्हे का चलना।
सात फेरा पड़ा है, सात फेरा पड़ा है जी दुल्हे का चलना, हां दुल्हे का चलना।

वधु पक्ष में विवाह सम्पन्न होने के पश्चात रात्रिकालीन बारात को पारंपरिक विधि से बिदा किया जाता है। वर पक्ष के ग्राम पहुँचने पर, रीति के अनुसार उसी रात्रि नवविवाहित दंपति को किसी अन्य घर में ठहराया जाता है। अगली प्रातः, बारात परघाने वाले घर के सदस्य, मंगल गीत गाते हुए, दूल्हा-दुल्हन

को वर के गृह प्रवेश हेतु लेकर आते हैं। इस अवसर पर महालीन (वर परिवार की विशेष महिला सदस्य) नवविवाहितों की उंगलि पकड़कर उन्हें घर के मुख्य द्वार तक लाती है।



चित्र क्रमांक 13 बारात परघोनी

वर के घर जाते समय रास्ते में वर की बुआ या बहन “डहार छेका” (रास्ता रोकना) की रस्म करती हैं और नेग (उपहार/रकम) मांगती हैं। वर पक्ष द्वारा कुछ मूल्य चुकाने के बाद वह रास्ता छोड़ती हैं। इसके पश्चात घर के मुख्य द्वार पर सफेद कपड़ा टांगकर ढक दिया जाता है। द्वार के एक ओर वर और वधु खड़े रहते हैं, जबकि दूसरी ओर घर के सियान (बुजुर्ग) पूजा-अर्चना करते हैं। पूजा पूर्ण होने के पश्चात वर और वधु को घर के भीतर प्रवेश कराया जाता है।



चित्र क्रमांक 14 डहारछेका



चित्र क्रमांक 15 गृहप्रवेश

गृह प्रवेश के बाद वर और वधु को पुनः हल्दी लगे वस्त्र पहनाएव उनके मौर बांधे जाते हैं और निगह नारियल पकड़ाया जाता है जो वह तेल हरदी के रस्म में पकड़ते हैं। इसके पश्चात महलिया मड़वा (मंडप) में चावल, आटा और हल्दी से रंगोली (चौर पुरना) बनाता है। फिर वर-वधु को बाजे-गाजे के साथ मड़वा में लाया जाता है, जहां विवाह की हल्दी-तेल की रस्में पुनः संपन्न की जाती हैं। वर-वधु को साथ में घर के महिला पुरुष सदस्य के गोद में बैठाया जाता है और तीर में तेल डालकर उसे चढ़ाया जाता है। विवाह के बाद की तेल हल्दी रस्म को ‘चिकलही’ कहा जाता है तेल-हल्दी की रस्म पूरी होने के बाद पुनः बिहाव नाचा (विवाह नृत्य) किया जाता है। इसके बाद वर और वधु को स्नान कराने के लिए तरिया (तालाब) ले जाया जाता है। तालाब में स्नान के पश्चात, घर वापस लौटते समय कांदा निकालने की रस्म होती है। इसके उपरांत मिरगी मारने की रस्म संपन्न की जाती है। इस रस्म में, वर वधु के कंधे पर तीर-धनुष रखकर, स्वयं पीछे चलता है। उनके सामने कटू जैसी सब्जियाँ रखी जाती हैं, जिन्हें किसी जानवर का नाम देकर प्रतीक स्वरूप शिकार माना जाता है, और उस पर तीर चलाया जाता है। अंत में, नगली (लकड़ी की संरचना) पर मधुमक्खी का छत्ता प्रतीकात्मक रूप से बनाकर रखा जाता है, और उस पर भी तीर चलाया जाता है।



चित्र क्रमांक 16 चिखलही



चित्र क्रमांक 17 मीरगी

आज के ही दिन वधु पक्ष को चोहतीया के लिए आमंत्रित किया जाता है, जिसमें लगभग 50 से 100 या उससे अधिक लोग सम्मिलित होते हैं। जब वधु पक्ष के लोग वर के गाँव पहुँचते हैं, तो वर पक्ष के लोग उनका स्वागत गुलाल का टीका लगाकर तथा दूबी (दूब घास) को कान में खोचकर सम्मानपूर्वक करते हैं। इसके बाद वधु पक्ष को, वर पक्ष की क्षमता अनुसार, भोजन कराया जाता है। जिनके पास अधिक सामर्थ्य होती है, वे मुर्गा-मटन जैसे विशेष व्यंजन

परोसते हैं; जबकि जिनकी क्षमता सीमित होती है, वे सादा भोजन परोसते हैं। भोजन ग्रहण करने के उपरांत, वधु पक्ष वधु से भेंट करके अपने गाँव लौट जाता है। इसके बाद, वर के घर में टीकावन की रस्म होती है, जिसमें वर-वधु विवाह के शेष चार फेरे पूरे करते हैं, वर वधु की मांग बढ़ाता है तथा वर पक्ष के लोग टीकावान देते हैं। टीकावान के बाद कन-कन उतारने की रस्म होती है। इसमें वर, वधु तथा महलिया/महलीन मिलकर कुंवारी धागा खोलते हैं और उसे विवाह के मिट्टी के कलश (करसा) पर डालते हैं। संपन्न व्यक्ति अपने समाज एवं ग्रामवासियों के लिए प्रीतिभोज का आयोजन करता है। इस प्रथा में आधुनिक परिस्थितियों एवं प्रभावों की स्पष्ट झलक मिलती है। इस क्रिया के साथ विवाह की मुख्य रस्में पूर्ण मानी जाती हैं। विवाह के 5 से 10 दिनों बाद, पीवर धुलवाने के लिए वर और वधु को वधु पक्ष में बुलाया जाता है। वहाँ, उन्हें वधु पक्ष के करीबी रिश्तेदारों के घर बैठाने ले जाया जाता है। अंत में, दामाद पेज की रस्म होती है, जिसमें वधु पक्ष अपने करीबी रिश्तेदारों को आमंत्रित करता है और अपनी क्षमता अनुसार मंद (पारंपरिक पेय) तथा मुर्गा-मटन का भोज करता है। इस आयोजन के साथ विवाह की सभी रस्में पूर्ण मानी जाती हैं।

कमार जनजाति में प्रचलित विवाह के प्रकार -

कमार जनजाति की सामाजिक व्यवस्था में विवाह केवल एक व्यक्तिगत संबंध नहीं, बल्कि एक सामुदायिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है। इस जनजाति में विवाह विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों और परंपराओं के आधार पर संपन्न होते हैं। जिसका चित्रण इस प्रकार से किया गया है -

1. दूध लौटानी विवाह -

दूध लौटानी विवाह से तात्पर्य खरकमार जनजाति में दूध लौटानी विवाह से तात्पर्य रक्त संबंधी रिश्तेदारों के बीच होने वाले विवाह प्रक्रिया से है। इस विवाह को परिवारों के बीच पुराने संबंधों को बनाए रखने का माध्यम माना जाता है। यह विवाह पूरी तरह से सामाजिक रूप से स्वीकृत होता है और समुदाय द्वारा सम्मानित भी किया जाता है। इस परंपरा से रक्त संबंधों के भीतर ही विवाह संबंध बनाए जाते हैं, जिससे पारिवारिक और सामाजिक जुड़ाव बना रहता है। यह विवाह परिवारों की सहमति से होता है। किसी तरह का दंड, विवाद या विशेष सामाजिक बैठक की आवश्यकता नहीं होती। इसे कमार समाज में आदर्श विवाह की श्रेणी में रखा गया है। दूध लौटानी विवाह कमार जनजाति में प्रचलित एक पारंपरिक और सामाजिक रूप से मान्य विवाह प्रणाली है। यह विवाह मामा और फूफू के पुत्र-पुत्री के बीच संपन्न होता है

2. माहला पूछनी विवाह -

माहला पूछनी विवाह से तात्पर्य उस विवाह प्रथा से है, जिसमें विवाह तय होने के बाद वर पक्ष (लड़के वाले) वधु पक्ष (लड़की वाले) के घर जाकर प्याहला अर्थात् सगाई की रस्म करते हैं। इस प्रथा के अंतर्गत वर पक्ष के लोग वधु के घर जाते हैं। वहाँ पारंपरिक रीति-रिवाज के अनुसार सगाई (माहला) की जाती है। सगाई पूरी होने के बाद ही वधु को विदा कर वर पक्ष अपने घर ले आता है।

अर्थात् माहला पूछनी विवाह वह विवाह है जिसमें सगाई की रस्म (माहला) पूरी करके ही वधु को वर पक्ष अपने साथ ले जाने की परंपरा निभाता है। क्या आप चाहेंगे कि मैं इसे और विस्तार से कदम-दर-कदम प्रक्रिया के रूप में लिख दूँ? यह विवाह प्रक्रिया सगाई आधारित विवाह होती है। इसमें: वर पक्ष के लोग वधु पक्ष के घर जाते हैं और सगाई (माहला पूछनी) करते हैं। सगाई के बाद कुछ दिनों के लिए लड़की को वर पक्ष के साथ भेज दिया जाता है ताकि दोनों एक-दूसरे को समझ सकें। यदि इस अवधि में वर-वधु एक-दूसरे को पसंद करने लगते हैं तथा उनके मध्य शारीरिक संबंध स्थापित हो जाता है, तो वधु पक्ष को सूचित कर विवाह संपन्न कर दिया जाता है। यदि आपसी सामंजस्य न बने, तो परिवार के बड़े समझाने का प्रयास करते हैं। फिर भी सहमति न बनने पर लड़के द्वारा 'दांड' (दंड/राशि) देकर संबंध समाप्त कर दिया जाता है और विवाह नहीं होता।

3. पुआऊ / चोरुल विवाह की प्रक्रिया-

“चोरुल विवाह” से तात्पर्य उस विवाह प्रथा से है जिसमें वर (लड़का) और वधु (लड़की) समाज और परिवार की स्वीकृति या पारंपरिक रीति-रिवाजों के बिना ही आपसी सहमति से विवाह कर लेते हैं। इस विवाह में न तो परिवारजन की सहमति आवश्यक होती है और न ही कोई बड़ी धार्मिक या सामाजिक रस्म। वर और वधु प्रायः चुपचाप (चोरी से) विवाह करते हैं, इसलिए इसे “चोरुल विवाह” कहा जाता है। कई बार यह प्रथा तब अपनाई जाती है जब दोनों परिवार विवाह के लिए तैयार नहीं होते। जाति, गोत्र, आर्थिक स्थिति या अन्य सामाजिक कारणों से विवाह में बाधा आती है। बाद में परिवार और समाज इस संबंध को मान्यता दे भी देता है या कभी-कभी अस्वीकार भी करता है। जब कोई लड़का और लड़की आपसी सहमति से एक-दूसरे के प्रेम में होते हैं और समाज/परिवार की अनुमति के बिना घर से भागकर विवाह कर लेते हैं, तो इस विवाह को पुआऊ विवाह कहा जाता है। जब यह जोड़ा घर लौटता है, तब कमार समाज में एक सामाजिक बैठक आयोजित की जाती है जिसमें दोनों परिवारों और समुदाय के वरिष्ठ सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य होती है। यदि लड़का और लड़की विभिन्न गोत्र के होते हैं और दोनों कमार जनजाति से संबंध रखते हैं, तो समाज उन्हें स्वीकार कर उनका विधिवत विवाह संपन्न कराता है। यदि दोनों समान गोत्र (सगोत्रीय) के होते हैं, तो भी समाज उन्हें पूरी तरह नकारता नहीं है। ऐसी स्थिति में समाज 'दांड' (दंड या जुर्माना) लेकर उन्हें समाज में स्वीकृति दे देता है। कमार जनजाति के लोग स्वयं को गोंड जनजाति की उप-जनजाति मानते हैं। इसीलिए यदि कोई कमार युवक या युवती गोंड जनजाति के युवक/युवती से विवाह करता है, तो उसे भी समाज में स्वीकार कर लिया जाता है। यदि कमार जनजाति का कोई व्यक्ति किसी अन्य जनजाति (Non-Kamar / Non-Gond) में विवाह करता है, तो उस व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। उसे सामाजिक मान्यता नहीं दी जाती, और वह समुदायिक कार्यक्रमों व निर्णयों से बाहर कर दिया जाता है।

4. लमसेना विवाह -

लमसेना विवाह से तात्पर्य उस विवाह पद्धति से है, जिसमें विवाह सम्पन्न होने के बाद वर (लड़का) अपनी पत्नी यानी वधु (लड़की) के गृह ग्राम या परिवार में जाकर निवास करता है। सामान्यतः विवाह के बाद वधु अपने पति के घर जाती है, लेकिन लमसेना विवाह की विशेषता यह है कि विवाह

सम्पन्न होने के बाद वर (दूल्हा) वधु (दुल्हन) के गृह ग्राम में ही निवास करता है। इसका कारण कई बार यह होता है कि वधु के परिवार में पुत्री होती है पर पुत्र नहीं होता, इसलिए वंश चलाने और घर-परिवार संभालने के लिए वर को ही बुलाकर रखा जाता है। इस विवाह में विवाह से पहले ही दोनों पक्षों में तय हो जाता है कि वर विवाह के पश्चात वधु के के गृह में सदैव के लिए निवास करेगा। जिसके लिए वधु के माता पिता वर के नाम अपनी कुछ सम्पत्ति करते हैं

5. बिरंडी / चूड़ी पनाई विवाह-

एक सामाजिक प्रथा है जिसमें कोई पुरुष किसी विधवा महिला से विवाह करता है। यह विवाह विधि सामान्य रीति-रिवाजों से थोड़ी भिन्न होती है। इसमें वर पक्ष (पुरुष) वधू (विधवा महिला) के घर जाकर उसे प्रतीक रूप से चुड़ी पहनाता है, जो कि विवाह की स्वीकृति और संबंध की शुरुआत को दर्शाता है। इसके पश्चात वह महिला को अपने साथ अपने घर ले आता है और उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है।

6. पैठू विवाह -

“पैठू विवाह” से तात्पर्य उस विवाह पद्धति से है जिसमें लड़की स्वयं या अपनी इच्छा से लड़के के घर जाकर जबरदस्ती रहना प्रारंभ कर देती है। यह कदम तब उठाया जाता है जब लड़की को लगता है कि युवक से उसका संबंध बनना चाहिए, या फिर वह उसके साथ प्रेम संबंध में हो और सामाजिक या पारिवारिक रुकावटें आ रही हों। युवती युवक के घर में बिना पूर्व सूचना के रहना शुरू कर देती है। यह उसके सामाजिक अधिकार और संबंध की इच्छा को दर्शाता है। यदि युवक और उसका परिवार युवती को घर में रहने की अनुमति देते हैं और विरोध नहीं करते, तो यह माना जाता है कि उन्होंने उस संबंध को स्वीकार कर लिया है। धीरे-धीरे यह स्थिति विवाह के रूप में समाज में स्थापित हो जाती है। इस विवाह में कोई विशेष रीति-रिवाज, लगन या सामाजिक आयोजन नहीं होता। यह एक सहजीवी सामाजिक व्यवस्था के रूप में मान्यता प्राप्त करता है।

निष्कर्ष -

कमार जनजाति के विवाह संस्कार अत्यंत समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से गहरे जुड़े हुए हैं, जिनमें पारंपरिक मान्यताओं, सामाजिक सहभागिता और सामूहिक उत्सव की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। विवाह की शुरुआत तेल-हल्दी जैसे शुद्धिकरण व सौंदर्य-वर्धन करने वाले अनुष्ठानों से होती है, जो नवदंपति को पवित्र और शुभ बनाते हैं। इसके बाद होने वाले नृत्य-गीत, स्नान, कंदा निकालना, मिरगी मारना और मधुमक्खी छत्ता फोड़ना जैसी रस्में न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि इनमें शुभकामना, बुराई से रक्षा और नई जिम्मेदारियों को निभाने के प्रतीक छिपे होते हैं। चोहतीया, टिकवा, कनकन उतारना, पीवर धुलवाना और दामाद पेज जैसे सामूहिक भोज व आतिथ्य की रस्में रिश्तों को सुदृढ़ करती हैं और दोनों पक्षों के बीच आपसी प्रेम व सहयोग को बढ़ाती हैं। गोदना गोदवाने की परंपरा स्त्रियों की सांस्कृतिक पहचान और जीवनभर साथ रहने वाले सामाजिक चिह्न का प्रतीक है। समग्र रूप से, ये सभी परंपराएँ न केवल एक वैवाहिक बंधन को मजबूत करती हैं, बल्कि पूरी बिरादरी को जोड़ने, सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने और सामूहिक आनंद को साझा करने का अवसर भी प्रदान करती हैं। व कही - कही पर आधुनिकरण का प्रभाव भी देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रन्थ शुचिख

- वर्मा, राज कुमार, प्रेमी, जितेन्द्र कुमार, छत्तीसगढ़ के कमार जनजाति में गोदना कला, शोध सरिता, अवस.-07, पेनम-25, page no.- 62-66
- प्रेमी, जितेन्द्र कुमार, सोती प्रवीण कुमार At all विशेष पिछड़ी (अदिम) जनजाति कमार: एक नृजातिवृत्तांततात्मक परिदृश्य Research J- Humanities and social sciences- 4(1): January - Meurich, 2013. 179-184
- कुमार गजेन्द्र, कमार जनजाति के विविध संस्कार, International Journal of Advances in social sciences, vol- 12, Issue-2 2024
- मीना, हरिचरण, भारतीय जनजाति समुदाय की वैवाहिक परम्पराओं का समाजशास्त्री अध्ययन, International Journal of Education and science Research Review, vol-4, Issue-3 May-June 2017
- Om Prakash, कोल जनजाति में विवाह संस्कार, International- Journal of multidisciplinary, vol-&6, No-&12, Dec-2021,
- अंधारे, अंकिता, मेहता, सुनील कुमार at all , मुरिया जनजाति में विवाह संस्कार का समाज शास्त्रीय विश्लेषण (बस्तर जिले के लोहाण्डीगुड़ा के विशेष संदर्भ में), shodh samagam, year-2020, page no. 543-551
- मौर्य, खोमेश, तिकी, सुकृति, बस्तर जिले मुरिया जनजाति में जीवन संस्कार का अध्ययन social research foundation, year-2023, vol,-vii, issue - X
- <https://share.google/zm2GXkmVzTjnx3lr0>
- महतो सोमा ,मुंडा जनजाति का विवाह संस्कार: एक अध्ययन, <http://www.ijirmps.org> , vol.13, issue-3 may- june2025
- साहू, हरीश कुमार, मंडावी, वेदवती, बैगा जनजाति के विविध संस्कार International Journal of Advances in social sciences vol.-6,issue -1 year - 2018
- नुरुटी,बन्सो,छत्तीसगढ़ की जनजातीय संस्कृति माड़िया जनजाति के विशेष संदर्भ में International Journal of Advances in social sciences, vol- 7, Issue-2 2019
- महतो, सोमा, मुंडा जनजाति का विवाह संस्कार: एक अध्ययन International journal innovative research in engineering & multidisciplinary physical science year 2025 vol-&13, issue-3
- <https://www.chhattisgarhjanjati.com/2023/06/kamaar-tribes-in-hindi.html?m=1>
- <https://share.google/WagjAoLYL2eeELcPF>
- <https://share.google/aySwSDvWUqwHDfjZJ>

स्मृति और साहित्येतिहास: गोपालराम गहमरी के संस्मरणों में भारतेन्दु युग

डॉ० प्रभात शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रायः कृतियों, प्रवृत्तियों और घटनाओं के क्रमबद्ध विवरण के रूप में लिखा जाता रहा है। इस पद्धति में साहित्यिक विकास की रूपरेखा तो स्पष्ट हो जाती है, परन्तु उसके भीतर स्पष्टित होता जीवन का संघर्ष, रचनाकारों की रोजमर्रा की कशमकश और तत्कालीन सामाजिक चेतना अक्सर दृष्टि से ओझल रह जाती है। साहित्येतिहास का यह खालीपन वहीं भरा जाता है, जहाँ स्मृतियाँ इतिहास से संवाद करती हैं। गोपालराम गहमरी के संस्मरण इसी संवाद के दुर्लभ और प्रामाणिक दस्तावेज हैं।

गोपालराम गहमरी हिन्दी के उन लेखकों में से हैं जिनका महत्व किसी एक विधा तक सीमित नहीं है। वे पत्रकार, कथाकार, नाटककार, संस्मरणकार और आलोचक इन सभी रूपों में सक्रिय भूमिका निभाते दिखाई देते हैं। उनका जीवन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों में फैला हुआ है, यह वह समय था जब हिन्दी नवजागरण अपने संक्रमणकाल से गुजर रहा था। गहमरी की रचनाओं में भारतेन्दु युग कोई अमूर्त समय नहीं है। वह जिया और भोगा गया समय है, देखा, सुना और अनुभवगम्य समय। यही कारण है कि उनके संस्मरण न तो केवल आत्मकथात्मक हैं और न ही साधारण व्यक्तिचित्र अपितु वे उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उभर रही हिन्दी समाज की चेतना का एक ऐसा सूक्ष्म इतिहास प्रस्तुत करते हैं, जिसमें साहित्य, भाषा, कला, प्रशासन और रंगमंच एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। विशेष रूप से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और प्रतापनारायण मिश्र पर केन्द्रित उनके संस्मरण यह स्पष्ट करते हैं कि हिन्दी नवजागरण केवल वैचारिक या साहित्यिक आंदोलन भर नहीं था, बल्कि वह सामाजिक और आर्थिक यथार्थ से भी बहुत गहरे जुड़ा हुआ था। इन संस्मरणों में गहमरी जी एक सजग पत्रकार और संवेदनशील साहित्यकार के रूप में उभरते हैं। उनका योगदान यह है कि उन्होंने भारतेन्दु युग को 'किताबों' से बाहर निकालकर 'जीते-जागते' समाज के बीच खड़ा किया है। उनके संस्मरण 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध की पत्रकारिता, रंगमंच और भाषाई संघर्ष का 'आंखों देखा हाल' प्रस्तुत करते हैं।

गहमरी जी के संस्मरण उस दौर की सामाजिक-आर्थिक विडम्बनाओं को बहुत बारीकी से पकड़ते हैं। यह वह समय था जब हिंदी भाषा का साहित्यकार होना 'वैभव' का नहीं, बल्कि 'संघर्ष' का पर्याय था। बलिया में हिन्दी में बंदोबस्त का कार्य, देवनागरी लिपि का सरकारी प्रयोग और कचहरियों में हिन्दी लेखकों की बढ़ती आवश्यकता, ये सभी तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि हिन्दी उस समय केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति की भाषा नहीं बन रही थी, बल्कि 'रोजी-रोटी' की भाषा भी बन रही थी। वे लिखते हैं कि 1884 में जब बलिया जिले का बंदोबस्त हिंदी में होना शुरू हुआ, तो यह हिंदी लेखकों के लिए किसी वरदान से कम नहीं था। उस समय "सौ नंबर खेतों का खसरा लिखने पर चार आना मिलता था" और इसी काम से "बहुत से हिंदी के लेखक अपना उदर-भरण करते थे"।¹ यह तथ्य बताता है कि उस युग में हिंदी लेखन 'स्वातः सुखाय' होते हुए भी आजीविका के लिए सरकारी तंत्र (कचहरी, बंदोबस्त) पर निर्भर था। गहमरी जी स्वयं स्वीकार करते हैं कि "हिंदी वालों के लिए और आश्रय ही नहीं था"।² अंग्रेजी शिक्षा का खर्च न उठा पाने की स्थिति में हिन्दी ही उनके जीवन का सहारा बनी थी। यह स्वीकारोक्ति उस दौर के निम्न-मध्यवर्गीय समाज की विडम्बना को उजागर करती है, जहाँ 'अंग्रेजी' सत्ता और अवसर की भाषा थी और 'हिन्दी' अस्तित्व और संघर्ष की।

अक्सर माना जाता है कि औपनिवेशिक शासन हिंदी का विरोधी था, लेकिन गहमरी जी इसकी एक अलग तस्वीर पेश करते हैं। बलिया के कलेक्टर 'राबर्ट रोज' साहब और डिप्टी कलेक्टर 'मुंशी चैथरूलाल' के प्रयासों से हिंदी को सरकारी कामकाज में जगह मिली। गहमरी जी लिखते हैं कि बिहार की कचहरियों के बाद संयुक्त प्रांत में सरकारी कागजों में हिंदी का यह 'पहला प्रवेश' था। यह दौर हिंदी के लिए 'अस्तित्व की लड़ाई' का दौर था, जहाँ उसे कैथी और उर्दू से जूझना पड़ रहा था। इसी जीवनानुभव से गहमरी की भाषा-चेतना विकसित होती है। उनके संस्मरणों में भाषा किसी सैद्धांतिक विमर्श का विषय नहीं, बल्कि व्यवहार में घटित होने वाली वस्तु है। वे भाषा को मंच पर सुनते हैं, कचहरी में लिखते हुए देखते हैं और पत्रकारिता में बहस करते हुए अनुभव करते हैं। यही कारण है कि उनका प्रसिद्ध लेख 'हिन्दी की चिंदी' अकस्मात् उपजी शिकायत नहीं है, बल्कि उसी अनुभव-सम्पन्न दृष्टि का आलोचनात्मक विस्तार है। यदि संस्मरणों में गहमरी भाषा को चलते-फिरते जीवन के अनुभव के रूप में दर्ज करते हैं, तो 'हिन्दी की चिंदी' में वही भाषा उनके सामने एक संकटग्रस्त स्थिति में खड़ी दिखाई देती है।

गहमरी जी का भारतेन्दु हरिश्चंद्र पर लिखा संस्मरण हिंदी रंगमंच के इतिहास के लिए एक दुर्लभ दस्तावेज है। इसमें नाटकों के मंचन, अभिनय की शैली और दर्शकों की प्रतिक्रिया का जो विवरण मिलता है, वह अद्वितीय है। रंगमंच उस समय केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि 'आंदोलन' का माध्यम था। मातादीन शुक्ल द्वारा रचित और मंचित नाटक 'देवाक्षरचरित' इसका प्रमाण है। इस नाटक में हिंदी को एक 'गरीबिनी' स्त्री के रूप में कलेक्टर के द्वार पर दिखाया गया, जो कहती है- "संस्कृत देवासुअन देवाक्षर मम नाम... श्रवण सुन्यो यहि नगर को हाकिम परम उदार..."³। इस नाटक का प्रभाव यह हुआ कि कलेक्टर

साहब ने हिंदी को सरकारी कामकाज में स्थान दे दिया। यह रंगमंच की सामाजिक शक्ति का उदाहरण है। बलिया के ददरी मेले में भारतेन्दु की मंडली द्वारा मंचित किए गए नाटकों 'सत्य हरिश्चंद्र', 'नील देवी', 'भारत दुर्दशा' का वर्णन गहमरी जी ने किया है। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में श्मशान के दृश्य का वर्णन करते हुए वे बताते हैं कि स्वयं भारतेन्दु (हरिश्चंद्र की भूमिका में) और शैव्या के अभिनय ने दर्शकों को इतना भावविभोर कर दिया कि "वहाँ मेमों के रूमाल भीग रहे थे"।¹⁴ गहमरी जी लिखते हैं कि भारतेन्दु ने उस दिन नाटक में ऐसा ओवर ऐक्ट किया की लगा की साक्षात् 'स्टेज पर करुणा खड़ी थी'। देशी-विदेशी दर्शक, यहाँ तक कि अंग्रेज अधिकारी और उनकी पत्नियाँ भी, इस करुणा से अछूती नहीं रह पायी। यह 'भाव-प्रवणता' का वह शिखर था, जिसने अंग्रेज और भारतीय दोनों दर्शकों को एक धरातल पर ला खड़ा किया। यह प्रसंग दिखाता है कि भारतेन्दु का रंगमंच केवल राष्ट्रीय भावनाओं का उद्घोष नहीं था, बल्कि मानवीय संवेदना की सार्वभौमिक भाषा बोलता था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ऊपर लिखे गए संस्मरण में गहमरी जी की भाषा-दृष्टि सबसे अधिक स्पष्ट रूप में सामने आती है। वें भारतेन्दु की भाषाई पकड़ की बहुत प्रशंसा करते हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के डोम सरदार के संवादों का उल्लेख करते हुए वे विशेष आग्रह के साथ यह दिखाते हैं कि भारतेन्दु पात्र के वर्ग, सामाजिक स्थिति और मानसिकता के अनुसार भाषा का चयन करते थे। डोम के मुँह से निकलने वाले शब्द न तो अलंकृत हैं, न संस्कृतिनिष्ठ, बल्कि सीधे, तीखे और जीवन से जुड़े हुए हैं। गहमरी यहाँ टिप्पणी करते हैं- "साहित्य-रसिक योग्य आलोचक देखें कि डोम के मुँह से निकलने वाले कैसे चुभते, सरल शब्द हैं।"¹⁵ यह टिप्पणी सिद्ध करती है कि भारतेन्दु युग का रंगमंच 'पात्रानुकूल भाषा' के प्रति कितना सजग था।

गहमरी के संस्मरणों में कहीं-कहीं तथ्यात्मक त्रुटियाँ भी मिलती हैं, जैसे भारतेन्दु के निधन की तिथि। किंतु ये त्रुटियाँ संस्मरण की प्रामाणिकता को कम नहीं करतीं। उल्टे यह बताती हैं कि स्मृति में तथ्य से अधिक भाव सक्रिय होता है। गहमरी के लिए भारतेन्दु का जाना केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं थी, वह एक ऐसा क्षण था जिसे वे "हिन्दी का श्रृंगार नष्ट हो जाना"¹⁶ कहते हैं। यही भावात्मक तीव्रता उनके संस्मरणों को साहित्येतिहास की शुष्क काल-सूचियों से अलग करती है।

गोपालराम गहमरी उस भारतेन्दु युग के लेखक हैं जब खड़ी बोली हिन्दी अपना स्वरूपगत संस्कार ग्रहण कर रही थी। हिन्दी में यह गहरे बदलाव का दौर था भारतेन्दु अपने पत्र 'भारतेन्दु मैगजीन' में वर्ष 1883 में स्वयं घोषणा कर चुके थे की 'हिन्दी नए चाल में ढली'। गहमरी का दुःख यह नहीं है कि हिन्दी बदल रही है, बल्कि यह है कि वह अपनी स्वाभाविक संरचना खोती जा रही है। 'हिन्दी की चिंदी' में वे बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि नवशिक्षित लेखक अंग्रेजी व्याकरण और वाक्य-रचना को ज्यों-का-त्यों हिन्दी पर आरोपित कर रहे हैं। इससे भाषा न तो अधिक सुस्पष्ट हो रही है, न ही अधिक सशक्त, बल्कि बोझिल और कृत्रिम होती जा रही है। यह आलोचना किसी शुद्धतावादी दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि उसी हिन्दी की स्मृति से उपजी है, जिसे गहमरी ने भारतेन्दु और उनके समकालीनों के यहाँ जीवित रूप में देखा था।

गोपालराम गहमरी के संस्मरणों में भारतेन्दु युग की चेतना केवल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ईर्द-गिर्द सिमटकर नहीं रह जाती, बल्कि बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र जैसे व्यक्तित्वों के माध्यम से उसका आलोचनात्मक और संघर्षशील स्वर उभरता है। यदि भारतेन्दु उस युग के प्रेरक और सांस्कृतिक केन्द्र हैं, तो प्रतापनारायण मिश्र उसकी बेचौन आत्मा और निर्भीक विवेक। गहमरी जी द्वारा रचा गया 'प्रतापनारायण मिश्र की स्मृति में' इस अर्थ में केवल एक व्यक्ति-चित्र नहीं है बल्कि वह हिन्दी पत्रकारिता, भाषा-बहस और साहित्यिक नैतिकता का जीवंत दस्तावेज है। गहमरी जिस प्रतापनारायण मिश्र को हमारे सामने रखते हैं, वह किसी अलंकारिक आदर्श में ढला हुआ साहित्यकार नहीं, बल्कि मिट्टी से उठकर आया हुआ, फक्कड़, हँसमुख और सत्याग्रही व्यक्तित्व है। 'खदर का लम्बा कुर्ता, कंधों तक झूलते तेल-लगे बाल, नीम की दातुन चबाते हुए बातचीत' यह पूरा शब्दचित्र उस हिन्दी लेखक का है जो न तो अंग्रेजी सत्ता से आतंकित है और न ही साहित्यिक प्रतिष्ठा के बोझ से दबा हुआ। यह सहजता ही मिश्र की सबसे बड़ी शक्ति थी। गहमरी जी उन्हें याद करते हुए लिखते हैं कि उनका जीवन-मंत्र था- "खुदादारमचेगमदारभ" अर्थात् ईश्वर साथ है तो चिंता किस बात की। यह वाक्य केवल फक्कड़पन का संकेत नहीं, बल्कि उस आत्मविश्वास का द्योतक है, जिससे उस समय का लेखक सत्ता और समाज दोनों से संवाद करता था।

गहमरी जी का संस्मरण प्रताप नारायण मिश्र के व्यक्तित्व के उन पहलुओं को उजागर करता है जो उनकी रचनाओं में छिपे हैं। वे 'बैसवाड़ी' संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि थे। वे लिखते हैं, "पं. प्रताप नारायण मिश्र सत्यभाषी थे। उनके मुँह से भूलकर भी असत्य कभी सुनने को नहीं मिला। गहमरी जी एक रोचक किस्सा सुनाते हैं जब मिश्र जी ने उन्हें 'सत्य भाषण' का अनमोल गुण दिया। मिश्र जी ने गहमरी को सलाह दी कि जब भी झूठ बोलो, उसे डायरी में नोट कर लो। इस मनोवैज्ञानिक तरीके से गहमरी जी की झूठ बोलने की आदत छूट गई। यह प्रसंग बताता है कि वे केवल उपदेशक नहीं, बल्कि व्यावहारिक सुधारक थे। वे बड़े निर्भीक और हाजिरजवाबी भी थे"¹⁸। मिश्र जी की हाजिरजवाबी और निर्भीकता के अनेक प्रसंग गहमरी ने दर्ज किए हैं, पर राजा रामपाल सिंह के दरबार से उनका अलग हो जाना विशेष रूप से अर्थपूर्ण है। जब सच्ची बात कहना 'गुस्ताखी' कहा गया, तो मिश्र जी ने बिना किसी हिचक के पद त्याग दिया। गहमरी इस घटना को याद करते हुए संकेत करते हैं कि उस समय का साहित्यकार सत्ता के निकट अवश्य था, पर उसका अनुचर नहीं था। यही नैतिक आधार भारतेन्दु युग की पहचान है और यही आधार आगे चलकर गहमरी को भाषा के प्रश्न पर कठोर स्वर अपनाने की शक्ति देता है।

गोपालराम गहमरी हिन्दी पत्रकारिता के उस संक्रमणकाल के प्रतिनिधि हैं, जहाँ पत्रकारिता और जनरुचि का सशक्त संगम दिखाई देता है। वे केवल सफल कथाकार ही नहीं, बल्कि एक सक्रिय पत्रकार, संपादक और पत्र-प्रेरक भी थे। 'जासूस' उनके पत्रकारिता जीवन का सबसे प्रमुख और दीर्घकालिक कार्यस्थान था, इसे वे अनवरत रूप से लगभग 38 वर्षों (लगभग 1900-38) तक अकेले प्रकाशित करते रहे। इसके अलावा उन्होंने भारत मित्र, श्री वेंकटेश्वर समाचार, भाषा भूषण, बंबई व्यापार सिंधु, गुप्तकथा आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन या प्रकाशन का कार्य किया। उनके द्वारा कालाकाँकर में 'हिंदोस्थान' पत्र के कार्यालय की कार्य-संस्कृति का जो वर्णन उपलब्ध है वह इसे पत्रकारिता जगत का जीवंत दस्तावेज बना देता है। उनके संस्मरण 'हिन्दोस्थान' दैनिक के सुनहरे दिनों पर प्रकाश डालते हैं। 'हिंदोस्थान' केवल समाचारों का संकलन नहीं था, वह हिन्दी नवजागरण का एक जीवित मंच था। गहमरी जी बताते हैं कि उस समय हिंदी पाठकों के लिए दैनिक पत्र दुर्लभ थे। काशी, कलकत्ता, दिल्ली जैसे शहरों से आज की तरह विशाल दैनिक नहीं निकलते थे। "दैनिक पत्र तो हिंदी का एक ही 'हिंदोस्थान' ही था"¹⁹। इस पत्र की विशेषता यह थी कि यह "राजनैतिक विषयों से जैसे भरा-पूरा रहता था, वैसे ही साहित्य से

भी संपन्न रहता था”¹⁰। गहमरी जी आज की पत्रकारिता से इसकी तुलना करते हुए क्षोभ व्यक्त करते हैं कि आजकल के अखबारों में राजनीति हावी है और साहित्य केवल रविवार के परिशिष्ट तक सिमट गया है, जबकि ‘हिन्दोस्थान’ में साहित्य का नियमित स्थान था। यहाँ राजनीति के साथ-साथ कविता, व्यंग्य और आलोचना बराबरी से स्थान पाते थे। प्रतापनारायण मिश्र का वहाँ काव्य-विभाग संभालना इस तथ्य को और पुष्ट करता है कि भाषा और साहित्य को सार्वजनिक जीवन से अलग नहीं माना जाता था।

हिंदी साहित्य के इतिहास में खड़ी बोली आंदोलन को अक्सर एक रूखे अकादमिक विषय की तरह पढ़ाया जाता है। लेकिन गहमरी जी के संस्मरण इसे एक ‘नाटकीय संघर्ष’ के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह संघर्ष ‘हिन्दोस्थान’ पत्र के पन्नों और उसके कार्यालय के भीतर लड़ा गया। जब पंडित श्रीधर पाठक ने ‘एकान्तवासी योगी’ के माध्यम से खड़ी बोली में कविता करनी शुरू की, तो पारंपरिक कवियों में खलबली मच गई। गहमरी जी लिखते हैं कि प्रताप नारायण मिश्र और लखनऊ के पंडित शिवनाथ शर्मा जैसे दिग्गज “खड़ी बोली की कविता के विरोधी थे”। उनका मानना था कि कविता की मिटास केवल ब्रजभाषा में संभव है। मिश्र जी तो यहाँ तक कहते थे कि खड़ी बोली ‘रूखी’ है। दूसरी ओर, मुजफ्फरपुर के अयोध्या प्रसाद खत्री खड़ी बोली के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने विलायत (इंग्लैंड) से खड़ी बोली का काव्य छपवाकर मंगाया और उसे “बिना मूल्य” बाँटा। ‘हिन्दोस्थान’ पत्र ने इस बहस को लोकतांत्रिक मंच दिया। पत्र में एक ‘स्वतंत्र स्तंभ’ था, जिसमें साल भर खड़ी बोली के पक्ष और विपक्ष में लेख छपते रहे। गहमरी जी ने इस भाषाई विवाद का सबसे ऐतिहासिक प्रसंग अपने संस्मरणों में सुरक्षित रखा है। अंततः जब राष्ट्रभाषा के हित में मिश्र जी को झुकना पड़ा, तो उन्होंने श्रीधर पाठक से एक शर्त रखी। मिश्र जी ने कहा, “अच्छी बात है। आप कविता कर चलिए। मैं भी उस पर रोड़ा-कंकड़ फेंकता चलूँगा। लेकिन, याद रखिए, यह सड़क ऐसी सुंदर नहीं बनेगी कि कवि की निरंकुश शक्ति बेरोक-टोक दौड़ सके”¹¹। इस पर श्रीधर पाठक का जवाब इतना दूरदर्शी था कि उसने हिंदी कविता का भविष्य तय कर दिया— “हम इंजीनियरों को आप जैसे कंकड़ फेंकने वाले खचिवाहों की बहुत जरूरत है। आप उसे फेंकते चलिए। देखिएगा, यह सड़क ऐसी सुंदर और उत्तम बनेगी कि कवि लोग बे-रोक इस पर सरपट दौड़ेंगे”¹²। यह संवाद बताता है कि खड़ी बोली हिन्दी का विकास किसी सहज और निर्विरोध प्रक्रिया का परिणाम नहीं था। आलोचना, असहमति और बहस ने ही उसे सुदृढ़ बनाया। यही ऐतिहासिक अनुभव ‘हिन्दी की चिंदी’ में पृष्ठभूमि की तरह उपस्थित है। वहाँ गहमरी भाषा-विकास के नाम पर फैल रही मनमानी के विरुद्ध खड़े होते हैं और कहते हैं कि आलोचना के बिना भाषा निरंकुश हो जाती है। उनका आग्रह स्पष्ट है भाषा परिवर्तित हो, पर अपनी प्रकृति खोकर नहीं।

पत्रकारिता और भाषा के इस संघर्ष के बीच गहमरी का अपना जीवन अनुभव निरंतर पाठ में प्रवाहित रहता है। वे बताते हैं कि हिन्दी लेखकों के लिए कचहरियाँ, प्रेस और पत्रिकाएँ केवल वैचारिक मंच नहीं थीं, बल्कि जीविका का साधन भी थीं। यह यथार्थ हिन्दी साहित्य के उस आदर्शवादी इतिहास से भिन्न है, जहाँ लेखक केवल सृजनकर्ता के रूप में दिखाई देता है। गहमरी के यहाँ लेखक समाज के भीतर जीता हुआ, रोजमर्रा के संघर्षों से जूझता हुआ मनुष्य है।

इसी क्रम में ‘मेरे संस्मरण’ के वे प्रसंग, जो पहली दृष्टि में साहित्य से असंबद्ध प्रतीत होते हैं जैसे मंडला प्रवास, शिकार का विवरण या अंग्रेज अधिकारियों के साथ अनुभव एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ ग्रहण कर लेते हैं। ये प्रसंग उस औपनिवेशिक समाज की संरचना को उजागर करते हैं, जिसमें हिन्दी भाषा अपने लिए स्थान बना रही थी। यह 1894 के उस सामाजिक और राजनीतिक परिवेश का दस्तावेज है जिसमें हिंदी लेखक और भारतीय समाज जी रहे थे। यह संस्मरण ‘शिकार’ के बहाने ‘औपनिवेशिक निर्भरता’ और ‘भारतीय शौर्य’ के द्वंद्व को उजागर करता है। 19वीं सदी में शिकार केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि शक्ति-प्रदर्शन का माध्यम था। ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य फौलर साहब और भारतीय सहयोगी मुन्नालाल पुरोहित का प्रसंग केवल रोमांचक कथा नहीं है, वह उस समय के सत्ता-संबंधों और सामाजिक मानसिकता का संकेत देता है, जहाँ भारतीय कौशल और अंग्रेजी सत्ता के बीच एक जटिल निर्भरता मौजूद थी। मुन्नालाल पुरोहित का चरित्र उस दौर के स्वाभिमानी भारतीय युवा का प्रतिनिधित्व करता है। वे ‘स्वतंत्र मिजाज’ के थे और उन्होंने सरकारी नौकरी करके ‘बंधन में दिन बिताना’ अस्वीकार कर दिया था। ठीक इसके विपरीत कथरी बाबू उस ‘बाबू वर्ग’ के प्रतीक हैं जो केवल बातों के शेर हैं। शेर की दहाड़ सुनते ही मचान पर बेहोश हो जाना और शेर के मरने के बाद उसे बूटों से ठोकर मारते हुए बंगाली में गाली देना— “एही शाला आमाके वेहुम कोरेछिलो”¹³ (इसी साले ने मुझे बेहोश कर दिया था), गहमरी जी की व्यंग्य-क्षमता का बेजोड़ नमूना है। यह प्रसंग दिखाता है कि गहमरी जी मानव स्वभाव की विसंगतियों को पकड़ने में माहिर थे।

इन सभी अनुभवों के बीच गहमरी का भाषा-विवेक लगातार सक्रिय रहता है। चाहे वह पत्रकारिता हो, प्रशासन हो या निजी जीवन हर जगह वे मर्यादा और उत्तरदायित्व पर बल देते हैं। यही मूल्य आगे चलकर ‘हिन्दी की चिंदी’ में सैद्धान्तिक रूप से व्यक्त होते हैं। वहाँ गहमरी केवल अशुद्धियों की सूची नहीं बनाते, वे उस मानसिकता पर प्रहार करते हैं जो भाषा को बिना संवेदना और अनुशासन के प्रयोग का क्षेत्र बना देती है। इस प्रकार प्रतापनारायण मिश्र, ‘हिन्दोस्थान’ पत्र और ‘मेरे संस्मरण’ के विविध प्रसंग मिलकर भारतेन्दु युग की उस जीवित तस्वीर को पूरा करते हैं, जिसमें भाषा निरंतर संघर्ष का क्षेत्र है कभी रंगमंच पर, कभी कचहरी में, कभी पत्रकारिता में और कभी आलोचना के स्तर पर। यही संघर्ष हिन्दी को केवल साहित्य की भाषा नहीं, बल्कि समाज की भाषा बनाता है। ‘हिन्दी की चिंदी’ में गहमरी जिस स्वर में बोलते हैं, वह स्मृति का स्वर नहीं है, बल्कि एक ऐसे लेखक का स्वर है जिसने हिन्दी को बनते हुए देखा है और अब उसे बिखरते हुए देखकर विचलित है। वे भाषा की आलोचना वर्तमान के संदर्भ में करते हैं, लेकिन कसौटी अतीत की रखते हैं। यह अतीत वही है जिसे उन्होंने भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र और उनके समकालीनों के साथ जिया था। इसीलिए उनकी आलोचना किसी अमूर्त भाषाशास्त्र से नहीं, बल्कि व्यवहार में देखी गई हिन्दी से उपजती है। इस दृष्टि से गहमरी का साहित्येतिहास किसी विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम की उपज नहीं है। वह जीवन से उपजा इतिहास है। उनके संस्मरण बताते हैं कि भारतेन्दु युग के लेखक कैसे रहते थे, कैसे लिखते थे और भाषा को किस तरह बरतते थे। इसलिए यह कहना अधिक उचित होगा कि गहमरी जी के लेखन में स्मृति और आलोचना दो अलग-अलग धाराएँ नहीं हैं। स्मृति उन्हें अतीत से जोड़ती है और आलोचना उन्हें वर्तमान से प्रश्न करने की शक्ति देती है। भारतेन्दु युग उनके लिए न तो केवल गौरवशाली अतीत है और न ही जड़ आदर्श। वह एक जीवित मानक है, जिसकी कसौटी पर वे अपने समय की हिन्दी को परखते हैं।

उपसंहार

गोपालराम गहमरी के संस्मरण यह दर्शाते हैं कि उनकी पहचान केवल जासूसी कहानियों और उपन्यासों तक सीमित नहीं थी। उनके पास इतिहास को सूक्ष्मता से देखने और उसे संवेदनशील कलम से दर्ज करने की क्षमता थी। उन्होंने भारतेन्दु युग को केवल किताबों से निकालकर, जीवंत समाज के बीच स्थापित किया। विडंबना यह है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में गोपालराम गहमरी को वह उचित सम्मान नहीं मिला जिसके वे वास्तविक हकदार थे। अकादमिक आलोचकों ने उन्हें 'जासूसी उपन्यासकार' या 'मनोरंजन साहित्य का रचयिता' कहकर अक्सर हाशिए पर डाल दिया। उनके गंभीर लेखन, संपादन और विशेष रूप से संस्मरणों को वह महत्व नहीं दिया गया जो द्विवेदी युग या छायावाद के अन्य गद्यकारों को मिला। आलोचकों ने भाषा की शुद्धता और विषय की गंभीरता के नाम पर उनकी उपेक्षा की। हालाँकि आलोचकों ने उन्हें नकारा, लेकिन हिंदी का सामान्य पाठक वर्ग और जनता हमेशा उनके साथ रही। गहमरी जी ने ही हिंदी में एक व्यापक पाठक वर्ग तैयार किया जो उनके उपन्यासों और पत्रिकाओं का बेसब्री से इंतजार करता था, जिससे हिंदी 'पठनीय' बनी। आज भी उनकी स्मृति और साहित्य जीवित है। प्रतिवर्ष उनके पैतृक गाँव गहमर (गाजीपुर) में उनकी स्मृति में भव्य साहित्यिक आयोजन होते हैं। इन आयोजनों में जुटने वाली भीड़ और विद्वानों द्वारा उनके योगदान पर होने वाली चर्चा यह प्रमाणित करती है कि एक सच्चा लेखक कभी नहीं मरता। लोक-स्मृति में गहमरी जी का स्थान किसी भी अकादमिक पुरस्कार या सम्मान से कहीं अधिक ऊँचा है। ये संस्मरण हमें याद दिलाते हैं कि इतिहास केवल तिथियों का संग्रह नहीं, बल्कि 'संवेदनाओं' का दस्तावेज होता है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. कृष्ण, संजय (सं.). गोपालराम गहमरी के संस्मरण. नई दिल्ली: विकल्प प्रकाशन
2. गहमरी, गोपालराम. ध्वरे संस्मरण, सचित्र मासिक पत्रिका, भाग-39, खंड-2. इलाहाबाद: इंडियन प्रेस, 1938.
3. शुक्ल, रामचन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा
4. कृष्ण, संजय (सं.) भारतीय साहित्य के निर्माता, साहित्य अकादमी

Footnote

- ¹ <https://www.hindwi.org/sansmaran/bharatendu-harishchandr-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ² <https://www.hindwi.org/sansmaran/bharatendu-harishchandr-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ³ <https://www.hindwi.org/sansmaran/bharatendu-harishchandr-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ⁴ <https://www.hindwi.org/sansmaran/bharatendu-harishchandr-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ⁵ <https://www.hindwi.org/sansmaran/bharatendu-harishchandr-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ⁶ <https://www.hindwi.org/sansmaran/bharatendu-harishchandr-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ⁷ <https://www.hindwi.org/sansmaran/pandit-prtapnarayan-mishr-ki-smriti-mein-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ⁸ <https://www.hindwi.org/sansmaran/pandit-prtapnarayan-mishr-ki-smriti-mein-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ⁹ <https://www.hindwi.org/sansmaran/pandit-prtapnarayan-mishr-ki-smriti-mein-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ¹⁰ <https://www.hindwi.org/sansmaran/pandit-prtapnarayan-mishr-ki-smriti-mein-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ¹¹ <https://www.hindwi.org/sansmaran/pandit-prtapnarayan-mishr-ki-smriti-mein-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ¹² <https://www.hindwi.org/sansmaran/pandit-prtapnarayan-mishr-ki-smriti-mein-gopalram-gehmar-sansmaran>
- ¹³ <https://www.hindwi.org/sansmaran/mere-sansmaran-gopalram-gehmar-sansmaran>

कोचिंग करने वाले छात्रों एवं छात्राओं के समायोजन का अध्ययन

आरूषी पुरोहित

शोधार्थी

डॉ० कीर्ति दशोरा

शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य, मनोविज्ञान संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड-टू-बी) विश्वविद्यालय,
प्रतापनगर, उदयपुर-313001 (राज.)

प्रस्तावना

मनुष्य की मानसिक शक्ति के विकास हेतु शिक्षा एक अनिवार्य प्रक्रिया है, बालक हो या बालिका किसी को भी शिक्षा से वंचित कर देना उसकी मानसिक क्षमता को विकसित होने से रोक देता है। अतः शिक्षा ही एक ऐसा प्रक्रम है, जिसमें मानव समाज के परिपक्व व्यक्ति अपरिपक्व व्यक्तियों को पूर्णता अर्थात् परिपक्वता की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार वे स्वयं एवं दूसरों के मानव जीवन को श्रेष्ठता की ओर ले जाने में प्रयासरत रहते हैं। बालक किसी भी राष्ट्र या समाज की अमूल्य धरोहर होते हैं, इन्हीं के चारों ओर राष्ट्र के विकास का पहिया घुमता है, या यह कहें कि बालक राष्ट्र विकास की धुरी है, बालक का विकास ही राष्ट्र का विकास है। मानवीय इतिहास में प्राचीनकाल से ही शिक्षा का विकास एवं प्रसार होता रहा है। प्रत्येक देश की अपनी अपनी संस्कृति, सामाजिक विशेषता तथा शिक्षा प्रणालियाँ हैं, जो बढ़ते समय के साथ निरंतर विकसित होती रही हैं।

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में शिक्षा का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। विद्यार्थियों पर न केवल शैक्षणिक सफलता प्राप्त करने का दबाव है, बल्कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक अपेक्षाओं की पूर्ति भी करनी होती है। विशेष रूप से उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर पर यह दबाव और अधिक बढ़ जाता है, जहाँ छात्र अपने करियर की दिशा तय करते हैं। कोचिंग संस्थानों की भूमिका इस संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। कोचिंग छात्र अतिरिक्त मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं, जबकि गैर कोचिंग छात्र विद्यालयी शिक्षकों और पाठ्यक्रम पर ही निर्भर रहते हैं। वहीं छात्रावास में रहने वाले छात्रों के समक्ष अपने परिवार से दूर रहकर, नए वातावरण में ढलने की चुनौती होती है। इन सभी कारकों का उनके मानसिक स्वास्थ्य और समायोजन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य केवल मानसिक बीमारियों की अनुपस्थिति से नहीं, बल्कि यह एक सकारात्मक मानसिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों को समझकर, तनावों को संभालकर और सामाजिक रूप से जुड़कर जीता है। समायोजन वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अपने वातावरण में प्रभावी रूप से कार्य करता है। इस शोध का उद्देश्य इन तीनों प्रकार के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य और समायोजन की तुलना करना है।

कोचिंग छात्र: वे छात्र जो विद्यालय के अतिरिक्त कोचिंग संस्थानों से अध्ययन करते हैं।

समस्या का औचित्य

प्रत्येक शोध कार्य के लिए उसकी समस्या के महत्व को स्पष्ट करना अति आवश्यक है। यह ज्ञात करना अति आवश्यक है कि यह शोध कार्य शैक्षिक जगत की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को दूर करने में कितना महत्व रखता है। समस्या की उपयोगिता तथा उसके महत्व का औचित्य सिद्ध करने के लिए यह स्पष्ट करना अतिआवश्यक है कि इस शोध के परिणाम मनोविज्ञान एवं व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करेंगे। यह स्पष्टीकरण किस महत्वहीन या अनावश्यक अन्वेषण पर अनुसंधान प्रयासों का अपव्यय रोकने में भारी सुरक्षा प्रदान करेगा।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक स्तर को विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता और समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना है। ताकि उन्हें भविष्य के लिए सही दिशा-निर्देश दिये जा सकें तथा समाज के गुणात्मक विकास में उनका सकारात्मक ऊर्जा का उपयोग किया जा सके। कुसमायोजन और संवेगात्मक अपरिपक्वता बालक के व्यक्तित्व निर्माण को विपरीत दिशा में मोड़ देती है और वह बालक के व्यक्तित्व विकास में बाधक तत्व बन जाते हैं।

अतः इस शोध के परिणाम माध्यमिक स्तर के विभिन्न संकायों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता तथा समायोजन को जानने में मदद करेंगे।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह अत्यंत आवश्यक है कि हम यह जानें कि कौन-से शैक्षणिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत कारक विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। कोचिंग संस्कृति ने जहाँ एक ओर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर छात्रों पर मानसिक तनाव भी बढ़ा है। गैर कोचिंग छात्र अपेक्षाकृत कम संसाधनों में कार्य करते हैं और छात्रावास में रहने वाले छात्रों को घर से दूर रहने के कारण सामाजिक और भावनात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यह अध्ययन इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए एक समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करेगा, जो नीतिगत निर्णयों, परामर्शदाताओं एवं शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

शोध के उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं-

- कोचिंग करने वाले छात्रों एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।
- विद्यार्थियों के प्रकार (कोचिंग करने वाले/ कोचिंग नहीं करने वाले/ हॉस्टल में रहने वाले) का मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना :

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाएं निर्धारित की गई हैं-

- कोचिंग करने वाले, कोचिंग नहीं करने वाले एवं हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

शोध परिसीमन :

- प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों तक ही सीमित रखा गया है।
- प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के कोचिंग एवं गैर कोचिंग विद्यार्थी छात्रावास में रहने वाले तक ही सीमित रखा गया है।

समस्या का औचित्य :

जनजाति छात्रों हेतु सरकार द्वारा कई आवासीय छात्रावासों का निर्माण समय समय पर किया गया है। जनजाति बाहुल्य क्षेत्र में यह छात्रावास जनजाति विद्यार्थियों हेतु शिक्षा के साथ-साथ आवास, भोजन एवम सुरक्षा जैसी सुविधाएं उपलब्ध करवा रहे हैं। छात्रावासों में रहने वाले माध्यमिक एवम उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों की आयु संवेदनशील होती है। विविध क्षेत्रों से आए विद्यार्थियों का घर से दूर एवं विभिन्न क्षेत्रों से आए अन्य विद्यार्थियों के साथ रहने में कई तरह की मानसिक उद्वेलनाएं जन्म लेती हैं। अपनी पसंद-नापसंद, पढ़ाई का तनाव, जीवन में आगे बढ़ने में आती समस्याओं का दबाव और आर्थिक कमजोरी छात्रावास में अध्ययनरत विद्यार्थियों में असुरक्षा की भावना को जन्म देती हैं।

प्रस्तुत शोध वर्तमान में जनजाति आवासीय छात्रावासों में रह रहे विद्यार्थियों के मनस को उचित तरीके से समझने का प्रयास है। यह शोध अधोलिखित रूप से कोचिंग और गैर कोचिंग छात्र-छात्राओं, शिक्षकों एवम समाज हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

- विद्यार्थियों की दृष्टि से : विद्यार्थियों हेतु 10वीं एवं 12वीं कक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इन कक्षाओं के परिणाम विद्यार्थियों के भावी जीवन उपलब्धियों के आधार स्वरूप होते हैं। साथ ही उनकी उम्र भी अत्यंत संवेदनशील समय से गुजर रही होती है। ऐसे समय में माता-पिता से दूर अपरिचित छात्रावास वातावरण में सबके साथ संयोजन से रहना, करणीय-अकरणीय का चुनाव करना, सही गलत में भेद करना, अपनी मन की बात ना बता पाना, सफलता की चिंता, असफलता का डर, समाज में अपनी पहचान बनाने का दबाव साथ ही भावात्मक विविधता इत्यादि छात्रावास में अध्ययनरत विद्यार्थियों हेतु कई तरह की चुनौतियां प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोध कोचिंग और गैर कोचिंग विद्यार्थियों की इन्हीं समस्या, समायोजन, दबाव विविध चुनौतियों को समझने का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक प्रयास है।
- शिक्षकों की दृष्टि से : वर्तमान में विद्यालय शिक्षा पर ध्यान दें तो पता चलता है कि शिक्षकों के सामने अपने व्यवसाय से संबंधित समस्याएं एवं चुनौतियां तो हैं ही इसके साथ ही विद्यार्थियों के बेहतर परिणाम से संबंधित चुनौतियां भी हैं। विद्यार्थियों की शारीरिक, स्वास्थ्य, मानसिक एवम भावनात्मक इत्यादि समस्याओं एवं संवेदनशीलता को सही समय पर पहचान कर एवं दूर कर अध्ययन में उनकी रुचि एवं उनके परिणामों को बढ़ाया जा सकता है। यह शोध कोचिंग और गैर कोचिंग विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं एवम चुनौतियों की पहचान का सार्थक प्रयास सिद्ध हो सकेगा। इसके पश्चात उन्हें दूर करने के निदानात्मक उपायों को लागू कर शिक्षकों को भी अवश्य ही सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकेंगे।
- समाज एवं देश की दृष्टि से : आज के अध्ययनरत विद्यार्थी भावी राष्ट्र के निर्माता है। उनकी विविध समस्याएं एवं असुरक्षा की भावना को सही समय पर समझ कर, व्याख्या कर एवम दूर करने के सुचारु उपाय किए जा सकें तो निश्चित ही यह विद्यार्थी भावी भारत की समृद्धता, एवम अखंडता को सुनिश्चित करने के साथ ही एक बेहतर, शांति युक्त, खुशहाल एवं सफल समाज का निर्माण करने में सहयोगी सिद्ध हो सकेंगे। प्रस्तुत शोध इन्हीं प्रयासों हेतु आधारभूत प्रक्रिया के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

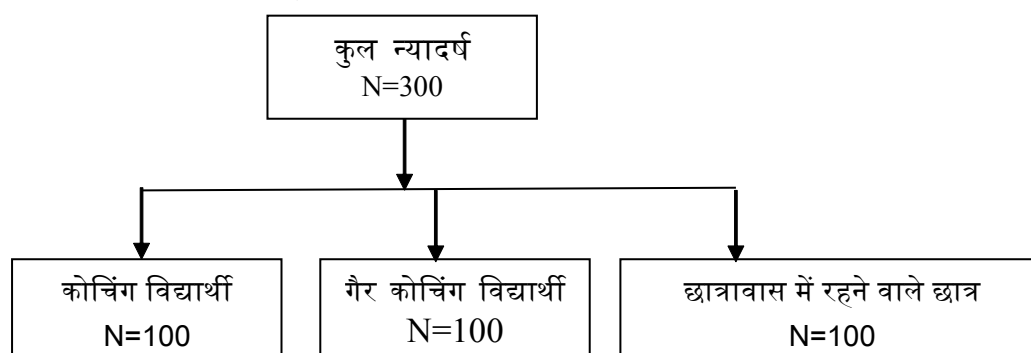
शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु मानकीकृत उपकरणों का प्रयोग किया गया जो इस प्रकार है :-

- समायोजन परीक्षण : डॉ. के.पी.सिन्हा व आर.पी. सिंह

न्यादर्श चयन

प्रस्तुत शोध में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के कुल 300 विद्यार्थियों को चयन किया गया है। जो इस प्रकार है-



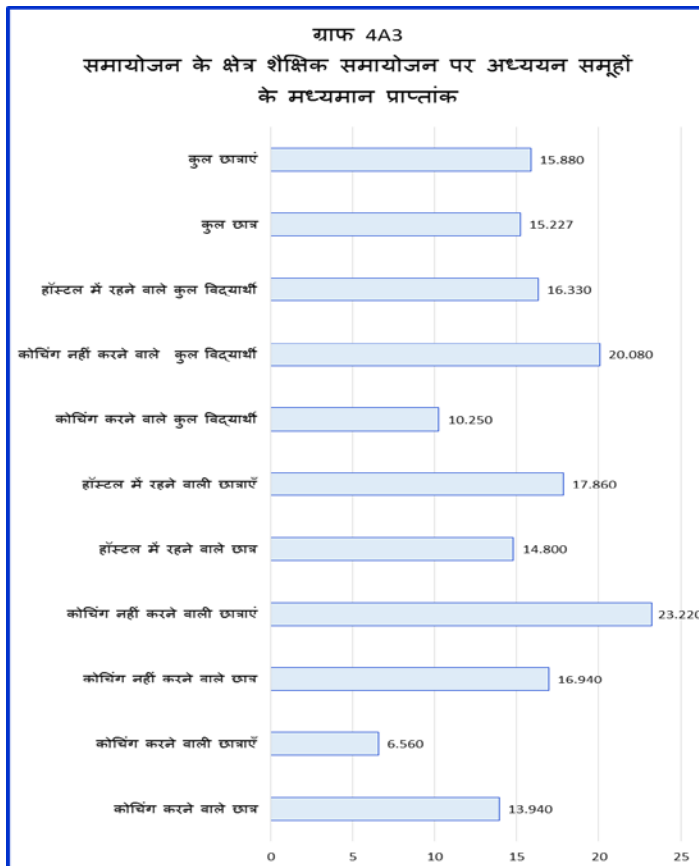
शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा तथ्यों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकी का उपयोग किया गया -

1. मध्यमान
2. प्रमाप विचलन
3. टी-परीक्षण

सारणी संख्या 4A3.1 तथा ग्राफ 4A3 में समायोजन के क्षेत्र शैक्षिक समायोजन पर अध्ययन समूहों के मध्यमान प्राप्तांक, मानक विचलन एवं श्रेणी को प्रदर्शित किया गया है।

शैक्षिक समायोजन	N	मध्यमान	मानक विचलन	श्रेणी
कोचिंग करने वाले छात्र	50	13.940	2.795	औसत से अधिक संतोषजनक
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	6.560	2.880	संतोषजनक
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	16.940	2.780	औसत
कोचिंग नहीं करने वाली छात्राएँ	50	23.220	4.282	औसत से कम संतोषजनक
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	14.800	2.792	औसत
हॉस्टल में रहने वाली छात्राएँ	50	17.860	3.844	औसत
कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थी	100	10.250	4.661	औसत से अधिक संतोषजनक
कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थी	100	20.080	4.781	औसत
हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थी	100	16.330	3.679	औसत
कुल छात्र	150	15.227	3.046	औसत
कुल छात्राएँ	150	15.880	7.884	औसत



उपरोक्त सारणी को देखने पर स्पष्ट होता है कि शैक्षिक समायोजन के संदर्भ में कोचिंग करने वाले विद्यार्थियों के परिणामों में पाया गया कि कोचिंग करने वाले छात्रों का मध्यमान 13.940 एवं मानक विचलन 2.795 रहा, जो औसत से अधिक संतोषजनक श्रेणी में पाया गया। कोचिंग करने वाली छात्राओं का मध्यमान 6.560 एवं मानक विचलन 2.880 रहा, जो संतोषजनक श्रेणी को इंगित करता है। कुल कोचिंग करने वाले विद्यार्थियों का मध्यमान 10.250 एवं मानक विचलन 4.661 पाया गया, जो औसत से अधिक संतोषजनक श्रेणी में आता है।

सारणी का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि कोचिंग नहीं करने वाले विद्यार्थियों के परिणामों में कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का मध्यमान 16.940 एवं मानक विचलन 2.780 पाया गया, जो औसत श्रेणी में आता है। कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का मध्यमान 23.220 एवं मानक विचलन 4.282 रहा, जो औसत से कम संतोषजनक श्रेणी को दर्शाता है। कुल कोचिंग नहीं करने वाले विद्यार्थियों का मध्यमान 20.080 एवं मानक विचलन 4.781 पाया गया, जो औसत श्रेणी में पाया गया।

प्रदत्त सांख्यिकीय आंकड़ों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों के परिणामों में हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का मध्यमान 14.800 एवं मानक विचलन 2.792 रहा, जो औसत श्रेणी में पाया गया। हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं का मध्यमान 17.860 एवं मानक विचलन 3.844 रहा, जो भी औसत श्रेणी में पाया गया। कुल हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों का मध्यमान 16.330 एवं मानक विचलन 3.679 रहा, जो औसत श्रेणी को इंगित करता है।

तुलनात्मक दृष्टि से सारणी का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि लिंग आधारित तुलना में कुल छात्रों का मध्यमान 15.227 एवं मानक विचलन 3.046 पाया गया, जो औसत श्रेणी में है। इसी प्रकार कुल छात्राओं का मध्यमान 15.880 एवं मानक विचलन 7.884 पाया गया, जो भी औसत श्रेणी में पाया गया।

सारणी संख्या 4A3.2 में समायोजन के क्षेत्र शैक्षिक समायोजन हेतु F-अनुपात को दर्शाया गया है।

सारणी संख्या 4A3.2 समायोजन के क्षेत्र शैक्षिक समायोजन हेतु F-अनुपात

स्त्रोत	वर्गों का योग	df	माध्य	F	p मान
विद्यार्थी का प्रकार	4921.927	2	2460.963	228.057	0.000
लिंग	32.013	1	32.013	2.967	0.086
विद्यार्थी का प्रकार * लिंग	2549.647	2	1274.823	118.137	0.000
त्रुटि	3172.560	294	10.791		
योग	10676.147	299			

उपरोक्त सारणी को देखने पर स्पष्ट होता है कि शैक्षिक समायोजन के लिए प्राप्त ANOVA (F-अनुपात) के परिणामों से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी के प्रकार का प्रभाव सांख्यिकीय दृष्टि से सार्थक है। विद्यार्थी के प्रकार (कोचिंग करने वाले, कोचिंग नहीं करने वाले तथा हॉस्टल में रहने वाले) के लिए F-मूल्य 228.057 एवं p-मूल्य 0.000 प्राप्त हुआ, जो 0.05 के स्तर पर सार्थक है। इसका अर्थ है कि विभिन्न प्रकार के विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया।

सारणी का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि लिंग के प्रभाव की दृष्टि से F-मूल्य 2.967 एवं p-मूल्य 0.086 प्राप्त हुआ, जो 0.05 के स्तर पर सार्थक नहीं है। इसका तात्पर्य है कि छात्रों एवं छात्राओं के शैक्षिक समायोजन में सांख्यिकीय रूप से कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

हालाँकि, विद्यार्थी के प्रकार और लिंग की संयुक्त अंतःक्रिया सांख्यिकीय दृष्टि से सार्थक पाई गई। इस अंतःक्रिया के लिए F-मूल्य 118.137 एवं p-मूल्य 0.000 प्राप्त हुआ, जो 0.05 के स्तर पर सार्थक है। इसका अर्थ है कि विद्यार्थी का प्रकार और लिंग मिलकर शैक्षिक समायोजन को सार्थक रूप से प्रभावित करते हैं।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शैक्षिक समायोजन मुख्यतः विद्यार्थी के प्रकार पर निर्भर करता है, जबकि लिंग का प्रत्यक्ष प्रभाव सार्थक नहीं है, परंतु विद्यार्थी का प्रकार और लिंग का संयुक्त प्रभाव शैक्षिक समायोजन को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करता है।

सारणी संख्या 4A3.3 में समायोजन के क्षेत्र शैक्षिक समायोजन से संबंधित प्राप्त मध्यमान अंकों के आधार पर विभिन्न अध्ययन समूहों के मध्य तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या 4A3.3 समायोजन के क्षेत्र शैक्षिक समायोजन हेतु अध्ययन समूहों की तुलना

शैक्षिक समायोजन	N	मध्यमान	मानक विचलन	माध्य अन्तर	t' मान	p मान
कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थी	100	10.250	4.661	9.830	14.721	0.000
कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थी	100	20.080	4.781			
कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थी	100	10.250	4.661	6.080	10.239	0.000
हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थी	100	16.330	3.679			
कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थी	100	20.080	4.781	3.750	6.216	0.000
हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थी	100	16.330	3.679			
कुल छात्र	150	15.227	3.046	0.653	0.947	0.345
कुल छात्राएं	150	15.880	7.884			
कोचिंग करने वाले छात्र	50	13.940	2.795	7.380	13.004	0.000
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	6.560	2.880			
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	16.940	2.780	6.280	8.697	0.000
कोचिंग नहीं करने वाली छात्राएं	50	23.220	4.282			
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	14.800	2.792	3.060	4.554	0.000
हॉस्टल में रहने वाली छात्राएँ	50	17.860	3.844			
कोचिंग करने वाले छात्र	50	13.940	2.795	3.000	5.381	0.000
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	16.940	2.780			
कोचिंग करने वाले छात्र	50	13.940	2.795	0.860	1.539	0.127
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	14.800	2.792			
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	16.940	2.780	2.140	3.840	0.000
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	14.800	2.792			
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	6.560	2.880	16.660	22.828	0.000
कोचिंग नहीं करने वाली छात्राएं	50	23.220	4.282			
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	6.560	2.880	11.300	16.636	0.000
हॉस्टल में रहने वाली छात्राएँ	50	17.860	3.844			
कोचिंग नहीं करने वाली छात्राएं	50	23.220	4.282	5.360	6.586	0.000
हॉस्टल में रहने वाली छात्राएँ	50	17.860	3.844			

उपरोक्त सारणी को देखने पर स्पष्ट होता है कि कोचिंग करने वाले और कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया। कोचिंग करने वाले विद्यार्थियों का मध्यमान 10.250 तथा कोचिंग नहीं करने वाले विद्यार्थियों का मध्यमान 20.080 पाया गया। माध्य अंतर 9.830, t' मान 14.721 तथा p मान 0.000 प्राप्त हुआ, जो सांख्यिकीय रूप से अत्यंत सार्थक है। तात्पर्य है कि कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का शैक्षिक समायोजन कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा है।

सारणी का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि कोचिंग करने वाले और हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के बीच भी शैक्षिक समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया। कोचिंग करने वाले विद्यार्थियों का मध्यमान 10.250 तथा हॉस्टल में रहने वालों का मध्यमान 16.330 पाया गया। माध्य अंतर 6.080, t' मान 10.239 तथा p मान 0.000 प्राप्त हुआ। तात्पर्य है कि कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का शैक्षिक समायोजन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा है।

उपरोक्त सारणी को देखने पर स्पष्ट होता है कि कोचिंग नहीं करने वाले और हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों की तुलना में भी अंतर सार्थक पाया गया। कोचिंग नहीं करने वालों का मध्यमान 20.080 तथा हॉस्टल में रहने वालों का 16.330 था। माध्य अंतर 3.750, t' मान 6.216 तथा p मान 0.000

- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का समायोजन स्तर औसत से अधिक संतोषजनक रहा।
- हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों का समायोजन स्तर औसत रहा।
- कुल छात्रों का समायोजन स्तर औसत पाया गया।
- कुल छात्राओं का समायोजन स्तर भी औसत रहा।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल समायोजन कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल समायोजन कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल समायोजन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- छात्रों का कुल समायोजन छात्राओं के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- कोचिंग करने वाले छात्रों का कुल समायोजन कोचिंग करने वाली छात्राओं के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का कुल समायोजन कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का कुल समायोजन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का कुल समायोजन कोचिंग करने वाले छात्रों के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का कुल समायोजन कोचिंग करने वाले छात्रों के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का कुल समायोजन हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का कुल समायोजन लगभग एक समान होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का कुल समायोजन कोचिंग करने वाली छात्राओं के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं का कुल समायोजन कोचिंग करने वाली छात्राओं के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का कुल समायोजन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के कुल समायोजन की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा होता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गिल, ए.के. एवं दुल. पी.: शिक्षा के मनोविज्ञान आधार, प्रथम संस्करण, ओम साई पब्लिकेशन्स।
2. चौबे, एस.बी.: सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, कॉन्स्टेंट पब्लिकेशन।
3. चौहान, रीता, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
4. दीक्षित, ब्रजमोहन: मनोविज्ञान प्रायोगिकी, हर प्रसाद भार्गव पब्लिकेशन्स।
3. पाठक, पी.डी.: शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर पब्लिकेशन्स।
4. भार्गव, टी. एवं भार्गव, वी.: समायोजन और मानसिक स्वास्थ्य, मानव व्यवहार का मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव पब्लिकेशन्स।
5. भटनागर, एस.: बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, आर.लाल बुक डिपो पब्लिकेशन्स।
6. सिंह, डॉ. एल. एवं तिवारी, जी.: प्रेरणा एवं समायोजन, असामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर पब्लिकेशन।
7. त्रिपाठ, मधुसुदन: शिक्षण अधिगम की मनोवैज्ञानिक पद्धति, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
8. राजादा, बी.एस.: शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
9. सिन्हा, एच.सी.: शैक्षिक अनुसंधान, विकास पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
10. Buch, M.B., "A Survey of Research in Education", Vol. V, Part II, NCERT.
11. Buch, M.B., "A Survey of Research in Education", Baroda, CASE., 1974
12. Buch, M.B., "Second Survey of Research in Education", Baroda, 1979.
13. Buch, M.B., "Third Survey of Research in Education", New Delhi, NCERT, 1983.

मौर्यकाल में चिकित्सा का विकास

पवन कुमार यादव

शोध छात्र, स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

मौर्यकाल में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली का भरपूर विकास हुआ था। इस विषय में जानकारी मेगास्थनीज के यात्रा वृत्तांत 'इंडिका' से मिलता है। इसके अलावे उस काल के प्रमुख रचना कौटिल्य के रचना 'अर्थशास्त्र' से मिलता है। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि - अर्थशास्त्र राजनीतिक विषयों का उल्लेख है जबकि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में खनिज विज्ञान, वास्तु निर्माण कला, सैन्य संचालन, भूगर्भ विज्ञान, रसायन विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान के विषय में जानकारी दी गई है।

कौटिल्य ने अपने ग्रंथ की रचना हेतु मुख्यतः दो पद्धतियों संश्लेषणात्मक एवं आगमनात्मक का प्रयोग किया गया है। जहां संश्लेषणात्मक पद्धति के तहत पूर्व प्रचलित विचारों एवं आदर्शों का शोधन कर उन्हें एक सूत्र में क्रमबद्ध रूप से पिरोया जाता है, वहीं आगमनात्मक पद्धति के तहत विचारक अपने निरीक्षण और अनुभव से तथ्यों का संग्रह किया है। उनके लेखन में निरंतरता, विश्वसनीयता निश्चितता सत्यापनियता के साथ सामान्यीकरण की तलाशकर सुनिश्चित या सम्भावित व्यवहारों के संकेत भी प्राप्त होते हैं, जो सामाजिक विज्ञान में वैज्ञानिक प्रविधि का घटक है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में तत्कालीन चिकित्सा प्रबंध के विषय में महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध कराती है। तत्कालीन चिकित्सकों की विशेषता के आधार पर निम्न श्रेणियां होती थी (1) साधारण चिकित्सक (भिषज या चिकित्सकः) (2) विष सम्बन्धी चिकित्सक (जांगलीविद्) (3) प्रसूतिकार्य के विशेषज्ञ (गर्भव्याधिसंस्था तथा सूतिका-चिकित्सकाः) (4) सेना के शल्य चिकित्सक (चिकित्सकाः शस्त्रयंत्रगदस्नेहवस्त्र हस्ताः) (5) पशु चिकित्सक।¹ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चिकित्सकों के कर्तव्य, चिकित्सकों के कार्य, का उल्लेख किया है, इतना ही नहीं किसी चिकित्सकों के द्वारा ईलाज के दौरान रोगी की मृत्यु होने या चिकित्सकों की लापरवाही के कारण होने पर उसे दण्ड देने का भी विधान था। अगर कोई वैध या चिकित्सक को बिना सूचित किये, यदि कोई वैध किसी ऐसे रोगी का ईलाज करे, जिसके मरने की संभावना है और दवा के दौरान में ही उसकी मृत्यु हो जाय, तो उस वैध को प्रथम साहज दण्ड दिया जाय

मर्मवैध वैगुण्यकरणे मर्मणि शस्त्रक्रिया अन्यथा करणे दण्डपारुष्य।

विधात् भिषनिक्रयादोषेण रोगिणो यद् अंगम् उपहंत तद् भिषज उपहन्यात्॥

यदि ईलाज में भूल हो जाने के कारण मृत्यु हो तो माध्यम साहस दण्ड दिया जाय।³ शरीर के किसी विशेष अंग का गलत ऑपरेशन होने के कारण यदि रोगी का वह अंग खराब हो जाय या हानि हो जाय तो वैध की यथोचित दण्ड देने का विधान था। यानि मौर्यकाल में चिकित्सक द्वारा गलत ऑपरेशन करने पर दंड का विधान था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में महामारी फैलने के कारणों एवं रोकथाम के उपायों का उल्लेख मिलता है, जो लोग महामारी फैलने के लिए उत्तर दायी होते थे, उसे दण्ड देने का भी विधानो का उल्लेख मिलता है। जो मरे हुए पशुओं को जहां-तहां फेंक कर बदबू और उस क्षेत्र में महामारी या संक्रमण फैलने पर सम्बन्धित व्यक्ति को अर्थ दण्ड देने का विधान था। जो व्यक्ति पेय जल को दूषित करने या पवित्र नदि, झरनो, या किसी सार्वजनिक स्थानों में मल-मूत्र कर गंदगी फैलाने या महामारी फैलाने या मरे जानवरों को फेंक कर गंदगी फैलाने पर अर्थ दंड का विधान था। इस प्रकार प्राचीन भारत में सैनेटरी व्यवस्था का उचित प्रबंध था। जैसा कि 1905 ई० में लार्ड एम्पथिल ने मद्रास मेडिकल कॉलेज में भाषण देते हुए कहा था कि हिन्दू चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत सैनेटरी का पूरा ध्यान रखा जाता था। तत्कालीन हिन्दू वैधों को जीवाणु व कीटाणु सिद्धांत के विषय में पता था, उसे यह भी पता था कि गंदगी के कारण महामारी फैलते हैं। चूहों से होने वाले संक्रमण होने का भी आभास था। संक्रमण के समय चिकित्सक घूम-घूमकर औषधि बाँटते थे।

जो व्यक्ति हथियार लगे अपने घावों का ईलाज छिपा कर कराता है और रोग या महामारी आदि फैलाने वाले द्रव्यों का छिपे तौर से उपयोग करता है उसका ईलाज करने वाले वैध यदि उसके इन कार्यों की सूचना गोप या स्थानिक को दे देता है तो वह अक्षम्य है, किन्तु यदि वह सूचना न दे तो अपराधी के समान ही उसको भी दंड देना चाहिए।⁴

मौर्यकाल की प्रमुख विशेषता मनुष्य के साथ-साथ पशुओं के लिए भी अस्पताल का निर्माण करवाया था। अशोक मौर्य के द्वितीय शिलालेख से मनुष्य और पशु दोनों के लिए चिकित्सालय खोलने तथा सड़कों के किनारे ऑषधीय वृक्षों को लगाने का आदेश दिए थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार गो, अश्व तथा गज के लिए अलग अलग चिकित्सकों को नियुक्त करने का निर्देश दिया था।⁵ अतः शासकों के आदेश से राजधानी के अलावे अन्य शहरों में जगह-जगह पर मनुष्य और पशुओं के लिए उचित चिकित्सालय का प्रबंध किए थे। यूनानी व विदेशी यात्री मेगास्थनीज के ग्रंथ इंडिका से तत्कालीन पशु चिकित्सा और चिकित्सालय के विषय में उल्लेख किया है। गिरनार के जूनागढ़ शिलालेख से दोनों प्रकार के चिकित्सालयों का संकेत मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मौर्यकालीन चिकित्सा व्यवस्था के विषय में उल्लेख मिलता है कि तत्कालीन समय में हाथियों तथा अश्वों के लिए अलग से चिकित्सक

नियुक्त होते थे। यहां तक कि गजवैध को हाथी के खाने-पीने नहलाने-धुलाने का भी प्रबंध करने होते थे। रास्ता चलने से, बीमारी के कारण, अधिक कार्य करने के कारण तथा बुढ़ापे की वजह से हाथियों को कोई कष्ट हो जाय तो गजवैध को सावधानी से चिकित्सा करने का निर्देश प्राप्त था। इसी लेख से ज्ञात होता है कि उसने अपने राज्य में नहीं अपितु समीपवर्ती राज्यों यथा-चोल, पाण्ड्य, केरलपुत्र, सतियपत्र ताम्रपर्णी तथा यवनराज में भी पशु और मनुष्यों के लिए चिकित्सा व्यवस्था कराई थी। इसके लिए औषधियों से सम्बन्ध रखने वाले वृक्ष, मूल और फल भी लगवाए थे।⁶

इसी तरह अश्वचिकित्सक के लिए कुछ निर्देश कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है।⁷ अगर घोड़े की यथा समय चिकित्सा न करने के कारण यदि उनकी बीमारी बढ़ जाय तो इलाज में जितना व्यय हो, उसका दुगुना दण्ड अश्वशाला के अध्यक्ष को देना चाहिए। यदि चिकित्सा और दवाई के दोष के कारण घोड़ा मर जाय तो जितनी कीमत का घोड़ा हो उतना दण्ड अश्वशाला के अध्यक्ष पर किया जाय।⁸

घोड़े की चिकित्सा के लिए जो नियम बने थे, वही नियम गाय, बैल, गधा, ऊँट, भैस और भेड़ - बकरियों की परिचर्या का चिकित्सा के सम्बन्ध में बने थे।⁹ सम्राट अशोक ने अधिकारियों तथा गोपालकों को निर्देश दिया था कि छोटे पशु व्याधिग्रस्त पशु एवं बूढ़े पशुओं की उचित देखभाल करे। पशु चिकित्सकों को न केवल पशुओं की चिकित्सा करना था, बल्कि पशुओं के शारीरिक विकास का भी ध्यान रखना होता था।¹⁰

मौर्यकाल में चंपा निवासी पालकल्य मुनि ने हाथियों के चिकित्सा के लिए संस्कृत में हस्यायुर्वेद ग्रंथ की रचना की थी। इसके 120 अध्यायों में हाथियों के उपचार के विषय में उल्लेख मिलता है। पालकाव्य में सुश्रुत की शैली में ग्रंथों की रचना की है। इसके चार भाग हैं (1) महारोग स्थान (2) क्षुद्ररोग स्थान (3) शल्य स्थान (4) उत्तर सिान।¹¹ इन चारों भागों में रोगों के कारण, निदान का उल्लेख है, साथ ही हाथियों को पकड़ने उनके रखने, उनके आँत रोग तथा दूध का प्रयोग, व्रण पर गर्भ जल, कुत्ते का मांस, आसव, घी आदि विधियों द्वारा उपचार करने का उल्लेख मिलता है।¹²

अश्व चिकित्सा के क्षेत्र में हयघोष के पुत्र शालिहोत्र ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। अश्वचिकित्सा को कई नाम जैसे हयायुर्वेद, तुरंग आयुर्वेद अथवा अश्वायुर्वेद तथा शालिहोत्र संहिता के नाम से जाना जाता है। शालिहोत्र द्वारा लिखी ग्रंथ में 1200 श्लोक हैं एवं आठस्थानों में अष्टांग अश्ववैद्यक का वर्णन किया गया है। पहले भाग में घोड़ी के स्वभाव, गुण, नस्ल, रंग, अनेक जातियों, अनेक आयु का पता लगाने का विधान, घोड़े के नियंत्रण के उपाय आदि का उल्लेख है दूसरे भाग में निरूपण की रीतियों का उल्लेख किया तथा इसमें विभिन्न बीमारियों-ज्वर, अन्यमूल, आँख के रोग, अतिसार, हिचकी, दया पीलिया, विष विभाग आदि का वर्णन है। तीसरे भाग में भ्रूण निर्माण, गर्भाशय, भ्रूण विकास, कठिन प्रसव एवं प्रजनन अंगों के रोगों का वर्णन है। चौथे भाग में मुख एवं जीभ सम्बन्धी रोग एवं उपचारों का वर्णन है। छठे भाग में नवग्रहों के प्रभाव एवं उपायों, सातवें भाग में दूध, शराब, नमक आदि प्रदार्थों से उत्पन्न उपद्रव एवं वस्ति का वर्णन तथा आठवें भाग में घोड़े के शरीर की रेखाओं एवं उनके मृत्यु लक्षण, विविध औषधियों का वर्णन किया गया है, जिनमें त्रिफला, जुगुल, हरड़, अदरक, सरसों, लाख आदि हैं। शालिहोत्र के चिकित्सीय उपचारों व अध्यायों का उल्लेख अग्निपुराण, मत्स्यपुराण और गरुड पुराण में मिलता है।¹³ जागलविद् नामक अधिकारी की नियुक्ति की थी जो घोड़े के ईलाज के जड़ी-बूटी को पहचानते थे कुल मिलाकर मौर्यकाल में पशु चिकित्सा का उचित प्रबंध किया था। यही कारण है कि इस काल में मानव चिकित्सा के साथ-साथ गजायुर्वेद (हाथी का ईलाज), अश्वायुर्वेद (अश्व का ईलाज), और गवायुर्वेद (छोटे पशु-पक्षी की चिकित्सा), वृक्षायुर्वेद (पेड़-पौधों को रोगों से मुक्ति) आदि चिकित्सा कर उल्लेख मिलता है।

मौर्यकाल में प्रसवकालीन शल्य कर्म करने के विषय में जानकारी मिलती है। इस काल में प्रसूति विभाग को गर्भव्याधि संस्था तथा इससे सम्बन्धित चिकित्सक को 'सूतिका' कहा जाता था।¹⁴ चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र विन्दूसार को जन्म शल्यकर्म के द्वारा ही किया गया था। मातृदेवी, गर्भवती, स्तनपान मौर्यकालीन मृण्मूर्तियाँ कई जगहों से प्राप्त हुआ है, जिससे उस समय आई. वी. एफ प्रणाली, सेरोगेसीमदर, सी-सेक्सन, यानि आधुनिक प्रसव की ओर इंगित करता है।

शव परीक्षा - अर्थशास्त्र में मृत्यु के बाद शवों को सुरक्षित रखने के उपायों का वर्णन है तथा किसी व्यक्ति की आकास्मिक मृत्यु या बिना किसी रोग के मृत्यु होने पर या संदेहास्पद मृत्यु पर मृतक शरीर का शव परीक्षण करने का उल्लेख मिलता है। अलग-अलग मृत्यु के कारणों का पता लगाने के लिए अलग-अलग विधान का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है।¹⁵ जैसे शरीर से जगह-जगह से रक्त निकल रहा हो तो किसी ऊँचे स्थान से गिरकर मृत्यु होना समझा जाता था, उसी प्रकार मुँह से झाग निकल रहा हो तथा शरीर में नीलापन हो तो विषाक्त भोजन से हत्या समझा जाता था। उसी प्रकार शरीर फूल जाने तथा शरीर में पानी भर जाने से व्यक्ति की जल में डुबोकर हत्या समझा जाता था। अगर शव का परीक्षण बाह्य आकलन पर नहीं निष्कर्ष निकलता तो शवों का अन्तः परीक्षण करने का भी उल्लेख मिलता है। आज के समान ही मौर्यकाल में आपसी रंजिश में घायल व्यक्ति अपने घावों का ईलाज छिपाकर नहीं कर सकते थे। ईलाज कराने के पूर्व उनकी सूचना स्थानीय प्रशासन वे कोतवाल को देना होता था।

अगदतंत्र या विष विज्ञान:- मौर्य काल में विष विज्ञान के क्षेत्र में विशेष प्रगति की थी। विष विज्ञान आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के आठ अंगों में से एक है, जिसमें सर्प विष तथा विभिन्न प्रकार के विषों के निर्माण, फिर विषों के प्रभाव को समाप्त करने का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने विष के विषय में लिखा है कि -

कालकूटवत्सना यहा लहा मेष शृंग मुस्ता... विषवर्ग।।¹⁶

अर्थात् कालकूट, वत्सनाभ, हलाहल, मेषशृंग, मुस्ता, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, गौराई, बालक, मार्कट, हंमवत, कालिंगक, दारदक, अंकोलसारक, उत्तक-ये विष हैं। घड़े में साँप और कीट सड़ाने से भी विष बनता है। विष को दूर करने या विष विज्ञान के विषय में कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र के चौदहवें अधिकरण के चौथे अध्याय में 'स्वबलोपधातप्रतीकारः' में विस्तृत उल्लेख किया है। लिखा है कि शत्रु द्वारा विष जैसे घातक प्रयोगों का प्रतीकार किस प्रकार करना चाहिए। इसमें यह भी लिखा है कि रजा को चाहिए अपनी और अपनी सेना की रक्षा करने के लिए विषैले धुएँ का और विषाक्त पानी का प्रयोग करता रहे। अर्थशास्त्र में विष से सुरक्षा के लिए सामान्य तरीके और चिकित्सीय उपाय भी बताएँ हैं। अर्थशास्त्र में चिकित्सकों को विष विज्ञान के विषय में ज्ञान आवश्यक बतलाया है। इस काल में विष विद्या के विषय में ज्ञान होना इसलिए भी आवश्यक था कि उस समय शत्रु पक्ष द्वारा विषों का प्रयोग कर राजा व अधिकारियों की हत्या का भय बना रहता था। उस समय विषैले साँप के अलावे विष कन्या (जो बचपन से विष के प्रयोग से शरीर को विषाक्त बना लेता था) का अधिक भय था।

सुश्रुत संहिता में भी विष कन्या के प्रयोग से शत्रु की हत्या के प्रयास का उल्लेख मिलता है। युद्ध स्थल में मार्ग, जल, वायु आदि भी दूषित कर शत्रु को हानि पहुँचायी जाती थी। इसकी परीक्षा या जाँच एवं शुद्धि के लिए विष चिकित्सकों की नियुक्ति की जाती थी। मौर्यकाल में खासकर राजाओं को विष भक्षण का अभ्यास करवाकर उसके शरीर को विषमय बनाने का भी उल्लेख मिलता है। जैसा कि चन्द्रगुप्त को मंत्री चाणक्य की द्वारा राजा को विष के प्रभाव से मुक्त रखने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य के शरीर विषमय बनाने के क्रम में एक बार धोखे से उसकी पत्नि ने दुध में मिलाये विष का सेवन किया था। अंतः मौर्य काल में विष की शीघ्र प्रभाव को कम करने या विष का विषत्व अमृतत्व में बदलने का उपाय जानना चिकित्सकों को अनिवार्य था। मौर्यकालीन रचना अर्थशास्त्र में विष विज्ञान के व्यापक महत्त्व पर चर्चा किया है। इसमें विषों की चिकित्सा में मंत्री और औषधि दोनों के प्रयोग से मुक्त के उपाय बतलाए हैं। अर्थशास्त्र में विषों के प्रभाव को समाप्त करने तथा विष के निर्माण प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ में विषों के दुष्परिणाम को समाप्त करने के उपायों का उल्लेख करते हुए लिखे हैं कि धतूरा, संभालू, पीपल इन सबकी जड़ों को मिलाकर अथवा अलग-अलग काढ़ा दूध के साथ पीने से उन्माद पैदा करने वाले विषों के प्रभाव को समाप्त कर देता है। मैक्समूलर ने यूनानी इतिहासकारों एरियन स्ट्रैबो, निर्याकस के हवाले से लिखा है कि सॉफ काटने के ईज के मामले में भारतीय चिकित्सकों को विशेषज्ञता प्राप्त था।¹⁷

सिकंदर भी इस चिकित्सा पद्धति से काफी प्रभावित था। यहां तक कि ग्रीक सैनिकों पर विष के प्रभाव को समाप्त करने के लिए या ग्रीक सैनिकों को सॉफ काट लेने से यूनानी चिकित्सकों की अपेक्षा भारतीय चिकित्सकों से ईलाज कराना अधिक पसंद करते थे। मौर्य काल में विष सम्बन्धी करने वाले चिकित्सकों को जंगली विद् कहा जाता था।¹⁸ विल डूटेन्ट ने लिखा है कि हिन्दू वैद्य विष नाशक औषधि तैयार करने में विशेष महारत हासिल था।¹⁹ विष विज्ञान के विशेषज्ञों को जांगीषिद् कहा जाता था।

अर्थशास्त्र के चौदहवें अधिकरण में विषकन्या के विषय के प्रतिकार का है। इसमें छतरे के विष को उतारने और सिर के रोगों को दूर करने का भी योग दिया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उन्मादी, पागलपन जैसे बीमारियों के ईलाज के विषय में उल्लेख मिलता है। अर्थशास्त्र में उल्लेख मिलता है कि कायफल, कांटेरूआ फंजरूआ और तिल इन तीनों के तेल को नासिक में डालने से उन्माद शांत हो जाता है।

इसके अलावे लिखा है कि कायफल, भूषकपर्णी, और विलंग इन तीनों के चूर्ण को नासिका में डालने से सिर के समस्त रोग दूर हो जाते हैं।²⁰

गिलोय, सफेद संभालू, पुष्प (औषधि) और अमरबेल, इन सब को मिलाकर मणि (ताबीज) में रखकर बाँध दिया जाय तो सभी प्रकार के विष शांत हो जाते हैं।²¹

कुल मिलाकर अर्थशास्त्र में कई बीमारियों को शांत करने या बीमारी मुक्त करने के लिए जड़ी-बूटियों और औषधियों के प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है।

सैन्य चिकित्सा (Military Medicine):- मौर्य काल में युद्ध काल में सैन्य चिकित्सा का समुचित प्रबंध किया था। मौर्यकालीन रचना अर्थशास्त्र में सेना के शिविर में वैद्य के सुसज्जित स्वरूप का वर्णन मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ऐसे चिकित्सकों की चर्चा की गई है जो अस्त्र-शस्त्र, अगद (विष), औषधी तथा परिचारक - परिचारिकाओं के साथ युद्ध शिविर में उपस्थित रहते थे। यानि मौर्यकाल में युद्ध मैदान में चिकित्सकों को साथ में जाने का निर्देश था। चिकित्सक अपने साथ औजार, कैची, चिमटी, दवाई, घी, मरहम-पट्टी और जरूरी दवाई साथ ले जाते थे।²²

यथा,

चिकित्सकाः शस्त्र यन्त्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्नपारक्षिण्यः

पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः।²³

सैन्य चिकित्सा में चिकित्सक को प्रधानतः शल्यापहरण-शस्यकर्म करना होता था। इसके अलावे विषापहरण एवं विषप्रतिषेध का कार्य करना होता था। उस समय दुश्मन या विरोधी राजा द्वारा मार्ग में पानी, फसलों पर विष का छिड़काव कर दिया जाता था। खाद्यान्न ईंधन आदि विषाक्त पर दिया जाता था, तो सैन्य दल के साथ चल रहे चिकित्सकों का कर्तव्य था कि उसकी पहचान करे तथा दूर करने का उपाय करें।

शल्यागार:- युद्ध मैदान में राजा के शिविर के बगल में शल्यागार होता था। इस शिविर पर एक ऊँचा ध्वजा होती थी जिससे कि वैद्य के पास जाने में या पहचान करने में कोई कठिनाई न हो। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के औपनिषदिक प्रकरण में होम, पूजा, उपवास, व्रत, सिद्धि द्वारा बीमारी को दूर करने का उपाय बताए हैं। अकृत्रिम बीमारियों को वैद्य लोग चिकित्सा द्वारा और सिद्ध एवं तपस्वी लोग शांति कर्म, व्रत, उपवास आदि अनुष्ठानों से दूर करने के उपायों का भी उल्लेख किए हैं।²⁴

चिकित्सक तो अपना कार्य करते ही थे। साधु संत भी संक्रामक बीमारी हैजा, प्लेग चेचका आदि संक्रामक व्याधियों को दूर करने के लिए भी इसी प्रकार का उपाय किए जाते थे। इसके लिए गंगास्नान, समुद्रपूजन, श्मशान में पूजा करने या ग्राम देवता की पूजा करने का भी उल्लेख मिलता है। यदि पशुओं में बीमारी या महामारी का रूप धारण करने पर ग्राम देवता या पशु देवता की पूजा करने का उल्लेख मिलता है। जैसा हाथी के लिए सुब्रह्मण्यम, घोड़ा के अश्विन, गौ के लिए पशुपति, भैस के वरूण तथा बकरी के अग्नि आदि देवताओं की पूजा कराने का उल्लेख मिलता है।²⁵ यानि में मौर्यकाल में चिकित्सा मंत्र और औषधि दोनों तरीकों से करता था।

चिकित्सकों के विषय में यह भी उल्लेख मिलता है कि रोगों को दूर करने के लिए औषधि मिलता है कि रोगों को दूर करने के लिए औषधि के साथ-साथ आहार को नियमित करके भी ठीक कराते थे। चिकित्सीय पेशा के विषय में उल्लेख मिलता है कि बहुमूल्य मरहमों तथा लेपों का आविष्कार किया था। चिकित्सक जंत्र-मंत्र तथा ताबीज के द्वारा भी रोगी को ठीक करते थे। वे शारीरिक भैषजशास्त्र तथा नक्षत्र विज्ञान के विशेषज्ञ होते थे। वे शराब तथा नारी से दूर रहते थे।²⁶

निष्कर्ष-

कुल मिलाकर मौर्यकाल में चिकित्सा विज्ञान व आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का भरपूर विकास हुआ था। मेगास्थनीज के इंडिका तथा अन्य विदेशी यात्री एरियन, स्ट्रैबो आदि के वर्णन से पता चलता है कि मौर्यकाल में चिकित्सा विज्ञान विकसित था। अशोक के शिलालेखों से मानव और पशु दोनों के लिए समुचित चिकित्सा प्रबंध करने का उल्लेख मिलता है, इससे पूर्व कौटिल्य की रचना अर्थशास्त्र में पशु चिकित्सा के विषय में निर्देश देते हुए उल्लेख मिला जाता है। यानि मौर्य काल में 'गजायुर्वेद' अश्वायुर्वेद तथा गवायुर्वेद के विषय में काफी विकास किया था। सैन चिकित्सा का उचित प्रबंध मौर्य शासकों ने किया था। युद्ध के दौरान चिकित्सकों की टीम भी साथ रहते थे, जो मलहम, पट्टी, कैची, अस्तुरा आदि साथ लेकर चलते थे। सैन्य चिकित्सा में मुख्यतः शल्य क्रिया का उचित प्रबंध करता था युद्ध के दौरान घायल सैनिकों को ईलाज करना मुख्य कार्य था। साथ ही विष विज्ञान के भी ज्ञाता होते थे। शल्य क्रिया के दौरान प्रसव शल्य क्रिया का भी काफी विकास किया था। विष चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में चिकित्सकों ने इतनी ही विशेषता प्राप्त था कि सिकन्दर के आक्रमण के समय यूनानी या ग्रीक सैनिकों को विष प्रभाव से मुक्त कराने तथा साँपों के विष को खत्म करने के लिए भारतीय चिकित्सकों का मदद लेते थे। या भारतीय चिकित्सकों से ईलाज कराना पसंद करते थे।

मौर्य काल में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का प्रचार-प्रसार विश्व के देशों में हुआ। अशोक के तेरहवाँ शिलालेख से मिश्र, सीरिया तक भारतीय चिकित्सा का प्रभाव परिलक्षित होता है। अशोक के समय में ग्रीक में भी भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का प्रभाव परिलक्षित होता है, चूँकि सिकन्दर अपने साथ अनेक चिकित्सकों को अपने साथ शिविरों में जगह दिए थे। मौर्य शासकों के समय में पाश्चात्य देशों में भारतीय आयुर्वेद विद्या भारतीय चिकित्सा पद्धति भारतीय औषधियों, भारतीय चिकित्सकों और भारतीय ग्रंथों का बहुत अधिक प्रभाव और सम्मान दिखाई होता है।

संदर्भ

1. राधाकुमुद मुखर्जी, चन्द्रमुख मौर्य और उसका काल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, 1993, पृ०-172
2. पूर्वोक्त
3. वायस्पति गौरोल, कौटिल्य अर्थशास्त्र, चौखम्बा पब्लिकेशन, वाराणसी, 2017, पृ०-246
4. अर्थशास्त्र 2/55/36, (संपा) राधा कुमुद मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ०-166
5. भागवत राम गुप्त, आयुर्वेद का प्रमाणिक इतिहास, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी, 2019, पृ०-368
6. ई. हुल्टज, कॉर्पस इन्सक्रिप्शानुम इण्डिकेरम, खण्ड-८, इन्सक्रिप्शन ऑफ अशोक, इण्डोलॉजिकल बुक हॉउस, वाराणसी, 1969, पृ० 2-3 पक्ति-2-8
7. अर्थशास्त्र, 2/30/2
8. अर्थशास्त्र 2/46/30
9. अर्थशास्त्र 2/46/30
10. अर्थशास्त्र 2/30/2
11. भागवत राम गुप्त, पूर्वोक्त, पृ०-371
12. पूर्वोक्त, पृ०-372
13. पूर्वोक्त
14. राधाकुमुद मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ०-172
15. पूर्वोक्त, पृ०-170, 212
16. आर. के. मुखर्जी,
17. आर. के. मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ०- 172
18. वी.डी. शुक्ल, एवं आर त्रिपाठी, आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, पृ०- 158
19. विल डूरेन्ट, सभ्यता की कहानी, (हिन्दी अनु०) श्रीकांत व्यास, पृ०-117
20. वास्प पति गौरोल, पृ०-760
21. पूर्वोक्त, पृ०-761
22. अर्थशास्त्र 10/150/3 (संपा) वास्पति गौरोल, पूर्वोक्त, पृ०-649
23. अर्थशास्त्र 10/3/20, (संपा) भागवतराम गुप्त, पूर्वोक्त, पृ०-374
24. अर्थशास्त्र 4/78/3
25. अर्थशास्त्र 4/79/3
26. आर. के. मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ०-231

मुगलकाल का सैन्य अधिकारी मीरबख्शी- एक अध्ययन

डॉ० प्रीति वाजपे

प्रोफेसर इतिहास विभाग, पंडित दीन दयाल उपाध्याय राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजाजीपुरम, लखनऊ

सारांश

मुगल साम्राज्य की सैन्य-संरचना अत्यंत संगठित, अनुशासित तथा बहुस्तरीय प्रशासनिक ढाँचे पर आधारित थी, जिसमें मीर बख्शी का पद एक केंद्रीय और निर्णायक संस्था के रूप में उभरकर आता है। मीर बख्शी केवल सैनिकों की नियुक्ति, वेतन-वितरण, परेड और निरीक्षण का प्रभारी अधिकारी नहीं था, बल्कि वह मनसबदारों और घुड़सवारों के पंजीकरण, उनकी योग्यता का आकलन, दस्तावेजों का संधारण तथा सैन्य अभिलेखों के समुचित प्रबंधन का सर्वोच्च अधिकारी था। मनसबदारी व्यवस्था के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए तजकिया निर्माण, दाग-निरीक्षण (घोड़ों की पहचान एवं सत्यापन) तथा फौजी नियंत्रण जैसे अत्यंत तकनीकी और व्यवस्थित कार्य उसकी प्रत्यक्ष निगरानी में सम्पन्न होते थे, जो मुगल सैन्य-तंत्र की आधारभूत विश्वसनीयता और दक्षता का आधार बनते थे।

इसके अतिरिक्त, मीर बख्शी शाही दरबार और सैन्य नेतृत्व के मध्य महत्वपूर्ण नीतिगत समन्वय स्थापित करने वाला केंद्रीय सलाहकार भी था। युद्ध-नीतियों का निर्धारण, सैनिकों की तैनाती, सामरिक योजनाओं का निर्माण, सीमांत प्रांतों की सुरक्षा रणनीति, विद्रोह-नियंत्रण, तथा युद्ध अभियानों के दौरान संसाधनों का समुचित प्रबंधन उसके व्यापक कार्यक्षेत्र का हिस्सा था। अकबर से लेकर औरंगजेब तक, राजनीतिक परिस्थितियों, साम्राज्य के विस्तार, सीमांत संघर्षों और प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुसार मीर बख्शी के अधिकारों, कर्तव्यों और शक्तियों में उल्लेखनीय परिवर्तन और विस्तार होते रहे। इस प्रकार, मीर बख्शी न केवल सैन्य प्रशासन की रीढ़ था, बल्कि वह राजनैतिक केंद्रीकरण, सैन्य दक्षता, साम्राज्यिक स्थिरता और क्षेत्रीय नियंत्रण को सुदृढ़ करने वाली संस्था के रूप में भी उभरता।

मुख्य शब्द: मुगल साम्राज्य, शाही दरबार, इस्लाम धर्म, सैन्य विभाग, कुरान

सातवीं शताब्दी में अरब में इस्लाम धर्म का उदय हुआ। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब (571-632ई.) ने इस धर्म के जिन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया वे 'कुरान' में संकलित किए गए। इसके अतिरिक्त मुहम्मद साहब के वे विचार जो कुरान में संकलित न हो सके उन्हें 'हदीस' कहा गया। कुरान एवं हदीस का सम्मिलित नाम ही शरीअत कहलाया। इस्लाम के राजस्व सिद्धांत का मूल आधार 'शरीअत' ही है। इस्लाम शासन तंत्र के विषय में इतिहासकार डॉक्टर आर०पी० त्रिपाठी लिखते हैं कि भारत में मुस्लिम शासन की धुरी धर्म पर आधारित थी। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार भी मुस्लिम शासन धर्म तन्त्रात्मक था और उलेमा का शासन में प्रमुख स्थान था। डॉ० ए०सी० बैनर्जी भी मुस्लिम शासन में शरीअत के प्रभुत्व को प्रमुख मानते थे।

इस प्रकार मुसलमान शासन में शरीअत के प्रभुत्व को देखा जाता था। उलेमा व खलीफा का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता था, परंतु समय के साथ स्थितियां परिवर्तित हुई तथा कालान्तर में भारत में मुगलों ने एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की जिस पर खलीफा की सत्ता का अंकुश नहीं रहा। मुगल प्रशासन सैन्य शक्ति पर आधारित एक केंद्रीकृत व्यवस्था थी। मुगलकालीन राजस्व के सिद्धांत की स्पष्ट व्याख्या अबुल-फजल ने आईन-ए अकबरी में की है। मुगल सम्राट सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति तथा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। वास्तव में साम्राज्य की सारी शक्तियां सम्राट में निहित होती थी।

केंद्रीय प्रशासन के चार प्रमुख स्तंभों में वजीर, मीर बख्शी, खान-ए-शामा और रुद्र-उस-सुदूर थे। वजीर राजस्व विभाग तथा बादशाह का प्रधानमंत्री होता था। सम्राट की अनुपस्थिति में वह शासन के सभी साधारण कार्यों को बादशाह की ओर से देखता था। दूसरा स्तंभ मीर बख्शी सैन्य प्रशासन की देखभाल मनसबदारों का प्रधान, सैनिकों की भर्ती, हथियारों तथा अनुशासन का प्रभारी होता था। जबकि रुद्र-उस-सुदूर धार्मिक मामलों का अधिकारी था। दान विभाग भी उसी के अंतर्गत आता था। रुद्र-उस-सुदूर को शेख-उस-इस्लाम भी कहा जाता था।

मुगलकाल में केंद्रीय प्रशासन की इकाई में महत्वपूर्ण विभाग सैन्य विभाग था। इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी मीर बख्शी कहलाता था। प्रारंभ में इस पद का अस्तित्व नहीं था, संपूर्ण शक्तियां वजीर के हाथों में होती थी। इस विभाग के इतिहास को देखा जाए तो इसका प्रथम गठन दिल्ली सल्तनत में बलबन के काल में हुआ था। वजीर की शक्तियों को कम किया गया तथा सैनिक विभाग एक पृथक मंत्री के अधीन कर दिया गया। बलबन के समय एमादुल-मुल्क इस पद पर रहा। अलाउद्दीन खिलजी के समय इस पद की प्रतिष्ठा में अधिक वृद्धि हुई इतिहासकार का वरनी ने भी इसकी प्रशंसा की।

इस प्रकार केंद्र सरकार में नया विभाग स्थापित हुआ। सल्तनत काल में विभिन्न नामों द्वारा इसका उल्लेख मिलता है जैसे रावते-अर्ज-ए-ममालिक तथा दीवान-ए अर्ज। मुगलकाल में सैन्य विभाग के अधिकारी को मीर बख्शी कहा जाने लगा।

बख्शी शब्द के उद्गम के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसकी जानकारी स्पष्ट रूप से कहीं दिखाई नहीं देती। संभवतः बख्शी भिक्षु शब्द से बना है। प्रथमतः यह बौद्ध धर्मान्तर्गत पौरोहित्य भाग का बोध कराता है। तुर्की के लेखकों को मंगोलों और तुर्क आबादी के लिए उईगुर लिपि में दस्तावेजों को तैयार करना पड़ा संभवतः इसी समय यह नया शब्द प्रकाश में आया हो। सर डेनिसन रास ने अपनी पुस्तक ट्रेवल्स ऑफ मार्कोपोलो

में बख्शी, लामाओं के एक समुदाय विशेष की उपाधि बताई थी। वार्थोल्ड लाफर ने एक लेख में उईगुर के पग-सी शब्द के साथ बख्शी का उल्लेख किया है। भारत के सम्राटों के अधीन सेना संबंधी बख्शी पद और आंग्ल भारतीय बख्शी दोनों स्वतंत्र शब्द हैं। इरविन के अनुसार यह फारसी शब्द 'बख्शीदान' से बना शब्द है जिसका अर्थ प्रदान करने वाला अथवा प्रदान करना होता है। यह पद नौकरियां प्रदान करता था अतः इससे ही संभवतः ये 'बख्शी' हुआ। मुगलों के शासन काल में बख्शी वह उच्चपदस्थ अधिकारी होता था जो सैनिकों की टुकड़ियों का पंजीकरण करता था तथा उन्हें वेतन प्रदान था।

मुगल साम्राज्य में मीर बख्शी विभाग का अध्यक्ष होता था जिस कारण दीवाने-ए-अर्ज वाले सारे कार्य व अधिकार उसको प्राप्त थे। यद्यपि वह सेना से संबंधित था, परन्तु उसका प्रभाव मात्र सैनिक विभाग तक सीमित न रहकर अन्य राजकीय विभागों पर भी था। उसे ना ही सैनिक क्षमताओं से युक्त होना आवश्यक था बल्कि उसे प्रशासनिक गुणों से भी परिपूर्ण होना आवश्यक था। प्रशासनिक कार्य क्षमता उसके लिए महत्वपूर्ण थी। समय के साथ मीरबख्शी कर्तव्य व प्रतिष्ठा की दृष्टि से वजीर के बराबर के भागीदारी बन गए। सभी प्रकार के मनसबी और राज्य के उच्च पदों पर जैसे वकालत, वज्जरात और सदारत पर नियुक्तियों के आदेश मुख्य बख्शी से होकर ही गुजरते थे। मीरबख्शी के पद को सबसे अधिक प्रतिष्ठा मुगल प्रमुख शासक 'अकबर' के समय प्राप्त हुई। अकबर के समय मीर बख्शी के पद का विकास हुआ।

मुगल काल में इस पद के लिए कोई निश्चित अवधि नहीं थी। कितने वर्ष उसे सेवाएं प्रदान करनी हैं यह सम्राट पर निर्भर करता था। इसकी नियुक्त सम्राट द्वारा होती थी तथा सम्राट की इच्छा तक वह अपने पद पर बना रह सकता था। यद्यपि बख्शियों की संख्या का उल्लेख आईने-अकबरी में वर्णित नहीं है। इस काल के अन्य लेखों के आधार पर पता चलता है कि अकबर के काल में 15 व्यक्तियों, जहांगीर के काल में 5 व्यक्तियों ने, शाहजहाँ के काल में 9 तथा औरंगजेब के समय में 10 व्यक्तियों ने इस पद पर कार्य किया।

अकबर के शासन काल में लश्कर खाँ, शहबाज खाँ, आसफ खाँ, कजवीनी तथा शेख फरीद वे मुख्य व्यक्ति थे, जिन्होंने इस महत्वपूर्ण पद पर रहते हुए अपनी सेवाएं प्रदान कीं। जहांगीर के काल में शेख फरीद तथा शाहजहाँ के काल में मीर जुमला जफर खाँ, खली उल्ला खाँ तथा औरंगजेब के काल में मोहम्मद अमीन खाँ, असद खाँ, एवं जुल्फिकार खाँ इस पद पर रहने वाले महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। मीर बख्शी की सहायता के लिए अन्य बख्शियों को भी नियुक्त किया जाता था। अकबरनामा में आए मीर बख्शी शब्द से इस पद के तथा अन्य बख्शियों के पद के अंतर का पता चलता है। अकबर के समस्त शासन काल में मीर बख्शी तथा बख्शियान शब्दों का प्रयोग मिलता है। जिससे स्पष्ट होता है कि एक तो मीर बख्शी होता था तथा अन्य सहायक बख्शी होते थे अकबर के शासन काल में एक मीर बख्शी एवं आददियों के लिए एक अलग बख्शी होता था। जहांगीर के शासनकाल में इस पद में कुछ परिवर्तन भी किए गए तथा जहांगीर के समय मीर बख्शी सहित सात व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। एक मीर बख्शी, दो बख्शी, बख्शी ए हुजूर एक बख्शी-ए-अहदा तथा एक बख्शी-गरी-ए-दर-ए-खाना तथा बख्शी-ए-शार्गिद। शाहजहाँ के काल में 3 बख्शियों की परम्परा स्थापित हुई अर्थात् मीर बख्शी एवं दो सहायक बख्शी इन्हें दूसरा व तीसरा बख्शी कहा जाता था। इन तीनों बच्चियों के कार्य विभाजित थे बख्शी ए हुजूर का पद शाहजहाँ के शासनकाल में समाप्त कर दिया गया। बख्शी-ए-अहदी एवं बख्शी-ए-शार्गिद पेशे के रूप में थे परन्तु यह मात्र विशेष श्रेणी के राज्य कर्मचारियों से संबंधित था। इसी कारण डॉक्टर इब्ने हसन इन्हें केंद्रीय शासन विभाग का सदस्य नहीं मानते परन्तु वे केंद्रीय शासन के अंग तो थे ही डॉ० जदुनाथ के अनुसार औरंगजेब के शासनकाल में एक मीर बख्शी व अन्य तीन बख्शी थे।

इसके अतिरिक्त सेना के प्रत्येक विभाग के प्रबंध के लिए अलग बख्शी होता था। सैनिक अभियानों के समय सेना के प्रबंध के लिए एक व्यक्ति रहता था जिसे बख्शी-ए-लश्कर कहा जाता था। प्रांतों में भी प्रत्येक प्रांत में सूबेदार के अधीन बख्शी कार्य करते थे। इसी परंपरा के आधार पर प्रमुख उभरा अपनी सेना के प्रबंध के लिए जिस अधिकारी को नियुक्त करते थे उसे भी बख्शी कहा जाता था।

मीर बख्शी के कार्य:- सल्तनत काल के दीवाने अर्ज वाले सभी अधिकार मीर बख्शी को प्राप्त थे। शाही फरमानों की मनसबी तहरीर एवं वे व्यवस्थाएं जो फरमानों को पार करनी पड़ती थी, इस बात पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। सभी प्रकार के मनसबी एवं राज्य के उच्च पदों जैसे वकालत, बाज्जरात और सदारत की नियुक्तियों के आदेश मीर बख्शी की संस्तुति के बाद ही प्रक्रियाधीन होते थे। 'तालीक' की स्थिति को पहुंचा हुआ आदेश जिसमें जागीर प्रदान करने की बात और दागने की शर्त होती थी उसके पास ही भेजा जाता था। वह उस पर अपने मुहर व हस्ताक्षर लगाकर एक प्रमाण पत्र देता था, जिसे 'सरखत' कहा जाता था। इसी के आधार पर दीवान अपने अभिलेखों में प्रविष्टियां कर उसे स्वीकृति के लिए राजा के समक्ष रखता था। परमाणुओं की तरह ही पखानचे बारात भी उसके हाथों से गुजरते थे। इस प्रकार के सभी आदेशों पर वह साम्राज्य के दीवान की मुहर के पास ही अपनी मुहर अंकित करता था।

दरबार में मीर बख्शी:- दरबार में मीर बख्शी शासक के सिंहासन के दाहिने और खड़ा होता था तथा अपने विभाग से संबंधित मामलों को राजा के सम्मुख प्रस्तुत करता था। नव नियुक्त सैनिकों को दाग-व-तशीमा के पश्चात बख्शी द्वारा सम्राट के सामने पेश किया जाता था। अबुल फजल लिखते हैं कि सैनिक बनने के लिए ईरानी तूरानी, रूमी, फिरंगी, हिंदी तथा कश्मीरी सभी आते थे। संबंधित अधिकारी नियम के अनुसार उनके वेतन निश्चित करते तथा बख्शी उन्हें सम्राट के सम्मुख उपस्थित करते थे। विभाग का अध्यक्ष होने के नाते वह प्रांतों से आने वाले अथवा राजधानी से अपने मुख्यालय को जाने वाले सभी सरकारी उच्चाधिकारियों, राजदूतों और विशिष्ट मुलाकातियों को राजा के सामने पेश करता था। इसी कारण हॉकिंस ने उसको लेफ्टिनेंट जनरल कहा। राज महल के रक्षकों में मुख्य अधिकारी होने के कारण पुरस्कार अथवा सम्मान के लिए नाम मीर बख्शी को ही प्रस्तुत करने होते थे। बख्शी प्रतिदिन रक्षकों और सिपाहियों के नाम पढ़कर सुनाते थे। बादशाह उन्हें पुरस्कार स्वरूप हाथी घोड़े व अन्य वस्तुएं प्रदान करता। जब किसी सैनिक को एक बार पुरस्कार मिल जाता तो एक वर्ष के लिए उसका नाम किसी दान के लिए अनुशंसित नहीं किया जाता था।

राजधानी में मीर बख्शी:- राज्य में सैन्य विभाग का अध्यक्ष होने के कारण मीर बख्शी सभी सैनिकों अथवा रक्षकों की सूचियां रखता था। राजधानी के मनसबदारी को सात भागों में बांटा गया था। उनमें से प्रत्येक के लिए सप्ताह का एक दिन निश्चित था और इसकी सूची भी मीर बख्शी द्वारा ही तय की जाती थी। अकबर के शासन काल की एक घटना उल्लेखनीय है। अकबर के समय शाहबाज खाँ मीर बख्शी के पद पर कार्यरत थे तथा शाहबाज खाँ का नाम सूची में अब्दुल रहीम खानखाना के बाद दूसरे नंबर पर रखा जाता था। इस कारण समय बादशाह के समक्ष इसका जोरदार विरोध भी हुआ, जिस

कारण उसे कुछ समय के लिए बंदी भी बनाया गया। दूसरी उल्लेखनीय घटना मीर बक्शी शेख फरीद की है। उसने पहरेदारी को मनोनीत करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करके एक अत्यंत कठिन स्थिति को अपनी सूझबूझ से संभाल लिया। क्योंकि उस समय बादशाह अकबर अपनी मृत्यु शैया पर थे, साम्राज्य का वकील और मानसिंह राजकुमार खुसरो में रुचि ले रहे थे तथा सलीम के राज्याभिषेक को नहीं चाहते थे, परन्तु उस समय के लेखक तहब्बुर खां के विवरण से पता चलता है कि शेख फरीद नगर में कोई उत्पात नहीं चाहते थे। शेख फरीद ने निर्भयता पूर्ण कदम उठाया तथा सलीम के विद्रोहियों को बुद्धिमता पूर्ण ढंग से मात दी। सभी व्यवस्थाओं को दुरुस्त कर सलीम की अकबर से भेंट करवाई गई अकबर ने प्रसन्न होकर अपनी निजी तलवार सलीम को भेंट की। इस प्रकार मीर बक्शी शेख फरीद के साहस पूर्ण कार्य के कारण ही शांति भंग करने वाला कार्य रुक गया तथा सलीम का राज्यारोहण बिना किसी रक्तपात के संभव हो पाया।

मीर बक्शी का एक कार्य यह भी था कि वह विभिन्न प्रांतों के तकियानवीसों द्वारा भेजे गए प्रतिवेदन एवं सूचनाओं को पहले स्वयं प्राप्त कर बादशाह के समक्ष प्रस्तुत करें, जिससे प्रांतों के साथ भी मीर बक्शी जुड़ा रहता था तथा इस भूमिका के निर्वहन के कारण राजधानी में उसके प्रभाव में वृद्धि हुई।

युद्ध क्षेत्र में मीर बक्शी:- मीर बक्शी व उसके अन्य सहयोगी तीन परिस्थितियों में युद्ध क्षेत्र में उपस्थित रहते थे। प्रथम जब बादशाह स्वयं सेना का नेतृत्व कर रहा हो तब मीर बक्शी को राज्य व्यवस्था की देखभाल और कार्यकुशलता सुनिश्चित करने तथा अधिकारियों में एकता रखने की दृष्टि से सेना के साथ जाना पड़ता था। साथ ही यात्राओं के समय पर भी किए जाने वाले सारे कर्तव्यों का निर्वहन करता। दूसरी परिस्थिति में उसे सेनाधिपति के रूप में कार्य करना पड़ता जब उसे टुकड़ी को डिवीजन सौंप दिया जाता था। तीसरी युद्ध क्षेत्र में जाने की परिस्थिति वह होती थी जब किसी राजकुमार अथवा बड़े अमीर के नेतृत्व में सेना भेजी जाती इस अवसर पर भी मीर बक्शी युद्ध क्षेत्र में जाकर उसे सहायता प्रदान करता था। अकबर के शासन काल में शाहबाज खाँ (तत्कालीन मीर बक्शी) को 'राजा टोडरमल' और 'मिर्जा अजीब कोका' के साथ बिहार भेजा गया था। इस प्रकार की परिस्थिति में मीर बक्शी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता था।

सेना के प्रत्येक डिवीजन (भाग) का अलग बक्शी होता था, अधिकांश परिस्थितियों में तकियानवीस का कार्य भी उसे करना पड़ता था। वह शासक तथा केंद्र सरकार को नियमित सूचनाएं भेजता तथा ऋणों का संपूर्ण विवरण रखता व्यवस्था अग्रिम राशि अथवा वेतन देना आदि युद्ध रत सेना के बक्शी के प्रमुख कर्तव्य में शामिल थे। इस प्रकार मीर बक्शी युद्ध क्षेत्र में विभिन्न जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी सामने वाले सेना का मुकाबला भी करते थे।

बादशाह के दौरो के समय मीर बक्शी:- सैनिक विभाग के अध्यक्ष होने के कारण बादशाह तथा मनसबदारों के बीच संपर्क सूत्र के अधिकार से मीर बक्शी बादशाह के साथ विभिन्न दौरो अन्य सैर सपाटो अथवा शिकार के अभियानों के समय बादशाह के साथ ही रहता था, जहां वह शिविर के प्रबंध की देखभाल करता तथा बादशाह के साथ जाने वाले मनसबदारों और अधिकारियों को दरबार में उपस्थित होने की अनुमति भी मीर बक्शी ही प्रदान करता था। सैनिक दस्तों की सुविधाओं और उनकी यातायात व्यवस्था का संपूर्ण ध्यान मीर बक्शी को रखना पड़ता था।

बादशाह के निजी कक्ष में मीर बक्शी:- मीर बक्शी अथवा मुख्य बक्शी बादशाह के निजी कक्ष में भी बादशाह के साथ जाता तथा समस्त बैठकों के समय वहां उपस्थित रहता था। साम्राज्य को विभिन्न महत्वपूर्ण जानकारियों को भी बताता गुसलखाना में भी मीर बक्शी राजा के दाहिनी ओर रहता। शाहजहाँ के शासनकाल में महत्वपूर्ण तथा परमावश्यक कार्य के लिए मीर बक्शी को शाहबुर्ज में भी प्रवेश की अनुमति थी।

मीर बक्शी अपने कार्यालय में:- मीर बक्शी का कार्य तथा केंद्र सरकार में उसका विभाग बहुत महत्वपूर्ण था। एक प्रकार से साम्राज्य की सभी विशेष सेवाओं पर इसका प्रभुत्व था। मीर बक्शी निम्न पर प्रयोजनों हेतु अपने हस्ताक्षर तथा मुहर द्वारा प्रमाण पत्र जारी करता था।

- (1) मनसबों का अनुदान, राजकुमारों तथा अन्य सभी अधिकारियों तथा उच्च पदस्थ अमीरों व उच्चाधिकारियों को वेतन वृद्धि की स्वीकृति।
- (2) घोड़े दागने का कार्य।
- (3) पहरेदारों के कर्तव्य को सुपुर्द करना।
- (4) सैनिक दलों का एकत्रीकरण।
- (5) अमीर एवं मनसबदारों के घोड़ों की दगाई तथा सैनिकों का सत्यापन। (इसकी आवश्यकता संबंध मनसबदार अथवा अमीर की मृत्यु या बर्खास्तगी पर पड़ती थी।)
- (6) मनसबदारों के पदस्थापन।
- (7) प्रांतों के बख्शियों और तकियानवीसों का पदस्थापन।
- (8) दरोगा अमीन और रक्षक दल के मुंशी की नियुक्तियां।
- (9) बादशाह के अपने घोड़ों की दगाई सैनिक दलों के सत्यापन के लिए दरोगा, अमीन तथा मुशरफ की नियुक्तियां तथा उक्त व्यक्तियों का प्रांतों और भिन्न-भिन्न सेना में स्थानांतरण।

मीर बक्शी के कार्यालय में शासन से संबंधित पत्र तथा अभिलेख भी रहते थे जिसमें से प्रमुख निम्न हैं:-

- (1) राजधानी एवं प्रांतों में तैनात मनसबदारों की सूची।
- (2) मनसबदारों द्वारा देय मांग।
- (3) नगद वेतन, जागीर से संबंधित विनियम।
- (4) वेतन पत्रों के सारांश।
- (5) मनसबदारों एवं सवारों के चेहरों की विवरणिका।

- (6) घोड़ों को दागने तथा उनकी जाँच से संबंधित प्रपत्रों की सूची।
- (7) राजमहल में उपस्थिति गारद की सूची।
- (8) प्रांतों में उपस्थित मनसबदारी एवं सेना की सूची।

मीर बख्शी के पद के स्वरूप के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसके अधिकार एवं कर्तव्य इस प्रकार निर्धारित किए गए थे कि वह बादशाह को विभिन्न सुविधाएं उपलब्ध कराएं तथा स्वयं कभी बादशाह के लिए समस्याएं न बने। सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियां पदोन्नतियाँ तथा अन्य शासकीय कार्य बादशाह की आज्ञा से ही होते थे। डॉक्टर जदुनाथ सरकार ने बख्शी को वेतन अधिकारी कहा तथा ब्लाकमैन मीर बख्शी को वे मास्टर एडजुटेंट जनरल मानते थे। शोध के माध्यम से प्रमाणित होता है कि वेतन अधिकारी का कार्य मीर बख्शी का स्थाई कार्य नहीं था, उसे सारा हिसाब दीवान को अवश्य देना पड़ता था जिसके पश्चात उसका वेतन अधिकारी कार्य समाप्त हो जाता था मेरे बच्चे ना तो दीवान की स्वीकृत के बिना धन बांट सकता था और ना ही भूमि दान दे सकता था परंतु फिर भी मीर बख्शी का पद मुगल शासन की अपनी विशेषता थी।

सन्दर्भ

- (1) जे0एल0 मेहता: मध्यकालीन भारत का वृहद इतिहास (खण्ड-2)
- (2) बी0एन0 लूनिया: मुगल शासन व्यवस्था
- (3) प्रो0 राधेश्याम: मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति।
- (4) हरीश चंद्र वर्मा: मध्यकालीन भारत (भाग-2)।
- (5) यदुनाथ सरकार: मुगल एडमिनिस्ट्रेशन।
- (6) इब्ने हसन: मुगल साम्राज्य का केंद्रीय ढांचा।
- (7) ब्लॉक मैन: आईने अकबरी (भाग-1)।
- (8) कुरेशी: द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ मुगल एंपायर।
- (9) जान रिचर्ड: द मुगल एंपायर।
- (10) <http://bharatdiscovery.org/India>

बिहार में मुसलमानों का शैक्षिक पिछड़ापन: समस्याएं और संभावनाएं

मो० रेयाज अंसारी

सहायक प्राचार्य सह विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, राम कृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

सारांश

बिहार में मुसलमान राज्य के सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, वे बिहार की कुल जनसंख्या का लगभग 16.87 प्रतिशत हैं। बिहार में मुसलमान अपेक्षाकृत रूप से शिक्षा की दृष्टि से वंचित समुदाय हैं। उन्हें अपने इलाके में सभी शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, यहाँ तक कि उनके पास स्थानीय मकतब और मदरसा भी नहीं है। मुसलमानों में साक्षरता दर केवल 42% है जबकि बिहार की औसत साक्षरता दर 63.83% है। मुसलमानों में पुरुष साक्षरता दर 51.8% और महिलाओं में साक्षरता दर 31.5% है, जो राज्य के पुरुष साक्षरता (73.32%) और महिला साक्षरता (53.33%) के औसत से काफी कम है। यह एक सर्वमान्य धारणा है कि शिक्षा ही एकमात्र ऐसा तंत्र है जो समुदायों के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है। हालाँकि पूरे भारत में शिक्षा का स्तर अभी भी सर्वमान्य मानकों से नीचे है, परंतु उसमें भी विशेष रूप से मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति गंभीर चिंता का विषय है। आँकड़े निर्विवाद रूप से प्रदर्शित करते हैं कि शिक्षा के मोर्चे पर मुसलमान अपने गैर-मुस्लिम समकक्षों की तुलना में बहुत कम सक्षम हैं, और यह भारत के लगभग हर राज्य का सच है। इस समुदाय ने किसी भी अन्य सामाजिक-धार्मिक समुदाय की तुलना में धीमी गति से प्रगति की है। कई पहलुओं में, पारंपरिक रूप से वंचित अनुसूचित जाति/जनजाति ने भी उन्हें पीछे छोड़ दिया है। ऐसी पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत शोधपत्र राज्य के सबसे बड़े अल्पसंख्यक समुदाय के शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी कारकों का विश्लेषण करता है। इसके अलावा, इस अध्ययन में बिहार में मुसलमानों की शिक्षा की समस्याओं की भी पहचान की गई है और सुधार के लिए आगे सुझाव और उपाय प्रस्तुत किए गए हैं।

परिचय

शिक्षा समाज के लिए परिवर्तन और विकास का साधन है। यह मानवशक्ति को प्रशिक्षित और विकसित करती है, समाज में परिवर्तन लाती है और साथ ही सामाजिक पदानुक्रम में व्यक्ति की स्थिति को एक स्तर से दूसरे स्तर तक पहुँचाती है। सामाजिक और आर्थिक प्रगति को सुगम बनाने में शिक्षा की भूमिका आज सर्वमान्य है। शिक्षा के माध्यम से बच्चों और युवाओं की कार्यात्मक और विश्लेषणात्मक क्षमता में सुधार होता है। समकालीन विश्व में, विशेष रूप से विकासशील देशों में, आधुनिक शिक्षा को आधुनिकीकरण के एक साधन और लक्ष्य के रूप में देखा जाता है। शिक्षा के बारे में यह एक सर्वमान्य धारणा है कि यह एकमात्र ऐसा साधन है जो किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक उन्नति की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। हालाँकि पूरे भारत में शिक्षा की स्थिति अभी भी सर्वमान्य मानकों से नीचे है, लेकिन मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति वर्तमान में गंभीर चिंता का विषय है।¹ मुस्लिम समुदाय की प्रगति किसी भी अन्य सामाजिक-धार्मिक समुदाय की तुलना में धीमी है। कई पहलुओं में, मुसलमानों को ऐतिहासिक रूप से वंचित अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों ने भी पीछे छोड़ दिया है।²

शिक्षा का विकास मानव विकास का प्रतीक माना जाता है। परंतु भारत के सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय की शैक्षिक स्थिति भयावह रूप से बिगड़ गई है, जबकि वे देश की कुल आबादी का 14.2 प्रतिशत हैं और उनका कई शताब्दियों का गौरवशाली अतीत रहा है। भारत की साक्षरता दर 1951 में 18.53% थी, जो वर्ष 2001 में बढ़कर 64.8% हो गई और 2011 में 74.04% तक पहुँच गई।³ राष्ट्रीय स्तर पर साक्षरता दर में वृद्धि के बावजूद, मुस्लिम समुदाय में शैक्षिक पिछड़ापन समय-समय पर विभिन्न आधिकारिक अभिलेखों द्वारा स्थापित किया गया है। सचचर समिति की रिपोर्ट (2006), गोपाल सिंह अल्पसंख्यक पैनल रिपोर्ट, वर्ष 1986 और 1992 की नई शिक्षा नीति, और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 55वें दौर की रिपोर्ट ने सर्वसम्मति से स्थापित किया कि शैक्षिक पिछड़ापन मुस्लिम समुदाय में गरीबी के प्रमुख कारणों में से एक है।⁴

भारत में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध और पारसी की पहचान धार्मिक अल्पसंख्यक के रूप में की है, जो देश की कुल जनसंख्या का 18.8% हैं। इन अल्पसंख्यकों में, मुस्लिम भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारत में दुनिया की सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी निवास करती है, लगभग 156 मिलियन जो कुल जनसंख्या का 14.2 प्रतिशत है। यह देखने वाली बात है कि भारतीय मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति बहुत कमजोर है।⁵ व्यापक निरक्षरता, कम आय, अनियमित रोजगार, उच्च गरीबी के कारण भारतीय मुसलमानों की स्थिति मानव विकास की दृष्टि से बेहद खराब है। इस देश में पारसी, ईसाई और हिंदू जैसे समुदायों ने शिक्षा के क्षेत्र में पहले शुरुआत की थी, जबकि मुसलमानों ने बहुत बाद में इस क्षेत्र में प्रवेश किया। मुसलमानों को उनकी आर्थिक बदहाली से बाहर निकालने के लिए शिक्षा एक अनिवार्य साधन है। भारतीय मुसलमान अपनी आर्थिक स्थिति, स्कूलों की अनुपलब्धता, अधिक संख्या में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों, उपलब्ध स्कूलों में संसाधनों की कमी और शिक्षा में कम रुचि, समुदाय में ईमानदार नेतृत्व की कमी के कारण साक्षरता हासिल करने में बहुत पीछे हैं।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत सम्पूर्ण बिहार को इकाई के रूप में लिया गया है। जिसका भौगोलिक विस्तार 24°21'10" से 27°31'15" उत्तरी अक्षांशों तथा 83°19'50" से 88°17'40" पूर्वी देशांतरों के मध्य है। इसका क्षेत्रफल 94,163 वर्ग किलोमीटर है। यह गंगा नदी के उपजाऊ मैदानों में बसा है और जनसंख्या के हिसाब से तीसरा सबसे बड़ा राज्य है। उत्तर से दक्षिण बिहार की कुल लंबाई 345 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम में चौड़ाई 483 किलोमीटर है। इसका समृद्ध इतिहास रहा है, जहाँ मौर्य और गुप्त जैसे कई राजवंशों का शासन रहा है। बिहार अपनी समृद्ध संस्कृति और ऐतिहासिक महत्व के लिए भी जाना जाता है।

समस्या अभिव्यक्ति

आकड़े बताते हैं कि बिहार में मुसलमान राज्य के सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, वे बिहार की कुल जनसंख्या का लगभग 16.87 प्रतिशत हैं। बिहार में मुसलमान अपेक्षाकृत रूप से शिक्षा की दृष्टि से वंचित समुदाय हैं। उन्हें अपने इलाके में सभी शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, यहाँ तक कि उनके पास स्थानीय मकतब और मदरसा भी नहीं हैं। मुसलमानों में साक्षरता दर केवल 42% है जबकि बिहार की औसत साक्षरता दर 63.83% है। मुसलमानों में पुरुष साक्षरता दर 51.8% और महिलाओं में साक्षरता दर 31.5% है जोकि चिंता का विषय है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के लिए निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं:-

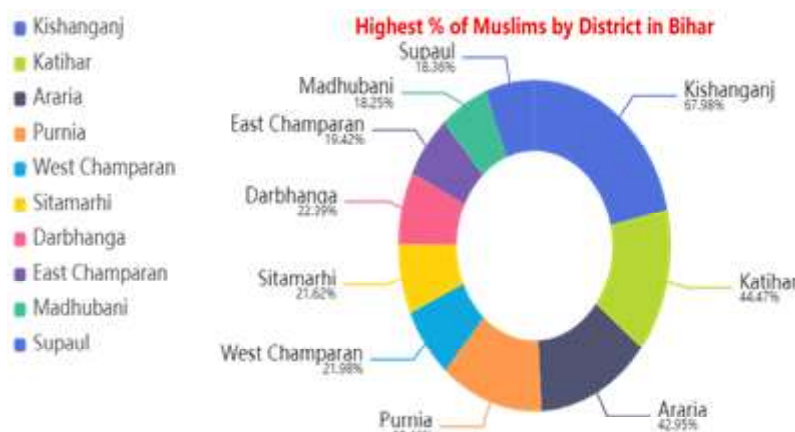
1. बिहार में मुस्लिम समुदाय के शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी कारकों की पहचान करना।
2. मुस्लिम समुदाय की शिक्षा संबंधी समस्याओं की पहचान करना।
3. मुस्लिम समुदाय में शैक्षिक सुधार हेतु सुझाव और उपाय प्रस्तुत करना।

आंकड़ों का स्रोत और कार्यप्रणाली

वर्तमान अध्ययन आँकड़ों के द्वितीयक स्रोत पर आधारित है। अध्ययन की इकाई के रूप में सम्पूर्ण बिहार को लिया गया है। यह शोधपत्र सरकारी रिपोर्टों, पुस्तकों, पत्रिकाओं, लेखों, समाचार पत्रों और इंटरनेट वेबसाइटों की सहायता से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित है। आँकड़ों को तालिकाओं और चित्रों की सहायता से प्रस्तुत किया गया है। व्याख्या के लिए विभिन्न स्तरों पर आरेखीय और मानचित्रण तकनीकों का उपयोग किया गया है। एकत्रित स्रोत के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं और विभिन्न दृष्टिकोणों से एकत्रित आँकड़ों की व्याख्या की गई है। इस शोधपत्र की प्रकृति वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक है।

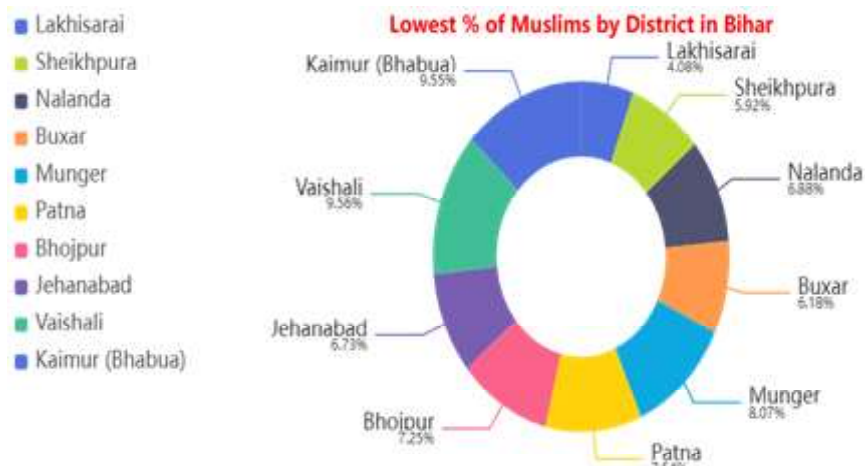
चर्चा एवं विश्लेषण

बिहार में मुसलमान राज्य के सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, वे बिहार की कुल जनसंख्या का लगभग 16.87 प्रतिशत हैं। बिहार में कुल 38 जिले हैं और लगभग प्रत्येक जिले में मुस्लिम आबादी निवास करती है। लेकिन यहाँ के कुछ जिले ऐसे हैं जहाँ मुस्लिम आबादी अधिकता में केंद्रित हैं। इन जिलों में किशनगंज, कटिहार, अररिया तथा पूर्णिया आते हैं। किशनगंज में सबसे अधिक 67.98% मुस्लिम आबादी है। इसके बाद कटिहार (44.47%), अररिया (42.95%) और पूर्णिया (38.46%) का स्थान है। इन क्षेत्रों में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव प्रबल है। उच्च हिस्सेदारी वाले अन्य जिलों में दरभंगा (22.39%), पश्चिमी चंपारण (21.98%), सीतामढ़ी (21.62%), पूर्वी चंपारण (19.42%), मधुबनी (18.25%) और सीवान (18.26%) शामिल हैं।



ग्राफ - सघन मुस्लिम आबादी वाले जिले

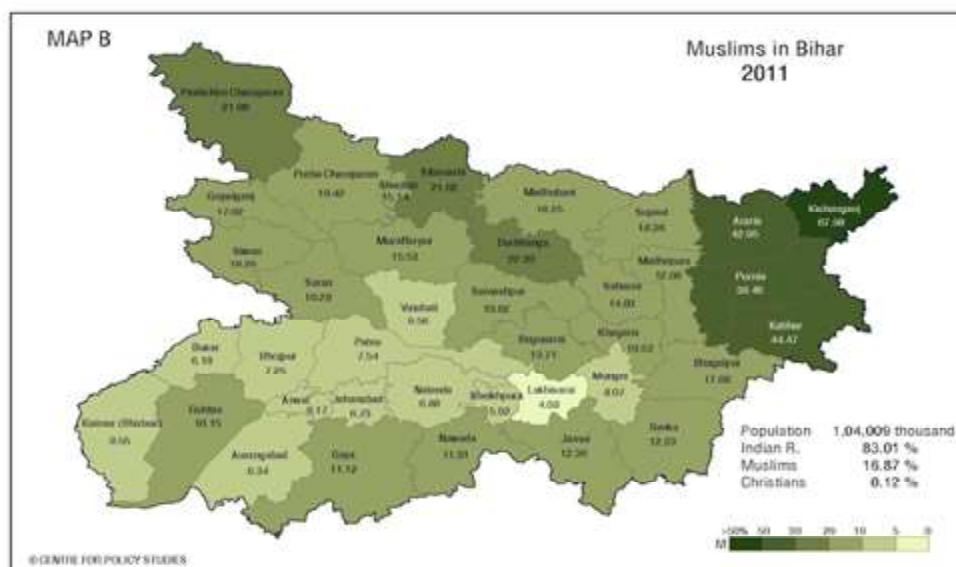
बिहार के कुछ जिलों में मुस्लिम आबादी बहुत कम है। लखीसराय में सबसे कम, केवल 4.08% मुस्लिम हैं। कम प्रतिशत वाले अन्य जिले हैं शेखपुरा (5.92%), बक्सर (6.18%), भोजपुर (7.25%), मुंगेर (8.07%), नालंदा (6.88%), जहानाबाद (6.73%), पटना (7.54%), अरवल (9.17%), और कैमूर (9.55%)।



ग्राफ - विरल मुस्लिम आबादी वाले जिले

उपर्युक्त आकड़ों को देखने से पता चलता है कि बिहार के 38 जिलों में से किशनगंज एकमात्र ऐसा जिला है जहाँ 50% से अधिक मुस्लिम आबादी रहती है और शेष जिलों में मुस्लिम आबादी 50% से कम है। दो जिलों में मुस्लिम आबादी 40% से अधिक है, एक जिले में 30% से अधिक और तीन जिलों में 20% से अधिक है। हालाँकि, इसमें उल्लेख किया गया है कि बिहार के 38 जिलों में से केवल 7 जिलों में 20% से अधिक आबादी है और शेष जिलों में 20% से कम आबादी है। (मानचित्र-01)

मानचित्र-01 बिहार में मुस्लिम आबादी (प्रतिशत में)



स्रोत- सेंटर फॉर पोलिटिकल स्टडी 2011

बिहार में मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति

साक्षरता और शिक्षा समाज में महत्वपूर्ण संकेतक हैं और मानव विकास में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं जो समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास परिवेश को प्रभावित करता है। साक्षरता और शिक्षा के उच्च स्तर से स्वास्थ्य और पोषण संबंधी स्थिति में बेहतर उपलब्धि, आर्थिक विकास, जनसंख्या नियंत्रण, कमजोर वर्गों और समग्र रूप से समुदाय का सशक्तिकरण होता है।

स्वतंत्रता के बाद से, भारत ने अपने शैक्षिक बुनियादी ढांचे और अवसरों का व्यापक विस्तार किया है और सभी के लिए सार्वभौमिक शिक्षा प्रदान करने के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत की है। भारत की औसत साक्षरता दर 1951 में 18 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 74 प्रतिशत हो गई है (जनगणना, 2011)। जिसमें पुरुष साक्षरता दर 82.14% और महिला साक्षरता दर 65.46% है, फिर भी सभी समुदायों में महिलाएं पुरुषों से पीछे हैं (तालिका-01)।

तालिका-01 भारत तथा बिहार में साक्षरता की स्थिति

साक्षरता	पुरुष	महिला	कुल
बिहार	73.32%	53.33%	63.83%
भारत	82.14%	65.46%	74.04%

स्रोत - जनगणना 2011

बिहार की स्थिति कुछ अलग नहीं है, यहाँ के मुसलमान शैक्षिक रूप से वंचित समुदाय हैं। उन्हें अपने क्षेत्र में बुनियादी शैक्षिक सुविधाओं तक पहुँच नहीं है। यहाँ तक कि उनके पास स्थानीय मकतब और मदरसा भी नहीं है। मुसलमानों की साक्षरता दर केवल 42% है जबकि सम्पूर्ण बिहार की औसत साक्षरता दर 63.83% है। मुसलमानों में पुरुष साक्षरता दर 51.8% और महिला साक्षरता दर 31.5% है जो राज्य के पुरुष साक्षरता (73.32%) और महिला साक्षरता (53.33%) के औसत से काफी कम है (तालिका-02)।

तालिका-02 बिहार में मुस्लिम साक्षरता की स्थिति

साक्षरता	बिहार		
	पुरुष	महिला	कुल
सम्पूर्ण जनसंख्या	73.32%	53.33%	63.83%
मुस्लिम जनसंख्या	51.8%	31.5%	42%

स्रोत - जनगणना 2011

उपर्युक्त तालिकाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है की बिहार की मुस्लिम आबादी किस प्रकार साक्षरता में पिछड़ी हुई है। यह भी देखा गया है कि बिहार के 1000 से अधिक मुस्लिम बहुल गांवों में कोई भी शैक्षणिक संस्थान नहीं है। राज्य के छोटे गांवों में स्थिति और भी खराब है। इससे संकेत मिलता है कि मुस्लिम बहुल गांवों, विशेष रूप से छोटे गांवों में शैक्षणिक संस्थानों तक मुस्लिम बच्चों के पहुँच का अभाव है।⁶

बिहार में मुस्लिम समुदाय के शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी कारक

उपर्युक्त विश्लेषणों से प्रतीत होता है की बिहार के मुस्लिम समुदाय शैक्षिक रूप से सबसे अधिक पिछड़े हुए हैं। वे अपनी शैक्षिक उन्नति पर ध्यान नहीं दे रहे हैं और संवैधानिक प्रावधानों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। यहाँ के मुसलमान आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक रूप से अन्य समुदायों से बहुत पीछे हैं।⁷ मुसलमानों के शैक्षिक रूप से पिछड़े होने के कई कारण हैं:-

- 1) आजादी से पहले अंग्रेजों द्वारा समुदाय के शैक्षिक और रोजगार के अवसरों को कम करने के लिए अपनाए गए मुस्लिम-विरोधी रवैये ने उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर भारी प्रभाव डाला है।⁸ मुसलमान आज भी इसी समस्या का सामना कर रहे हैं। मुसलमानों के प्रति इस रवैये ने उन्हें और भी पिछड़ा बना दिया है।
- 2) बिहार के मुसलमान अतीत से ही सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं। शिक्षा के प्रति उनकी दृष्टि धुंधली है क्योंकि अधिकांश मुस्लिम माता-पिता गरीब और अशिक्षित हैं। वे आधुनिक शिक्षा के महत्व से अनभिज्ञ हैं, इसलिए वे अपने बच्चों को आधुनिक स्कूलों में नहीं भेजते। वे बड़े परिवार में रहते हैं और कम उम्र में विवाह को अधिक महत्व देते हैं।⁹
- 3) मुसलमानों में लड़कियों की शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण है; पारिवारिक बाधाओं के कारण, लड़कियों ने शिक्षा के माध्यम से कुछ हासिल करने का उत्साह खो दिया है। केवल कुछ ही भाग्यशाली होती हैं जो अच्छे स्कूल जा पाती हैं। उन्हें अक्सर उच्च शिक्षा, खासकर देश के बाहर, प्राप्त करने से हतोत्साहित किया जाता है।
- 4) जैसा कि सच्चर समिति ने पहचाना है, आमतौर पर मुस्लिम बस्तियों को बिजली, पक्की सड़क, पानी की आपूर्ति, स्ट्रीट लाइट और सीवेज जैसी बुनियादी ढाँचे और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच से व्यवस्थित रूप से वंचित रखा जाता है। मुस्लिम समुदाय निम्न आय, गंदगी और दयनीय जीवन स्थितियों में जी रहा है।

- 5) मुस्लिम बस्तियों के स्कूलों में सुविधाओं का अभाव है। उचित सुरक्षा और शौचालय की कमी के कारण, अधिकांश लड़कियाँ शिक्षा का लाभ उठाने से वंचित रह जाती हैं। अधिकांश स्कूल पारंपरिक हैं, जिनमें माध्यम की समस्या है और शिक्षा का रोजगार के अवसरों से कोई संबंध नहीं है।
- 6) मदरसे और मकतब अभी भी पारंपरिक ढाँचे पर चल रहे हैं। उनके पाठ्यक्रम पर आधुनिक शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं है। मदरसों के छात्रों में आधुनिक तकनीक के बारे में कम जानकारी होती है, इसलिए वे सीमाओं से आगे नहीं सोच पाते।
- 7) स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात बिहार के मुसलमानों में प्रतिबद्ध नेतृत्व का अभाव रहा है। इसलिए वे अधिक वंचित हैं और अभी भी नकारात्मक दिशा में जा रहे हैं।

मुसलमानों के शैक्षिक उत्थान के लिए कुछ प्रमुख सुझाव

बिहार के मुसलमानों के शैक्षिक उत्थान के लिए बहु-आयामी और व्यावहारिक प्रयासों की आवश्यकता है। नीचे प्रमुख सुझाव बिंदुवार दिए जा रहे हैं :

1. प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान
 - a) बालिका शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए, खासकर ग्रामीण व पिछड़े इलाकों में।
 - b) ड्रॉपआउट रोकने के लिए छात्रवृत्ति, मुफ्त पुस्तकें, यूनिफॉर्म और मिड-डे मील की प्रभावी व्यवस्था।
 - c) मदरसों में आधुनिक विषयों (गणित, विज्ञान, अंग्रेजी, कंप्यूटर) को अनिवार्य रूप से जोड़ा जाए।
2. उच्च शिक्षा तक पहुँच बढ़ाना
 - a) मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में डिग्री कॉलेज, पॉलिटेक्निक और आईटीआई की स्थापना।
 - b) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (AMU) जैसे संस्थानों के सैटेलाइट/अध्ययन केंद्र बिहार में बढ़ाए जाएँ।
 - c) प्रतियोगी परीक्षाओं (UPSC, BPSC, NEET, JEE) के लिए कोचिंग एवं मार्गदर्शन केंद्र।
3. आर्थिक सहयोग और छात्रवृत्तियाँ
 - a) केंद्र व राज्य सरकार की योजनाओं (Pre/Post Matric Scholarship, Maulana Azad Fellowship आदि) का सही और पारदर्शी क्रियान्वयन।
 - b) वक्फ बोर्ड, NGO और समाजसेवियों के माध्यम से स्थानीय छात्रवृत्ति कोष।
 - c) गरीब छात्रों के लिए शिक्षा ऋण में सब्सिडी।
4. मदरसा सुधार और मुख्यधारा से जोड़ना
 - a) मदरसों को NCERT/SCERT पाठ्यक्रम से आंशिक रूप से जोड़ना।
 - b) मदरसा शिक्षकों का प्रशिक्षण (जम्बीमत जत्तपदपदह)।
5. तकनीकी और कौशल शिक्षा
 - a) कौशल विकास केंद्र (स्किल इंडिया, ITI, PMKVY) मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में।
 - b) डिजिटल साक्षरता, कोडिंग, ग्राफिक डिजाइन, डाटा एंट्री जैसे रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रम।
 - c) ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म (SWAYAM, DIKSHA) का प्रचार।
6. सामाजिक जागरूकता और मानसिकता में बदलाव
 - a) शिक्षा को लेकर धार्मिक व सामाजिक नेताओं की सकारात्मक भूमिका।
 - b) अभिभावकों में यह जागरूकता कि शिक्षा धर्म के विरुद्ध नहीं बल्कि भविष्य की सुरक्षा है।
 - c) बाल विवाह और जल्द रोजगार की प्रवृत्ति पर रोक।
7. महिला शिक्षा पर विशेष जोर
 - a) मुस्लिम बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय/छात्रावास।
 - b) उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाली छात्राओं के लिए विशेष प्रोत्साहन राशि।
 - c) महिला शिक्षकों की नियुक्ति से अभिभावकों का विश्वास बढ़ेगा।
8. सरकारी नीतियों की निगरानी
 - a) सचचर समिति और रंगनाथ मिश्रा आयोग की सिफारिशों को लागू करना।
 - b) योजनाओं के लाभार्थियों की सामुदायिक निगरानी (Community Monitoring)।

निष्कर्ष :-

मुसलमानों के शैक्षिक दृष्टिकोण पर उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मुसलमान अन्य समुदायों की तुलना में बहुत पीछे हैं। शिक्षा के प्रति उनका दृष्टिकोण अभी भी पारंपरिक है। वे आधुनिक शिक्षा को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, जिसके कारण उन्हें सामाजिक,

आर्थिक और राजनीतिक रूप से नुकसान उठाना पड़ रहा है। वे कई कारणों से अपनी बेटियों को उच्च शिक्षा नहीं देना चाहते हैं। वर्तमान में, किसी तरह वे पिछले दो दशकों से शिक्षा के लिए आगे आ रहे हैं और दिन-प्रतिदिन सुधार कर रहे हैं और अपने पैरों पर खड़े होना सीख रहे हैं, लेकिन यह प्रयास सागर में एक बूंद के समान है। व्यावसायिक शिक्षा, विशेष रूप से प्रबंधन क्षेत्र में, मुसलमानों की हिस्सेदारी कम है। वैश्वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के युग में उनके मदरसे पारंपरिक और पुराने पाठ्यक्रम का पालन कर रहे हैं। उनका पाठ्यक्रम वैज्ञानिक और व्यावसायिक ज्ञान से कोसों दूर है। मदरसों को आधुनिक शिक्षा केंद्रों में बदलना चाहिए जहाँ धार्मिक और व्यावसायिक दोनों तरह की शिक्षा दी जा सके। इसलिए मुसलमानों के पारंपरिक से आधुनिक शिक्षा के दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता है। मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति पर भी बहुत कम अध्ययन हुआ है; सामाजिक मानवविज्ञानियों और समाजशास्त्रियों का यह कर्तव्य है कि वे देश के विभिन्न हिस्सों में मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति का पता लगाएँ और उनका विश्लेषण करें ताकि उनके शैक्षिक उत्थान में आने वाली बाधाओं का पता लगाया जा सके। समय की माँग है कि सरकार मुसलमानों के विकास के लिए आगे आए और कुछ करे।

संदर्भ

- 1 अजीत मोहंती, “बहुभाषावाद, शिक्षा, अंग्रेजी और विकास: किसका विकास,” बहुभाषावाद और विकास, 2017, 261-80
- 2 The Wire. 42.7% of Muslims Illiterate, Reveals Census Data. [online] (2016) (<https://thewire.in/education/census-literacy-religion>)
- 3 भारत की जनगणना 2011. नई दिल्ली: भारत के महापंजीयक, जनगणना कार्य निदेशालय, भारत सरकार।
- 4 <https://herald.dawn.com/news/1153473>
- 5 परवेज, एम. और हसन, एम. (2015)। अन्य सामाजिक-धार्मिक श्रेणियों की तुलना में शिक्षा और रोजगार में मुसलमानों की भागीदारी: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज एंड मैनेजमेंट, 2(2), 114-118
- 6 Sachar, J.R. (2006). Social, economic and educational status of Muslim community of India: a report. New Delhi: Prime Minister's High Level committee, Cabinet Secretariat, Government of India.
- 7 शाजली, टी. और अस्मा, एस. (2015). भारत में मुसलमानों की शैक्षिक दृष्टि: समस्याएँ और चिंताएँ. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस इन्वेंशन, 4(3), 21-27.
- 8 खान, जे. एच., बुटूल, एफ. (2013). भारत में मुसलमानों की शिक्षा और विकास: एक तुलनात्मक अध्ययन. जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, 13(2), 80-86.
- 9 रहमान, जे. और हॉफ्लर, एच. (2010). यूरोप और दक्षिण एशिया में अल्पसंख्यक संरक्षण के क्षेत्रीय/अंतर्राष्ट्रीय ढाँचे, एस. के. दास (सं.), दक्षिण एशिया और यूरोप में अल्पसंख्यक: एक नया एजेंडा, (कोलकाता: साम्य, 2010) 278-310.

रेगिस्तान त्रिकोण का पर्यटक परिप्रेक्ष्य जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर में पर्यटन की 'संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ': एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अनु सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टीज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो० कुमार आशुतोष

विभागाध्यक्ष, सतत शिक्षा एवं विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

आलोक कुमार

पीएच.डी. शोधार्थी, सतत शिक्षा एवं विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

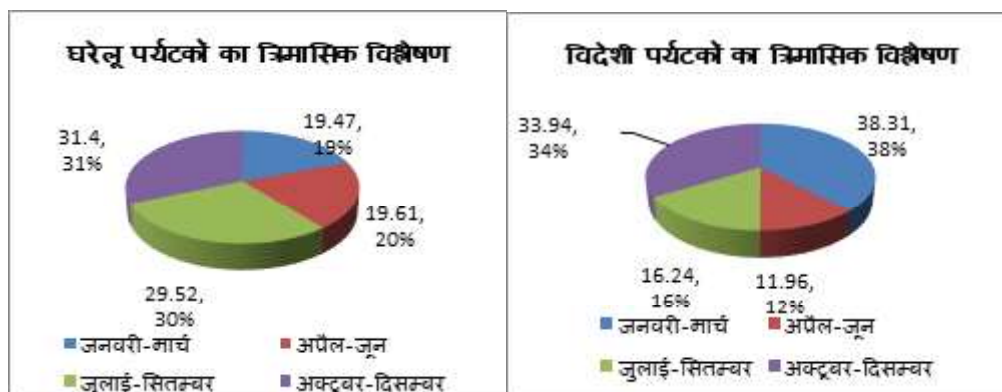
सारांश

प्राचीन काल से ही राजस्थान अपने सांस्कृतिक पहचान के लिए विश्व प्रसिद्ध रहा है जिसमें रेगिस्तान त्रिकोण जिसे जैसलमेर, जोधपुर तथा बीकानेर इसकी आत्मा कहा जाता है वर्तमान में पर्यटन उद्योग विश्व धरोहर तथा प्राकृतिक सौंदर्य के माध्यम से पर्यटन को आकर्षित करने का कार्य किया है जिस प्रकार स आंतरिक पर्यटन के क्षेत्र में धार्मिक स्थलों को पर्यटन में बढ़ावा मिल रहा है उससे त्रिकोण क्षेत्र के मंदिरों में धार्मिक पर्यटकों की आगमन की काफी संभावनाएँ हैं किन्तु हमें याद रहे कि जहाँ संभावनाएँ होती हैं वहाँ चुनौतियाँ भी होती हैं तथा विद्वानों का मानना है कि प्रत्येक चुनौतियाँ का तार्किक एवं वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा सामाधान भी संभव है इन्हीं समस्याओं के समाधान करने का कार्य सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ कर रही हैं।

बीज शब्द: पर्यटन, प्रौद्योगिकी, उत्सव, राष्ट्र, संस्कृति, धरोहर, किला, समावेशी विकास।

परिचय

बड़े उद्योग के रूप में पर्यटन विश्व में बड़े उद्योग के रूप में उभर रहा है जिसकी वृद्धि दर सर्वाधिक होती जा रही है। राजस्थान सरकार ने पर्यटन को व्यावसायिक का स्वरूप दिया है हाल के वर्षों में पर्यटन के क्षेत्र में सरकार द्वारा अनेकों सुविधाएँ एवं रियातें प्रदान की जा रही हैं पर्यटन के कार्य में सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ भी योगदान दे रही हैं।



स्रोत: प्रगति प्रतिवेदन पर्यटन विकास, राजस्थान सरकार, 2024-25

प्राचीन काल से राजस्थान अपने सभ्यता एवं संस्कृति के लिए अकर्षण एवं पर्यटन का केन्द्र रहा है राजस्थान प्राकृतिक सुन्दरता और महान इतिहास से सम्पन्न स्थल रहा है जिसके परिणाम स्वरूप पर्यटन अद्योग समृद्धशाली रहा है। थार मरूस्थल नाम से प्रसिद्ध राजस्थान के 12 पश्चिमी जिलों में जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर के “रेगिस्तान त्रिकोण” की संज्ञा दी जाती है। जो पर्यटन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिसका विवरण सारिणी संख्या-1 में किया गया है।

सारिणी संख्या-1

क्र.सं.	जिला	क्षेत्र (कि.मी.)	गाँव	शहर/कस्बे
1.	जोधपुर	25850	1063	4
2.	बीकानेर	2844	778	3
3.	जैसलमेर	38401	637	3

स्रोत: राजस्थान आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, राजस्थान।

राजस्थान की पर्यटन यात्रा पर्यटकों के लिए खास होती है जिसमें त्रिकोणीय यात्रा का एक विशिष्ट आनन्द है वास्तुकलाओं के दर्शन करना, स्थानीय तथा ग्रामीण संस्कृति आर्थिक स्थलों के दर्शन और सबसे अदभूत है रेत के टीलों पर समय गुजारना पर्यटकों को यादगार और सुभावना का अनुभव करता है। त्रिकोणीय स्थल के रूप में प्रसिद्ध राजस्थान की प्रमुख शहरों जोधपुर, जैसमेर और बीकानेर शाही अनुभवों का आनन्द भी प्रदान करता है। “नीले शहर” के नाम से जोधपुर की प्रसिद्धि है वही ‘गोल्डन शहर’ भी संज्ञा जैसलमेर को दी जाती है तथा बीकानेर ‘जांगलदेश के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त किया है। राजस्थान के रेगिस्तान के ये तीनों शहरों की पर्यटन यात्रा जोड़कर त्रिकोणिय पर्यटन की संज्ञा प्राप्त किया है।

साहित्यिक अवलोकन

साहित्यिक अवलोकन के परिणाम स्वरूप हमने अनेकों लेख तथा पुस्तकों का गहन अध्ययन किया जिसमें हमने शिव कुमार मीणा का लेख मुख्य रूप से राजस्थान के पर्यटन पर चर्चा किया गया है क्षेत्र के रूप में ग्रामीण परिवेश को चुना है सामावेशी विकास के साथ ग्रामीण पर्यटन विकसित हुआ है ग्रामीण खनिज आर्थिक परिवेश को सुदृढ़ करने के लिए पर्यटन के साथ समावेशी विकास पर बल दिया गया है। यह शोध मुख्य रूप से अध्ययन पुस्तकों, जनगणना यता रिपोर्ट, जर्नल पर आधारित है। लेख में जनजातियों के भोजन, त्यौहार, संस्कृतिक वेशभूषा आदि को आकर्षित करने का प्रयास किया गया है।

एकता नेहरा एवं कैलाश चन्द्र नैय्या का लेख रूप से राजस्थान के वाकड सर्किट क्षेत्र के पर्यटन के स्थनीय विश्लेषण पर केंद्रित है जिसके तहत राजस्थान की संस्कृति विरासत के संरक्षण पर अत्यधिक प्रकाश डाला गया है इसके तहत इमारते, महल किले स्मारक इत्यदि का गौरवशाली इतिहास को बताने का प्रयास किया है राजस्थान के पर्यटन क्षेत्र को नौ सर्किटों में बाँटते हुए वागह सर्किट के तहत वांसवाड़ा एवं डूंगरपुर के गौरवशाली इतिहास को प्रमुखता से स्पष्ट किया गया है।

शोध विधि

शोध का मुख्य बिन्दु राजस्थान के रेगिस्तान त्रिकोण पर्यटन विकास में चुनौतियाँ एवं समाधान है। इस शोध कार्य को करने लिए राजस्थान सरकार एवं भारत सरकार के 2000 से 2024 तक के गुणात्मक एवं मात्रात्मक डेटा का विश्लेषण किया गया है शोध विधि के रूप में वर्णात्मक विधि का प्रयोग किया गया है क्योंकि शोध प्रबंधन के माध्यम से आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक धरोहरों तथा कला पर विशेष प्रकाश डाला गया है। प्राथमिक स्रोत में विभिन्न स्थलों पर जाकर राजस्थान सरकार के द्वारा एकत्रित डाटा का प्रयोग किया गया है वहीं दूसरी तरफ द्वितियक डाटा के रूप में 2020 के बाद में लिखित की गई लेखों, लघु लेखों तथा पुस्तकों का प्रयोग किया गया है।

इस शोध को तैयार करने के लिए संग्रहित का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए विभिन्न साणियों के माध्यम से प्रस्तुति दी गई है जिससे शोध की विश्वनियता एवं नैतिकता बनी रहे। प्रस्तुत शोध कार्य एक मौलिक प्रयास है तथा इस क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिपेक्ष्य के प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है अध्ययन क्षेत्र व्यापक होने के कारण मुख्य रूप से जैसलमेर, बीकानेर, तथा जोधपुर के मुख्य केन्द्रों पर ही शोध करने सम्पन्न किया गया है।

संभावनाएँ

त्रिकोण के प्रमुख पर्यटन स्थलों में जैसलमेर का जिक्र प्रमुख है जिसे गोल्डन किला की संज्ञा दी जाती है जो विश्व के विशालतम किलों में से एक और वर्तमान में विश्व धरोहर स्थलों में शामिल है पीले बलुआ पत्थर की दीवारों की उपस्थिति के कारण इसे सोनार किला या स्वर्ण किला भी कहा जाता है वहीं दूसरी तरफ पैलेस म्यूजियम में जा सकते हैं। वहाँ शॉपिंग कर सकते हैं तथा सलीम सिंह की प्रसिद्ध हवेली का भी पर्यटन कर सकते हैं। जैसलमेर के आसपास डेजर्ट नेशनल पार्क, कुलधरा गांव, अमर सागर झील, अकाल जीवाश्म पार्क, डेजर्ट नेशनल पार्क का भी आनन्द ले सकते हैं।

जोधपुर का एक पर्यटन स्थल के रूप में विशिष्ट महत्व है जहाँ सुंदर ऐतिहासिक इमारतों और प्राकृतिक परिदृश्य पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। सुप्रसिद्ध उम्मेद भवन पैलेस और हेरिटेज पैलेस ताज होटल द्वारा प्रबंधित किया जाता है मेहरगढ़ का किला भारत के बड़े किलों में से एक है जो जोधपुर शहर से 410 फीट की उचाई पर स्थित है। इस किले के अन्दर एक संग्रहालय है जिसमें शास्त्रागार, चित्र, खजाने, ज्वैलरी जैसे वस्तुएँ पर्यटकों को आकर्षित कर सकती हैं। भूवैज्ञानिक स्मारक, माताजी चामुंडा का कदिर राय जोधा डेजर्ट राँक पार्क भी उपस्थित है अन्य मंदिरों में मण्डलेश्वर महादेव मंदिर, मंडोर गार्डन,

मेहरामगढ़ किला, कायलाना झील तथा सुप्रसिद्ध रापग का मंदिर विद्यमान है अपने खास सुंदरता तथा मनमोहक अंदाज के कारण इस शहर का दूसरा नाम ब्लू सिटी भी है क्योंकि यहाँ ऐतिहासिक इमारतों तथा प्राकृतिक परिदृश्यों के संतुलन के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है।

बीकानेर अपने जूनागढ़ किला के गुजराती तथा राजपूत वस्तुकला शैली के लिए प्रसिद्ध लाल बलुआ पत्थर और संगमरमर के निर्मित शानदार महल पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र में रहा है वहीं लालगढ़ पैलेस बीकानेर के तीन राजाओं के भवनाओं तथा जीवनशैलियों के संग्रह के माध्यम से प्रदर्शन करने का कार्य करता है।

प्रवासी प्रक्षियों का झुंड यहाँ बड़ी संख्या में देखने को मिलता है। मंदिरों में लाल तथा सफेद संगमरमर के मिश्रण से निर्मित जैन मंदिर भांडासर राजपूतानों वस्तुकला की अदभूत प्रस्तुति है कोडमदेसर मंदिर अपने ऐतिहासिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है। राजस्थान सरकार के द्वारा बीकानेर में अनेकों मेले एवं महोत्सव का आयोजन किया जाता है। 'ऊँट महोत्सव' यह प्रत्येक वर्ष जनवरी में बीकानेर प्रशासन के द्वारा आयोजित किया जाता है इसमें ऊँटों के द्वारा शानदार कलावाजी की प्रस्तुती दी जाती है तथा संध्या के समय सुप्रसिद्ध कलाकारों के द्वारा पारम्परिक समायोजन की प्रस्तुती की जाती है।

वर्तमान में बीकानेर अनेकों वन्यजीव अभ्यारणों का केन्द्र भी है जैसे गजनेर वनजीव अभ्यारण यह एक हरा भरा जंगल है प्रमुख जंगली जीवों के रूप में यहाँ नीलगाय, चिंकारा, प्रसिद्ध काले रिण, और अनेकों प्रवासी पक्षियों की कई प्रजातियाँ अपना आश्रय बनाये हुए हैं इस जंगल को आकर्षित करने का कार्य करती हैं बीकानेर के समीप जोरबीर में स्थित राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र है जो भारत सरकार के द्वारा संरक्षित है यह पर्यटन स्थलों में काफी प्रसिद्धी प्राप्त किया हुआ है।

उपयुक्त प्रमुख पर्यटन स्थल जैसलमेर, जोधपुर तथा बीकानेर की पर्यटन उद्योग की संभावनाओं को बताती है।

चुनौतियाँ

ठहरने की अवधि: चूँकि जैसलमेर, बीकानेर तथा जोधपुर का आनन्द जब तब पर्यटक सुगत तरीके से ले सकते हैं जब उनके ठहरने की सुविधा सस्ता तथा सरल हो क्योंकि एक या दो दिन में पर्यटक इस रेगिस्थान त्रिकोण का आनन्द नहीं ले सकता है। होटल तथा पिलासित से पूर्ण आवासीय स्थल अभी भी प्रमुख रूप से शहरों में ही उपस्थित है। अतः पर्यटकों को इस क्षेत्र में पर्यटन करने के लिए अत्यधिक समय खर्च करने पड़ते हैं।

जलवायु: त्रिकोणिय रेगिस्तन क्षेत्र होने के कारण यहाँ अत्यधिक गर्मी का प्रकोप रहता है अतः यहाँ पानी की एक प्रमुख समस्या बनी रहती है दिन का तापमान औसतन 45°C से अत्यधिक रहता है नमी के कारण पर्यटन स्थलों पर जाना सरल नहीं होता है।

रोजगार: अत्यधिक व्यवसायिकरण के परिणाम स्वरूप स्थानीय जनजातियों के परम्परागत रोजगार तथा कला में समस्या उत्पन्न करने की संभावनाएँ हैं प्रमुख रूप से भील जनजातियाँ इससे काफी अधिक प्रमाणित हुआ है।

पर्यावरणीय दृष्टप्रभाव: पर्यटन में तेजी से वृद्धि होने के कारण नवस्पतियों का विनाश, भूमि का बंजर होना, मिट्टी का क्षरण तथा प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि होने की संभावनाएँ हैं।

प्रमुख सुझाव

रेगिस्थान त्रिकोण का पर्यटन करने के लिए अक्टूबर से मार्च महीने का चयन करें तथा शील ऋतु में सबसे पसंदीदा मौसम के रूप में देखा जाता है किससे यात्रा आरामदायक एवं सुखद हो जाता है ठहराव के किए समय से पहले ही आरक्षित बुकिंग का प्रयोग करें तथा होटल प्रबंधन कार्य सुनियोजित तरीके से करें।

स्थानीय पर्यावरण एवं परिस्थितिकी का सम्मान करें उसे किसी प्रकार के कुदृष्टि से बचने का प्रयास करें जितना संभव हो स्थानीय वस्तुओं की खरीदारी करें तथा स्थानीय रोजगार को प्रोत्साहित करें। धार्मिक स्थलों का पर्यटन करते समय मौसमी कपड़ों का चयन करें एवं स्थानीय रीति-रिवाजों का पालन करें तथा विशेषकर शुष्क मौसम में प्राप्त मात्रा में पानी पिएँ तथा आवश्यकता से महत्वपूर्ण वस्तुओं को साथ रखें।

निष्कर्ष

उपयुक्त तथ्यों एवं तर्कों से स्पष्ट होता है कि अनेक चुनौतियों के बावजूद रेगिस्तान त्रिकोण पर्यटन को नवचार, आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं संसाधनों के माध्यम से जैसलमेर, जोधपुर तथा बीकानेर में पर्यटन की अपार संभावनाएँ बनाई जा सकती हैं इससे पर्यटन उद्योग को अत्यधिक आर्थिक लाभ मिलेगा तथा सांस्कृतिक धरोहरों के माध्यम से विश्वस्तर पर राजस्थान तथा राष्ट्र को पहचान दिलाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार मीणा, शिव, राजस्थान में ग्रामीण पर्यटन के माध्यम से समावेशी समाज का दर्शन, लोक प्रकाशन, 2024
2. नेमाचन्द्र कैलाश, राजस्थान के वागड़ सर्किट के पर्यटन स्थलों का स्थानीय विश्लेषण, रिसर्च हर्वे, 2005
3. प्रगति प्रतिवेदन 2025-25, पर्यटन विकास राजस्थान
4. बीकानेर उत्सव 2024, ऊँट उत्सव आयोजन समीति, बीकानेर
5. जैसलमेर किला दर्शन, रास्थान सरकार।
6. चौहान तेजसिंह भारतीय रेगिस्तान में पर्यावरणीय पर्यटन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2014
7. राजस्थान दर्शन, पर्यटन कला एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान सरकार, 2000, 2014

8. जोधपुर जिला दर्शन, राजस्थान सरकार
9. www.rajsthantourism.gov.in
10. www.tourismrajasthan.com
11. www.historicaltour.com
12. Barrado D.A. Calabaing J. (2001), Geografia mundial del turismo, Editorial sintesis,
13. <https://www.unwto-org/sustainable-developent>.
14. <http://www.seagran-umm-edu/tourism/pdfs/inputstourism.pdf>
15. भारतीय पर्यटन आंकड़े, 2023-2024, भारत पर्यटन सांख्यिकी विभाग, भारत सरकार
16. टूरिस्ट गाइड, भारतसरकार, कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय प्रशिक्षण महानिदेशालय, भारत सरकार
17. व्यास राजेश कुमार, भारत में पर्यटन कब, कहाँ और कैसे? BFC Publication, Lucknow, 2024
18. सक्सेना चन्दन, भारत के ऐतिहासिक पर्यटन स्थल, न्ड। चंडिसपबंजपवद, चन्दम, 2024
19. नेगी जगमोहन, जे. मनोहर गोरव, आधुनिक पर्यटन एवं यात्रा के आधारभूत सिद्धांत, तक्षशिला प्रकाश, नई दिल्ली 2023
20. शर्मा कुमार सजय, पर्यटन में भूगोल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2024

बिहार के किसान आंदोलनों में खेतिहर मजदूरों की भूमिका

डॉ० कृष्णा कुमार शर्मा

इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध सार

बिहार का कृषि इतिहास केवल फसल उत्पादन का इतिहास नहीं है; यह सामाजिक शक्ति संरचनाओं, जातिगत उत्पीड़न और वर्ग संघर्ष का एक जटिल दस्तावेज है। इस विस्तृत शोध प्रतिवेदन का उद्देश्य बिहार के किसान आंदोलनों के व्यापक परिदृश्य के भीतर 'खेतिहर मजदूरों' की भूमिका, उनकी स्थिति में परिवर्तन और उनके द्वारा किए गए संघर्षों का एक सूक्ष्म और व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। यह अध्ययन 1929 में स्वामी सहजानंद सरस्वती द्वारा बिहार प्रांतीय किसान सभा (BPKS) के गठन से लेकर 2025 के समकालीन राजनीतिक परिदृश्य तक की यात्रा को शामिल करता है। औपनिवेशिक काल में 'किसान' की परिभाषा में मजदूरों को हाशिए पर रखा गया था, और कैसे स्वतंत्रता के बाद हुए भूमि सुधारों की विफलता ने एक नए शोषक वर्ग को जन्म दिया। यह रिपोर्ट 1960 और 70 के दशक के नक्सलवादी आंदोलन के प्रभाव, भोजपुर के "इज्जत की लड़ाई", और 1990 के दशक के खूनी जातिगत नरसंहारों का दस्तावेजीकरण करती है। अंततः, यह रिपोर्ट यह जांचती है कि कैसे बंदूक की नली से निकली सत्ता की खोज अब संसदीय लोकतंत्र और सामाजिक इंजीनियरिंग (जैसे महादलित मिशन) के साथ मिश्रित हो गई है।

मूल शब्द— किसान, आंदोलन, मजदूर, संसदीय, लोकतंत्र, सामाजिक, राजस्व।

प्रस्तावना

बिहार के किसान आंदोलनों में मजदूरों की भूमिका को समझने के लिए, हमें सबसे पहले उस सामंती ढांचे को समझना होगा जिसने इस वर्ग को जन्म दिया और सदियों तक बंधक बनाए रखा। बिहार की कृषि अर्थव्यवस्था 1793 के 'स्थायी बंदोबस्त' (Permanent Settlement) द्वारा परिभाषित थी, जिसने न केवल राजस्व संग्रह की एक प्रणाली स्थापित की, बल्कि एक कठोर सामाजिक पदानुक्रम को भी संस्थागत बना दिया।

औपनिवेशिक कृषि पदानुक्रम

बीसवीं सदी की शुरुआत में बिहार का ग्रामीण समाज स्पष्ट रूप से विभाजित था, लेकिन यह विभाजन केवल 'अमीर' और 'गरीब' का नहीं था। यह अधिकारों और सामाजिक स्थिति का एक जटिल जाल था:

- **जमींदार:** यह शीर्ष वर्ग था, जिसे औपनिवेशिक सरकार ने भूमि का स्वामी माना था। उनका मुख्य कार्य राजस्व संग्रह था, लेकिन व्यवहार में वे ग्रामीण समाज के निर्विवाद शासक थे। वे अक्सर उच्च जातियों (भूमिहार, राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ) से आते थे।
- **रैयत:** ये वे किसान थे जिनके पास खेती करने का वंशानुगत अधिकार (Occupancy Rights) था। वे जमींदारों को लगान देते थे। सामाजिक रूप से, इनमें उच्च जातियों के साथ-साथ मध्यवर्ती जातियां (यादव, कुर्मी, कोइरी) भी शामिल थीं।
- **बंटाईदार:** ये वे काश्तकार थे जो दूसरों की जमीन पर खेती करते थे और उपज का एक बड़ा हिस्सा (आमतौर पर 50% से 75%) मालिक को देते थे। इनकी स्थिति असुरक्षित थी और इन्हें कभी भी बेदखल किया जा सकता था।
- **खेतिहर मजदूर:** यह सबसे निचला पायदान था। इनके पास अपनी कोई जमीन नहीं थी। ये अपनी श्रम शक्ति बेचकर जीवित रहते थे। सामाजिक रूप से, यह वर्ग लगभग विशेष रूप से दलित जातियों (चमार, दुसाध, मुसहर) और आदिवासियों से बना था।

“अनफ्रीडम” (Unfreedom) की स्थिति: बेगारी और कामिया प्रथा

बिहार में एक खेतिहर मजदूर होना केवल कम वेतन पाने वाला कर्मचारी होना नहीं था; यह एक प्रकार की अर्ध-गुलामी थी।

- **कामिया-गौटी प्रथा:** बिहार के पलामू, गया और अन्य दक्षिणी जिलों में 'कामिया' प्रथा प्रचलित थी। इसके तहत, एक मजदूर अपनी शादी या किसी अन्य सामाजिक आवश्यकता के लिए जमींदार से ऋण लेता था और बदले में वह (और अक्सर उसकी आने वाली पीढ़ियां) जमींदार के खेत में बंधुआ मजदूरी करने के लिए बाध्य हो जाता था। व्याज दरें इतनी अधिक थीं कि ऋण कभी नहीं चुकाया जा सकता था।
- **बेगारी:** जमींदार अपने 'जीरात' (निजी) खेतों पर मजदूरों से बिना किसी भुगतान के काम करवाते थे। हल जोतने से लेकर बोझ ढोने तक, सब कुछ 'बेगारी' के तहत आता था। इसका विरोध करने पर शारीरिक दंड और बस्ती से बेदखली का सामना करना पड़ता था।

- जाति और श्रम का अंतरसंबंध: श्रम का विभाजन जाति आधारित था। उच्च जाति के जमींदार हल को हाथ लगाना पाप मानते थे, जबकि दलितों के लिए यह अनिवार्य था। इस प्रकार, आर्थिक शोषण को धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं द्वारा वैधता प्रदान की गई थी।

किसान सभा और मजदूरों का बहिष्करण

स्वामी सहजानंदक सरस्वती के नेतृत्व में बिहार में संगठित किसान आंदोलन का उदय हुआ। यह भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय है, लेकिन खेतिहर मजदूरों के दृष्टिकोण से यह एक विरोधाभासी दौर था।

बिहार प्रांतीय किसान सभा (BPKS) का गठन और चरित्र

1929 में सोनपुर मेले में गठित BPKS का मुख्य उद्देश्य जमींदारी उत्पीड़न के खिलाफ किसानों को संगठित करना था। स्वामी सहजानंदक सरस्वती, जो एक दशनामी संन्यासी और पूर्व में भूमिहार-ब्राह्मण सभा के सक्रिय सदस्य थे, ने इस आंदोलन को एक नई ऊर्जा प्रदान की। हालांकि, इस आंदोलन का नेतृत्व और आधार मुख्य रूप से 'मध्यम' और 'धनी' किसानों का था। ये वे रैयत थे जिनके पास जमीन थी, लेकिन जो जमींदारों के अवैध करों (Abwabs) और बेदखली के डर से त्रस्त थे। इनमें यदुनंदन शर्मा, कार्यानन्द शर्मा, यमुना कारी जैसे नेता शामिल थे, जो स्वयं भूमिहार या अन्य कृषि प्रधान जातियों से आते थे।

'किसान' की परिभाषा और मजदूरों की अदृश्यता

स्वामी सहजानंदक ने रणनीतिक रूप से 'किसान' शब्द को व्यापक रखा। उनके अनुसार, "जिस किसी की आजीविका खेती पर निर्भर है, वह किसान है।" इस परिभाषा ने जानबूझकर काश्तकार (Tenant) और मजदूर (Laborer) के बीच के वर्ग भेद को धुंधला कर दिया।

- रणनीतिक दुविधा: स्वामी जी का मुख्य लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उनके सहयोगी जमींदारों के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा बनाना था। वे जानते थे कि यदि उन्होंने 'न्यूनतम मजदूरी' का मुद्दा उठाया, तो धनी और मध्यम किसान (जो मजदूरों के नियोक्ता थे) आंदोलन से अलग हो जाएंगे। इसलिए, 1930 के दशक के अधिकांश समय में, किसान सभा ने मजदूरों के विशिष्ट मुद्दों पर चुप्पी साधे रखी।

बकाशत संघर्ष (Bakasht Struggle) और मजदूरों का उपयोग

1930 के दशक के अंत में (1937-1939), बिहार में 'बकाशत' भूमि की वापसी के लिए हिंसक संघर्ष हुए। बकाशत वह भूमि थी जिसे मंदी के दौरान लगान न चुका पाने के कारण जमींदारों ने रैयतों से छीन लिया था।

मजदूरों की भूमिका: इन संघर्षों में मजदूरों की भूमिका मुख्य रूप से 'पैदल सैनिकों' (Foot Soldiers) की थी। जमींदारों के लठैतों का मुकाबला करने के लिए उनकी शारीरिक शक्ति का उपयोग किया गया। हालांकि, इस संघर्ष की जीत (जमीन की वापसी) का लाभ मुख्य रूप से रैयतों को मिला, न कि उन भूमिहीनों को जिन्होंने लाठियां खाई थीं।

वैचारिक बदलाव: 'खेत मजदूर' का उदय

1940 का दशक बिहार के किसान आंदोलन में एक वैचारिक और रणनीतिक मोड़ लेकर आया। कांग्रेस के 1937-39 के शासनकाल के दौरान जमींदारों के प्रति नरम रवैये और मध्यम किसानों के स्वार्थी व्यवहार ने स्वामी सहजानंदक को मोहभंग की स्थिति में ला दिया।

हजारीबाग जेल और 'खेत मजदूर' ग्रंथ (1941)

1940 में हजारीबाग सेंट्रल जेल में कारावास के दौरान, स्वामी सहजानंदक ने अपने विचारों को पुनर्गठित किया। उन्होंने 'खेत मजदूर' नामक एक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखा, जो भारतीय कृषि इतिहास में एक मील का पत्थर है।

- नया दर्शन: स्वामी जी ने तर्क दिया कि "मध्यम किसान" स्वभाव से अस्थिर है और अंततः पूंजीवाद की ओर झुक जाएगा। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि ग्रामीण भारत में एकमात्र सच्ची क्रांतिकारी शक्ति "खेत मजदूर" और "गरीब किसान" हैं।
- लोकसंग्रह: उन्होंने भगवद गीता की अवधारणा 'लोकसंग्रह' का उपयोग करते हुए यह तर्क दिया कि समाज का कल्याण तब तक संभव नहीं है जब तक सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति (मजदूर) को न्याय नहीं मिलता। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, "खेत मजदूर वो किसान है जिसके पास जमीन नहीं है" (Khet Mazdoor is a Kisan without land)।

कोमिला सम्मेलन (1938) और लाल झंडा

अखिल भारतीय किसान सभा (AIKS) के कोमिला सम्मेलन (मई 1938) में, संगठन ने आधिकारिक तौर पर खेतिहर मजदूरों को संगठित करने का प्रस्ताव पारित किया। यह इस बात की स्वीकृति थी कि रैयत और मजदूर के हित हमेशा समान नहीं हो सकते और मजदूरों को अपने अधिकारों (जैसे उचित मजदूरी) के लिए स्वतंत्र मंच की आवश्यकता है।

प्रतीकात्मक बदलाव: इसी दौर में किसान सभा ने लाल झंडे (Red Flag) को अपना लिया, जो कम्युनिस्ट विचारधारा की ओर उनके झुकाव और कांग्रेस की सुधारवादी नीतियों से उनके अलगाव का प्रतीक था।

स्वतंत्रता पश्चात का विश्वासघात और 'नए मालिकों' का उदय

1947 में भारत की स्वतंत्रता ने बिहार के ग्रामीण गरीबों के लिए उम्मीद की एक किरण जगाई, लेकिन बाद के दशकों ने इसे 'विश्वासघात' के काल में बदल दिया।

जमींदारी उन्मूलन और उसके परिणाम

स्वतंत्रता के तुरंत बाद, बिहार सरकार ने बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 पारित किया, जिसका उद्देश्य जमींदारी प्रथा को समाप्त करना था।

- विफलता के कारण: कानून में जमींदारों को 'ख़ास' (Khas) या 'निजी जोत' के तहत जमीन रखने की अनुमति दी गई थी। इसका फायदा उठाकर जमींदारों ने बड़े पैमाने पर बंटाईदारों को बेदखल कर दिया ताकि वे दिखा सकें कि जमीन उनकी खुद की खेती के तहत है।
- मध्यवर्ती जातियों का सशक्तिकरण: इस सुधार का सबसे बड़ा लाभ उन काशतकारों (Occupancy Tenants) को मिला जो यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी पिछड़ी जातियों (OBCs) से आते थे। वे अब जमीन के मालिक बन गए। समाजशास्त्रियों ने नोट किया है कि ये 'नए मालिक' पुराने सामंती जमींदारों की तुलना में दलित मजदूरों के प्रति अधिक आक्रामक थे, क्योंकि वे खेती में सीधे शामिल थे और मुनाफे को अधिकतम करना चाहते थे।

पूर्णिया का संताल बंटाईदार संघर्ष

जहां शेष बिहार में जातिगत समीकरण बदल रहे थे, पूर्णिया जिले में एक अलग तरह का संघर्ष चल रहा था। पूर्णिया में 'दियारा' (नदी के द्वीप) भूमि की अधिकता थी, जिसे जोतने के लिए जमींदारों ने ऐतिहासिक रूप से संताल आदिवासियों को बसाया था।

- नक्षत्र मालाकार और कम्युनिस्ट पार्टी: 1950 के दशक में, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) के नेतृत्व में, विशेष रूप से नक्षत्र मालाकार जैसे नेताओं द्वारा, संताल बंटाईदारों के अधिकारों के लिए आंदोलन चलाया गया।
- संघर्ष का स्वरूप: यह संघर्ष मुख्य रूप से 'काशतकारी अधिकारों' (Tenancy Rights) की रिकॉर्डिंग के लिए था। यद्यपि इसमें आदिवासियों और मजदूरों की भागीदारी थी, लेकिन CPI की रणनीति मुख्य रूप से कानूनी थी। वे अदालतों में लड़ते थे और जनसभाएं करते थे, लेकिन उन्होंने जमींदारों के हिंसात्मक तंत्र को सशस्त्र चुनौती देने से परहेज किया।
- परिणाम: कानूनी लड़ाई अक्सर गरीबों के खिलाफ जाती थी। पूर्णिया के धमदाहा क्षेत्र में 'मालिकों' (जमींदारों) ने संतालों को उनकी जमीन से बेदखल करना जारी रखा, जिससे असंतोष का लावा सुलगता रहा।

1970 का 'लैंड ग्रेब' आंदोलन

1960 के दशक के अंत तक, कृषि अशांति चरम पर थी। 1970 में, CPI और सोशलिस्ट पार्टियों ने राष्ट्रीय स्तर पर 'लैंड ग्रेब' (भूमि हड़प) आंदोलन का आह्वान किया।

प्रकृति: बिहार में, यह आंदोलन काफी हद तक प्रतीकात्मक था। पार्टी कार्यकर्ता जमींदारों की जमीन पर जाकर लाल झंडा गाड़ देते थे और गिरफ्तारी देते थे। आलोचकों ने इसे एक "भव्य प्रदर्शन" (Grand Show) कहा, जो बिना किसी ठोस परिणाम के समाप्त हो गया। इसने भूमिहीनों को कोई वास्तविक जमीन नहीं दिलाई, बल्कि उन्हें और अधिक निराश किया।

नक्सलबाड़ी का प्रस्फुटन: सर्वहारा वर्ग का उदय

1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी में हुए विद्रोह ने बिहार की राजनीति में भूकंप ला दिया। CPI और CPI(M) की संसदीय सीमाओं से निराश होकर, युवा क्रांतिकारी और दलित मजदूर एक नए, उग्र रास्ते की ओर मुड़े। यहीं से खेतिहर मजदूर बिहार के किसान आंदोलन का 'मोहरा' (Vanguard) बन गया।

मुसहरी: पहली चिंगारी (1968)

मुजफ्फरपुर जिले का मुसहरी प्रखंड, जो अपनी भीषण गरीबी और अकाल के लिए जाना जाता था, बिहार में नक्सलवाद का पहला केंद्र बना।

- घटनाक्रम: चारू मजूमदार की विचारधारा से प्रेरित होकर, स्थानीय कार्यकर्ताओं ने भूखे मजदूरों को संगठित किया और जमाखोरों के गोदामों पर हमला कर अनाज लूटा। यह राज्य की सत्ता को सीधी चुनौती थी।
- दमन और जयप्रकाश नारायण: राज्य ने पुलिस बल के साथ प्रतिक्रिया दी, और गांधीवादी नेता जयप्रकाश नारायण (JP) ने हिंसा को रोकने के लिए वहां डेरा डाला। यद्यपि मुसहरी का विद्रोह कुचल दिया गया, लेकिन इसने यह साबित कर दिया कि बिहार के मैदानी इलाकों में भी सशस्त्र संघर्ष संभव है।

भोजपुर: क्रांति की प्रयोगशाला

मुसहरी के बाद, आंदोलन का केंद्र भोजपुर जिले में स्थानांतरित हो गया। भोजपुर का आंदोलन केवल आर्थिक नहीं था; यह एक सांस्कृतिक और सामाजिक क्रांति थी जिसे "इज्जत की लड़ाई" (Struggle for Dignity) के रूप में जाना गया।

जगदीश महतो: 'मास्टर साहब' का नेतृत्व

भोजपुर आंदोलन के मुख्य वास्तुकार जगदीश महतो थे, जो एकवारी गांव के एक विज्ञान शिक्षक थे और कोइरी जाति से आते थे। उन्हें अक्सर 'मास्टर साहब' कहा जाता था।

- विचारधारा: जगदीश महतो ने माओवाद को अंबेडकरवाद के साथ जोड़ा। उन्होंने महसूस किया कि बिहार में 'वर्ग संघर्ष' को 'जाति संघर्ष' से अलग नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा, "जमींदार का भाई मेरा भाई नहीं है।" उनका लक्ष्य केवल मजदूरी बढ़ाना नहीं था, बल्कि सामंती सत्ता के मनोविज्ञान को तोड़ना था।
- रणनीति: उन्होंने 'वर्ग शत्रुओं के उन्मूलन' की नीति अपनाई। यह अंधाधुंध हिंसा नहीं थी; यह उन विशिष्ट जमींदारों की लक्षित हत्या थी जो अपनी क्रूरता और महिलाओं के यौन शोषण के लिए कुख्यात थे।

डोला प्रथा का अंत और सामाजिक सम्मान

- डोला प्रथा: इस घृणित प्रथा के तहत, दलित दुल्हनों को अपनी सुहागरात से पहले स्थानीय जमींदार के पास जाना पड़ता था। यह न केवल यौन शोषण था, बल्कि जातिगत वर्चस्व का प्रतीक था।
- प्रतिरोध: नक्सली दस्तों ने शादियों की सुरक्षा करना शुरू कर दिया। जब भी जमींदार के गुंडे डोला रोकने की कोशिश करते, तो उनका जवाब गोलियों से दिया जाता था। कुछ ही वर्षों में, भोजपुर के नक्सल प्रभावित क्षेत्रों से यह प्रथा पूरी तरह समाप्त हो गई। मजदूरों ने बेगारी करने से मना कर दिया और जमींदारों के सामने खाट पर बैठने का साहस जुटाया, जो पहले मौत की सजा के बराबर अपराध था।

प्रतिक्रिया का दौर: निजी सेनाएं (Senas) और जातिगत युद्ध

मजदूरों के इस सशस्त्र उभार ने ग्रामीण अभिजात वर्ग को भयभीत कर दिया। पुलिस और अदालतों को अप्रभावी मानते हुए, जमींदारों ने अपनी सुरक्षा और वर्चस्व बनाए रखने के लिए निजी सेनाओं (Private Armies) का गठन किया। 1980 और 90 के दशक में बिहार "जातिगत युद्ध" (Caste Wars) का मैदान बन गया।

रणवीर सेना और नरसंहारों का चक्र

1994 में बेलौर (भोजपुर) में गठित रणवीर सेना ने हिंसा को एक नए स्तर पर पहुंचा दिया। इसकी विचारधारा स्पष्ट थी: नक्सलियों के आधार (दलित मजदूरों) को ही खत्म कर देना। इनका नारा था कि "सांप के बच्चों को भी मार डालो ताकि वे बड़े होकर नक्सली न बनें"। इस दौर के प्रमुख नरसंहार जिन्होंने राष्ट्र की अंतरात्मा को झकझोर दिया:

- बथानी टोला (1996): भोजपुर में 21 दलितों और मुस्लिमों की हत्या। मृतकों में अधिकांश महिलाएं और बच्चे थे।
- लक्ष्मणपुर बाथे (1 दिसंबर 1997): इसे भारत के इतिहास का सबसे काला दिन माना जाता है। जहानाबाद में सोन नदी पार करके रणवीर सेना के हत्यारों ने 58 दलितों की हत्या कर दी। इसमें 27 महिलाएं और 16 बच्चे शामिल थे। तत्कालीन राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने इसे "राष्ट्रीय शर्म" कहा था।

शंकरबिगहा (1999): गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर 23 दलितों की हत्या।

राज्य की भूमिका: विभिन्न जांच आयोगों (जैसे अमीर दास आयोग) ने संकेत दिया कि इन सेनाओं को विभिन्न राजनीतिक दलों का संरक्षण प्राप्त था। अमीर दास आयोग को अपनी रिपोर्ट सौंपने से पहले ही भंग कर दिया गया, जो राजनीतिक मिलीभगत की गहराई को दर्शाता है।

महिलाओं की भूमिका: प्रतिरोध की अग्रिम पंक्ति

बिहार के किसान आंदोलन का इतिहास अक्सर पुरुष प्रधान आख्यान में सिमट कर रह जाता है, लेकिन महिलाओं की भूमिका इसमें केंद्रीय रही है। सामंती व्यवस्था में दलित महिला का शरीर 'जाति के सम्मान' और 'शोषण' का युद्धक्षेत्र था।

नारी मुक्ति संघ

1990 के दशक में, बिहार और झारखंड के नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में 'नारी मुक्ति संघ' (NMS) का उदय हुआ। यह केवल एक कल्याणकारी संगठन नहीं था, बल्कि एक जुझारू प्रतिरोध मंच था।

- मिर्ची पाउडर और घरेलू हथियार: जब पुलिस या जमींदारों की सेना गांवों में छापा मारने आती थी, तो महिलाएं रक्षा की पहली पंक्ति होती थीं। वे पुलिस की आंखों में मिर्ची पाउडर झाँकती थीं और घरेलू औजारों (हंसिया, लाठी) से उनका मुकाबला करती थीं। यह रणनीति इसलिए अपनाई गई क्योंकि पुलिस महिलाओं पर गोली चलाने से हिचकिचाती थी (शुरुआत में), जिससे पुरुष कैडर को भागने का समय मिल जाता था।
- ट्रैक्टर प्रतिरोध: एक प्रसिद्ध घटना में, जब जमींदार विवादित भूमि पर खड़ी फसल को नष्ट करने के लिए ट्रैक्टर लेकर आए, तो महिलाएं ट्रैक्टरों के सामने लेट गईं। उनके इस साहस ने जमींदारों को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया।

आंतरिक सुधार

छड़ै ने केवल बाहरी दुश्मनों से ही नहीं, बल्कि अपने समुदाय के भीतर भी लड़ाई लड़ी। उन्होंने 'जन अदालतों' के माध्यम से शराबखोरी और घरेलू हिंसा के खिलाफ अभियान चलाया। यदि कोई कामरेड अपनी पत्नी को पीटता था, तो उसे भी दंडित किया जाता था। इस दोहरी लड़ाई ने ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाया।

आधुनिक युग: विकास, लोकतंत्र और मुख्यधारा

21वीं सदी की शुरुआत के साथ, बिहार के कृषि संघर्ष का स्वरूप बदलने लगा। सशस्त्र संघर्ष की थकान, राज्य की नई रणनीतियां और लोकतंत्र के विस्तार ने आंदोलन को एक नई दिशा दी।

राज्य की प्रतिक्रिया: 'विकास' उग्रवाद-विरोधी रणनीति के रूप में

राज्य ने महसूस किया कि केवल पुलिस बल से इस आंदोलन को नहीं दबाया जा सकता।

- ऑपरेशन सिद्धार्थ और रक्षक: 1980 के दशक के अंत में शुरू किए गए ये अभियान विकासात्मक और सैन्य रणनीतियों का मिश्रण थे, लेकिन भ्रष्टाचार के कारण विफल रहे।
- नीतीश कुमार और 'महादलित' कार्ड: 2005 के बाद, मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने एक चतुर सामाजिक इंजीनियरिंग की। उन्होंने दलितों के बीच सबसे वंचित समूहों (जैसे मुसहर) को 'महादलित' के रूप में वर्गीकृत किया और उनके लिए विशेष योजनाएं (आवास, वर्दी, रेडियो) शुरू कीं।
- प्रभाव: इन योजनाओं ने नक्सलियों के जनाधार को कमजोर किया। जब राज्य ने 'इज्जत' (पंचायत आरक्षण के माध्यम से) और 'रोटी' (कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से) देना शुरू किया, तो बंदूक का आकर्षण कम हो गया। 'आपकी सरकार आपके द्वार' जैसे कार्यक्रमों ने प्रशासन की पहुंच बढ़ाई।

CPI (ML) लिबरेशन का संसदीय एकीकरण

सबसे बड़ा नक्सली गुट, CPI (ML) लिबरेशन, धीरे-धीरे संसदीय लोकतंत्र का हिस्सा बन गया।

- रणनीतिक बदलाव: पार्टी ने 'भूमिगत युद्ध' से हटकर 'जन आंदोलनों' पर ध्यान केंद्रित किया। अब मुद्दा 'जमींदारों का सफाया' नहीं, बल्कि मनरेगा (MNREGA) का कार्यान्वयन, शिक्षा का अधिकार और संविधान की रक्षा है।
- चुनावी सफलता: 2020 के बिहार विधानसभा चुनावों में, CPI (ML) ने 12 सीटें जीतीं। यह एक ऐतिहासिक क्षण था जब कल का 'बागी' आज का 'विधायक' बन गया। 2024 के आम चुनावों में भी पार्टी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।
- समकालीन मुद्दे: आज भी, 2025 के करीब, आंदोलन जारी है लेकिन इसके मुद्दे बदल गए हैं। अब यह संघर्ष प्रवासी मजदूरों के अधिकारों, स्मार्ट मीटरों के खिलाफ विरोध और बुलडोजर राज के खिलाफ नागरिक अधिकारों की रक्षा पर केंद्रित है।

निष्कर्ष

बिहार के किसान आंदोलनों में मजदूरों की भूमिका का विश्लेषण हमें भारतीय लोकतंत्र की गहराइयों और विरोधाभासों से रूबरू कराता है।

- हाशिए से केंद्र तक: 1929 में जो मजदूर किसान सभा की बैठकों में केवल दूरी बिछाने के लिए था, 1970 के दशक तक वह क्रांति का ध्वजवाहक बन गया। यह यात्रा केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक थी।
- सामंती भय का अंत: आंदोलनों की सबसे बड़ी उपलब्धि आर्थिक समानता नहीं (क्योंकि भूमि वितरण अभी भी असमान है), बल्कि 'सामंती भय' का अंत है। आज बिहार के किसी भी गांव में कोई जमींदार किसी दलित को 'बेगारी' के लिए मजबूर नहीं कर सकता। 'डोला' प्रथा इतिहास बन चुकी है। यह 'इज्जत' की जीत है।
- असमानता का नया रूप: यद्यपि पुराने जमींदार कमजोर हुए हैं, लेकिन कृषि संकट ने मजदूरों को पलायन के लिए मजबूर किया है। आज का बिहारी मजदूर पंजाब के खेतों या दिल्ली की फैक्ट्रियों में शोषित हो रहा है। संघर्ष का भूगोल बदल गया है, लेकिन संघर्ष जारी है।

बिहार के खेतों में जो रक्त बहा, वह व्यर्थ नहीं गया। उसने भारत के सबसे दमित वर्ग को यह सिखाया कि सिर उठाकर कैसे जिया जाता है। जैसा कि भोजपुर आंदोलन का एक लोकप्रिय नारा था: "धन और धरती बंट के रहेगी" यह सपना अभी पूरा होना बाकी है, लेकिन इसकी गूंज आज भी बिहार की राजनीति में सुनाई देती है।

संदर्भ सूची

1. अरविंद, एन. दास. (1983). बिहार में कृषि अशांति और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन (1900-1980). मनोहर पब्लिकेशंस.
2. चक्रवर्ती, ए. (2001). सामाजिक शक्ति और रोजमर्रा के वर्ग संबंध: उत्तरी बिहार में कृषि परिवर्तन. सेज पब्लिकेशंस.

3. हौसर, डब्ल्यू. (1961). बिहार प्रांतीय किसान सभा, 1929-1942: एक भारतीय किसान आंदोलन का अध्ययन. शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. सहजानंद सरस्वती, एस. (1952). मेरा जीवन संघर्ष. श्री सीताराम आश्रम.
5. गुहा, आर. (1983). औपनिवेशिक भारत में किसान विद्रोह के प्राथमिक पहलू. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. प्रकाश, जी. (1990). बंधुआ इतिहास: औपनिवेशिक भारत में श्रम दासता की वंशावली. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. कुमार, ए. (2018). बिहार में कृषि श्रमिकों का निर्माण: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य. जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 45(2), 312-330.
8. बिहार सरकार. (2023). बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2022-23. वित्त विभाग, पटना.
9. शर्मा, ए. एन. (2005). बिहार में कृषि संबंध और किसान आंदोलन. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 40(27), 2960-2968.
10. झा, पी. के. (2014). बिहार में दलित चेतना और किसान आंदोलन. इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू, 41(1), 85-102.
11. विल्सन, के. (1999). बिहार में कृषि प्रश्न और किसान आंदोलन. टी. जे. बायर्स (सं.) में, भारत में राज्य, विकास योजना और उदारीकरण. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
12. वर्मा, बी. एम. (2021). ग्रामीण बिहार में प्रवासन और बदलते कृषि संबंध (2010-2020). सोशल चेंज, 51(3), 412-425.
13. सिंह, एस. (2024). उत्तरी बिहार में भूमिहीन खेतिहर मजदूरों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: 2025 का परिप्रेक्ष्य। बिहार जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, 12(1), 45-60.
14. यादव, एम. एन. (2025). उदारीकरण के बाद के किसान आंदोलन: नई कृषि पहचान का एक अध्ययन। एकेडमिक प्रेस बिहार

गणतंत्रकालीन मिथिला में 600 से 300 ई० पूर्व के मध्य हुए कृषि क्रांति का अध्ययन

डॉ० राम कुमार भारती

असिस्टेंट प्रोफेसर _Guest Faculty सच्चिदानन्द सिन्हा कॉलेज, औरंगाबाद (बिहार)

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख 600 ई० पूर्व से 300 ई० पूर्व के मध्य प्राचीन मिथिला (विदेह क्षेत्र) में घटित 'कृषि क्रांति' का एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह कालखंड 'द्वितीय नगरीकरण' के उदय का आधार माना जाता है। शोध-पत्र का मुख्य केंद्र उन तकनीकी और पारिस्थितिक परिवर्तनों की पड़ताल करना है, जिन्होंने मध्य-गंगा घाटी की आर्थिक संरचना को आमूल-चूल बदल दिया।

इस क्रांति के दो प्रमुख स्तंभ थे- लौह तकनीक का कृषि में प्रवेश और धान की रोपाई पद्धति का विकास। मिथिला की भारी जलोढ़ मिट्टी और आर्द्र जलवायु ने इन नवाचारों के लिए एक आदर्श मंच प्रदान किया। लोहे के फाल वाले हलों ने न केवल सघन वनों की सफाई को सुगम बनाया, बल्कि मिट्टी की गहरी जुताई द्वारा उत्पादकता में गुणात्मक वृद्धि की। साथ ही, धान की रोपाई तकनीक ने फसल की उत्तरजीविता सुनिश्चित कर 'अधिशेष उत्पादन' की स्थिति पैदा की।

शोध-पत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि इसी आर्थिक अधिशेष ने मिथिला में कबीलाई संरचना को समाप्त कर 'वज्जी संघ' जैसे संगठित गणतंत्रों और जटिल कर-प्रणालियों को जन्म दिया। यह अधिशेष ही था जिसने गैर-कृषि समुदायों, जैसे कि शिल्पी, व्यापारी और दार्शनिकों के वर्ग को फलने-फूलने का अवसर दिया, जिससे वैशाली जैसे नगरों का उदय हुआ। निष्कर्षतः, यह शोध पत्र स्पष्ट करता है कि मिथिला की कृषि क्रांति केवल एक तकनीकी सुधार नहीं, बल्कि एक सामाजिक-राजनैतिक रूपांतरण की धुरी थी, जिसने प्राचीन भारतीय सभ्यता को एक नई दिशा प्रदान की।

कुंजी शब्द: मिथिला, कृषि क्रांति, लौह तकनीक, धान रोपाई, आर्थिक अधिशेष, द्वितीय नगरीकरण, वज्जी संघ, जलोढ़ मृदा आदि।

प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में छठी शताब्दी ईसा पूर्व का समय एक युगांतरकारी मोड़ था। यह वह कालखंड था जब आर्य सभ्यता का प्रसार सरस्वती और सिंधु की घाटियों से पूर्व की ओर बढ़ते हुए गंगा के मध्य मैदानों में पूरी तरह स्थिर हो चुका था। इस भौगोलिक विस्तार के केंद्र में 'मिथिला' (प्राचीन विदेह) का क्षेत्र था। हिमालय की तलहटी और गंगा के उत्तर में स्थित यह क्षेत्र अपनी विशिष्ट जलोढ़ मिट्टी और बारहमासी नदियों जैसे गंडक, कोसी और बागमती के कारण पारिस्थितिक रूप से अत्यंत समृद्ध था।

600 से 300 ईसा पूर्व के बीच इस क्षेत्र में केवल राजनीतिक सत्ता का परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि एक ऐसी 'कृषि क्रांति' हुई जिसने समाज के आर्थिक आधार को बदल दिया। मिथिला की दलदली और वनाच्छादित भूमि, जिसे कभी खेती के लिए अनुपयुक्त माना जाता था, अचानक से प्राचीन भारत का 'अन्न भंडार' बन गई।⁽¹⁾

तकनीकी नवाचार: लौह युग का परिपक्व चरण

600 ईसा पूर्व तक लोहे का उपयोग केवल युद्ध के अस्त्रों तक सीमित नहीं रहा। पुरातात्विक खुदाई, विशेषकर गंगा घाटी के उत्तरी क्षेत्रों में, यह दर्शाती है कि इस दौरान लोहे के फाल और कुल्हाड़ियों का बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू हुआ। मिथिला की मिट्टी भारी और चिकनी थी, जिसे लकड़ी के हलों से जोतना असंभव था। लोहे के औजारों ने किसानों को दो बड़ी शक्तियाँ प्रदान कीं-

1. वनोन्मूलन: लोहे की कुल्हाड़ियों ने उन सघन वनों को साफ करने की क्षमता दी जो गंगा के मैदानों में फैले थे। 'शतपथ ब्राह्मण'⁽²⁾ में वर्णित विदेह माथव की कथा इसी वन-सफाई और अग्नि द्वारा भूमि को 'पवित्र' (कृषि योग्य) बनाने का प्रतीक है।
2. गहरी जुताई: लोहे के फाल ने मिट्टी की निचली परतों को पलटने में मदद की, जिससे पोषक तत्व ऊपर आए और उत्पादकता में क्रांतिकारी वृद्धि हुई।

धान की रोपाई: पद्धतिगत क्रांति

इस शोध पत्र का एक मुख्य केंद्र 'धान की रोपाई' की तकनीक है। 600 ईसा पूर्व से पहले, बीजों को छिड़ककर बोया जाता था। लेकिन मिथिला के किसानों ने यह अनुभव किया कि यदि पौधों को पहले एक नर्सरी में उगाया जाए और फिर उन्हें नियमित अंतराल पर पानी से भरे खेतों में रोपा जाए, तो

पैदावार कई गुना बढ़ जाती है। यह तकनीक श्रम-प्रधान थी, जिसने समाज में नए श्रम-वर्गों (दास और भूतक) की आवश्यकता पैदा की।⁽³⁾ रोपाई विधि ने न केवल अकाल के जोखिम को कम किया, बल्कि 'अधिशेष उत्पादन' की स्थिति पैदा की। यही वह अधिशेष था जिसने उन लोगों का पेट भरा जो खेतों में काम नहीं करते थे—जैसे राजा, पुरोहित, शिल्पी और व्यापारी।

सामाजिक-राजनीतिक संरचना पर प्रभाव

कृषि क्रांति ने सीधे तौर पर 'गणतंत्रों' के उदय को प्रेरित किया। मिथिला में 'विदेह' का प्राचीन राजतंत्र धीरे-धीरे 'वज्जी संघ' जैसे शक्तिशाली गणतंत्रिक ढांचे में परिवर्तित हो गया। जब कृषि उत्पादन बढ़ा, तो भूमि का महत्व बढ़ गया। अब 'गृहपति' यानी धनी किसान वर्ग का उदय हुआ, जिनकी पहचान उनके भू-स्वामित्व से थी। उत्पादन की प्रचुरता ने कर की एक नियमित व्यवस्था को जन्म दिया। बलि, शुल्क और भाग जैसे करों के माध्यम से राज्य को इतनी आय होने लगी कि वह स्थायी सेना और दुर्गों का निर्माण कर सके। वैशाली जैसा महानगर, जो वज्जी संघ की राजधानी थी, इसी कृषि अधिशेष की नींव पर खड़ा हुआ था।

द्वितीय नगरीकरण और वैचारिक क्रांति

इतिहासकार आर० एस० शर्मा और ए० एल० बाशम के अनुसार, कृषि क्रांति 'द्वितीय नगरीकरण' का प्राथमिक कारण थी।⁽⁴⁾ जब अनाज की प्रचुरता हुई, तो लोग अन्य व्यवसायों जैसे धातु-शिल्प, वस्त्र-निर्माण और व्यापार की ओर मुड़े। मिथिला के व्यापारिक मार्ग गंगा के माध्यम से मगध और कोसल तक जुड़ गए। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब समाज आर्थिक रूप से समृद्ध हुआ, तो पारंपरिक वैदिक कर्मकांडों के विरुद्ध एक बौद्धिक वातावरण तैयार हुआ। अधिशेष उत्पादन ने भिक्षुओं और दार्शनिकों के एक ऐसे बड़े वर्ग को सहारा दिया, जिन्होंने जैन और बौद्ध धर्म जैसे नए विचारों का प्रतिपादन किया। भगवान बुद्ध और महावीर का मिथिला क्षेत्र में बार-बार आगमन और यहाँ के समृद्ध किसानों का उनका अनुयायी बनना, इस आर्थिक मजबूती का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

साहित्य-समीक्षा

भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण

आर० एस० शर्मा⁽⁵⁾ अपनी कालजयी कृति 'Material Culture and Social Formations in Ancient India' में शर्मा तर्क देते हैं कि मध्य गंगा घाटी (जिसमें मिथिला सम्मिलित है) में सभ्यता का विस्तार मुख्य रूप से लौह तकनीक के कारण हुआ। उन्होंने स्पष्ट किया कि 600 ई० पूर्व के आसपास लोहे के फाल (Ploughshare) के प्रयोग ने न केवल जंगलों की सफाई की, बल्कि भारी जलोढ़ मिट्टी की गहरी जुताई को संभव बनाया, जो कृषि क्रांति का आधार बनी।

रोमिला थापर⁽⁶⁾ ने 'From Lineage to State' में विश्लेषण किया है कि कैसे कृषि अधिशेष ने 'वंश-आधारित' समाज को 'राज्य-आधारित' समाज में बदल दिया। मिथिला और वैशाली के संदर्भ में उनका मानना है कि धान की रोपाई से होने वाली प्रचुर पैदावार ने ही 'वज्जी संघ' जैसे जटिल राजनीतिक ढांचों को आर्थिक पोषण प्रदान किया।

डी० डी० कोसांबी⁽⁷⁾ ने 'An Introduction to the Study of Indian History' में भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने 'विदेह माथव' की कथा का उल्लेख करते हुए बताया कि सरस्वती से सदानीरा (गंडक) तक अग्नि द्वारा जंगलों का दहन वास्तव में कृषि विस्तार की एक सोची-समझी प्रक्रिया थी, जिसने मिथिला को एक स्थायी कृषक समाज में तब्दील कर दिया।

विवेकानंद झा⁽⁸⁾ ने अपने शोध में इस काल के श्रम विभाजन पर ध्यान केंद्रित किया। उनका तर्क है कि धान की रोपाई एक अत्यंत श्रम-साध्य प्रक्रिया थी, जिसने 'दासों' और 'कर्मकारों' के एक नए वर्ग को जन्म दिया। मिथिला की कृषि संपन्नता इसी संगठित श्रम बल का परिणाम थी।

मदन मोहन सिंह⁽⁹⁾ ने अपनी पुस्तक 'Life in North-Eastern India in Pre-Mauryan Times' में उन्होंने बुद्धकालीन मिथिला के सामाजिक जीवन का विवरण दिया है। उन्होंने विशिष्ट रूप से 'साली' (सुगंधित चावल) और अन्य फसलों के विवरण के माध्यम से यह सिद्ध किया कि 600-300 ई० पूर्व के बीच मिथिला में फसल चक्र की समझ विकसित हो चुकी थी।

शोध की प्रासंगिकता और उद्देश्य

आज के संदर्भ में इस कालखंड का अध्ययन करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह हमें बताता है कि कैसे तकनीकी नवाचार और पारिस्थितिकी के मेल से एक महान सभ्यता का निर्माण होता है। यह शोध पत्र निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करेगा—

- मिथिला की विशिष्ट मृदा संरचना ने धान की रोपाई को कैसे सुगम बनाया?
- लौह तकनीक ने कबीलाई समाज को एक राज्य में बदलने में क्या भूमिका निभाई?
- कृषि अधिशेष ने वैशाली और विदेह के नगरीकरण को किस प्रकार गति प्रदान की?

परिणाम एवं चर्चा

600 ई० पूर्व से 300 ई० पूर्व के मध्य मिथिला क्षेत्र में हुए कृषि परिवर्तनों के विश्लेषण से निम्नलिखित परिणाम उभरकर सामने आते हैं:

खाद्यान्न उत्पादन में घातीय वृद्धि

- यह अधिशेष ही वह पूंजी थी जिसने गैर-कृषि गतिविधियों को संभव बनाया। पाली ग्रंथों में 'कोठार' के बार-बार होने वाले उल्लेख इस बात की पुष्टि करते हैं कि विदेह क्षेत्र में अनाज का भंडारण एक सामान्य प्रशासनिक प्रक्रिया बन चुकी थी।

सामाजिक स्तरीकरण और 'गहपति' वर्ग का उदय

- भूमि अब केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि शक्ति और प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गई। इस काल में 'गहपति' शब्द का उदय हुआ, जो उन धनी भू-स्वामियों के लिए प्रयुक्त होता था जो कृषि प्रबंधन देखते थे। इसने कबीलाई समतावाद को समाप्त कर एक श्रेणीबद्ध समाज का निर्माण किया, जहाँ भूमिहीन मजदूरों (दास-भर्मकार) और भू-स्वामियों के बीच स्पष्ट अंतर दिखने लगा।

राजनीतिक स्वरूप में परिवर्तन: गणतंत्रीय सुदृढ़ता

- वज्जी संघ जैसे गणतंत्रों की सफलता का राज उनकी आर्थिक स्वतंत्रता थी। कर के रूप में प्राप्त होने वाले अनाज ने 'परिषदों' और 'संस्थागारों' के खर्चों को वहन किया। यह चर्चा का विषय है कि क्या बिना कृषि अधिशेष के मिथिला में लोकतंत्र का यह प्रारंभिक स्वरूप जीवित रह पाता? उत्तर नकारात्मक प्रतीत होता है क्योंकि सैन्य शक्ति के रखरखाव के लिए स्थिर खाद्य आपूर्ति अनिवार्य थी।

द्वितीय नगरीकरण का सूत्रपात

- जब कृषि ने जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को भोजन की चिंता से मुक्त किया, तो शिल्प और व्यापार का विकास हुआ। वैशाली, चंपा और कौशाम्बी जैसे नगरों का उदय इसी 'कृषि क्रांति' का उप-उत्पाद था। नदियों के किनारे बसे होने के कारण मिथिला का अधिशेष अनाज नावों के जरिए सुदूर क्षेत्रों तक भेजा जाने लगा, जिससे एक अंतर-क्षेत्रीय बाजार का उदय हुआ।⁽¹⁰⁾

वैचारिक और धार्मिक प्रभाव

- यज्ञों में पशुबलि की वैदिक परंपरा कृषि अर्थव्यवस्था के लिए बाधक थी, क्योंकि खेती के लिए बैलों और पशुधन की आवश्यकता बढ़ गई थी। बौद्ध और जैन धर्म द्वारा 'अहिंसा' पर जोर दिया जाना प्रत्यक्ष रूप से कृषि क्रांति की मांग थी। मिथिला के कृषक वर्ग ने इन नए धर्मों को इसलिए अपनाया क्योंकि वे उनकी आर्थिक गतिविधियों (पशु संरक्षण) के अनुकूल थे।

पर्यावरणीय प्रभाव

- सघन वनों के हटने से मृदा अपरदन और बाढ़ के पैटर्न में बदलाव आया होगा, जिसका उल्लेख बाद के ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलता है। हालाँकि, उस समय के लिए यह 'सभ्यता की प्रगति' का परिचायक था।

निष्कर्ष

600 ई0 पूर्व से 300 ई0 पूर्व के मध्य मिथिला (विदेह क्षेत्र) में हुई कृषि क्रांति महज एक आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि यह तकनीकी नवाचार, भौगोलिक अनुकूलता और सामाजिक इच्छाशक्ति का एक दुर्लभ संगम था। इस अध्ययन के माध्यम से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'द्वितीय नगरीकरण' की जिस भव्य इमारत पर प्राचीन भारतीय गौरव टिका है, उसकी नींव मिथिला के उपजाऊ खेतों में लोहे के फाल और धान की रोपाई द्वारा रखी गई थी। लौह तकनीक ने मानव और प्रकृति के बीच के संघर्ष को एक नया मोड़ दिया। जिस सघन वनाच्छादित और दलदली भूमि को पहले अभेद्य माना जाता था, उसे लोहे की कुल्हाड़ियों और हलों ने सभ्यता के पालने में बदल दिया। 'विदेह माथव' की पौराणिक कथा का ऐतिहासिक सत्य यही है कि यह कालखंड जंगलों के दहन और कृषि विस्तार का गवाह बना। यह तकनीकी परिवर्तन ही वह प्राथमिक चालक था जिसने मिथिला की अर्थव्यवस्था को 'अभाव' से 'अधिशेष' की ओर धकेला।

दूसरा प्रमुख निष्कर्ष धान की रोपाई की पद्धति से संबंधित है। इस तकनीक ने न केवल खाद्यान्न की मात्रा बढ़ाई, बल्कि समाज की संरचना को भी स्थायी रूप से बदल दिया। अधिशेष उत्पादन ने वह आर्थिक आधार प्रदान किया जिससे जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कृषि कार्य से मुक्त होकर अन्य कलाओं, शिल्पों और व्यापार में संलग्न हो सका। इसी अधिशेष ने वैशाली जैसे महान महानगरों और व्यापारिक केंद्रों के अस्तित्व को संभव बनाया। वैशाली का आर्थिक वैभव और वज्जी संघ की राजनीतिक स्थिरता सीधे तौर पर मिथिला के कृषकों की उत्पादकता से जुड़ी थी।

सामाजिक दृष्टिकोण से, इस कृषि क्रांति ने कबीलाई समतावाद को समाप्त कर एक वर्ग-आधारित समाज की नींव रखी। 'गहपति' वर्ग का उदय और भूमि के स्वामित्व की अवधारणा ने राज्य के निर्माण की प्रक्रिया को तेज किया। इसके साथ ही, इस आर्थिक परिवर्तन ने तत्कालीन धार्मिक और दार्शनिक विचारधाराओं को भी गहराई से प्रभावित किया। पशुधन की रक्षा की आवश्यकता ने अहिंसा के सिद्धांत को आर्थिक औचित्य प्रदान किया, जिससे बौद्ध और जैन धर्म जैसे सुधारवादी आंदोलनों को कृषक समाज का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ।

अंततः, यह शोध पत्र यह स्थापित करता है कि मिथिला की कृषि क्रांति ने प्राचीन भारत के इतिहास को एक नई दिशा दी। 300 ई0 पूर्व तक आते-आते मिथिला केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि एक सुसंगठित आर्थिक और सांस्कृतिक शक्ति बन चुकी थी। इस कालखंड ने यह सिद्ध किया कि जब किसी समाज के पास पर्याप्त खाद्य संसाधन होते हैं, तभी वह उच्च दर्शन, कला और सुदृढ़ शासन व्यवस्था की ओर अग्रसर हो पाता है। आज के संदर्भ में,

मिथिला की यह ऐतिहासिक कृषि क्रांति हमें यह सीख देती है कि पारिस्थितिक संसाधनों का तकनीकी नवाचार के साथ उचित समन्वय ही किसी भी सभ्यता के दीर्घकालिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, रामशरण (2007), प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति और सामाजिक संरचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 85-110.
2. थापर, रोमिला (2005), वंश से राज्य तक: मध्य गंगा घाटी में राज्य का उदय, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 142-165.
3. कोसांबी, दामोदर धर्मानंद (2012), प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता की खोज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 115-130.
4. सिंह, उषिंदर (2016), प्राचीन एवं पूर्व-मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन एजुकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 280-305.
5. चौधरी, राधाकृष्ण (1970), History of Muslim Rule in Tirhut (Mithila) प्रारंभिक अध्याय: प्राचीन मिथिला की अर्थव्यवस्था, वाराणसी: चौखम्बा ओरिएंटलिया, पृष्ठ संख्या- 12-40.
6. रायचौधरी, हेमचंद्र (2006), प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या- 95-120.
7. सिंह, मदन मोहन (1967), स्पमि पद North-Eastern India in Pre-Mauryan Times, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 178-210.
8. झा, डी0 एन0 (2014), प्राचीन भारत: एक रूपरेखा, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 70-92.
9. बाशम, ए0 एल0 (2003), अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, पृष्ठ संख्या- 150-175.
10. मजूमदार, आर0 सी0 (1951), द वेदिक एज, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, पृष्ठ संख्या 245-268.

माता-पिता के संबंधों का किशोरों के सामाजिक-मानसिक विकास पर प्रभाव

डॉ० विवेकानन्द सिंह

निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, गया

अंगद कुमार सिंह

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, गया

सारांश

इंसान का विकास ज़िंदगी भर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसे किसी व्यक्ति का सामाजिक माहौल, खासकर माता-पिता और अभिभावक बहुत ज्यादा प्रभावित करते हैं। पालन-पोषण के तरीके बच्चे के लिंग और माहौल के आधार पर अलग-अलग होते हैं, जो व्यवहार को प्रभावित करते हैं। परिवार, समाज, स्कूल और संस्कृति सभी विकास में अहम भूमिका निभाते हैं, और सहायक माहौल बच्चे के कौशल को विकसित करने में मदद करता है। आचार्य पी. शर्मा कहते हैं कि माता-पिता की भागीदारी किशोर लड़के-लड़कियों पर बहुत ज्यादा असर डालती है, और परिवार का अच्छा माहौल लड़कियों की शिक्षा और सोच को बेहतर बनाता है।

माता-पिता अपने बच्चों में ऐसे गुण डालते हैं जो उनके विकास और व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं, जिससे शारीरिक और मानसिक विकास दोनों पर असर पड़ता है। भारत में, जहाँ 70% लोग ग्रामीण इलाकों में रहते हैं, ग्रामीण और शहरी आबादी के बीच जीवनशैली में अंतर मानव विकास को प्रभावित करता है। माँ अक्सर पहली टीचर होती हैं, और एक अच्छा माहौल बहुत जरूरी है। शैक्षिक संसाधनों में असमानता के बावजूद, बच्चे दोनों तरह के माहौल में आगे बढ़ सकते हैं, और अकादमिक सफलता सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि से जुड़ी होती है।

मुख्य शब्द - मानव विकास, सामाजिक परिवेश, अभिभावक, शिक्षा, व्यक्तित्व विकास, शैक्षिक विकास।

प्रस्तावना

मानव विकास एक चरणबद्ध प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती है। मनुष्य के विकास में उसका सामाजिक परिवेश बहुत महत्वपूर्ण होता है। निश्चित रूप से, किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व और भावनात्मक बुद्धिमत्ता उसके आस-पास के माहौल से भी प्रभावित होती है और इस माहौल में, उसके माता-पिता और अभिभावकों का प्रभाव सबसे ज्यादा होता है। माता-पिता का अपने बच्चों के साथ रिश्ता इस बात पर भी निर्भर करता है कि वे किशोर हैं या किशोरी, और वे अपने आस-पास के माहौल से प्रभावित होते हैं। परिवार, समाज, स्कूल, क्षेत्रवाद आदि का माहौल किसी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है। जब सही माहौल और अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं, तभी व्यक्ति की सुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं। आचार्य पं. श्री राम शर्मा के अनुसार- किशोर लड़के-लड़कियों का जीवन माता-पिता की भागीदारी पर निर्भर करता है, यदि सभी प्रकार के परिवारों का माहौल अच्छी रीति-रिवाजों और परंपराओं पर आधारित हो, तो इसका किशोर लड़कियों की विचारधारा और विकास पर काफी असर पड़ेगा और उनकी शिक्षा न केवल उनके लिए बल्कि पूरे समाज के लिए फायदेमंद साबित होगी।

माता-पिता से बच्चों में अलग-अलग गुणों का संचार होता है। माता-पिता के नियमों का बच्चे के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है, जो व्यक्तित्व के निर्माण को भी प्रभावित करता है। किसी व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास पर माता-पिता का प्रभाव भी साफ दिखाई देता है। जहाँ एक ओर यह घटना शारीरिक विकास के रूप में दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर यह शारीरिक विकास की प्रक्रियाओं में बाधाओं के रूप में भी देखी जाती है।

माता-पिता मानव जीवन को संभव बनाते हैं और इसमें भावनाएँ, तर्क शक्ति, बोलने की शक्ति, बुद्धि, विकासात्मक गुण, आंतरिक शक्ति और कार्यात्मक क्षमता शामिल हैं। जो गुण और विशेषताएँ एक व्यक्ति अपने माता-पिता से प्राप्त करता है, वे माता-पिता के ही गुण और विशेषताएँ होती हैं।

कुछ शोध अध्ययनों से पता चला है कि बच्चों और माता-पिता के बीच का रिश्ता उनके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास में पूरा योगदान देता है। मालीन और माया (2004) ने अध्ययन में बताया कि किशोरों और माता-पिता के बीच लगाव की निरंतरता और विश्वास बनाए रखकर रिश्तों को स्थायी बनाया जा सकता है। काजुहिसा और अन्य (2000) ने अध्ययन में संकेत दिया कि बहिर्मुखी स्वभाव माता-पिता के बच्चे पालने के अत्यधिक

बोझ वाले स्वभाव से नकारात्मक रूप से जुड़ा हुआ था। संधू, दमनजीत और अन्य (2012) ने अध्ययन में संकेत दिया कि पहचान बनाने का अनुभव कर रहे किशोर उन किशोरों से काफी आगे थे और उनका रवैया सकारात्मक था। ओल्गा (2013) ने मनोविश्लेषणात्मक अध्ययनों के बाद पाया कि स्वायत्तता का माता-पिता के साथ गहरा संबंध है। थॉमस, जे., और अन्य (2013) के अध्ययन से पता चलता है कि माता-पिता किशोरों के व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, जो उनकी भविष्य की शैक्षिक, सामाजिक-आर्थिक और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को समझने में योगदान देगा। कैटरिना (2015) ने माता-पिता के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए कि एक अच्छा पिता अपनी बेटी के लिए एक आदर्श और बेटे के लिए एक उदाहरण होता है। एक माँ भी अपने बच्चों के सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और त्याग, उदारता और दयालुता के गुणों से बच्चों के भविष्य के जीवन की पटकथा लिखती है।

शोध अध्ययनों में बताया गया है कि किशोरों के माता-पिता की अनुपस्थिति उनके व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करती है। रजा, सोविया और अन्य (2008) ने एक अध्ययन के बाद पाया कि अध्ययन से पता चला है कि माता-पिता के बिना किशोरों को पालना बहुत जटिल रहा है।

माता-पिता के रिश्ते में संघर्ष, लड़ाई-झगड़ा आदि भी बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर असर डालते हैं। डानिया, जे., और अन्य (2014) के अध्ययन से पता चलता है कि माँ और किशोर के बीच संघर्ष का किशोर लड़कियों के व्यक्तित्व और विभिन्न मनो-सामाजिक विकासों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। देब, सिबनाथ, और अन्य (2015) ने एक अध्ययन में बताया कि एक टूटा हुआ परिवार किशोरों में तनाव, अयोग्यता, व्यक्तिगत समस्याओं और शैक्षिक दबावों को बढ़ा रहा था। किशोरों का मानसिक स्वास्थ्य, चिंता, सद्भाव, आत्म-अवधारणा और आत्मविश्वास माता-पिता के नकारात्मक रवैये से प्रभावित हो रहा था।

दूसरी ओर, माता-पिता का अलगाव, जुदाई और दोनों के बीच सद्भाव की कमी यह दर्शाती है कि इसका बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शोध अध्ययनों से निष्कर्ष के अनुसार, मैकी, रॉस (2005) ने अपने अध्ययन में बताया कि परिवार के अलगाव से जुड़े बच्चों को बुरे अनुभव हुए और उनकी मानसिक स्थिति बहुत खराब थी और माता-पिता के बीच संघर्ष ने बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य और असामाजिक रवैये और समायोजन को बहुत प्रभावित किया।

कलाउडिया और अन्य (2012) ने अपने अध्ययन में बताया कि व्यक्तित्व विकास के संदर्भ में विवाह एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है, फिर भी बच्चों की सुरक्षा और प्यार से इनकार नहीं किया जा सकता है। प्रेवो, टायस (2014) ने एक अध्ययन में पाया कि परिवार के टूटने का बच्चों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। माता-पिता का अलगाव बच्चों के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करता है। परिवार में गड़बड़ी बच्चों के वयस्क अवस्था में कम नुकसान पहुंचाती है।

एंगुर, बेगम (2017) ने अध्ययन में बताया कि आज भी हमारे समाज में मानसिक समस्याओं से जूझ रहे माता-पिता के लिए मनोवैज्ञानिक सहायता की कमी है।

अतुल्य भारत, जिसमें विभिन्न सभ्यताएँ, विभिन्न संस्कृतियाँ और विभिन्न प्रकार की प्रकृति शामिल हैं। कहा जाता है कि भारत का दिल गाँवों में बसता है क्योंकि भारत की 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में और बाकी शहरों में रहती है। यहाँ के लोगों का जीवन जीने का तरीका अलग है और दोनों की संस्कृति और सभ्यता में काफी अंतर है। मानव विकास एक चरणों वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। मनुष्य के विकास में उसका सामाजिक परिवेश बहुत महत्वपूर्ण होता है। बेशक, किसी व्यक्ति की उपलब्धियाँ उसके आस-पास के माहौल से भी प्रभावित होती हैं और इस माहौल में उसका माता-पिता और अभिभावकों का प्रभाव सबसे ज्यादा होता है। माता-पिता का अपने बच्चों के साथ रिश्ता इस बात पर भी निर्भर करता है कि वे ग्रामीण माहौल में रहते हैं या शहरी माहौल से प्रभावित हैं। परिवार, समाज, स्कूल, क्षेत्रवाद आदि का माहौल किसी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है। जब सही माहौल और अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं, तभी व्यक्ति की आंतरिक शक्तियाँ जागृत होती हैं।

छात्र की शिक्षा में माता-पिता का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि परिवार बच्चे की पहली शिक्षण संस्था है और उसकी माँ पहली शिक्षिका है।

माँ और परिवार का सीधा संबंध उस क्षेत्र से होता है जहाँ वे रहते हैं। यदि माता-पिता ग्रामीण क्षेत्र के हैं, तो छात्र ग्रामीण व्यवहार के तरीके सीखता है। इसके विपरीत, शहरी माता-पिता और अन्य सदस्य शहरी व्यवहार के तरीके सिखाते हैं। सामाजिक पृष्ठभूमि छात्र की समग्र उपलब्धियों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण है और माता-पिता सीधे तौर पर इससे जुड़े होते हैं।

समाज की सबसे बड़ी विशेषता है - प्यार, सहानुभूति, और एक सहायक माहौल, इस माहौल में बच्चों का स्वाभाविक विकास होता है। जर्मन शिक्षाशास्त्री पेस्टोलॉजी के शब्दों में - “घर प्यार और स्नेह का केंद्र है, शिक्षा का सबसे अच्छा स्थान है, और बच्चे का पहला स्कूल है।”

ग्रामीण और शहरी माता-पिता का कार्य व्यवहार छात्र को प्रभावित करता है। छात्र के प्रति माता-पिता का रवैया भी उन्हें शैक्षिक माहौल में ढलने में मददगार होता है। माता-पिता द्वारा किया गया काम छात्रों की गति को प्रभावित करता है, जिसका सीधा असर शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। माता-पिता के रिश्ते छात्र की शैक्षिक प्रवृत्तियों को उत्तेजित करते हैं।

ग्रामीण और शहरी समाज भी अलग-अलग होते हैं जहाँ ग्रामीण समाज में माता-पिता या समाज छात्रों के लिए उपयुक्त किताबें, अखबार, पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविजन का प्रबंध करने में असमर्थ होते हैं, वहीं शहरी अभिभावकों द्वारा ये चीजें आसानी से उपलब्ध कराई जाती हैं, जो छात्र की बुद्धि को आवश्यक पोषण प्रदान करती हैं। माता-पिता के आपसी सौहार्दपूर्ण संबंध छात्र की शैक्षणिक रुचि बढ़ाने में मदद करते हैं।

चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी क्षेत्र, एक साधारण छात्र भी उचित माहौल पाकर प्रगति कर सकता है। बेशक, एक इंसान बनाने का मतलब है छात्र की सबसे अच्छे पारिवारिक माहौल में प्रगति और समाज के साथ तालमेल बिठाने की प्रक्रिया। इसलिए, माहौल से तात्पर्य उन स्थितियों से है जिनमें छात्र का विकास जरूरी है और यह उसके दिमाग पर असर डालता है। छात्र समाज में रहकर बहुत कुछ सीखता है। जिस समाज में वह पैदा होता है और जिस समाज में वह पलता-बढ़ता है, वह उसे उसी समाज और परिवार की भाषा, रहन-सहन और व्यवहार के तरीके सिखाता है। समाज उसके शारीरिक, मानसिक,

नैतिक और चरित्र, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी तरह के विकास में मदद करता है। यह माना हुआ सच है कि छात्र पर सामाजिक माहौल का सबसे ज्यादा असर पड़ता है। लेकिन सामाजिक जीवन का हर छात्र पर एक जैसा असर नहीं होता क्योंकि हर छात्र के पारिवारिक हालात (गाँव और शहर दोनों में) और परिवार के सदस्यों के साथ रिश्ते अलग-अलग होते हैं। जिसकी वजह से उनसे जुड़े माहौल का अलग-अलग क्षेत्रों के छात्रों पर अलग-अलग असर पड़ता है। अगर छात्र के आस-पास का माहौल तनावपूर्ण और परेशान करने वाला है, तो वह पढ़ाई के क्षेत्र में निराश हो जाता है। निराश स्वभाव वाला छात्र अपने समाज, स्कूल में एडजस्ट नहीं कर पाता वह पढ़ाई पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाता, जिससे उसके शैक्षिक विकास में रुकावट आती है।

सही क्षेत्रीय माहौल और अच्छी एकेडमिक उपलब्धि एक-दूसरे पर निर्भर हैं। अगर माहौल शुद्ध है, पवित्रता से भरा है और परिवार में कोई तानाशाही नहीं है, तो छात्र का स्कूल और समाज में सही तरीके से एडजस्टमेंट होता है, जिसका सीधा असर छात्र की एकेडमिक उपलब्धि पर पड़ता है। छात्रों द्वारा अपने माता-पिता के बारे में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि सामाजिक माहौल का बच्चों की शिक्षा से एक खास रिश्ता होता है। सामाजिक माहौल और छात्र-माता-पिता के रिश्ते एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

स्कॉट (1939) ने पाया कि छात्रों की एकेडमिक उपलब्धि की मात्रा ज्यादातर उनके माता-पिता पर निर्भर करती है। माता-पिता के अच्छे रिश्ते के कारण बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि बेहतरीन होती है और खराब माहौल के कारण शैक्षिक उपलब्धियों के बीच अपेक्षाकृत कम सार्थक संबंध होता है।

शैक्षिक अनुसंधान से पता चला है कि उच्च शैक्षिक उपलब्धि वाले बच्चों के माता-पिता अपने बच्चों के प्रति उचित स्नेह और लगाव दिखाते हैं। आइए उन्हें समझने की कोशिश करते हैं। इस तरह के बच्चों का अपने माता-पिता के साथ-साथ पूरे परिवार के साथ भावनात्मक जुड़ाव होता है। माता-पिता के अच्छे रिश्ते का बच्चों की उपलब्धि पर बहुत ज्यादा असर पड़ता है और वे आत्मविश्वास से भरे होते हैं, जबकि खराब रिश्ते वाले बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है और आत्मविश्वास कमजोर होता है।

एक छात्र के व्यक्तित्व के विकास पर पहला और स्थायी प्रभाव उसके माता-पिता का होता है। परिवार में बच्चों पर कई चीजों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है जैसे जन्म, कर्म, भाई-बहनों में लड़के और लड़की का स्थान, परिवार की वित्तीय और सामाजिक स्थिति, माता-पिता का छात्र के प्रति व्यवहार, व्यवसाय आदि। ये कारक मिलकर ग्रामीण और शहरी माता-पिता के बीच के अंतर और छात्र की उपलब्धि पर उनके प्रभाव को दर्शाते हैं। माता-पिता की संस्कृति, ईमानदारी, नैतिकता और उचित माहौल छात्र के गुणों को परिभाषित करते हैं।

छात्र के मानसिक विकास से माता-पिता का संबंध-

छात्रों के मानसिक विकास से माता-पिता का गहरा संबंध होता है। संसाधनों की कमी और प्रतिकूल और असंतोषजनक माहौल के कारण, छात्र का अपेक्षित मानसिक विकास संभव नहीं हो पाता है। एक अच्छा परिवार, जिसमें माता-पिता के बीच अच्छे संबंध हों, जहाँ संसाधन उपलब्ध हों, जहाँ वे अपने छात्रों की रुचियों और जरूरतों को समझते हों और जहाँ खुशी और आजादी का माहौल हो, वहाँ हर सदस्य मानसिक विकास में बहुत योगदान देता है। चरित्र विकास में छात्र का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों में आपसी जलन, मनमुटाव है, तो ये दोष छात्र में भी आ जाएँगे। इसके विपरीत, यदि माता-पिता और अन्य सदस्य शांतिपूर्ण सहयोग और ईमानदारी का जीवन जीते हैं, तो ये गुण छात्र में भी दिखाई देते हैं। प्रतिभाशाली छात्र ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक होते हैं। इसका कारण यह है कि इन छात्रों को ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में बेहतर सुविधाएँ और सर्वोत्तम अभ्यास, संसाधन, स्कूल आदि उपलब्ध होते हैं।

एक छात्र का मानसिक विकास काफी हद तक उसके माता-पिता के रवैये पर निर्भर करता है। यदि वे छात्र की उपेक्षा करते हैं या उसके प्रति उदासीन रहते हैं, जो अक्सर ग्रामीण माता-पिता में देखा जाता है, तो छात्र का मानसिक विकास किसी भी दिशा में सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है और यदि वे उसके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, यदि आप आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और छात्र का अच्छी तरह से पालन-पोषण करते हैं, तो छात्र के चरित्र में उत्कृष्ट गुणों का विकास होता है।

शिक्षा का कार्य माता-पिता पर निर्भर करता है। यदि माता-पिता द्वारा प्रदान किया गया वातावरण सहायक है, तो छात्र का शैक्षणिक प्रदर्शन उत्कृष्ट होता है। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें उचित वातावरण उपलब्ध न होने पर भी छात्र ने शैक्षिक उपलब्धि के रूप में पर्याप्त प्रगति की है। आँकड़ों के अनुसार, भारत में ग्रामीण पृष्ठभूमि के उम्मीदवार भी सफल होते हैं। इस प्रकार, माता-पिता का व्यवहार, जन्म-कार्य, और संपूर्ण सामाजिक पृष्ठभूमि का छात्र के शैक्षिक विकास में सकारात्मक महत्व है।

छात्र के शारीरिक विकास से माता-पिता का संबंध-

छात्र के शारीरिक और मानसिक विकास को बनाए रखने और स्वस्थ रहने के लिए, खेल और व्यायाम का उचित वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए। माता-पिता को छात्रों को ऐसे काम करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जिनका उनके शारीरिक गठन पर सकारात्मक प्रभाव पड़े क्योंकि एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। ग्रामीण बच्चों में, यह दैनिक कार्यों से पूरा होता है।

इसके विपरीत, शहरी माता-पिता व्यायाम या खेलों पर अधिक ध्यान नहीं दे पाते हैं और उन्हें इसके लिए अलग से व्यवस्था करनी पड़ती है। अगर शरीर स्वस्थ है, तो पढ़ाई के काम में कोई शारीरिक रुकावट नहीं आएगी छात्र कई तरह की बीमारियों से दूर रहेंगे। माता-पिता को इस पर खास ध्यान देना चाहिए ताकि छात्र कई तरह की बीमारियों से दूर रह सकें। माता-पिता को छात्र को शारीरिक स्वच्छता और विकास के लिए प्रेरित करना चाहिए। अगर छात्र शारीरिक रूप से स्वस्थ है, तो वह अपने आप मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहेगा। 6 साल की उम्र तक, छात्र में जिम्मेदारी, आजादी और आत्मविश्वास की भावनाएँ

विकसित होती हैं। यह तभी संभव है जब माता-पिता उसके विकास के लिए सबसे अच्छी स्थिति और दिशा प्रदान करें। ऐसा न करने से छात्र का विकास रुक जाता है। नतीजतन, छात्र का शारीरिक स्वास्थ्य नहीं बढ़ता है जिससे उसका मानसिक स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है।

छात्र के प्रति माता-पिता की जिम्मेदारी-

माता-पिता को छात्रों के साथ सही व्यवहार करना चाहिए। उन्हें न तो ज्यादा लाड़-प्यार करके उसकी अलग-अलग इच्छाओं को बढ़ावा देना चाहिए और न ही उन्हें ज्यादा सख्त अनुशासन में रखकर उनकी इच्छाओं को दबाना चाहिए। इस तरह, संतुलित व्यवहार करने से छात्रों में कई तरह की आपराधिक प्रवृत्तियाँ विकसित नहीं होती हैं।

ज्ञान और समझ की कमी के कारण छात्र अपराध की ओर बढ़ते हैं। इसलिए, उनके माता-पिता को शिक्षा, चित्रों, आपसी बातचीत और उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्शों के माध्यम से छात्र को सही दिशा दिखानी चाहिए।

इस तरह, सांस्कृतिक सीमाओं के तहत एक स्वतंत्र माहौल पाकर, छात्र खुद को उन्हीं सीमाओं में ढाल लेता है और तालमेल बिठाने की कोशिश करता है।

माता-पिता को छात्रों के साथ कुछ समय बिताना चाहिए। जिससे छात्रों और माता-पिता के बीच बातचीत होती है, माता-पिता छात्र की कठिनाइयों से अवगत होते हैं और उन्हें दूर करने की कोशिश करते हैं। इसी तरह, छात्र अपने माता-पिता के विचारों को जानकर उनका पालन करने की कोशिश करते हैं। माता-पिता को छात्र की गतिविधियों पर नजर रखनी चाहिए और जरूरत के हिसाब से उसे काउंसलिंग भी देनी चाहिए। अभिभावक को छात्र की पढ़ाई के लिए उचित व्यवस्था करनी चाहिए। माता-पिता का कर्तव्य सिर्फ उन्हें स्कूल भेजने से खत्म नहीं हो जाता, बल्कि यहीं से माता-पिता का छात्र के प्रति शैक्षिक कर्तव्य शुरू होता है।

छात्र के घर पर पढ़ाई के लिए ऐसा माहौल और जगह दें जो शोर-शराबे से दूर और शांत हो। ऐसी जगह पर पढ़ाई करने से छात्र अपने विषय और कोर्स के प्रति ज्यादा ध्यान दे पाता है। परिवार में सही एजुकेशनल माहौल मिलने से छात्र का अच्छा एकेडमिक विकास होता है।

निष्कर्ष

बचपन में शारीरिक और मानसिक विकास के बीच गहरा संबंध होता है। यानी, अच्छे शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास भी उतना ही अच्छा होता है। प्रतिभाशाली व्यक्तियों के संबंध में, टर्मन ने यह निष्कर्ष निकाला कि हल्के मानसिक विकास वाले छात्रों का शारीरिक विकास भी मानसिक विकास के माध्यम से होता है।

जिन छात्रों का शारीरिक विकास तेजी से होता है, उनका मानसिक विकास भी तेजी से होता है। एक छात्र का शारीरिक विकास उसके मानसिक विकास से गहराई से जुड़ा होता है। एक छात्र क्या सोचता है, अनुभव करता है और कहता है, यह उसके शारीरिक विकास पर इतना निर्भर करता है कि कहा जाता है कि छात्र अपने विकास की स्थिति के अनुसार व्यवहार करता है। उसकी उम्र मानसिक विकास को उतना प्रभावित नहीं करती जितना उसका शारीरिक विकास करता है।

माता-पिता की एजुकेशनल और आर्थिक स्थिति का छात्र पर बुरा असर पड़ता है। अगर माता-पिता की एजुकेशनल स्थिति अच्छी नहीं है और आर्थिक स्थिति खराब है, तो इसका बच्चे की शिक्षा प्रणाली पर असर पड़ेगा। कुछ ग्रामीण माता-पिता और शहरी अभिभावक जो अनपढ़ हैं, वे शिक्षा का महत्व नहीं जानते। जबकि आज के समाज में, छात्र के उत्थान के लिए शिक्षा एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है।

संदर्भ ग्रंथ

1. Aggarwal, Deepa (1980). The Effect of Family Relations on Self-Sufficiency, M.Ed. Dissertation, Vaikunthi Devi Kanya Mahavidyalaya, Agra, 1979-80.
2. Alavi, Savoji, and Amin (2013). The Effect of Social Skills Training on Aggression of Mild Mentally Retarded Children Procedia -Social and Behavioral Sciences 84:1166-1170.
3. Anthony, O. Ovetta (2014). Home Environmental Factors Effecting Students, Academic Performance in Abia State, Nigeria, Rural Environment, Education Personality-Jelgava, 7-8-02-2014, pp. 141-179.
4. Barvora, D. Rupa (2001). Journal of Indian Education, XXVII (1), pages 59-65.
5. Bharat, H. Mimrot (2016). A Study of Academic Achievement Relations to Home Environment of Secondary School Students, The International Journal of Indian Philosophy, 4 (70), pp. 30-40.
6. Bhatia, Lily (1976). Study of correlation between students' occupational interests, socioeconomic status, and family relationship, M.Ed. Dissertation, Dayalbagh, Agra, 1976.
7. Bolich (2001). Peer tutoring and social behaviors: A review, International Journal of special education 6(2):16, <https://www.researchgate.net/publication/289455245>.
8. Caldarella and Merrell (1997). Development of Social Skills among Children at Elementary Level, Bulletin of Education and Research, June 2010, Vol. 32, No. 1 pp 69-78.
9. Channavar and Khan, Tarannum (2018). A comparative study of the social intelligence of the general and disadvantaged students in higher secondary schools, AYUSHI International Journal of International Discipline Research, Vol. 5, Issue-4, pp. 381-383.

मौर्य काल में कपड़ा निर्माण उद्योग और तकनीक

शशिकला भारती

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलकामाझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध संराश:-

प्राचीन काल में कपड़ा निर्माण उद्योग व कपड़ा तकनीक काफी विकसित अवस्था में था। भारत से विदेशों को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में कपड़ा का स्थान प्रमुख था। जिसके विषय में जानकारी 'परिप्लस ऑफ एरिथ्रियन सी', स्ट्रोबों, एरियन, मेगास्थनीज आदि के विवरण से मिलती है। भारत उस समय काशी, कामरूप, मदुरै, कलिंग, वंग, वत्स, पाटलिपुत्र आदि कपड़ा निर्माण के प्रमुख केन्द्र था। कपड़ा निर्माण से जुड़े अन्य उद्योग-रुई की धुनाई, कपड़े की बुनाई, रंगाई-छपाई काफी विकसित अवस्था में था। प्राचीन काल में भारत सभी प्रकार के कपड़े-सूती, ऊनी, मलमल, रेशम आदि कपड़े निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। बंगाल के बने मलमल के कपड़े इतने बारीक, हल्की होती थी कि मलमल के कपड़े को आबेरवां (बहता पानी), वापतहवा (बुनी हुई हवा), सॉप की केचलु जैसा पारदर्शी आदि उपनाम दिए गए थे। मौर्यकाल में 'भिगिंसी' नाम आठ स्तरों से बनी ऊनी कम्बल का उल्लेख मिलता है। मौर्य काल में कपड़ा उद्योग व तकनीक से सम्बंधित कपड़ों की रंगाई-छपाई एक महत्वपूर्ण तकनीक थी। उस काल में कपास, लाख, गोचना, सकल, कर्दम, नीली, पीत, हरिद्रा और महाराजन से रंगे वस्त्रों को क्रमशः कषाय, लक्षिक, रैचनिक, शाकलिक, कार्दमिक, नीलक, पीतक, हरिद्रा और महारंजन कहा जाता था।

मुख्य शब्द कुंजी- परिप्लस ऑफ इरिथ्रियन सी, मलमल, रेशम, ऊनी, सूती, भिगिंसी, रंगाई-छपाई, कुप्याध्यक्ष, दुकूल वस्त्र।

भूमिका:

प्राचीन काल से ही भारत कपड़ा निर्माण उद्योग व तकनीकी मामले में अग्रणी रही है। भारत की आर्द्र जलवायु और काली मिट्टी होने के कारण कपास की खेती के लिए प्रसिद्ध रही है। भारत से कपास की खेती का शुरूआत मानी जाती है। सिंधुघाटी सभ्यता से कपास की खेती तथा उससे सूती के कपड़े बनने की शुरूआत हुई। सिंधुघाटी सभ्यता के बने कपड़े मिस्त्र और मेसोपोटामिया जैसे प्राचीनतम सभ्यता में मिले हैं। यानि सिंधु नदी घाटी सभ्यता से कपड़े का निर्यात विदेशों में किया जाता था।¹ वैदिक ग्रंथों से परूषणी और गंधार प्रदेश अपने बढ़िया ऊन के लिए प्रसिद्ध थे। परूषणी तथा गंधार के बने ऊनी वस्त्र अपने उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध थी।

मौर्यकाल में कपड़ा निर्माण उद्योग तथा तकनीकी का काफी विकास हुआ। प्रथम बार कपड़ा उद्योग के निगरानी, उसके विकास के लिए स्वतंत्र विभाग व मंत्रालय का गठन किया गया, जिसके निदेशक व मंत्री को 'कुप्याध्यक्ष' होता था। कैटिल्य के अनुसार इसके लिए एक पृथक विभाग होता था, जिसका अध्यक्ष 'सूत्राध्यक्ष' कहलाता था।²

अर्थशास्त्र में 'सूत्राध्यक्ष' को कपड़ा उद्योग और तकनीकी को विकसित करने का आवश्यक निर्देश दिए, साथ ही बुनकरों और रंगसाजों को भी वस्त्र उद्योग और अधिक उन्नत बनाने के निर्देश दिए हैं। सूत्राध्यक्ष उसी को नियुक्त किया जाता था, जो वस्त्र उद्योग व तकनीकी के विशेषज्ञ हो। सूत की बारीकी, मोटापन, चिकनापन तथा परिणाम देखकर ही इनका वेतन तय किया जाता था। कपड़ा बनने और रंगने में लगने वाले समय निर्धारित थी। सुत काटने और कपड़े बुनने में विधवा, वेसहारा वेश्याएँ वृद्ध देवदासियाँ, कन्या आदि महिलाएँ सूत काटती थी और नये-नये वस्त्र बनाये जाते थे।

अर्थशास्त्र में अनेक वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। वस्त्रों के निर्माण में जिस कच्ची सामग्री का प्रयोग करते थे, उनमें कपास (कप्पसिक) रेशम (कोसेयया) ऊन, सन (साण), भंग (पटुआ) आदि थी। अर्थशास्त्र में अनेक वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। इन वस्त्रों से पहनने के कपड़े के साथ विस्तर पर बिछाये जाने वाले बिछावन, पर्दे, आसन, गलीचे, घोड़े या हाथियों पर डाली जाने वाली-झूल आदि बनाये जाते थे। ऊन से भी अनेक प्रकार के कम्बल, शॉल, कोट, आदि बनाए जाते थे। भेड़ के ऊन के अतिरिक्त अन्य पशुओं के बाल से भी वस्त्र बनाये जाते थे। कश्मीर से पशमीना ऊन से बने हुए शाल उत्तम किस्म के होते थे। परूषणी और गंधार प्रदेश भी उत्तम किस्म के ऊन निर्माण के लिए प्रसिद्ध थे। मौर्य काल में मुख्य वस्त्र के रूप में सूती का प्रयोग करते थे। सूती कपड़े के लिए कच्चा माल की आपूर्ति कपास से होती थी।

रेशम - कौटिल्य न चीनाशुक चीनीपट्ट, चीनीभूमिज का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि इस समय चीन का रेशमी वस्त्र और तकनीक भारत आया था। लेकिन मौर्य काल में मगध, अंग, पुण्ड्र, गुजरात आदि जगह रेशम उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे। रेशम वस्त्रों के कई प्रकार के होने का उल्लेख मिलता है, जिसमें चीकाशुक, कौशेय, क्षौम, पट्ट, मलय, असुंग आदि नामों का उल्लेख मिलता है। रेशम के कीड़े वृक्षों पर पलते हैं। इन पेड़ों पर पलने वाले कीड़े से अलग-अलग रंग के रेशम तैयार होते हैं। चार प्रकार के वृक्षों, नाग, लुच, वकुल और वट पर कीड़े पाले जाते थे और इस रंग अलग-अलग होते थे, जैसे- नाग पर पीला, लंकुच पर गेहुवन, वक्रल³ इनसे कभी-कभी विभिन्न रंगों को एक में मिलाकर भिन्न-भिन्न रंगों के रेशम तैयार किए जाते थे।⁴ कौशेय, संभवतः कीड़ों के द्वारा बनाए गए कोशों से निकाला जाता था। कोश से उत्पन्न होने के कारण 'कौशीय' कहा जाता था। रेशम के कीड़ों को शहतूत या कुसुम

आदि वृक्षों पर पर पाला जाता था, जो पेड़ के पत्तों को खाकर कोश प्रजनन करता है और इसी कोश या कोकुन से रेशम की रेशा तैयार किया जाता था, फिर कपड़े बुनने के लिए तंतुवाय को दे दिया गया था, और तंतुवाय रेशम के कपड़े बुनने के लिए उसी विधि का प्रयोग करते थे, जैसे मलमल या सूती कपड़े बुनने में करते थे। चीनपट्ट शायद चीन से बने हुए रेशम वस्त्र था।⁵ तत्कालीन ग्रंथों में 'क्षौम' शब्द का उल्लेख मिलता है, जो अलसी के रेशे से बने मोटा कपड़ा था। असम में निर्मित क्षौम (रेशम), बंग में दुकूल (सफेद रेशम), गुजरात का पत्रोर्णा रेशम, काशी और अंग का लिलन आदि रेशम उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे।⁶ रेशमी वस्त्र को अलग-अलग प्रदेशों में अनेक नामों से जाना जाता था। 200 ई०पू० से 300 ई० के बीच रोम में निर्यात किए जाने वाले वस्तुओं में सबसे अधिक रेशमी वस्त्र का होता था। जिस मार्ग से रेशम का निर्यात होता था, वह सिल्क मार्ग था। रेशम तक्षशिला से मथुरा, उज्जयिनी होते हुए गुजरात के भड़ौच तट पर पहुँचता था, वहाँ से समुद्री मार्ग से लाल सागर होते हुए रोम तक पहुँचता था। काशी, अंग में बने रेशम वस्त्र गंगा नदी के मुहाने या ब्रह्मपुत्र नदी के रास्ते बंगाल की खाड़ी तक पहुँचते थे, फिर वहाँ से रोम को निर्यात किया जाता था।⁷ दक्षिण भारत में भी अरिकमेडु, पांडुचेरी, कावेरी के मुहाने पर कावेरीपट्टनम, उरैयूर से कपड़ों का निर्यात रोम को किया जाता था, लेकिन छठीं शताब्दी के मध्य भारत से रोम को निर्यात की जाने वाली रेशम वस्त्र बंद हो गया।⁸

मलमल - प्राचीन भारत महीन और हल्के वजन के कपड़ों के निर्माण के लिए विश्वप्रसिद्ध थे, जिसे मलमल भी कहा जाता था। मलमल का कपड़ा महीन, बारीक, पारदर्शी तथा हल्का होने के कारण- भारतीय ग्रंथों तथा विश्व के देशों में कई उपनामों से भी जाने जाते थे, जैसे-साँप की केचुली की तरह, महीन, केले के भीतर के गांभे की तरह मुलायम अर्थात् अकंटोरम्मागर्म, कोमल फूक में उड़ जाने योग्य हल्ले अर्थात् निःश्वासहार्थ, स्पृश से महसूस करने वाले पारदर्शी अर्थात् स्पर्शानुमेय आदि।⁹ ग्रीक देशों में भारतीय मलमल को वस्तु की छाया या 'विड्स टेक्सटाइल्स' यानि हवा की तरह महसूस करने वाला वजन अथवा 'नेबुला', आबेरवां (बहता पानी), वाफ्तहवा (बहती हुई हवा), साँप की केचुली जैसा पारदर्शी आदि उपनाम दिए थे।¹⁰ अर्थशास्त्र और मेगास्थनीज की रचना से मौर्यकालीन मलमल के कपड़ों के उत्पादन और उनके प्रसिद्धि के विषय में जानकारी मिलती है। मौर्यकाल में हल्के और बारीक मलमल कपड़े बनाने वाले कारीगरों को पारितोषिक दिया जाता था। मेगास्थनीज लिखा है कि मलमल कपड़ों पर सोने-चांदी से कढ़ाई भी की जाती थी। प्राचीन भारत में ढाँका और बनारस मलमल के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे। भारत से निर्यात किए जाने वाले कपड़ों में मलमल अधिक हुआ करती थी। रोम और ग्रीक की महिलाएँ भारतीय मलमल कपड़े काफी पसंद करते थे। 'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी' के अनुसार रोम को भेजे जाने वाले वस्तुओं की सूची में भारतीय कपड़े रेशम या मलमल अधिक होते थे।¹¹

ऊनी वस्त्र - कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में जानकारी मिलती है कि मौर्यकाल में जानवरों के बाल या रोए को निकालकर ऊनी वस्त्र और कम्बल बनाए जाते थे। ऊनी कपड़ों के निर्माण विधि सूती कपड़ों के समान था। सर्वप्रथम रोएँ या बाल को टुकुए से सूत काटते थे, फिर शॉल का निर्माण करते थे। अर्थशास्त्र में भिन्न-भिन्न प्रकार के कम्बलों के निर्माण होने के बात कही है, जो बुनकर बटे हुए सूत्र को विभिन्न रंगों की ऊन से बने पट्टियों को जोड़कर बनाते थे। नेपाल की तराई प्रदेश, कश्मीर का क्षेत्र, भूटान तथा तिब्बत ऊनी कपड़ों और कम्बल उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे। आज भी कश्मीर 'पश्मीना' शॉल के लिए प्रसिद्ध है। भूटान और तिब्बत भी 'पश्मीना' शॉल के लिए प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रंथ महाबग्ग से गंधार से निर्मित अनेकों प्रकार के ऊनी कपड़ों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। जातकों से भी पता चलता है कि गंधार प्रदेश अच्छे ऊनी वस्त्र खासकर लाल ऊनी कंबल तैयार करने के लिए प्रसिद्ध प्रसिद्ध थे। अर्थशास्त्र में भिगीसी तथा आपसारक नामक कम्बलों का उल्लेख मिलता है।¹² मौर्यकाल में काले रंग के आठ स्तरीय टुकड़ों को जोड़कर भिगीसी (मोटा ऊनी वस्त्र) बनाई जाती थी।¹³ इसके पहन लेने से ठंड का कोई असर नहीं पड़ता था। कुल मिला कर मौर्यकाल में ठंडा ऊनी वस्त्र निर्माण के क्षेत्र में काफी प्रगति की थी।

दुकूल वस्त्र- मौर्यकाल में दुकूल या दुशाला नामक वस्त्र का उल्लेख मिलता है। यह शायद क्षौम, अलसी या पटसन के रेशे के बने मोटा कपड़ा होता था।¹⁴ दुकूल असम तथा बंगाल से बनकर आता था और बड़े-बड़े थानों से काटकर उत्तरीय, चादर, तर्किए के गिलाफ, अश्व तथा हाथी के झूल या शिविर के छालर (तिरंपाल) आदि-काम में आते थे। पट्टवाय या तंतुवाय लोग दुशाला वस्त्र बनाने के लिए वृक्षों के रेशों को पानी में गलाया जाता था, फिर पानी में पीटकर साफ और मुलायम किया जाता था और सुखाकर तंतु को हल्का पानी में भिगोकर हाथ से रंगड़कर या मणिबन्ध में तंतु को तैयार किया जाता था, तंतु को चिकना करने के लिए काठ से लगड़ा जाता था। फिर कपड़े की बुनाई की जाती थी।¹⁵

रंगाई-छपाई:- कपड़ा उद्योग के अंतर्गत कपड़े के रंगाई-छपाई एक अलग उद्योग के रूप में विकसित था। कपड़े रंगने वालों को रंगरेज कहा जाता था। अर्थशास्त्र में कास्तकारों या तंतुवाय या जुलाहों के द्वारा कपड़े को रंगने के लिए रंगरेज को देता था। फिर रंगरेज कपड़े को रंगकर तंतुवाय को लौटा देता था। कपड़े रंगने के समय सीमा निश्चित या निर्धारित था। मौर्यकाल में कास्तकारों, जुलाहों तथा रंगरेजों द्वारा रंगाई-छपाई से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के धोखाधड़ी के लिए दंड देने का विधान था। रंगरेज रंगों के मिश्रण को तैयार करने तथा बहुरंगी कपड़े के निर्माण में पारंगत होते थे। कपड़ों को रंगने के लिए प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करते थे। रंगों के निर्माण में पौधों के उत्पाद-फूल, पत्ती, जड़, तना आदि का प्रयोग करते थे। अर्थशास्त्र के 'कृष्याध्याय' में नील पौधे नीला रंग का पाउडर, पलाश (कुसुम) के फूल से किशमिश रंग, मूँजंठा से लाल रंग प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।¹⁶ नील रंग का उत्पादन गुजरात में होता था। वहीं से निर्यात सभी जगह होता था। यहाँ तक कि विदेशों को भी बार्बरिकोम बन्दरगाह से किया जाता था।¹⁷

नील रंग एक पौधों का उत्पादन था जिसके पत्तों को पानी में गलाकर भथते थे, फिर आसवन विधि से मथा हुआ पानी गर्म करता था, जिससे पानी वाष्प के रूप में उड़ जाता था और नील का सुखा पाउडर प्राप्त करते थे।

निष्कर्ष

भारत प्राचीन काल से कपड़ा निर्माण उद्योग के लिए विश्व प्रसिद्ध है। भारत से निर्मित कपड़ों की माँग विदेशों खासकर ग्रीक, रोम के देशों में अधिक थी। अज्ञात लेखकों के द्वारा लिखी गई "पेरिप्लस ऑफ इरिथ्रियन सी" से पता चलता है कि मौर्य काल तथा उनके बाद भी सबसे अधिक निर्यात की जाने

वाली वस्तुओं में रेशम मलमल तथा अन्य सूती कपड़े थे। रोम साम्राज्य जब उत्कर्ष पर था, तो वह अपना अधिकांश स्वर्ण मुद्रा भारतीय कपड़े के आयात पर करते थे। भारतीय रेशम और मलमल के बने साड़ी ग्रीक-रोम की महिलाएँ बड़ी ही चाव से पहनते थे। भारतीय रेशम और मलमल के बने कपड़े अपनी विशेषताओं जैसे हल्की, महीन, बारीकी के लिए प्रसिद्ध था। विदेशी यात्री तथा साहित्य ग्रंथों से पता चलता है कि एक थान साड़ी या एक बड़ा लम्बी सूती कपड़ा या मलमल एक माचिस के डिब्बा में भरकर ले जा सकता था या रखा जा सकता था। फिर एक विदेशी यात्री के हवाले से पता चलता है कि एक थान के कपड़े एक अँगूठी के छल्ले से निकाला जाता था। भारतीय रंग-बिरंगे, छींट कपड़े के लिए प्रसिद्ध थे। भारत से कपड़े रंगने के बड़े-बड़े हौज द0 भारत से मिले हैं। नील उत्पादन के लिए भी भारत विश्व प्रसिद्ध था। कम्बल, पशमीना शॉल आदि प्रकार के ऊनी कपड़े बनते थे। कपड़े सिर्फ पहनने के लिए नहीं बल्कि, छालर, पर्दा, या रथ हाथी, घोड़े के लिए गद्दा, झालर निर्माण के लिए प्रसिद्ध थे। राजा महाराजे के कपड़े में सोने या चाँदी की जड़ी की जाती थी। जरदारी के लिए भी प्रसिद्ध थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0-45
2. अर्थशास्त्र, 2/39/23 (लंप।।) कौटिल्य, अर्थशास्त्र, वानस्पति गैरोल, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी पृ0-159
3. जे. सी. राय, टेक्साईल इंडस्ट्रीज इन ऐसियेंट इंडिया, पृ0- 214
4. शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 365-66
5. आर-थार-दीक्षित, मौर्यन पालिटी, पृ0-7
6. आर0 के मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और इसका काल राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ0-254
7. रणवीर चक्रवर्ती, भारतीय इतिहास का आदिकाल, औरियंट लॉगमैन, पृ0 243-45
8. ई0एच0 वार्मिंगटन, दि कॉमर्स विटवीन दि रोमन एम्पायन एवं इंडिया, पृ0 9-10
- 9.
10. मातीचन्द्रा, पूर्वोक्त, पृ0-127
11. हिमांशु शेखर, प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, बीएफसी प्रकाशन, उखनऊ 2024 पु0 184-85
12. आर0 के0 चौधरी, ऐशियेंट एंडिया, पृ0-201
13. पूर्वोक्त
14. हिमांशु शेखर, पूर्वोक्त, पृ0-190
15. अर्थशास्त्र, वही, 2/27/11
16. मार्कोपोलो, यात्रावृत्तांत, पृ0 332-34
17. मोतीचन्द्रा, सार्थवाह, पृ0-16

प्राचीन भारत में ज्योतिष विज्ञान का विकास (वैदिक काल से गुप्त काल)

डॉ० सृष्टि गर्ग

अतिथि सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग) सुन्दरवती महिला महाविद्यालय, भागलपुर, ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध संराश:-

भारत में ज्योतिष विज्ञान का जितना विकास भारत में हुआ था, उतना किसी अन्य देशों में नहीं हुआ था। भारतीय ज्योतिष विज्ञान का विकास वैदिक काल में हो गया था। भारत में कृषि कार्य का प्रारंभ भी ज्योतिष विज्ञान के आधार पर किया जाता था। वैदिक काल में यज्ञों के लिए शुभ-अशुभ मुहूर्त का पता लगाने के लिए भी ज्योतिष विज्ञान का विकास हुआ। कोई भी शुभ कार्य करने के लिए शादी-विवाह, वणिज्य-व्यापार की शुरुआत करने, काल निर्धारण के लिए ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन करना आवश्यक था। तैत्तिरीय संहिता में ज्योतिष विज्ञान के कई विषय जैसे-सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, संवत्सर, ऋतु, मास, अर्धमास, अहोरात्र, पौर्णमास आदि शब्दों का प्रयोग एक साथ आए हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में खगोल विज्ञान के विषय में जानकारी मिलती है। अर्थशास्त्र में ऋतु, अयन, वर्ष, युग, ग्रह-नक्षत्र, राशि, कल्प, विषुव आदि में 12 मासों तथा 28 नक्षत्रों के विषय में उल्लेख मिलती है। गुप्त काल में ज्योतिष विज्ञान का वैदिक काल के बाद न सिर्फ पुनरुत्थान हुआ, बल्कि विकास के श्रेष्ठतम स्तर तक पहुंच गया था। इस काल में ज्योतिष विज्ञान से सम्बन्धित आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त जैसे ज्योतिषाचार्य हुए, खासकर वराहमिहिर ने ज्योतिष विज्ञान से सम्बन्धित ग्रंथ वृहत्संहिता, विवाहपटल, वृहत्जातक, लघुजातक जैसे ग्रंथों की रचना किए। वराहमिहिर का फलित ज्योतिष के क्षेत्र में महारत हासिल था।

शब्द कुंजी:- ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष विद्या, खगोलशास्त्र, वराहमिहिर, वृहत्जातक, फलित-ज्योतिष, पंचसिद्धांतिका, वेदांग।

भूमिका

सामान्यतः अकाश में स्थित ग्रह-नक्षत्र की गति, स्थिति, काल गणना एवं उसके प्रभावों का अध्ययन जिस शास्त्र के अंतर्गत करते हैं, उसे ज्योतिष शास्त्र कहा जाता है। ज्योतिष विद्या के क्षेत्र में भारत प्राचीन काल से ही समृद्ध रही है। वैदिक काल से ही ज्योतिष विज्ञान की समृद्ध परंपरा रही है। वेदांग के छः अंगों-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष का उल्लेख वैदिक वाङ्मयों में मिलता है।¹ वैदिक साहित्यों में ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित अनेक सूत्र प्रसंग उल्लेखित हैं। वेद, वेदांग, उपनिषद्, पुराण, आरण्यक साहित्य, ब्राह्मण ग्रंथ आदि में ज्योतिष विज्ञान से सम्बन्धित अनेक चर्चाएँ हैं। ऐसे भारत ज्योतिष की सबसे पुरानी ग्रंथ 'वेदांग' ज्योतिष दो खंडों में मिलती है। स्वका नाम आर्च ज्योतिष यानि ऋण की ज्योतिष और दूसरे का याजुष ज्योतिष (प्रथम में 36 तथा दूसरी में 432 श्लोक हैं। सगंध मुनि इस ग्रंथ के रचनाकार थे। इसलिए प्रथम ज्योतिषाचार्य कह सकते हैं।² वेदांग ज्योतिष पर प्रथम भारतीय टीकाकार है, लेकिन इसमें कुछ कमी रह गई थी। आधुनिक समय में वेदांग-ज्योतिष का पहला संस्करण वेबर का था। उसके बाद सर विलियम जोन्स, व्हिटनी, कोलब्रुक, ब्रेंटली, मैक्समूलर, डेविस थीबो और कुछ अन्य विद्वानों ने वेदांग ज्योतिष ग्रंथों का अनुवाद किया। भारतीय ज्योतिषाचार्य भी आगे आये और कृष्णशास्त्री गोडबोले, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, आर. शाम. शास्त्री आदि ने वेदांग ज्योतिष का अनुवाद किया। वैदिक काल में ज्योतिष विज्ञान के विकास के निम्न कारण रहे होंगे -

प्रथम- वैदिक काल में लोगों के जीवन में यज्ञ व धार्मिक अनुष्ठान महत्वपूर्ण क्रियाकलाप था। यज्ञ या धार्मिक क्रिया शुभ-मुहूर्त में किया जाता था और शुभ मुहूर्त का पता लगाने के लिए ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन आवश्यक था, इसी आवश्यकता ने वैदिक काल में ज्योतिष विज्ञान का विकास हुआ होगा।

द्वितीय- प्राचीन काल में कृषि कार्य आरम्भ करने और समय का निर्धारण के लिए ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन करना होता था। कृषक ज्योतिष विद्या के माध्यम से यह जानना चाहता था कि वर्षा कब होगी, बीज कब बोयेगा? वर्ष कब प्रारंभ होगा, कब समाप्त होगा? जो ज्योतिष विद्या का अंग था।

तृतीय- प्राचीन काल में वाणिज्य-व्यापार शुरू करने या अन्य शुभ कार्य करने के लिए ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन आवश्यक था।

इस प्रकार वैदिक काल में उपरोक्त कारणों से ज्योतिष विद्या को अधिक महत्व दिया गया होगा, किसानों और व्यापारियों के साथ-साथ पुजारियों को ज्योतिष ज्ञान की आवश्यकता पड़ी होगी। जिसके कारण वैदिक काल में ज्योतिष विद्या एक स्वतंत्र विद्या के रूप में भरपूर विकास किया था। ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन उस समय होता था। जिसका प्रमाण वैदिक ग्रंथों में इस प्रकार मिलता है कि यजुर्वेद में नक्षत्रदश (ज्योतिष) की चर्चा है। छांदोग्य उपनिषद् में नक्षत्र विद्या का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार पहला ज्योतिषीय ज्ञान सृष्टिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्म द्वारा नारद को दिया। इसके पश्चात् नारद ने यह ज्ञान वशिष्ठ और पराशर को प्रदान किया। आचार्य कश्यप के अनुसार अठारह महान ऋषि-सूर्य, ब्राह्मण, वशिष्ठ, नारद, पराशर, गर्ग, मरीचि, अंगिरा, लोमश, पौलस्त्य, पुलह, क्रतु, व्यापक भृगु और शौनक-ज्योतिष के मुख्य प्रवर्त्ता माने जाते हैं।

वैदिक ग्रंथों में ऋतु, आयन, वर्ष, युग, ग्रह-नक्षत्र, राशि, ग्रहण, विषुव आदि ज्योतिषीय शब्दों की चर्चा विस्तार से हुई है। तैत्तिरीय संहिता में 12 मासों के नामों का उल्लेख है, जो इस प्रकार हैं- मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभस, नभस्य, ईशा, ऊर्जा, सहस, सहस्य, तपस और तपस्यज्ञ। जैसा कि तैत्तिरीय संहिता (4.4.11) में उल्लेख है- मधुस्य माधवश्च, बसन्ति काबूतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मवृत् नभस्य॥ अर्थात् वसन्त ऋतु-मधु, माधव तथा ग्रीष्म ऋतु-शुक्र और शुचि तथा वर्षा के दो महीने हैं- नभ और नभस्य और शरद दो महीने इष और ऊर्ज, हेमन्त के दो महीने सह और सहस्य, शिशिर के दो महीने तपस और तपस्य। धीरे-धीरे यह नाम मिट गया और इसका नाम बदल गया। जो क्रमशः हिन्दू महीने के नाम हो गया-चैत्य, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, अगहन, पोष, माघ, फाल्गुन। अथर्ववेद के सूक्त में 27 के नामों का उल्लेख मिलता है।¹ इसी तरह वैदिक ग्रंथों के नामों का उल्लेख किया है (1) अश्विन (2) भरणी (3) कृत्तिका (4) रोहिणी (5) मृगशिरा (6) आर्द्रा (7) पुनर्वसु (8) पुष्य (9) आश्लेषा (10) मघा (11) पूर्वा फाल्गुनी (12) उज्ज्वला फाल्गुनी (13) हस्त (14) चित्रा (15) स्वाति (16) विशाखा (17) अनुराधा (18) ज्येष्ठा (19) मूला (20) पूर्वाषाढा (21) उत्तराषाढा (22) श्रवण (23) घनिष्ठा (24) शतभिषा (25) पूर्वा भाद्रपद (26) उज्ज्वला भाद्रपद (27) रेवती।

गुप्तकालीन ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर द्वारा रचित वृहत्तजातक में राशियों का आकार इस प्रकार बताया गया है-मीन मछलियों के रूप में, कुंभ एक पुरुष के समान, जो अपने कंधे पर खाली घड़ा लिए है, मिथुन एक पुरुष के रूप में जो हाथ में गदा एवं वीणा लिए एक नारी के साथ है, धनु उस पुरुष के समान व्यक्त है, जिसके हाथ में धनुष है और जिनके पैर घोड़े के पैर के समान हैं, मकर का रूप घड़ियाल के समान है, जिसका मुख मृग का है, तुला पुरुष के समान है, जिसके हाथ में तराजू है, कन्या नौका में स्थित कन्या के समान है, जिसके एक हाथ में अनाज की कली एवं दूसरे में अग्नि है।⁴

अग्नि पुराण में ग्रह-नक्षत्रों की दूरी का भी उल्लेख किए हैं। इसमें लिखा है कि पृथ्वी से सूर्य 1 लाख योजन दूर, सूर्य से एक लाख योजन दूर चंद्रमा, चन्द्रमा से एक लाख योजन की दूरी पर नक्षत्र मण्डल, नक्षत्र से 2 लाख योजन दूरी पर शुक्र, शुक्र से 2 लाख योजन दूरी पर मंगल, मंगल से 2 लाख योजन दूरी पर बृहस्पति, बृहस्पति से 2 लाख योजन की दूरी पर शनि, शनि से 1 लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षि एवं 1 लाख योजन की दूरी पर ध्रुव अवस्थित है। दूरी के आधार पर वराहमिहिर ने वृहत्त जातक में ग्रहों की गति तथा स्थिति को इस प्रकार दर्शाया है-सूर्य का मित्र चन्द्र, मंगल और बृहस्पति, चन्द्रमा का मित्र सूर्य एवं शुक्र, बृहस्पति का मित्र सूर्य चन्द्र और मंगल, शुक का मित्र बुध बताया है। बृहत्संहिता में सूर्य का रंग लाल, चन्द्र का रंग श्वेत, मंगल का अति लाल, बुध का हरा, बृहस्पति का पीला, शुक का चितकबरा और शनि का रंग काला बताया है।

गुप्त काल:- ज्योतिष विज्ञान का पुनर्गठन गुप्तकाल में हुआ। वैदिक काल को छोड़कर ज्योतिष विज्ञान का जितना विकास इस काल में हुआ, उतना अन्य किसी काल में नहीं हुआ। इस काल में एक से बढ़कर एक ज्योतिषाचार्य हुए, जिसमें आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि प्रमुख थे।

आर्यभट्ट:- खगोल विज्ञान और ज्योतिषाचार्य के रूप में आर्यभट्ट का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। ये कुसुमपुत्र (पाटलिपुत्र) के निवासी गुप्तकालीन प्रमुख ज्योतिषाचार्य हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ आर्यभट्टीय में ज्योतिष विद्या के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सिद्धांतों को प्रतिपादित किया। यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है- गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रिया व गोलपाद। जो कालक्रिया खगोल विज्ञान और ज्योतिष विज्ञान से सम्बंधित ग्रंथ है। कालक्रियापाद के पहले दो श्लोकों में काल और कोण की इकाइयों का संबंध बताया गया है। आगे के 6 श्लोकों में अनेक प्रकार के मासों, वर्षों और युगों का संबंध बताया गया है। आगे के अनेक श्लोकों में मासों, वर्षों और युगों का संबंध बताया है। गोलपाद आर्यभट्टीय का अंतिम अध्याय है, जिसमें 40 श्लोक हैं और सभी ज्योतिष विद्या से सम्बंधित हैं। उन्होंने सर्वप्रथम बताया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घुमती है।⁸ उन्होंने ही सर्वप्रथम सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का वास्तविक कारण बताया।

आर्यभट्ट के अनुसार जितने समय में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक बार घुमती है, वह नक्षत्र दिन है और जितने समय में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक अंश घुमती है, वह सौर दिवस है। कितने दिन में पृथ्वी चन्द्रमा के चारों ओर घुमती है, उसे चन्द्र दिवस कहते हैं। पृथ्वी की गति विषय में आर्यभट्ट ने कालक्रियापाद में उल्लेख है कि एक वर्ष में 12 मास, एक मास में 30 दिन, एक दिन में 60 नाड़ियाँ, एक नाड़ी में 60 विनाडिकाएँ और एक विनाडिका में 60 गुर्वक्षर होते हैं। 60 प्राणों एक विनाडिका होती है। एक प्राण में पृथ्वी एक कला घूमती है।

वराहमिहिर:- गुप्त काल का दूसरा प्रमुख ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर थे। इन्होंने ज्योतिष विद्या से सम्बंधित अनेकों ग्रंथों-पंचसिद्धान्तिका, वृहत्तजातक, लघुजातक, विवाहपटल आदि ग्रंथों की रचना किया। उन्होंने पंचसिद्धान्तिका में ज्योतिष विज्ञान के पाँच सिद्धांतों का उल्लेख किए हैं- पौलिश, रोमक, वशिष्ट, सौर और पैतामह सिद्धान्त।⁹ पंचसिद्धान्तिका का बारहवाँ अध्याय पितामह सिद्धान्त का सारांश देता है। इस अध्याय में कुल 5 श्लोक हैं। सूर्य सिद्धान्त नामक ग्रंथ हमें अलग से भी उपलब्ध है और इस ग्रंथ का सारांश पंचसिद्धान्तिका में है। पुलिश सिद्धान्त में ग्रहणों की गणना के लिए भी नियम दिए गये हैं। पुलिश सिद्धान्त में उज्जयिनी (उज्जैन) और काशी (बनारस) से यवनपुर का देशान्तर दिया है। पंचसिद्धान्तिका में वसिष्ठ सिद्धान्त पर संक्षिप्त चर्चा है।

वराहमिहिर ने फलित ज्योतिष को ज्यादा महत्व दिए थे। फलित ज्योतिष में व्यक्तियों के भविष्य और भाग्यफल की जानकारी मिलती है। फलित ज्योतिष का महत्व जन्मकुण्डली बनाने में विवाह, यात्रा, कृषि कार्य को आरम्भ करने के शुभ मुहूर्त के विषय में अध्ययन किया जाता था। फलित ज्योतिष में मानव पर ग्रहादि के कुप्रभाव तथा ग्रह-दोषों से बचने के लिए बहुमूल्य एवं दुर्लभ-रत्नों को धारण किया जाता था। वराहमिहिर ने भी अपनी रचना बृहत्संहिता में मनुष्य पर ग्रहादि के प्रभाव तथा पथरों, मणियों और मूंगा-मोतियों के प्रयोग का वर्णन किया है। उन्होंने मंगल और सूर्य को प्रसन्न करने के लिए मूंगा, शुक्र एवं चन्द्र के लिए चांदी, बुध के लिए सोना, बृहस्पति के लिए मोती, शनि के लिए लौह तथा अन्य दो राशियों राहु और केतु के लिए लाजवर्त धारण करने के बात कही है।¹⁰ बृहत्संहिता में वस्तुओं के खरीद-बिक्री के शुभ-अशुभ मुहूर्त के विषय में लिखा है। जैसा- कि उन्होंने लिखा है कि अश्विन, स्वाती, चित्रा, रेवती, शतभिषा, श्रवण, नक्षत्रों में वस्तुओं को खरीदने से लाभ और बिक्री में होता है। भरणी, पूर्व षाठा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपद, आर्द्रा, आश्वलेषा, माघ, स्वाति, ज्येष्ठा, कृत्तिका नक्षत्रों में किसी काम से स्वामी या अधिकारी से मिलने से काम नहीं होता है।

वराहमिहिर ने फलित ज्योतिष से संबंधित अनेक छोटे-छोटे ग्रंथों की रचना की थी, जिसमें वृहत्तजातक, लघुजातक, विवाहपटल और योगयात्रा आदि प्रमुख हैं। विवाह पटल में विवाह के शुभ-मुहूर्त संबंधित जानकारी दिया गया है और योग यात्रा में यात्रा आरंभ करने के शुभ-अशुभ मुहूर्त का वर्णन है।¹¹

ब्रह्मगुप्त- गुप्त काल के प्रमुख ज्योतिषाचार्य थे। साथ ही महान गणित भी था। उन्होंने ज्योतिष से सम्बंधित दो महत्वपूर्ण ग्रंथों ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त एवं

खण्डखाद्यक की रचना की थी। इन्होंने अपनी रचना ब्रह्मस्फुटसिद्धांत के 24 अध्यायों में खगोल विज्ञान सम्बंधी विषयों का उल्लेख मिलता है। उन्होंने आक्षांश-देशान्तर की दूरी, ग्रहों को स्थान, सूर्य-चन्द्र ग्रहण का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मस्फुटसिद्धांत तथा खण्डखाद्यक में फलित ज्योतिष के वनिस्पत खगोल, ग्रह-नक्षत्र के अध्ययन पर अधिक बल दिया। उन्होंने सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का कारण राहु और केतु द्वारा सूर्य चन्द्रमा को निगल लेना बताया था। बाद में ब्रह्मगुप्त ने अपनी रचना 'खण्डखाद्यक' में इस गलती को सुधारा था।¹² गुप्त शासकों के बाद ज्योतिष विज्ञान की प्रगति रुक सी गई थी। गुप्तकाल के बाद आर्यभट्ट वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त जैसे कौटी के ज्योतिषाचार्य नहीं हुए थे। एक लम्बे अंतराल के बाद 11वीं शताब्दी में भास्कराचार्य ने ज्योतिष विज्ञान को पुनर्जीवित किया। उन्होंने फलित ज्योतिष से सम्बन्धित करणकुतूहल की रचना की।¹³ इसके अलावे सिद्धांतशिरोमणि, लीलावती में ज्योतिष विज्ञान से संबंधित अध्ययन, ज्योतिष से संबंधी उपकरणों, गोलयंत्र, चक्रीय यंत्र आदि का उल्लेख है।

निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णन के आधार पर कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान विज्ञान की परंपरा में ज्योतिष विज्ञान का जितना विकास हुआ, उतना किसी अन्य विषय का नहीं हुआ और तो और विश्व ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में जितना योगदान भारत का है उतना किसी अन्य देश का नहीं है। वैदिक काल से ही हमारे ऋषि-मुनियों व विद्वानजनों ने बिना आधुनिक यंत्रों के ही खगोल विज्ञान के ग्रहो-नक्षत्रों का अध्ययन किया। आर्यभट्ट ने सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण का जो वास्तविक कारण बताएँ, वह आज भी मान्य है। आर्यभट्ट ने चतुर्युग की संकल्पना को सम विभाजित करने नवीन तार्किक रूप से कसौटी पर रखने का प्रयास किया। पृथ्वी का अपने कक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमने को जो सिद्धांत प्रतिपादित किया, उसे यूरोपीय जगत में सोलहवीं सदी में आत्मसात कर सका। सूर्यसिद्धांत में वर्णित सौर दिवस की मान्यता 365 दिन 6 घंटे, 12 मिनट व 36.6 सैकण्ड का वर्ष आज भी स्वीकार्य हो रहा है। वराहमिहिर ने ग्रहों का मनुष्य व जीव पर पड़ने वाले प्रभावों को उल्लेख वृहतजातक व लघुजातक ब्रह्मस्फुटसिद्धांत व खण्डखाद्यक में ज्योतिष विज्ञान के अनेक सिद्धांतों का उल्लेख मिलता है। 712 ई0 में भारत और अरबों के बीच सम्पर्क स्थापित होने के बाद भारतीय ज्योतिष विज्ञान के ग्रंथों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ और अरबों के ज्योतिष विज्ञान में इजाफा हुआ। अलबरूनी के हवाले से भी संकेत मिलता है कि ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में भारत अब्बल था। ब्रह्मस्फुटसिद्धांत और खण्डखाद्यक का क्रमशः सिंदहिंद व अलअरकद नाम से अरबी में अनुवाद हुआ।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. हिमांशु शेखर, प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, बीएफसी प्रकाशन, लखनऊ, 2024, पृ0-198
2. सत्यप्रकाश, विज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, 1954, पृ0-89
3. एस0एन0सेन, विज्ञान का इतिहास, भाग-1 (हिन्दी अनु0) भूपेन्द्र नाथ सन्याल, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2016, पृ0-151
4. ओम प्रकाश प्रसाद, प्राचीन इतिहास में विज्ञान, राजकमल प्रकाशन, हिन्दी पृ0-241
5. हिमांशु शेखर, पूर्वोक्त, पृ0-205
6. ओम प्रकाश प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ0-241
7. वृहतजातक 2/15-17 उद्धरित, ओम प्रकाश प्रसाद, पूर्वोक्त-241
8. राजीव सक्सेना, महान खगोलशास्त्री, पृ0-8
9. गुणकर मूले, प्राचीन भारत के वैज्ञानिक, राजकमल प्रकाशन, पटना-2020, पृ0-241
10. ओम प्रकाश प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ0-241
11. एस0एन0सेन, पूर्वोक्त, भाग-21 पृ0-39
12. देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज पृ0-387-89
13. गुणाकर मूले, प्राचीन भारत के वैज्ञानिक, पृ0-84

प्रिंट से स्क्रीन तक: हिंदी कहानी की यात्रा

अंकिता सिंह

शोधार्थी, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

डॉ० सुधीर साहू

शोध निर्देशक, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

शोध-सार :

यह शोध-पत्र हिन्दी कहानी के विकासक्रम को मुद्रण तकनीक (Print) से डिजिटल पटल (Screen) तक के संक्रमण के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करता है। शोध का मुख्य केंद्र इस बात पर है कि कैसे माध्यम के परिवर्तन ने न केवल कहानी के वितरण को बदला है, बल्कि उसके शिल्प, भाषा, संपादकीय संरचना और पाठक के मनोविज्ञान पर भी गहरा प्रभाव डाला है।

मुख्य विश्लेषण बिंदु:

संपादकीय सत्ता का ह्रास: शोध दर्शाता है कि प्रिंट युग में 'गेटकीपिंग' (जैसे हंस या तद्भव के संपादक) कहानी की गुणवत्ता के संरक्षक थे। डिजिटल युग में 'स्व-प्रकाशन' (जैसे प्रतिलिपि) ने लेखक को आजादी तो दी, लेकिन साहित्यिक मानक और संपादन की गुणवत्ता में चुनौती भी पैदा की।

शिल्प और भाषा में परिवर्तन: 'एल्गोरिदम' और 'अटेंशन इकॉनमी' के दबाव में कहानियाँ अब अधिक दृश्य-परक, संवादात्मक और सूक्ष्म होती जा रही हैं। डिजिटल स्क्रीन पर 'हाइपरटेक्स्ट' और मल्टीमीडिया के प्रयोग ने पाठ को बहुआयामी बना दिया है।

पाठक का व्यवहार: शोध यह निष्कर्ष निकालता है कि जहाँ प्रिंट माध्यम 'डीप रीडिंग' (गहन अध्ययन) को बढ़ावा देता था, वहीं स्क्रीन 'हाइपर-रीडिंग' और 'स्कैनिंग' की प्रवृत्ति को जन्म दे रही है। ऑडियो बुक्स और पॉडकास्ट के माध्यम से कहानी अपनी 'मौखिक परंपरा' की ओर लौट रही है।

प्रमुख निष्कर्ष: डिजिटल संक्रमण ने हिन्दी कहानी का लोकतांत्रिकरण किया है और इसे वैश्विक स्तर पर सुलभ बनाया है। हालाँकि, साहित्यिक चोरी, व्यावसायिकता और विश्वसनीयता जैसे संकट भी उभरे हैं। भविष्य का साहित्य इन दोनों माध्यमों के समन्वय में निहित है—जहाँ प्रिंट का वैचारिक वैभव और डिजिटल की पहुँच साथ-साथ चलेंगे।

बीज शब्द : प्रिंट संस्कृति, डिजिटल संक्रमण, गेटकीपिंग, एल्गोरिदम, अटेंशन इकॉनमी, हिंदवी, प्रतिलिपि, पाठक मनोविज्ञान।

प्रस्तावना :

हिन्दी कहानी, आधुनिक हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण स्तंभ रही है। शुरुआत में यह कहानियाँ अधिकांशतः मुद्रित पत्रिकाओं, साहित्यिक सालिकाओं और पुस्तक-संग्रहों के माध्यम से पाठकों तक पहुँचती थीं। पत्रिकाओं का संपादन, मुद्रण और वितरण एक जटिल – पर परम्परागत – पारिस्थितिकी बनाते थे जहाँ संपादकीय चयन और पाठक-समीक्षा का क्रमशः स्थापित स्थान था। विवर्तनशील दशक-परिवर्तन और तकनीकी विकास ने कहानी के उत्पादन, प्रकाशन और प्रचार के तरीकों में बुनियादी बदलाव लाए – कहानी अब केवल पन्नों पर सिमटकर नहीं रह गई; वह स्क्रीन पर, ऐप पर, वेब-लॉग में और सोशल-मीडिया के छोटे अंशों में भी बहने लगी। इस शोध-पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि हिन्दी कहानी की परंपरागत अवस्थाओं से लेकर डिजिटल/ऑनलाइन अवस्थाओं तक की यात्रा कैसे हुई, इसके साहित्यिक, सामाजिक और व्यावसायिक प्रभाव क्या रहे, तथा इस संक्रमण से कथाशिल्प और पाठक-व्यवहार में क्या-क्या परिवर्तन आए। इस विश्लेषण में प्राथमिक स्रोतों (पत्रिका-आर्काइव) तथा आधुनिक डिजिटल प्लेटफॉर्म (प्रतिलिपि आदि) को केस-अध्ययन के तौर पर लिया गया है।

हिन्दी कहानी का इतिहास केवल संवेदनाओं के परिवर्तन का इतिहास नहीं है, बल्कि उन भौतिक माध्यमों के क्रमिक विकास की गाथा है जिन्होंने कहानी को आकार दिया। 20वीं सदी के प्रारंभ में मुद्रण तकनीक ने हिन्दी कहानी को एक संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। 'सरस्वती' और 'हंस' जैसी पत्रिकाओं ने न केवल लेखकों को मंच दिया, बल्कि एक ऐसी साहित्यिक शुचिता और व्याकरणिक अनुशासन की नींव रखी, जिसे आज भी मानक माना जाता है। प्रिंट माध्यम की सबसे बड़ी शक्ति उसकी 'अपरिवर्तनीयता' थी; एक बार मुद्रित होने के बाद शब्द इतिहास का अमिट हिस्सा बन जाता था। इग्नू (IGNOU) के शोध मॉड्यूल में उल्लेखित है कि मुद्रित शब्द की इस गरिमा ने लेखकों में एक प्रकार का उत्तरदायित्व बोध जागृत किया। हालाँकि, 21वीं सदी के प्रथम

दो दशकों में इंटरनेट और स्मार्ट स्क्रीन के वैश्विक प्रसार ने इस स्थापित ढांचे को चुनौती दी है। आज कहानी कागज की सीमाओं को लांघकर पिक्सल और स्क्रीन के प्रकाश में सांस ले रही है। यह शोध-पत्र इसी संक्रमण के विभिन्न आयामों-संपादकीय सत्ता का हास, पाठ की प्रकृति में बदलाव और पाठक-लेखक संबंधों के पुनर्गठन-का विस्तृत विश्लेषण करता है।

प्रिंट युग की विशेषताएँ: संपादकीय गेटकीपिंग और विश्वसनीयता

प्रिंट युग में साहित्य का एक निश्चित 'अनुशासन' था। पत्रिकाएँ केवल कागज का बंडल नहीं थीं, बल्कि वे एक विचारधारा और गुणवत्ता का फिल्टर थीं। राजेंद्र यादव ने 'हंस' के माध्यम से जिस संपादकीय संस्कृति को जीवित रखा, वह 'गेटकीपिंग' (Gatekeeping) का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण था। संपादक यह तय करता था कि समाज के पास क्या पहुँचना चाहिए। इस प्रक्रिया में कहानी को कई स्तरों पर परिष्कृत किया जाता था-भाषा, शिल्प और सामाजिक सरोकार। NCERT के 'प्रिंट संस्कृति और आधुनिक विश्व' नामक अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि मुद्रण ने समाज में 'पब्लिक स्फ़ेयर' (Public Sphere) का निर्माण किया, जहाँ बहस और विमर्श के लिए एक साझा मंच उपलब्ध था। मुद्रित कहानी का पाठक धैर्यवान था; वह कहानी के साथ हफ्तों बिताता था। मुद्रण की लागत अधिक होने के कारण केवल वही सामग्री प्रकाशित होती थी जो एक निश्चित मानक को पूरा करती थी। यही कारण है कि उस दौर की कहानियों में एक प्रकार का घनत्व और दार्शनिक गहराई पाई जाती थी। प्रिंट माध्यम ने 'संग्रहणीयता' की संस्कृति को जन्म दिया, जहाँ लोग पत्रिकाओं के अंकों को दशकों तक संभालकर रखते थे, जो आज के 'स्कॉल और डिलीट' युग में लुप्तप्राय है।

डिजिटल पटल का मानचित्र: हिन्दी कहानी के प्रमुख मंच और उनका स्वरूप

हिन्दी कहानी का 'प्रिंट' से 'स्क्रीन' तक का सफर केवल माध्यम का बदलाव नहीं है, बल्कि यह कहानी के उपभोग की पद्धति में आया एक क्रांतिकारी परिवर्तन है। वर्तमान में डिजिटल पटल पर हिन्दी कहानियों के मंचों को हम तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं: यूजर-जनरेटेड कंटेंट प्लेटफॉर्म, ई-पत्रिकाएँ/साहित्यिक पोर्टल, और सोशल मीडिया कथा-समूह।

इस श्रेणी में सबसे अग्रणी नाम 'प्रतिलिपि' का है। यह प्लेटफॉर्म 'स्व-प्रकाशन' की अवधारणा पर आधारित है, जहाँ कहानी और पाठक के बीच से 'संपादक' की भूमिका को पूरी तरह हटा दिया गया है। यहाँ कहानियाँ केवल पाठ के रूप में नहीं, बल्कि धारावाहिक के रूप में उपलब्ध हैं, जो ओटीटी (OTT) प्लेटफॉर्म के 'बिज-वाचिंग' कल्चर की याद दिलाती हैं। प्रतिलिपि पर उपलब्ध डेटा और 'रीडर एनालिटिक्स' यह दर्शाते हैं कि यहाँ 'हॉरर', 'सस्पेंस' और 'रोमांस' जैसी विधाएँ सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। यह मंच कहानी को एक 'उत्पाद' के रूप में देखता है, जहाँ पाठकों की रेटिंग और टिप्पणियाँ लेखक की सफलता का पैमाना बनती हैं। इसी क्रम में 'स्टोरीमिरर' (StoryMirror) और 'मातृभारती' (Matrubharti) जैसे ऐप्स ने भी अपनी जगह बनाई है, जो लेखकों के बीच प्रतियोगिताएँ आयोजित कर उन्हें मुद्रित पुस्तकों (E-books to Print) की ओर ले जाने का सेतु प्रदान करते हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण श्रेणी उन साहित्यिक पोर्टल्स की है जिन्होंने प्रिंट की 'गंभीरता' को डिजिटल स्क्रीन पर सहेजने का प्रयास किया है। इसमें 'रेखा' के सहयोगी पोर्टल 'हिंदवी' का नाम सर्वोपरि है। हिंदवी ने कालजयी और समकालीन कहानियों को एक अत्यंत सुरुचिपूर्ण और सुव्यवस्थित डिजिटल आर्काइव के रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ संपादन की प्रक्रिया अभी भी मौजूद है, जिससे पाठ की गुणवत्ता बनी रहती है। इसी प्रकार 'समालोचन' और 'पहली बार' जैसे वेब-जर्नल्स ने उन गंभीर कहानियों को मंच दिया है, जो शायद व्यावसायिक ऐप्स के एल्गोरिदम में फिट नहीं बैठतीं। ये पोर्टल 'हाइपरलिंक' के माध्यम से कहानी के संदर्भों को जोड़ते हैं, जिससे शोधार्थियों के लिए एक ही स्थान पर प्राथमिक और द्वितीयक स्रोत उपलब्ध हो जाते हैं। 'कविता कोश' का गद्य खंड भी इसी श्रेणी में एक विश्वसनीय संदर्भ के रूप में उभरा है।

पाठकीय मनोविज्ञान और संवेदी संक्रमण: पन्ने की महक से पिक्सल की चमक तक

प्रिंट से स्क्रीन तक की यात्रा केवल सूचना के स्थानांतरण की यात्रा नहीं है, बल्कि यह पाठक के 'संवेदी अनुभव' (Sensory Experience) और 'संज्ञात्मक व्यवहार' (Cognitive Behavior) में आए आमूलचूल परिवर्तन का अध्ययन है। मुद्रित पुस्तक के साथ पाठक का संबंध 'स्पर्श' (Tactile) और 'घ्राण' (ऑब्जेक्टिव) संवेदनाओं से जुड़ा होता था। पन्ने को पलटने की आवाज और कागज की विशिष्ट महक पाठक को एक 'एकाग्रता के घेरे' में ले जाती थी। मनोवैज्ञानिक रूप से, प्रिंट माध्यम 'डीप रीडिंग' (Deep Reading) को प्रोत्साहित करता है, जहाँ पाठक कहानी के साथ घंटों बिताता है और चरित्रों के मानसिक द्वंद्व में डूब जाता है। NCERT के सांस्कृतिक अध्ययनों में यह स्पष्ट है कि मुद्रित शब्द एक 'अधिकार' का बोध कराता है, जिससे पाठक के मन में उस सामग्री के प्रति अधिक विश्वास पैदा होता है।

इसके विपरीत, स्क्रीन पर कहानी पढ़ना एक 'स्कैनिंग' (Scanning) प्रक्रिया में बदल गया है। डिजिटल पाठक अक्सर 'एफ-पैटर्न' (F-Pattern) में पढ़ता है, जहाँ उसकी नज़रें स्क्रीन के ऊपरी हिस्से और फिर बाईं ओर तेजी से घूमती हैं, जिससे वह कहानी के मुख्य बिंदुओं को पकड़ने की कोशिश करता है। इसे 'हाइपर-रीडिंग' कहा जाता है। स्क्रीन की कृत्रिम रोशनी और निरंतर आने वाले नोटिफिकेशन्स पाठक की एकाग्रता को खंडित करते हैं। परिणामस्वरूप, डिजिटल युग में ऐसी कहानियों की मांग बढ़ी है जो शुरुआत के कुछ ही वाक्यों में पाठक को 'हुक' (Hook) कर सकें। 'किंडल' (Kindle) और 'ई-बुक रीडर्स' ने ई-इंक तकनीक के माध्यम से प्रिंट के अनुभव को दोहराने की कोशिश तो की है, लेकिन 'एल्गोरिदम आधारित सुझावों' ने पाठक की स्वायत्तता को प्रभावित किया है। अब पाठक यह तय नहीं करता कि वह क्या पढ़ेगा, बल्कि उसकी पिछली 'ब्राउजिंग हिस्ट्री' यह तय करती है कि उसे कौन सी कहानी दिखाई जाएगी।

यह मनोवैज्ञानिक संक्रमण कहानी के 'शिल्प' को भी बदल रहा है। जहाँ प्रिंट युग में लेखक लंबी भूमिकाएँ और विस्तृत दृश्य-वर्णन लिख सकते थे, वहीं आज का डिजिटल कथाकार जानता है कि यदि पहले 500 शब्दों में कोई बड़ी घटना नहीं घटी, तो पाठक 'स्वाइप' (Swipe) कर दूसरी कहानी पर चला जाएगा। यह 'अटेंशन इकॉनमी' का दबाव है। हालांकि, इसका एक सकारात्मक पक्ष यह भी है कि 'ऑडियो बुक्स' के रूप में कहानी वापस अपनी

‘मौखिक परंपरा’ की ओर लौट रही है। श्रव्य माध्यमों ने उन लोगों को भी कहानी से जोड़ दिया है जो पढ़ना नहीं जानते थे या जिनके पास पढ़ने का समय नहीं था। इस प्रकार, प्रिंट से स्क्रीन तक की यह यात्रा पाठक को एक ‘मूक उपभोक्ता’ से एक ‘सक्रिय और कभी-कभी चंचल सहभागी’ में बदल रही है, जो कहानी के भविष्य को और अधिक संवादात्मक बना रहा है।

डिजिटल कथा-शिल्प में तकनीकी और शैलीगत नवाचार

डिजिटल मंचों पर कथा-लेखन के आगमन ने केवल माध्यम को नहीं बदला, बल्कि कहानी के आंतरिक ढांचे और बुनावट में भी कई क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। इसमें सबसे प्रमुख सीरियलाइजेशन (Serialisation) की प्रवृत्ति है। लेखक अब एकमुश्त कहानी देने के बजाय, नियमित पाठक-पूँजी (Reader Base) बनाने के उद्देश्य से ‘एपिसोडिक’ या धारावाहिक कहानियाँ पोस्ट करते हैं। यह पद्धति पाठक के भीतर निरंतर उत्सुकता बनाए रखती है और कहानी को एक ‘उत्पाद’ की तरह डिजिटल बाजार में जीवित रखती है।

इसके साथ ही, कथाशिल्प में हाइब्रिड फॉर्म (Hybrid Form) का उदय हुआ है। अब कहानी केवल काले अक्षरों का समूह नहीं रही, बल्कि उसमें मल्टीमीडिया तत्वों जैसे ऑडियो क्लिप्स, विजुअल इमेजेज और वीडियो लिंक्स का समावेश होने लगा है। इन दृश्य-श्रव्य तत्वों ने कहानी की संभावनाओं को विस्तार दिया है, जिससे पाठक के लिए कथा-संसार अधिक जीवंत और संवेदी (Sensory) हो गया है।

डिजिटल माध्यम की एक और उल्लेखनीय विशेषता पाठक-प्रतिक्रिया का तात्कालिक समावेश है। रेटिंग, कमेंट्स और रीयल-टाइम फीडबैक ने लेखक को अपनी रचनात्मक दिशा बदलने का क्षणिक संकेत देना शुरू कर दिया है। आज का कथाकार पाठक-संवेदनाओं के प्रति पहले से कहीं अधिक उत्तरदायी और सचेत हुआ है, क्योंकि उसे अपनी रचना का प्रभाव तुरंत दिखाई देता है।

हालाँकि, ये प्रयोगशील परिवर्तन जहाँ एक ओर विधा को आधुनिक बना रहे हैं, वहीं दूसरी ओर मौलिक साहित्यिक सघनता (Literary Density) पर प्रश्नचिह्न भी खड़ा करते हैं। डिजिटल स्थान ने भाषाई बहुलता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को तो बढ़ावा दिया है, लेकिन इसके साथ ही संपादन-मानक (Editorial Standards) और गुणवत्ता-नियंत्रण की गंभीर चुनौतियाँ भी बढ़ाई हैं। संपादक की अनुपस्थिति में कई बार रचनाएँ अपनी भाषाई गरिमा और वैचारिक गहराई खो देती हैं, जो भविष्य के डिजिटल साहित्य के लिए एक विचारणीय प्रश्न है।

डिजिटल स्पेस और स्त्री अभिव्यक्ति: सशक्तिकरण का नया कथा-पटल

हिन्दी कहानी के ‘प्रिंट से स्क्रीन’ तक के सफर में सबसे क्रांतिकारी और सकारात्मक प्रभाव महिला रचनाकारों की बढ़ती भागीदारी के रूप में देखा जा सकता है। डिजिटल माध्यमों ने उन सामाजिक और घरेलू बाधाओं को कम करने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई है, जो पारंपरिक प्रकाशन जगत में महिला लेखकों के आड़े आती थीं। अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसंधान जर्नल (IJSREM, 2025) के अनुसार, डिजिटल हिन्दी साहित्य आज पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती देने और लैंगिक जागरूकता फैलाने का प्रमुख हथियार बन चुका है।

डिजिटल कथा-मंचों के इस प्रभाव को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से गहराई से समझा जा सकता है:

- पारंपरिक गेटकीपिंग का अंत: प्रिंट युग में किसी महिला लेखक की कहानी का प्रकाशित होना अक्सर पुरुष संपादकों की पसंद और सामाजिक वर्जनाओं के फिल्टर से गुजरता था। ‘प्रतिलिपि’ जैसे प्लेटफॉर्म ने इस बाधा को समाप्त कर दिया है। दि प्रिंट (2022) की एक रिपोर्ट के अनुसार, प्रतिलिपि के शीर्ष 10 रचनाकारों में अक्सर महिलाएँ ही होती हैं, जो पौराणिक कथाओं से लेकर आधुनिक ‘इरोटिका’ और ‘रोमांस’ तक पर बेबाकी से लिख रही हैं।
- सुरक्षित और गुमनाम अभिव्यक्ति: डिजिटल मंचों ने महिलाओं को ‘छद्म नाम’ (Pseudonyms) या अपनी पहचान उजागर किए बिना लिखने की सुविधा दी है। यह उन महिलाओं के लिए विशेष रूप से वरदान साबित हुआ है जो संवेदनशील विषयों, घरेलू हिंसा या व्यक्तिगत अनुभवों पर लिखना चाहती थीं, लेकिन सामाजिक डर के कारण प्रिंट में ऐसा नहीं कर पाती थीं।
- आर्थिक स्वावलंबन: डिजिटल माध्यम केवल लिखने का मंच नहीं, बल्कि कमाई का जरिया भी बने हैं। ‘सब्सक्रिप्शन’ आधारित मॉडल और ‘ऑडियो-बुक रॉयल्टी’ के माध्यम से कई महिला कथाकार अब घर बैठे स्वतंत्र आर्थिक पहचान बना रही हैं। हस्तक्षेप (2024) की एक केस स्टडी के अनुसार, यूट्यूब और ब्लॉग्स के जरिए महिलाएँ न केवल कहानियाँ सुना रही हैं, बल्कि एक वफादार पाठक-समुदाय बनाकर आत्मनिर्भर भी हो रही हैं।
- सामुदायिक एकजुटता और फीडबैक: डिजिटल स्टोरीटेलिंग ने महिलाओं को एक-दूसरे के अनुभवों से जुड़ने का अवसर दिया है। सोशल मीडिया समूहों और कमेंट सेक्शन में मिलने वाला फीडबैक एक ‘डिजिटल सिस्टरहुड’ (Digital Sisterhood) का निर्माण करता है, जहाँ महिला पाठक और लेखक एक-दूसरे को रचनात्मक और मानसिक सहयोग प्रदान करती हैं।
- निष्कर्षतः, डिजिटल क्रांति ने हिन्दी कहानी के परिदृश्य को अधिक समावेशी और जेंडर-न्यूट्रल बना दिया है। इसने उन ‘दबी हुई आवाजों’ को वैश्विक मंच दिया है, जो पहले केवल डायरियों के पन्नों तक सीमित थीं। हालाँकि, ऑनलाइन ट्रोलिंग और साइबर हिंसा जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, फिर भी डिजिटल स्क्रीन महिला सशक्तिकरण के आधुनिक विमर्श का सबसे शक्तिशाली केंद्र बनकर उभरी है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध-पत्र प्रिंट से स्क्रीन तक: हिन्दी कहानी की यात्रा’ के विस्तृत विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि माध्यम का परिवर्तन केवल तकनीकी बदलाव नहीं है, बल्कि इसने हिन्दी कहानी के ‘कथ्य’ और ‘शिल्प’ दोनों को एक नए युग में प्रवेश कराया है। प्रिंट माध्यम ने जहाँ हिन्दी कहानी को एक सांस्कृतिक गंभीरता, भाषाई शुचिता और संपादकीय अनुशासन प्रदान किया, वहीं डिजिटल स्क्रीन ने इसे व्यापकता, तात्कालिकता और समावेशिता दी है।

शोध के मुख्य परिणाम निम्नलिखित निष्कर्षों की ओर संकेत करते हैं:

माध्यम की लोकतान्त्रिक शक्ति: डिजिटल पटल ने 'प्रकाशन के एकाधिकार' को समाप्त कर दिया है। अब कोई भी लेखक बिना किसी संपादकीय 'गेटकीपिंग' के सीधे पाठक तक पहुँच सकता है। इसने विशेष रूप से महिलाओं और हाशिए के समुदायों को अपनी बात कहने का एक निर्बाध मंच प्रदान किया है, जो प्रिंट युग की सीमित पहुँच में प्रायः संभव नहीं था।

शिल्प का रूपांतरण: यह शोध प्रमाणित करता है कि 'स्क्रीन' पर पढ़ने की आदतों ने कहानी के शिल्प को बदल दिया है। 'सीरियलाइजेशन' और 'हाइब्रिड फॉर्म' (मल्टीमीडिया का उपयोग) ने कहानी को एक 'स्थिर पाठ' से बदलकर 'सक्रिय प्रक्रिया' बना दिया है। हालाँकि, इस प्रक्रिया में कहीं न कहीं 'साहित्यिक सघनता' (Literary Density) और संपादन की बारीकियों में कमी आई है, जो एक गंभीर चिंता का विषय है।

पाठक की नई भूमिका: प्रिंट युग का पाठक एक 'एकांत का भोक्ता' था, जबकि डिजिटल पाठक एक 'सक्रिय सहभागी' है। रेटिंग, कमेंट और शेयर के माध्यम से पाठक अब कहानी की रचना प्रक्रिया का हिस्सा बन चुका है। यह 'इंटरएक्टिविटी' कहानी को जीवंत तो बनाती है, लेकिन लेखक पर लोकप्रिय होने का एक अनचाहा दबाव भी डालती है।

भविष्य की संभावना: निष्कर्षतः, हिन्दी कहानी का भविष्य प्रिंट और स्क्रीन के 'हाइब्रिड' सह-अस्तित्व में निहित है। प्रिंट की विरासत हमें वह गहराई प्रदान करेगी जिसके बिना साहित्य दीर्घजीवी नहीं होता, और डिजिटल तकनीक वह विस्तार देगी जिसके बिना साहित्य वैश्विक नहीं हो सकता। भविष्य के शोध के लिए यह आवश्यक है कि हम 'डिजिटल आर्काइविंग' और 'एल्गोरिदम के साहित्यिक प्रभाव' का निरंतर अध्ययन करें ताकि तकनीक का उपयोग साहित्य की गरिमा बढ़ाने के लिए हो, न कि उसे सतही बनाने के लिए।

अंतिम टिप्पणी: अंततः, माध्यम चाहे पन्ने की महक वाला कागज हो या नीली रोशनी वाली स्क्रीन, हिन्दी कहानी की सफलता इस बात पर टिकी रहेगी कि वह बदलते हुए परिवेश में मनुष्य की सनातन संवेदनाओं को कितनी ईमानदारी से अभिव्यक्त कर पाती है। यह संक्रमण विलोपन का नहीं, बल्कि विकास का एक नया पड़ाव है।

संदर्भ सूची:

- पूनम. 'हिंदी में डिजिटल कहानी.' AIRO Journal, 2023 ।
सिंह, आर. के. 'डिजिटल युग का हिंदी साहित्य पर प्रभाव.' शिक्षण संशोधन, 2023 ।
ThePrint. 'ऑनलाइन प्लेटफॉर्म 'प्रतिलिपि' और महिला लेखक.' 2022 ।
IGNOU. आधुनिक भारतीय साहित्य (MHD-02). ई-ज्ञानकोश।
JSREM- "Digital Hindi Literature and Women Empowerment." 2025.

दूधनाथ सिंह की कहानियों में नारी समस्या

आशीष पटेल

शोधार्थी, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

डॉ० राजाराम परते

शोध निर्देशक, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

भूमिका:

साठोत्तरी हिंदी कहानी के कथा-परिवेश में दूधनाथ सिंह एक ऐसे शिखर रचनाकार हैं, जिन्होंने मध्यवर्गीय समाज के भीतर व्याप्त पाखंड, नैतिक पतन और पारिवारिक हिंसा को अत्यंत प्रखरता के साथ उजागर किया। नई कहानी आंदोलन के रोमानी और भावुक धरातल से अलग, दूधनाथ सिंह ने सपाट चेहरे वाला आदमी जैसी रचनाओं के माध्यम से एक ऐसे यथार्थ की नींव रखी, जहाँ संवेदनाएँ कुठित हैं और मानवीय संबंध सत्ता के संघर्ष में तब्दील हो चुके हैं। इस शोध पत्र का मुख्य केंद्र उनकी कहानियों में नारी की स्थिति और उनके अस्तित्व से जुड़ी विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण करना है।

दूधनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री केवल एक पात्र मात्र नहीं है, बल्कि वह उस पितृसत्तात्मक संरचना की पीड़ित गवाह है, जो उसे घर की चारदीवारी और सामाजिक मर्यादाओं के नाम पर निरंतर कुचलती है। शोध के उपलब्ध स्रोतों और माई का शोकगीत, रीछ, तथा सुखांत जैसी कहानियों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उनके यहाँ नारी समस्या के कई आयाम हैं। पहला आयाम पारिवारिक हिंसा का है, जहाँ माई जैसी स्त्रियाँ मौन रहकर भी समाज की क्रूरता को बेनकाब करती हैं। दूसरा आयाम यौनिकता और मनोवैज्ञानिक जटिलता का है, जहाँ स्त्री की देह और उसकी आकांक्षाओं को पुरुषवादी वर्चस्व के अधीन रखा जाता है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह पड़ताल करना है कि दूधनाथ सिंह ने किस प्रकार कल्ट ऑफ फेमिनिटी (स्त्रीत्व के महिमामंडन) के मिथक को तोड़कर स्त्री को उसकी वास्तविक देह और मानवीय सीमाओं के साथ प्रस्तुत किया। उनकी कहानियों में स्त्री का मौन केवल उसकी लाचारी नहीं, बल्कि व्यवस्था के विरुद्ध एक तीखा प्रतिशोध है। महानगरीय जीवन के द्वंद्व और कामकाजी स्त्रियों के संघर्ष के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध किया है कि आर्थिक स्वायत्तता के बावजूद स्त्री आज भी उन सामंती बेड़ियों में जकड़ी हुई है, जिसे आधुनिकता ने केवल नया चोला पहना दिया है। यह शोध आलेख दूधनाथ सिंह के कथा-संसार में निहित नारी अस्मिता के इन्हीं अनछुए और त्रासद पक्षों को उद्घाटित करने का एक विनम्र प्रयास है।

पारिवारिक ढाँचे में स्त्री की स्थिति

दूधनाथ सिंह की कहानियों में परिवार कोई सुखी या आदर्श इकाई नहीं है, बल्कि वह एक ऐसा जटिल संस्थान है जहाँ सत्ता का संघर्ष और दमन अपनी गहन अवस्था में विद्यमान रहता है। शोध की दृष्टि से उनके कथा-संसार का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि मध्यवर्गीय परिवार की जो निर्मिति मर्यादा और पवित्रता के आधार पर की गई है, वह वास्तव में स्त्री की बलि पर टिकी है। दूधनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में पितृसत्ता के उस क्रूर चेहरे को बेनकाब किया है, जहाँ घर की चारदीवारी स्त्री के लिए सुरक्षा-कवच नहीं बल्कि एक ऐसी कारागार बन जाती है जहाँ उसकी मानवीय सत्ता का धीरे-धीरे लोप कर दिया जाता है। यहाँ स्त्री केवल एक इकाई या वस्तु में बदल दी जाती है, जिसकी पहचान केवल उसके द्वारा की जाने वाली सेवाओं और उसके मौन समर्पण से तय होती है।

माई का शोकगीत इस पारिवारिक दमन का सबसे प्रखर और त्रासद दस्तावेज है। इस कहानी में माई का चरित्र केवल एक माँ का चित्रण नहीं है, बल्कि वह भारतीय समाज की उस व्यवस्था का प्रतीक है जहाँ स्त्री का शरीर और मन पितृसत्ता की निरंतर हिंसा को सहने के लिए अभिशप्त है। शोध ग्रंथों के आलोक में देखा जाए तो यह कहानी राष्ट्रीय स्वाधीनता और वैयक्तिक पराधीनता के बीच के गहरे विरोधाभास को उजागर करती है। एक तरफ देश विदेशी दासता से मुक्त हो रहा है, उत्सव मना रहा है, लेकिन घर के भीतर माई आज भी घरेलू दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई है। उसकी स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि उसकी देह पर पुरुष (पिता) का अनियंत्रित और हिंसक अधिकार है। लेखक ने यहाँ यह प्रश्न खड़ा किया है कि जिसे हम राष्ट्र का इतिहास कहते हैं, क्या उसमें स्त्री के व्यक्तिगत दुःख और उसकी यंत्रणा के लिए कोई स्थान है?

परिवार के भीतर होने वाली हिंसा को दूधनाथ सिंह ने अत्यंत सूक्ष्मता से पकड़ा है। माई का शोकगीत में माँ पर होने वाले प्रहारों को परिवार ने एक सामान्य नियम की तरह स्वीकार कर लिया है। यह हिंसा केवल शारीरिक चोटों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्त्री की अस्मिता को मैला करने की एक सुनियोजित प्रक्रिया है। शोधार्थियों ने यह रेखांकित किया है कि माई की चुप्पी उसकी सहनशीलता की महानता नहीं है, बल्कि वह उस भाषा का अभाव

है जो उसे कभी प्रदान ही नहीं की गई। उसके शरीर पर नील के जो निशान हैं, वे ही उसका वास्तविक इतिहास हैं, जिसे वह कभी शब्दों में बयान नहीं कर पाती। यहाँ स्त्री के अस्तित्व को इतिहास-विहीन कर दिया गया है, जहाँ उसकी पीड़ा को परिवार की इज्जत के नाम पर ढँक दिया जाता है।

कहानी का शीर्षक शोकगीत अपने आप में एक गहरा व्यंग्य और शोध का विषय है। माई की मृत्यु के बाद बेटों और पति द्वारा किया गया विलाप वास्तव में माई के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि उस सुविधा के छिन जाने का शोक है जो वह जीवन भर प्रदान करती रही। पितृसत्तात्मक ढाँचे में स्त्री की उपयोगिता ही उसकी पहचान की एकमात्र कसौटी है। जब तक वह रसोई और बच्चों के बीच अपनी देह गलाती रहती है, वह परिवार की धुरी बनी रहती है, लेकिन उसकी अपनी इच्छाओं, उसकी थकान और उसकी बीमारी की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। मृत्यु के पश्चात उसका जो महिमामंडन किया जाता है, वह उस अपराधबोध को छिपाने का प्रयास है जो परिवार ने उसे जीवित रहते हुए यंत्रणा देकर कमाया है।

अंततः, दूधनाथ सिंह की कहानियों में पारिवारिक ढाँचा स्त्री के लिए एक निष्कासन की स्थिति पैदा करता है। वह अपने ही घर में बेगानी और पराई बनी रहती है। शोध यह सिद्ध करता है कि दूधनाथ सिंह ने नई कहानी के उस कोमल और रोमानी पर्दे को फाड़ दिया है जो माँ को केवल ममता की देवी बनाकर पेश करता था। उन्होंने दिखाया कि माँ बनने से पहले वह एक मनुष्य है, जिसके पास अपनी पीड़ा और अपना प्रतिशोध है। उनका साहित्य यह संदेश देता है कि जब तक परिवार के भीतर लोकतांत्रिक मूल्यों और स्त्री की व्यक्तिगत सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाएगा, तब तक माई जैसे चरित्र केवल शोकगीतों में ही जीवित रहेंगे, वास्तविक जीवन में उनका दमन जारी रहेगा। यह विश्लेषण केवल एक कहानी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण मध्यवर्गीय समाज की उस संवेदनहीनता पर एक कड़ा प्रहार है जो स्त्री को केवल एक सपाट चेहरा देने की कोशिश करती है।

स्त्री देह और आदर्शवादी महिमामंडन का विखंडन

दूधनाथ सिंह की कहानियों का एक अत्यंत प्रखर पक्ष स्त्री देह और उसके चारों ओर बुने गए कल्ट ऑफ़ फेमिनिटी यानी स्त्रीत्व के आदर्शवादी महिमामंडन का ध्वंस करना है। परंपरागत साहित्य ने स्त्री को प्रायः देवी, ममता की प्रतिमूर्ति या त्याग की देवी जैसे विशेषणों से अलंकृत कर उसकी वास्तविक मानवीय सत्ता को ओझल कर दिया था। दूधनाथ सिंह इस छद्म आवरण को उतार फेंकते हैं और स्त्री को उसकी हाड़-मांस की देह, उसकी जैविक आवश्यकताओं और उस पर होने वाले सामाजिक प्रहारों के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनके यहाँ स्त्री देह केवल सौंदर्य का विषय नहीं है, बल्कि वह एक ऐसा कुरुक्षेत्र है जहाँ पितृसत्ता अपनी शक्ति और वर्चस्व का प्रदर्शन करती है। वे दिखाते हैं कि जिसे समाज पवित्रता कहता है, वह वास्तव में स्त्री को नियंत्रित करने का एक औजार मात्र है।

सपाट चेहरे वाला आदमी जैसी कहानियों के माध्यम से लेखक ने अस्मिता के लोप और पहचान के संकट को बहुत गहराई से उकेरा है। शोध के अनुसार, सपाटपन यहाँ केवल चेहरे की बनावट का संकेत नहीं है, बल्कि यह उस प्रक्रिया का परिचायक है जिसके तहत पितृसत्ता स्त्री के व्यक्तित्व की विशिष्टताओं को घिसकर उसे एक निर्जीव वस्तु में बदल देती है। पुरुषवादी दृष्टि स्त्री को कभी एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं करती; वह या तो उसे भोग्या मानती है या फिर अपनी प्रतिष्ठा का प्रतीक। दूधनाथ सिंह ने सिमोन द बोउआर के उन तर्कों को अपने कथा-साहित्य में सृजनात्मक विस्तार दिया है जहाँ स्त्री की देह को मैला करने की मानसिकता उसे सामाजिक रूप से दंडित करने का माध्यम बनती है।

लेखक यह स्थापित करते हैं कि जब तक स्त्री को देह के धरातल पर उसकी स्वायत्तता प्राप्त नहीं होती, तब तक उसके अधिकारों की बातें बेमानी हैं। उनकी कहानियों में स्त्री की देह पर समाज, परिवार और पुरुष का जो तिहरा पहरा है, वह उसे एक अनाम अस्तित्व में बदल देता है। शोध पत्रों के विश्लेषण से यह तथ्य उभरता है कि दूधनाथ सिंह ने उन वर्जनाओं को तोड़ा है जो स्त्री की यौनिकता और उसकी शारीरिक यंत्रणा पर चुप्पी साधे रहती थीं। उनके यहाँ स्त्री अपनी देह के माध्यम से ही व्यवस्था के क्रूर चेहरों को बेनकाब करती है। यह कल्ट का विखंडन ही वास्तव में स्त्री को उसके वास्तविक स्व से मिलाने की दिशा में पहला क्रांतिकारी कदम है, जहाँ वह किसी आदर्श का बोझ ढोने के बजाय एक हाड़-मांस की मनुष्य के रूप में खड़ी होती है।

रीछ और सुखांत में यौनिकता और मनोवैज्ञानिक जटिलता

दूधनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण केवल बाहरी सामाजिक धरातल तक सीमित नहीं है, बल्कि वह उन मनोवैज्ञानिक गहराइयों और यौन कुंठाओं को भी उकेरित करता है जिन्हें समाज अक्सर नैतिकता के पर्दे के पीछे छिपा देता है। उनकी कहानियाँ रीछ और सुखांत इस संदर्भ में शोध की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जहाँ यौनिकता और मानसिक द्वंद्व को एक अनिवार्य मानवीय संकट के रूप में पेश किया गया है। दूधनाथ सिंह ने साठोत्तरी कहानी में स्त्री के आंतरिक मानस को केंद्र में रखकर यह सिद्ध किया है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का अस्तित्व केवल बाहरी दमन से नहीं, बल्कि एक गहरे और स्थायी मनोवैज्ञानिक भय से भी संचालित होता है। यह भय अक्सर उसकी सहज प्रवृत्तियों और उसकी स्वायत्तता को कुचलने का काम करता है।

रीछ कहानी में भय एक जीवंत और आदिम पात्र की तरह उपस्थित है, जहाँ रीछ का बिम्ब केवल एक हिंसक जानवर मात्र नहीं है, बल्कि वह उस पुरुषवादी आक्रामकता और अधिकार-बोध का प्रतीक है जो स्त्री को निरंतर असुरक्षित और आतंकित महसूस कराता है। शोध पत्रों में यह विशेष रूप से रेखांकित किया गया है कि यहाँ भय का स्वरूप मानसिक है, जो स्त्री की चेतना को इस कदर जकड़ लेता है कि वह अपने ही घर और सबसे आत्मीय संबंधों के बीच खुद को एक शिकार की तरह महसूस करने लगती है। यह कहानी दिखाती है कि कैसे पुरुष का वर्चस्व स्त्री के लिए एक ऐसे अदृश्य पहरे की तरह है जिससे वह चाहकर भी मुक्त नहीं हो पाती। यहाँ यौनिकता का दमन और सुरक्षा का अभाव मिलकर एक ऐसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि बना देते हैं जो स्त्री के व्यक्तित्व को खंडित कर देती है, जिससे वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरंतर एक मानसिक युद्ध लड़ती रहती है।

वहीं दूसरी ओर, सुखांत कहानी वैवाहिक संस्था के भीतर व्याप्त यांत्रिक दांपत्य और भावनात्मक रिक्तता का अत्यंत कड़वा यथार्थ प्रस्तुत करती है। कहानी का शीर्षक ही अपने आप में एक गहरा व्यंग्य है, क्योंकि जिस विवाह को भारतीय समाज एक सुखद अंत मानता है, वह दूधनाथ सिंह के पात्रों के लिए

एक अंतहीन मानसिक मरुस्थल की शुरुआत साबित होता है। सुखांत में पति-पत्नी के बीच शारीरिक समीपता तो है, लेकिन मानसिक और वैचारिक स्तर पर वे एक-दूसरे के लिए पूर्णतः अजनबी हैं। यहाँ स्त्री की यौन इच्छाओं या उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरी तरह से हाशिए पर रख दिया जाता है, जिससे उसकी देह केवल एक वस्तु बनकर रह जाती है।

दूधनाथ सिंह ने बड़ी निर्भीकता से यह दिखाया है कि जब संवाद की जगह केवल खामोशी ले लेती है और संवेदना की जगह केवल यांत्रिक कर्तव्यपरायणता बचती है, तो वैवाहिक संबंध स्त्री के लिए एक दमघोंटू बोझ बन जाते हैं। उनकी कहानियों में यौनिकता का अर्थ केवल शारीरिक क्रिया नहीं है, बल्कि वह आत्म-पहचान और अस्मिता से जुड़ा गहरा मुद्दा है। इन कहानियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि पितृसत्ता केवल बाहर से प्रहार नहीं करती, बल्कि वह स्त्री के भीतर एक ऐसा स्थायी विक्षोभ पैदा कर देती है जो उसे अपने ही स्व से विमुख कर देता है। अंततः, रीछ और सुखांत जैसी रचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री की मुक्ति तब तक संभव नहीं है जब तक कि संबंधों के भीतर व्याप्त इस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक हिंसा और यौन असमानता को जड़ से समाप्त नहीं किया जाता।

हिंसा, पितृसत्ता और प्रतिशोध की भाषा

दूधनाथ सिंह की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति उनकी वह भाषा है जो किसी भी प्रकार के रोमानी आवरण को स्वीकार नहीं करती। नई कहानी आंदोलन के दौर में जहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों की व्याख्या अक्सर कोमल और भावुक शब्दों में की जाती थी, वहाँ दूधनाथ सिंह ने साठोत्तरी कहानी को एक आक्रामक, सीधी और कटीली भाषा प्रदान की। उनके यहाँ भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि वह पितृसत्ता के विरुद्ध एक युद्ध का अस्त्र है। वे मध्यवर्गीय परिवार की उस मर्यादित भाषा के मुखौटे को उतार फेंकते हैं, जिसके पीछे शारीरिक और मानसिक हिंसा का नग्न नाच होता है। उनकी कहानियों में हिंसा केवल प्रहारों में नहीं, बल्कि उन वाक्यों और बिम्बों में भी विद्यमान है जो पाठक की संवेदना को झकझोर कर रख देते हैं।

दूधनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री का मौन स्वयं में प्रतिशोध की एक प्रखर भाषा है। जब माई का शोकगीत या रीछ जैसी कहानियों में नायिका चुप हो जाती है, तो वह चुप्पी लाचारी का संकेत नहीं, बल्कि उस व्यवस्था को अस्वीकार करने का तरीका है जो संवाद के नाम पर केवल आज्ञापालन चाहती है। यहाँ भाषा का तीखापन और दृश्यात्मकता उस न्यू वेव सिनेमा के करीब है, जहाँ दृश्य शब्दों से अधिक प्रभावशाली होते हैं। लेखक ने सपाट चेहरा जैसे बिम्बों का उपयोग कर स्त्री की यंत्रणा को जिस तरह विजुअलाइज किया है, वह पितृसत्तात्मक क्रूरता को बेनकाब करने की एक सोची-समझी कलात्मक युक्ति है।

उनकी भाषा में एक प्रकार का सबटेक्स्ट निरंतर सक्रिय रहता है, जहाँ जो नहीं कहा गया है, वह कहे गए से अधिक भयावह और सत्य होता है। दूधनाथ सिंह की गद्य-शैली में प्रतिशोध की यह भाषा स्त्री को केवल एक पीड़ित के रूप में नहीं छोड़ती, बल्कि उसे व्यवस्था के विरुद्ध एक गवाह के रूप में खड़ा करती है। उनकी कहानियों के संक्षिप्त और मारक संवाद पितृसत्तात्मक अहंकार पर सीधी चोट करते हैं। अंततः, यह भाषा उस सड़ांध को सार्वजनिक करने का काम करती है जिसे समाज पारिवारिक गोपनियता के नाम पर दबाए रखता है। दूधनाथ सिंह ने यह सिद्ध किया है कि जब तक भाषा विद्रोह नहीं करेगी, तब तक सामाजिक संरचनाओं में स्त्री के लिए कोई वास्तविक स्थान नहीं बनेगा।

निष्कर्ष

दूधनाथ सिंह की कहानियों का समग्र अनुशीलन यह स्पष्ट करता है कि उनके लिए नारी समस्या केवल सहानुभूति का विषय नहीं थी, बल्कि वह पितृसत्तात्मक सत्ता संरचनाओं के विरुद्ध एक प्रखर वैचारिक और कलात्मक विद्रोह था। यह सिद्ध होता है कि दूधनाथ सिंह ने स्त्री को देवी के आसन से उतारकर उस कठोर यथार्थ की जमीन पर खड़ा किया जहाँ वह अपनी देह, मन और अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्षरत है। उन्होंने परिवार जैसी संस्था को एक सुरक्षित इकाई के बजाय दमन के केंद्र के रूप में देखा और माई का शोकगीत जैसी कहानियों के माध्यम से यह उजागर किया कि कैसे एक स्त्री का पूरा जीवन सेवा और समर्पण की वेदी पर होम कर दिया जाता है। जब तक स्त्री को उसकी देह और अस्मिता पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होता, तब तक उसकी स्वाधीनता का दावा अधूरा है। रीछ और सुखांत जैसी कहानियों में व्याप्त मनोवैज्ञानिक भय और वैवाहिक संबंधों की यांत्रिकता यह दर्शाती है कि पितृसत्ता स्त्री के भीतर एक स्थायी विक्षोभ पैदा कर देती है, जो उसे अपने ही स्व से विमुख कर देता है। अंततः, उनकी कहानियों की आक्रामक भाषा और मौन का प्रभावी उपयोग पितृसत्तात्मक क्रूरता को बेनकाब करने का सबसे सशक्त कलात्मक औजार बनकर उभरता है। दूधनाथ सिंह का साहित्य स्त्री अस्मिता की तलाश का एक ऐसा अनिवार्य दस्तावेज है, जो आने वाले समय में भी पितृसत्तात्मक जड़ताओं के विरुद्ध एक सशक्त गूँज बना रहेगा।

संदर्भ सूची

प्राथमिक स्रोत:

सिंह, दूधनाथ। कथा समग्र (दो खंड)। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012।

सिंह, दूधनाथ। धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2002।

सिंह, दूधनाथ। माई का शोकगीत। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2005।

सिंह, दूधनाथ। सपाट चेहरे वाला आदमी। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1967।

द्वितीयक स्रोत:

‘दूधनाथ सिंह (लेखक परिचय)।’ राजकमल प्रकाशन, 2026, rajkamalprakashan.com/author/doodhnath-singh/

21वीं शताब्दी का दूसरा दशक हिंदी कहानियों में कामकाजी महिला का बदलता स्वरूप एवं चुनौतियाँ

भूपेन्द्र राजपूत

शोधार्थी, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

डॉ० अवधेश कुमार जैन

शोध निर्देशक, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

प्रस्तावना -

बदलता परिदृश्य एवं दिन प्रतिदिन नवीन नवाचार जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपनी छाँट बिखेर रहे हैं। इस शोध का उद्देश्य भी कामकाजी महिलाओं के जीवन में होने वाले परिवर्तनों को समझना है। यह कामकाजी महिला की तत्कालीन समय में यथास्थिति को समझने का प्रयत्न है साथ ही यह आज भी (आजादी के 75 वर्ष पूर्ण होने के बाद) उनके सम्मुख आने वाली चुनौतियों को उजागर करने हेतु केन्द्रित है।

यह शोध विभिन्न रचनाओं में जिसमें महिलाओं की समस्याओं, जीवन में कठिनाइयों एवं उनके जीवन में विकास रूपी रथ के साथ समाज में चली आ रही पूर्वधारणा पारंपरिक रीति-रिवाज पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है, साथ ही प्रौद्योगिकी के युग में अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाना व अपने अधिकारों के लिए तमाम मुश्किलों से जूझना भी इसमें दृष्टिगोचर होता है।

यह भी सोचने का नजरिया विकसित करता है कि कामकाजी महिला चाहे वह ग्रामीण हो, आदिवासी हो, शहरी हो, ऑफिस में कार्यरत हो, सांस्कृतिक हो, लोककथाओं में हो या किसी अन्य विमर्श में हो

डेटा स्रोतों से प्राप्त आकड़ों में हो, उनके जीवन को समझने में मदद होगा।

इसका मुख्य उद्देश्य कामकाजी महिलाओं के अधिकार, उनकी स्वतंत्रता, भेदभाव से मुक्ति व इस सुखद विषय पर नए अवसर के द्वार खोलकर साथ ही नवीन जांच के लिए प्रस्तुत करना है।

मुख्य शब्द: कामकाजी महिला, दोहरा व्यवहार, प्रगतिशील मानसिकता, नवीन चुनौतियाँ

कामकाजी महिला

इस पहलू पर पहले महिला तत्पश्चात् कामकाजी महिला को समझने का प्रयास है। महिला शब्द सुनते ही दिमाग में बहुतेरे शब्द जैसे सृजन, पोषण, परिवर्तन क्षमता के कारण वह अपने में सम्पूर्ण है। महिला केवल जन्म ही नहीं देती बल्कि वह सृष्टि के स्वरूप को भी निर्धारित करने वाली होती है। महिला अपने में समाहित भावों विचारों का अथाह सागर है, जानने समझने की असीम गहराई उसके पास है। इस सृष्टि को बिना महिला के बचा पाना भी संभव नहीं है।

किसी कवि के भावोद्गार इस प्रकार हैं - 'मानवता है मूर्तिमति तू भाग्यभाव भूषण भण्डार दया क्षमता ममता की आकार विश्व प्रेम की है आधार' कामकाजी शब्द अंग्रेजी के शब्द 'वर्किंग' का पर्याय है, वर्किंग शब्द मूल रूप से ऐसा काम है जो अपनी बुद्धि व शारीरिक क्षमता के अनुसार धन कमाने व अपने जीवन-यापन हेतु किया जाता है।

ऐसी महिलायें जो अपने जीवन-यापन या धन कमाने हेतु कार्य करती हैं वे सब "वर्किंग वुमन" या कामकाजी महिलाएँ हैं।

इस दृष्टि से देखे तो वे सभी महिलाएँ जो घर में रहकर या बाहर काम के बदले जीवन-यापन के साधन प्राप्त करती हैं, कामकाजी महिलाएँ हैं; लेकिन वर्किंग या कामकाजी के रूप में वे ही महिलाएँ पहचानी जाती हैं जो सरकारी या प्राइवेट संस्थानों में किसी पद पर रहते हुए नियमानुसार वेतन, भत्ते, अवकाश प्राप्त करती हैं।

इस प्रकार कामकाजी शब्द अपने अर्थ में व्यापकता ग्रहण हुए हैं। इसमें शिक्षण, प्रशिक्षण ग्रहण, घर में नौकरानी से विभिन्न पदों पर पदासीन महिलाएँ तथा घर से बाहर निकलकर विभिन्न प्रकार के काम करके प्रतिदिन धन कमाने वाली सभी महिला शामिल हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह जरूरी नहीं कि धनोपार्जन के लिए ही महिला घर से बाहर जाकर ही काम करे।

दोहरा व्यवहार -

भारतीय संस्कृति में घरेलू स्तर पर स्त्रियों के प्रति दोहरा व्यवहार तथा घर की पूरी जिम्मेदारी अकेले महिला के माथे मढ़ने वाले घरों-परिवारों से कामकाजी महिला को सहयोग चाहिए होता है ना कि इनसे मुक्ति।

क्योंकि उसे खुद को कार्यस्थल पर भी खुद को सिद्ध करना होता है जहाँ चुनौतियों का अम्बार लगा रहता है।

अतः उसे दोहरे व्यवहार को निभाने के लिए परिवार से भावनात्मक सहयोग चाहिए होता है जिससे उसे नौकरी छोड़ने का विकल्प ना चुनना पड़े।

इस प्रकार दो नावों में सवार होकर संघर्ष करना पुरुष के लिए भी नामुमकिन हो सकता है लेकिन आज की शक्तिशाली, दृढ़निश्चयी महिला प्रत्येक बाधा को लांघते पार करते हुए दोहरी भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक करती है।

प्रगतिशील मानसिकता -

किसी भी संस्कृति, समाज, देश या साहित्य की प्रगति एकाएक नहीं होती, प्रगति तभी होती जब आप भावों, विचारों में परिवर्तन लाते हैं परिणामस्वरूप आप गलत परम्पराओं रूढ़ियों की बेड़ियों को तोड़ने का प्रयत्न करते हैं। यह संपूर्ण प्रक्रिया आपको सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से आत्मनिर्भर बनाती है

प्रगतिशील कामकाजी महिलाओं सहित संपूर्ण महिला जगत के जीवन में बदलाव लाने में उनके अधिकारों नीति निर्देशक तत्वों, संवैधानिक प्रावधानों, महिला हितैषी कानूनों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

हालांकि शिक्षित या प्रगतिशील वर्ग आजादी के पूर्व व बाद के वर्षों में भी अपने अधिकारों के लिए सजग दिखा। नीलिमा चौहान लिखती है - 'रसोई से लगाव और मंदिर से भय औरतों की आजादी के सबसे खतरनाक दुश्मन है।' यहाँ यह दर्शाता है कि कैसे लगातार विचारों में परिवर्तन आ रहे हैं।

हालांकि समय-समय पर केन्द्र व राज्य सरकारों ने भी महिलाओं के हितों में विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वित किया है जैसे - बेटा बचाओ, बेटा पढ़ाओ, सुकन्या समृद्धि योजना, लाडली बहना योजना, महिला हेल्पलाइन आदि

इसके अलावा 2030 तक पृथ्वी को मानवता के लिए स्वर्ग बनाने हेतु सतत विकास लक्ष्यों में लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण करना भी सतत विकास लक्ष्यों में एक प्रमुख है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि आज की शिक्षित, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर व निडर महिला प्रगति के नये आयाम गढ़ रही है।

नवीन चुनौतियाँ -

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि परिवार को मजबूत आधार प्रदान करने की लालसा लिए कामकाजी महिलाओं को जगह-जगह अनेक कष्टों को पार करना पड़ता है। कुछ प्रमुख समस्याओं का वर्णन निम्न प्रकार है।

1. आज के नवीन दौर में भी कामकाजी महिला कार्यस्थल पर खुद को सहज और सुरक्षित महसूस नहीं करती। उसको ऑफिस में 'सेक्सुअल हारासमेंट' का डर रहता है जबकि कार्यस्थल पर यौन शोषण से सुरक्षा की गारन्टी देने वाले कानूनों की मौजूदगी में भी उनको सहज वातावरण न मिल पाना, कहीं ना कहीं व्यवस्था पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है।
2. कामकाजी महिलाओं के श्रम को पुरुषों की तुलना में कम आंका जाता है और कौशल में कमी न होने पर भी वेतन तुलनात्मक रूप से कम दिया जाता है। एक आंकड़े के अनुसार भारत में 37 फीसदी महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता है। Business Standard में प्रकाशित एक रिपोर्ट बताती है कि महिला श्रम शक्ति भागीदारी में 6 वर्षों में 23.2% से 41.7% तक की उल्लेखनीय वृद्धि देखी गयी है। हालांकि यह अभी भी 50% के वैश्विक औसत से पीछे है।
3. आज भी कामकाजी महिलाओं को महत्वपूर्ण पदों को ना दिया जाना एक गंभीर चुनौती बना हुआ है। 18वीं लोकसभा में ही देखे तो महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व केवल 13.6 फीसदी रहा है।
4. कामकाजी महिलाओं के मातृत्व अवकाश हो या कार्य करने के घंटों की सीमा पर लगातार विवाद बना रहता है। अलग-अलग संस्थान अपने हिसाब से इसका चयन करते हैं, कुछ संस्थान तो महिला के अविवाहित होने की शर्त भी रखते हैं।
5. कामकाजी महिलाओं को आज भी पर्याप्त सम्मान नहीं मिलता चाहे वह अपना कार्य कितनी ही रोचकता से करे क्योंकि यहाँ पहले से ही पुरुषवादी अहम आज के दौर (21 वीं सदी का इस दशक) में भी हावी है।

सुझाव -

1. महिला सुरक्षा पर बने कानूनों को अधिक सुदृढ़ व दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है जिससे कामकाजी महिलाओं में विश्वास की भावना जन्म ले।
2. समान कार्य के लिए समान वेतन (हालांकि कुछ क्षेत्रों में इसके होने की घोषणा हुई है) लेकिन सभी क्षेत्रों में यह लागू होने से पुरुष महिला के बीच के गैप को कम करेगा।
3. कामकाजी महिलाओं के कार्य करने के घंटों का निर्धारण भारत सरकार या अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार किया जाना चाहिए।
4. महिलाओं पर दोहरे दबाव को कम करने के लिए परिवार को अपनी भूमिका निभानी होगी।
5. महिलाओं को नौकरी के अवसर व सुविधा देने वाले कानूनों को सख्ती से लागू करना होगा।

निष्कर्ष -

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि (2010-20) का दशक प्रौद्योगिकी के समुन्नति का दौर रहा है। इस दौर के साहित्य में भी नवाचारों की गति तेज रही है, पिछले कुछ वर्षों से कामकाजी महिला की स्थिति में सुधार लगातार होते हुए देखा जा रहा है।

कामकाजी महिला नारी सशक्तिकरण की दिशा में कदम बढ़ा रही है, वह अपनी दक्षता व कुशलता का प्रयोग कर घर में रहते हुए विभिन्न कार्य जैसे नृत्य, गायन, फैशन डिजाइनिंग, शिक्षण, विभिन्न व्यंजनों को बनाना व बनाने की विधि बताना हो या फिर वता तिवउ भ्वउम के माध्यम से कार्य करना हो। साथ ही देश में गंभीर संकट आने पर डॉक्टर, नर्स बनकर जान बचाना या फिर सेना की कमांडर बनकर देश में ऑपरेशन 'सिंदूर' को अंजाम देना हो।

सभी क्षेत्रों में अपनी मेहनत और मजबूत दृढ़ संकल्प के साथ समूचे देश व समाज के लिए सूत्रधार बनी है।

यह कह सकते हैं कि महिलाओं की समृद्धि के बिना मानव विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि 'महिलायें अपनी नियति खुद तय करेंगी और वह पुरुषों की तुलना में कहीं बेहतर, महिलाओं के साथ मुसीबतें इसलिए आयी क्योंकि पुरुषों ने महिलाओं की नियति तय करने का बीड़ा उठाया।'

(<https://vivekavani.com/women-problems-swami-vivekananda/> -women will solve their own problem.)

अतः कहा जा सकता है कि चाहे परिवार हो, समाज या देश बिना महिला के सहयोग के बिना कोई भी जंग नहीं जीती जा सकती। यही स्थिति कामकाजी महिला की भी होती है, दोहरी भूमिका हो या कार्यस्थल की जिम्मेदारी दोनों में समन्वय हो, कोई भी मुकाम हासिल किया जा सकता है।

संदर्भ -

1. राव नागरत्ना, (2019), हिंदी साहित्य और नारी समाज, लोग भारतीय प्रकाशन, प्रयागराज।
2. चौहान नीलिमा, (2023), पतनशील पत्नियों के नोट्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. भट्टा अलका रानी एवं आरती (2024 मई) कामकाजी महिलाओं की सामाजिक समस्याएँ एवं उनका समाधान मदरहुड इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च - Innovation: Pg.50-54।
4. नागर, आशा (2021) भारत में कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ एवं समाधान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, इनोवेशन - द रिसर्च कन्सेप्ट, 6(6) एच1- एच6।
5. https://news.linkedin.com/content/dam/me/news/en-us/images/Opportunity_Index_Whitepaper_Final_1604.pdf
6. Business Standard "Closing the gender gap: India still has miles to go in growth story."

उसकी रोटी: नई कहानी की संवेदना और समानांतर सिनेमा की दृश्य-भाषा

हरिओम सिंह

शोधार्थी, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

डॉ० बृजमोहन द्विवेदी

शोध निर्देशक, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

सार

प्रस्तुत शोध पत्र मोहन राकेश की कहानी 'उसकी रोटी' और मणि कौल द्वारा निर्देशित फिल्म का तुलनात्मक अध्ययन है। यह शोध 'नई कहानी आंदोलन' के आंतरिक यथार्थ और समानांतर सिनेमा (न्यू वेव) की दृश्य-भाषा के अंतर्संबंधों की पड़ताल करता है। इसमें विश्लेषण किया गया है कि कैसे कहानी की 'अंतहीन प्रतीक्षा', 'ऊब' और 'मौन' को फिल्म में 'समय' और 'स्थान' के अभिनव प्रयोगों द्वारा रूपांतरित किया गया है। शोध यह स्थापित करता है कि कथानक के विखंडन और तकनीकी प्रयोगों के माध्यम से यह फिल्म साहित्य का मात्र अनुवाद न होकर एक स्वतंत्र और स्वायत्त कलाकृति बन जाती है, जो स्त्री-विमर्श और अस्तित्ववादी चेतना को नए आयाम प्रदान करती है।

कुंजी शब्द: उसकी रोटी, नई कहानी आंदोलन, न्यू वेव सिनेमा, सिनेमाई रूपांतरण, मणि कौल, मोहन राकेश, दृश्य-भाषा, अस्तित्ववाद, स्त्री-विमर्श, समानांतर सिनेमा।

प्रस्तावना

साहित्य और सिनेमा, अभिव्यक्ति के दो सशक्त माध्यम हैं। जहाँ साहित्य शब्दों के माध्यम से अमूर्त संवेदनाओं को आकार देता है, वहीं सिनेमा दृश्यों और ध्वनियों के माध्यम से उसी संवेदना को मूर्त रूप प्रदान करता है। 1960-70 दशक दो युगांतरकारी सांस्कृतिक आंदोलनों-हिंदी साहित्य के नई कहानी आंदोलन और भारतीय सिनेमा के समानांतर सिनेमा-के मिलन बिंदु को रेखांकित करता है।

साहित्यिक कृतियों का सिनेमाई रूपांतरण हमेशा से विमर्श का एक जटिल विषय रहा है। प्रायः यह देखा जाता है कि क्या फिल्म मूल रचना के साथ न्याय कर पाई है? लेकिन, उसकी रोटी के संदर्भ में यह प्रश्न अधिक गहरा हो जाता है। यह मात्र एक कहानी का फिल्म में बदलना नहीं था, बल्कि यह एक विधा (साहित्य) की आंतरिक चुप्पी को दूसरी विधा (सिनेमा) के समय और स्थान में रूपांतरित करने का एक साहसिक प्रयोग था। एक लिखित पाठ, दृश्य-बिंबों में परिवर्तित होकर नए अर्थों का सृजन करता है।

मोहन राकेश नई कहानी आंदोलन के उस त्रयी (मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर) का हिस्सा थे, जिन्होंने हिंदी कहानी को परंपरागत ढांचों से मुक्त कर उसे आधुनिक भावबोध से जोड़ा। उनकी कहानी उसकी रोटी (1969) ग्रामीण पृष्ठभूमि में होने के बावजूद, नई कहानी के मुख्य तत्वों-अकेलेपन, ऊब, प्रतीक्षा और मानवीय संबंधों की यात्रिकता-को गहराई से उभारती है। कहानी की नायिका बालो की अंतहीन प्रतीक्षा और निष्क्रियता, उस दौर की अस्तित्ववादी चेतना का प्रतीक है।

दूसरी ओर, मणि कौल भारतीय समानांतर सिनेमा के पुरोधा माने जाते हैं। रित्विक घटक के शिष्य होने के नाते, उन्होंने सिनेमा को केवल मनोरंजन या कहानी कहने का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे एक शुद्ध कला रूप के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। 1969 में बनी उनकी फिल्म उसकी रोटी ने भारतीय सिनेमा में प्रचलित नाटकीयता और तेज गति को नकारते हुए ठहराव, मौन और गैर-कथात्मक शैली को अपनाया।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

किसी भी कृति का पूर्ण मूल्यांकन उसके समय और समाज के संदर्भ के बिना अधूरा है। 1950 और 60 का दशक भारतीय कला और साहित्य के लिए संक्रमण का काल था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का मोहभंग, शहरीकरण और बदलते सामाजिक मूल्यों ने साहित्य और सिनेमा दोनों में एक नई चेतना को जन्म दिया।

नई कहानी आंदोलन: यथार्थ का नया धरातल

नई कहानी हिंदी साहित्य का वह आंदोलन था जिसने प्रेमचंद युगीन आदर्शवाद और प्रगतिवाद के सामाजिक यथार्थ से हटकर व्यक्ति के आंतरिक यथार्थ पर जोर दिया।

1950 के दशक के उत्तरार्ध में मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया। इसे भोगे हुए यथार्थ की संज्ञा दी गई। नई कहानी का मुख्य स्वर आधुनिकता बोध था। इसमें अकेलेपन, अजनबीपन, ऊब, संत्रास और मानवीय रिश्तों में आई दरारों को प्रमुखता से उकेरा गया। मोहन राकेश ने नई कहानी के अंतर्गत स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता और संचारहीनता को केंद्र में रखा। यद्यपि उसकी रोटी एक ग्रामीण परिवेश की कहानी है, लेकिन इसकी संवेदना पूरी तरह आधुनिक है। इसमें नायिका बालो की प्रतीक्षा किसी रोमैंटिक प्रेम का प्रतीक नहीं, बल्कि एक यांत्रिक दिनचर्या और अस्तित्व के खालीपन का द्योतक है। यह कहानी बाहरी घटनाओं के बजाय पात्रों की मनःस्थिति का चित्रण करती है, जो नई कहानी की मुख्य विशेषता थी।

समानांतर सिनेमा : दृश्य-भाषा की क्रांति

जिस समय हिंदी साहित्य में नई कहानी स्थापित हो रही थी, लगभग उसी समय (1960 के दशक के अंत में) भारतीय सिनेमा में समानांतर सिनेमा का उदय हुआ। यह मुख्यधारा के व्यावसायिक सिनेमा, जिसमें नाच-गाना और मेलोड्रामा प्रधान था, के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी।

सिनेमाई सौंदर्यशास्त्र में बदलाव:

सत्यजीत रे और रित्विक घटक से प्रेरणा लेते हुए, एफ.टी.आई.आई. पुणे से निकले फिल्मकारों-जैसे मणि कौल, कुमार शहानी और अदूर गोपालकृष्णन-ने सिनेमा की भाषा को बदलने का बीड़ा उठाया। समानांतर सिनेमा ने कथानक-प्रधान सिनेमा को नकारा। इसमें स्टार सिस्टम का अभाव, वास्तविक लोकेशन्स पर शूटिंग, प्राकृतिक प्रकाश का उपयोग और मौन का अधिक प्रयोग किया गया।

मणि कौल और प्रयोगात्मकता

मणि कौल ने उसकी रोटी (1969) के माध्यम से भारतीय सिनेमा में नैरेटिव को तोड़ने का साहस किया। उन्होंने कहानी सुनाने के बजाय, समय के बीतने को कैमरे में कैद करने की कोशिश की। यह फिल्म भारतीय समानांतर सिनेमा का प्रस्थान बिंदु मानी जाती है।

साहित्य और सिनेमा का वैचारिक संगम

नई कहानी और समानांतर सिनेमा का मिलन संयोग मात्र नहीं था। दोनों आंदोलनों के मूल में एक ही उद्देश्य था-परंपरागत ढांचे का विरोध।

जहाँ मोहन राकेश शब्दों के माध्यम से व्यक्ति की आंतरिक चुप्पी को पकड़ रहे थे, वहीं मणि कौल उसी चुप्पी को दृश्य और ध्वनि के माध्यम से व्यक्त करना चाहते थे। 1960-70 के दशक में इन दोनों विधाओं के बीच गहरा लेन-देन हुआ। सरकार द्वारा फिल्म फाइनंस कॉरपोरेशन की स्थापना ने निर्देशकों को साहित्यिक कृतियों पर प्रयोगधर्मी फिल्में बनाने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता दी, जिसके फलस्वरूप उसकी रोटी जैसी कलाकृतियां संभव हो सकीं।

उसकी रोटी (कहानी):

मोहन राकेश की कहानी उसकी रोटी नई कहानी आंदोलन की एक प्रतिनिधि रचना है। यह कहानी प्रेमचंद युगीन घटना-प्रधान कहानियों से अलग स्थिति-प्रधान कहानी है। इसमें लेखक ने बाहरी घटनाओं के बजाय पात्रों की मनःस्थिति और उनके परिवेश के सन्नाटे को पकड़ने का प्रयास किया है।

कथानक की संरचना: घटनाविहीनता का शिल्प

परंपरागत कहानियों में एक स्पष्ट शुरुआत, मध्य और अंत होता है, लेकिन उसकी रोटी इस ढांचे को तोड़ती है।

- साधारण कथानक: कहानी का बाहरी ढांचा अत्यंत साधारण है-एक पत्नी (बालो) अपने बस ड्राइवर पति (सुच्चा सिंह) के लिए रोटी लेकर बस स्टैंड जाती है।
- चक्रीयता : बालो की दिनचर्या का एक हिस्सा है जो रोज दोहराया जाता है। मोहन राकेश ने इस दोहराव का प्रयोग जीवन की एकरसता और ऊब को दर्शाने के लिए किया है। यहाँ क्या होगा? का कौतूहल नहीं, बल्कि जो हो रहा है, वह कितना कष्टप्रद है का अहसास प्रमुख है।

चरित्र चित्रण: मनोविज्ञान और पितृसत्ता

कहानी के पात्र किसी वीर नायक-नायिका के रूप में नहीं, बल्कि साधारण और कुंठित व्यक्तियों के रूप में सामने आते हैं।

बालो : बालो नई कहानी की उन स्त्री पात्रों में से है जो विद्रोह नहीं करती, बल्कि घुटती रहती है। वह पति के दुर्व्यवहार, उपेक्षा और हिंसा को अपनी नियति मानकर स्वीकार करती है। उसका पूरा अस्तित्व रोटी तक सिमट गया है। उसकी प्रतीक्षा में रोमांस नहीं, बल्कि एक अनिवार्य डर और कर्तव्य है।

सुच्चा सिंह (संवेदनहीन पौरुष): सुच्चा सिंह पितृसत्तात्मक सत्ता और क्रूरता का प्रतीक है। उसके लिए बालो केवल एक वस्तु है जो उसकी भूख मिटाती है। उसका चरित्र ग्रामीण परिवेश के उस कठोर यथार्थ को दर्शाता है।

नई कहानी के प्रमुख तत्व और संवेदना

- अंतहीन प्रतीक्षा: कहानी का केंद्रीय भाव प्रतीक्षा है। बालो हर मंगलवार को बस स्टैंड पर घंटों इंतजार करती है। यह प्रतीक्षा केवल समय का बीतना नहीं, बल्कि उसके जीवन के व्यर्थ जाने का रूपक है।
- संवादहीनता: पति-पत्नी के बीच सार्थक संवाद का पूर्ण अभाव है। सुच्चा सिंह या तो चुप रहता है या गालियां देता है। बालो की बातें अनकही रह जाती हैं। यह कम्युनिकेशन गैप आधुनिकता की बहुत बड़ी समस्या है जिसे मोहन राकेश ने ग्रामीण पृष्ठभूमि में भी खोज निकाला है।

उसकी रोटी (फिल्म):

मणि कौल द्वारा निर्देशित फिल्म उसकी रोटी (1969) केवल एक साहित्यिक कृति का दृश्य रूपांतरण नहीं है, बल्कि यह सिनेमा की प्रचलित भाषा के विरुद्ध एक विद्रोह है। मणि कौल ने मोहन राकेश की कहानी के कथानक को गौण करते हुए, उसके अनुभव को प्रधानता दी।

मणि कौल का सिनेमाई दर्शन: कथानक का विखंडन

मणि कौल का मानना था कि सिनेमा को साहित्य की बैसाखियों पर नहीं चलना चाहिए। उन्होंने रॉबर्ट ब्रेसन और रित्विक घटक के सिद्धांतों से प्रभावित होकर शुद्ध सिनेमा बनाने का प्रयास किया।

- नॉन-नैरेटिव शैली: फिल्म में कहानी सीधी रेखा में नहीं चलती। मणि कौल ने कहानी के नाटकीय तत्वों को हटा दिया और घटनाओं के बीच के अंतराल पर ध्यान केंद्रित किया।
- उद्देश्य: उनका उद्देश्य दर्शक को कहानी सुनाना नहीं, बल्कि उसे बालो की प्रतीक्षा और सन्नाटे को महसूस कराना था।

दृश्य-भाषा: कैमरा और लेंस का प्रयोग

फिल्म के सिनेमेटोग्राफर के.के. महाजन और मणि कौल ने एक विशिष्ट दृश्य शैली विकसित की, जो उस समय के भारतीय सिनेमा के लिए बिल्कुल नई थी।

- लेंस का चयन: फिल्म की दृश्य भाषा को गढ़ने में कैमरा लेंसों का विशेष योगदान रहा है। मणि कौल ने पात्रों को उनके परिवेश में अकेला और छोटा दिखाने के लिए वाइड एंगल लेंस का प्रयोग किया, वहीं दूसरी ओर चेहरों की चपटाहट और दूरी के अहसास को मिटाने के लिए टेलीफोटो लेंस का सहारा लिया गया।
- स्थिर कैमरा : फिल्म में कैमरा बहुत कम हिलता है। पात्र फ्रेम के अंदर आते हैं और बाहर चले जाते हैं, लेकिन कैमरा स्थिर रहता है। यह स्थिरता बालो के जीवन के ठहराव को दर्शाती है।
- अमृता शेरगिल का प्रभाव: फिल्म की लाइटिंग और कंपोजिशन पर प्रसिद्ध चित्रकार अमृता शेरगिल की पेंटिंग्स का गहरा प्रभाव है। दृश्यों में एक तरह की उदासी और चित्रकला जैसा सौंदर्य है।

समय और स्थान का उपचार:

सिनेमा में समय को कैसे दिखाया जाए, यह इस फिल्म का मुख्य प्रयोग है।

- समय का विस्तार: कहानी में जो प्रतीक्षा एक अमूर्त भाव है, फिल्म में उसे लंबे शॉट्स के जरिए दिखाया गया है। एक दृश्य जिसमें बालो बस का इंतजार कर रही है, स्क्रीन पर इतनी देर तक चलता है कि दर्शक भी उस ऊब और थकान को महसूस करने लगता है। इसे कालिक अवधि का सिद्धांत कहा गया।
- स्थान: बस स्टैंड, टूटी दीवारें, और सुनसान सड़क-मणि कौल ने स्थान का प्रयोग पात्रों की मानसिक स्थिति को प्रतिबिंबित करने के लिए किया है।

अभिनय शैली: मॉडल बनाम अभिनेता

मणि कौल ने ब्रेसन की तरह अपने अभिनेताओं (गुरदीप सिंह और गरिमा) को अभिनय करने से रोका।

- भावशून्य चेहरे : अभिनेताओं को निर्देश था कि वे चेहरों पर कोई भाव न लाएं और संवादों को सपाट तरीके से बोलें।
- कारण: निर्देशक का मानना था कि यदि अभिनेता रोकर दुख दिखा देगा, तो दर्शक के लिए महसूस करने को कुछ नहीं बचेगा। भावशून्य चेहरा दर्शक को स्वतंत्रता देता है कि वह उस चरित्र में अपनी संवेदना भरे।

ध्वनि संयोजन

फिल्म में ध्वनि का प्रयोग यथार्थवादी न होकर प्रतीकात्मक है।

- अतुल्यकालिक ध्वनि : कई बार स्क्रीन पर जो दिखता है और जो सुनाई देता है, उसमें अंतर होता है।
- बस की आवाज: बस का इंजन, ब्रेक और हॉर्न की आवाजें एक चरित्र की तरह आती हैं, जो बालो के जीवन में भय और उम्मीद दोनों का प्रतीक हैं।

साहित्य से सिनेमा तक: रूपांतरण की चुनौतियाँ और सौंदर्यशास्त्र

साहित्यिक कृति का सिनेमाई रूपांतरण महज अनुवाद नहीं, बल्कि एक माध्यम से दूसरे माध्यम में परकाया प्रवेश है। उसकी रोटी के संदर्भ में यह प्रक्रिया और भी जटिल थी क्योंकि यहाँ निर्देशक (मणि कौल) का उद्देश्य लेखक (मोहन राकेश) की कहानी को ज्यों-का-त्यों परदे पर उतारना नहीं था, बल्कि कहानी की आत्मा को एक नई काया देना था। इस रूपांतरण में कई चुनौतियाँ और सौंदर्यशास्त्रीय बदलाव देखने को मिलते हैं:

शब्द बनाम दृश्य

साहित्य में लेखक विशेषणों और वर्णन का सहारा लेकर वातावरण बनाता है, जबकि सिनेमा में निर्देशक को वही काम दृश्य-बिंबों से करना होता है।

- साहित्य: मोहन राकेश की कहानी में बालो की मनःस्थिति का वर्णन शब्दों के माध्यम से किया गया है, जैसे उसकी घबराहट, उसका डर और उसकी हताशा।
- सिनेमा: मणि कौल ने इन शब्दों को दृश्यों में बदला। उन्होंने बालो की घबराहट को संवादों से नहीं, बल्कि कैमरा की दूरी और फ्रेम रचना से दिखाया। जैसे- बालो का बार-बार दीवार के पास खड़े होना या खिड़की से बाहर देखना। यहाँ शब्द पीछे छूट जाते हैं और दृश्य मुख्य भाषा बन जाते हैं।

आंतरिक लय बनाम बाह्य समय

कहानी पढ़ते समय पाठक अपनी गति से पढ़ता है, लेकिन सिनेमा में दर्शक निर्देशक के समय से बंधा होता है। कहानी में प्रतीक्षा एक मानसिक स्थिति है। पाठक समझता है कि बालो इंतजार कर रही है। मणि कौल ने इस मानसिक प्रतीक्षा को भौतिक समय में बदल दिया। उन्होंने शॉट्स को इतना लंबा खींचा कि दर्शक को भी वह समय भारी लगने लगे, यह रूपांतरण की सबसे बड़ी चुनौती थी।

यथार्थवाद का द्वंद्व

नई कहानी और समानांतर सिनेमा दोनों यथार्थवादी थे, लेकिन उनके यथार्थ के मायने अलग थे। मोहन राकेश की कहानी पात्रों के मनोविज्ञान और भावनाओं के यथार्थ पर टिकी थी। यह एक मानवीय करुणा से भरी रचना थी। मणि कौल का यथार्थ भावुकता से परे था। उन्होंने भावनाओं को ड्रामा बनाने के बजाय उन्हें वस्तुगत रूप में पेश किया। इसी कारण, फिल्म कहानी की तुलना में अधिक टंडी और निर्लिप्त नजर आती है।

संवादों का विस्थापन

रूपांतरण की प्रक्रिया में संवादों की भूमिका पूरी तरह बदल गई। कहानी में संवाद पात्रों के बीच सूचना देने या भावना व्यक्त करने का माध्यम थे। फिल्म में संवादों को जानबूझकर अस्वाभाविक तरीके से बुलवाया गया। संवादों को वाक्यों के बीच में तोड़ दिया गया या सपाट स्वर में बोला गया। यह ब्रेख्तिनियन सिद्धांत का प्रभाव था, ताकि दर्शक कहानी में बह न जाए, बल्कि सचेत होकर देखे।

लेखक और निर्देशक का मतभेद

इस रूपांतरण से स्वयं लेखक मोहन राकेश संतुष्ट नहीं थे। उनका मानना था कि मणि कौल ने कहानी की संवेदना और करुणा को तकनीक के भारीपन में दबा दिया है। यह असहमति यह सिद्ध करती है कि साहित्य और सिनेमा दो अलग-अलग ध्रुव हैं, और एक सफल फिल्म जरूरी नहीं कि मूल लेखक की कल्पना के अनुरूप ही हो।

स्त्री-विमर्श और अस्तित्ववाद

उसकी रोटी का पाठ और उसका फिल्म रूपांतरण, दोनों ही भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति और मानवीय अस्तित्व के संकट का गहरा अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। जहाँ नई कहानी ने स्त्री के पारंपरिक रूप को प्रश्नगत किया, वहीं समानांतर सिनेमा ने उसे दृश्य पटल पर एक नई पहचान दी।

बालो: पारंपरिक नायिका या अस्तित्ववादी चरित्र?

बालो का चरित्र सिसिफस के मिथक की याद दिलाता है। जैसे सिसिफस को पहाड़ पर पत्थर चढ़ाने का दंड मिला था और पत्थर लुढ़क कर वापस आ जाता था, वैसे ही बालो की दिनचर्या भी एक निरर्थक और अंतहीन चक्र है।

यांत्रिकता : फिल्म में मणि कौल ने बालो के कार्यों (आटा गूथना, रोटियाँ बनाना, चलना) को इतना धीमा और यांत्रिक दिखाया है कि वह एक जीवित मनुष्य कम और मशीन ज्यादा लगती है।

शीर्षक की प्रासंगिकता

कहानी का शीर्षक ही घोर पितृसत्तात्मक ढांचे पर व्यंग्य करता है। उसकी रोटी-यहाँ उसकी का अर्थ पति (सुच्चा सिंह) है। स्त्री की पूरी पहचान मिटाकर उसे केवल रोटी उपलब्ध कराने वाले साधन में बदल दिया गया है। यह स्त्री का वस्तुकरण है। सुच्चा सिंह के लिए बालो, पत्नी कम और एक सुविधा ज्यादा है। जब तक रोटी समय पर मिलती है, बालो का अस्तित्व मान्य है; जिस दिन चूक होती है, उसका अस्तित्व संकट में आ जाता है। यह सामंती और पुरुष-प्रधान समाज की क्रूर वास्तविकता है।

दमन और निष्क्रियता का सौंदर्यशास्त्र

फिल्म में बालो की चुप्पी को स्त्री-विमर्श के नजरिए से देखना आवश्यक है। क्या बालो की चुप्पी उसकी कमजोरी है? कुछ आलोचकों का मानना है कि नई कहानी ने स्त्री को पीड़ित के रूप में ग्लैमराइज किया। फिल्म में बालो का चेहरा भावनाहीन है। यह भावशून्य चेहरा उस दमन का प्रतीक है जिसने उसे भीतर से खोखला कर दिया है। वह चिल्लाती नहीं, रोती नहीं, बस सहन करती है। यह मूक हिंसा का सबसे भयावह रूप है। फिल्म में बालो को अक्सर खिड़कियों, दरवाजों या तंग जगहों में कैद दिखाया गया है। सिनेमेटोग्राफी का यह इस्तेमाल दृश्य रूप से यह बताता है कि पितृसत्तात्मक ढांचे में स्त्री के लिए जगह कितनी सीमित है।

निष्कर्ष

उसकी रोटी का अनुभव यह सिद्ध करता है कि साहित्य और सिनेमा, यद्यपि दो भिन्न माध्यम हैं, किंतु उनकी संवेदनाओं में एक गहरा सामंजस्य हो सकता है। नई कहानी ने हिंदी साहित्य को जिस आंतरिक यथार्थ और सूक्ष्मता से परिचित कराया, समानांतर सिनेमा ने उसे ही दृश्य भाषा का आधार बनाया। दोनों ही आंदोलनों का मूल स्वर परंपरा का निषेध और यथार्थ की नई खोज था।

मणि कौल की फिल्म यह स्थापित करती है कि एक सफल सिनेमाई रूपांतरण वह नहीं है जो साहित्य की नकल करे, बल्कि वह है जो साहित्य को नया आयाम दे। फिल्म ने कहानी के कथानक को गौण करते हुए, उसके वातावरण और समय को प्रधानता दी। मणि कौल का यह प्रयोग दर्शकों को चौंकाता तो है, पर कहीं-कहीं यह धैर्य की परीक्षा भी लेता है। यह फिल्म साहित्य का दृश्य अनुवाद नहीं, बल्कि एक स्वायत्त कलाकृति है। मोहन राकेश की असंतुष्टि और आलोचकों की मिश्रित प्रतिक्रिया दर्शाती है कि यह प्रयोग अपने समय से बहुत आगे का था। कहानी जहाँ मानवीय करुणा से ओत-प्रोत है, वहीं फिल्म शिल्पगत कठोरता पर टिकी है। फिल्म ने भावनाओं को नाटकीय बनाने से इंकार कर दिया, जो भारतीय दर्शकों के लिए एक झटका था। किंतु, इसी निर्मम यथार्थवाद ने इसे भारतीय सिनेमा के इतिहास में अद्वितीय बना दिया। अंततः, उसकी रोटी (कहानी और फिल्म दोनों) अपने-अपने क्षेत्रों में मील का पत्थर हैं।

संदर्भ सूची

1. राकेश, मोहन, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, राजपाल एंड सन्स, 1984 ।
2. सिंह, नामवर। कहानी: नई कहानी। लोकभारती प्रकाशन, 1965।
3. यादव, राजेंद्र, संपादक। एक दुनिया समानांतर। राधाकृष्ण प्रकाशन, 1980।

फिल्म -

उसकी रोटी। निर्देशन मणि कौल, अभिनय गरिमा और गुरदीप सिंह, फिल्म फाइनैस कॉरपोरेशन, 1969।

वेबसाइटें -

<https://www.thehindu.com/society/mani-kauls-spore-and-beautiful-world/article35091848.ece>

<https://www.theguardian.com/film/2011/jul/14/mani-kaul-obituary>

<https://oorvazifilmeducation.wordpress.com/2010/05/27/interview-with-navroze-contractor/>

विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य में आधुनिक मानव और प्रकृति का सह-अस्तित्व

मेधा कुमारी हरिजन

शोधार्थी, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

डॉ० बृजमोहन द्विवेदी

शोध निर्देशक, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

सारांश

विनोद कुमार शुक्ल समकालीन हिंदी साहित्य के उन विशिष्ट रचनाकारों में हैं, जिनके साहित्य में मानव और प्रकृति का संबंध अत्यंत सहज, आत्मीय और अविच्छिन्न रूप में अभिव्यक्त हुआ है। उनकी कहानियों, उपन्यासों तथा कविताओं में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं रहती, बल्कि एक सजीव पात्र के रूप में उपस्थित होती है। शुक्ल का साहित्य आधुनिक मानव की संवेदनाओं, उसकी जिजीविषा तथा साधारण जीवन की असाधारण गरिमा को प्रकृति के साथ एकाकार कर प्रस्तुत करता है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि जहाँ आधुनिक सभ्यता में मानव प्रकृति से कटता जा रहा है, वहीं विनोद कुमार शुक्ल का साहित्य मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व तथा सामंजस्य का सशक्त प्रतिपादन करता है। यह अध्ययन पाठ-विश्लेषण एवं वर्णनात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है।

कुंजी शब्द: विनोद कुमार शुक्ल, मानवप्रकृति संबंध, आधुनिक हिंदी साहित्य, कथा साहित्य, मानवीय संवेदना, प्रकृति

प्रस्तावना

जब हम मानव तथा प्रकृति के संबंध की बात करते हैं, तो हमारे लिए यह समझना अति आवश्यक हो जाता है कि, मानव एवं प्रकृति के बीच एक ऐसा नैसर्गिक संबंध है जिसे शब्दों में पिरोना आसान नहीं है; फिर भी इसे साधारण शब्दों में कहा जाए तो, 'प्रकृति ही पृथ्वी पर जीवन का आधार है।' जिसे कबीर ने अपने एक दोहे के माध्यम से समझाते हुए कहा है कि -

"सबकी उत्पत्ति धरती, सब जीवन प्रतिपाल।

धरती न जाने आप गुण, ऐसा गुरु विचार।"

अर्थात्, धरती जो प्राणियों को जन्म देती है, उनका पोषण करती है, वह यह कभी नहीं सोचती कि यह उसका महान गुण है, अपितु प्रकृति सदैव ही प्राणियों के प्रति विनम्र रहती है और जब हम आधुनिक हिंदी साहित्य के समादृत हस्ताक्षर विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य का अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि उनके साहित्य में मानव व प्रकृति अविच्छिन्न रूप से एकाकार है।

जैसे, इनके कहानी संग्रह महाविद्यालय के छठे नंबर की कहानी 'पेड़ पर कमरा' में नायक का यह महसूस करना कि उसका कमरा पीपल के पेड़ पर बना है, न कि उसके कमरे के बगल में वह पेड़ है; और उसी कमरे की सीढ़ियां चढ़ते हुए यह महसूस करना कि वह सीढ़ियों की बजाय पीपल के पेड़ पर चढ़ रहा है। साथ ही नायक का अपने किराये के कमरे में रह रही गिलहरियों की चिंता वो मकान मालिक से कमरे की खिड़की में सीखचे और पलड़े लगवाने की बात कहता है ताकि चील आदि से गिलहरियों की रक्षा हो जाए। ये सभी उदाहरण उस बात के साक्ष्य हैं कि, शुक्लजी का प्रकृति के साथ साहित्य ही नहीं अपितु उनके निजी जीवन में भी आत्मीय संबंध था और वे सदैव प्रकृति के समीप रहे हैं।

वस्तुतः इस शोध को लिखने का एकमात्र उद्देश्य यह है कि जहाँ एक ओर वर्तमान समय में लोगों के पास सोशल मीडिया मोबाइल के बाहर प्रकृति के प्रति उदासीनता का भाव है। वहीं दूसरी ओर शुक्लजी अपने साहित्य में मानव प्रकृति के बीच के इस अटूट व निश्चल संबंध का उल्लेख करते हैं; जिसे एक आधुनिक मानव भूल गया है। इन दोनों पक्षों का अध्ययन करके पाठक को प्रकृति व मानव के सह अस्तित्व के महत्त्व को उजागर करना है।

शोध प्रविधि

यह शोध पत्र पाठ विश्लेषण विधि एवम वर्णनात्मक पद्धति का पालन करते हुए लिखा गया है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास, कविता तथा कहानियों का अध्ययन किया गया तथा द्वितीय स्रोतों में आलोचना ग्रन्थ शोध लेख आदि सम्मिलित है।

विश्लेषण एवं विवेचन

आधुनिक हिंदी साहित्य में विनोद कुमार शुक्ल एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने साधारण जीवन को असाधारण गरिमा प्रदान की है, तथा साथ ही वे अपने साहित्य में प्रकृति को केवल बाहरी वातावरण यह सौंदर्य के उपकरण के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य की सहभागी और सहचर के रूप में अपनाए अपनाया है। शुक्लजी कहते हैं, “इसी साधारणता में मानव और प्रकृति के बीच का वह आत्मीय संबंध विकसित होता है जो साहित्य की केंद्रीय चेतना की रौशनी देता है।”

इनके साहित्य में मानव कोई महानायक यह क्रांतिकारी के रूप में नहीं बल्कि एक सामान्य संवेदनशील और जीजीविषा से भरे प्राणी के रूप में उपस्थित थे। वहीं इन्होंने प्रकृति को न तो रोमांटिक अतिरंजनाओं से युक्त और न ही रहस्यमय रखा है, बल्कि प्रकृति जीवन के साथ चलती हुई जीवन को सहारा देती हुई प्रमुख पात्र के रूप में उपस्थित है। अतः शुक्ल जी के साहित्य में मानव तथा प्रकृति के बीच के संबंध को अग्रलिखित बिंदुओं की सहायता से समझा जा सकता है—

मानव व प्रकृति का आत्मीय संबंध – जहाँ आधुनिक साहित्य में मानव और प्रकृति के बीच संघर्ष या दूरी का भाव दिखाई देता है, वहीं विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य में यह संबंध संघर्षात्मक नहीं बल्कि सहजता का है। इनके साहित्य मानव प्रकृति से अलग या ऊपर खड़ा नहीं है, बल्कि उसी का एक अंग है। मानव प्रकृति का उपयोग करता नहीं, बल्कि उसका सहभागी हैं। शुक्ल जी के साहित्य के पात्र प्रकृति को जीतने या नियंत्रित करने की आशंका नहीं रखते, बल्कि वे प्रकृति के साथ रहते हैं, उसे स्वीकार करते हैं और उससे संवाद करते हैं। प्रकृति पात्रों के जीवन में सहज रूप से घुली मिली रहती है। घर, आंगन, पेड़, मिट्टी, हवा, धूप, बारिश आदि सब कुछ मानवीय अनुभव का हिस्सा बन जाता है; जैसे वह अपने उपन्यास ‘दीवार में एक खिड़की रहती थी’ में कहते हैं— “दोनों जागे थे और सब कुछ नींद से झूम रहा था तालाब नींद में तालाब था आकाश नींद का आकाश था।”

विनोद कुमार शुक्ल अपनी रचनाओं में प्रकृति के विभिन्न तत्वों का उल्लेख इस प्रकार करते हैं जैसे खर, पेड़, हवा, तालाब, घर, कमरा, बारिश इत्यादि सभी मनुष्य की तरह संवेदनशील हो उठते हैं। प्रकृति पात्रों के सुख-दुख की साक्षी बन जाती है। इसी प्रकार विनोद कुमार शुक्ल अपने उपन्यास ‘दीवार में एक खिड़की रहती थी’ में प्रतीकात्मकता के साथ लिखते हैं “रात भर अंधेरे का इतना साफ था कि दिन का उजाला बहुत उजाला लग रहा था। लगा कि एक सूर्य से इतना उजाला नहीं हो सकता दो सूर्य होंगे”

उपर्युक्त पंक्तियों में लेखक उपन्यास के पात्र रघुवर प्रसाद तथा उसकी पत्नी सोनसी के आत्मीय संबंध को प्रकृति के तत्वों के साथ एकाकार कर प्रतीक रूप में लिखते हैं जो पात्रों तथा प्रकृति के बीच भेद समाप्त कर देती है।

- प्रकृति की गोद में प्रेम का निश्चल रूपख शुक्ल जी के यहाँ प्रेम का निचोड़ दिखावे में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे अनुभवों में है। प्रकृति मानो प्रेम को संरक्षण देती है। उसे सुरक्षित और निर्मल बनाए रखती है। इनके उपन्यास ‘दीवार में एक खिड़की रहती थी’ के मुख्य पात्र रघुवर प्रसाद तथा उनकी पत्नी सोनसी प्रकृति के साथ रहते हुए प्रेम को जीते हैं। जहाँ कोई बनावट नहीं है, केवल अपनापन है। हवा की हल्की सरसराहट, धूप की कोमलता और मौन की गहरायी प्रेम को और अधिक मानवीय बना देती है। शुक्लजी के रचनात्मक संसार से प्रेम किसी ऊँचे घोषणात्मक भाव के रूप में नहीं, बल्कि अत्यंत सहज और आत्मीय अनुभूति के रूप में प्रकट होता है। यह रघुवर प्रसाद व सोनसी का प्रेम अक्सर प्रकृति की गोद में पलता बढ़ता है, जैसे पेड़ों की छाया, मिट्टी की सौंधी गंद, आकाश की खुली नीलीमा और नदियों के शांत धारा के बीच इनका प्रेम प्रगाढ़ व परिपक्व होता है। शुक्ल जी के साहित्य में प्रेम न तो आडंबरपूर्ण है और न ही उग्र, बल्कि साधारण जीवन में रचा बसा गहरी संवेदना से भरा हुआ है।
- अस्तित्व तथा प्रकृति का अंतर्संबंध – जैसा कि हम पाते हैं कि, शुक्ल जी का साहित्य सूक्ष्म अनुभूतियों तथा साधारण जीवन की असाधारण अभिव्यक्ति का उदाहरण है। उनका रचना संसार न तो वैचारिक घोषणाओं से भरा हुआ है न ही तीव्र नाटकीयता से, बल्कि वह चुपचाप मनुष्य के अस्तित्व, उसकी असुरक्षाओं और प्रकृति के साथ आत्मीय संबंधों को उद्घाटित करता है। शुक्लजी की कहानी संग्रह ‘महविद्यालय’ की कहानी ‘रुपये’ तथा ‘बोझ’ में इन अस्तित्ववादी विचारधाराओं को देखा जा सकता है कि, कैसे नायक रुपयों की तंगी एवं अपने जीवन के अस्तित्व को लेकर संघर्षरत है।
- शुक्ल जी के साहित्य में आदिवासी जीवन – अपनी मातृभूमि राजनांदगांव और रायपुर से गहरे रूप से जुड़े होने के कारण इनके साहित्य में अमूमन रूप से छत्तीसगढ़ी समाज संस्कृति एवं आदिवासी जीवन सहजता से देखने को मिलता है। मुख्य रूप से आदिवासियों के प्रति इनकी गहरी संवेदना इस बात को व्यक्त करती है कि, यह अभी भी अपनी जड़ों को भूले नहीं विनोद जी अपने कविता संग्रह ‘एक पूर्व में बहुत से पूर्व’ में ‘पेड़ काटने का खेल’ नामक शीर्षक कविता में बताते हैं कि, किस तरह छोटी छोटी वजहों से पेड़ व जंगल काट दिए जाते हैं और आदिवासी विस्थापित होने को मजबूर होते हैं। इसी कविता संग्रह में इनकी एक अन्य कविता आदिवासी नामक शीर्षक में ये लिखते हैं –

“एक आदिवासी
दूसरे आदमी की तरह
जंगल से बाहर
दिखने लगा
सब आदमी से बदतर
कही नहीं
उसकी कोई जगह ”

उपर्युक्त पंक्तियों में वे आदिवासियों की उस गहन पीड़ा को महसूस कर रहे होते हैं कि जब प्रकृति के अत्यधिक इन दोहन के कारण आदिवासियों को ही उनके ही मूल स्थान से विस्थापित करने को मजबूर कर दिया जाता है। आदिवासियों से उनका जंगल छीन लिया जाता है।

- प्रकृति का मानवीकरणश्र शुक्ल जी के द्वारा रचित बाल साहित्य में प्रकृति बच्चों की मित्र, शिक्षक और सहचर बनकर उपस्थित हैं; जो बच्चों में सहज जिज्ञासा, कल्पनाशीलता और नैतिक विकास में सहायक है। जब हम प्रकृति के मानवीकरण की बात करते हैं तो, शुक्ल जी पेड़, पत्ते, हवा, धूप, बारिश आदि का मानवीकरण करके इन तथ्यों का संवाद बच्चों से कराते हैं; इससे बालक प्रकृति को बाहरी वस्तु नहीं, बल्कि अपने आसपास की जीवंत दुनिया के रूप में महसूस करता है। यह भाव बच्चों में अपनापन और संरक्षण भाव पैदा करता है; साथ ही शुक्ल जी के बाल साहित्य में प्रकृति और नैतिक शिक्षा का गहरा संबंध है; जैसेख धैर्य करना, साहस, सहयोग इत्यादि। शुक्ल जी के बाल साहित्य की पुस्तक गोदाम की एक पंक्ति लिखते हैंख “लगता है आप पिछले जन्म में एक चिड़िया थे”यह पंक्ति इस बात की साक्षी है कि, वे प्रकृति और बच्चों के बीच प्राकृतिक तत्वों को एक सेतु के रूप में देखते हैं। यदि ग्रामीण पृष्ठभूमि से शुक्ल जी से जुड़ाव की बात करें तो इनका ग्रामीण जीवन से जुड़ाव इनके बाल साहित्य में भी दिखता है; जहाँ ये गांव, खेत, नदियां, पशु, पक्षी आदि को बच्चों के दैनिक जीवन का हिस्सा बनाते हैं। यह सभी प्रयास प्रकृति के प्रति बच्चों को आकर्षित कर उन्हें सदैव प्रकृति के समीप रखने की कोशिश है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विनोद कुमार शुक्ल का साहित्य आधुनिक हिंदी साहित्य में मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व का एक संवेदनशील दस्तावेज है। उनके यहाँ प्रकृति जीवन की सहचरी है, न कि केवल दृश्य-सौंदर्य का साधन। शुक्ल का साहित्य आधुनिक मानव को यह स्मरण कराता है कि, प्रकृति से कटकर मानव का अस्तित्व अधूरा है। इस दृष्टि से उनका साहित्य आज के पर्यावरणीय और मानवीय संकटों के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है।

प्रमुख उपलब्धियाँ

- छोटे मनुष्यों को केंद्रीय स्थान दिया।
- गद्दी व कविता के बीच नया सेतु बनाया
- साहित्य को राजनैतिक विचारधारा कि कैद से मुक्त कर उसे मनुष्य की ओर लौटाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

शुक्ल, विनोद कुमार। दीवार में एक खिड़की रहती थी। हिंद युग्म प्रकाशन, नोएडा (उत्तर प्रदेश), 2025।

शुक्ल, विनोद कुमार। महा विद्यालय। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2024।

शुक्ल, विनोद कुमार। एक पूर्व में बहुत से पूर्व। हिंद युग्म प्रकाशन, नोएडा (उत्तर प्रदेश), 2025।

शुक्ल, विनोद कुमार। गोदाम। जुगनू प्रकाशन, एक तारा ट्रस्ट, भोपाल (मध्य प्रदेश), 2023।

राय, गोपाल। हिंदी उपन्यास का इतिहास। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2016।

शुक्ल, विनोद कुमार। हरी घास के छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014।

अग्रवाल, रामनारायण। बाल मनोविज्ञान। अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 1978।

श्री ज्ञान चतुर्वेदी जी के उपन्यासों में सामाजिक संस्थाओं पर व्यंग्य

शिक्षा चतुर्वेदी

शोधार्थी, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

डॉ० रोशनलाल अहिरवार

शोध निर्देशक, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

सारांश

समकालीन हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण व्यंग्यकार एवं कथाकार ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक संस्थाओं पर व्यंग्यात्मक दृष्टि का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने स्वयं अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज की उन संस्थाओं जैसे – परिवार, अस्पताल, शिक्षा व्यवस्था, नौकरशाही, राजनीति और धर्म को केंद्र में रखा है, जो सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ मानी जाती हैं, किंतु व्यवहार में मानवीय मूल्यों से विचलित होती दिखाई देती हैं।

ज्ञान चतुर्वेदी का व्यंग्य केवल हास्य उत्पन्न करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह सामाजिक यथार्थ की विसंगतियों, पाखंड और अमानवीयता को उजागर करने का सशक्त माध्यम बनता है। विशेषतः अस्पताल और प्रशासनिक संस्थाओं का चित्रण यह दर्शाता है कि किस प्रकार मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी न रहकर पात्र, संख्या, फाइल या वस्तु बन जाता है। यह लेखन व्यवस्था की जड़ता और स्वार्थपरक मानसिकता पर तीखा प्रहार करता है।

इस प्रकार ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यासों में सामाजिक संस्थाओं पर किया गया व्यंग्य समकालीन समाज की विडंबनाओं को सामने लाते हुए पाठक को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है। यह शोधपत्र यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि व्यंग्य उनके साहित्य में सामाजिक चेतना का प्रभावी औजार बनकर उभरता है।

कुंजी शब्द: ज्ञान चतुर्वेदी, व्यंग्य साहित्य, सामाजिक संस्थाएँ, विडंबना, सामाजिक चेतना, मानवीय मूल्य।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की समकालीन धारा में व्यंग्य एक सशक्त जागरूकता और हस्तक्षेपकारी विधा के रूप में स्थापित हो चुका है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में जिस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं, उन्होंने साहित्य को केवल सौंदर्य बोध तक सीमित न रखकर उसे यथार्थ-बोध का सशक्त माध्यम बनाया है।

विशेषता व्यंग्य साहित्य ने सत्ता, तंत्र और समाज के भीतर व्याप्त अंतर्विरोधों, विसंगतियों और विडंबनाओं को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस परंपरा में हरिशंकर परसाई, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल आदि के बाद जिस लेखक ने समकालीन व्यंग्य को नई दिशा, भाषा और तेवर प्रदान किए, उनमें ज्ञान चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ज्ञान चतुर्वेदी के व्यंग्य की केन्द्रीय विशेषता यह है कि वह केवल हास्य उत्पन्न करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि हँसी के भीतर छिपे उस त्रास को भी दिखाता है, जो आधुनिक मनुष्य और समाज की वास्तविक स्थिति को व्यक्त करता है। उनके व्यंग्य में हास्य और त्रास का ऐसा द्वंद्व उपस्थित है, जो पाठक को एक साथ हँसने और विचलित होने के लिए विवश करता है। यही द्वंद्व उनके व्यंग्य को साधारण मनोरंजन से ऊपर उठाकर गंभीर साहित्यिक विमर्श का विषय बनाता है।

व्यंग्य साहित्य के जनक के रूप में जाने व पहचाने जाने वाले हरिशंकर परसाई की हिन्दी जगत को देन उल्लेखनीय है। ज्ञान चतुर्वेदी भी इन्हीं की तरह व्यंग्यकार हैं जिन्होंने सोलह वर्ष की उम्र से ही व्यंग्य लेखन का कार्य प्रारंभ कर व्यंग्य के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की और व्यंग्य परंपरा को विकास की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से अनेक कुरीतियों को समाज के लोगों अथवा पाठकों तक पहुँचाया है। आदिकाल, भक्तिकाल व रीतिकाल में व्यंग्य रचनाओं का आंशिक रूप मिलता था, व्यंग्य का दौर भारतेंदु युग से प्रारंभ होता है, परन्तु इसका अधिक विकास स्वतंत्रता के बाद वर्तमान समय में हुआ है। प्रारंभ से ही समस्त व्यंग्यकारों ने सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य बाण चलाए हैं। वर्तमान में व्यंग्य का क्षेत्र व्यापक होता जा रहा है।

व्यंग्य रचनाकारों द्वारा पाखंड से लेकर अनेक विसंगतियों पर आक्रोशित भाव से ताने कसे जा रहे हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जन्म से मृत्यु तक वह समाज में ही रहता है तथा जीवन यापन करने के लिए सामाजिक कार्य करता है। परंतु वर्तमान समय में समाज में बहुत अधिक विसंगतियां पनप रही हैं। अनेक कुरीतियों अथवा समकालीन विषमताओं का जीवन पर गहरा प्रभाव है। रचनाकार ज्ञान चतुर्वेदी ने समाज की विसंगतियों के अनेक पक्ष देखे हैं और उन पर व्यंग्य कर उनकी स्थिति को सामने रखा है।

सांप्रदायिकता पर व्यंग्य करते हुए रचनाकार लिखते हैं- “धर्म का बाना। हाथों में हथियार की भांति उठाई धार्मिक किताबें, धर्म ग्रंथ जुबान पर। मुस्कान जो भंभोड़ने को तत्पर दाँतों को परदे में रखती है। बाना साधु-संत, मौलवी वाला। क्या करें शैतान भी, इस बाने के बगैर उसका काम भी तो नहीं चल सकता। धर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए शैतान को धार्मिक प्रतीकों का ही सहारा लेना पड़ता है।”⁽¹⁾

उपर्युक्त पंक्तियों में रचनाकार ने जाति, धर्म व संप्रदाय के नाम पर हो रहे दंगों का समकालीन सामाजिक विसंगतियों के रूप में चित्रण किया है।

आलस वर्तमान समय में बहुत बड़ी समस्या है। उस पर व्यंग्य करते हुए ज्ञान चतुर्वेदी जी लिखते हैं- “वास्तव में आदमी जायज तरीके से कोई काम नहीं करना चाहता, क्योंकि उसमें मेहनत लगती है। आदमी बैठे-बैठे या गद्दी पर पाँव फैलाकर ही सारे काम करना चाहता है।”⁽²⁾

आलस एक सामाजिक विकृति है जो मानवीय जन-जीवन को प्रभावित कर कार्य करने से विमुख होने के भाव में लिप्त करती है। किस तरह से वर्तमान समाज में लोग अपने अनेक कृत्य को पूर्ण करने के लिए आलसी बन छोटे और आरामदायक रास्ते देखते हैं, उन्हीं विसंगतियों का चित्रण ज्ञान चतुर्वेदी ने व्यंग्य-प्रहार कर किया है।

रचनाकार की कई रचनाएँ हैं जिनमें समकालीन कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया गया है। समाज का मुख्य हिस्सा हैं सामाजिक संस्थाएँ, जिनसे समाज के विकास के कार्य होते हैं, परन्तु ये बस नाममात्र के लिए समाज का विकास करती हैं क्योंकि वर्तमान समय में व्यक्तिगत विकास ही सबसे अधिक हो रहा है।

अस्पताल, शिक्षा, प्रशासन, न्याय व्यवस्था प्रमुख संस्थाएँ हैं जिनसे एक समाज का निर्माण होता है, परन्तु आधुनिक व्यवस्थाएँ बहुत ही बेकार स्थिति में पहुँचती जा रही हैं। अस्पतालों में जहाँ मरीज की स्थिति सुधारने का कार्य किया जाना चाहिए, वहाँ वह और भी खराब स्थिति में हो जाता है। विद्यालय जहाँ देश के भविष्य यानी बच्चे पढ़ने आते हैं, उनकी स्थिति से भी सभी भली-भाँति परिचित हैं। सरकारी विद्यालयों में जो भोजन उनको दिया जाता है वह भी उनके स्वास्थ्य के साथ छेड़छाड़ को स्पष्ट करता है। ज्ञान चतुर्वेदी जी ने अपने उपन्यास ‘नरक यात्रा’ में अस्पताल व्यवस्था को स्पष्ट रूप से दर्शाया है, जहाँ व्यक्ति अपने इलाज के लिए आता है और उस अस्पताल जैसे नरक में फँस जाता है। वर्तमान स्थिति में मरीज के इलाज में किस प्रकार की परेशानी आती है, वह इस उपन्यास में बताया है। इसमें समाज की अमानवीयता, व्यवस्था की विडंबनाएँ और व्यक्ति की असहाय स्थिति को तीखे सामाजिक व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में ‘यात्रा’ दरअसल उस समाज की यात्रा है जहाँ संस्थाएँ मनुष्य से बड़ी हो चुकी हैं, नियम संवेदना पर हावी हैं, और व्यक्ति एक फाइल/संख्या/मरीज बनकर रह गया है।

बड़े अस्पतालों के विषय में जो लोग थोड़ा-बहुत जानते हैं वे ‘राउंड’ नाम की चीज से परिचित होंगे। इसके बिना चारा भी नहीं। “राउंड एक समारोह है, जिसके अंतर्गत एक बड़े डॉक्टर के साथ पाँच-दस जूनियर डॉक्टर हर मरीज की जाँच करके, उसकी मृत्यु क्यों नहीं हो रही, या यह ठीक कैसे हो गया, इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। राउंड वास्तव में एक परिक्रमा है, दो सौ गज की बाधा-दौड़ है, बड़े साहब की झांकी है जिसे मरीजों के बीच घुमाकर चाय की प्यालियों में विसर्जित कर दिया जाता है। राउंड का मतलब है गोल, चक्राकार। कुछ गोल है, कुछ माल है। राउंड एक चक्र है, चक्कर है, घनचक्कर है। राउंड वास्तव में आध्यात्म की चीज है। जितना इनकी तह जाओगे, वैराग्य की तरफ झुकते जाओगे। राउंड का अर्थ है गोल, शून्य, ना कुछ। शून्य है सब। कोई कीमत नहीं है पर फिर भी अस्पताल के गणित की एक आवश्यक संख्या।”⁽³⁾

शिक्षा व्यवस्था के लिए व्यंग्य किया है कि हमारे देश में डिग्री मात्र पैसों से खरीदी हुई होती है, न उस विषय का ज्ञान होता है तथा चापलूसी करने से उच्च पद प्राप्त कर लिए जाते हैं:

“जो करेगा सेवा, सो पाएगा एम.डी का मेवा”⁽⁴⁾

“पहुँचाओ सीनियर प्रोफेसर के घर सब्जी और तेल और पकड़ो स्पेशलिस्ट की डिग्री का रेल”⁽⁵⁾

“मरना मरीज को है, जिसने समझा यह राज, वही जूनियर डॉक्टर पहनेगा एम.डी की डिग्री का ताज”⁽⁶⁾

“जूनियर डॉक्टर वही सही, प्रोफेसर जिसे चाहे वही”⁽⁷⁾

प्रशासन तथा सत्ता, जो वर्तमान में प्रशासनिक अधिकारी अपनी जेब भरने पर ध्यान देते हैं, उन पर ज्ञान चतुर्वेदी जी ने व्यंग्य करते हुए लिखा है- “खड़ा हो जाता है रेत का महल। बन जाती है एक और हवाई योजना। स्वीकृत कर दिया जाता है बजट। दे दिया जाता है रुपया कि फूँको। बिना नींव और बगैर छत वाले महल तैयार हो जाते हैं यहाँ-वहाँ।”⁽⁸⁾

यह प्रशासन पर ताना है कि किस तरह योजनाओं से आए आम जनता के फंड के पैसों से अपना जेब भरते रहते हैं। अधिक बिल पास करवा कर कम लागत में भवन निर्माण करते हैं जिसमें कोई मजबूती नहीं होती। वह रेत के महल की तरह कम टिकाऊ होता है जिसके कारण वह जल्द ही टूट जाता है, ढह जाता है और उस पर सही ढंग से जाँच भी नहीं हो पाती, क्योंकि इन घपलों पर सभी भ्रष्ट अधिकारियों की सहमति होती है। अपने हिस्से का बँटवारा मिल जाता है। रचनाकार ने भावपूर्ण ढंग से कुरीतियों पर व्यंग्य किया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त शोध-लेख से यह निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञान चतुर्वेदी जी की व्यंग्य रचनाओं में आधुनिक सामाजिक संस्थाएँ जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशासन आदि पर जिस प्रकार व्यंग्य किया गया है, उससे इनकी स्थिति स्पष्ट रूप से सामने आ गई है। साथ ही सामाजिक संस्थाओं में लोग किस प्रकार प्रभावित हो रहे हैं, यह भी बताया गया है। इनके उपन्यास में भारतीय समाज की विद्रूपताओं का सजीव दस्तावेज मिलता है। उनका व्यंग्य सामाजिक चेतना को झकझोरता है और यह संकेत देता है कि यदि संस्थाएँ संवेदनशील और मानवीय नहीं बनीं, तो समाज स्वयं एक नरक में बदल जाएगा।

संदर्भ सूची

1. चतुर्वेदी, ज्ञान, साम्प्रदायिक समय में बच्चे (अलग), नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2010 पृष्ठ 41 ।
2. चतुर्वेदी, ज्ञान, पीछे के दरवाजा वाली इमारत (प्रत्यंचा), भारतीय ज्ञानपीठ, द्वितीय संस्करण 2015 पृष्ठ.13।
3. चतुर्वेदी, ज्ञान, नरक यात्रा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2015 पृ. 37 ।
4. चतुर्वेदी, ज्ञान, नरक यात्रा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2015 पृष्ठ 136 ।
5. वही
6. वही
7. वही
8. चतुर्वेदी, ज्ञान, रेत का महल (प्रत्यजा), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2015 पृष्ठ. 121।

ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यास नरक यात्रा और बारामासी में बुंदेली संस्कृति का विवेचन

स्वाकांक्षा बुंदेला

शोधार्थी, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

बृजमोहन द्विवेदी

शोध निर्देशक, हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय

सारांश-

ज्ञान चतुर्वेदी समकालीन हिन्दी व्यंग्य-साहित्य के महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उनकी रचनाओं में हमें हास्य-व्यंग्य के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ और सांस्कृतिक विशिष्टता प्रमुख रूप से दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में उनके उपन्यास 'नरक यात्रा' और बारामासी' के आधार पर बुंदेली संस्कृति का विश्लेषण किया गया है। अपने व्यंग्य उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने समकालीन समाज और उसमें व्याप्त विसंगतियों, विडंबनाओं को व्यापक रूप से अभिव्यक्त किया है। अपने उपन्यास नरक यात्रा की शुरुवात इस प्रकार करते हैं "अस्पताल की आम मरीजों के लिए सरकार द्वारा तैयार किया गया लाक्षागृह जैसा था यह महाभारत में उल्लिखित लाक्षागृह से इस मायने में अलग था कि इस अस्पताल में ऐसी कोई सुरंग नहीं थी जहाँ से आम जन भाग पाता"

इस उपन्यास में प्रवेश करते ही ऐसा लगता है कि मानो आप किसी सरकारी मेडिकल कॉलेज के भीतर प्रवेश कर गए हो अस्पताल के मुर्दाघर से शुरू हुआ विवरण जितना रोचक है उतना ही कारुणिक भी। इस प्रकार देखा जाए तो नरक यात्रा मात्र अस्पताल की नहीं बल्कि अस्पताल में मौजूद तमाम चरित्रों का भी पोस्टमार्टम है जिनमें डॉक्टरों के साथ साथ भाँति भाँति के मरीज भी मौजूद हैं

बारहमासी' उपन्यास में बुंदेलखंड के एक कस्बे अलीपुरा की कहानी है देश के अन्य हिस्सों की तरह इस कस्बे को भी विकास की कोई सड़क नहीं जाती। ऐसे में अपर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने पर भी जब जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती हैं तब असंतोष और कुंठाएँ उस मानसिकता को जन्म देते हैं, जहाँ लड़ना-भिड़ना, गाली-गलौज करना, गुण्डई पर फख्र करना बेहतर समझा जाता है। यानी हारे की नंगई वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। ये सब कृत्य इस असंतोष की चिंगारी को ढकने का असफल प्रयास करते हैं। इसे आप चाहें लल्ला फिरंगी की दीदा-दिलेरी का छिछोरापन करार दें, पलायनवादी के प्रतिनिधि गुच्चन को गालियों से नवाजें अथवा बिनू जैसी बहन के हाथ न पीले कर पाने के प्रति लापरवाह जवान भाईयों की अकर्मण्यता पर थूक दें। लेकिन इन सब छिछोरेपन, लापरवाहियों और अकर्मण्यता के बीच में विकास के विलोमानुपात की एक सूक्ष्म गाँठ है, जो इन स्थितियों की जनक है।

ज्ञान चतुर्वेदी ने एक परिवार के सुख-दुख, आशा-निराशा, उनके तनाव-संत्रास को जहाँ सूक्ष्म रूप में रेखांकित किया है, वहीं शिक्षा, बेरोजगारी, सामाजिक व्यवस्था आदि के विद्रूपों पर भी तीखे प्रहार किए हैं। पुस्तक में कई अंश मर्मस्पर्शी व्यंग्य की सृष्टि करते हैं। इनमें बिनू का लड़के वालों के सामने रोज-रोज तैयार होना, विवाह के समय मामा की दारुण मौत, अम्मा का अपना खजाना खोलकर देखना, संवेदनशील व्यंग्य के को दर्शाते। बुंदेलखंडी बोली के जीवंत प्रयोग, शैलीगत चुटुलेपन और अपने कथ्य की प्रस्तुतीकरण के निराले अंदाज के कारण यह उपन्यास हिन्दी व्यंग्य-उपन्यासों के क्षेत्र में मील का पत्थर सिद्ध हुआ।

इस उपन्यास में बुंदेलखंडी भाषाई आनंद हास्य और व्यंग्य के साथ-साथ संचरण करता है। बुंदेली लहजे की विशेषता है कि बातचीत में ही व्यंग्य निकल आता है। ज्ञान चतुर्वेदी ने संवादों के माध्यम से हास्य-व्यंग्य की सृष्टि की है। उन्होंने हास्य और व्यंग्य को एक साथ साधा है। दोनों को अलग-अलग किया जाना संभव नहीं है। ज्ञान जी की दृष्टि में भी हास्य और व्यंग्य अलग-अलग नहीं हैं अपितु दोनों चोटी की तरह गुंथे हुए हैं। इस कथा में लोक कहानी या किस्से भी बीच-बीच में छुट्टन या मामाजी के द्वारा कहकर अपनी बात का वजन बढ़ाने की कोशिश की गई है। इससे यह उपन्यास 'लोक' की उपस्थिति का भी वाहक बनता है।

ज्ञान जी कहते हैं इस उपन्यास के चरित्रों पर कहीं कहीं मेरे ममेरे भाइयों तथा उनके कार्यों की छाया है उन ममेरे भाइयों की दूर दूर तक जाकर रिश्ते करवाने में रुचि थी।

यह शोध मुख्यतः गुणात्मक पद्धति पर आधारित है, साथ ही इसमें द्वितीयक स्रोतों के रूप में आलोचनात्मक साहित्य का उपयोग किया गया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों में बुंदेली संस्कृति का भाषिक और सांस्कृतिक वैविध्य सजीव रूप में देखने को मिलता है।

कुंजी शब्द: बुंदेली संस्कृति, ज्ञान चतुर्वेदी, व्यंग्य साहित्य, पहचान, क्षेत्रीयता।

भूमिका

हिन्दी उपन्यास परंपरा में 'क्षेत्रीयता' का विशेष महत्व रहा है। प्रेमचन्द से लेकर समकालीन उपन्यासकारों तक ग्रामीण एवं लोक-जीवन साहित्य का केंद्र बिंदु रहा है। ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यास इस क्षेत्रीय जीवन की जटिलताओं को व्यंग्यात्मक एवं यथार्थपरक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। व्यंग्य कैसे व्यक्तिगत जीवन की विविधता के साथ अनुभव और अभिव्यक्ति का संवाहक बन जाता है इसे ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यासों द्वारा समझा जा सकता है।

'नरक यात्रा' और बारामासी जैसे उपन्यास बुंदेली परिवेश से निर्मित हैं, जिनमें पात्रों की भाषा, आचरण और व्यवहार बुन्देलखण्ड की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को उजागर करते हैं। उनके उपन्यासों में बुंदेली संस्कृति केवल किसी स्थान विशेष का संकेत नहीं देती, बल्कि वह समाज, मनुष्य और उनके संघर्षों को समझने का एक सशक्त माध्यम बनती है। उनके व्यंग्यों में लेखन की नवीनता को स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है जिसमें स्थानीयता की गमक है अपनी मातृभूमि और मातृभाषा प्रेम को वे अपने व्यंग्य उपन्यासों में तब्दील कर बुंदेलखंडी बोली तथा मुहावरों का सटीक प्रयोग करते हैं ज्ञान चतुर्वेदी का व्यंग्य अपने से पूर्व के व्यंग्य लेखकों से इस मायने में भिन्न है कि वे समकालीन समाज की दुर्बलता को बड़ी ही बारीकी के साथ पकड़ते हैं।

बारामासी व्यंग्य के माध्यम से भी कस्बाई संस्कृति का तानाबाना प्रस्तुत करते हैं, लड़की की शादी न हो पाना, निम्न मध्यवर्गीय परिवार में लड़कों को लेकर पलने वाली महत्वकांक्षाएं परिवारों के बीच पनपने वाली छुद्र प्रतिस्पर्धा ग्रामीण परिवेश के बीच फैली उदासी की परते में इन सभी के बारीकी से बारीक पक्ष को ज्ञान चतुर्वेदी जी पूरी तन्मयता के साथ उपन्यासों में उकेरने का प्रयास किया है।

बारहमासी एक ऐसा फूल हैं जो हर मौसम में पूर्ण खिल सकता है। उपन्यास का अध्ययन करने से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास के पात्र एवं उनका चरित्र 'बारामासी' पुष्प के समान दृष्टिगोचर होते हैं।

शोध समस्या- ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यासों को मुख्यतः सामाजिक यथार्थ और व्यंग्य के संदर्भ में अध्ययन करते हैं किंतु उनकी रचनाओं में बुंदेली सांस्कृतिक तत्वों का विश्लेषण अपेक्षाकृत कम मिलता है। यह शोध मुख्यतः इसी अंतर को भरने का प्रयास करेगा।

उद्देश्य -

1. उपन्यासों में बुंदेली सांस्कृतिक तत्वों की पहचान करना।
2. भाषा, धार्मिक विश्वासों, लोककथाओं के माध्यम से सांस्कृतिक पहचान का विश्लेषण करना।
3. क्षेत्रीयता और व्यंग्य के अंतर्संबंध को समझना।
4. बुंदेली समाज और पात्र-व्यवहार के संबंधों को समझना।

शोध पद्धति - यह शोध मुख्यतः गुणात्मक, व्याख्यात्मक, विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है।

- प्राथमिक स्रोत - नरक यात्रा, बारामासी उपन्यास
- द्वितीयक स्रोत - समीक्षा पुस्तकें, लेख, वेब स्रोत, आलोचनाएँ

बुंदेली संस्कृति का एक संक्षिप्त परिचय -

मुख्य विवेचन -

1. बुंदेली भाषा और लोकभाषिक तत्व - उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पात्र मुख्यतः बुंदेली में बात करते हैं जैसे - का कर रहो, हमारे गांव, हाऊ भाईया, कछु नहीं आदि।
यह भाषिक प्रयोग केवल सजावट नहीं बल्कि सामाजिक वास्तविकता का प्रतीक है। पात्रों की भाषा में उनका वर्ग, संस्कृति, मानसिकता की पहचान होती है। इस तरह यह सांस्कृतिक पहचान का वाहक है।
2. सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना - 'बारहमासी' उपन्यास में मुख्यतः गाँव की राजनीति, भाई-भतीजावाद, जातिगत संबंध आदि खुलकर दिखाई देते हैं। 'नरक यात्रा' में भ्रष्टाचार, सामाजिक भय द्वारा बुंदेलखंड की मनोवैज्ञानिक तस्वीर बनती है। लेखक परंपराओं को आदर्श रूप में नहीं बल्कि यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करता है, जहाँ रूढ़ियाँ और संवेदनाएँ साथ-साथ चलती हैं।
3. आर्थिक और वर्गीय यथार्थ - ज्ञान चतुर्वेदी जी के उपन्यासों में बुंदेलखंड की आर्थिक विषमताएँ गहराई से चित्रित की गई हैं। निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, मजदूर, किसान और सत्ता संरचना के बीच का संघर्ष बुंदेली समाज की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है। यहाँ संस्कृति केवल उत्सव नहीं बल्कि संघर्ष की सहचरी भी है। बुंदेली राजनीति में वंशवाद, नौकरशाही का भ्रष्टाचार और जाति आधारित समीकरण, इन सबका चित्रण चतुर्वेदी जी अत्यंत हास्यपूर्ण और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं।
4. लोकविश्वास और धार्मिक चेतना - समाज में व्याप्त अंधविश्वास, लोककथाएँ और धार्मिक अनुष्ठान उपन्यास में सहज रूप से समाहित हैं। लेखक इन्हें न तो पूर्णतः स्वीकार करता है और न ही महिमामंडित करता है, बल्कि समाज के मनोवैज्ञानिक सत्य के रूप में प्रस्तुत करता है।

5. सांस्कृतिक चेतना और मानवीय दृष्टि - लेखक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे बुंदेली संस्कृति को मानवीय संवेदना से जोड़ते हैं। उनके पात्र स्थानीय होते हुए भी स्वाभाविक लगते हैं। व्यंग्य के माध्यम से वे पीड़ा, संघर्ष, प्रेम और क्षेत्रीयता को व्यापक मानवीय संदर्भ प्रदान करते हैं।

नरक यात्रा और बारामासी के संदर्भ में विद्वानों के कथन -

बालेन्दु शेखर तिवारी-

मेडिकल शिक्षा को अपवित्र, घटिया, जोड़तोड़ से भरे षड्यंत्रकारी कार्य में बदल डालने वाले डॉ. चौबे, डॉ. शर्मा, डॉ. गुलाटी, डॉ. कपूर, डॉ. पांडे और डॉ. अग्रवाल जैसे डॉक्टरों का समूह, इस उपन्यास में डॉक्टरों के क्षेत्र में व्याप्त असंगतियों का सम्मूर्तन करता है। ये डॉक्टरगण मरीजों को देखने में इतने व्यस्त रहते हैं कि मरीजों को देखने का समय उनके पास नहीं है। ये सीनियर लोग जूनियर डॉक्टरों से मेडिकल साइंस के इस महत्वपूर्ण मसले पर लगातार चर्चात हैं कि डॉक्टर को साम-दाम-दंड-भेद से अपनी फीस कैसे झटकनी चाहिए। हर पल पैसे में जीने वाले और हर क्षण गुटबंदी के दलदल में धँसते जा रहे डॉक्टरों का यह समूह किसी भी भारतीय अस्पताल में दर्शनीय है। ज्ञान चतुर्वेदी ने पूरे खुलेपन के साथ चिकित्सा-संसार के स्खलनों का जायजा लिया है।

अंजनी चौहान -

नरक-यात्रा' किस परंपरा का उपन्यास है, इस बहस से इतर इस उपन्यास का समग्र प्रभाव यह तो जाहिर करता ही है कि 'नरक-यात्रा' स्वयं व्यंग्य-उपन्यास की एक पुरातन परंपरा का आगाज है। एक व्यवस्था का हिस्सा होते हुए उसी व्यवस्था के सड़े-गले होने की मुनादी करना एक बेहद जोखिम भरा काम था जिसे ज्ञान चतुर्वेदी ने पूरी निर्भीकता के साथ किया है, यह बात मेरे लिए बहुत तसल्लीदायक है।

सच्चिदानंद जोशी -

बारामासी उपन्यास के संदर्भ में -बुंदेलखंड की संस्कृति और परिवेश जितना खरा और सहज है, उतना ही सहज 'बारामासी' भी है। उपन्यास पढ़ते-पढ़ते पूरा परिवेश और वातावरण अपने चारों ओर सजीव हो उठता है। यही इस उपन्यास का सशक्त पक्ष भी है। एक-एक पात्र के मनोभावों एवं प्रवृत्तियों को चित्रित करने में ज्ञान जी ने पूरी मेहनत की है। इसी के साथ उन्होंने इस बात की भी खबरदारी बरती है कि वे पात्रों के बीच के अंतर्संबंधों को भलीभाँति उकेर कर प्रस्तुत कर सकें।

प्रेमपाल शर्मा-

'बारामासी' (ज्ञान चतुर्वेदी) बुंदेलखंड क्षेत्र के अलीपुरा गाँव के बहुत सामान्य पात्र छट्टन, गुच्चन, बिनू आदि के जीवन की गाथा है। लगभग नायक विहीन कथानक। शास्त्रीय नियमों की खातिर यदि नायक की खोज जरूरी है उपन्यास में तो इसका नायक पूरा का पूरा समाज है। नायक भी वही, खलनायक भी वही।

राजेंद्र यादव -

कथाकार राजेंद्र यादव ने 'बारामासी' को आतंक पैदा करने वाला उपन्यास कहा। उपन्यास 'सैडिस्ट' ढंग से अपनी कहानी और पात्रों को उद्घाटित करता है, उससे भय लगता है और इसको और ज्यादा गहरा करता है- उस समाज का बाहरी दुनिया से कटा होना, पतनशीलता से प्रसन्नता के साथ डूबे रहना। यादव जी के अनुसार यह उपन्यास व्यंग्य और हास्य पैदा करने की अपनी क्षमता के बावजूद मूलभूत रूप से एक ट्रेजिक उपन्यास है।

निष्कर्ष

ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यासों में बुंदेली संस्कृति केवल भौगोलिक तत्व नहीं बल्कि सामाजिक चेतना के वाहक के रूप में उपस्थित होती है। उनके उपन्यास हिन्दी उपन्यास परंपरा को क्षेत्रीयता, सांस्कृतिक अस्मिता और व्यंग्यात्मक दृष्टि के माध्यम से समृद्ध करते हैं। उनकी रचनाएं यह सिद्ध करती हैं कि क्षेत्रीय संस्कृति के माध्यम से भी साहित्य सार्वत्रिक मूल्य प्रस्तुत कर सकता है। अतः कहा जा सकता है कि चतुर्वेदी जी की रचनाएं बुंदेली संस्कृति की सामाजिक स्मृति का साहित्यिक दस्तावेज हैं।

संदर्भ सूची

1. चतुर्वेदी, ज्ञान, नरक यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. चतुर्वेदी, ज्ञान, बारहमासी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. कुमार प्रदीप, व्यंग्य उपन्यास के आइने में ज्ञान चतुर्वेदी, प्रभाकर प्रकाशन।
4. हंस (मासिक पत्रिका)-ज्ञान चतुर्वेदी के विशेष लेख
5. तद्भव (साहित्यिक पत्रिका)-समकालीन उपन्यास पर केंद्रित अंक
6. नया ज्ञानोदय -भारतीय ज्ञानपीठ की पत्रिका(व्यंग्य विशेषांक)
7. सिंह, नामवर. दूसरी परंपरा की खोज.राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। (आलोचनात्मक दृष्टि हेतु)

श्री दशरथ जैन के साहित्य में बुन्देलखण्ड का संघर्ष

डॉ० रोशनलाल अहिरवार

शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय स्वाशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

साधना जैन

शोधार्थी (हिन्दी विभाग) शासकीय स्वाशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सार :

“श्री दशरथ जैन का जन्म 15 अप्रैल 1928 को छतरपुर (म.प्र.) में हुआ। वह पेशे से वकील थे। आप विन्ध्य प्रदेश में पं. शम्भुनाथ शुक्ल के मंत्रीमण्डल में गृहमंत्री (1955-56) व पं. रविशंकर शुक्ल तथा डॉ. कैलाशनाथ काटजू के मंत्री मंडलों में उपमंत्री (1956-62) रहे। दशरथ जी न केवल एक स्वच्छ छवि वाले राजनेता व प्रभावी विधायक ही रहे, अपितु समाजसेवक, पत्रकार व साहित्यकार के रूप में भी उनकी अच्छी ख्याति है।”¹ उन्होंने अपनी रचना ‘बुन्देलखण्ड का जलियांवाला बाग: चरण पादुका’ में बुन्देलखण्ड की जनता के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संघर्ष को संजोया है। आजादी की प्राप्ति के लिए कितने प्रयत्न व बलिदान किए गए उसका दस्तावेजीकरण किया है। जिन्हे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी पहचान व महत्व नहीं मिला है।

कुंजी शब्द : संघर्ष, सेवा, बलिदान, देशप्रेम

प्रस्तावना :

बुन्देलखण्ड प्राचीनकाल से ही वीरों की भूमि रही है। यहां का कण-कण वीर योद्धाओं के शौर्य और पराक्रम की गाथा गाता है। आज भी आल्हा-ऊदल व महाराजा छत्रसाल का शौर्यगान लोगों में नई स्फूर्ति का संचार कर देता है। तो वही देश का पहला स्वतंत्रता संग्राम (1857 ई.) में झांसी की रानी की वीरगाथा और कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान के गीतों से संपूर्ण देश में प्रेरणा की लहर दौड़ गई। आजादी की हर लड़ाई में चाहे वह क्रांतिकारियों की रही हो या महात्मा गांधी के सत्याग्रहियों की, सबमें बुन्देलखण्ड अपनी वीर परंपरा को निबाहता रहा है।

आजादी के पहले बुन्देलखण्ड कई छोटी-बड़ी रियासतों में बँटा हुआ था। इन रियासतों में अंग्रेजी सत्ता की कुटिल नीतियों को इस उद्धरण के माध्यम से समझा जा सकता है -

“प्रत्येक देश की सरकार को जहां कि अवस्थित है, कमजोर एवं भीरु बनाने, समाज के उच्च वर्ग के मध्य पाई जाने वाली गौरवशाली सम्मान भावना को निस्तेज करने, समस्त जन समुदाय की अवनति और निर्धन करने की, किसी भी विदेशी सत्ता की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। किन्तु ब्रिटिश शासन की उपस्थिति ने किसी भी बाह्य अथवा आंतरिक शत्रु के विरुद्ध सत्तारूढ़ राजाओं की सहायता करके सुधार के प्रत्येक अवसर को समाप्त कर दिया है।”

अंग्रेजी राज्य के हस्तक्षेप के कारण देशी राज्यों में प्रशासन तंत्र कितना अक्षम, भ्रष्ट और क्रूर हो गया था, इसका वर्णन दशरथ जी ने सन् 1853 के लंदन टाइम्स के एक लेख के निम्न उद्धरण - 1 में करते हैं-

“हम लोगों ने राज्य के कमजोर एवं प्रभावहीन किसान वर्ग को उनके भाग्यवाद से मुक्त कर दिया है। जिसमें भारतीय निरंकुशता भरी हुई है। (अर्थात् शक्तिशाली एवं योग्य राजकुमारों द्वारा सत्ता का हथियाना जाना अथवा क्रांति)। हमने इन राज्यों के निवासियों में पाया है जो अभी अस्थाई राजाओं द्वारा शासित होते हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि हम उन राजकुमारों को सत्ता देते हैं जो जिम्मेदारीविहीन होते हैं। हमारा लौह हाथ उनकी बेवकूफी, कमजोरी, बुराई एवं उनके अपराधों के बावजूद भी उनको गद्दी पर सुरक्षित रखता है।” इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश राज्यों में अराजकता फैली है, जिससे राज्य विरोधी घटनाएं बढ़ती हैं। उस काल के निरंकुश राजाओं ने राज्य में अंग्रेजी सत्ता के साथ मिलकर जनता पर हर तरह के अत्याचार व अन्याय किए।

विश्लेषण :

ब्रिटिश शासन के काल में इन देशी राज्यों में जहां जनता पूर्णतः अशिक्षित थी कहीं भी कोई भी सामाचार पत्र नहीं निकलता था। यह क्षेत्र एक अंधे कुएं की तरह था, जहां बाहर की रोशनी बहुत ही कम समय के लिए अल्पमात्रा में मिल पाती थी। 20 वीं शताब्दी के दूसरे व तीसरे दशक में, बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों की स्थिति अत्यधिक चिंताजनक थी और जनता में भयंकर असंतोष व्याप्त था। राजाओं ने भिन्न - भिन्न प्रकार के ऐसे कर व उपकर लगा

रखे थे, जिनको चुका पाना प्रजा के लिए संभव नहीं था। 'पेटुआ' व 'चलावा' विधवा के पुनर्विवाह करने पर, पिता के मरने पर 'चौथ' ली जाती थी, लगान पर आधा आना प्रति रुपया के हिसाब से 'नजराना', खेत में बनाई गई मडैया की लकड़ी पर 'मडवाकाशत' नामक कर व 'हरौका' कर, महुओं के फल एकत्रित करने के लिए प्रति पेड़ 'महुटा' कर, जंगलों में जानवर चराने पर 'चरु' कर, 'व्याई' खरीदार को और 'झरी' दुकानदार को, चौकीदारी - मदघरसा वगैरह के लिए 'दामी' देनी पड़ती थी। किसान और व्यापारी दोनों इन करों से अत्यधिक हैरान व परेशान थे। केवल करों की ही समस्या नहीं थी, बल्कि हरिजन - आदिवासियों से बेग-बेगार ली जाती थी। सन् 1930 में आर्थिक मंदी के कारण अनाज की कीमत आधी रह गई थी। "श्री सी. यू. विल्स की जांच रिपोर्ट के अनुसार, जो कोदो सन् 1920 में रूपए की 16 सेर के भाव से बिकती थी, वहीं सन् 1931 में 32 सेर प्रतिरुपया हो गई थी। ज्वार का भाव 16 सेर प्रति रुपया से 30 सेर प्रति रुपया हो गया था।"³

एक तो वैसे ही करों का बोझ वहन कर सकने में जनता असमर्थ थी, दूसरे इस मंदी ने स्थिति को पहले से बदतर बना दिया था। विद्रोह की आग भड़काने में वसूली के दौरान शासन द्वारा जांच की जाने वाली सख्तियों ने भी बड़ा योगदान दिया। कास्तकारों की निर्ममतापूर्वक मारपीट की जाती थी, उन्हें मुर्गा बनाया जाता था, उनकी छाती पर पत्थर रखकर उन पर राज्य के कर्मचारी चढ़ते थे और हर तरह से उन्हें बेइज्जत किया करते थे। इतना ही नहीं मजदूरी और सरकारी कर्मचारियों की तनख्वाह भी बहुत कम थी। जिसका वर्णन श्री इमामुद्दीन अहमद सिद्दीकी, छतरपुर जो पुलिस अधीक्षक के कार्यालय में टूरिंग रीडर थे, के साक्ष्य में मिलता है - "मजदूरी औरतो को दो आना व बच्चों को चार कौड़ी चऊदा गड़ा' की कौड़ी दी जाती थी। सरकारी मुलाजमों की तनख्वाह बहुत ही कम थी। केवल दीवान साहब को 1500/- प्रतिमाह दिया जाता था।"⁴

दीवान साहब के बढ़े हुए वेतन पर छतरपुर राज्य के स्वतंत्रता आंदोलन के आंदोलनकारियों ने एक दोहा बनाया था, जो निम्न प्रकार है -

"पन्द्रह सो कलदार में, पलत तीन सो जवान।

खावे, पादें, मेज पे, सो पावत दीवान।

तीन लाख से नौ भये, तऊ खजानों छुच्च।

परदेशी सब खा गये, मुड़ा- मुड़ा के मुच्छ।"⁵

झांसी जिला टीकमगढ़ तथा बुन्देलखण्ड की देशी रियासतों के स्वतंत्रता संग्राम की राजनीति का ट्रेनिंग कैम्प होता था। छतरपुर राज्य में सन् 1924 में ही आर्यसमाज की स्थापना राजनगर व महाराजपुर में की जा चुकी थी। जिसने बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों की जनता तक स्वतंत्रता संग्राम का संदेश पहुंचाने में बहुत योगदान दिया।

बुन्देलखंड में कांग्रेस कमेटी के गठन ने स्वतंत्रता संग्राम का स्वरूप ही बदल दिया। लौड़ी तहसील के पंडित रामसहाय तिवारी, रगोली के हीरासिंह ठाकुर, भुजबल सिंह व रामबगस सिंह और अनेक राष्ट्रभक्तों ने विरोध का हिंसक मार्ग छोड़कर अहिंसा का मार्ग अपनाया। इन्होंने विरोधियों के हाथों स्वयं मर जाना अथवा उनके द्वारा दी जा रही यातनाओं को सहर्ष झेलकर, उनका हृदय परिवर्तन करके, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का विश्वास जनता में जगाया।

दशरथ जी ने अपनी कृति 'बुन्देलखण्ड का जलियांवाला बाग: चरणपादुका' में बुन्देलखण्ड में होने वाले आंदोलनों का विस्तृत व व्यवस्थित वर्णन किया है कि किस प्रकार से बुन्देलखण्ड की जनता ने अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ संघर्ष किया है। आज जिन घटनाओं या क्रांतिकारियों के हमें नाम तक पता नहीं हैं। वह उस समय 60-60 हजार लोगों को एक- एक सभा के लिए एकत्रित करते थे। सूचना प्रसार के साधन न होने पर भी कैसे गांव-गांव में चिट्ठियों के माध्यम से संदेश व बैठकों के लिए सूचित करते थे। सन् 1929 में भितरिया सभा के सभापति हीरासिंह के सुझाव से इसका अंदाजा लगाया जा सकता है - "वे, अपनी ओर से वैसी ही और चिट्ठियां तैयार कर ग्राम - ग्राम में भेजें। जो चिट्ठी दबा कर रख ले उसको गौ-हत्या का पाप लगेगा, ऐसा उनमें लिखा था।"⁶

अंग्रेजी हुकुमत की बरबरता और दमन का अंदाजा 'बैंडरे शहीद कांड' तहसील सटई, राज्य बिजावर की दिनांक 18-12-1930 की घटना से लगाया जा सकता है। किस प्रकार एक शांतिपूर्ण सभा को तितर-बितर करने के लिए राज्य का एक हाथी लाया गया और सभा में उपस्थित जनसमूह को भगाने को उससे लौहे की सांकर घुमवाई गई थी। इस तरह की घटनाएं अंग्रेजी सरकार की बरबरता और दृष्टता की कलाई खोलती है।

14 जनवरी 1931 को मकर संक्रांति के पावन पर्व पर ऊर्मिल नदी के किनारे चरणपादुका नामक स्थान पर हुई हृदयविदारक घटना का वर्णन दशरथ जी ने तथ्यों व साक्ष्यों के साथ किया है। किस प्रकार पॉलिटिकल एजेन्ट फिशर के एक आदेश से 14-15 लारियों में भरकर आई फौज ने गनमशीनें फिट करके 60-70 हजार निहत्थी और शांतिप्रिय जनता को भूज डाला। जिसमें, बच्चे, वृद्ध, महिलाएं, जवान सभी शामिल थे। यह कोई तात्कालिक घटित घटना नहीं थी बल्कि पॉलिटिकल एजेन्ट फिशर ने महीने भर पहले से ही इसकी तैयारियां शुरू कर दी थी। जिसमें तहसीलदार, सत्र न्यायधीश को बदलना व देशी रियासतों में 'मालवा कोलभील फौज' को तैनात करना शामिल है। आंदोलनकारी नेताओं कु. हीरासिंह, पं. रामसहाय तिवारी व मल्लू जू को पहले ही गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया।

सरकारी जांच के मुताबिक इस घटना में 6 लाशें ही मिली व 26-27 आदमी घायल हुए। लेकिन उपस्थित लोगों के अनुसार इस अंधाधुंध गोलियों की मार से वृक्षों की पत्तियां तक झड़ चुकी थी। भारी मात्रा में पशु - पक्षी मरे थे। सारी नदी की धार व दोनों तट दूर-दूर तक हताहतों से पाट दिए गए थे। इतना ही नहीं घायलों को अस्पताल या चिकित्सा की सुविधा भी उपलब्ध नहीं कराई गई। मृतकों की लाशें उनके परिजनों को अंतिम संस्कार करने को भी नहीं दी गई। कई दिनों तक गिद्ध उन लाशों की नोंचते-खाते रहे। अंग्रेजी सत्ता ने इस घटना के बाद लोगों को डराने-धमकाने के लिए भयंकर लूटपाट व आगजनी की। इस घटना के तथ्यों को छुपाने और लीपापोती करने के लिए लाशों को वहीं नदी के पास रेत में दबा दिया गया। जब कांग्रेस के समक्ष अपनी जान जोखिम में डालकर सरजू दौआ और उनके साथियों ने शहीद सेठ सुन्दरलाल (गिलोहा) के शव को रखा। तब जाकर ब्रिटिश सरकार ने माना कि एक छोटी सी कार्यवाही की जिसमें 6 लोगों की मौत हुई है।

किन्तु इस घटना में जिस प्रकार का गोली चालन हुआ था उसमें बड़ी संख्या में जनसाधारण का हताहत होना स्वाभाविक था और ऐसा हुआ भी। मरने वालों के परिजन व घायलों के अनुसार कहीं-कहीं यह संख्या 300-400 व कहीं 500-600 तक मिलती है। इस अहिंसक महासमर का वर्णन श्री ब्रजेश ने एक कविता के माध्यम से किया है, जो स्वयं इस घटना में घायल हुये थे।

“ प्रलयतुल्य घमासान हुआ था हा-हा परी पुकारें,
धार ऊर्मिला की तड़पी थी, रोई जुगल कगारें।
कितनी माता बहिनें इस सभा को देखनें आईं,
खेलत आंगन के गहवारे, भर-भर अंचल लाईं।।
उठ-उठ भगी चपली सी, गए छूट गहवारे,
खुद-खुद इस धरती से उठ गए, अनबोलत झलरारें।
अब तक माता तड़प रही हैं, उन लालन के लाने,
छलकत दूध भरे अन्चल में, ललकत दृग पथराने॥”

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड की जनता के संघर्ष और बलिदान को अभी तक वह पहचान व महत्व नहीं मिला हैं, जिसे संजोने के लिए आदरणीय दशरथ जैन व अन्य साहित्यकारों ने इतना कष्ट उठाया। उन वीर नायकों की वीरता से आज की पीढ़ी को अवगत कराना ही उन महान सपूतों व साहित्यकारों के लिए वास्तविक श्रद्धाजलि होगी।

संदर्भ सूची :

1. जैन, दशरथ. हिमालय से ऊँचे सागर से गहरे, मेघ प्रकाशन, 2005
2. जैन, दशरथ. बुन्देलखण्ड का जलियांवाला बाग: चरणपादुका, देशना प्रकाशन, छतरपुर, 2000, पृ.5-6
3. वहीं, पृ.सं.-10
4. वहीं, पृ.सं.-11-12
5. वहीं, पृ.सं.-11-12
6. वहीं, पृ.सं.-24
7. वहीं, पृ.सं.-46

गगन गिल के काव्य में स्त्री वेदना

सुरभि जैन

शोधार्थी, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

डॉ० मिथलेश शरण चौबे

शोध निर्देशक, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

सार -

गगन जी स्वयं एक स्त्री के रूप में उसके भोगे हुए यथार्थ को लिखते हुए भी इस बात को स्वीकृति नहीं देती हैं कि वह (गगन जी) महज एक स्त्री विमर्श प्रधान लेखिका है। परंतु उनके काव्य में स्त्री मुक्ति की कामना, अपने अस्तित्व की खोज एवं स्त्री के दुखों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

गगन जी के काव्य में स्त्री के अस्तित्व से उपजी पीड़ा को रेखांकित किया गया है जहां स्त्री केवल स्त्री ना होकर किसी की मां, पत्नी, बहन, बहू, बेटी इन्हीं सब रिश्तों से पहचानी जाती है एवं इन रिश्तों में अपने को ढालते - ढालते वह स्वयं के अस्तित्व को जैसे दरकिनार कर देती है, उसके त्याग को केवल उसके कर्तव्य का नाम देकर महत्वहीन कर दिया जाता है मानो सारे कर्तव्य महज स्त्री के हिस्से आए हों।

आदिकाल से हम देखते आए हैं कि सम्मान या मर्यादा के नाम पर केवल स्त्री को ही ठगा गया है फिर चाहे वह सीता की अग्निपरीक्षा हो या द्रोपदी का दाव पर लगाया जाना। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को उसकी इच्छानुसार क्रंदन का भी अधिकार नहीं। उसकी पीड़ा से उपजे क्रंदन को रूढ़िवादी समाज ने अपशुन का नाम दे दिया। केवल शिशु अवस्था में ही स्त्री अपनी वेदना पर जी खोलकर क्रंदन कर सकती है, जैसे-जैसे वह बड़ी होती है रूढ़िवादी समाज के नियम उसे खुलकर क्रंदन की आजादी नहीं देते।

कुन्जी शब्द - गगन गिल, स्त्री वेदना, पितृसत्ता, रूढ़िवाद, स्त्री अस्तित्व, समकालीन हिंदी कविता।

प्रस्तावना-

समकालीन हिंदी कविता में गगन गिल एक विशिष्ट व्यक्तित्व है। उनकी कविताओं में स्त्री केवल एक सामाजिक इकाई नहीं बल्कि एक स्मृतवान जीव है। उनके काव्य को पढ़कर कविता की गहराई का अंदाजा लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपने भावों को कितनी सहजता से प्रस्तुत किया है उनका मानना था कि कविता ही भावों को व्यक्त करने का एकमात्र साधन होती है इसी के संदर्भ में वह कहती हैं - “वह जब जब डरती है कविता की शरण लेती हैं। जैसे कविता कोई प्रार्थना हो, जैसे कविता बहुत से मुश्किल सवालों का एकमात्र जवाब हो, जैसे कविता ईश्वर का हाथ हो जो किसी बहुत अंधेरे क्षण में उसके कंधे पर धीरे से आकर टिक जाता हो।”¹

इनका प्रथम काव्य संग्रह ‘एक दिन लौटेगी लड़की’ में स्त्री की मनोदशा एवं उसके दुख का बोध है जिसमें स्त्री जीवन के जन्म से लेकर अंत/मृत्यु तक के यथार्थ को बहुत विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया। पाठक जैसे-जैसे काव्य को पढ़ता है, वैसे-वैसे वह काव्य में व्यक्त स्त्री की वेदना से अवगत होता है कि कैसे एक स्त्री के जीवन में उतार-चढ़ाव आते हैं। बाल्यावस्था में वह अपने को पूर्ण रूप से माता-पिता को सौंप देती है परंतु जैसे ही विवाह के बंधन में बंधती है उसका सुरक्षित अल्हड़ जीवन समाप्त हो जाता है एवं उसे अपने सिंदूर की रक्षा का भय सताने लगता है। एवं अपनी सूनी माँग एवं सफेद साड़ी की कल्पना उसे अंदर तक झकझोर देती है-

“आदमी कहाँ है लड़की का?

आदमी जिसका मातम उसकी धमनियाँ में है

और इच्छा जिसकी उसकी चूड़ियों में।”²

समकालीन समाज की स्त्री का अवलोकन करते हुए वे लिखती हैं कि साधारण घरेलू जीवन व्यतीत करने वालों की वेदना को समझना आसान नहीं है। उनके कार्य को रूढ़िवादी समाज में न तो कार्य समझा जा रहा है और न ही त्याग को कोई सम्मान दे रहा है, न ही इस विषय को गंभीर रूप से देख रहा है। चारदीवारी में संपूर्ण जीवन व्यतीत करने की वेदना को पितृसत्तात्मक समाज कभी नहीं देख पाया।

चारदीवारी को लौघकर जो स्त्रियाँ कामकाजी हुई, उनकी वेदना एवं संघर्ष भी कम नहीं है। अपने सम्मान की रक्षा के लिए उन्हें कई प्रकार के समझौते करने पड़ते हैं। अपनी इच्छाओं को दरकिनार कर, अपने शहर से इतर काम करना पड़ता है। उसी के संदर्भ में कविता है-

“दफ्तर में ऊँघती हैं लड़कियाँ
ऊँघती हैं काम से, थकान से
ऊँघती हैं ऊब से, अधनींद से
चलती हुई नींद में।”⁵

पुराने समय में हम देखते हैं कि स्त्रियों पर जो भी अत्याचार हुए, जो भी यातनाएँ उन्हें झेलनी पड़ीं, कहीं न कहीं उसकी जड़ में आर्थिक निर्भरता ही रही है। सति प्रथा का उदय भी कहीं न कहीं इसी कारण हुआ कि विधवा स्त्री के भरण-पोषण की समस्या थी एवं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति को लेकर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा था।

कामकाजी स्त्रियाँ आज आर्थिक रूप से सशक्त हैं, जिससे उनकी पुरुषों पर निर्भरता कम हुई है एवं अन्याय के प्रति आवाज बुलंद हुई है। आत्मनिर्भर स्त्री समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं अपने प्रति हो रही असमानता के खिलाफ आवाज उठा रही है। इसी संदर्भ में गगन जी लिखती हैं-

“एक दिन लौटेगी लड़की
हथेली पर जीभ लेकर
हाथ होगा उसका लहू से लथपथ
मुँह से टपका लहू कपड़ों में सूखा हुआ
लड़की सोचेगी-
जो हिस्सा अंधा होना था, हो गया
जो चुप होना था, वह हो गया
जो लाचार होना था, वह भी हो गया
फिर अब भला वह क्या करती है
अंधे कुएँ में बैठी।”

गगन जी ने स्त्री जीवन का बहुत गहराई से अध्ययन किया है एवं उनकी पीड़ा को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते हुए ऐसे मार्मिक मुद्दों को उठाया है कि पाठक कविता पढ़कर भावविभोर हो उठता है और कविता को सजीवता से महसूस करता है। ऐसी ही एक कविता गिल जी ने लिखी जिसमें वह भ्रूण हत्या का वर्णन करते हुए स्त्री एवं उस शिशु की पीड़ा के विषय में लिखती हैं-

“बच्चे, तुम अपने घर जाओ
घर कहीं नहीं है?
तो वापस कोख में जाओ
माँ की कोख नहीं है?
पिता के वीर्य में जाओ।”⁶

भारतीय समाज में माताएँ सह जाती हैं हर वो पीड़ा जो पुरुष प्रधान समाज से उन्हें मिली, परंतु अपनी पुत्री को इसी उम्मीद में बिहाती हैं कि जो कष्ट उन्होंने भोगे उनकी पुत्री वह न भोगे।

हर माँ चाहती अपनी पुत्री के लिए एक खुला आकाश जिसमें वह अपने सपनों की उड़ान भर सके। अपने निर्णय स्वयं ले सके एवं अपने भविष्य की निर्माता वह स्वयं हो।

“एक उम्र के बाद माँएँ
खुला छोड़ देती हैं लड़कियों को
उदास होने के लिए
माँएँ सोचती हैं
ऐसा करने से
लड़कियाँ उदास नहीं रहेंगी
कब - आज - कल उन बातों के लिए तो नहीं
जिनके लिए रही थीं कभी वे
या उनकी माँ
या उनकी माँ की माँ।”- ⁶

गगन गिल प्रेम के संदर्भ में दो तरह के प्रेम का वर्णन करती हैं जिसमें संयोग एवं वियोग शामिल है। वियोग का वर्णन करते समय कवयित्री अपनी उपमाओं से पाठक को भावविभोर कर देती हैं। वियोग की इस घड़ी में स्त्री पीड़ा का जो चित्रण गिल जी ने किया है उसी को ध्यान में रखते हुए कुछ लोग गगन गिल को आधुनिक महादेवी वर्मा की उपाधि प्रदान करते हैं।

“जैसे इतने दिन

जी वह

वैसे सारे दिन

जियेगी

उसके बिना

जियेगी सारे दिन वह?”

गगन जी की कविताओं में सामाजिक वर्जनाओं के प्रति कभी भी प्रतिरोध के स्वर नहीं गूँजे इसके बाद भी वह समाज की रूढ़ियों का जो दुष्प्रभाव स्त्री जीवन पर पड़ रहा है उसका वर्णन उन्होंने बड़ी मार्मिकता के साथ किया है। उन्होंने दिखाई स्त्री की मुस्कान के पीछे छिपी उसकी पीड़ा, स्त्री का मौन क्रंदन

“कुछ रोने थे जो लड़की ने कभी नहीं रोए

कुछ रोने थे जिन्हें न रोने की जिद थी उसमें

कुछ ये तो उसे हर कीमत पर

रुलाना चाहते थे।”⁸

“यह अंश स्त्री मन के एक यातना शिविर में तब्दील हो जाने का दस्तावेज है। यह सामाजिक जीवन से अर्जित यातना के कारणों सहित मन में उपस्थित हो जाने के बाद भी स्त्री होने की अपनी अर्थवत्ता के पक्ष में उसे जब्त करने का एक तकलीफदेह चित्र है।”⁹

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री कभी खुद का घर नहीं बना पाती। जब तक अविवाहित रहती है तब तक पराए घर की कहलाई जाती है, विवाह के बाद दूसरे घर से आई कहलाने लगती है। जीवनपर्यंत वह केवल अपने खुशहाल परिवार का स्वप्न संजोती है परंतु वह कहीं न कहीं जानती है यह निष्ठुर समाज उसके उस स्वप्न को साकार न होने देगा एवं उसकी मासूमियत के साथ उसे छलेगा -

“न हैरानी में

न रोने में

न हैसी में

ख्यालों तक में नहीं बचते उनके घर।”¹⁰

गगन जी के काव्य में पितृसत्ता से जन्मी स्त्री पीड़ा का चित्रण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए गगन जी लिखती है की कैसे एक पुरुष अपनी वासना के समुद्र में डूब कर अपनी पत्नी की भावनाओं को दरकिनार कर पराई स्त्री से संबंध बना लेता है गगन जी कविताओं में स्त्री को पीड़िता दिखाया है परंतु वह अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं करती। किसी भी स्वाभिमानी स्त्री को यह बात सहज नहीं जान पड़ती कि उसका पुरुष पर स्त्री सेवन करे। स्त्री स्वाभिमान की रक्षा करते हुए प्रण लेती है कि वह पुरुष के बिना रह लेगी परंतु उसके साथ नहीं। इस निर्णय के पश्चात वह प्रश्नों के घेरे में लाकर खुदको खड़ा करती है एवं स्वयं से प्रश्न करती है की क्या वह पुरुष के बिना रह लेगी-

“अब वह सामने जो है

बिस्तर पर

स्वप्नरत

तुम्हारा कोई नहीं

अजनबी है एक।”¹¹

स्त्री प्रत्येक स्तर पर स्वयं को बिखेर देती है। माता, पत्नी, बहन, पुत्री, दूसरी स्त्री आदि बनते - बनते वह भूल जाती है कि उनके पहले वह एक स्त्री है उसकी भी कुछ गरिमाएं एवं इच्छाएं हैं। अपने को पूर्ण समर्पित कर देने के पश्चात भी वह समाज में उसे सम्मान को नहीं पाती जिसकी वह हकदार थी। स्त्री पीड़ा की अगली कड़ी में गगन की ‘दूसरी स्त्री’ की पीड़ा को रेखांकित करती है एवं वेदनापूर्ण ढंग से लिखती हैं कि ‘दूसरी स्त्री’ जानती है कि इस अनैतिक संबंध से समाज में उसका निर्वाहन कठिन होगा परंतु वह यह सोचकर पीड़ा से भर जाती है कि जिसके लिए वह ‘दूसरी स्त्री’ कहलाई गई उस पुरुष के जीवन में वह ना तो पूर्णतः समाई होती है, ना बाहर होती है। इसी कशमकश में ‘दूसरी स्त्री’ अपना जीवन व्यतीत करती है-

“उसके भी अपने पीले हैं

बालू के

वह रोज-रोज चढ़ती है

रोज-रोज गिरती है।”¹²

निष्कर्ष

गगन गिल की कविता के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि नारी के जीवन के हर पहलू में बहुत गहराई और भिन्नता है और वह अपने विचारों में समाहित है।

वे समाज में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव, अत्याचार को बहुत ही प्रतीकात्मक रूप से परिभाषित करती हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्री को जिन दुःखों का सामना करना पड़ता है उनका सजीव चित्रण किया गया है।

गगन जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने काव्य में दुःख और पीड़ा की बात करती हैं, लेकिन उनके शब्दों में कहीं भी कड़वाहट, गुस्सा या किसी पर दोषारोपण नहीं दिखता। वे पीड़ा देने वाले को कोसने के बजाय उसे बहुत ही शांत और शालीन तरीके से अभिव्यक्त करती हैं।

उनके डेमोक्रेट में स्त्री मन का रूप दिखता है जो अनुशासित है, लेकिन गहरे संशय और दुःखों में लिप्त है। उनकी रचनाएँ किसी काल्पनिक दुःख का वर्णन नहीं करती यद्यपि हमारे समय की महिलाओं की स्थिति एवं उनकी जीवन की कठोर सच्चाइयों को उजागर करती हैं।

संदर्भ सूची-

1. साहित्य के लिए संस्कृति पुरस्कार लेते हुए, 20 जनवरी, 1989, गगन गिल
2. गगन गिल, 'एक दिन लौटेगी की लड़की', राजकमल प्रकाशन 1989, पृष्ठ संख्या-15
3. 'वही', पृष्ठ संख्या - 25
4. 'वही', पृष्ठ संख्या - 28-29
5. 'वही', पृष्ठ संख्या - 30
6. 'वही', पृष्ठ संख्या - 31
7. गगन गिल, 'यह आकांक्षा समय नहीं', राजकमल प्रकाशन 1998, पृष्ठ संख्या - 37
8. गगन गिल, 'एक दिन लौटेगी लड़की', राजकमल प्रकाशन 1989, पृष्ठ संख्या - 27
9. जनसत्ता, 6 मई 1990
10. गगन गिल, 'एक दिन लौटेगी लड़की', राजकमल प्रकाशन 1989, पृष्ठ संख्या - 36
11. गगन गिल, 'अंधेरे में बुद्ध', राजकमल प्रकाशन 1996, पृष्ठ संख्या - 47
12. 'वही', पृष्ठ संख्या - 51?

समकालीन हिंदी कहानी में जल संकट और जनजीवन

सचिन चौरसिया

शोधार्थी, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

डॉ० अवधेश कुमार जैन

शोध निर्देशक, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

सारांश -

‘जल ही जीवन है’, यह उक्ति हम प्राचीन समय से ही सुनते रहे हैं, जिसका वर्णन धार्मिक, आध्यात्मिक, पारंपरिक और लोक कथाओं से होते हुए आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी होता आया है। जल प्रकृति के पांच तत्वों में से एक है जिससे हमारा भी निर्माण हुआ है, और जिसके बिना चर और अचर जीवन की कल्पना करना भी संभव नहीं है। जल एकमात्र ऐसा तत्व है जिसके होने से पृथ्वी में जीवन संभव हुआ है। “पृथ्वी पर उपलब्ध समग्र जल में से लगभग 2.7% जल स्वच्छ है, जिसमें से लगभग 75.2 प्रतिशत जल ध्रुवीय क्षेत्र में जमा रहता है, और 22.6 प्रतिशत भूजल के रूप में विद्यमान है। शेष जल, झीलों नदियों, वायुमंडल, नदी, मृदा और वनस्पति में मौजूद है।”¹ स्वच्छ जल की इतनी कम मात्रा होने के बावजूद प्रकृति ने हम मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति बनाए रखा है, परंतु हमारी महत्वाकांक्षी सोच और निरंतर उपभोग करने की लालसा ने आज अनेक तरह के पर्यावरणीय संकट खड़े किए हैं, जिनमें ‘जल संकट’ एक गंभीर समस्या है। साहित्यकारों एवं समकालीन कहानीकारों ने भी अपने लेखन से, कहानियों के माध्यम से इस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। प्रमुख कहानीकारों में मनोज कुमार पांडेय - ‘पानी’ कहानी, ‘आपकी पानी की टंकी भर गई है भाई साहब!’, प्रदीप जिलवाने - ‘भ्रम के बाहर’ कहानी प्रमुख रूप से हैं। इन कहानियों में कहानीकारों ने न सिर्फ जल के बचाव का प्रयास किया है बल्कि इसके संरक्षण और महत्व को भी समझाने का भी प्रयास किया है। इसके साथ जल के दुरुपयोग से आने वाले संकट और उसके भयानक दुष्परिणामों से अवगत कराया है।

बीज शब्द - समकालीन हिंदी कहानी, जल संकट, जनजीवन, प्रकृति।

प्रस्तावना -

विभिन्न पर्यावरणीय संकटों में ‘जल संकट’ सबसे गंभीर और व्यापक समस्या बन गई है, जो वर्तमान जनजीवन को सबसे अधिक दुष्प्रभावित कर रही है, इसमें भी जल की कमी, प्रदूषित पेयजल, जल भंडारण की कमी आदि समस्याएं शामिल हैं। और भूजल का अतिदोहन, जल प्रदूषण के कारण मानव जीवन संकट में पड़ गया है। समकालीन हिंदी कहानी और कहानीकारों ने इस विकराल समस्या को बहुत ही संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। कहानीकारों ने जल संकट को कथा संरचना के केंद्रीय तत्व के रूप में प्रस्तुत किया है।

इस शोधपत्र का उद्देश्य समकालीन कहानियों में जल संकट से किस प्रकार समाज और जनजीवन प्रभावित होता है तथा साहित्य इस संकट के प्रति चेतना जागृत करने में किस प्रकार से भूमिका निभाता है इसका विश्लेषण करना है।

समकालीन कहानी में सत्ता, लोभ तथा जल संकट और दुष्परिणाम :-

मनोज कुमार पांडे की ‘पानी’ कहानी मनुष्य के लालच और अत्यधिक लाभ की तृष्णा के कारण प्रकृति से छेड़छाड़ के दुष्प्रभावों और उसके परिणामों को अभिव्यक्त करती है। “इस छत पर शरण लिए हमें आज पांचवा दिन है, हम जो इस गांव के थोड़े से बचे हुए लोग हैं, -उन लोगों में से जो गांव छोड़कर भाग गए-जो भूख - प्यास से मर गए - जो बीमारियों के चपेट में आ गए - जो जेल गए, जिन्हें जीव-जंतुओं ने काटा या एक दूसरे को मार डाला, इन तमाम चीजों से बचे हुए हम कठघरेज लोग हैं।... फिर भी यह हमारी ही आंखें हैं जो, यह सब देख रही है, और अभी भी उनमें पानी बचा हुआ है।”² यह कहानी ऐसी ही घटना को उजागर करती है जिसमें मगन ठाकुर की महत्वाकांक्षी सोच ने भरे पूरे गांव समाज को तहस-नहस और उजाड़ कर रख दिया। “खूब हरा - भरा था गांव हमारा हमारे जीवन में बहुत सारी छोटी बड़ी मुश्किल थी गरीबी थी... भूख भी थी पर इसी हरियाली के सहारे हम जैसे तैसे इस सबसे पार पा लेते थे। पर...कौन मानेगा कि महज एक तालाब पाट देने से पूरा गांव तबाह हो गया! कुछ भी नहीं बचा। बचे हम बहतर लोग।”³

मगन ठाकुर ने गांव के तालाब को पाट कर ट्यूबवेल लगाया और पूरे गांव के पानी पर कब्जा कर लिया। पानी बेचा जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे क्षेत्र की हरियाली नष्ट होने लगी, पशु-पक्षी गायब होने लगे, पेड़ सूखने लगे, लोग बेरोजगार हो गए, भूखे पेट मरने, लगे एक दूसरे को ही मारकर खाने लगे, धरती में दरारें पड़ गईं मानो धरती चीख रही हो, गांव में अनेक बीमारियां फैली, जादू-टोना, टोटका होने लगा पूरे गांव में अराजकता फैल गई।

“जमीन में जगह-जगह दरारें फट रही थी। उन दरारों में ऐसे ऐसे कीड़े-मकोड़े दिखाई पड़ रहे थे जिनको हमने तो क्या गांव के पुरखे - पुरनियों तक किसी ने नहीं देखा था। पता नहीं वह पहले से ही धरती में रहते थे, और अब बाहर निकल आए थे, कहीं बाहर से आकर हम पर धावा बोल रहे थे।”⁴ इस कहानी में लोग न सिर्फ पानी की कमी से पीड़ित हुए बल्कि अंत में अधिक वर्षा के कारण भी आहत हुए और उन्हें बचने का ठिकाना ढूंढना पड़ा। अतः कहानी यह भी बताती है कि अति किसी भी चीज की हानिकारक होती है, इसलिए यह कहानी सामंजस्य बनाए रखना भी सिखाती है। कहानी के अंत में जब लोगों को यह बात समझ आती है कि यह सब हमारे द्वारा ही किए गए कर्मों का फल है तब सब मिलकर रहने और प्रकृति की सुरक्षा का भाव लेकर इकट्ठा होते हैं और अपने सुखद भविष्य की कल्पना करते हैं। “हम जानते हैं कि जब पानी सूखेगा तो एक नई धरती हमारा इंतजार कर रही होगी। घास और नमी और जीवन से भरी। इस पर हम 72 लोगों में कोई बहस नहीं है कि हम इस हरियाली को कायम रखेंगे। हम जो बचे हैं इसे हमारा सामूहिक बयान माना जाए।”⁵

मनोज कुमार पांडे की एक और ऐसी कहानी ‘आपकी पानी की टंकी भर गई है भाई साहब!’ है जो शहरों में बड़े अमीर घर के लोगों (टी.पी. शुक्ला जैसे, जो कि शिक्षा विभाग में बड़े बाबू के पद पर हैं) द्वारा पानी की बर्बादी करने और छोटे से गांव से आए एक पढ़ा लिखा गरीब व्यक्ति जुगल - जिसने कृषि विश्वविद्यालय से कृषि विज्ञान में एमएससी और पीएचडी कर रखी है, वह बहते हुए पानी को बर्बाद होने से बचाने के लिए कई प्रयास करता है। “वह बुंदेलखंड के एक ऐसे रूखे इलाके से आता है जहां पानी की हर एक बूंद के पीछे घंटे की मेहनत और किस्मत का हाथ होता है, उसके घर के पास ना कोई बड़ी नदी है ना तालाब...उसके लिए पानी की हर एक बूंद चमत्कार है, फंतासी है। वह इस फंतासी की गिरफ्त में है।”⁶ जुगल से पानी का बहना देखा नहीं जाता है और वह बहते हुए पानी को रोकने के अनेक निरर्थक और अथक प्रयास करता है। परंतु टीपी शुक्ला अपनी अमीरी में अंधे हो गए हैं और उस युवक को ही गालियां बकते हैं। “एक दिन वह सामने वाले की घंटी बजा ही देता है, थोड़ी देर बाद शिक्षा विभाग का बड़ा बाबू बाहर निकलता है, तो जुगल नमस्ते करता है, और कहता है- ‘आपकी पानी की टंकी भर गई है भाई साहब! बहुत देर से पानी बह रहा है कृपया बंद कर दें।’.... टीपी शुक्ला उसकी इस हरकत पर चकित है कि कोई इस तरह का दुस्साहस कर कैसे सकता है? वह भी दो कौड़ी का किराएदार! जिसकी ना जाति का पता ना धर्म का।”⁷ जुगल इस तरह से अनेक बार टीपी शुक्ला को पानी बहने से रोकने का प्रयास करता है परंतु पद और धन में अंधे टीपी शुक्ला को उसका रोकना अपनी शान पर धब्बा लगता है और जुगल को उसके क्रोध का शिकार होना पड़ता है। “टंकी से बहते हुए पानी की तरह अपनी उदासी और अकेलेपन में गम जुगल को सर झुकाए हुए आगे बढ़ते रहना है। उसे पता भी नहीं चलने वाला की कब टीपी शुक्ला, बड़ा बाबू, शिक्षा विभाग उसे अपनी डेढ़ करोड़ की कार से उड़ाते हुए आगे बढ़ जाने वाला है।”⁸ लेखक आगाह करना चाहता है कि इस तरह से न जाने कितने जुगल टीपी शुक्ला जैसे लोगों के क्रोध का शिकार हो रहे हैं लेखक हमें कहना चाह रहा है कि आप चाहें तो यह सब रोका जा सकता है।

“प्रिय पाठक !आप चाहें तो यह अंत बादल भी सकता है।”

इस प्रकार से यह कहानी संदेश देती है कि हमारे मानव समाज और प्रकृति, पर्यावरण के बीच जो असंतुलन हो रहा है उसे हमें ही आगे बढ़कर ठीक करना होगा अपने विवेक का सही प्रयोग करके सभी के बारे में सोचना होगा। इसी के साथ एक और कहानी जो जल प्रदूषण के दुष्परिणाम को बताती है तथा प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन बनाए रखने को प्रेरित करती है वह है ‘भ्राम के बाहर’ कहानी जिसके लेखक हैं प्रदीप जिलवाने इस कहानी में मुख्य दो पात्र हैं, एक जलपरी जो नदी का रूप है और वह सिर्फ विवेक को दिखाई देती है। दूसरा पात्र विवेक है, जिसे जलपरी दिखाई देती है, और विवेक उससे आकर्षित है। विवेक को बचपन से ही नदी के किनारे बैठना अच्छा लगता है उसे नदी से और मछलियों से लगाव है। एक दिन नदी के किनारे उसे एक सुंदर लड़की दिखाई देती है, नदी के घटते जल स्तर और प्रदूषित होते पानी से चिंतित होकर जलपरी विवेक से इस बारे में अपनी चिंता व्यक्त करती है क्योंकि उसका अस्तित्व खतरे में है। “एक बात बताओ विवेक? क्या धरती महज इंसानों के लिए बनी है? इंसान ऐसा क्यों समझता है कि इस धरती को बनाने, बिगाड़ने और संवारने या खत्म करने का अधिकार सिर्फ उसी के पास है।”¹⁰ उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि यह धरती और प्रकृति मनुष्यों के लिए ही नहीं है इसके अलावा इस धरती पर जितने भी प्राणी चर-अचर, जीव-जंतु, पशु - पक्षी, नदी-पर्वत हैं, सबका बराबर अधिकार है और सबके अस्तित्व के बने रहने में ही मनुष्य का भी अस्तित्व बना रह सकता है। इन सबके बिना मानव सभ्यता का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा। कहानी में जलपरी विवेक से कहती है - “मनुष्य को यह समझने की सख्त आवश्यकता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए या उसी के होने से नहीं है! यह धरती चींटी और चिड़िया की भी उतनी ही है जितनी मनुष्य की है। इस धरती पर मछलियों, गिलहरियों का भी उतना ही अधिकार है जितना एक मनुष्य का है।”¹¹ मानव को यह बात समझनी होगी। अपने बीते हुए समय की घटनाओं से और वर्तमान में हो रही दुर्घटना और दुष्प्रभावों से सीख लेकर मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास निरंतर करते रहना चाहिए। इस बात को जलपरी के इस कथन से स्पष्ट किया जा सकता है। “मेरी समझ में यह नहीं आता कि मनुष्य अपने इतिहास से अतीत से कुछ नहीं सीखता है? वह ईश्वर को पूजता तो है, मगर उसके दिखाए मार्ग पर चलता क्यों नहीं है? अब देखो! भगवान विष्णु ने इस धरती पर जब-जब अवतार लिए तो हर अवतार में सिर्फ मनुष्य ही तो नहीं बने थे!”¹² स्पष्ट है कि ईश्वर यदि सब प्राणियों को बराबर का महत्व देता है तो हम मनुष्य को भी सभी प्राणियों को बराबर का महत्व देना चाहिए और सभी को जीने का अधिकार भी होना चाहिए। ईश्वर की बनाई प्रत्येक रचना में ईश्वर का ही अंश होता है। हम सबको इस बात को समझने की आवश्यकता है क्योंकि प्रकृति ही ईश्वर का प्रतिरूप है अतः प्रकृति को ईश्वर मानते हुए उसके प्रत्येक उपादान को संरक्षित और पोषित करना हम बुद्धिजीवी मनुष्यों का कर्म और धर्म होना चाहिए।

जल संकट : एक सामाजिक यथार्थ -

जल संकट मात्र प्राकृत कारणों से उत्पन्न समस्या नहीं है, बल्कि यह मानव निर्मित संकट भी है। वैज्ञानिक युग के बढ़ते औद्योगिक कचरे, नालियों में बहता मल - मूत्र, गंदा पानी, कृषि में प्रयोग रसायन, नदियों का खनन और अवरोधन, मार्ग परिवर्तन आदि इस संकट को और गहरा बनाते हैं। वर्तमान में दिन - प्रतिदिन पेयजल और स्वच्छ जल की आपूर्ति का संकट बढ़ रहा है। हर दिन पत्रिकाओं में आने वाली खबरें और छपने वाले आलेखों से हम समझ सकते हैं कि जल संकट भविष्य में एक बड़ा खतरा बन सकता है।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कहानी में जल संकट न केवल पर्यावरणीय समस्या है बल्कि यह एक सामाजिक समस्या बनकर भी उभरी है। हिंदी कहानीकारों ने भी कहानियों के माध्यम से मानव समाज के बीच असमानताओं, संरचनाओं और पर्यावरण के प्रति मानवीय संवेदनाओं को व्यक्त किया है। कहानियों में जल संरक्षण की आवश्यकता भविष्य में इसके महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है। 'जल ही जीवन है' अतः जीवन को बचाए रखने के लिए जल को बचाना अति आवश्यक है। इस प्रकार समकालीन हिंदी कहानी जल संकट के संदर्भ में न केवल यथार्थ का दस्तावेज है बल्कि परिवर्तन की प्रेरणा भी है।

संदर्भ :-

1. <https://nwda.gov.in> राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण की आंतरिक पत्रिका, सामुदायिक केंद्र, साकेत, नई दिल्ली, प्रकाशित। संपादकीय-के.पी.गुप्ता, निदेशक एवं राजभाषा अधिकारी, पेज न.4
2. पांडेय- मनोज - कुमार- पानी - वाणी प्रकाशन, 2016
3. वही।
4. वही।
5. वही।
6. पांडेय - मनोज - कुमार - 'आपकी टंकी भर गई है भाई साहब!' https://sammukh.com/manoj_kumar_pandey_50/ मनोज की पचासवीं कहानी, 2025
7. वही।
8. वही।
9. वही।
10. जिलवाने- प्रदीप - 'भ्रम के बाहर'- कहानी - पहल पत्रिका, (कहानी विशेषांक, अंक 122), 2020
11. वही।
12. वही।

सुंदरकांड: हनुमान की भाषा-शैली का विस्तृत विश्लेषण

डॉ० वंदना शर्मा

सहायक. प्रो., हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय नलवा-हिसार (हरियाणा)

सारांश:

तुलसीदास कृत रामचरितमानस का पंचम अध्याय सुंदरकांड शैली-विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, विशेषतः हनुमान की चरित्र-केंद्रित भाषा-शैली के कारण। हनुमान की वाणी में दास्यभक्ति, विनय, वीररस, ओज, सरलता, संतुलन तथा लक्ष्य के प्रति एकाग्रता का अद्भुत संगम मिलता है। उनके संवादों में लोक-प्रचलित रूपकों, ओजस्वी शब्दावली, संक्षिप्त किन्तु प्रभावी संरचना, और भावधारात्मक अभिव्यक्ति का विशिष्ट प्रभाव दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हनुमान की भाषा-शैली का शब्द-स्तर, वाक्य-स्तर, अर्थ-स्तर, अलंकारिक योजना और सांस्कृतिक-चेतना की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

1. प्रस्तावना : सुंदरकांड का मुख्य नायक हनुमान है- जिसका संपूर्ण व्यक्तित्व “कर्म, ज्ञान और भक्ति” का परिपूर्ण रूप प्रदर्शित करता है। उसकी भाषा-शैली भी उसी बहुआयामी व्यक्तित्व का दर्पण है। चौँक हनुमान दूत, योद्धा, भक्त तथा नीतिज्ञ सभी रूपों में उपस्थित है, अतः उसके संवाद कई शैलीगत धरातलों पर अर्थपूर्ण बन जाते हैं। शैली-विज्ञान (Stylistics) के अनुसार, भाषा का स्वरूप चरित्र, संदर्भ और भावभूमि के अनुसार बदलता है। सुंदरकांड में हनुमान के संवाद इस परिवर्तनशीलता के आदर्श उदाहरण हैं।

हनुमान की भाषा-शैली की प्रमुख विशेषताएँ:-

- सरलता, सहजता और प्रवाह:- हनुमान की भाषा-शैली का विस्तृत विश्लेषण सरलता, सहजता और प्रवाह:- हनुमान की भाषा में संस्कृतनिष्ठता कम तथा सहज लोकबोध अधिक है। तुलसीदास ने हनुमान के संवादों में अधिकतर तद्भव और लोक-प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण-“नाथ! नयन ज्योति, पंथ तुमारा। मैं सेवक, समय पाछि हारा।”- सुंदरकांड, रामचरितमानस। इस तरह की भाषा हनुमान के दास्य-भाव को और अधिक विश्वसनीय बनाती है।
- ओज-प्रधान और वीर-रसयुक्त भाषा:-लंका प्रवेश, समुद्र-लाँघन और अशोक वाटिका ध्वंस के प्रसंगों में हनुमान की भाषा में वीर-रस, ऊँचे मनोबल और ओज की अभिव्यक्ति मिलती है। उदाहरण-“कंधारि असुर निकर धरु तोरी।”²- मानस, सुंदरकांड .इसमें ध्वन्यात्मक तेजस्विता (ओज) स्पष्ट है- ध/त/र ध्वनियाँ प्रहारात्मक शक्ति को प्रकट करती हैं।
- विनय और भक्ति-प्रधान शैली:-राम के प्रति हनुमान की भाषा पूर्णतः विनय-शैली में ढली हुई है। “प्रभु चरित सुनत मनु हरषाईराम दूत मैं मतिअतिभाई।”³- मानस, सुंदरकांड यह विनय और भक्ति का ऐसा संतुलन है जो हनुमान को “नायक-भक्त” के रूप में स्थापित करता है।
- नीति, बुद्धिमत्ता और दूत-कौशल की शैली:-लंका में विभीषण से वार्ता तथा राम-कार्य की योजना में हनुमान की भाषा अत्यंत नीति-युक्त, संयत और बुद्धिपूर्ण हो जाती है। उनके वाक्य छोटी संरचना में अधिक अर्थ ग्रहण कराते हैं- इसे शैली-विज्ञान में “अर्थ-घनत्व” कहा जाता है। उदाहरण-“सचिव नीति सब गुन रहहींराम कृपा बिनु मिलहिं न जहिँ।”⁴ - मानस, सुंदरकांड
- रूपकात्मक, संकेतात्मक और कूटभाषा का उपयोग:- राक्षसों के बीच स्वयं को छिपाना, सीता से संवाद, और लंका में स्थितियों का निरीक्षण- इन अवसरों पर हनुमान की वाणी संकेतात्मक (Symbolic) शैली अपनाती है। उदाहरण-“जथा सुरसरि गंगा।”- मानस, सुंदरकांड यह रूपक उनके मध्यम, संतुलित और विनयशील व्यक्तित्व का संकेत है।
- भाषा-शैली का शब्द-स्तरीय विश्लेषण:-तत्सम, तद्भव, देशज और लोक-शब्दों का संतुलन
- हनुमान की भाषा में-तत्सम शब्द- ओज व तेज
- तद्भव/लोक शब्द- सहजता
- देशज शब्द- स्थानीयता और भाव-प्रकटीकरण
- भक्ति-कालीन शब्द- सांस्कृतिक परिवेश उदाहरण-तत्सम: “प्रभु”, “नयन”, “दूत”
- तद्भव: “देखि”, “लागे”, “भई”
- देशज: “लाँघि”, “दूभर”, “घूरे”

ओज-निर्माण में ध्वनियों का योगदान:-

- हनुमान की वाणी में प्रायः-स्पर्श/प्रहारात्मक ध्वनियाँ: ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, क, ख
- घोष ध्वनियाँ: भाव-गहनता

- अनुनासिक ध्वनियाँ: कोमलता, उदाहरण-“गिरि सम दनुज दलन महिपाला।”- कठोर ध्वनियों से ओज उत्पन्न।- मानस,
- वाक्य-स्तरीय विश्लेषण: संक्षिप्त, सारगर्भित वाक्य-हनुमान के वाक्यों में स्वल्प-शब्दों में महा-अर्थ होता है-“राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहा विश्राम।”⁵- मानस, सुंदरकांड
- आदेशात्मक और प्रेरक वाक्य-अशोक वाटिका में, या रावण को चेताते समय-“सुग्रीवहि भेटेहि कहिहउँ मैं ताता।”- मानस
- संवाद-शैली:-सीता, विभीषण और राम से संवाद करते हुए हनुमान की शैली भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है-
- सीता से- करुण, भक्ति, विनीत
- विभीषण से- नीतिपूर्ण
- राम से- पूर्ण भक्ति, श्रद्धा, सरलता

अर्थ-स्तर पर विश्लेषण:-

- प्रत्यक्ष अर्थ:-क्रिया-प्रधान, स्पष्ट और तात्कालिक वाक्य।
- परार्थ/लक्षणा:-राम की महानता का वर्णन-“राम अनुज लघुसीलु सुभाऊ।”- मानस, (लक्षणा- नम्रता के माध्यम से महानता का संकेत)
- प्रतीक और बिम्ब:-सीता को “शशि-समान शीतलता” का बिम्ब,लंका-“अंधकार का प्रतीक”,हनुमान-“आस्था और शक्ति का प्रतीक” है।

अलंकारिक शैली:-

- उपमा:“जनु जलधि लाँघत कपि जाया।”- मानस,
- रूपक:हनुमान-“वज्र-देह” का रूपक,लंका-“मधुकर-वन” का रूपक
- उत्प्रेक्षा: “गरजत घन जहिं-तहिं बरषा।”- मानस,
- अतिशयोक्ति: “गिरि सम दनुज दलन।”- मानस, सुंदरकांड यह अलंकार हनुमान की वीरता और ओज को उत्कर्ष देता है।
- हनुमान की भाषा-शैली का विस्तृत विश्लेषणहनुमान की भाषा-शैली का सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्व:भाषा में भक्ति-कालीन लोक-भावना, दास्यभाव का सांस्कृतिक शिखर, नारी-सम्बोधन में पूर्ण मर्यादा,धर्म, नीति व कर्तव्य की भारतीय दृष्टि, लोकमानस के नायक के रूप में स्थापित है।

निष्कर्ष :

हनुमान की भाषा-शैली सुंदरकांड की काव्यात्मक पहचान है। इसमें-ओज,भक्ति,नीति,करुणा,विनय,वीरता आदि सभी का उत्कृष्ट संतुलन मिलता है। तुलसीदास ने हनुमान की भाषा को यथार्थ, लोकानुरूप, प्रभावकारी और सांस्कृतिक रूप से अर्थ-समृद्ध बनाकर सुंदरकांड को काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत ऊँचा स्थान प्रदान किया है।

संदर्भ सूची:

- 1) दोहा संख्या 31, मानस, सुंदरकांड
- 2) दोहा संख्या 37 की प्रथम चौपाई ,मानस, सुंदरकांड
- 3) दोहा संख्या 4 की प्रथम चौपाई मानस, सुंदरकांड
- 4) दोहा संख्या 40 की प्रथम चौपाई मानस, सुंदरकांड
- 5) दोहा संख्या 1, मानस, सुंदरकांड

अध्ययनरत पुस्तकें:

- तुलसीदास - रामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण।
- नगेन्द्र - हिन्दी शैली-विज्ञान, लोकभारती प्रकाशन।
- डॉ. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन।
- डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - भक्ति काव्य की भाषिक विशेषताएँ, प्रयाग।
- रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - कविता और काव्यशास्त्र।
- मैकहेनरी, जॉर्ज & Stylistics and Literary Linguistics, Oñford Pre।

टैरिफ वार की उलझन में भारतीय विदेश नीति के प्रभाव का मूल्यांकन

डॉ० निलेश कुमार त्रिपाठी

पूर्व शोध छात्र, राजनीतिविज्ञान

मोदी की विदेश नीति ना किसी का पिछलागू है और न किसी का विरोधी, केवल भारत का हित सर्वोपरि की बात करती है। देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अमेरिका रूस के बीच जारी ट्रेड वार तथा एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली बनने की होड़ में स्पष्ट कर दिया है कि भारत का हित सर्वोपरि है, भारत रूस और अमेरिका दोनों देश के साथ व्यापारिक और कूटनीतिक संबंध मजबूती से बनाए रखना चाहता है। हालांकि अमेरिका का भारत पर 100% का टैरिफ वार, अब और 500% का टैरिफ लगाने की धमकी से अमेरिका भारत के बीच व्यापारिक और कूटनीतिक संबंध बिगड़ने के संकेत मिल रहे हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप यह चाहते हैं कि रूस-यूक्रेन युद्ध में रूस जब तक जंग नहीं रोकता तब तक अमेरिका को कूटनीतिक सफलता विश्व पटल पर हासिल नहीं हो सकती है। रूस का बड़ा बाजार भारत के साथ जुड़ा हुआ है/ ट्रंप अमेरिकी हित सर्वोपरि की बात कर रहे हैं। सआज अमेरिका की जीडीपी की बात करें तो अमेरिका की आर्थिक हालत ठीक नहीं जिसके चलते ट्रंप अपने देश में भारत और अन्य देशों के लोगों को नौकरी, वीजा पर प्रतिबंध की बात कर रहे हैं और कुछ देशों पर प्रतिबंध लगा भी दिया है /साथ ही कई अंतरराष्ट्रीय संगठन से अलग होने की प्रशासनिक तैयारी भी कर चुके हैं। जिसमें आई एम एस एम शामिल है। अंतराष्ट्रीय सोलर संगठन भारत और फ्रांस के साझा प्रयास से बनाया गया है जिसका मुख्यालय गुरुग्राम में है/ अमेरिका का इस संगठन से हटने से वैश्विक शक्ति कम होगी तथा आर्थिक रूप से संगठन को नुकसान होगा जिसका सीधा प्रभाव भारतीय कूटनीति तथा विदेश नीति के साथ-साथ आर्थिक नीति पर भी पड़ेगा। ट्रंप के पहले कार्यकाल में मोदी-ट्रंप की जोड़ी ने भारत-अमेरिकी संबंध की ऊंचाइयों पर ले गया लेकिन रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद रूस अमेरिका के खराब संबंध के कारण अमेरिका भारत के नीति को खासा प्रभावित कर रहा है/ अमेरिका की नीति यह रही है कि वह भारत को चीन के सामने एक राजनीतिक /सामरिक और वैश्विक शक्ति के रूप में खड़ा करना चाहता है ताकि चीन के बढ़ते वैश्विक प्रभाव को भारत के माध्यम से रोका जा सके लेकिन भारतीय विदेश नीति में इस कूटनीति का कोई स्थान नहीं है। नरेंद्र मोदी कभी भी अमेरिका को भारत की धरती पर ऐसा कुछ नहीं करने देंगे जिसका दूरगामी प्रभाव भारत पर पड़ेगा /आज विश्व में ट्रेड वार और अलग-अलग देशों के बीच तृतीय विश्व युद्ध का जंग छिड़ हुआ है हम यह मान सकते हैं की प्रथम विश्व युद्ध तथा द्वितीय विश्व युद्ध में दुनिया दो गुटों में लड़ रही थी और आज तृतीय विश्व युद्ध की जो शुरुआत हुई है उसमें दुनिया बहु ध्रुवीय होकर लड़ रही है और इसका केंद्र रूस और अमेरिका ही है।

रूस यूक्रेन युद्ध, इसराइल हमला, ईरान जंग, अरब कुवैत के बीच जंग भारत-पाकिस्तान के बीच ऑपरेशन सिंदूर, अफगानिस्तान-पाकिस्तान के बीच युद्ध, बांग्लादेश में तख्ता पलट, अमेरिका के वेनेजुएला पर हमला, चीन ताइवान के बीच तनातनी इस तरह से पूरा विश्व जंग के आगे उतार चुका है, इससे इतर ट्रंप का टैरिफ और अमेरिका हित सर्वोपरि से भारत की अर्थव्यवस्था काफी प्रभावित होगी और इसके दूरगामी परिणाम देखने को मिल सकते हैं। अमेरिका को यह मालूम है कि रूस का तेल बाजार की सबसे बड़ी खपत भारत में होती है और जिसके बल पर रूस यूक्रेन के खिलाफ जंग रखे हुए हैं साथ ही रूस और चीन में काफी नजदीकियां एक तीसरी महाशक्ति गठबंधन की ओर संकेत कर रही है जिससे अमेरिका घबराया हुआ है। अमेरिका विदेश नीति वर्तमान में भारत को प्रभावित करने का खास प्रयास कर रही है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है, अमेरिका भारत के साथ आर्थिक संबंध को खत्म करने के लिए तेजी से काम कर रहा है, अमेरिका यह चाहता है कि 100 से 500% का टैरिफ लगते ही भारत की जीडीपी में 2% की गिरावट आएगी जो भारत के लिए अच्छा नहीं होगा। 100% टैरिफ से भारत को ज्यादा नुकसान नहीं हुआ हालांकि ट्रंप की टैरिफ नीति से भारत और चीन करीब आने लगे हैं और भारत रूस से अभी भी तेल के साथ-साथ अन्य व्यापारिक संबंध बनाए हुए हैं। मोदी यह जानते हैं कि अमेरिका कभी किसी का सगा नहीं है और हमेशा उसकी हित सर्वोपरि रही है अमेरिका हित में खत्म होते ही वह किसी भी देश से दुश्मनी मोल ले लेता है। रूसी राष्ट्रपति की भारत यात्रा और व्यापारिक डील से अमेरिका नाखुश है इसलिए तो अमेरिकी विदेश नीति दक्षिण एशिया में भारतीय विदेश नीतियों के कूटनीतिक प्रभाव को कम करने के लिए चक्रव्यूह रच चुकी है, ऑपरेशन सिंदूर पर झूठी खबर फैलाकर अमेरिका ने भारत पाक युद्ध में अपने हस्तक्षेप को दिखाया जो सरासर बेबुनियाद था जिस पर भारत ने सफाई से अमेरिका के इस प्रश्न का उत्तर दिया कि अमेरिका का इस युद्ध से कोई लेना-देना नहीं है। ट्रंप भारत के इस रूप से काफी नाखुश हुए ट्रंप की दोहरी नीति के तहत पाकिस्तान को आर्थिक मदद देना और भारत पर टैरिफ लगाना यह कहीं ना कहीं से भारत को कमजोर करने की अमेरिकी साजिश है हालांकि भारत भी अपने कूटनीति संबंध को मजबूत करने के लिए अफगानिस्तान के तालिबान सरकार के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित कर अफगानिस्तान में अपने पुराने हितों के प्रति कार्य करना शुरू कर दिया है जिसमें तालिबान सरकार की भी महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा रही है। अमेरिका यह जानता है कि रूस की शक्ति को कम करने के लिए भारत पर आर्थिक प्रतिबंध चलाना बहुत ही जरूरी है लेकिन वर्तमान भारत की मोदी सरकार इससे भी निपटने के लिए अपने बिजनेस नीति में बदलाव करते हुए मल्टी एलाइड समझौते पर काम कर रही है जिसको देखकर ट्रंप घबराए हुए हैं / भारत आज 27 देश के साथ अपने रूप के साथ व्यापारिक संबंध बना रहा है, मेक इन इंडिया, आत्मनिर्भर भारत कार्यक्रम के तहत भारत अपने पड़ोसी देश के साथ-साथ यूरोप

और अफ्रीका देश में अपने वैश्विक सामरिक और आर्थिक संबंध को मजबूत कर रहा है। टैरिफ वार के बीच भारत अमेरिकी व्यापार संबंध 86 अरब डॉलर का है दुनिया का पहला देश अमेरिका ही है जिसके साथ भारत का व्यापार संबंध सबसे मजबूत है वहीं रूस के साथ 68.7 अरब डॉलर का व्यापार घाटा के साथ होता है। भारत रूस से 63.8 अरब डॉलर का आयात करता है जबकि 4.9 अरब डॉलर का निर्यात होता है /अमेरिका यह बखूबी जानता है रूस को कमजोर करने के लिए उसे भारत पर निर्भरता को खत्म करना होगा जिसका एक उपाय 500 परसेंट टैरिफ है। 500 परसेंट टैरिफ से भारत में आर्थिक बदलाव देखे जा सकते हैं देश में तेल का दाम बढ़ेगा जिसे सामानों के दर में वृद्धि देखी जा सकती है/ भारत में महंगाई दर बढ़ाने की संभावना के साथ ही भारत इसकी तैयारी कर चुका है और मोदी सरकार के समक्ष आने वाले चुनौतियों की सामना करने के लिए भारत में स्टार्टअप को बढ़ावा देने के लिए व्यापक स्तर पर कार्यक्रम चल रहे हैं हालांकि मोदी सरकार अपने कूटनीतिक प्रयास को जारी रखे हुए हैं अगर ऐसा नहीं होता है तो भारत चीन के बीच व्यापार में एक बड़ी साझेदारी दिख सकती है जो भारत के लिए ठीक नहीं होगा। चीन को यह मालूम है कि भारत अमेरिका के बीच खराब होते संबंध उसके लिए अवसर है भारत अमेरिका बीच-बीच सामरिक तथा व्यापारिक संबंध खत्म होगा तो चीन एक विश्व शक्ति के रूप में एशिया के साथ-साथ विश्व पटल पर आगे बढ़ेगा, जिसका खासा नुकसान भारतीय विदेश नीति का दक्षिण एशिया में देखने को मिल सकता है/ वर्तमान संदर्भ में चीन और अमेरिका का दक्षिण एशिया में भारत के खिलाफ गुटबंदी, गोलबंदी और राष्ट्रवादी शक्तियों का इस्तेमाल शुरू कर दिया गया है जिसके कारण भारत के अंदर अशांति फैलाई जा सके, नेपाल में जैन जी आंदोलन से तथा पलट तथा दंगों से भारत नेपाल संबंध में खास तनातनी देखने को मिली है/ जिससे अमेरिका और चीन का सीधा हस्तक्षेप देखा जा सकता है, अमेरिका से सोशल मीडिया के माध्यम से नेपाल में अस्थिरता पैदा की गई इसके सबूत नेपाल से प्राप्त हो रहे हैं, वहीं बांग्लादेश में शेख हसीना का तख्ता पलट तथा अमेरिकी समर्थित यूनूस की सरकार जो भारत के खिलाफ अमेरिकी इशारों पर कार्य कर रही है/ जिससे यह स्पष्ट संकेत मिल रहे हैं कि अमेरिका कहीं न कहीं भारत के पड़ोसी देशों के राजनीति में हस्तक्षेप कर भारत के विदेश नीति और कूटनीति प्रयास को विफल करना चाहता है। बांग्लादेश में हिंदुओं के साथ बर्बरता, हिंदुओं मंदिरों पर आक्रमण से सीधा प्रभाव दिल्ली पर पड़ा है। अमेरिका बांग्लादेश के माध्यम से भारत में कट्टरवादी भावना को भड़काकर जैन जी जैसे आंदोलन को संचालित कर मोदी के को सत्ता से हटाने की चाल चल रहा है जिसका ज्ञान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को है।

भारत सरकार का बांग्लादेश पर नफा तुला बयान और स्वयं भारत के अपील से कहीं न कहीं स्पष्ट संकेत मिल रही है कि दक्षिण एशिया में मोदी पड़ोसी प्रथम नीति को बनाए रखना चाहते वही चीन इस अवसर को अपने प्रभाव में लेना चाहता है चीन और अमेरिका यह जनता है तो भारत को कमजोर करने का सीधा रास्ता पाकिस्तान और बांग्लादेश और नेपाल से ही जाता है आज अमेरिका के इशारों पर पाकिस्तान बांग्लादेश के राष्ट्रीय अध्यक्ष मंच साझा करते हुए 1971 के बंद पड़े कूटनीतिक संबंध और कार्यों को शुरू करने का ऐलान कर चुके हैं जिसमें चीन भी अप्रत्यक्ष रूप से शामिल है। चीन यह चाहता है कि बांग्लादेश के रास्ते पूर्वोत्तर भारत के गलियारों तक पहुंच बनाई जा सकती है ताकि अरुणाचल सिक्किम में अपनी कूटनीतिक चाल में कामयाब हो सके हालांकि भारत की पहली निगाहें बांग्लादेश में पाकिस्तानी को लेकर है साथी इसी का बांग्लादेश में आई इस आई की पैठ जमाने की खबर भारत को मिल चुकी है जिसको लेकर भारत सीमा पर चौकसी तेज हो गई है

अमेरिकी विदेश नीति और उसके साथ व्यापारिक संबंधों का सीधा प्रभाव दक्षिण एशिया में भारत के विदेश नीति को प्रभावित करते हुए देखी जा सकती है जिसको लेकर दिल्ली अपना फूंक फूंक कर कदम उठा रहा है रूस अपने हित यूक्रेन जंग को जीत कर ही दम लेना चाहता है, जिसका खामियाजा कहीं न कहीं से भारत को भुगतना पड़ रहा है मोदी पुतिन की दोस्ती ट्रंप से कहीं बेहतर है, भारत रूस का अविश्वासित साझेदारी रहा है 1971 के जंग से लेकर ऑपरेशन सिंदूर तक रूस भारत का सहयोगी रहा है/ जिससे भारत कभी खत्म नहीं करना चाहता है। भारत यह जानता है कि अमेरिका टैरिफ बार, पाकिस्तान और बांग्लादेश को भारत के खिलाफ जंग के लिए उसकना के अलावा और कुछ भी नहीं कर सकता है अगर भारत के तरफ से अमेरिकी साजो सामान पर 500 परसेंट की तारीफ लगा दी जाए तो अमेरिका को आर्थिक नुकसान होगा क्योंकि अमेरिका हो या रूस या चीन भारत दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है। फिलहाल विश्व पटल पर बहुगुटबंदियों के बीच तीसरे विशुद्ध की तैयारी चल रही है जब तक रूस अमेरिका के बीच शांति वार्ता नहीं हो जाती तब तक भारत को कूटनीतिक प्रयास करना होगा। इसमें भारत और चीन की बड़ी भूमिका हो सकती है लिहाजा भारत को कूटनीतिक प्रयास जारी रखते हुए रूस के राष्ट्रपति पुतिन और अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप को भारत के धरती पर शांति वार्ता और अपने हित सर्वोपरि को खत्म करने के लिए आमंत्रित करना चाहिए जिससे विश्व व्यवस्था में शांति के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर भारत का महागुरु के रूप में देखा जा सकता है और वसुधैव कुटुंब की नीति सफल होगी।

संदर्भ

भारत सरकार विदेश मंत्रालय का वार्षिक रिपोर्ट

राष्ट्रीय दैनिक हिंदुस्तान का संपादकीय।

दैनिक भास्कर संपादकीय पाकिस्तान का बगल गीर बांग्लादेश आलेख।

जंग की आहटें और नया साल हिंदुस्तान संपादकीय शशि शेखर।

जैगो के नए दौर में उलझती दुनिया एमजी अकबरपुर विदेश राज्य मंत्री साहब वरिष्ठ पत्रकार हिंदुस्तान।

मैथिलीशरण गुप्त के नाटकों में अभिव्यक्त सामाजिक और राजनैतिक यथार्थ

डॉ० श्रीहरि त्रिपाठी

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

मैथिलीशरण गुप्त की चर्चा होते ही उनका कवि रूप और उनके महनीय काव्य ग्रंथ हमारी चर्चा के केंद्र में अक्सर आते हैं। उन्हीं के सहारे हम उनके रचनाकार व्यक्तित्व पर चर्चा करते हैं। साकेत, यशोधरा, भारत भारती जैसी कृतियां ही संवाद का माध्यम बनती हैं। इस तरह गुप्त जी द्वारा सृजित गद्य साहित्य हमारी दृष्टि से प्रायः ओझल ही रहता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जागरण सुधार काल के रचनाकार थे। पराधीनता के समय में देश विदेशी अंग्रेजी शासन से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था, तो वही अपने आंतरिक विसंगतियों को भी दूर करने का प्रयास कर रहा था। पुनर्जागरण की बात करते हुए डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है “पुनर्जागरण काल की यह मुख्य प्रतिज्ञा थी कि हिंदू जाति की एकांतिक भावना का निरसन कर उसे एक समाज के रूप में गठित किया जाए। ब्रह्म समाज प्रार्थना समाज, आर्य समाज और आगे चलकर भारतेन्दु द्वारा संस्थापित तदीय समाज नामकरण और उनके कार्यक्रम इस मान्यता को पुष्ट करते हैं।”¹ मैथिलीशरण गुप्त भी अपनी रचनाओं के माध्यम से पुनर्जागरण की इस चेतना को विस्तार देने का प्रयास करते हैं। हिंदी साहित्य को लिखने के लिए किस आधार भाषा का प्रयोग किया जाए तो विद्वानों के सामने ब्रजभाषा और खड़ी बोली का विकल्प सामने आ रहा था। भारतेन्दु ब्रजभाषा में कविता लिख लिख रहे थे और खड़ी बोली में गद्य। भाषा को लेकर रचनाकार की इस द्वैत स्थिति पर टिप्पणी करते हुए चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि “भारतेन्दु युगीन द्वैत पुनर्जागरण प्रक्रिया के साथ-साथ चलता है। भारतेन्दु ने अपनी व्यवस्था कुछ इस प्रकार रखी थी कि विचार आंदोलन खड़ी बोली गद्य एक पक्ष था, जबकि दूसरे पक्ष में संस्कार रचना ब्रजभाषा कविता। भारतेन्दु विचारों से जितने आधुनिक थे उतने संस्कारों से नहीं और यह स्वाभाविक था। पहले विचार बदलते हैं तब संस्कार उनका अनुसरण करते हैं।”² यदि इस कथन को केंद्र में रखकर के बात की जाए तो गुप्त जी के यहां यह द्वैत समाप्त हो जाता है और उन्होंने गद्य और पद्य की भाषा खड़ी बोली को स्वीकार करके एक नई ऊंचाई पर उसे पहुंचाया। उनके गद्य साहित्य को पढ़ने के बाद विचारों और संस्कारों का जो द्वैत भारतेन्दु युग में था, वह भी समाप्त दिखाई देता है। इस तरह पुनर्जागरण को एक नया आयाम देने का कार्य गुप्त जी ने किया।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर यदि गुप्त जी के साहित्य का अध्ययन किया जाए तो हम कह सकते हैं कि, उनके विचार उनके गद्य साहित्य में बिखरे पड़े हैं। उन्होंने अपने विचारों के आधार पर ही कविताओं का संस्कार किया है। मैथिलीशरण गुप्त के गद्य को पढ़कर उनकी कविताओं की समझ बेहतर होगी और व्याख्या में भी आसानी होगी। मैंने उसी को ध्यान में रखकर गुप्त जी के नाटकों पर विचार किया है।

नाटक, साहित्य और कला की सभी विधाओं में सर्वाधिक सामाजिक और लोकतांत्रिक है। नाटक में अनेक प्रकार के कलाकारों की सहभागिता होती है और उनका रसास्वादन भी सामाजिक के रूप में किया जाता है। मैथिली शरण गुप्त के नाटक में अपने समय के सामाजिक और राजनैतिक जीवन की अभिव्यक्ति है। आपने-अपने नाटकों में भारत की पराधीनता और उसके कारणों पर तो विचार किया ही है उसके भविष्य की चिंता भी निरंतर बनी रहती है। मैथिलीशरण गुप्त अपने समय के सभी द्वैत भावों और अन्तरविरोधों को एक ओर करके अपने समय की आवाज बनते हैं। अपने राष्ट्र की समकालीन दशाओं को अपने नाटकों के माध्यम से हमारे सामने उद्घाटित करते हैं। निष्क्रिय प्रतिरोध में भारतीय लोगों की स्थिति को बताते हुए रामकृष्ण कहता है-

“हाय क्या अब हम भारतवासी पशुओं से भी गए बीते हो गए हैं, क्या अब हमें मनुष्य कहलाने का भी अधिकार नहीं रहा, यदि बात यह बात ना होती तो भी क्या हमें यहां रहने के लिए केवल रहने के लिए ठौर ना मिल सकता, क्या हम यहां के फुट पाथों पर चलने का भी स्वत्व ना पा सकते और यदि यह बात नहीं है तो क्या हम उन ट्राम गाड़ियों में दूने दाम देने के लिए तैयार रहने पर भी ना बैठ सकते, जिनमें यूरोपियनों के कुत्ते भी बैठ सकते हैं।”³

भारतीय लोगों की उस समय स्थिति जानवरों से भी बदतर थी। बिना किसी बातचीत और अपराध के भी उन्हें पीटना, उनका उपहास, करना उनसे भेदभाव करना, अंग्रेज और उनके दलाल अपना सहज कर्तव्य समझते थे। उनका मानना था, आखिर हो तो तुम कुली ही, जब तुम हमारे नौकर हो तो हमारा तुम्हारे ऊपर पूरा अधिकार है। हम चाहे जो कुछ कर सकते हैं। इस अभियान पूर्ण दंभ के कारण ही वे भारतीय स्त्रियों को जबरदस्ती उठा लेते हैं। उनके साथ जबरदस्ती करते हैं स्त्रियों के साथ हो रहे अमानुषिक अत्याचार को गुप्त जी ने अपने नाटकों में रेखांकित किया है। सुंदर स्त्रियों को उनके पतियों से अलग करके उनका धर्म भ्रष्ट करना और लालची स्त्रियों को सब्जबाग दिखाकर अपने जाल में फसना, सामान्य घटनाएं थी ऐसी ही भोली स्त्रियों को संबोधित करते हुए एक नौकर कहता है -

“औरतें बड़ी नासमझ होती हैं। अरे धर्म को कौन पूछता है। मैनेजर साहब तुम पर खुश हैं। क्या यह मामूली बात है ? अब तुम्हें यह कुलीगिरी ना करनी पड़ेगी। साहब के बंगले पर मजे से मामूली काम करते रहना। वही मैनेजर साहब ने आज तुम्हें बुलाया है। अपने सौहर का ख्याल बिलकुल छोड़ देना चाहिए।”⁴

नौकर की बात नहीं मानने पर स्त्री को घसीट कर जबरदस्ती ले जाने का कारुणिक दृश्य किसी भी सभ्य समाज के लिए कलंक है। मैथिलीशरण गुप्त के नाटकों की जो स्त्री समस्या है वह उनके पद्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक दारुण और यथार्थ है।

गुप्त जी ने अपने नाटकों में गोरे अंग्रेजों के काले कारनामों का पूरा कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। जिस अंधेरे और अंधेरे नगरी को बताने के लिए भारतेंदु रूपक का सहारा लेते हैं, उसको गुप्त जी ने सीधे सीधे बेबाकी से कहा है। रामकृष्ण को सजा होने पर प्रतिक्रिया देते हुए लिखते हैं -

“तू बड़ी भोली है। गोरों का मुलुक गोरों का मुकदमा और गोरों की ही अदालत, तो फिर ऐसा हुआ तो क्या अचरज की कोई बात हुई?”⁵ दमनकारी टैक्स हों या बेकारी, गरीबी हो या अशिक्षा, शोषण हो या अन्याय, रंगभेद हो या गिरमिटिया मजदूर की समस्या, अपनी गद्य रचनाओं में इन सबको आपने बड़े बेबाकी और निडरता से उठाया है।

दिनभर भूखे रहकर काम करवाने की पाशविक मानसिकता की ओर आपने भारतीयों और दुनिया का ध्यान खींचा है। रामदीन की विवशता और गरीबी का चित्रण करते हुए विसर्जन नाटक में वह लिखते हैं -

“वे जानते होंगे मैं मजूरी लेकर आता होऊंगा, परंतु मजूरी कहाँ, यह तो सेठ जी के यहां का काम है। बिना किसी का कुछ बिगाड़े दिन भर की कैद है। कैदखाने में तो दिनभर काम कर चुकने के बाद खाने को दिया जाता होगा, पर इस कैदखाने में तो इतना भी नहीं है।”⁶ एक पिता, एक परिवार के मुखिया जिसे मजूरी से ही परिवार का पेट पालना है और काम के बाद भी कुछ ना मिले तो उसकी पीड़ा किसकी आंखों को नम नहीं कर देगी। उसी के घर की गरीबी का वर्णन अगर उसी के मुख से कहें तो -

“हाय घर में भी कैद खाने से ज्यादा दुख है। वह कहती थी कि आज घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं है।” घर और बाहर भुखमरी और गरीबी का यह स्वरूप और उसके विकरालता तत्कालीन समाज की दुर्दशा की कड़वी सच्चाई थी। लाचारी, बेकारी और गरीबी का यह तांडव आस्तिक राम भक्त कवि को उसके विश्वास से डगमगा देता है और वह कहने को विवश होता है कि

“हे राम गरीबों को दुख क्यों देते हो सेठ साहूकार हकीम हुक्काम भूखे थोड़ी है, जो गरीबों के मुंह की रोटी खींचकर उनके सामने डालते हो। हम तो आने दो आने बिना घर-भर मर सकते हैं, परंतु बड़ों का इतने में क्या बन बिगाड़ सकता है जो गरीबों की रोटी इस तरह छीनते हैं।”⁷

भारत की गुलामी के जिम्मेदार केवल अंग्रेज और विदेशी ही नहीं है अपितु भारतीय लोगों में व्याप्त लोभ, मदान्धता, कायरता सुरा और सुंदरी का नशा भी इसके लिए महत्वपूर्ण कारक रहे हैं। जिस कारण समाज में बिखराव हुआ और हमारी ताकत कमजोर हुई। तिलोत्तमा नाटक में गुप्त जी ने सुंद और उपसुंद के माध्यम से यही स्पष्ट करना चाहा है। तिलोत्तमा कहती है- “मेरे लिए यह और भी सुंदर संयोग है कि इस समय दोनों मदमत्त हो रहे हैं। सुरा और सुंदरी दो ही तो प्राणियों को पागल बनाने की शक्ति रखती है। इसी के परिणाम स्वरूप सुंद और उपसुंद जैसे शक्तिशाली योद्धा भी आपस में लड़कर नष्ट हो जाते हैं।”⁸ इनके माध्यम से गुप्त जी कहते हैं कि हमारी दशा केवल भाग्य फूटने की बात नहीं है यह केवल फूट का ही फल है। इसलिए तुमसे हमारा अंतिम अनुरोध यही है कि हमारे समाधि मंदिरों की ऊंची ऊंची पताकाओं पर सबसे पढ़े जाने योग्य बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिखवा देना कि

“सुंद और उपसुंद का है सबसे अनुरोध।

सावधान देखो कभी उठे ना बंधु विरोधा।”

गुप्त जी जानते हैं कि “हथियार छिन जाने से हम लोग कायर हो गए हैं। दूषित शिक्षा ने हमारा नैतिक पतन कर दिया है। हमारे आपसी झगड़ों को उतेजना देने वाले वकीलों और ऑफिस के कुली क्लर्क की आवश्यकता ना होती तो शायद इतनी भी शिक्षा यहां न दी जाती। हमारे व्यापार नष्ट हो जाने से हम पर मुखापेक्षी और कंगाल हो गए हैं।”¹⁰ गुप्त जी स्पष्ट देख रहे थे कि- शासको ने शासन को आनंद और उपभोग, शोषण के नए-नए नियमों की कल्पना, और दंड विधान तक ही अपने को सीमित कर लिया है। “यही अंग्रेजी शासन की विशेषता है। हकीमो पर हुक्मत का भूत सवार है, और हम गुलामी के आदी हो गए हैं। छोटे आदमी ही नहीं हमारे बड़े आदमी भी गुलामाना बर्ताव की ओर झुक गए हैं। वह तो एक तरह से हाकिमों के हाथ का खिलौना हो गए हैं।”¹¹

जब पूरे देश की मानसिकता ही गुलामी को अपना नियति मान बैठी थी तब उन्होंने उदात्त चरित्र वाले नायक चंद्रहास को केंद्र में रखकर नाटक लिखा। चंद्रहास में अंग्रेजी शासन के समानांतर एक आदर्श राजा और शासन की एक तस्वीर पेश करने की कोशिश की गई है। महर्षि गालव के द्वारा चंद्रहास को प्रेरित करते हुए यह कहा जाना कि-

“संकोच की कोई बात नहीं तुम योग्य हो। परंतु एक बात है कदाचित्त तुम अधिक दायित्व से दूर रहना चाहते हो। किंतु दायित्व तुम्ही जैसे पुरुषों से आश्रय और शोभा पा सकता है। तुम जैसे निस्वार्थ और योग्य व्यक्ति ही जन समाज का कल्याण साधन कर सकते हैं। जो स्वार्थी हैं उनसे क्या आशा की जा सकती है। इसीलिए दायित्व की आशंका करके तुम्हें कभी पीछे ना हटना चाहिए। संसार में आकर कर्मवीर बनने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। विचार करके देखो अगर दूसरों की चिंता के डर से तुम किसी बड़े काम से हाथ खींच लोगे तो प्रकारांतर से अपने सुख के लिए स्वार्थी ना कह जाओगे। यह भी स्मरण रखो कि दूसरों के लिए चिंता करना ही अपनी चिंताओं पर विजय पाना है।”¹²

लोक कल्याण और मंगल की भावना से प्रेरित उपर्युक्त कथन स्वामी रामकृष्ण का स्वामी विवेकानंद को दिया हुआ संदेश प्रतीत होता है। यह कथन गुप्त जी ने तत्कालीन युवा वर्ग जो दिशाहीन, आत्म केंद्रित और हताश हो चुका था उसे प्रोत्साहित करने के लिए ही लिखे होंगे। किसी भी देश का भविष्य उसके युवा ही तय करते हैं। यदि युवा जागृत हैं तो देश अपने आप जाग जाएगा। अपने दायित्व से विमुख चंद्रहास के लिए, भारतीय युवाओं के लिए इससे अच्छा संदेश क्या हो सकता है? कौन्तलप को चंद्रहास को राजा का दायित्व प्रजा का हित और उसकी चिंता बताकर राजदंड सौपना, पुत्र मोह, परिवारवाद, स्वार्थ के वशीभूत आज के राजनैतिक वातावरण के लिए भी एक सीख है जिससे पूरा भारत कराह रहा है।

एक आदर्श समाज की रचना और गठन त्याग और समन्वय के आधार पर ही किया जा सकता है। समय के साथ जिस समाज की गति नहीं होगी उसे पिछड़ना पड़ेगा। दूसरे पर निर्भर रहना पड़ेगा। एक आत्मनिर्भर समाज और राष्ट्र का निर्माण वहां के शिक्षा व्यवस्था में सुधार से ही संभव है। गुप्त जी ने अपनी

रचनाओं में इधर भी हमारा ध्यान खींचा है। किसी भी समाज की सफलता उसके शिक्षा व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। आंदोलन यदि अशिक्षित लोगों के हाथ में चला जाए तो वह असफल हो सकता है। इसलिए गुप्त जी आंदोलन से पहले उनके अनुकूल माहौल तैयार करने पर पहले जोर देते हैं, जिससे उसका प्रभाव प्रभावी हो सके और वह सफलता को प्राप्त करें। निष्क्रिय प्रतिरोध नाटक में उन्होंने लिखा है -

“जब तक क्षेत्र तैयार न कर लिया जाए तब तक कोई आंदोलन जैसी चाहिए वैसी सफलता नहीं पा सकता है। इसी उद्देश्य से मैं पहले राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार काम में हाथ लगाना चाहता हूँ। राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार ही हमें किसी भी श्रेयस्कर आंदोलन को करने के योग्य बना सकता है। इसके लिए ऐसे महाविद्यालयों की आवश्यकता होगी जहां स्वदेशी भावापन्न लड़के कई तरह के हुनर एवं उद्योग धंधे सीख कर और स्वतंत्रता पूर्वक उपार्जन करने योग्य होकर निकले।”¹³ पुरुषों के साथ स्त्री शिक्षा पर भी उन्होंने जोर दिया और उनमें अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई और शिवाजी की माता से प्रेरणा लेने की बात करते हैं।

गुप्त जी एक ऐसे रचनाकार हैं जिनकी दृष्टि एक साथ भूत, वर्तमान और भविष्य के भारतीय समाज की चिंताओं और सीमाओं को रेखांकित करती है। जब वह लिखते हैं तब हम कौन थे? क्या हो गए? और क्या होंगे अभी? तो उनकी संवेदना मुखरित होकर हमारे सामने प्रकट हो जाती है। निष्क्रिय प्रतिरोध में लिखते हैं- “पहले हमें हिंदू होने का गर्व था। हमें उस समय बड़ा हर्ष होता था जब हम यह सोचते थे कि हम उसी भारत भूमि की गोद में पले हुए हैं जो सभ्यता की जननी के नाम से संसार में विख्यात है अब हमें जो हिंदू कहे वह पवित्र हिंदू शब्द का अपमान करने वाला है।”¹⁴

हिंदू होने का यह भाव केवल एक धर्म और संप्रदाय में ही सीमित नहीं है बल्कि यह हिंदुस्तान की उस महान सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ा है जो अनादि काल से तमाम आक्रमणों और आतंकों से लड़कर अपने को बचाए हुए है। जिसमें रामकृष्ण से लेकर रामानंद और विवेकानंद हुए। गुप्त जी का यह हिंदू गौरव भारतेंदु के हिंदू गौरव से और बंकिम चंद्र के हिंदू दर्शन से जुड़ा जाता है। जब अपने सीताराम उपन्यास में बंकिम चंद्र चटर्जी ने लिखा हिंदू को हिंदू नहीं बचाएगा तो कौन बचाएगा?

गुप्त जी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो अपनी समकालीन राजनीति पर पूरी दृष्टि रखते थे और उनकी रचना इस पूरी स्थिति को स्पष्ट करती है। हिंदू एकता, गांधीवादी जीवन मूल्य और शिवाजी और लक्ष्मीबाई के आदर्श को एक साथ जीने वाले और रचने वाले गुप्त जी का निष्क्रिय प्रतिरोध नाटक महात्मा गांधी के स्वदेशी और सविनय अवज्ञा आंदोलन का जीवंत उदाहरण है। इस नाटक का नायक कहता है - “गांधी जी की आज्ञा है कि जब तक हमारी तकलीफें दूर न कर दी जाए तब तक निष्क्रिय प्रतिरोध से पीछे ना हटो, ना हटो, झूठी प्रवचन की बातों में फंसना ठीक नहीं। उचित और आदर्श नेतृत्व को प्राप्त कर निर्जीव भारतवासियों में कैसी संजीवनी शक्ति का संचार हो गया है। हिंदू, मुसलमान, जैन, सिख, पारसी, और ईसाई सब आज एक ही मंत्र से दीक्षित होकर अपनी मातृभूमि का मुख उज्ज्वल करने के लिए उठ खड़े हुए हैं।”¹⁵

समाज सुधार और राजनैतिक आंदोलन की देशव्यापी चेतना आपकी रचना में सर्वत्र व्याप्त है। कहीं हिंदू समाज के परिष्कार और परिमार्जन का प्रयास चल रहा था तो कहीं भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए हिंदू जागरण का अभियान चल रहा है। विधवा विवाह अछूतोंद्वारा, नारी शिक्षा एवं जागरण और नए-नए आंदोलन हमारे समाज में चल रहे थे। यह वही समय था जब गांधी और स्वतंत्रता सेनानियों के नेतृत्व में संपूर्ण राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहा था। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी प्रचार और सत्य का आग्रह लिए अहिंसात्मक युद्ध पूरे देश में व्याप्त था। गुप्त जी अपने समय की संपूर्ण भाव धारा को अपने नाटकों में समेट कर रख दिया है।

इस तरह हम देखते हैं कि गुप्त जी के नाटकों में देश प्रेम की चेतना है तो मानवतावादी संवेदना भी मौजूद है। एक तरफ वह ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध करते हैं तो दूसरी ओर एकता, भाईचारा और हिंदू आत्म गौरव की भावना को भी पुष्ट करते हैं। गुप्त जी ने विकास और शासन के औपनिवेशिक मॉडल के बरक्स भारतीय स्वदेशी मॉडल की प्रशंसा करते हैं। आपके नाटकों में भारतीय राष्ट्रवाद का वह रूप है जिसमें स्त्री, दलित, किसान, मजदूर एवं वंचित समुदाय के प्रति समर्पण का भाव दिखाई देता है। आपके नाटकों को पढ़ने के बाद हम कह सकते हैं कि अतीत के आलोक में आप समकालीन भारत को देखते हैं और भविष्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।

सन्दर्भ सूची:

- हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1999, पृष्ठ 84
- वही, पृष्ठ 87
- मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली खण्ड-9, निष्क्रिय प्रतिरोध नाटक, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008, पृष्ठ 225
- वही, पृष्ठ 231
- वही, पृष्ठ 237
- मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली, विसर्जन नाटक, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008, पृष्ठ 257
- वही
- मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली, तिलोत्तमा नाटक, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008, पृष्ठ 212
- वही, पृष्ठ 216
- मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली, विसर्जन नाटक, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008, पृष्ठ 263
- वही, पृष्ठ 263
- मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली, चन्द्रहास नाटक, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008, पृष्ठ 163
- मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली, विसर्जन नाटक, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008, पृष्ठ 270
- मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली खण्ड-9, निष्क्रिय प्रतिरोध नाटक, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008, पृष्ठ 228
- वही, पृष्ठ 248

रूस-यूक्रेन संघर्ष: भारत के लिए सैन्य सीख

डॉ० राजेश कुमार सारस्वत

विभागाध्यक्ष, रक्षा एवं स्नातक अध्ययन विभाग, किशोरी रमण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

सारांश

रूस-यूक्रेन विवाद एक अहम भू-राजनीतिक घटना के तौर पर सामने आया है, जिसका वैश्विक सुरक्षा पर दूरगामी असर पड़ सकता है। इस विवाद का बहुआयामी प्रकार, जिसमें पारंपरिक युद्ध, हाइब्रिड टैक्टिक्स और रणनीतिक बातें शामिल हैं, भारत को अपनी डिफेंस क्षमताओं और रणनीतिक तैयारियों को बढ़ाने के लिए कीमती जानकारी हासिल करने का एक खास मौका देता है। यह लेख आधुनिक युद्ध के बदलते स्वभाव, टेक्नोलॉजी की भूमिका और रणनीतिक सहयोग के महत्व सहित खास पहलुओं की पूरी तरह से जांच करने की कोशिश करता है।

रूस और यूक्रेन दोनों द्वारा इस्तेमाल की गई रणनीति का विश्लेषण करके, इस शोध का उद्देश्य प्रभावी सैन्य सिद्धांतों, अभियान के प्रदर्शन और कूटनीतिक रणनीति के लिए सबक पहचानना है जो भारत की सुरक्षा स्थिति के लिए सही हो सकते हैं।

मूल शब्द: रूस-यूक्रेन विवाद, संघर्ष, वैश्विक राजनीति, ड्रोन, नाटो, अमेरिका, सेना

प्रस्तावना

रूस-यूक्रेन संघर्ष, जो 2014 में शुरू हुआ था, 21वीं सदी के सबसे बड़े भू-राजनीतिक संकटों में से एक रहा है, जिसने यूक्रेन और वैश्विक राजनीति पर गहरा असर डाला है। रूस-यूक्रेन संघर्ष की शुरुआत यूक्रेन के रूस के साथ ऐतिहासिक संबंधों से हुई है। यूक्रेन 1991 में अपने टूटने तक सोवियत यूनियन का हिस्सा था। यूक्रेन और रूस के बीच रिश्ते मुश्किल बने हुए हैं। यूक्रेन यूरोप के साथ करीबी रिश्ते बनाने और रूस के साथ अपने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रिश्ते बनाए रखने के बीच झूल रहा है। यूक्रेन यूरोपियन यूनियन (EU) और रूस के बीच एक विवादित इलाके के तौर पर उभरा, जिसने देश को दो हिस्सों में बांट दिया: पश्चिमी यूक्रेन, जो यूरोपियन हितों से जुड़ा था, और पूर्वी यूक्रेन, जो रूस के हितों से जुड़ा था। यह लड़ाई 2004 की ऑरेंज क्रांति से शुरू हुई थी। यूक्रेनी राजनीतिक संकट ने 2013 के आखिर में लड़ाई को और बढ़ा दिया। EU में शामिल होने का विरोध कर रहे यूक्रेनियन लोगों ने 2014 में रूस समर्थक राष्ट्रपति विक्टर यानुकोविच को हटा दिया। इससे यूक्रेन में रूस के दबदबे को खतरा पैदा हो गया, इसलिए, उसने फरवरी 2014 में क्रीमिया पर कब्जा कर लिया। इस कब्जे की दुनिया भर में बुराई हुई और रूस पर पाबंदियाँ लगाई गईं। पूर्वी यूक्रेन में, खासकर डोनेट्स्क और लुहान्स्क इलाकों में, क्रीमिया पर कब्जा करने के बाद रूस समर्थक अलगाववादी आंदोलन शुरू हुए। इन इलाकों द्वारा आजादी की घोषणा के कारण यूक्रेनी सेना और अलगाववादियों के बीच हिंसक टकराव हुए। रूस पर आरोप था कि वह अलगाववादियों को सैन्य सपोर्ट दे रहा है, जिससे लड़ाई और बढ़ गई। डिप्लोमेसी के जरिए लड़ाई को सुलझाने की कई कोशिशों की गईं, जिनमें मिन्स्क समझौते सबसे खास थे। यूरोप में ऑर्गनाइजेशन फॉर सिक्योरिटी एंड कोअभियान की मध्यस्थता से हुए इन समझौतों का मकसद सीजफायर और शांतिपूर्ण समझौते के लिए एक रोडमैप बनाना था। हालाँकि, सीजफायर का अक्सर उल्लंघन किया गया, और पक्की शांति मिलना मुश्किल रहा।

भू-राजनीतिक असर

रूस-यूक्रेन लड़ाई के बड़े भू-राजनीतिक असर हुए हैं। इस लड़ाई ने रूस के पश्चिम के साथ रिश्तों में तनाव पैदा किया है, जिससे पाबंदियाँ लगीं और तनाव बढ़ा है। इसने नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी ऑर्गनाइजेशन ('नाटो') और EU के साथ रूस के रिश्तों को और खराब करने में मदद की है। पूर्वी यूरोपीय देश, खासकर रूस की सीमा से लगे देश, रूस की हरकतों को लेकर ज्यादा सावधान हो गए हैं, जिससे 'नाटो' के साथ उनका तालमेल बढ़ा है और 'नाटो' से मदद की गुहार की जा रही है। यूक्रेन की पश्चिम के साथ करीबी रिश्ते बनाने की इच्छा और मजबूत हुई है, जिससे रूस से दूरी बनी है और पश्चिमी संस्थाओं में शामिल होने की कोशिशें हो रही हैं। इस लड़ाई ने अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की सीमाओं को दिखाया है। झगड़ों को सुलझाने और दुनिया भर की घटनाओं को आकार देने में बड़ी ताकतों की राजनीति के महत्व को दिखाया है। इस लड़ाई ने गंभीर मानवीय नतीजों को दिखाया है, जिसमें हजारों मौतें हुई हैं और आम लोगों को बड़ी संख्या में बेघर होना पड़ा है। प्रभावित इलाकों में इंफ्रास्ट्रक्चर को बहुत नुकसान हुआ है। आर्थिक रूप से, यूक्रेन और रूस को पाबंदियों, कम व्यापार और लड़ाई की लागतों के कारण नुकसान हुआ है।

रूस-यूक्रेन झगड़ा एक मुश्किल और लगातार चल रहा भू-राजनीतिक संकट है जिसके दूरगामी असर होंगे। इसने अंतर्राष्ट्रीय रिश्तों में तनाव पैदा किया है, रीजनल सिक्योरिटी को चुनौती दी है, और झगड़ों को सुलझाने की डिप्लोमैटिक कोशिशों के असर को परखा है। जैसे-जैसे हालात बदल रहे हैं, दुनिया इस पर करीब से नजर रख रही है, और उम्मीद कर रही है कि इसका शांतिपूर्ण हल निकलेगा जो यूक्रेन की सार्वभौमिकता और उम्मीदों का सम्मान करे और साथ ही रूस की चिंताओं को भी दूर करे।

विशेष सैन्य अभियान

21 फरवरी 2022 को, रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने 'नाटो' के पूरब की ओर धीरे-धीरे बढ़ने को लेकर अपनी मुख्य आशंकाएं और चिंताएं जाहिर कीं, जिसके नतीजे में धीरे-धीरे रूस की सीमा पर उसके सैन्य इन्फ्रास्ट्रक्चर का कब्जा हो रहा है। उन्होंने कहा कि "पिछले 30 सालों में, रूस यूरोप में बराबर और बिना बांटी सुरक्षा के सिद्धांतों के बारे में 'नाटो' के बड़े देशों के साथ एक समझौते पर पहुंचने की कोशिश में सब्र रख रहा है"। हालांकि, बदले में, रूसियों को लगातार या तो झूठ और धोखे का सामना करना पड़ा है, या जबरदस्ती वसूली की कोशिशों का। साथ ही, रूस के एतराज और चिंताओं के बावजूद, 'नाटो' अलायंस बढ़ता रहा है। उन्होंने आगे कहा, 'इसकी सैन्य मशीन आगे बढ़ रही है और, जैसा कि मैंने कहा, हमारी सीमा के पास पहुँच रही है'।

तीन दिन बाद, 24 Feb 2022 को, पुतिन ने एक टेलीविजन भाषण में साफ किया कि पीपल्स रिपब्लिक ऑफ डोनबास ने रूस से मदद माँगी थी। इन हालात में, रूस के पास कोई और ऑप्शन नहीं था और वह बोलड और तुरंत एक्शन लेने के लिए मजबूर था।

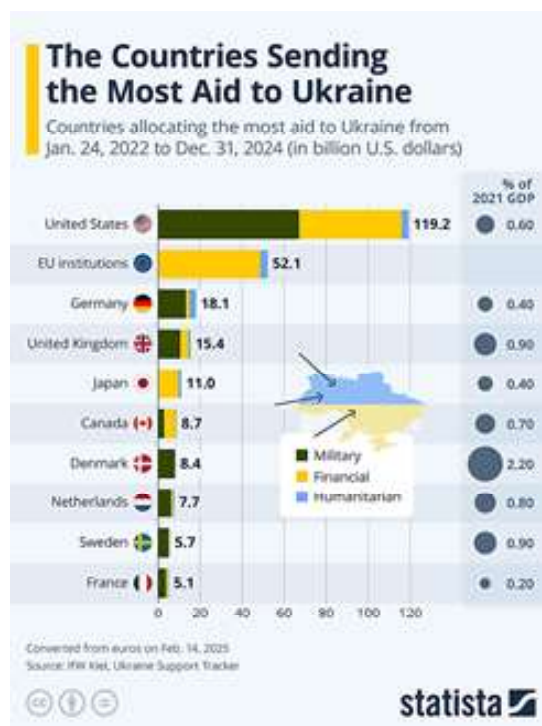
सैन्य कैम्पेन के चरण

सबसे पहले, युद्ध की बारीकियों को देखें तो, स्पेशल सैन्य अभियान सैन्य कैम्पेन में बदल गए हैं जो अब अपने उन्नीसवें महीने में प्रवेश कर रहा है। इस दौरान, इसने मौसम में बदलाव का एक पूरा चक्र देखा है, लेकिन दोनों पक्ष लंबे अभियान से डिग्रे नहीं हैं, और लड़ाई अभी भी जारी है। पारंपरिक युद्ध के अलावा, रूस-यूक्रेन लड़ाई हाइब्रिड युद्ध टैक्टिक्स के इस्तेमाल के लिए जानी जाती है। हाइब्रिड वॉरफेयर में पारंपरिक सैन्य टैक्टिक्स को साइबर वॉरफेयर, गलत जानकारी फैलाने वाले कैम्पेन और विद्रोही ग्रुप्स को सपोर्ट जैसे अलग तरीकों के साथ मिलाया जाता है। रूस पर अलगाववादी ताकतों को हथियार देने और उन्हें सपोर्ट करने के साथ-साथ साइबर अटैक और गलत जानकारी फैलाने वाले कैम्पेन में शामिल होने का आरोप है।



Figure 1: Map Explainer: Key Facts About Ukraine

- 24 Feb 2022 को, रूस ने यूक्रेन पर जमीन, समुद्र और हवा से हमला किया, सैन्य एसेट्स और शहरों को निशाना बनाया। यूनाइटेड स्टेट्स (US) के प्रेसिडेंट जो बाइडेन ने इस हमले को 'बिना उकसावे और गलत' बताया और पुतिन, रूस के चार सबसे बड़े बैंकों और तेल और गैस इंडस्ट्री समेत क्रैमलिन के टॉप अधिकारियों पर कड़े बैन लगाए।
- 26 Feb 2022 को, रूस ने यूक्रेन पर पूरी तरह से हमला किया, जिसमें लगभग पूरे देश को निशाना बनाया गया, और सबसे पश्चिमी हिस्से पर कम ध्यान दिया गया। कीव के पास होस्टोमेल एयरफील्ड पर कब्जा करने के लिए एक दुस्साहसी हवाई अभियान किया गया। हालांकि, वह आगे के हवाई अभियान और लॉजिस्टिक सपोर्ट नहीं कर सका, जिससे मिशन का नतीजा बहुत बुरा हुआ। हमले के पहले हफ्ते के आखिर में रूस को सामरिक ब्रेक लेना पड़ा।
- 02 मार्च 2022 को, यूनाइटेड नेशंस (UN) के 193 मंबर देशों में से 141 ने UN जनरल असेंबली के इमरजेंसी सेशन में वोट करके यूक्रेन पर रूस के हमले की निंदा की और यूक्रेन से रूस को तुरंत वापस बुलाने की मांग की।
- 06 अप्रैल 2022 तक, रूस ने यूक्रेन की राजधानी (कीव) इलाके से सभी सैनिकों को वापस बुला लिया था।



यूक्रेन वॉर पर एक रिपोर्ट में कहा गया है कि यू.एस. ने 24 फरवरी 2022 से यूक्रेन को लगभग USD 40.0 इ. की सैन्योपयोगी मदद दी है, जिसमें USD 19.0 इ. सैन्य मदद और USD 16 इ. मानवीय सहायता शामिल है। 2023 की शुरुआत में, बाइडेन एडमिनिस्ट्रेशन ने यूक्रेन के लिए पैट्रियट एयर डिफेंस सिस्टम को मंजूरी दी और यूरोप में अपने सैनिकों की संख्या को 1,00,000 से ज्यादा कर दिया।

US प्रेसिडेंट बाइडेन ने 08 जून 2023 को ब्रिटिश प्राइम मिनिस्टर ऋषि सुनक के साथ एक जॉइंट प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा कि US के पास “जब तक जरूरत हो, यूक्रेन को सपोर्ट करने के लिए फंड है”। एक दिन बाद, USD 2.1 इ. की सैन्य मदद का ऐलान किया गया। ‘नाटो’ ने रूस के हमले से बचाव के लिए यूक्रेन को और हथियार और गोला-बारूद भेजा है। US के बाद EU, जर्मनी और यूनाइटेड किंगडम (UK) ने सबसे ज्यादा सैन्य मदद दी है। इस बीच, रूस ने सैन्य उपकरण और इंटेलिजेंस इकट्ठा करने के लिए नॉर्थ कोरिया और ईरान का रुख किया है। यह दूसरे देशों को सब्सिडी वाली गैस और तेल बेचना जारी रखे हुए है।

US ने मई 2023 तक यूक्रेन के लिए USD 500 mn के सैन्य मदद पैकेज का ऐलान किया है। US ने क्लस्टर हथियारों के इंतजाम की भी पुष्टि की है, जिससे ‘नाटो’ के साथी चिंतित हैं। यूक्रेन को हाल ही में यूनाइटेड किंगडम से मिली स्टॉर्म शैडो मिसाइलों जैसी फ्रेंच मिसाइलों भी मिलेंगी। जून 2023 तक, UN ह्यूमन राइट्स ऑफिस ने लगभग 9,000 आम लोगों की मौत और 15,000 से ज्यादा आम लोगों के घायल होने का रिकॉर्ड बताया था। इस खून-खराबे की वजह से छह मिलियन से ज्यादा लोग पड़ोसी देशों, खासकर पोलैंड और मोल्दोवा भागने को मजबूर हुए हैं, जहाँ US और दूसरे पार्टनर शरणार्थियों की मदद करते हैं।

भारत के लिए सबक

इस संघर्ष ने दुनिया भर के डिफेंस एनालिस्ट को कई बार सीखे गए सबक पर दोबारा सोचने पर मजबूर किया है। इन महीनों में सैन्य अभियान के बदलते चरण का आंकलन अच्छी जानकारी वाले सबक के लिए समझदारी से एनालाइज किया जा सकता है, जो किसी भी दूसरे देश के लिए उनके स्थानीय परिवेश में आगे के अनुमानों के साथ काम के होंगे। भारत के संदर्भ में कुछ सबक निम्नलिखित हैं:

सैन्य ताकत में बहुत ज्यादा अंतर

रूस एक सुपरपावर है जिसका यूक्रेन की सैन्य ताकत से कोई मुकाबला नहीं है। रूस के पास यूक्रेन के मुकाबले बहुत ज्यादा टेक्नोलॉजिकल और नंबरों में बेहतरी है और सैन्य संसाधन, क्षमता और काबिलियत बनाने में भी बहुत ज्यादा अंतर है। यह बात पारंपरिक और गैर-पारंपरिक दोनों तरह के डोमेन में सच है। रूस को न्यूक्लियर डिटरेंस के रूप में भी काफी अंतर मिला हुआ है। हालांकि, इतनी ज्यादा बेहतरी के बावजूद, वह आज तक अपना मकसद हासिल नहीं कर पाया है। लड़ाई का लंबा चलना, बिना किसी तुरंत नतीजे के, कई वजहों से जुड़ा हो सकता है, जैसे कि रूसी सैन्य कमांड की नाकाबिलियत और प्रेसिडेंट जेलेन्स्की द्वारा पाया गया जन समर्थन। इस तर्क से ये बातें सामने आती हैं: दुश्मन के खिलाफ जंग लड़ने वाले देश के लिए अवलोकन और सबक। सैन्य सबक के साथ-साथ, जंग के इरादे के बारे में कुछ आपस में जुड़े सबक पर भी बात की गई है।

राजनीतिक उद्देश्य और अंतिम अंजाम

देश को अपनी सेना को अपने राजनीतिक उद्देश्य साफ-साफ बताने चाहिए। बदकिस्मती से, प्रेसिडेंट पुतिन के अब तक दिए गए किसी भी भाषण में कोई साफ पॉलिटिकल इरादा नहीं दिखा है। इस बारे में अब तक कोई खास अधिकारिक बयान नहीं दिया गया है। अगर देश लड़ाई में मिले फायदों को छोड़ देता है, तो रूस के राजनीतिक नेतृत्व को यह मंजूर नहीं होगा। इसी तरह, यूक्रेन के लिए कम से कम यही हल होगा कि पहले जैसा हाल हो जाए। इन अलग-अलग सोच को कैसे सुलझाया जा सकता है, यह अभी तय नहीं हुआ है। यह शायद भारत के मामले में लाइन ऑफ कंट्रोल और लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल (LAC) के रेफरेंस जैसा ही होगा। इस पूरी लड़ाई में आखिरी नतीजा अस्पष्ट रहा है, जिससे रूसियों के सैन्य अभियान फेल हो गए हैं।

संघर्ष खत्म करने के निर्धारक (CTC)

युद्ध छेड़ने से पहले CTC का अच्छी तरह से तय होना जरूरी है। सेना उन मकसदों को पूरा करने के लिए उसी के हिसाब से अपने व्यावहारिक तरीके अपनाती हैं और दुश्मन को अपनी शर्तों पर संघर्ष खत्म करने के लिए मजबूर करती हैं। रूसी सरकार का शुरुआती मकसद यूक्रेन में शासन बदलना और एक ऐसी गवर्निंग बॉडी बनाना था जो रूसी हितों के हिसाब से हो, साथ ही यह भी पक्का करे कि यूक्रेन 'नाटो' में शामिल न होने का कमिटमेंट करे। यह एक ऑप्शन है कि सही दिशा और सैन्य अभियान को पूरा करने के लिए पहले से तय ऋ पर फिर से विचार किया जा सकता है।

संघर्ष की बढ़त, नुकसान और मकसद हासिल करने में सफलता के प्रतिशत के आधार पर, सबसे अच्छा दूसरा CTC बनाया जाना चाहिए, अगर मूल लक्ष्य हासिल नहीं हो। इस लंबे संघर्ष के दौरान, रूसियों के लिए CTC पर फिर से विचार करने के कई मौके आए हैं, लेकिन दुर्भाग्य से, यह जमीन पर नहीं देखा गया है, और संघर्ष खत्म होता नहीं दिख रहा है। इसलिए, CTC का होना जरूरी है।

रूस-यूक्रेनी लड़ाई इस बात का एक क्लासिक उदाहरण है कि युद्ध कैसे नहीं लड़ा जाना चाहिए। अगस्त 2023 तक रूसी पक्ष ने कम से कम छह बार सैन्य नेतृत्व में परिवर्तन किया है, जो युद्ध की सामरिक और अभियानल कला के बेअसर प्रदर्शन को सामने लाता है। इस लड़ाई से एक जरूरी सबक यह मिला है कि युद्ध के मैदान में सभी खिलाड़ियों के बीच तालमेल बनाए रखना चाहिए।

होस्टोमेल एयरफील्ड पर कब्जा करने की नाकाम कोशिश और लड़ाई के शुरुआती दौर में मोस्कवा का डूबना, युद्ध के मैदान में और दूसरी सेवाओं के साथ प्लानिंग और तालमेल की कमी के साफ उदाहरण हैं। स्नेक आइलैंड का समर्पण, कीव से वापसी, अब तक ओडेसा पर कब्जा न कर पाना, और लगभग पूरा उत्तरी यूक्रेन खोना, रूसी सेनाओं के गलत अभियान की सीधी झलक है। भारतीय सशस्त्र बलों को इस पहलू पर पूरा ध्यान देना होगा।

युद्ध के मैदान की समझदारी से तैयारी (IPB)

IPB, युद्ध की तैयारी के शुरुआती और मुख्य स्टेज में से एक है। इस लड़ाई ने दिखाया है कि रूस का प्लान जरूरी प्रोफेशनल स्टैंडर्ड पर खरा नहीं उतरा। लड़ाई के पहले हफ्ते से ही, दुश्मन के एयर डिफेंस मिशन को दबाने, स्पेशल हेलीबोर्न अभियान, स्पेशल अभियान, फॉलो-अप अभियान में देरी और लॉजिस्टिक्स में सामरिक नाकामी कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जो हमें एक अच्छी तरह से प्लान किए गए IPB की जरूरत की याद दिलाते हैं। रूसी एक्शन कई बार बहुत बेहतर फोर्स होने के कारण लापरवाही के आगे झुक गए हैं। भारत के मामले में, इस पहलू को अच्छी तरह से नियोजित और पूर्वाभ्यास करने की जरूरत है। प्रचार युद्ध के हिस्से के तौर पर ओपन-सोर्स इंटेलिजेंस (OSINT) के जरिए आसानी से मिलने वाली गलत जानकारी से भी सावधान रहना चाहिए। चीन और पाकिस्तान दोनों ने अपने सामरिक 'सामाजिक दुष्प्रचार' को असरदार तरीके से मैनेज किया है।

सेंटर ऑफ ग्रेविटी (CoG) पर दोबारा गौर करना

ब्लू का जॉन वार्डन मॉडल अभी भी पूरी तरह से प्रासंगिक है। लड़ाई के पहले तीन दिनों में, रूसी सेना ने CoG पर हमला करने और कीव पर कब्जा करने का इरादा दिखाया, जिससे प्रेसिडेंट जेलेंस्की को बातचीत की टेबल पर आना पड़ा। लेकिन, जमीन या हवा में फॉलो-अप की कमी के कारण सैन्य सामरिक अभियान का प्रदर्शन बुरी तरह खतरे में पड़ गया। तब से, ताकतवर रूसी सेना CoG, जैसे कीव, ओडेसा वगैरह पर हमला करने में नाकाम रही है, जो चिंता की बात है। अब CoG को बेअसर करने की बेसिक बातों को फिर से शुरू करने और CoG पर एक सुनियोजित आखिरी वार के साथ बेकार, लंबे समय तक चलने वाले स्पेशल सैन्य अभियान को खत्म करने का समय है, जिससे दर्दनाक अभियान खत्म हो सकें। रूस ने डोनबास इलाके का ज्यादातर हिस्सा अपने कब्जे में ले लिया है। यूक्रेनियन ने रूसियों से जापोरिज्या और खेरसॉन ओब्लास्ट का कंट्रोल वापस ले लिया, और वहां जमीनी लड़ाई अभी भी जारी है। ब्लैक सी के पूरे उत्तरी किनारे पर पूरा कब्जा करने के लिए, जिसका बॉर्डर यूक्रेन से लगता है, ओडेसा शहर एक CoG के तौर पर बहुत रणनीतिक वैल्यू रखता है जिसे रूसी सेना टारगेट करने और युद्धविराम की घोषणा करने के लिए चुन सकती है। ओडेसा, क्रीमिया को जमीन के रास्ते डोनबास से गुजरने वाली रूसी मुख्य भूमि से जोड़ता है, ताकि भूमध्य सागर के रास्ते अटलांटिक तक रूसी पहुँच पक्की हो सके। यह हमें CoG और जरूरी कमजोरियों पर फिर से सोचने की याद दिलाता है, खासकर पाकिस्तान और चीन दोनों द्वारा बॉर्डर इलाकों के पास इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट के साथ।

संसाधनों की लड़ाई

इस लड़ाई ने बेशक लंबे समय तक चलने वाले युद्ध के लिए जरूरी संसाधनों की जरूरत को दिखाया है। अभियान के अलग-अलग चरण के विस्तृत विश्लेषण से पता चलता है कि रूस को भी पहले हफ्ते के ठीक बाद और बीच में कई सामरिक ब्रेक लेने पड़े ताकि अगले कदमों के लिए अपने संसाधनों इकट्ठा और मजबूत किए जा सकें। लंबे युद्ध सच में श्थकान और थकान की लड़ाई की ओर ले जाते हैं। भारत के मामले में, आत्मनिर्भरता एक जरूरी

चीज है जिसे युद्ध सामग्री की जरूरतों को पूरा करने के लिए तेजी से बढ़ाने की जरूरत है। इस बीच, भारत को युद्ध या लड़ाई के दौरान युद्ध सामग्री सप्लायर देशों के साथ अपने डिप्लोमैटिक चैनल खुले रखने चाहिए। साथ ही, एकीकृत प्रशिक्षण को भी मजबूत करने की जरूरत है।

अस्मिता की लड़ाई

हालांकि इस पर बहुत कम चर्चा होती है, लेकिन यह लड़ाई सुपर पावर होने की वजह से नेताओं के बीच ईगो की लड़ाई के तौर पर भी सामने आई है। चल रही लड़ाई सिर्फ रूस और यूक्रेन के बीच नहीं है; इसमें रूस के खिलाफ US, पूरा वेस्ट और 'नाटो' जैसी बड़ी ताकतें शामिल हैं। इन सभी देशों के नेताओं के अलग-अलग बयान और रुख, यहाँ तक कि इतने लंबे समय में न्यूक्लियर धमकियों तक, यह दिखाते हैं कि शांति के इस दौर में भी, देश अभी भी पारंपरिक युद्ध में उलझे हुए हैं। न्यूक्लियर डिटरेंस को छोड़कर, ज्यादातर मामलों में बहुत ज्यादा अंतर होने की वजह से, पाकिस्तान के साथ भारत के ऐसे हालात में पड़ने की संभावना शायद ही हो। हालाँकि, चीन के साथ, सभी सेक्टर में भारत के बढ़ते कद की वजह से इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, एक जिम्मेदार और डिप्लोमैटिक रूप से परिपक्व देश होने के नाते, भारत ऐसा कोई नासमझी भरा काम नहीं करेगा।

छोटा, तेज और अलग-अलग इलाकों में लड़ाई

जब से लड़ाई शुरू हुई है, विश्लेषक यह अंदाजा लगाने लगे हैं कि लंबे युद्धों का जमाना वापस आ गया है, और छोटे और तेज युद्ध की सोच अब सही नहीं रही। इसी तरह, यह अंदाजा भी लगाया जा रहा है कि टैंक बेकार हो गए हैं, ड्रोन हवाई लड़ाई का भविष्य हैं, वगैरह। इन शुरुआती अंदाजों ने रणनीतिक और शैक्षणिक समूह के साथ-साथ वर्दी वाले लोगों की सोच में भी काफी नुकसान और भ्रम पैदा किया है। यह समझना जरूरी है कि यह लड़ाई कोई पारंपरिक लड़ाई नहीं है, और यह अलग-अलग वॉर कॉलेजों में इस बात की एक जरूरी कंस स्टडी बन सकती है कि लड़ाई कैसे नहीं लड़ी जानी चाहिए। भारत के मामले में, देश के पास इतने लंबे युद्ध लड़ने के लिए पूरी ताकत नहीं है। पूरी उम्मीद है कि इस इलाके में 1999 में हुए अभियान विजय जैसा ही छोटा और अलग-अलग सेक्टर का युद्ध होगा।

निष्कर्ष

रूस-यूक्रेन युद्ध से यह पता चलता है कि कैसे बेहतर सेना की आखिरी हालत को एक कमजोर देश ज्यादा कीमत पर रोक सकता है। इससे यह भी पता चलता है कि ग्लोबल और रीजनल भू-राजनीतिक और आर्थिक मुश्किलों की वजह से हर देश को ऐसे संकट के दौरान खुद पर निर्भर रहना होगा। इन सबक को सुरक्षा बल के लिए रणनीतिक, अभियानल और सामरिक स्तर पर समझा जा सकता है। साथ ही, इस लड़ाई ने देश और राजनीतिक नेतृत्व, आम लोगों, उद्योग वगैरह के लिए कई सबक भी दिए हैं। फिर भी लड़ाई के कई जानकारों ने लड़ाई के नतीजे की वजह से अपना नजरिया साफ तौर पर बदल दिया है, जैसे कि यह सोच कि 'छोटी और तेज लड़ाइयाँ लंबी लड़ाइयों में बदल गई हैं'। ये सबक शायद भारत के हिसाब से सही न हों। रूस-यूक्रेन युद्ध से भारत के लिए भी अहम सबक हैं। दोनों देशों ने ड्रोन का व्यापक उपयोग किया है लेकिन कोई भी वायु श्रेष्ठता हासिल नहीं कर पाया। भारत और उसके दुश्मनों की अपनी खासियतें हैं, जैसे राजनीतिक, आर्थिक, जातीय और कुदरती रुकावटें, जहां लड़ाई का तरीका, अगर कोई हो, तो चल रहे रूस-यूक्रेन लड़ाई से काफी अलग होगा।

रूस-यूक्रेन संघर्ष ने दिखाया है कि आधुनिक युद्ध केवल सैनिकों से नहीं बल्कि तकनीक, अर्थ-व्यवस्था और अंतर्राष्ट्रीय समर्थन से भी जीते जाते हैं। भारत को भविष्य के युद्धों के लिए तकनीकी, रणनीतिक और आर्थिक रूप से मजबूत होना होगा।

सन्दर्भ

1. सूरी, ए. (2022). द ग्रेट टेक गेम: शॉपिंग जियोपॉलिटिक्स एंड द डेस्टिनी ऑफ नेशंस। हार्पर कॉलिन्स।
2. फाइनर, एल. (2022). यूक्रेन रूस के खिलाफ सूचना युद्ध जीत रहा है। सीएनबीसी।
3. कृष्णा, एम. (2022). क्या यूक्रेन में युद्ध भारत के हरित ऊर्जा संक्रमण में देरी करेगा? क्यूबवड.
4. जॉन जे. मियर्सहाइमर, "यूक्रेन युद्ध के कारण और परिणाम," होराइजन्स 21 (ग्रीष्म 2022): 12-27.
5. इवान करेन, "मॉस्को की रणनीतिक संस्कृति: महाशक्ति प्रतिस्पर्धा के युग में रूसी सैन्यवाद," जर्नल ऑफ एडवांस्ड सैन्य स्टडीज (2022): पृष्ठ 73, <https://muse.jhu.edu/article/851420>
6. हाउस ऑफ लॉर्ड्स, यूरोपीय संघ और रूस: यूक्रेन संकट से पहले और उसके बाद, सत्र 2014-15 की छठी रिपोर्ट (लंदन: हाउस ऑफ लॉर्ड्स के अधिकार से, 2015): 63, <https://publications.parliament.uk/pa/ld201415/ldselect/ldcom/115/115.pdf>
7. पावेल बाएव, "रूसी सामरिक संस्कृति का रूपांतरण: स्थानीय युद्धों और वैश्विक टकराव के प्रभाव," IFRI रिपोर्ट 118 (जून 2020): 6, 1. https://www.ifri.org/sites/default/files/atoms/files/baev_russian_strategic_culture_2020.pdf
8. पॉल जे. सॉन्डर्स, "अमेरिका रूस के हाइब्रिड युद्ध को क्यों नहीं रोक सकता," द नेशनल इंटरैस्ट, 23 जून 2015, <https://nationalinterest.org/feature/why-america-cant-stop-russias-hybrid-warfare-13166>.
9. जेम्स जे. विटर्ज, "साइबर युद्ध और सामरिक संस्कृति: रूस द्वारा साइबर शक्ति का व्यापक रणनीति में एकीकरण," साइबर युद्ध परिप्रेक्ष्य में: यूक्रेन के खिलाफ रूसी आक्रामकता, केनेथ गीर्स द्वारा संपादित। (टालिन: नाटो सीसीडी सीओई प्रकाशन, 2015), https://ccdc.org/uploads/2018/10/Ch03_CyberWarinPerspective_Wirtz.pdf
10. टॉम वाल्डविन और विराज सोलंकी, "भारत की रक्षा योजनाएँ पुतिन के युद्ध का शिकार हुईं," विदेश नीति, 3 अप्रैल, 2023, <https://www.foreignpolicy.com/2023/04/03/india-modi-defense-military-russia-putin-warweapons-procurement/>.

नए उत्पाद विकास में बाजार अनुसंधान की भूमिका

सोमेश कुमार

(वाणिज्य विभाग)

सारांश - यह अध्ययन नए उत्पाद विकास (New Product Development) की प्रक्रिया में बाजार अनुसंधान (Market Research) की महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर देता है और त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोणों से जुड़े जोखिमों के प्रति सचेत करता है।

मुख्य बिंदु:

- चुनौतियों की पहचान : यह अध्ययन नए उत्पाद विकास (NPD) के विभिन्न चरणों में आने वाली पांच प्रमुख अनुसंधान चुनौतियों की पहचान करता है।
- व्यवस्थित ढांचा (Systematic Framework) : इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक व्यवस्थित ढांचा प्रस्तावित किया गया है। इस दृष्टिकोण को विशेषज्ञों के साथ 'फोकस समूहों' (Focus Groups) के माध्यम से सत्यापित किया गया है।
- उद्देश्य : इसका लक्ष्य प्रत्येक समस्या के लिए सटीक समाधान प्रदान करना है, जिससे नवाचार (Innovation) प्रक्रियाओं में निर्णय लेने की क्षमता को बेहतर बनाया जा सके।
- सीमाएँ : प्रबंधकों के लिए मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करने के बावजूद, यह अध्ययन अपनी विशिष्ट शोध पद्धति के कारण सामान्यीकरण (Generalizability) में संभावित सीमाओं को स्वीकार करता है।
- भावी संभावना : यह विभिन्न संदर्भों में इस ढांचे की प्रयोज्यता की पुष्टि करने के लिए और अधिक शोध का आह्वान करता है।

प्रमुख शब्द (Keywords):

- बाजार अनुसंधान (Market research)
- उत्पाद विकास (Product development)
- नया उत्पाद विकास (NPD)
- नवाचार (Innovation)
- फोकस समूह (Focus group)

प्रस्तावना (Introduction) :

आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक व्यावसायिक जगत में व्यापारिक संगठनों के लिए केवल मौजूदा उत्पादों को बनाए रखना पर्याप्त नहीं रह गया है। उपभोक्ताओं की अपेक्षाएँ, उनकी पसंद-नापसंद, तकनीकी नवाचार, डिजिटल प्लेटफॉर्म का विस्तार तथा घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा ने उत्पाद बाजार को अत्यंत गतिशील बना दिया है। इस परिवेश में, संगठनों के अस्तित्व और दीर्घकालिक सफलता के लिए निरंतर नवाचार और नए उत्पाद विकास (New Product Development - NPD) एक अनिवार्य रणनीति बन गया है।

नया उत्पाद विकास एक जटिल, चुनौतीपूर्ण और वृहद संसाधन-सघन प्रक्रिया है, जिसमें उत्पाद निर्माण विचार से लेकर उत्पाद प्रस्तुत और उसके बाद के बाजार प्रदर्शन तक कई चरण शामिल होते हैं। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि भारी निवेश और उन्नत तकनीकों के उपयोग के बावजूद भी बड़ी संख्या में नए उत्पाद बाजार में असफल हो जाते हैं। इसका प्रमुख कारण उपभोक्ता आवश्यकताओं की अपर्याप्त समझ, बाजार क्षमता का गलत आकलन तथा प्रभावी मार्केटिंग रणनीतियों का अभाव है।

इसी संदर्भ में, इवांशिट्स्की और अन्य (2012) के अध्ययन के अनुसार, उत्पाद नवाचार (Product Innovation) के माध्यम से विशिष्टता को प्राथमिकता देने और भारी निवेश करने के बावजूद भी केवल 25% उत्पाद लॉन्च ही सफल हो पाते हैं। नए उत्पादों के साथ बार-बार होने वाली प्रणालीगत (Systemic) गलतियाँ निम्नलिखित हैं: (कैस्टेलॉट और मार्कहम, 2013; कोटलर और केलर, 2016 के अनुसार)

- बाजार के आकार का अधिक अनुमान (Overestimation of Market Size)
- उत्पाद की कमियाँ (Product Deficiencies)
- गलत स्थिति निर्धारण (Poor Positioning)

- खराब संचार (Bad communication)
- अत्यधिक विकास लागत (Higher-than-expected Development Costs)

नए उत्पादों के निर्माण की प्रक्रिया कई अन्य मुद्दों से भी बाधित होती है, जिनमें रचनात्मक विचारों की कमी, अत्यधिक खंडित बाजार, सामाजिक और राजनीतिक बाधाएं, त्वरित विकास समय और उत्पाद जीवन चक्र का छोटा होना शामिल है (जैन, 2001; कैंकुरतारन एट अल., 2013; एलिंग एट अल., 2013; एपिंगर और उलरिच, 2015)। इस परिस्थिति को सुधारने हेतु संगठनों को बेहतर और नूतन उत्पादों के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए; विकास से पहले, उत्पाद अवधारणा को लक्षित बाजार द्वारा स्पष्ट रूप से परिभाषित और मूल्यवान माना जाना चाहिए। और ऐसी टीम बनाई जानी चाहिए जिनमें मजबूत सहयोगात्मक भावना तथा अंतर-कार्यात्मक कार्य निष्पादन की प्रभावी क्षमताएँ विकसित हों।”

इसी संदर्भ में, बाजार अनुसंधान नए उत्पाद विकास प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक बनकर उभरती है। बाजार अनुसंधान के माध्यम से संगठन उपभोक्ता की क्रय व्यवहार, उनकी आवश्यकताओं, अपेक्षाओं और असंतुष्ट मांगों की पहचान कर सकते हैं। यह न केवल उत्पाद अवधारणा (Product Concept) के विकास में सहायक होती है, बल्कि डिजाइन, मूल्य निर्धारण, वितरण और प्रचार रणनीतियों को भी अधिक प्रभावी बनाती है। साथ ही, यह नए उत्पाद से जुड़े जोखिमों को कम करने और निर्णय-निर्माण की गुणवत्ता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

हालाँकि, यह भी देखा गया है कि कई संगठन बाजार अनुसंधान टूल्स और तकनीकों का उचित चयन और उपयोग नहीं कर पाते, जिसके परिणाम स्वरूप प्राप्त डेटा निर्णय-निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान नहीं दे पाता। विशेषकर उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में सीमित संसाधन, समय का दबाव और विशेषज्ञता की कमी के कारण बाजार अनुसंधान की भूमिका को अक्सर कम आँका जाता है। इससे नए उत्पादों की विफलता की संभावना और अधिक बढ़ जाती है।

संस्थाओं को यह जानने की आवश्यकता है कि कौन से दृष्टिकोण, संग्रह उपकरण और विश्लेषण प्रक्रियाएँ उन आवर्ती समस्याओं के लिए सबसे उपयुक्त हैं जिनकी जांच की आवश्यकता है (मैल्कम एट अल. मल्होत्रा, 2014)।

इस अनुलेख का उद्देश्य नवाचारी उत्पाद विकास प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में किए जाने वाले मुख्य प्रकार के बाजार अनुसंधान, उनके चरणों और डेटा विश्लेषण प्रक्रियाओं का रूपरेखा तैयार करने के लिए एक प्रारंभिक अध्ययन विकसित करना है। इसके लिए, सबसे पहले बाजार अनुसंधान प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, और बाद में, नए उत्पाद विकास प्रक्रिया (NDP) का एक संदर्भ मॉडल प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद, लेख के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उपयोग की गई विधि का विस्तार पूर्वक विवरण दिया गया है। अंत में, ग्रंथसूची अनुसंधान और विशेषज्ञों के साथ फोकस समूह के परिणामों को ध्यान में रखते हुए, एनपीडी चरणों में विकसित की जाने वाली बाजार अनुसंधान प्रक्रियाओं का प्रस्ताव दिया गया है।

साहित्य समीक्षा (Literature Review) :

वैन क्लीफ, वैन ट्रिजप और लूनिंग (2005) ने नए उत्पाद विकास के प्रारंभिक चरणों में उपभोक्ता अनुसंधान विधियों की एक आलोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। Food Quality and Preference में प्रकाशित उनके अध्ययन में उपभोक्ता प्राथमिकताओं, दृष्टिकोणों और व्यवहारों को समझने के लिए प्रयुक्त विभिन्न शोध तकनीकों का मूल्यांकन किया गया है। अध्ययन इस बात पर बल देता है कि उपयुक्त और सटीक अनुसंधान विधियों का चयन, उत्पाद नवाचार के लिए उपयोगी और विश्वसनीय अंतर्दृष्टि उत्पन्न करने में निर्णायक भूमिका निभाता है।

वैल्डहुइजेन, हुल्टिक और ग्रिफिन (2006) ने नए उत्पाद विकास प्रक्रिया में बाजार सूचना प्रसंस्करण (Market Information Processing) का एक अनुभवजन्य विश्लेषण प्रस्तुत किया है। Journal of Engineering and Technology Management में प्रकाशित उनके अध्ययन में यह जांच की गई है कि संगठन किस प्रकार बाजार से संबंधित सूचनाओं को एकत्र करते हैं, उनकी व्याख्या करते हैं और उत्पाद विकास निर्णयों में उनका उपयोग करते हैं। उनके निष्कर्ष दर्शाते हैं कि प्रभावी सूचना प्रसंस्करण से संगठनात्मक सीख, निर्णय-क्षमता और नए उत्पाद का प्रदर्शन बेहतर होता है।

ट्रॉय, हिरुन्याविपाड़ा और पासवान (2008) ने नए उत्पाद की सफलता में क्रॉस-फंक्शनल एकीकरण (Cross-Functional Integration) की भूमिका का विश्लेषण करते हुए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। श्रवणतदंस वी डंतामजपदह में प्रकाशित उनके अनुभवजन्य अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि संगठन के भीतर विपणन, अनुसंधान एवं विकास, उत्पादन तथा अन्य कार्यात्मक विभागों के बीच प्रभावी समन्वय और सहयोग, सफल नए उत्पाद परिणाम प्राप्त करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। उनके निष्कर्ष दर्शाते हैं कि अंतर-कार्यात्मक सहयोग निर्णय-निर्माण की गुणवत्ता और उत्पाद प्रदर्शन दोनों को बेहतर बनाता है।

झाओ, होफर और डाहल (2009) ने नए उत्पाद मूल्यांकन में कल्पना-आधारित दृश्यीकरण (Imagination-Focused Visualization) की भूमिका की जांच की है। श्रवणतदंस वी डंतामजपदह त्मेमंतबी में प्रकाशित उनके शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि दृश्यीकरण तकनीकें उपभोक्ताओं की धारणाओं, अपेक्षाओं और उत्पाद मूल्यांकन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। यह अध्ययन उत्पाद प्रस्तुति, संचार रणनीतियों और नवोन्मेषी उत्पादों की स्वीकृति को बेहतर बनाने के लिए विपणकों को महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

वॉम ब्रोके और लिप्पे (2015) ने सहयोगात्मक अनुसंधान परियोजनाओं से संबंधित परियोजना प्रबंधन साहित्य का एक समेकित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। International Journal of Project Management में प्रकाशित उनका अध्ययन सहयोगात्मक प्रयासों के प्रभावी प्रबंधन हेतु व्यावहारिक दिशा-निर्देश प्रदान करता है। यह शोध विशेष रूप से उन नए उत्पाद विकास परियोजनाओं के लिए प्रासंगिक है, जिनमें बहु-विषयक और अंतर-कार्यात्मक टीमों की भागीदारी बढ़ती जा रही है।

फिलिप कोटलर और केलर (2021) की Marketing Management विपणन सिद्धांतों और प्रबंधन के क्षेत्र में एक अत्यंत प्रतिष्ठित और व्यापक स्रोत है। इस पुस्तक में विपणन को केवल एक व्यावसायिक कार्य नहीं बल्कि उपभोक्ता की आवश्यकताओं को समझने, मूल्य सृजन करने और संगठनात्मक लक्ष्यों

के अनुरूप उपभोक्ता संतुष्टि सुनिश्चित करने वाली एक समग्र प्रबंधन प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। लेखक स्पष्ट रूप से कहते हैं कि नए उत्पाद विकास (NPD) में मार्केट रिसर्च एक रणनीतिक आधार है, जो उत्पाद विचार, अवधारणा विकास, परीक्षण और अंतिम बाजार लॉन्च तक सभी चरणों में अत्यंत महत्वपूर्ण निर्णायक भूमिका निभाता है।

बाजार अनुसंधान की प्रक्रिया (Market Research Process)

बाजार अनुसंधान एक व्यवस्थित और चरणबद्ध प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से उपभोक्ता, बाजार और प्रतिस्पर्धा से संबंधित विश्वसनीय जानकारी एकत्र कर सही निर्णय लिए जाते हैं। इसकी प्रमुख प्रक्रियाएँ निम्नलिखित हैं-

1. समस्या की पहचान एवं शोध उद्देश्य निर्धारण
2. अनुसंधान योजना (Research Plan) का विकास
3. जानकारी का संग्रह (Information Collection)
4. जानकारी का विश्लेषण (Information Analysis)
5. निष्कर्ष, व्याख्या और रिपोर्ट प्रस्तुति

1. शोध समस्या और उद्देश्यों का स्पष्टीकरण :

फील्ड रिसर्च का आधार इस बात पर टिका होता है कि हम शोध क्यों कर रहे हैं। भूपत मजं सं. (2008) के अनुसार, शोध की प्रकृति को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

- अन्वेषणात्मक (Exploratory) : जब समस्या स्पष्ट न हो और नए विचारों या संभावनाओं की तलाश करनी हो।
- वर्णनात्मक (Descriptive) : जब बाजार की मौजूदा स्थिति, विशेषताओं या व्यवहार का सटीक विवरण तैयार करना हो।
- कारणात्मक (Causal) : जब दो चरों (variables) के बीच 'कारण और प्रभाव' (Cause-Effect) के संबंध को समझना हो।

शोध का दृष्टिकोण (Research Approach):

मालहोत्रा (2014) के अनुसार, उद्देश्यों के आधार पर शोधकर्ता यह चुनाव करता है कि अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) होगा (गहन समझ के लिए) या मात्रात्मक (Quantitative) (सांख्यिकीय डेटा के लिए)। यह स्पष्टता शोध की पूरी रूपरेखा निर्धारित करती है।

2. शोध रूपरेखा और कार्यप्रणाली का निर्धारण:

एक बार उद्देश्य स्पष्ट हो जाने के बाद, शोध की कार्यप्रणाली (Methodology) का खाका तैयार किया जाता है। इस चरण में मुख्य रूप से चार स्तंभों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है:

नमूना चयन रणनीति (Sampling Strategy) : यह तय किया जाता है कि संपूर्ण जनसंख्या में से किन विशिष्ट उत्तरदाताओं को चुना जाएगा (जैसे: Probability या Non-probability sampling) और नमूने का आकार क्या होगा।

डेटा संग्रह उपकरण (Data Collection Instruments): जानकारी जुटाने के लिए सर्वेक्षण (Surveys), प्रश्नावली (Questionnaires), या साक्षात्कार मार्गदर्शिका (Interview guides) जैसे उपकरणों का विकास किया जाता है।

संग्रह पद्धति (Collection Method): डेटा प्राथमिक स्रोतों (Primary sources) से लिया जाएगा या द्वितीयक (Secondary) से, और इसके लिए ऑनलाइन माध्यम, टेलीफोनिक या व्यक्तिगत मुलाकात में से किसका चयन करना प्रभावी होगा।

डेटा विश्लेषण योजना: डेटा एकत्र करने के बाद उसे संसाधित (Process) करने के लिए किन सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया जाएगा।

3. डेटा संग्रह की चुनौतियाँ और समाधान (Ray - Tabor, 2003) :

समय और संवेदनशीलता: यह चरण अनुसंधान का सबसे अधिक समय लेने वाला हिस्सा है।

गलतियों की संभावना: सर्वेक्षण पद्धति में डेटा की शुद्धता पर प्रभाव पड़ने का जोखिम अधिक होता है।

निष्कर्षों की वैधता: यदि डेटा संग्रह पक्षपातपूर्ण (Biased) है, तो पूरे शोध के निष्कर्ष संदिग्ध हो जाते हैं।

अनिवार्य सुझाव: संग्रह प्रक्रिया का सूक्ष्म विवरण (Detailed Procedure Plan) तैयार करना ताकि परिणामों में विचलन (Deviation) न आए।

4. डेटा विश्लेषण के अंतर्गत एकत्रित किए गए डेटा की विस्तृत व्याख्या की जाती है। डेटा विश्लेषण की कार्यप्रणाली शोध के प्रारंभिक उद्देश्य और परियोजना के प्रकार पर निर्भर करती है।
5. कोटलर और केलेर (2016) इस बात पर जोर देते हैं कि शोधकर्ता की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी बनती है कि वह उन परिणामों का चयन करे जो अध्ययन के मूल कारण से संबंधित समस्या का अधिक सटीक समाधान प्रस्तुत करते हों, साथ ही उपयुक्त संचार तकनीकों का उपयोग करते हुए निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक निष्कर्षों का वर्णन करे।

बाजार सर्वेक्षण के परिणाम प्राप्त होने पर, प्रबंधकों को यह देखना चाहिए कि शोध पर्याप्त वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित था और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया को अन्य प्रासंगिक व्यावसायिक और पर्यावरणीय जानकारी वाले डेटा के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए, जो किए गए शोध में प्राप्त जानकारी का पूरक हो।

शोध योजना का विकास :

मालहोत्रा (2014) के अनुसार, शोध कार्य को संचालित करने के लिए दो प्रमुख दृष्टिकोण अपनाए जा सकते हैं—प्रत्यक्ष दृष्टिकोण तथा अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण। प्रत्यक्ष दृष्टिकोण में उत्तरदाताओं को शोध के उद्देश्य तथा प्रयुक्त उपकरणों की प्रकृति का स्पष्ट ज्ञान होता है। यह दृष्टिकोण विस्तृत और गहन जानकारी एकत्र करने में अधिक प्रभावी माना जाता है। प्रत्यक्ष दृष्टिकोण के अंतर्गत फोकस समूह चर्चा, व्यक्तिगत साक्षात्कार, सर्वेक्षण तथा प्रयोगात्मक अध्ययन जैसी विधियाँ सम्मिलित करना होता है।

जबकि अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण में शोध परियोजना के वास्तविक उद्देश्य उत्तरदाताओं से छिपे रहते हैं। इस पद्धति के अंतर्गत उत्तरदाता ऐसे उत्तर प्रदान करते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से पूछे जाने पर संभवतः प्राप्त नहीं हो पाते। इस प्रकार की तकनीकें उत्तरदाताओं की अवचेतन धारणाओं, भावनाओं और दृष्टिकोणों को उजागर करने में सहायक होती हैं। अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण में मुख्यतः प्रक्षेपी तकनीकों तथा अवलोकन विधि का उपयोग किया जाता है।

शोध योजना के एक महत्वपूर्ण चरण के रूप में नमूनाकरण योजना का चयन किया जाता है, जिसमें नमूना इकाई, नमूना आकार तथा नमूनाकरण प्रक्रिया का निर्धारण किया जाता है। नमूना इकाई के माध्यम से लक्षित जनसंख्या की पहचान की जाती है, जबकि नमूना आकार सर्वेक्षण में सम्मिलित किए जाने वाले उत्तरदाताओं की उपयुक्त संख्या को दर्शाता है।

डेटा संग्रह उपकरण का चयन शोध की प्रकृति, डिजाइन तथा अपनाए गए दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होता है। उपकरण के निर्माण के समय यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि अध्ययन गुणात्मक है या मात्रात्मक, तथा इसके अंतर्गत गहन साक्षात्कार, फोकस समूह, सर्वेक्षण अथवा अन्य विधियों का उपयोग किया जाना है या नहीं (चर्चिल और इयाकोबुची, 2006; हेयर एट अल., 2008; मालहोत्रा, 2014)।

डेटा संग्रह उपकरणों का सत्यापन (Validation) शोध की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। साहित्य के अनुसार, उपकरण का सत्यापन विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाना चाहिए अथवा लक्षित जनसंख्या के समान विशेषताओं वाले उत्तरदाताओं पर पूर्व-परीक्षण (Pilot Study) आयोजित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, संरचित प्रश्नावली के साथ-साथ मापन तकनीकों तथा समय-निर्धारण पद्धतियों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

अंततः, शोध रणनीति में संपर्क रणनीतियाँ भी सम्मिलित होती हैं, जिनके माध्यम से नमूना इकाइयों से डेटा प्राप्त किया जाता है। डेटा संग्रह की पद्धति के आधार पर शोधकर्ता डाक विधि, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम अथवा व्यक्तिगत संपर्क विधियों का प्रयोग कर सकता है। व्यक्तिगत विधियों में प्रक्षेपी तकनीकें, फोकस समूह, व्यक्तिगत साक्षात्कार, अवलोकन, सर्वेक्षण एवं प्रयोग शामिल हैं। प्रत्येक विधि के अपने लाभ एवं सीमाएँ होती हैं, जो उपकरण की लचीलता, प्रश्नों की विविधता, उत्तरदाताओं की गुमनामी, उपलब्ध समय तथा प्रतिफल दर जैसे कारकों पर निर्भर करती हैं (मालहोत्रा, 2014; चर्चिल और इयाकोबुची, 2006)।

डेटा विश्लेषण (Data Analysis) :

डेटा विश्लेषण की प्रकृति शोध के निर्धारित उद्देश्य, प्रकार तथा शोध डिजाइन पर निर्भर करती है। मात्रात्मक अनुसंधान से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों द्वारा किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम एक-चर विश्लेषण के अंतर्गत आवृत्तियों का निर्धारण किया जाता है, तत्पश्चात द्वि-चर विश्लेषण में क्रॉस-टैबुलेशन द्वारा चरों के बीच संबंधों का अध्ययन किया जाता है। अंततः, बहु-चर विश्लेषण का उपयोग तब किया जाता है जब एक साथ अनेक चरों के प्रभाव का विश्लेषण आवश्यक हो, जो विशेष रूप से विपणन अनुसंधान में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है।

गुणात्मक अन्वेषणात्मक अनुसंधान से प्राप्त डेटा का विश्लेषण मुख्यतः सामग्री विश्लेषण के माध्यम से किया जाता है, जिसमें विषयों की आवृत्ति, उनके आपसी संबंध तथा वैचारिक ढाँचों के आधार पर डेटा की व्याख्या की जाती है (बार्डिन, 2013)। इसके अतिरिक्त, गुणात्मक डेटा का संवाद विश्लेषण एवं सांकेतिक विश्लेषण के रूप में भी अध्ययन किया जा सकता है।

नए उत्पाद विकास (NPD) और बाजार अनुसंधान का व्यवस्थित मॉडल

यह मॉडल मुख्य रूप से अमराल और रोजेनफेल्ड (2007) के शोध पर आधारित है। इसे तीन मुख्य चरणों और 'गेट सिस्टम' में विभाजित किया गया है:

विकास के तीन मुख्य चरण (The Three Macro-Phases)

चरण	मुख्य उद्देश्य
I. पूर्व-विकास (Pre-Development)	अवसरों और बाजार की मांग को पहचानना।
II. विकास (Development)	उत्पाद को साकार रूप देना और उनका परीक्षण करना।
III. पश्च-विकास (Post-Development)	बाजार में प्रदर्शन की निगरानी करना।

'गेट' प्रणाली (The Gate System)

चूंकि उत्पाद विकास में भारी निवेश और जोखिम होता है, इसलिए यह मॉडल 'Gate' (कंट्रोल पॉइंट) का उपयोग करता है:

- निर्णय प्रक्रिया : हर चरण के अंत में एक 'गेट' होता है जहाँ प्रबंधक तय करते हैं कि प्रोजेक्ट 'Go' (आगे बढ़ेगा) या 'No-Go' (बंद होगा)।
- आधार : यह निर्णय विशिष्ट संकेतकों (Indicators) और मूल्यांकन मानदंडों पर आधारित होता है।

अनुसंधान रणनीतियाँ और डेटा संग्रह (Research Strategies)

डेटा प्राप्त करने के लिए शोधकर्ता अलग-अलग माध्यमों का चुनाव करते हैं :

- संपर्क विधियाँ (Contact Methods):
 - इलेक्ट्रॉनिक / डाक : सर्वेक्षण (Surveys) और अवलोकन (Observation)।
 - व्यक्तिगत (In-person) : फोकस ग्रुप, व्यक्तिगत साक्षात्कार, और प्रोजेक्टिव तकनीकें।
- चयन के आधार : शोध का चुनाव समय की उपलब्धता, बजट, उत्तरदाताओं की गोपनीयता और वापसी की दर पर निर्भर करता है।

NPD प्रक्रिया में मार्केटिंग रिसर्च की भूमिका

मार्केटिंग रिसर्च पूरे विकास चक्र में एक सहायक की भूमिका निभाती है :

1. पूर्व-विकास में : ग्राहकों में उत्पन्न हों सकने वाले जरूरतों को पहचानना।
2. विकास के दौरान : ग्राहकों की पसंद-ना पसंद के आधार पर प्रोटो टाइप और डिजाइन में सुधार करना।
3. पश्च-विकास में : बाजार में लॉन्च के बाद ग्राहकों के फीडबैक और उनके अनुभव को समझना।

विधि (Method) –

यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति का है तथा इसे अन्वेषणात्मक (Exploratory) शोध के रूप में वर्गीकृत किया गया है। अध्ययन में साहित्यिक (Bibliographic) शोध और क्षेत्रीय (Field) शोध-दोनों विधियों का उपयोग किया गया।

साहित्यिक शोध “मार्केट रिसर्च और नए उत्पाद विकास प्रक्रिया” से संबंधित मौजूदा सिद्धांतों के आधार पर किया गया, जिसके लिए मुख्यतः Web of Science और Scopus MsVksl का उपयोग हुआ। वहीं, क्षेत्रीय शोध से आशय उन प्राथमिक आंकड़ों से है, जिन्हें शोध समस्या को समझने के लिए विशेष रूप से एकत्र किया गया।

साहित्यिक अध्ययन के माध्यम से NPD के विभिन्न चरणों में मार्केट रिसर्च से जुड़ी पाँच प्रमुख समस्याएँ पहचानी गईं-

ग्राहकों की अंतर्निहित मांगों की पहचान

ग्राहकों की पसंदीदा आवश्यकताओं की पहचान

उत्पाद अवधारणा परीक्षण

प्रयोगात्मक परीक्षण

उपभोक्ताओं के साथ उत्पाद प्रदर्शन का मूल्यांकन

इन समस्याओं के लिए उपयुक्त शोध प्रक्रियाएँ निर्धारित करने हेतु मार्केटिंग और प्रोडक्शन इंजीनियरिंग क्षेत्र के छह विशेषज्ञों के साथ फोकस ग्रुप चर्चा आयोजित की गई, जिसमें उत्पाद प्रबंधन पर विशेष ध्यान दिया गया।

निष्कर्ष (Conclusion) –

इस अध्ययन में नए उत्पाद विकास (NPD) के विभिन्न चरणों में किए जाने वाले प्रमुख मार्केट रिसर्च के लिए उपयुक्त कार्य प्रणालियों की पहचान और सुझाव दिए गए हैं।

- (i) उपभोक्ताओं की निहित मांगों की पहचान को इस अध्ययन में काफी हद तक सुलझी हुई समस्या माना गया है, क्योंकि इसके लिए अपनाए गए शोध दृष्टिकोण, नमूना चयन, शोध उपकरण तथा विश्लेषण प्रक्रियाएँ स्पष्ट, व्यावहारिक और उपयोग में अपेक्षाकृत सरल हैं। तथापि, जब पहचानी गई मांगों की संख्या अधिक होती है, तब AHP जैसी वैकल्पिक विश्लेषण विधियों की जटिलता एक चुनौती के रूप में उभर सकती है, जिसे विशेषीकृत सॉफ्टवेयर के प्रयोग से प्रभावी रूप से कम किया जा सकता है।
- (ii) ग्राहकों द्वारा मूल्यांकित आवश्यकताओं की पहचान के लिए संस्थाएँ प्रस्तावित ढाँचे के प्रारंभिक दो चरणों को अपनाकर प्रभावी परिणाम प्राप्त कर सकती हैं।
- (iii) अवधारणा परीक्षण एक महत्वपूर्ण चरण है, क्योंकि इससे उत्पाद की कार्यात्मक विशेषताओं से संबंधित डेटा प्राप्त होता है, जो उत्पाद की स्वीकृति और सुधार के निर्णय में सहायक होता है। हालाँकि, क्रांतिकारी नवाचार की स्थिति में उपयुक्त उपभोक्ता नमूना प्राप्त करना जटिल हो सकता है।
- (iv) प्रोटोटाइप परीक्षण भी उपभोक्ताओं के संपर्क पर निर्भर करता है और इसमें भी नमूना चयन एक चुनौती बन सकता है।
- (v) उपभोक्ताओं के साथ उत्पाद प्रदर्शन का मूल्यांकन अपेक्षाकृत सबसे सरल चरण है, यद्यपि अत्यधिक विशिष्ट उपभोक्ता वर्ग वाले उत्पादों में नमूना प्राप्त करना थोड़ा जटिल हो सकता है।

अंततः, यह वर्गीकरण भविष्य के अनुसंधान के लिए एक मान्यकरण ढाँचा प्रदान करता है और प्रबंधकों को मार्गदर्शन देकर अपर्याप्त या अपूर्ण मार्केट रिसर्च से होने वाली त्रुटियों को कम करने में सहायक सिद्ध होता है।

संदर्भ (References) :

1. इवांशिट्स्की एवं अन्य, 2012; कैस्टेलॉट एवं मार्कहम, 2013; कोटलर एवं केलर, 2016।
2. जैन, 2001; कैंकुरतारन एट अल., 2013; एलिंग एट अल., 2013; एपिंगर और उलरिच, 2015।
3. वैन क्लीफ, वैन ट्रिजप और लूनिंग (2005) - उपभोक्ता अनुसंधान विधियों का मूल्यांकन और नवाचार में उनकी भूमिका।
4. वैल्डहुइजेन, हुल्टिक और ग्रिफिन (2006) - बाजार सूचना प्रसंस्करण और NPD निर्णयों पर प्रभाव।
5. ट्रॉय, हिरुन्याविपाड़ा और पासवान (2008) - क्रॉस-फंक्शनल एकीकरण और नए उत्पाद की सफलता।
6. झाओ, होफर और डाहल (2009) - कल्पना-आधारित दृश्यीकरण और उत्पाद मूल्यांकन।
7. वॉम ब्रोके और लिप्पे (2015) - सहयोगात्मक परियोजनाओं और बहु-विषयक टीम प्रबंधन।
8. कोटलर और केलर (2021) - NPD में मार्केट रिसर्च का रणनीतिक महत्व।
9. Alexander, D. L., Lynch Jr, J. G., & Wang, Q. (2008). समय के साथ: क्या “ठंडी” सोच “गर्म” इरादों के बाद आती है? - वास्तव में नए बनाम क्रमिक नए उत्पादों के लिए। जर्नल ऑफ मार्केटिंग रिसर्च, 45(3), 307-319.
10. Barczak, G., & Kahn, K. B. (2012). नए उत्पाद विकास में सर्वश्रेष्ठ प्रथाओं की पहचान। बिजनेस होराइजन्स, 55(3), 293-305.
11. Campos, S. U. D., & Ribeiro, J. L. D. (2011). मिलिंग व्हीट सेक्टर की कंपनियों के लिए उत्पाद विकास प्रक्रिया का संदर्भ मॉडल। प्रोडक्शन, 21(3), 379-391.
12. Cankurtaran, P., Langerak, F., & Grin, A. (2013). नए उत्पाद विकास गति के परिणाम: एक मेटा-विश्लेषण। जर्नल ऑफ प्रोडक्ट इनोवेशन मैनेजमेंट, 30(3), 465-486.

गाँधी जी के संरक्षकता सिद्धान्त और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

डॉ० कृणाल कुमार

साबरमती विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, गुजरात

सारांश

गाँधी जी के संरक्षकता के सिद्धान्त से पहले संरक्षकता के अर्थ को समझना हमारे लिए जरूरी है। न्यासिता शब्द अंग्रेजी के 'ट्रस्ट' शब्द से बना है जो विधिवेताओं के द्वारा सामान्यतया व्यवहृत होता है। न्यास में जमीन, किसी चीज को कोष, शेयर आदि रखे में जाते हैं। न्यास की अवधारणा जमीन और व्यवहार की अन्य संपत्ति को किसी के यहां सुरक्षित रूप से रखने के रीति रिवाज से हुई। अंग्रेजी कानून के मुताबिक सम्पत्ति के उपभोग तथा उपयोग के विषय में अनेक सिद्धान्त निकाले हैं। इसमें न्यास का अर्थ यह हुआ कि कोई सम्पत्ति जो किसी के स्वामित्व में है वह दूसरे के नियन्त्रण में उसकी मर्जी से उसके लाभकारी उपयोग के लिए दी जाती है।

कूटशब्द:- संरक्षकता सिद्धान्त, स्वतंत्रता संग्राम ईशोपनिषद्, हदीस।

भारत में न्यासिता की उत्पत्ति 'ईशोपनिषद्' से हुई है। भारतीय सम्बन्ध में न्यासी का उपयोग मन्दिरों व मठों के सन्दर्भ में किया जाता है। न्यासी का मतलब किसी ऐसे व्यक्ति से होता है जो मन्दिर की संपत्ति का संचालन बिना किसी निहित स्वार्थ के करता है। देवदत्त दाभोलकर के अनुसार कि, "बिना किसी प्रतिपादन की अपेक्षा के विशेषाधिकार, शक्ति, पद व प्रतिष्ठा का स्वैच्छिक परित्याग ही न्यासिता है।" भारत के धार्मिक ग्रन्थ ऋग्वेद में भी यह कहा गया है कि "जो व्यक्ति अकेला खाता है वह चोर है।" ईशावास्य उपनिषद् ग्रन्थ के प्रथम श्लोक की पंक्ति में शतेन व्यक्तेन भुंजीयाः ही संरक्षकता का मूल सिद्धान्त है। यानि त्याग की वृत्ति से ही भौतिक वस्तुओं का भोग करना। संसार की सभी वस्तुएँ परमेश्वर की देन हैं उसी की कृपा के प्रसाद रूप में हम इसका इस्तेमाल करें, निजी मालिक्यत समझ कर नहीं। हमारे जीवन को ठीक तरह से संचालित करने के लिए जितना भोजन, वस्त्र, आवास आदि की जरूरत है उतना ही हम उपयोग करें और शेष धन भगवान को या समाज को अर्पित कर दें।

संरक्षकता के बारे में गाँधी जी के जो विचार हैं उनकी कल्पना 1300 वर्ष पूर्व भी की गई थी। पवित्र ग्रन्थ हदीस में इस आशय का पद्य है लोगों के पास जो कुछ धन दौलत है वह मेरी संपत्ति है, क्योंकि गरीब मेरे बच्चे हैं और धनी उनके पास जो धन दौलत है उसके संरक्षक। इसलिए जो धनवान मेरे गरीब बच्चों की ओर से खर्च नहीं करेंगे उन्हें मैं नरक में भेज दूंगा, जहां उनकी कोई सास्समहाल नहीं होगी। इस प्रकार प्राचीन समय से ही सन्तों ने, धर्म संस्था ने और ज्ञानियों ने अपनी-अपनी तरह से दर्शाया है कि व्यक्ति और समाज की संपत्ति के प्रति क्या दृष्टिकोण होना चाहिए।

प्रत्येक देश व समाज की अपनी विशेषताएँ होती हैं। भारतवर्ष में एक पुरातन देश है और यहाँ की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन होने के कारण यहाँ की सामाजिक व्यवस्था उसके सामाजिक आदर्श व मर्यादाएँ अपनी विशेषताएँ रखते हैं। किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली में आर्थिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारतीय समाज पर जो पश्चिमी लोकतन्त्र की प्रणाली अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर थोपी गई थी उससे भारतीय समाज में अनेक बुराइयों का जन्म हुआ। महात्मा गाँधी ने इन बुराइयों को निकट से देखा और यह अनुभव किया कि आज समाज का पतन हो रहा है उसका मूल कारण भेदभावपूर्ण वर्तमान आर्थिक व्यवस्था है। इस प्रकार गाँधी जी ने विभिन्न समस्याओं और परिस्थितियों को समझकर और वर्तमान समाज की दुर्दशा देखकर एक नया सिद्धान्त पेश किया। उसके आर्थिक सिद्धान्त ने भारतीय समाज की ही नहीं बल्कि विश्व समाज की राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए एक मन्त्र प्रदान किया।

गाँधी जी ने 1903 में संरक्षकता के सिद्धान्त के बारे में अपने विचार दिए। इसके बाद भी गाँधी जी ने इस सिद्धान्त के बारे में विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में अपने लेखों के द्वारा जनता के सामने विचार प्रकट किए। गाँधी जी के अनुसार "संरक्षकता का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है जिसके पास धन है वह उसे अपना समझकर फिजूल खर्च न करे। संरक्षक समझकर रखे और लोक कल्याण या समाज हित में उपयोग करे। इसका आशय यह है कि जब तक धनिक वर्ग स्वेच्छापूर्वक अपना धन त्याग नहीं देता या समाज की भलाई में नहीं लगाता तब तक अहिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा उनका हृदय परिवर्तन के लिए प्रयास करने चाहिए और धनी वर्ग यदि जन सामान्य की तरह रहते हैं या कम खर्च करते हैं, अपने धन का उपयोग समाजहित में करते हैं तो जनता के संरक्षकता की भावना रखने वाला व्यक्ति लोगों को दबाकर और उनका शोषण करके धन कमाने का प्रयत्न नहीं करता है। वह आगे यह भी कहता है कि मैं धनिक वर्ग के धन का शक्ति से अपहरण करने का समर्थक भी नहीं हूँ बल्कि शान्तिपूर्ण तरीके से अहिंसात्मक साधनों से पूँजीपतियों के हृदय परिवर्तन के द्वारा धन का प्रयोग समाज के हित में करने का पक्षधर हूँ।

गांधी जी पूँजीवाद को समाप्त करने के लिए साम्यवादियों से भी ज्यादा उत्सुक हैं। लेकिन उसका पूँजीवाद को समाप्त करने का तरीका अलग है वह संरक्षकता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त उच्च चरित्र की निशानी है और मनुष्य को यह जानकारी देता है कि वह मनुष्य पहले है और सेठ साहूकार बाद में गांधी जी के संरक्षकता के सिद्धान्त की परिभाषा देवदत्त डबहोलकर के शब्दों में, “बिना किसी चीज की लालसा रखते हुए अधिकारों, शक्ति और प्रसिद्धि का ऐच्छिक त्याग करना संरक्षकता का सिद्धान्त है।” के० अरुणाकलम के अनुसार, “संरक्षकता एक व्यक्ति में निहित विश्वास, संपत्ति के सन्दर्भ में जो उसके पास है और जिसने भी वह अपना अधिकार रखता है उसका उपयोग वह अपने लाभ के लिए न करके दूसरों की भलाई के लिए करता है। गांधी जी का संरक्षकता का विचार ऐसी सीमित कानूनी व्याख्या से अधिक व्यापक और गम्भीर है। गांधी जी किसी व्यक्ति को संपत्ति का स्वामी नहीं मानते, वह ईश्वर को ही संपत्ति का स्वामी मानते हैं। मनुष्य के विकास की दृष्टि से संपत्ति को बहुत तुच्छ चीज मानते हैं। संपत्ति सेवा के लिए है और उसकी व्यवस्था इस प्रकार की जाए कि व्याख्या करने वाले मनुष्य का अध्यात्मिक विकास हो, वह अनासक्त भाव से संपत्ति को ग्रहण और उपयोग करे।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व, व्यक्तिगत सुविधा, आराम, प्रतिष्ठा रक्षण आदि के लिए संपत्ति का संचय करने, मुनाफा कमाने की प्रेरणा, सेवा, योग्यता, परिश्रम आदि। सबका मूल्यांकन पैसे के आधार पर भाव, कम ज्यादा करने के लिए एकाधिकार की प्रवृत्ति, सस्ते कच्चे माल की उपलब्धि और पक्के माल की खपत के लिए बाजारों पर नियन्त्रण रखने के अनेक तरह के उपाय अपनाये जाते हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप का निषेध किया जाता है क्योंकि यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के खिलाफ माना जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पूँजीपति वर्ग की राज्य की नीतियों का संचालन करने लगता है। जनमत का निर्माण करने वाले साधनों पर पूँजीपति वर्ग का नियन्त्रण हो जाता है। इतना ही नहीं मनुष्य इतना भ्रष्ट हो जाता है कि संपत्ति के लिए भाई-भाई का गला काटता है, निर्जीव वस्तु के प्रति आदर मनुष्य तथा भाई से बढ़कर हो जाता है। इसके विपरीत संरक्षकता के सिद्धान्त में मनुष्य अपने साथ के प्राणियों को कष्ट नहीं देता है, उनके सुख का ध्यान रखता है। साथ ही वह अपने काम करने वाले लोगों को भी उतना ही सम्मान और मालिकाना हक प्रदान करता है जितना स्वयं को।

संरक्षकता की व्यवस्था में प्राकृतिक कारणों से पैदा होने वाली विषमता का सतत् निराकरण होता रहता है। इसी को ध्यान में रखते हुए गांधी जी ने कहा था, “मैं बुद्धिशाली व्यक्ति को अधिक कमाने दूँगा, उसकी बुद्धि को कुंठित नहीं करूँगा। परन्तु उसकी अधिकांश कमाई समाज की भलाई के लिए उसी तरह काम में आनी चाहिए जैसे बात के सारे कमाऊ बेटों की आमदनी परिवार के कोष में जमा होती है। वह अपनी कमाई के संरक्षक ही बन कर रह सकेंगे।

गांधी जी ने कहा था, “मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि राज्य ने पूँजीवाद को हिंसा से दबाने की कोशिश की तो वह खुद ही हिंसा के जाल में फँस जाएगा और फिर कभी अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा। राज्य हिंसा का एक केन्द्रित और संगठित रूप ही है। व्यक्तिगत तौर पर तो यह चाहूँगा कि राज्य के हाथों में शक्ति का ज्यादा केन्द्रीयकरण होने के बजाए संरक्षकता के सिद्धान्त का विस्तार हो क्योंकि मेरी राय में राज्य की हिंसा की तुलना में व्यक्ति की हिंसा कम हानिकारक है। लेकिन यदि राज्य की मालिकी अनिवार्य ही हो, तो मैं राज्य की कम से कम मालिकी की सिफारिश करूँगा। गांधी जी ने स्वयं कहा है कि संरक्षकता संपत्ति के स्वामित्व और उपभोग का नियमन करने के लिए कानून बनाने का निषेध नहीं करती, लेकिन कानून बनाकर संरक्षकता को लागू करना असम्भव है। इसके लिए पर्याप्त लोकमत तैयार करने की जरूरत पड़ेगी। जब तक सामान्य जनता इसको स्वीकार न करे तब तक कानून बनाने से कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि इसमें संपत्तिवानों के विचार परिवर्तन के अतिरिक्त आम जनता जैसे श्रमिकों, व्यवस्थापकों आदि के भी विचार परिवर्तन का सवाल है। इसलिए इसको लागू करने के लिए लोक शिक्षण की जरूरत है क्योंकि जब समाज में पर्याप्त वातावरण बन जाएगा तब इसे आसानी से लागू किया जा सकेगा।

कोई भी धनवान व्यक्ति गरीबों के सहयोग के बिना धन नहीं कमा सकता। मनुष्य को अपनी हिसंक शक्ति का मान है क्योंकि वह तो उसे विरासत में मिली है। गांधी जी अहिंसक, असहयोग और सविनय अवज्ञा जैसे सत्याग्रह के अस्त्रों का प्रयोग करने पर भी बल देते हैं। उन्होंने आजादी मिलने के बाद एक बड़े धनवान व्यक्ति के यह पूछने पर कि “स्वराज तो मिल गया अब आप क्या कार्यक्रम अपनाएंगे।” तब गांधी जी ने जवाब दिया कि अब मुझे तुमसे लड़ना है लेकिन यह लड़ाई बड़ी मीठी होगी। इसी प्रकार 1942 में आगा ख़ाँ महल में प्यारे लाल जी से बात करते हुए बापू ने कहा था कि “रूस में मालिकों की संपत्ति का अपहरण करके उसे लोगों में बाँटने से जो क्रान्ति भावना फैली उससे हमारी क्रान्ति ज्यादा महान होगी। गाँधी जी ने कहा था” संरक्षकता का बुनियादी सिद्धान्त यह है कि इसमें पूँजीपति और श्रमिक दोनों ही संरक्षक होंगे और इनमें कोई भी मालिक नहीं होगा। गाँधी जी ने इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त उन्होंने संरक्षकता के मूल आधार भी बताए हैं जिनका पालन किए बिना संरक्षकता का सिद्धान्त निरर्थक साबित होगा। इस प्रकार गांधी जी का समाज में परिवर्तन का सिद्धान्त गहरी जीवन दृष्टि का प्रतीक है। 1937 में उन्होंने वर्धा शिक्षा प्रणाली की स्थापना की। 1938 में गांधी जी ने केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थापना की। अगस्त 1942 में गांधी जी ने अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए ‘भारत छोड़ो आन्दोलन’ चलाया जिसके कारण गांधी जी व अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। जून 1944 में शिमला में प्रमुख नेताओं का सम्मेलन हुआ परन्तु कोई फैसला नहीं हुआ।

1947 ई० में हिन्दु मुसलमानों के बीच झगड़ा उत्पन्न हो गया। ब्रिटेन सरकार के समझौते के आधार पर पंजाब व बंगाल के क्षेत्र अलग होंगे। माउंटबेटन ने भारत आते ही सब दलों के नेताओं से बातचीत व विचार विनिमय करके इंग्लैंड गए। 3 को ब्रितानिया सरकार ने भारत व पाकिस्तान को अलग-अलग राज्य बना दिया गया। गांधी जी ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़े को रोकने के लिए भारत और पाकिस्तान के बीच समझौता कराया। इसी स्थिति में 30 जनवरी, 1948 को नाथूराम गोडसे नामक एक हिन्दू ने बन्दूक की गोलियों से घायल कर दिया और अहिंसा के पुजारी होंठों पर ईश्वर का नाम लेते हुए वे शहीद हो गए।

गांधी जी की मृत्यु भी उनके जीवन की तरह अकारथ नहीं गई। उनकी मौत से वे विचार और सिद्धान्त और भी अधिक सजीव और प्रभावकारी हो उठे जिनके लिए वे जीवन भर लड़े थे। मृत्यु के बाद महात्मा गांधी अपने जीवन की अपेक्षा अधिक बलशाली हो उठे और यही कारण है कि संसार में करोड़ों व्यक्ति उनके विचारों और सिद्धान्तों से प्रभावित हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. अग्रवाल, सुरेन्द्र प्रसाद; महात्मा गांधी, विचार विथिका, कान्सेट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2017
2. अग्रवाल, अलका; गांधी दर्शन (विविध आयाम), पोइन्टर अग्रवाल, शिखा पब्लिशर्स, जयपुर, 2015
3. अय्यर, राघवन; दि मोरल एण्ड पोलिटिकल वार्निंग ऑफ महात्मा गांधी, कलारदन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1997

उत्तर प्रदेश के कृषियों और उद्योगों के महत्त्व का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० प्रमोद कुमार यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पी.के.विश्वविद्यालय, शिवपुरी, मध्यप्रदेश

शोध सार

कृषि समस्त उद्योगों की जननी, मानव जीवन की पोषक, प्रगति की सूचक तथा सम्पन्नता का प्रतीक समझी जाती है। विकासशील राष्ट्रों में कृषि प्रधान व्यवसाय होने के कारण राष्ट्रीय आय का सबसे बड़ा स्रोत, रोजगार एवं जीवन-यापन का प्रमुख साधन, औद्योगिक विकास, वाणिज्य एवं व्यापार का आधार है। अल्पविकसित एवं विकासशील राष्ट्र अपने सीमित साधनों द्वारा आर्थिक विकास की ऊँची दर तक प्राप्त नहीं कर सकते हैं जब तक कि वे आधारभूत कृषि उद्योग का विकास न कर लें। इन देशों में आर्थिक विकास हेतु कृषि विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है क्योंकि कृषि क्षेत्र में पूँजी उत्पाद अनुपात अपेक्षाकृत कम होता है तथा औद्योगिक विकास की तुलना में इसमें विदेशी पूँजी की आवश्यकता कम होती है।

कृषि के लिए अंग्रेजी में Agriculture शब्द का प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के Ager या Land तथा Culture या Cultivation से बना है। जिसका आशय खेती क्रिया तथा उससे उत्पन्न संस्कृति से है। खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रतिवेदन के अनुसार, “कृषि के अन्तर्गत फसल क्षेत्र, स्थायी घास के मैदान तथा प्राकृतिक चारागाह के अलावा अन्य चारागाह भी सम्मिलित हैं।” कृषि, मिट्टी पोषण कला एवं विज्ञान है जिसमें सम्बन्धित क्रियाएँ जैसे- एकत्रीकरण, पशुपालन, जुताई तथा कृषि कर्म थतउपदह सम्मिलित हैं। कुछ विद्वानों ने कृषि का अर्थ फसलोत्पादन तक ही सीमित रखा। लेकिन अधिकांश विद्वानों ने कृषि का अर्थ मृदा पोषण कला से लगाया है, जिसमें वाटसन प्रमुख हैं। चेम्बर शब्दकोष में कृषि शब्द से आशय मृदा संस्कृति से लगाया गया है। बुकानन ने विभिन्न मतों के कारण कृषि के लिए अंग्रेजी भाषा के च्वजउदंजमन शब्द का प्रयोग किया। इनके अनुसार कृषि शब्द का प्रयोग उपलब्ध मिट्टी संसाधन से उत्पन्न खाद्य पदार्थ तथा कच्चे कृषि पदार्थों के उत्पादन क्रिया के रूप में किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र, कृषि में धन के प्रयोग व धन की प्राप्ति की मानव की आर्थिक क्रियाओं के सम्बन्धों का अध्ययन करता है। परन्तु जैसे-जैसे आर्थिक विकास होता गया कई और व्यवसाय भी कृषि का ही भाग माने जाने लगे। वर्तमान में पशुपालन, मुर्गीपालन जैसे व्यवसाय भी कृषि का ही हिस्सा माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि व्यवसायों में मण्डीकरण, कृषि उत्पादों को बचाने के लिए उनके स्वरूप में फेरबदल, कृषि उत्पादों का वितरण तथा खेती के लिए साधनों अर्थात् बीजों, खाद, वित्त तथा पशु सम्बन्धी चिकित्सा इत्यादि की आपूर्ति भी कृषि के अन्तर्गत ही शामिल किये जाते हैं।

मुख्य बिन्दु- सम्पन्नता, अल्पविकसित, विकासशील, अपेक्षाकृत, फसलोत्पादन, एकत्रीकरण।

प्रस्तावना

आर्थिक दृष्टि से अल्प विकसित राष्ट्रों में कृषि प्रधान व्यवसाय है। राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप इसमें कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं परन्तु फिर भी इन देशों के आर्थिक जीवन में कृषि का महत्व बना हुआ है। कृषि के महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कोल एवं हूबर ने कहा है कि, “सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कृषि का विकास पहले होना चाहिए और यदि किसी क्षेत्र के अविकसित होने से दूसरे क्षेत्र के विकास में बाधा पड़ती है तो वह अविकसित क्षेत्र कृषि ही होगा जो अन्य क्षेत्रों के विकास को बाधित करेगा।”² कोई भी अल्पविकसित राष्ट्र खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त किए बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं कर सकता है। कृषि के महत्व को रेखांकित करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था कि, प्रारम्भ से ही यह मेरा अटूट विश्वास रहा है कि केवल कृषि ही इस देश के लोगों को अचूक एवं सतत् सहायता प्रदान करती है।

विगत चार दशकों से औद्योगिक क्षेत्र में हुए संगठित प्रयास के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था में आज भी कृषि का गौरवपूर्ण स्थान बना हुआ है। न केवल देश के उद्योग-धन्धों, विदेशी व्यापार, विदेशी मुद्रा अर्जन और विभिन्न योजनाओं की सफलता कृषि पर निर्भर करती है बल्कि राजनैतिक स्थायित्व भी काफी हद तक कृषि पर ही निर्भर करता है। सामान्यतया अल्पविकसित देशों की राष्ट्रीय आय में कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र का योगदान सबसे अधिक होता है। अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के साथ-साथ प्राथमिक क्षेत्र या कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र का योगदान क्रमशः कम होता जाता है। यही बात भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी लागू होती है। जहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रों के विकास के फलस्वरूप कृषि का हिस्सा लगातार कम होता गया है।

विकासशील राष्ट्रों में कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराना है। क्योंकि भोजन मानव की प्रथम आवश्यकता है, जिसके बगैर मानव जीवित नहीं रह सकता है। खाद्यान्न आपूर्ति न होने पर देश में अस्थिरता भी पैदा होती है। कृषि क्षेत्र के इस

महत्व को कम्प्यूस भी रेखांकित करते हैं। एक बार कम्प्यूस से पूछा गया कि, “पर्याप्त खाद्यान्न, पर्याप्त सैन्य शक्ति और शासन के प्रति पर्याप्त लोक विष्वास, इसमें से कौन-सा एक छोड़ा जा सकता है तो उनका उत्तर था-सैन्यशक्ति छोड़ दीजिए।”¹³ आर्थिक प्रगति के साथ-साथ जनसंख्या की भोजन आवश्यकता में गुणात्मक परिवर्तन भी हो रहे हैं। इस कारण बढ़ती हुई जनसंख्या को अधिक पौष्टिक खाद्यान्नों की आपूर्ति का दायित्व भी कृषि क्षेत्र पर ही है। भारत में, कृषि क्षेत्र देश के 105.9 करोड़ (2011 की जनगणना के अनुसार) नागरिकों के लिए खाद्यान्न तथा 50.12 करोड़ पशुओं के लिए चारा उपलब्ध कराता है।

कृषि देश के अनेक छोटे-बड़े उद्योगों का आधार भी है। सूती और पटसन वस्त्र उद्योग, चीनी, वनस्पति तेल, चाय, कॉफी, रबड़ आदि प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं। हथकरघा बुनाई, तेल निकालना, चावल कूटना, आटा, दालें तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को भी कच्चा माल कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र अन्य विभिन्न प्रकार के उद्योगों के प्रसार में माँग के सृजन में परोक्ष रूप से सहायता करता है। उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों आदि के उद्योग तो कृषि क्षेत्र द्वारा की जाने वाली माँग पर ही निर्भर करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक परिवर्तन की दशा से यह ज्ञात होता है कि अन्तः उद्योग निर्भरता बढ़ी है। कृषि क्षेत्र का उत्पादन गैर कृषि क्षेत्र में और गैर कृषि क्षेत्र का उत्पादन कृषि क्षेत्र में आगतों के रूप में अधिक मात्रा में प्रयुक्त होने लगा है। हाल के वर्षों में इस प्रवृत्ति में वृद्धि भी हुई है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृषि क्षेत्र विभिन्न उद्योगों के अस्तित्व और विकास का आधार है।

कृषि सुधार द्वारा मानव-शक्ति के अतिरेक की सृष्टि होती है अर्थात् इसके द्वारा कृषि में लगे हुए श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए उपलब्ध किया जाता है। शाही श्रम आयोग 1931 ने भी कृषि क्षेत्र द्वारा इस प्रकार के योगदान की पुष्टि की है। विभिन्न कुशल श्रमिकों को छोड़कर सभी अपेक्षित मजदूरों की पूर्ति ग्रामीण क्षेत्र से ही होती है। औद्योगिक विकास एवं कृषि पर निर्भरता बढ़ने के कारण मजदूरों का कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर पलायन की प्रवृत्ति आज भी जारी है।

विदेशी व्यापार की दृष्टि से भी कृषि का स्थान महत्वपूर्ण है। कृषि वस्तुओं तथा कृषि पर आधारित उद्योगों की वस्तुओं के निर्यात को कुल निर्यातों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विकासशील देशों में इसका अपना विशेष स्थान होता है क्योंकि कृषि वस्तुओं के निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा देश को सबल औद्योगिक आधार उपलब्ध कराने में सहायक होती है। पिछले कुछ वर्षों से भारत के कुल निर्यात एवं कृषि वस्तुओं के निर्यात की मात्रा एवं मूल्य में बढ़ोत्तरी हुई है जो आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र से निर्यात किये जाने वाले उत्पादों में चाय, कॉफी, तम्बाकू, काजू, जूट, कपास, ऊन, बादाम, चीनी, खाद्य तेल, सुपारी, गोंद, किशमिश, चमड़ा, खली, मसाले एवं फल प्रमुख हैं। बहुत अधिक समय तक कृषि का निर्यात आय में हिस्सा 70 से 75 प्रतिशत तक था, परन्तु देश के आर्थिक विकास के साथ-साथ उत्पादन में विस्तार व विविधीकरण के कारण निर्यात आय में कृषि के हिस्से में निरन्तर कमी हुई है।

विकासशील राष्ट्रों में आधारभूत व भारी उद्योगों एवं अधोसंरचना के विकास के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है जो कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होती है। रैगनर नक्स ने कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रम को पूँजी निर्माण स्रोत के रूप में स्वीकार किया है। जब उसे कृषि क्षेत्र से हटा कर विनिर्माण क्षेत्र में लगाया जाता है तो उनकी उत्पादकता में वृद्धि होती है। यद्यपि कृषि क्षेत्र के श्रमिकों की अकुशलता उन्हें पूँजी परियोजनाओं में लगाने की सम्भावना को सीमित कर देती है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्थाओं में कृषि अतिरेक को गतिशील बनाने के लिए एच. पी. वाल्ड के अनुसार “कृषि पर किसी न किसी रूप में कर लगाना आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए अनिवार्य है।”¹⁴ परन्तु भारत में राजनैतिक व संस्थागत समस्याओं के कारण यह सम्भव नहीं है। कुजनेट ने इसे कृषि का साधन योगदान माना है।

विकासशील राष्ट्रों में कृषि क्षेत्र उपभोक्ता वस्तुओं को एक बड़ा बाजार प्रदान करते हैं। चूँकि कृषि से जीविका अर्जित करने वाले लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। अतः सस्ती तथा मध्यम स्तर की कीमतों वाली उपभोक्ता वस्तुओं को सबसे बड़ा बाजार ग्रामीण क्षेत्रों से ही प्राप्त होता है जो कृषि क्षेत्र के महत्व को ही प्रदर्शित करता है।

अल्पविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में परिवहन, संचार, बैंकिंग एवं अन्य सहायक क्षेत्रों के विकास में कृषि क्षेत्र महत्वपूर्ण स्थान रखता है। परिवहन के साधनों जैसे- रेल, ट्रकों व अन्य साधनों द्वारा जो माल की दुलाई का कार्य किया जाता है उसमें कृषि वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इससे कृषि तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्रों द्वारा उत्पादित माल को न केवल देश में ही बल्कि विष्व स्तर पर भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में सुगमता हुई है।

उद्योग व्यावसायिक क्रिया का वह अंग है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग या तो उपभोक्ता प्रत्यक्ष रूप से स्वयं करता है अथवा अन्य उद्योग अपने उत्पादन में करते हैं। पहली स्थिति में निर्मित वस्तुओं को उपभोक्ता पदार्थ और दूसरी स्थिति में उत्पादक या पूँजीगत पदार्थ कहते हैं। यदि कोई उद्योग कपड़ा, दियासलाई या बिस्कुट बनाता है अथवा मक्खन तैयार करता है तो इसे हम उपभोक्ता पदार्थ निर्माण करने वाले कहेंगे। क्योंकि इन पदार्थों का उपभोक्ता द्वारा सीधा उपभोग होता है। इसके विपरीत मशीन, यन्त्रों व उपकरणों आदि का निर्माण करने वाले उद्योग उत्पादक पदार्थ के उद्योग कहलाएँगे, क्योंकि इन मशीनों या उपकरणों से अन्य उद्योग दूसरे पदार्थों का उत्पादन करते हैं। कुछ उद्योग ऐसे पदार्थों का उत्पादन करते हैं जो न तो उत्पादक पदार्थ हैं और न ही उनका उपभोक्ता द्वारा सीधे उपभोग किया जा सकता है, बल्कि उन्हें अन्तिम रूप दूसरे उद्योगों में प्राप्त होता है जैसे- प्लास्टिक तथा एल्युमिनियम। इन पदार्थों को मध्यवर्ती पदार्थ कहते हैं।

“उत्पादक पदार्थों, उपभोक्ता पदार्थों और मध्यवर्ती पदार्थों के निर्माण में जिन क्रियाओं को किया जाता है उन्हें सामूहिक रूप से उद्योग कहते हैं। उद्योग शब्द का प्रयोग संकुचित व विस्तृत दोनों ही अर्थों में किया जाता है। संकुचित अर्थ में उपलब्ध प्राकृतिक कच्चे पदार्थों से उत्पादक वस्तुओं अथवा उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण करना उद्योग कहलाता है।”¹⁵ विस्तृत अर्थ में उद्योग के अन्तर्गत प्राकृतिक उद्योग, खनन उद्योग, निर्माण उद्योग और रचनात्मक उद्योग भी आ जाते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में केवल खनन, निर्माण और बागान उद्योगों को ही सम्मिलित किया जाता है।

उद्योग को परिभाषित करते हुए एफ. जे. राइट ने कहा है कि, उद्योग ऐसे अनुक्रमों या प्रक्रियाओं का सामूहिक रूप होता है जिनके द्वारा अनिर्मित पदार्थों को विक्रय योग्य बनाया जाता है। इन प्रक्रियाओं में 3 प्रकार के कार्य प्रमुख होते हैं- “किसी पदार्थ को प्राकृतिक अवस्था से निकालना, उसका स्वरूप बदल

कर वस्तुओं का निर्माण करना और फिर जिन लोगों को उसकी आवश्यकता हो उन तक पहुँचाने की व्यवस्था करना।¹⁶ उद्योग एक लचीला शब्द है जिसके अनेक अर्थ लगाये जा सकते हैं। इसके अन्तर्गत उन समस्त क्रियाओं को लिया जाता है जिनके द्वारा पृथ्वी में से वांछनीय पदार्थ निकाले जाते हैं, मनुष्य जिनको गढ़ता और सँवारता है, जिन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है, समय उपयोगिता के लिए जिन्हें भंडार गृह में रखा जाता है तथा मूल्य चुकाने वाले व्यक्तियों के हाथों में सौंपा जाता है लेकिन कभी-कभी यह सुविधाजनक होगा कि इस शब्द का प्रयोग कुछ और सीमित अर्थ में किया जाय। इन अवस्थाओं में अपने तर्क तथा विश्लेषण का विकास केवल दूसरी अवस्था के सन्दर्भ में किया जाता है जो सामान्यतः निर्माण की अवस्था कहलाती है, क्योंकि इसी अवस्था में आधुनिक व्यवस्था के विशिष्ट लक्षण प्रायः सबसे अधिक स्पष्ट रूप में उभरते हैं। सारजेन्ट फ्लोरेन्स उद्योगों के अन्तर्गत कृषि तथा खनिज को शामिल करते हुए कहते हैं कि, सामान्य अर्थ के अनुसार उद्योग से आशय निर्माण से है तथा कृषि, खनिज एवं अधिकांश सेवाएँ इसके अन्तर्गत हैं।

वर्तमान समय वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का है, अतः इस स्थिति में कोई भी देश औद्योगिक दृष्टि से पीछे नहीं रहना चाहिए। संविधान में भी उद्योगों के महत्व एवं आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। भारत में प्राकृतिक संसाधन और मानव शक्ति विपुल मात्रा में विद्यमान हैं। आज भी कृषि का योगदान उद्योगों की तुलना में अधिक है। हमारी कार्यकारी जनसंख्या का 52 प्रतिशत भाग कृषि में ही नियोजित है, जहाँ विकास दर बहुत मन्द है। अतः देश के सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए उद्योगों पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। कृषि क्षेत्र में व्याप्त अतिरिक्त श्रम शक्ति को उद्योगों में यदि नियोजित कर दिया जाय तो कृषि पर दबाव कम होने के कारण लोगों की प्रतिव्यक्ति आय बढ़ेगी तथा साथ ही उद्योगों में नियोजित श्रमशक्ति का स्तर भी ऊँचा उठेगा। उद्योगों पर व्यापक ध्यान देने के कारण देश में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या का भी निराकरण किया जा सकेगा। कृषि क्षेत्र में उत्पादन एवं उत्पादित बढ़ाने के लिए नवीन कृषि प्रविधियाँ जैसे-सुघरे हुए बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक एवं कृषि यन्त्र आवश्यक हैं। इन नवीन प्रविधियों की प्राप्ति उद्योग क्षेत्र से ही हो सकती है। अतः कृषि विकास के लिए भी उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है।

वर्तमान में देश की सुरक्षा या सामरिक दृष्टि से भी उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रत्येक देश को सुरक्षा की दृष्टि से आत्मनिर्भर होना आवश्यक है। इसीलिए भारत की औद्योगिक नीतियों में अस्त्र-शस्त्र निर्माण उद्योग को वरीयता दी गई है। पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास करके क्षेत्रीय असमानता को कम किया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि वहाँ परिवहन एवं यातायात के साधनों का विकास किया जाए, शिक्षा का प्रसार किया जाए तथा उस क्षेत्र को देश की अन्य धाराओं से जोड़ दिया जाय। “ऐसे क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करके ही उनका विकास किया जा सकता है। दूसरी ओर परिवहन एवं यातायात के साधनों का विकास भी उद्योगों द्वारा ही सम्भव है। उद्योगों के द्वारा पूँजी निर्माण की दर को तेज किया जा सकता है। चूँकि उद्योगों में कृषि की तुलना में प्रतिव्यक्ति आय अधिक होती है। परिणामतः बचत क्षमता में वृद्धि होती है, बचत में वृद्धि होने से विनियोग भी प्रोत्साहित होता है और परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण की दर को तेज किया जा सकता है।”¹⁷

अल्पविकसित या विकासशील देशों में उद्योगों की स्थापना से लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन भी संभव होता है। इससे देश के नागरिकों को आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर होने में सहायता प्राप्त होती है। नवीन तकनीकों के प्रयोग विभिन्न प्रकार की नवीन कुशलताओं एवं क्षमताओं के विकास, बड़े उद्यमों एवं बड़े नगरों के विकास को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। शहरीकरण में वृद्धि होती है तथा रोजगार के नवीन अवसर भी उत्पन्न होते हैं।

विकासशील देशों में औद्योगिकरण इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादन में पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल नियम लागू होता है तथा उत्पादन की वृद्धिमान आनुपातिक उत्पत्ति प्राप्त होती है जबकि कृषि क्षेत्र में ऐसा सम्भव नहीं होता है। उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की बचतें या मितव्ययिताएँ, उद्योगों के बीच अन्तर क्षेत्रीय सहसम्बन्धों तथा सन्देश वाहन के साधनों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ उत्पादन एवं उपभोग में प्रदर्शन प्रभाव को भी प्रोत्साहित करती है। इससे लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार भी होता है और सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।

विकासशील देशों में उद्योगों के विकास द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इनकी स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। इन देशों में विकास के लिए आवश्यक पूँजी एवं तकनीक का अभाव है, इसकी आपूर्ति विदेशों से आयात द्वारा की जाती है। कृषि प्रधान राष्ट्र होने के कारण ये देश मुख्य रूप से कच्चे माल के उत्पादक होते हैं। अतः इनके द्वारा मुख्य रूप से कच्चे माल का निर्यात एवं पूँजीगत वस्तुओं का आयात किया जाता है। उद्योगों की स्थापना द्वारा देश में ही विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करके न केवल देश की आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है, बल्कि निर्यात के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि करके भुगतान सन्तुलन को भी पक्ष में किया जा सकता है। वर्तमान में उद्योगों का महत्व आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सभी दृष्टियों से है। इसके अभाव में कोई भी राष्ट्र न केवल बहुआयामी विकास की धारा से ही कट जायेगा अपितु अन्तर्राष्ट्रीय लाभों से भी वंचित रह जाएगा।

हम वास्तविकता के धरातल पर देखें तो कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों का अपना-अपना महत्व है। आज विष्व के किसी भी राष्ट्र की उन्नति की कल्पना इन दोनों क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र के अभाव में नहीं की जा सकती है। ये दोनों क्षेत्र एक-दूसरे के प्रतिस्पर्दी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। आर्थिक विकास के साथ इन दोनों क्षेत्रों की परस्पर निर्भरता में भी वृद्धि होती जाती है।

सन्दर्भ सूची

- 1 कृष्ण कुमार उमाहिया, कृषि विकास की समस्याएँ, मनोहर पब्लिशर्स, संस्करण-1993, पृष्ठ-2
- 2 जय प्रकाश मिश्र, कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, संस्करण-2004, पृष्ठ -123
- 3 चरण सिंह, भारत की भयावह आर्थिक स्थिति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, कारण और निदान, संस्करण-1982, पृष्ठ-37
- 4 किरन सिंह, आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण-2007, पृष्ठ-68
- 5 वी.सी. सिन्हा, पुष्पा सिन्हा, विवेक सिन्हा, औद्योगिक अर्थशास्त्र, एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन, संस्करण-2007, पृष्ठ-2
- 6 वी.सी. सिन्हा, पुष्पा सिन्हा, विवेक सिन्हा, औद्योगिक अर्थशास्त्र, एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन, संस्करण-2007, पृष्ठ-2
- 7 जगदीश नारायण मिश्र, भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल-इलाहाबाद, संस्करण-2001, पृष्ठ-435

निराला के काव्य में लोक का अनुशीलन

प्रवीण कुमार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

हिन्दी साहित्य के छायावादी युग की साहित्यिक रचनाएं सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं, इस मान्यता के जो तीन प्रमुख आधार हैं, उनमें पहला यह कि कवित्व की दृष्टि से अर्थात् अनुभूति की तीव्रता, सूक्ष्मता और अभिव्यंजना शिल्प के उत्कर्ष के हिसाब से यह सर्वश्रेष्ठ है; दूसरा यह कि छायावादी काव्य में प्राचीन भारतीय परम्परा के जीवंत तत्वों का ही समावेश नहीं हुआ, वरन् उसने परवर्ती काव्य के विकास को भी बहुत दूर सीमा तक प्रभावित किया और तीसरा यह कि छायावादी काव्य में ही अपने युग के लोक/जन-जीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति मिलती है।¹ छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का रचना संसार इन सभी विशेषताओं से युक्त है तथा इनमें सर्वप्रमुख जन-जीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति है। निराला के काव्य में इस लोक-जीवन का तात्पर्य आम जन, शोषित वर्ग, प्रकृति तथा भारतीय संस्कृति के प्रति उनके वैयक्तिक गहन जुड़ाव है। उनकी 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' जैसी कविताओं में यथार्थवाद, 'राम की शक्ति पूजा' में भारतीय लोक चेतना और 'कुकुरमुत्ता' में पूंजीवाद के विरुद्ध स्वर उपेक्षित वर्ग की पीड़ा की अभिव्यक्ति के रूप में उभरे हैं। उन्होंने अपनी कविता 'बादल राग' में जहां बादल से समाज में नव क्रांति लाने का आग्रह किया है, वहीं भारत के जीर्ण-शीर्ण किसानों की आती पुकार सुनकर विप्लव करने का जो आवाह किया है, वही उनका लोक-अनुशीलन है, यथा-

ए विप्लव के वीर, चूस लिया है उसका सार,

हाड़ मात्र ही है आधार, ए जीवन के पारावार।²

निराला के काव्य में लोक के अनुशीलन के विवेचन के क्रम में यह कहना यथेष्ट है कि "साहित्य का इतिहास इस तथ्य को प्रमुखता से व्यक्त करता है कि साहित्यकार की सृजनात्मक प्रवृत्ति ने स्व-सृजन के लिए मौलिक आधार का जब भी अनुभव किया, विषय उसे रसहीन/भावहीन प्रतीत हुआ, तब ही उसने अपनी लोक-चेतना का आश्रय लिया और जो सृजन किया वो कालजयी बना। हिन्दी का आदिकालीन साहित्य लोक-जीवन की जिन अनुभूतियों से सृजित हुआ वह बहु विविधतापूर्ण था, वह सचेतन समाज की सहज परिस्थितियों से व्युत्पन्न ऐसा साहित्य था जिसमें जीवन की विभिन्न दशाओं और स्वच्छंद प्रवृत्तियों के चित्रों का अंकन हुआ।³ हिन्दी के मध्य युग और आधुनिक युग में सृजित साहित्य में भी इसी लोक तत्व की परिव्याप्ति है और ऐसे साहित्य के सृजक निराला का नाम प्रमुख है। जिनके साहित्य में लोक अनुशीलन उनकी जन-सरोकारी चेतना, शोषितों के प्रति सहानुभूति और ग्रामीण जीवन के यथार्थ चित्रण में परिलक्षित होता है। निराला ने दलित चेतना, नारी की दयनीय स्थिति, विशेष रूप से विधवा नारी और लोक संस्कृति के तत्वों को अपने काव्य में स्थान देकर हिन्दी पद्य साहित्य को रूढ़ियों से मुक्त किया।

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एवं भर्तृहरि के काव्य में लोक अनुशीलन के क्रम में इस तथ्य को रेखांकित करना यथार्थपरक है कि 'काव्य में लोक' क्या है। वस्तुतः काव्य में लोक का अर्थ जनकल्याण अथवा लोक-मंगल है। हिन्दी साहित्य के शीर्ष आलोचक और इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार काव्य का उद्देश्य लोगों को प्रेरित करना, उनमें सदाचार का संचार करना और समाज में सकारात्मक बदलाव लाना है। मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रायोज्य वस्तु है कि संसार की सभ्य और असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में पायी है।⁴ प्रायः सभी विद्वानों, विचारकों एवं चिंतकों की एक राय है कि सामूहिक लोक मानस ही काव्य सृजन की आधारशिला है। कोई काव्य कालजयी बनता है और उसका लोकव्यापी स्वरूप बनता है जब वह लोक से अनिवार्यतः जुड़ा होता है। काव्य के सृजन के सभी कालखंडों-प्राचीन, मध्य (भक्ति एवं रीति) एवं आधुनिक काल में लोक ही सृजन का मूल स्वरूप रहा है।

आधुनिक युग की प्रवृत्ति विशेष में किसी एक की काव्यधारा में एक प्रयास प्रधान दिखाई देता है तो किसी में दूसरा, मगर छायावादी काव्य में इनेक विचारधाराओं का संयुक्त समन्वित रूप से निर्वाह हुआ है। इसी छायावादी काव्यधारा के शीर्षस्थ कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य में अद्वैत दर्शन से भिखारी के जीवन तक फैले युग सत्य के विविध स्तरों और आयामों का एक साथ समावेश हुआ प्रतीत होता है, तो युगीन यथार्थ के प्रति उनकी सजगता भी परिलक्षित होती है।⁵

निराला का काव्य भी आदर्शवादी और भौतिकवादी-दक्षिण और वामपक्षीय विचारधाराओं के मध्य का सेतु है और इन सबके केन्द्र में किसी न किसी रूप में 'लोक' विद्यमान है। निराला ने अपने काव्य में लोक जीवन के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह पूर्ण मनोयोग से किया तो वे तत्कालीन समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करने में भी अग्रणी रहे, तभी तो उनकी काव्यवाणी इस तरह प्रस्फुटित हुई-

चोट खाकर राह चलते, गीत गाने दो मुझे तो

वेदना को रोकने को, चोट खाकर राह चलते होश के भी होश छूटे,

हाथ जो पाथेय थे, ठग ठाकुरों ने रात लूटे,

कंठ रुकता जा रहा है, आ रहा है काल देखो,
भरा गया है जहर से संसार जैसे हार खाकर
देखते हैं लोग लोगों को, सहीपरिचय न पाकर
बुझ गई है लौ प्रथा की, जल उठा फिर सींचने को।⁶

मध्ययुगीन भक्ति काल के निर्गुण धारा के कवि कबीर ने 'राम मेरा पीव, मैं राम की बहुरिया' एवं 'मोरे गवने का दिन नगचाना' कह कर जिस लोक प्रचलित आत्मा और परमात्मा के मध्य के संबंध का प्रतिपादन किया, उसी तरह निराला भी सब ओर से हार कर स्वयं को सर्वशक्तिमान के चरणों में निवेदित करते हैं-

डोलती है नाव, प्रखर है धार, संभालो जीवन-खेवन हार।
तिर तिर, फिर फिर प्रबल तरंगों में धिरती है,
टूट गयी पतवार, तीवन खेवन हार।

इसी के साथ निराला के काव्य संग्रह 'परिमल' जिसका प्रकाशन सन् 1927 में हुआ, उसमें संकलित उनकी कविता 'भिक्षुक' में यथार्थ का तीव्र दंश दृष्टिगत है। निराला अद्वैत दर्शन से भिखारी के मीवन तक फैले युग के सत्य के विविध स्तरों और आयामों को मानो एक साथ ही अपनी साधना में लपेट लेना चाहते हैं तो अपने खंड काव्य 'तुलसीदास' में निराला ने प्रचलित कथा को आधार यद्यपि बनाया, तथापि वे युगीन यथार्थ के प्रति भी अधिक सजग रहे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है-"लोक जगत के अनेक प्रस्तुत रूपों और व्यापारों को भी अपनी सरल भावनाओं के रंग में निराला ने देखा है। 'विस्मृत की नींद से जगाने वाले' पुरातन के मलिन साज खंडहर से वे जिज्ञासा करते हैं-

क्या तुम-
ढीले करते हो भव बंधन नर नारियों के
या
हां मलते कलेजा पड़े जरा जीर्ण निर्निमेष नयनों से
बाट जोहते हो तुम मृत्यु की।⁷

ऐसी दो बातें हैं जो निराला में विशेष रूप से उभरती हैं। वे हैं-भाव भाषा और भाव की सापेक्षिक लोकोन्मुखता तथा भक्ति की ओर विशेष झुकाव। निराला का आत्मविश्वास से पूर्ण व्यक्तित्व ही ऐसा था कि उनके सामाजिक बोध के अस्तित्व का भान स्वतः ही हो जाता है। व्यक्ति का सामाजिक अस्तित्व क्या है, यह दूसरों की दृष्टि में होना लाभकारी है, स्वयं व्यक्ति की दृष्टि में नहीं, कारण कि व्यक्तित्व की चेतना जहाँ व्यक्ति को आत्मतुष्ट बनाती है, वहीं अस्तित्व की चेतना आत्मतुष्टि के विघटन में सहायक होती है। सर्वमान्य अवस्थाओं पर विश्वास निराला का व्यक्तित्व नहीं है। उनकी अनुभूति सहज होते हुए भी विशिष्ट है। अलौकिक प्रिय के प्रति उनकी अनुभूति 'मरण-दृश्य' कविता में समूचे अनुभव के साथ अवतरित हुई है-

सकल साभिप्राय
समझ पाया था नहीं मैं
थी तभी यह हाय!
दिए थे जो स्नेह चुंबन
आज प्याले गरल के घन
कह रही हो हंस पियो प्रिय
पियो प्रिय निरुपाय
मुक्ति हूँ, मृत्यु में
आई हुई न डारो।⁸

इस तरह संकट के समय में संपूर्ण दुःख-दर्द से मुक्ति देना प्रिय के प्रेम का पूर्ण निष्ठा से व्यक्त होना ही सार्थक है। वैसे प्रिय का मृत्यु में मुक्ति के रूप में आना विरोधाभास है मगर विरोधाभासों में ही कवि निराला जीवन का सौंदर्य प्राप्त करते हैं।

निराला सदा ही लोक की नवीनता के पक्षधर रहे। जिस संस्कृतिको लोग अपरिवर्तनीय मानते हैं, उसको भी परिवर्तित करने के लिए वे संघर्ष करते हैं। गुलाब जो अपनी सुंदरता के लिए सदियों से विख्यात रहा है, निराला उसे कुकुरमत्ता से लड़ाते हैं, उसे वे सर्वहारा वर्ग का प्रतीक तथा गुलाब को अमीर वर्ग का प्रतीक बताते हुए कहते हैं कि ऐसी सुन्दरता जो दूसरों का अधिकार छीनकर प्राप्त हो उसे धिक्कारना चाहिए। निराला की 'कुकुरमत्ता' शीर्षक कविता में वर्ग-संघर्ष की ध्वनि गूंजती प्रतीत होती है।⁹ वे कहते हैं-

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू रंगों आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,

डाल पर इतरा रहा है कंपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रक्खा, सहा या जाड़ा धाम।¹⁰

निराला ने 'कुकुरमत्ता' कविता में श्रम का सौंदर्य दिखाया है। यह उस सर्वहारा वर्ग की संघर्षशीलता ही है जिसमें कुकुरमत्ता लोगों को अपने में सौंदर्य देखने के लिए कहता है। व्यक्ति को संघर्ष करना चाहिए, सदियों से चली आ रही परंपरा को लोगों में मस्तिष्क से आसानी से नहीं निकाला जा सकता लेकिन चिन्तन होना चाहिए क्योंकि चिंतन और कल्पनाशीलता मनुष्य का स्वयं का गुण है। समाज को बदलने का कार्य निराला लोगों की सोच बदलकर करना चाहते हैं। लोक कल्याण के लिए निराला दूसरा मार्ग क्रांत का बताते हैं। जब अस्तित्व का प्रश्न आता है तो शक्ति संयन्त्र लोग अपने से कमजोर के ऊपर चढ़कर अपनी ऊँचाई का प्रदर्शन करना चाहते हैं जबकि उनका अस्तित्व उसी श्रमिक और सर्वहारा वर्ग से है।¹¹ इस सर्वहारा वर्ग को उनका अधिकार दिलाने के लिए निराला उनके भीतर विद्रोह की भावना जगाना चाहते हैं क्योंकि मुक्ति तभी मिलती है जब अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है। निराला सुंदर लोगों को ही प्रतिष्ठित करने की भावात्मक संस्कृति पर सवाल खड़ा करते हैं। इस कविता के सामाजिक अनुशीलन से तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति का भान होता है।

निराला ने अपने काव्य में लोक के गंभीर दुःख को पहचाना। 'दान' शीर्षक रचना में उन्होंने मानव के प्रति मानव की उस निर्मम उपेक्षा को रेखांकित किया है जो धर्म के कारण जाने अथवा अनजाने में होती रहती है। यथा-

यह सच है-
तुमने जो दिया दान दान वह,
हिंदी के हित का अभिमान वह,
जनता का जन-ताका ज्ञान वह
सच्चा कल्याण वह अथच है-
यह सच है।¹²

सामाजिक विषमता को देखकर निराला का अंतःकरण द्रवित हो उठता है। 'तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता पत्थर तोड़ने वाली उस श्रमिक युवती की करुण कथा है जो पत्थर तोड़कर अपना पेट पालती है। पत्थर तोड़कर उसके मूल्य से उदर भरण कोई तुच्छ कार्य नहीं है, मगर तन को दग्ध कर देने वाले सूर्य के प्रचंड ताप में भी कार्य करने के लिए बाध्य करने वाली उस सत्ता का जो मानव होने के अपने मूल्य को तो समझता है लेकिन दूसरों के मूल्यों को नहीं, उसे समाज में मानव होने का अधिकार नहीं मिलना चाहिए, यथा-

वह तोड़ती पत्थर-
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर, वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार,
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।¹³

निराला की यह कविता आर्थिक मुक्ति के चिन्तन की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। महिलाओं के आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर होना उन्हें मानसिक दासता के पिंजरे से मुक्ति दिलाएगा। आर्थिक विपन्नता ही निराला को यह स्वीकार करने के लिए बाध्य कर देती है-

धन्य मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित न कर सका।

निराला की काव्य रचना 'सरोज-स्मृति' में करुणा भाव प्रमुखतः उभरा है। पुत्री-वियोग में रचित इस कविता में पुत्री के बालपन से मृत्यु तक की यादों का जो शब्द चित्रण है, वह आम भारतीय पिता की व्यथा की बानगी है, जैसा कि वे कहते हैं कि तुम्हें देखकर मुझे मन ही मन यह आभास हो रहा था कि मेरे जीवन के खुशनुमा पलों का प्रथम गीत तुम्ही थी। सन् 1935 में रचित 'सरोज-स्मृति' जिसे विद्वानों ने हिन्दी का श्रेष्ठतम शोकगीत कहा है। इसमें निराला के व्यक्तिगत जीवन और यथार्थ का चित्र जहाँ एक ओर अंकित करती है, वहीं अपने युग की त्रासदी की गाथा भी प्रस्तुत करती है। इसमें मध्यवर्गीय निर्धन पिता के अंतर्मन की समूची वेदना व्यक्त हुई है। अर्थ ही अनर्थ का मूल था। पूंजी का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा था परंतु निराला ने उससे स्वयं को अछूता रखा, फलतः वे स्वार्थ-समर में निरंतर परास्त हुए। सरोज अपना पार्थिव शरीर तो निराला के जीवन काल में ही छोड़कर चली गई थी लेकिन निराला अपनी लेखनी से उसे अमरत्व प्रदान कर दिया। निराला ने इस कविता में शोक के साथ-साथ समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। प्रमुख साहित्यकार रामविलास शर्मा ने 'सरोज-स्मृति' की तुलना विलियम शेक्सपीयर के किंग लियर से करते हुए लिखा है कि हिन्दी में ही नहीं, अंग्रेजी में भी ऐसे शोक गीत दुर्लभ हैं।¹⁴ इस कविता में निराला ने लोक जीवन से जुड़ी बातें/वस्तुओं का समावेश किया है, यथा-सरोजका मरण जीवन के शाश्वत विराम की ओर जाने की यात्रा है। इस तरह वे जीवन-दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

निराला उपेक्षित-उत्पीड़ित जन के प्रति करुण सहानुभूति युक्त स्वर के बाद स्वयं उसकी पक्षधरता की घोषणा करते हैं तथा विश्वास एवं सृजन की दूरी को समाप्त करते हुए उसी वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं। अब उनका करुणा प्लवित स्वर शोषण तंत्र की पहचान के स्वर में बदल जाता है और शोषक उनके आक्रोश तथा व्यंग्य का केन्द्र बन जाता है। निराला स्वयं उस उपेक्षित, अपमानित, शोषित जन सामान्य के प्रतीक पुरुष है इसीलिए उसकी पीड़ा, उसके नैराश्य, उसकी सहज-स्वाभाविक उत्कट आस्था और समय आने पर उसके विराट जागरण को उन्होंने इतनी गहराई से वाणी दी है। इसी दलित उपेक्षित जन साधारण की पहचान करते हुए निराला उसके शोषण तंत्र का ऐतिहासिक अवलोकन इस तरह करते हैं-

चलते-फिरते निःसहाय, वे दीन क्षीण कंकालकाय
आशा केवल जीवनोपाय उर-उर में,
रण के अश्वों से शस्य-सकल, दलमल जाते यों दल के दल
शूद्रगण क्षुद्र जीवन संबल पुर-पुर में
वे शेष-श्वास पशु मूक-भाष, पाते प्रहार अब हताश्वास
सोचते कभी आजन्म-ग्रास द्विज गण के
होना ही उनका धर्म परम, वे वर्णाधम रे द्विज उत्तम
वे चरण चरण बस वर्णाश्रम रक्षण के।¹⁵

निराला के काव्य में 'लोक' के संदर्भ में उनकी 'स्नेह निर्झर' एवं 'विधवा' शीर्षक कविताएँ विशिष्ट हैं। 'स्नेह निर्झर' में कवि जीवन का उत्तरार्द्ध प्रतिबिंबित है, समाज की परिस्थितियों से जूझता, संघर्ष करता हुआ वह अद्वितीय व्यक्ति आज अपने अतीत का स्मरण कर रहा है। जीवन के वे क्षण जो दूसरों की सेवा और परोपकार में बिताए थे, समय के साथ वे भी बीत गए, जीवन की स्थिति रेत के समान रह गई है, पानी की धार सूख गई है। 'विधवा' में निराला भारत के आम लोक जीवन में नारी एवं पुरुष की वस्तुस्थिति को रेखांकित करते हैं। नारी का संबल पुरुष होता है। भारतीय लोक समाज की व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि सही अर्थों में पुरुष के साहचर्य में ही उसका जीवन है।¹⁶

निराला के काव्य में लोक के अनुशीलन के क्रम में उनके समस्त काव्य का अनुशीलन करने पर ये तथ्य प्रकट होते हैं कि उनके काव्य में सांस्कृतिक प्रगतिवादी चेतना है; निराला की भाषा जिसमें हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी और उर्दू के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, वह भाषा भावों के अनुरूप है; उनके काव्य में नारी के प्रति श्रद्धा का, मानवीय संवेदना का भाव है; दुःख के प्रति हार्दिक संवेदना है; दलित जन पर करुणा और सहानुभूति है; काव्य में राष्ट्रोत्थान, नारी जागरण, जातीय गौरव और क्रांति का संदेश है एवं उनके काव्य में यथार्थ स्थितियों का रूप निर्देश किया गया है।

निराला ने मानव जीवन, विशेषकर अपने युग जीवन के किसी भी पक्ष को अपने काव्य के क्षेत्र में वर्जित नहीं माना। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से अपने युग की राजनीति, प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, सामंती शोषण पर आधारित व्यवस्था में खुल कर हस्तक्षेप किया। उनके संपूर्ण काव्य को युगीन परिस्थितियों से अधिक प्रभावित रहा है। निराला का काव्य अनुभूति की प्रमाणिकता है। उनके काव्य में जहाँ लोक एवं लोक जीवन का चित्रण है, वहाँ उनकी भाषा भी सरल तथा व्यावहारिक हो गई है। निराला भारतीय संस्कृति के द्रष्टा कवि हैं, गलत रूढ़ियों के विरोधी तथा संस्कृति के युग अनुरूप पक्षों के उद्घाटक एवं पोषक हैं। उनके संपूर्ण काव्य में सामाजिक चेतना और विद्रोह है। 'वीणावादिनी वर दे' शीर्षक कविता में वे समाज में नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव देखना चाहते हैं, वे पुरानी रूढ़ियों और जड़ परंपराओं से कटना चाहते हैं जो समाज को खोखला करती जा रही है, तभी तो वे अपनी लंबी कविता 'सरोज स्मृति' में लिखते हैं-

तुम करो ब्याह तोड़ता नियम, मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न में पहुँगा स्वयं मंत्र, यदि पंडित जी होंगे स्वतंत्र।¹⁷

निराला की कविताओं में समाज के सामान्य मानव की प्रतिष्ठा का सायास प्रयास मिलता है।¹⁵ 'नए पत्ते', 'बेला', 'सांध्य काकली' में संकलित अनेक कविताएँ दलितों, निरीहों और उपेक्षितों को प्रतिष्ठित करती हैं, लोक समता में विश्वास करती हैं, इसीलिए वे लोक से पूरी तरह से जुड़ी हुई हैं।¹⁸

सन्दर्भ

1. डॉ. नगेन्द्र-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 515, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2016
2. डॉ. गंगाप्रसाद पांडेय-महाप्राण निराला, पृष्ठ 19, राजमकल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
3. डॉ. नगेन्द्र, वही, पृ. 75-76
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-श्रेष्ठ निबंध, पृष्ठ 135, राजमकल प्रकाशन, दिल्ली, 2006
5. डॉ. नगेन्द्र-पूर्वोक्त, पृ. 534
6. पत्रिका हिन्दी अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग, वर्ष 63, जनवरी-अप्रैल, 2021, अंक 1-2
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 482-83, का मंदिर, दिल्ली, संवत् 1997
8. निराला संचयिता (अनामिका से), पृष्ठ 116-17 (संपादक डॉ. रमेशचंद्र शाह), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010
9. गुलाब राय-हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृष्ठ 284, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2018

10. निराला-कुकुरमुत्ता, सुग मन्दिर, उन्नाव, 1942
11. डॉ. संतोष कुमार सिंह-निराला के काव्य में मानव मुक्ति की कामना, पत्रिका आई जे ए आर, 2021
12. निराला संचयिता, पृष्ठ 87
13. निराला संचयिता, पृष्ठ 107
14. रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, पृष्ठ 233, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011
15. निराला-तुलसीदास, पृष्ठ 18-19, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010
16. रामवीरसिंह-आधुनिक काव्य संग्रह, पृष्ठ 350-54, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2021
17. निराला संचयिता, पृष्ठ 57
18. मासिक पत्रिका भारत वाणी, प्रयाग, पृष्ठ 16-18, जनवरी, 1999

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका

अरमान अली अंसारी

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, संत बिनोवा पी0जी0 कॉलेज, देवरिया

डॉ० विवेक मिश्रा

(असि0 प्रोफेसर) शोध-निर्देशक, समाजशास्त्र विभाग, संत बिनोवा पी0जी0 कॉलेज, देवरिया

सार:-

भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता की जो स्थिति आज हमें देखने मिल रही है पूर्व ऐसी नहीं थी समय के साथ-साथ उसमें सुधार हुआ है तथा समय-काल परिस्थिति के अनुसार बदलती भी रही है। आज शिक्षा के प्रसार और वैश्वीकरण के आगमन के साथ महिलाओं में राजनीतिक चेतना का विकास भी हुआ है। विश्व आर्थिक मंच ने अपनी हालिया रिपोर्ट में कहा है कि भारतीय राजनीति के क्षेत्र में पंचायती स्तर पर महिलाओं को आरक्षण देने से भारत में लैंगिक समानता के मामले में सुधार हुआ है। हाल ही हुए पांच राज्यों विधान सभा चुनावों के नतीजे आने के बाद यह देखा गया है कि महिला प्रतिनिधियों की संख्या में इजाफा हुआ है जिसमें पंजाब राज्य में सर्वाधिक वृद्धि हुई है फिर भी यह वृद्धि उनकी संख्या के हिसाब से बहुत कम है। इसलिए महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता एवं सशक्तिकरण के लिए उनको शिक्षित करना आवश्यक है जागरूक होकर ही वे अपनी राजनीतिक भागीदारी को बढ़ा पायेगी।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका, राजनीतिक सहभागिता, समस्या, वर्तमान स्थिति ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं महिलाओं की राजनीतिक भविष्य का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द:- महिला, राजनीति, सहभागिता, पंचायत

प्रस्तावना:-

किसी भी देश के सर्वांगीण विकास के लिए यह जरूरी है कि वह देश जितना अधिकार पुरुषों को दिया है उतना ही अधिकार महिलाओं को भी दे। क्योंकि राजनीतिक विमर्श में सभी वर्गों की भागीदारी एक सुदृढ़ लोकतन्त्र को जन्म देती है। यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखे तो यह ज्ञात होता है कि आजादी 75 वर्ष बाद भी महिलाओं की राजनीति में सहभागिता संतोषजनक नहीं है। किसी भी समाज या व्यक्ति के वर्ग की राजनीतिक सहभागिता के अर्थ और महत्व की बात करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि यह लोकतांत्रिक मूल्यों से जुड़ा है अथवा नहीं।

इस प्रकार राजनीतिक सहभागिता के प्रभावी समझ हासिल करने के लिए लोकतान्त्रिक मूल्यों को समझना महत्वपूर्ण है।

राजनीति में महिलाओं की भूमिका के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:-

यदि हम महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के ऐतिहासिक तथ्यों को देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में महिलाओं की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति बहुत ही ऊँची थी। तथा इन दोनों क्षेत्रों में सहभाग भी करती थी। इसी सामाजिक समानता ने कई विदुषी महिलाओं को जन्म दिया। लेकिन प्राचीन काल के अन्त व मध्यकाल के अभिर्भाव ने महिलाओं की स्थिति को बद-से-बदतर कर दिया।

इस अवधि में उन्हें कई रीति-रिवाजों को पालन करना अनिवार्य कर दिया। जैसे- पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, बालविवाह, देवदासी प्रथा इत्यादि लेकिन आधुनिक काल के शुरुआत व ब्रिटिश शासन काल के फलस्वरूप उनकी स्थिति में सुधार होना शुरू हुआ। शिक्षा व सामाजिक जागरूकता के कारण महिलाओं ने राजनीति, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्रों में भाग लेना शुरू किया। जिसके परिणाम स्वरूप महिलाओं ने आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया तथा उन्होंने चुनौतियों से निपटने के लिए स्वयं में योग्यता विकसित किया।

भारत में महिलाओं को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए महिला आरक्षण का मुद्दा 1973 को अस्तित्व में आया। जिसमें महिलाओं को कम-से-कम एक तिहाई सीटों पर आरक्षण देने की मांग उठने लगी। लम्बे प्रयासों और आन्दोलनों के बाद आखिरकार 1993 में 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों के माध्यम ग्रामपंचायत और नगर पंचायतों में एक तिहाई सीट आरक्षित की गई। तथा संसद व राज्य के विधानसभाओं में महिला आरक्षण विधेयक (108वाँ संशोधन विधेयक) भारत में एक लम्बी विधेयक है। महिला आरक्षण विधेयक 9 मार्च 2010 को राज्यसभा (उच्च सदन) में पारित किया गया लेकिन विधेयक के कुछ प्रावधानों पर कुछ क्षेत्रीय दलों के असहमति के कारण लोक सभा (निम्न सदन) में पारित नहीं किया जा सका। लेकिन वर्तमान सरकार के कार्यशैली व विभिन्न

महिला विकास योजनाओं एवं उनकी बढ़ती राजनीतिक सक्रियता को देखकर यह अनुमान लगाया जा रहा है कि सरकार 2029 तक महिला आरक्षण विधेयक को पारित करके महिला राजनीतिक सक्रियता को बढ़ाने के पक्ष में है।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता:-

भारतीय चुनाव आयोग के द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार 2024 में हुए लोक सभा चुनाव में कुल सदस्यों में 13.63 प्रतिशत प्रतिनिधित्व महिलाएँ कर रही हैं जोकि पिछले 2019 के लोकसभा चुनाव के परिणाम से लगभग एक प्रतिशत की गिरावट है जो कि खराब स्थिति को इंगित कर रही है। ये विडम्बना ही है कि आजादी के 75 वर्ष बाद भी लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकी है आज जहाँ भारत की जनसंख्या में पुरुष व महिला का अनुपात लगभग समान है फिर भी जनसंख्या के हिसाब से उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व बहुत कम है।

तमाम छोटे-बड़े राजनीतिक दलों में महिला कार्यकर्ताओं की संख्या अधिक है फिर भी राजनीतिक दल चुनावों में उम्मीदवार बनाने से कतराते हैं। तथा उन्हें हाशिये पर रखते हैं और पुरुषों के अपेक्षा कम योग्य समझते हैं। हालांकि महिलाओं की राजनीतिक पिछड़ेपन के लिए और भी कारक जिम्मेदार हैं। जैसे- पितृसत्तात्मक विचारधारा, लिंग सम्बन्धी भेद, राजनीतिक नेटवर्क की कमी आदि लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कारक जो महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में बाधक है वह है देश के अन्दर महिलाओं में राजनीतिक शिक्षा की कमी जोकि वर्तमान समय की महत्वपूर्ण कारण है। राजनीतिक ज्ञान की कमी के कारण अधिकतर महिलाएँ अपनी बुनियादी और राजनीतिक अधिकारों से महरूम हैं।

लोकसभा में महिला सांसद (1952-2024) तक

वर्ष	कुल सीटों की संख्या	चयनित महिला सांसदों की संख्या	महिला सांसदों का प्रतिशत
1952	489	22	4.41
1957	494	27	5.46
1962	494	34	6.28
1967	523	31	5.58
1971	521	22	4.22
1977	544	19	3.51
1980	544	28	5.17
1984	544	44	8.17
1989	529	28	5.29
1991	509	36	7.06
1996	541	40	7.37
1998	545	44	7.92
1999	543	48	9.02
2004	543	45	8.29
2009	543	57	10.68
2014	543	64	11.42
2019	543	78	14.40
2024	543	74	13.63

Source : Election Commission of India, 2024

यदि हम इन चुनाव आयोग के आकड़ों का विश्लेषण करते हैं तो हम यह देखते हैं कि 1952 में महिलाओं का प्रतिनिधित्व लोकसभा में 4.5 प्रतिशत था जो आज 2024 में 13.63 प्रतिशत है जो प्राप्त करने में 72 वर्षों का समय लग गया जोकि हमारे राजनेताओं और बुद्धिजीवि वर्गों के लिए वर्तमान समय का एक महत्वपूर्ण सोचनीय विषय है। यदि हम महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को 50 प्रतिशत तक बढ़ाने की बात करते हैं तो इसके लिए बहुत सारे बदलाव करने की आवश्यकता है।

भारतीय राजनीति में लिंग भेदभाव के प्रमुख कारण:-

1. पितृसत्तात्मक मानसिकता - आजादी के कई दशकों के बीत जाने के बाद भी वर्तमान भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता जटिल रूप में व्याप्त है।
पितृसत्तात्मक सोच यह मानती है कि महिलाएँ नेतृत्व निर्णय लेने के लिए योग्य नहीं हैं

2. राजनीतिक अपराधीकरण तथा हिंसा:- वर्तमान समय में राजनीतिक अपराधीकरण एक सर्व-सामान्य बन गया है कोई भी दल इस व्यवस्था से अछूता नहीं है आज राजनीति में धनबल और बाहुबल का बोल-बाला है शारीरिक हिंसा के डर से महिलाएं इस क्षेत्र में आने से दूरी बना लेती हैं।
3. सीमित वैधानिक अधिकार:- स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रगति के बावजूद भी राजनीतिक स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था को छोड़कर उच्च वैधानिक संस्थानों में महिलाओं के लिए किसी भी प्रकार की कोई आरक्षण की व्यवस्था नहीं की गई है लिंग भेद का यह भी प्रमुख कारण है।
4. आर्थिक व शिक्षा का अभाव:- महिलाओं में आर्थिक स्वतन्त्रता की कमी है तथा शैक्षिक कारक जैसे मानकों पर महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में कमजोर है हालांकि पिछले कुछ दशकों में लड़कियों की शैक्षिक नामांकन में वृद्धि हुई है। लेकिन अभी भी उच्च शिक्षा व व्यवसायिक शिक्षा में महिलाओं का नामांकन पुरुषों के अपेक्षा बहुत कम है।

राजनीति में महिलाओं सहभागिता बढ़ाने के लिए उपाय:-

1. संवैधानिक व विधिक उपाय:- महिलाओं के लिए पंचायती-राज में आरक्षण के सफलता के बाद संसद और राज्य के विधानमण्डलों में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण विधेयक को यथा शीघ्र पारित किया जाना चाहिए। जिससे महिलाओं की राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जा सके।
2. सामाजिक व सांस्कृतिक सुधार/उपाय:- महिलाओं को राजनीति में भागीदारी दिलाने के लिए उनके खिलाफ हिंसा को रोकना चाहिए तथा सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिबन्ध व रुढ़िवाद को रोकना होगा। तथा समाज में लैंगिक संवेदशीलता को बढ़ावा देना जिससे महिलाओं के प्रति रुढ़िवादी सोच बदले।
3. दलीय आरक्षण व वित्तीय सहयोग:- महिला उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने व चुनाव प्रचार के लिए विशेष धनराशि क्या सब्सिडी की व्यवस्था किया जाना चाहिए तथा राजनीतिक दलों में भी आरक्षण की व्यवस्था किया जाना चाहिए जिससे उनकी पर्याप्त संख्या को सुनिश्चित किया जा सके।
4. नेतृत्व क्षमता का विकास:- महिलाओं को राजनीति में भागीदारी बढ़ाने के लिए तथा महिला नेताओं के लिए विशेष प्रशिक्षण व मार्गदर्शन कार्यक्रम चला कर उनके आत्मविश्वास को बढ़ाना चाहिए ताकि वे शासन में कुशल नेतृत्व कर सकें।

निष्कर्ष:-

हमारे समाज में यह धारणा बनी हुई है कि राजनीति केवल पुरुषों का क्षेत्र है तथा पुरुष ही कुशलता पूर्वक राजनीतिक जिम्मेदारियों को निभा सकता है। लेकिन यह धारणा धीरे-धीरे शिथिल हो रही है। क्योंकि महिलाएँ इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं तथा कुशल नेतृत्व के दम पर उच्च वैधानिक पदों को सुशोभित भी कर रही हैं। लेकिन यह संख्या अभी बहुत कम ही यह भी सत्य है कि महिलाएं राजनीति के प्रत्येक आयाम पर प्रतिभाग करने के लिए काबिल और सक्षम हैं। इसलिए राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं को शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम, विभिन्न प्रकार के अपराधिक और हिंसक कृत्यों का उन्मूलन, समान अधिकारों और अवसरों का प्रावधान करना होगा। तभी हम विकसित राष्ट्र की कल्पना को साकार कर सकेंगे।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. इनाक्षी चतुर्वेदी एवं सीमा अग्रवाल, महिला नेतृत्व एवं राजनीतिक सहभागिता, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर 2003.
2. ए.एस. अलतेकर, द पोजिशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, बनारस 1956.
3. महिला सशक्तिकरण: समस्याएं और समाधान, भारतीय महिला शोध पत्रिका, 2023
4. देसाई एम (2002) "भारत में महिलाएं और राजनीति" जयपुर. रावत प्रकाशन
5. "महिला आरक्षण और राजनीति" विकास प्रकाशन, 2022
6. भारतीय चुनाव आयोग, 2024

किशोरावस्था का उनके विकास व शिक्षा पर प्रभाव

कुमुद उपाध्याय

शोध छात्रा - गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

डॉ० संध्या श्रीवास्तव

शोध-निर्देशिका - गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

सारांश

किशोरावस्था जीवन का एक महत्वपूर्ण चरण है, जो बचपन और वयस्कता के बीच होता है, आमतौर पर ग्यारह से उन्नीस वर्ष की आयु में। यह समय शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक बदलावों का होता है, जो व्यक्ति की शिक्षा और विकास पर गहरा असर डालते हैं। इस दौरान मिले अनुभवों और सीखे गए कौशल पूरे जीवन के लिए आधार बनाते हैं। माता-पिता, शिक्षकों और नीति निर्माताओं के लिए किशोरावस्था को समझना जरूरी है, ताकि एक सहायक वातावरण तैयार किया जा सके, जो पहचान निर्माण, अमूर्त सोच और भावनात्मक समर्थन को प्रोत्साहित करे।

मुख्य शब्द- किशोरावस्था, वयस्कता, शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक परिवर्तन।

प्रस्तावना-

बच्चों का विकास एक समान नहीं होता; कोई भी दो बच्चे एक जैसे नहीं बढ़ते हैं। शुरुआती विकास के चरणों और सामान्य रुचियों को समझ, शिक्षा में गलतियों से बचने में मदद कर सकता है। बच्चों का अध्ययन वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से करना जरूरी है, क्योंकि वयस्क दृष्टिकोण अक्सर गलत होता है। मन निरंतर बदलता है और विकास के विभिन्न चरणों में अलग विशेषताएँ दिखाता है, जो सामाजिक संपर्क से प्रभावित होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने शैक्षिक अवधि को चार चरणों में बांटा है। ये चरण एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, बल्कि आपस में जुड़े हुए हैं। डॉ. ड्यूई के अनुसार, हर चरण को एक नई दृष्टि से पहचाना जाता है, जिसमें पुरानी गतिविधियाँ समाप्त नहीं होतीं।

स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ शैशवावस्था में चरित्र बनाती हैं, बचपन में आदतों में बदलती हैं, और किशोरावस्था में आदर्शों के जरिए विकसित होती हैं। किशोरावस्था में परिवर्तन स्पष्ट और अचानक होते हैं। यह एक नए जन्म के समान है, जहां शारीरिक, मानसिक, और नैतिक बदलाव होते हैं।

किशोरावस्था मानव जीवन का वह महत्वपूर्ण और जटिल चरण है जो बचपन और वयस्कता के बीच सेतु का कार्य करता है। यह सामान्यतः ग्यारह से उन्नीस वर्ष की आयु के बीच का समय माना जाता है, हालांकि इसकी अवधि संस्कृति और व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर थोड़ी बदल सकती है। यह अवस्था तीव्र शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक परिवर्तनों की अवधि होती है, जिसका सीधा और गहरा प्रभाव व्यक्ति के समग्र विकास और उसकी शैक्षिक प्रगति पर पड़ता है। इस अवधि के दौरान लिए गए अनुभव, सीखे गए कौशल और विकसित हुए दृष्टिकोण जीवन भर की नींव रखते हैं। इसलिए, किशोरावस्था को समझना माता-पिता, शिक्षकों और नीति निर्माताओं के लिए अत्यंत आवश्यक है ताकि वे इस महत्वपूर्ण चरण को सकारात्मक दिशा दे सकें।

किशोरावस्था में शारीरिक और संज्ञानात्मक विकास

किशोरावस्था की शुरुआत प्रायः तीव्र शारीरिक परिवर्तनों, जिन्हें यौवनारंभ या प्यूबर्टी कहते हैं, से होती है। हार्मोनल बदलावों के कारण शरीर में तेजी से विकास होता है, जिसमें ऊंचाई में वृद्धि, द्वितीयक लैंगिक लक्षणों का विकास और शारीरिक संरचना में परिवर्तन शामिल हैं। ये परिवर्तन किशोरों के आत्म-सम्मान और शरीर की छवि पर गहरा प्रभाव डालते हैं। यदि किशोर अपने बदलते शरीर को स्वीकार नहीं कर पाते हैं या उन्हें सामाजिक अपेक्षाओं का दबाव महसूस होता है, तो वे चिंता और असुरक्षा का अनुभव कर सकते हैं, जिसका असर उनकी एकाग्रता और सीखने की क्षमता पर पड़ता है।

संज्ञानात्मक विकास के दृष्टिकोण से, किशोरावस्था अमूर्त चिंतन (Abstract Thinking) की क्षमता के विकास का काल है। जीन पियाजे के अनुसार, इस अवस्था में किशोर औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Stage) में प्रवेश करते हैं, जिससे वे परिकल्पनाओं का निर्माण, भविष्य की योजना बनाना और जटिल नैतिक दुविधाओं पर विचार करना सीख जाते हैं। हालांकि, मस्तिष्क का जो भाग निर्णय लेने और आवेग नियंत्रण के लिए जिम्मेदार

होता है, प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स, वह वयस्कता तक पूरी तरह विकसित नहीं हो पाता। इस अपूर्ण विकास के कारण किशोरों में जोखिम लेने की प्रवृत्ति अधिक होती है और वे दीर्घकालिक परिणामों को नजरअंदाज कर सकते हैं। शिक्षा के संदर्भ में, यह क्षमता उन्हें उच्च स्तरीय गणित, विज्ञान और दर्शन जैसे विषयों को समझने में सहायता करती है, लेकिन भावनात्मक अस्थिरता के कारण वे शैक्षणिक दबावों के सामने कमजोर पड़ सकते हैं।

भावनात्मक और सामाजिक विकास का शिक्षा पर प्रभाव

किशोरावस्था भावनात्मक उथल-पुथल का समय होती है। भावनाओं की तीव्रता बढ़ जाती है और किशोर अपनी पहचान (Identity) को लेकर अत्यधिक जागरूक हो जाते हैं। एरिक एरिकसन के अनुसार, यह अवस्था 'पहचान बनाम भूमिका भ्रम' (Identity vs- Role Confusion) की चुनौती प्रस्तुत करती है। किशोर लगातार यह जानने की कोशिश करते हैं कि वे कौन हैं, उनका उद्देश्य क्या है और समाज में उनकी क्या जगह है।

यह पहचान की खोज सीधे तौर पर शैक्षणिक विकल्पों को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई किशोर अपनी क्षमताओं को लेकर निश्चित नहीं है, तो वह करियर विकल्पों के चयन में अत्यधिक तनाव महसूस कर सकता है या गलत शैक्षणिक रास्ते चुन सकता है। सामाजिक विकास में साथियों का समूह (Peer Group) केंद्रीय भूमिका निभाता है। दोस्तों का प्रभाव माता-पिता के प्रभाव से अधिक शक्तिशाली हो जाता है। समूह की स्वीकृति पाने की चाहत अक्सर शैक्षणिक प्राथमिकताओं को बदल देती है। यदि समूह पढ़ाई को महत्व नहीं देता, तो अकादमिक रूप से प्रतिभाशाली किशोर भी प्रदर्शन में गिरावट दिखा सकते हैं ताकि वे समूह में फिट हो सकें। इसके विपरीत, यदि साथियों का समूह सकारात्मक है, तो वे एक दूसरे को बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रेरित कर सकते हैं। शिक्षकों और परामर्शदाताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे इन सामाजिक गतिशीलता को समझें और उन्हें सकारात्मक रूप से निर्देशित करें।

शिक्षा प्रणाली और किशोरावस्था की आवश्यकताएं

पारंपरिक शिक्षा प्रणालियाँ अक्सर किशोरावस्था की विशिष्ट विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रहती हैं, जिससे छात्रों का जुड़ाव कम हो जाता है। किशोरों को केवल सूचना ग्रहण करने वाला पात्र नहीं समझा जा सकता; उन्हें सक्रिय भागीदार के रूप में देखा जाना चाहिए। उनकी बढ़ती स्वायत्तता की आवश्यकता को शैक्षिक वातावरण में प्रतिबिंबित किया जाना चाहिए।

सकारात्मक शैक्षिक वातावरण वह होता है जो आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है। चूंकि किशोर अमूर्त रूप से सोचने लगते हैं, पाठ्यक्रम को अधिक प्रासंगिक, वास्तविक दुनिया की समस्याओं से जुड़ा हुआ और इंटरैक्टिव होना चाहिए। रटने की पद्धति (Rote learning) उनकी परिपक्व संज्ञानात्मक क्षमताओं को चुनौती नहीं देती और उनमें अरुचि पैदा करती है। उदाहरण के लिए, विज्ञान के सिद्धांतों को केवल पाठ्यपुस्तक से पढ़ाने के बजाय, प्रयोगशाला प्रयोगों और केस स्टडीज के माध्यम से प्रस्तुत करना अधिक प्रभावी होता है।

इसके अतिरिक्त, शैक्षिक संस्थानों को मानसिक स्वास्थ्य सहायता पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। बढ़ती प्रतिस्पर्धा, परीक्षा का दबाव और सामाजिक अपेक्षाएं किशोरों में चिंता और अवसाद के प्रमुख कारक बन सकते हैं। स्कूल काउंसलिंग सेवाओं का मजबूत होना और शिक्षकों का भावनात्मक रूप से संवेदनशील होना, छात्रों को शैक्षणिक चुनौतियों का सामना करने में मदद करता है। यदि कोई किशोर भावनात्मक संकट में है, तो उसकी सीखने की क्षमता गंभीर रूप से बाधित हो सकती है, भले ही उसकी बौद्धिक क्षमता उच्च हो।

माता-पिता और शिक्षक की भूमिका

किशोरावस्था के विकास को सही दिशा देने में माता-पिता और शिक्षक दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है, लेकिन उनकी भूमिकाएं बदलती हैं। माता-पिता को नियंत्रक से अधिक मार्गदर्शक (Facilitator) की भूमिका निभानी होती है। उन्हें किशोरों को स्वतंत्रता देनी होगी, लेकिन साथ ही सुरक्षित सीमाएं भी निर्धारित करनी होंगी। अकादमिक सफलता के लिए घर में एक सहायक और अनुशासित वातावरण आवश्यक है। माता-पिता को ग्रेड पर अत्यधिक ध्यान केंद्रित करने के बजाय सीखने की प्रक्रिया और प्रयास की सराहना करनी चाहिए।

शिक्षकों को विषय वस्तु विशेषज्ञ होने के साथ-साथ एक विश्वसनीय वयस्क संरक्षक के रूप में कार्य करना होता है। किशोरों में वयस्क प्राधिकरण के प्रति संदेह की भावना विकसित हो सकती है, इसलिए शिक्षकों को सम्मानजनक और निष्पक्ष संबंध स्थापित करने की आवश्यकता होती है। कक्षा प्रबंधन में सहयोग और भागीदारी को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है। शिक्षकों को किशोरों की विविध रुचियों और सीखने की शैलियों को पहचानने के लिए पेशेवर विकास की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी छात्र की रुचि प्रौद्योगिकी में है, तो शिक्षक उसे उस रुचि का उपयोग करके अकादमिक परियोजनाओं को पूरा करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

जोखिम भरे व्यवहार और शैक्षिक विचलन

किशोरावस्था में आवेगशीलता और साथियों के दबाव के कारण जोखिम भरे व्यवहारों की संभावना बढ़ जाती है, जो सीधे तौर पर शिक्षा से विचलन का कारण बन सकते हैं। नशीले पदार्थों का सेवन, अकादमिक बेईमानी (Cheating), स्कूल से अनुपस्थिति (Truancy) और जल्द यौन गतिविधि जैसे व्यवहार शैक्षणिक प्रदर्शन को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं।

ये व्यवहार अक्सर अंतर्निहित भावनात्मक या विकासात्मक जरूरतों की अभिव्यक्ति होते हैं। यदि कोई किशोर परिवार में ध्यान आकर्षित नहीं कर पाता या स्कूल में सफल महसूस नहीं करता, तो वह नकारात्मक व्यवहारों के माध्यम से पहचान स्थापित करने का प्रयास कर सकता है। शैक्षिक संस्थानों को निवारक कार्यक्रम (Preventive Programs) लागू करने चाहिए जो स्वस्थ मुकाबला तंत्र (Coping Mechanisms), निर्णय लेने के कौशल और सकारात्मक

संबंध बनाने पर जोर देते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में कई स्कूलों ने अब तनाव प्रबंधन और जीवन कौशल शिक्षा (Life Skills Education) को पाठ्यक्रम में शामिल किया है, जो किशोरों को चुनौतियों का सामना करने के लिए सशक्त बनाता है।

सांस्कृतिक और संदर्भगत कारक

किशोरावस्था पर सांस्कृतिक संदर्भ का गहरा प्रभाव पड़ता है। विभिन्न समाजों में सफलता की परिभाषाएं अलग-अलग होती हैं। कुछ संस्कृतियों में, अकादमिक उत्कृष्टता को सर्वोच्च माना जाता है, जबकि अन्य में पारिवारिक दायित्व या व्यावसायिक कौशल को अधिक महत्व दिया जा सकता है। भारतीय संदर्भ में, माता-पिता का अत्यधिक हस्तक्षेप और करियर को लेकर अत्यधिक अपेक्षाएं किशोरों पर भारी दबाव डालती हैं, जिससे उनकी आंतरिक प्रेरणा कम हो सकती है।

शिक्षा प्रणाली को बहुसांस्कृतिक संवेदनशीलता प्रदर्शित करनी चाहिए। पाठ्यक्रम को विविध पृष्ठभूमि के छात्रों के अनुभवों को प्रतिबिंबित करना चाहिए ताकि प्रत्येक किशोर स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करे। सामाजिक आर्थिक स्थिति (Socio-economic status) भी एक महत्वपूर्ण कारक है। वंचित पृष्ठभूमि के किशोरों को संसाधनों की कमी और घरेलू जिम्मेदारियों के कारण शैक्षणिक अवसरों में बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है, जिसके लिए लक्षित शैक्षिक हस्तक्षेपों की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

किशोरावस्था एक परिवर्तनकारी चरण है जो शारीरिक, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास को शामिल करता है, जो व्यक्ति के भविष्य को आकार देता है। इस अवस्था में, शिक्षा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि समाज और शैक्षिक संस्थान किशोरों की आवश्यकताओं को कैसे समझते और अनुकूलित करते हैं। एक सहायक वातावरण जो पहचान निर्माण, अमूर्त सोच तथा भावनात्मक समर्थन को बढ़ावा देता है, किशोरों के सकारात्मक विकास और शैक्षणिक उपलब्धि के लिए अनिवार्य है। जब विकास के आवश्यकताओं को शिक्षण विधियों में समाहित किया जाता है, तो किशोर अपनी पूरी क्षमता को प्राप्त कर पाते हैं।

शारीरिक परिवर्तन, जैसे कि यौन विकास, इस चरण में महत्वपूर्ण होते हैं और यह तीव्र विकास के साथ आते हैं। भावनात्मक अस्थिरता इस समय की मानसिक विशेषता है, जो नवोदित भावनाओं के कारण आत्म-चेतना और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को प्रभावित करती है। सामाजिक समायोजन की चुनौती और नए संबंधों की खोज भी किशोरावस्था में महत्वपूर्ण है।

साथ ही, इस अवधि में बौद्धिक परिवर्तन जैसे कि चिंतनशीलता, तर्क की औपचारिकता, और विचारों का विस्तार होता है। सही तरीके से पूर्ववर्ती चरणों का प्रबंधन किशोरावस्था की समस्याओं को कम कर सकता है।

हालांकि, हस्तकला जैसी गतिविधियों के प्रति लोगों की सोच में विभिन्नता है; कई अभिभावक शैक्षणिक विषयों को प्राथमिकता देते हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि विद्यालय में ऐसी गतिविधियों को शामिल किया जाए जो सामाजिक मान्यता प्राप्त करें और विद्यार्थियों को उनकी चारों ओर की दुनिया को समझने में मदद करें।

सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ में, शिक्षा को छात्रों को उनके वास्तविकता से जोड़ना चाहिए, ताकि वे भौतिकी, रसायन विज्ञान और अन्य विषयों में रुचि विकसित कर सकें। विद्यालय का सामाजिककरण अधूरा है, और एक प्रभावी विद्यालय वो है जो विद्यार्थियों को समाज के उपयोगिता के लिए तैयार करता है। विभिन्न कार्यशालाओं का सही समन्वय आवश्यक है, ताकि विद्यालय एक व्यापक सामाजिक संस्कृति का निर्माण कर सके और विद्यार्थियों में सामूहिकता का अनुभव पैदा कर सके।

संदर्भ

1. Erikson, E. H. (1968). Identity: Youth and crisis. W. W. Norton & Company.
2. Piaget, J. (1972). Intellectual evolution from adolescence to maturity. *Pacific Sociological Review*, 15(4), 381-388.
3. Steinberg, L. (2001). We know some things: Adolescent experts and the future of adolescent psychology. *Journal of Research on Adolescence*, 11(1), 1-19.
4. Steinberg, L. (2014). *Adolescence* (10th ed.). McGraw-Hill Education.

कृष्णा सोबती और भीष्म साहनी के साहित्य में सांप्रदायिक संदर्भ और मानवीय मूल्य

चंद्रकला

शोध छात्र

प्रो० भूरूलाल चक्रवर्ती

शोध निर्देशक

हिंदी कथा-साहित्य में कृष्णा सोबती और भीष्म साहनी दो ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने सांप्रदायिकता (Communalism) के प्रश्न को केवल राजनीतिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय नियति (human destiny) के रूप में देखा। दोनों का अनुभव-क्षेत्र विभाजन की विभीषिका से जुड़ा है; दोनों ने इतिहास को मनुष्य के जीवन-संघर्ष और नैतिक मूल्यों (ethical values) की कसौटी पर परखा है। उनके यहाँ ऐतिहासिकता और साहित्यिकता का समन्वय इस प्रकार मिलता है कि कथा-शिल्प स्वयं इतिहास की वैकल्पिक विमर्श बन जाता है।

भारतीय विभाजन 1947 केवल एक राजनीतिक घटना नहीं था; वह सामूहिक जन स्मृति में गहरे धँसा हुआ सांस्कृतिक आघात (cultural trauma) भी था। उर्वशी बुटालिया (Urvashi Butalia) की पुस्तक 'The Other Side of Silence' और यास्मीन खान (Yasmin Khan) की पुस्तक 'The Great Partition' जैसी अंग्रेजी कृतियाँ बताती हैं कि विभाजन ने साधारण मनुष्यों के जीवन को किस तरह तोड़ा, उन की संवेदनशील चेतना को कहाँ तक झकझोरा है। उक्त दोनों लेखकों के अलावा कालिन्स और लापियर की पुस्तक 'Freedom at midnight' में भारत की आजादी और बंटवारे के सामाजिक, राजनीतिक और औपनिवेशिक कारणों की पड़ताल की गयी है। और हिंदी साहित्य में इस अनुभव को संवेदनात्मक गहराई से रूपायित करने वालों में कृष्णा सोबती और भीष्म साहनी अग्रणी हैं। उनके यहाँ सांप्रदायिकता किसी एक समुदाय की निंदा नहीं, बल्कि सत्ता-राजनीति और सामाजिक अविश्वास की जटिल प्रक्रिया है।

‘गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान’ में कृष्णा सोबती विभाजन को स्मृति-लेखन के माध्यम से दर्ज करती हैं। हिन्दू और मुस्लिम दोनों पक्षों के सांप्रदायिक चरित्र को उजागर करती हैं,

“हिन्द के बेटे थे- चार,

सियो,

तियो,

थियो,

चौथे नाम क्यों लें-

वह दलित तो कचरा उठाने को रहे।

इस्लामुद्दिन के भी बेटे थे - चार

अरब

पठान

तुर्क

मुगल,

सियो गहरी नींद से उठा और डकार कर बोला- जय सियाराम!

तियो उठा और खंखार कर बोला- जय बजरंग बली!

धियो उठा और अंगोछे से बदन पोछकर दहाड़ा- हर-हर महादेव!

रह रह तीनों ललकारने लगे हवा को!...

आवाज आई-

तुम्हारी आवाज ही क्यों?
मेरी क्यों नहीं?
अगर मेरी नहीं तो तेरी नहीं
सभी एक दूसरे के शोर को पकड़ने लगे-
... नारा-ए- तकबीर
या अली
अल्लाह - हो-अकबर”

यह रचना ऐतिहासिक दस्तावेज (historical document) और आत्मानुभूति (subjective experience) का संगम है। यहाँ ‘गुजरात’ केवल भूगोल नहीं, बल्कि एक साझा सांस्कृतिक स्पेस है जो पाकिस्तान और हिंदुस्तान में विभक्त हो गया। सोबती का दृष्टिकोण आरोप-प्रत्यारोप से परे है; वे दिखाती हैं कि सांप्रदायिक हिंसा अचानक नहीं फूटती, बल्कि धीरे-धीरे निर्मित होती है-अफवाहों, भय और राजनीतिक स्वार्थों के माध्यम से। यह विश्लेषण Benedict Anderson के ‘imagined communities’ सिद्धांत की याद दिलाता है, जहाँ राष्ट्र और समुदाय कल्पित संरचनाएँ होते हैं, जिनका दुरुपयोग भी संभव है। यह पुस्तक कृष्णा सोबती की आत्मकथा इसलिए भी लगता है कि - एक पात्र कृष्णा सोबती के रूप में वे खुद मौजूद हैं और विभाजन की विभीषिका से उपजी विस्थापन की भुक्तभोगी भी।

वह लिखती हैं, यदि मैं लाहौर से हिन्दुस्तान जाने वाली ट्रेन पर न चढ़ पाती, और उन्मादी भीड़ की हाथों लग गयी होती तो मेरा क्या हश्र होता है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती! हजारों माँ, बहन, बेटियों की तरह मैं भी विभाजन की बलि चढ़ जाती है।”

अपने प्रसिद्ध उपन्यास ‘जिन्दगीनामा’ में सोबती जी सांप्रदायिकता से पूर्व के ग्रामीण पंजाब का बहुलतावादी (pluralistic) समाज रचती हैं। यहाँ सिख, मुस्लिम और हिंदू समुदाय एक-दूसरे के साथ सह-अस्तित्व (co-existence) में रहते हैं। यह उपन्यास ऐतिहासिक यथार्थ का सशक्त उदाहरण है, जहाँ लोकभाषा, संस्कृति और रीति-रिवाजों के माध्यम से एक composite culture उभरता है। इस रचना का महत्व इसलिए भी है कि यह विभाजन-पूर्व भारत की उस सांस्कृतिक एकता को स्मरण कराती है, जिसे सांप्रदायिक राजनीति ने खंडित किया। सोबती यहाँ ‘history from below’ की पद्धति अपनाती हैं-अर्थात् इतिहास को साधारण लोगों की दृष्टि से देखना। यह इतिहास ही है जो साहित्य को कालगत वैशिष्ट्य को आधार निर्मित कर भटकने से रोकती है। कृष्णा सोबती अपने उक्त उपन्यास में सांप्रदायिकता के बीज के पनपने के सूक्ष्म परिवेश का भी चित्रण करती हैं। लेकिन समावेशी समाज के संवेदनशील चरित्र के जमीन से जुड़ी बुनियादी सोच को भी व्यक्त करती हैं,

‘बाबा बोले-जिन्दगी वही जो धरती पर बोई जाए और पसीने से सींची जाए...”

निरंजन देव शर्मा अपनी पुस्तक ‘शब्द परस्पर’ सोबती जी के उपन्यास जिन्दगीनामा के संदर्भ में लिखते हैं, - सोबती जी ने इंसानी जज्बात के उस आंतरिक संवेदना को अभिव्यक्त किया है जो उसके मूल चरित्र में प्रकृति से मिला है।”

यह सच है कि हिन्दी साहित्य में सोबती से किसी एक धारा या वाद के चाहरदीवारी की कैद में न बंध कर निरपेक्ष भाव से समाज और उसकी गतिविधि याँ को नजदीकी से निहारती हैं और उस अपनी रचनाओं के कैनवास पर उकेरती हैं। जहाँ, मानव मूल्य ही उन की साहित्यिकता का ध्येय प्रदर्शित होता है।

‘डार से बिछुड़ी’ और ‘मित्रों मरजानी’ में प्रत्यक्ष रूप से सांप्रदायिक दंगे नहीं हैं, परंतु इन रचनाओं में स्त्री-अस्मिता और सामाजिक संरचना की पड़ताल के माध्यम से सोबती उस मानसिकता को उजागर करती हैं, जो सामुदायिक विभाजन की जड़ में होती है-पितृसत्ता, वर्चस्व और नियंत्रण। ‘मित्रों मरजानी’ की नायिका अपने अस्तित्व को निर्भीकता से व्यक्त करती है; यह स्वतंत्रता सांप्रदायिक रूढ़ियों के विरुद्ध भी एक प्रतीकात्मक प्रतिरोध है। इस प्रकार सोबती के यहाँ मानवीय मूल्य-स्वाभिमान, सह-अस्तित्व, संवाद-सांप्रदायिकता के प्रतिपक्ष (counter-narrative) के रूप में स्थापित होते हैं।

दूसरी ओर, ‘rel’ उपन्यास में भीष्म साहनी सांप्रदायिक हिंसा की निर्मम यथार्थवादी (stark realism) प्रस्तुति करते हैं। भीष्म साहनी और कृष्णा सोबती समकालीन और भौगोलिक सांप्रदायिक परिस्थितियों के सहचर रहे हैं। ‘तमस’ का आरंभ एक सुअर की हत्या से होता है, जिसे मुराद अली सालोत्तरी साहब के कहने पर नत्थू (दलित) से मरवाता है। ‘सुअर’ राजनीतिक षड्यंत्र के तहत मस्जिद के पास फेंका जाता है। यह घटना दिखाती है कि सांप्रदायिकता प्रायः योजनाबद्ध होती है।

हिन्दू और मुस्लिम के बीच जो जहर बोई जा रही है उस के जिम्मेदार धार्मिक नुमाइंदे भी हैं, इस दृश्य को साहनी जी तमस में बड़े ही बेबाकी से दर्ज करते हैं,

‘हिन्दू - मुसलमान की अदावत पुराने जमाने से चली आ रही है। काफिर - काफिर है और जब तक दीन पर ईमान नहीं लाएगा वह दुश्मन है। काफिर को मारना सबब है।”

‘वेद में सब लिखा है, विमान बनाने का ढंग, बम बनाने का ढंग... म्लेच्छ गंदे होते हैं। एक-दूसरे का जूठा खा लेते हैं... आर्य युवकों के लिए मनसा वाचा कर्मणा तीनों प्रकार की दृढ़ता की जरूरत है। छुरी हाथ में लो और उधर बैठ आओ।”

भीष्म साहनी का दृष्टिकोण पहले आर्य समाज और हिन्दू धर्म से जुड़ा था, बाद में गांधीवाद और कांग्रेस के कार्यकर्ता तक बन गये और 1970 के दशक में जब यह उपन्यास लिखा जा रहा था, तब तक वे कांग्रेस में ही थे। यही कारण है कि कांग्रेस और स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण इस उक्त उपन्यास में व्यक्त हुआ है। बाद में अपने भाई बलराम साहनी की तरह इष्टा से जुड़ने के बाद मार्क्सवादी सामाजिक विश्लेषण (Marxist social analysis) से प्रभावित हुए; वे अपनी रचनाओं सत्ता-तंत्र (power structure) और औपनिवेशिक नीति (colonial policy) की भूमिका को बखूबी रेखांकित करते हैं। इतिहासकार

इयान टैल्बॉट (Ian Talbot) और आयशा जलाल (Ayesha Jalal) ने भी अपने अध्ययनों में दिखाया है कि विभाजन केवल धार्मिक संघर्ष नहीं था, बल्कि राजनीतिक असफलताओं और औपनिवेशिक रणनीतियों का परिणाम था। 'तमस' इन निष्कर्षों को कथा-रूप में सजीव करता है।

आत्मकथा 'आज के अतीत' में भीष्म साहनी अपने समय के सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश का अनुभवपरक विश्लेषण करते हैं। यहाँ वे विभाजन, प्रगतिशील आंदोलन (Progressive Movement) और सामाजिक संघर्षों को व्यक्तिगत अनुभव के साथ जोड़ते हैं। यह रचना बताती है कि लेखक के लिए इतिहास केवल बाहरी घटना नहीं, बल्कि अंतःकरण की पीड़ा है। साहनी का मानवीय दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि हिंसा के बीच भी करुणा (compassion) संभव है।

सोबती और साहनी दोनों की रचनाओं में मानवीय मूल्य केंद्रीय हैं। सोबती के यहाँ सांस्कृतिक बहुलता (cultural plurality) और स्त्री-स्वतंत्रता है वहीं, साहनी जी के यहाँ वर्ग-चेतना और सामाजिक न्यायख्ये सब मिलकर communal discourse का प्रतिरोध रचते हैं। साहित्य यहाँ केवल representation नहीं, बल्कि नैतिक हस्तक्षेप बन जाता है।

निष्कर्षतः कृष्णा सोबती और भीष्म साहनी ने सांप्रदायिक संदर्भ को इतिहास की ठंडी रिपोर्टिंग के रूप में नहीं, बल्कि जीवित मनुष्यों की त्रासदी और संभावनाओं के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी कृतियाँ यह स्थापित करती हैं कि इतिहास को समझने के लिए साहित्य अनिवार्य है, क्योंकि साहित्य मानवीय संवेदना (human sensitivity) और नैतिक विवेक (moral conscience) को सक्रिय करता है। इस दृष्टि से उनका लेखन आज भी प्रासंगिक है, जब सांप्रदायिक तनाव समय-समय पर पुनर्जीवित होता है। उनका साहित्य हमें यह स्मरण कराता है कि विभाजन की रेखाएँ भूगोल में खिंच सकती हैं, परंतु मनुष्यता (humanity) की जड़ें साझा इतिहास और सह-अस्तित्व में ही पुष्ट होती हैं।

संदर्भ :

1. कृष्णा सोबती, गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नयी दिल्ली - 110002, दूसरा संस्करण: 2018, पृष्ठ 15-16
2. वही, पृष्ठ 54
3. कृष्णा सोबती, जिन्दगीनामा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नयी दिल्ली - 110002, 17वां संस्करण :2024, पृष्ठ 38
4. शब्द परस्पर, निरंजन देव शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नयी दिल्ली - 110002, पहला संस्करण :2015, पृष्ठ 80
5. तमस, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नयी दिल्ली - 110002, आठवां संस्करण :2010, पृष्ठ 53
6. वही, पृष्ठ 210
7. वही, पृष्ठ 78-79

यज्ञ एवं यज्ञधूम से दीर्घायुष्य परिशीलन

कंचन कुमारी

शोधच्छात्रा, पी०एच०डी०, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू - 180006

‘यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म’, जहाँ वैदिक उद्घोष था, वहीं पञ्च महायज्ञों के करने का विधान हमारी स्मृतियाँ मानव के समझ रखती हैं, जिन्हें अपनाकर मनुष्य अपना इहलोक एवं परलोक सुधार सकता है। वे पञ्च महायज्ञ हैं- ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ एवं नृयज्ञ। यथा

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।

होमो देवो बलिर्भूतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

अर्थात् वेद का अध्ययन और अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण करना पितृयज्ञ है, हवन करना देवयज्ञ है, बलिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ है, तथा अतिथियों का भोजन आदि से सत्कार करना नृयज्ञ है। इन पञ्च महायज्ञों को हम अपनाते तो हैं किन्तु आंशिक रूप में ही। वैदिककाल में तो ब्राह्मण के छः कर्मों में यज्ञ करना सर्वोत्कृष्ट कर्म था,² जो आज किसी पूजन या अनिष्ट शमन हेतु किये जाने वाले आयोजनों में ही अपनाया जाता है। किसी भी पूजन में पुरोहित यजमान से “धूपं दीपं नैवेद्यं समर्पयामि” उच्चारित करवाता है। “धूपः स्यात् गन्धवासितो धूपः” रूप में यज्ञधूप को परिभाषित किया जा सकता है। यज्ञ में डाली जाने वाली आहुति ही हवि या हव्य कहलाती है। हविः शब्द हू धातु से इषुन् प्रत्यय के संयोग से तथा हव्य शब्द की निष्पत्ति हू (हवने) धातु से यत् प्रत्यय के संयोग से होती है। वहीं यज्ञ शब्द की निष्पत्ति यज् + भावे नङ् प्रत्यय के संयोग से होती है।³ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तस्माद्यज्ञात्सर्वं हुतः⁴ आदि से स्पष्ट है कि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होते हैं एवं ग्रह, नक्षत्रों की अनिष्ट दृष्टि से निजात मिलता है इसीलिए यज्ञ करने की सलाह शास्त्रविद् देते हैं, जो विविध पर्वों, तिथियों, संस्कारों के अवसर पर किये जाते हैं। हविष् यह सामग्री है, जो यज्ञाग्नि में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यजमान द्वारा डाली जाती है, जो विविध प्रकार की ओषधियों, अन्य मिष्ठान, फलों, सुगन्धित द्रव्यों तथा सुगन्धित लकड़ियों के सम्मिश्रण से बनती है, इसीलिए इससे उठने वाला धूम जहाँ पर्यावरण का संवर्धन कर्ता होता है, वहीं मानव स्वास्थ्य का पोषण एवं संवर्धन करता है, क्योंकि इसमें विविध प्रकार की जड़ी बूटियों एवं ओषधियों की गंध समाहित रहती है। मनुस्मृतिकार ने दर्शपौर्णमास में बचे हुए हविष्य को “अमृत” तक कह डाला है?⁵

शास्त्रविदों के मतानुसार मनुष्य को काम्य, निषिद्ध, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त एवं उपासना ये छः- प्रकार के कर्म करने अपेक्षित होते हैं, जिसमें किसी फल प्राप्ति की कामना से किये जाने वाले कर्म काम्य- कर्म कहलाते हैं। विद्वन्मनोरंजनीकार लिखते भी हैं फलोद्देशेन विधीय- मानानि कर्माणि काम्यानि।⁶ यथा- ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्। अर्थात् यदि स्वर्ग प्राप्ति की अभीप्सा हो तो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ करना चाहिए उसी प्रकार “भ्रमागतेष्टसाधनता निषेधकनन्पदयोगिवाक्यगम्यानि निषिद्धानि” रूप में अनिष्ट कारक एवं न करने योग्य कर्मों को निषिद्ध कर्म कहा गया है यथा- ब्राह्मणो न हन्तव्यः, एवं नित्य कर्म वह हैं, जिनके न करने से मनुष्य के हृदय में असंतोष एवं भविष्य में अनिष्ट होने की आशंका धर कर जाती है⁶ और पञ्चमहायज्ञों के रूप में मनुष्य उन्हें अपनी दैनन्दिनी में स्थान भी देता है जबकि किसी निमित्त को प्राप्त करके अवश्य करणीय रूप से जो वेदों के कर्म निहित किये गये हैं, उन्हें निमित्त जन्म होने के कारण नैमित्तिक कहते हैं। विद्वन्मनोरंजनीकार के मत में निमित्तमाव्यमासाद्यावश्यककर्तव्यतया विहितानि नैमित्तिकानि रूप में नैमित्तिक कर्मों को परिभाषित किया गया है। जब कि प्रायश्चित्त कर्म के बारे में वह लिखते हैं कि विहिताकरणप्रतिबद्धसेवारूप निमित्त विशेषानुबन्धीनि प्रायश्चित्तानि अर्थात् विहित कर्म को न करने से और निषिद्ध कर्म को करने से जो पाप उत्पन्न होता है। उस पाप का विनाश करने के विशेष निमित्त से किये जाने वाले कर्मों को प्रायश्चित्त कर्म कहते हैं जैसे चान्द्रायण व्रत। इसके विधान के बारे में मनुस्मृतिकार लिखते हैं कि-

एकैकं हासयेत् पिण्डं कृष्णो शुक्ले च वर्धयेत्।

उपस्पृशस्त्रिषण्मेतच्चाण्द्रायणं स्मृतम्॥

वहीं उपासना कर्म ज्ञान से भे दिखाने के लिए मानस व्यापार को कहा जाता है। उपासना या ध्यान विधिवाक्यों के अनुसार ही होता है और पुरुष उसे करने में स्वतन्त्र होता है। जैसे- पुरुषो वावगौतमाग्निः, योषा वाव गौतमाग्निः⁷ इत्यादि विधियों के अनुसार स्त्री या पुरुष में अग्नि की भावना करना मानसिक व्यापार अथवा ध्यान अथवा उपासना है। इन नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित्त कर्मों का परम प्रयोजन चित्त की शुद्धि है, परन्तु - उपासनाओं का परम प्रयोजन चित्त की एकाग्रता है।⁸ जिसे यज्ञ के अवसर पर यजमानों को करने की सलाह कर्मकाण्डी देते हैं, जिसमें साधक अष्टाङ्ग योगों की कसौटी में स्वयं को कस कर यम, नियम, आसन से जहाँ बाह्यशौच अर्जित करते हैं, वहीं प्राणायाम की त्रिविध विधाओं पूरक, रेचक एवं कुम्भक की क्रियाविधि अपनाने के साथ-साथ प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान से चित्तैकाग्र करते हैं। योग विधाओं को अपनाने से जहाँ उनके शरीर में नीरोग्यमा आती है, वहीं वह पुष्ट भी होता है तथा प्राणायाम द्वारा प्रतिदिन श्वास रोकने से साधक अपनी आयु का संवर्धन भी कर लेता है। प्राचीन काल के ऋषि मुनियों की आयु शतादिक उनके प्राणायाम एवं ध्यानविद्या का ही प्रतिफल थी, जब कि आज शतायु मनुष्य कम ही मिल पाते हैं। यज्ञायोजन से जहाँ मानव की दिनचर्या नियमित हो जाती है, वहीं इसका खान पान, आहार-विहार उसे संयमित जीवन व्यतीत करने का मार्ग सिखाता है। नियमित दिनचर्या द्वारा वह उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है, साथ ही यज्ञ करने से वह अनिष्ट से होने वाली अकालमृत्यु से बच जाता है, तथा यज्ञ धूम का पान करने से यह विविध व्याधियों से छुटकारा

पाने के साथ-साथ अपना शरीरसंवर्धन एवं आयुष्यवर्धन भी कर सकता है। महाकवि कालिदास ने तो अभिज्ञान शाकुन्तल के नान्दीवाक् में ही यज्ञ से शिव की अष्टमूर्तियों में से एक यज्ञ मूर्ति के रूप भी आख्यान किया है जहाँ तह लिखते हैं। कि या सृष्टिः सृष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविः या च होत्री॥⁹ शिव की अष्टमूर्तियों के बारे में वर्णन मिलता है कि

जलं वह्निस्तथा यष्टा सूर्यचन्द्रमसौ तथ्य।

आकाशं वायुरवनी मूर्तयोऽष्टौ पिनाकिनः॥

स्पष्ट है कि यह शिव की एक मूर्ति रूप में शास्त्रकारों को भी मान्य है। यज्ञ की यहाँ तक महत्ता है कि यज्ञायोजन द्वारा पुत्रप्राप्ति तक हो जाती है, जैसा कि रामचरित मानस में उल्लिखित विवरण से स्पष्ट है जहाँ गोस्वामी जी लिखते हैं कि राजा दशरथ को पुत्रप्राप्ति के लिए श्रृङ्गी ऋषि ने यज्ञ कराया एवं यज्ञ हवि से उन्हें चार पुत्रों की प्राप्ति भी हुई थी यथा रामचरितमानस के बालकाण्ड के विवरण से स्पष्ट भी है—

सृंगी रिषिह वशिष्ठ बोलाना। पुत्रकाम सुभ जग्य कराना॥

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अग्नि चरु कर लीन्हें॥

जो वशिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥

यह हवि वांटे देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥

तब अदृश्य भए पावक सकल सकहिं समुझाई।

परमानन्द भगत नृप हरय न हृदय समाई॥ 18911

तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाई। कौशल्यादि तहाँ चलि आई॥

अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभयभाग आधे कर कीन्हा॥

कैकई कहँ नृप सो दमऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥

कौशल्या कैकई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्राहि मन प्रसन्न करि।

एहि विधि गर्भसहित सब नारी। भई हृदयँ हरषित सुख भारी॥

जा दिन ते हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख सम्पति छाए॥

उपर्युक्त विवरण पुत्रेष्टि यज्ञ की प्रासङ्गिकता की पुष्टि करता है, किन्तु आज विज्ञान के नवीन आविष्कारों यज्ञों पर न आश्रित रहने की मनोभावना जनसामान्य के मध्य पनपने लगी है। वैदिककाल में जहाँ ऋग्वेदीय, यजुर्वेदीय, सामवेदीय एवं अचार्य वेदीय मंत्रों के उच्चारण के लिए अलग-अलग पुरोहित क्रमशः ऋत्विक्, अध्वर्यु, उद्गाता एवं होता नाम से नामित हुआ करते थे, जो परस्परया मन्त्रोच्चारण कर यज्ञ सम्पन्न करवाते थे, आज उनकी प्रासङ्गिकता भी नहीं रह गयी। एक ही कर्मकाण्डी पुरोहित यज्ञ करवाता है। सामवेद के अतिरिक्त ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद की ऋचाओं द्वारा यज्ञ करने की प्रासङ्गिकता आज भी भारतवर्ष में प्रचलित है।

अथर्ववेद के प्रथम, द्वितीय एवं विशेषकर तृतीय काण्ड ग्यारहवें अनुवाक में यज्ञ द्वारा दीर्घायुष्य परिशीलन विस्तार से वर्णित मिलता है।¹¹ इसी वेद के प्रथम काण्ड के तीसवें सूक्त को आयुष्यवर्धन सूक्त ही कहा गया है। इसी वेद के द्वितीय काण्ड विविध देवताओं से आयुष्यवर्धन हेतु प्रार्थना करता है। यथा—

द्यौष्टा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने।

यथा जीवा अदितेरूपस्थे प्राणायानाभ्यां गुपितः एवं हिमाः॥¹²

अथर्ववेदीय ऋषि की यहाँ तक मान्यता है कि हवन द्वारा व्यक्ति को मृत्यु के मुँह से वापस लाया जा सकता है यथा— सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषा हार्षमेनम्¹³ से स्पष्ट है। वहीं शतायुषा हविषाहार्षमेनम्¹⁴ अर्थात् सौ वर्ष की आयु देने वाले हवन से मैं इसे वापस लाया हूँ, से भी स्पष्ट है कि यज्ञाहुति आयुष्यवर्धक होती है। शतं जीवति शरदस्तवायम्¹⁵ आयुरस्मै धेहि जातवेदः¹⁶ से भी यज्ञ की प्रासङ्गिकता की पुष्टि होती है। वहीं ब्रह्म यज्ञं च वर्धय¹⁷, इयं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः¹⁸ से मनुष्यों को यज्ञ करने की सलाह ऋषि देता है और यहाँ तक कहता है कि जो चतुष्याद पशुओं का तथा द्विपादों अर्थात्, मनुष्यों का स्वामी है, वह यज्ञ के भाग को प्राप्त हो, उसकी उपासना हो तथा धन और पोषण यजमान को मिले।¹⁹

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड में हवन द्वारा दीर्घायुष्य प्राप्ति का विवेचन मिलता है जिसमें ऋषि प्रार्थना करते हुए कहता है कि

मुञ्चानि त्वा हविया जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी च मुमुक्तमेनम्॥१॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।

तमाः हरामि निऋतेरूपस्थादस्पर्शमेनं शतशारदाय॥२॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।

इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्॥ 3॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः रातं हेमन्तान्द्यतम् वसन्तान्।

शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम्॥४॥

प्र विशर्त प्राणापानावनड्वाहाविव ब्रजम्
व्यपन्ये यन्तु भृत्यवो यानाहुरितरान्धतम्॥15॥
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे बहत पुनः॥16॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यपन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्धतम्॥ 7॥
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया।
तं ते सत्यस्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद्यबृहस्पतिः॥18॥

ऋषि मंत्रोच्चारण पूर्वक कहता है कि हवन द्रव्य से मैं तुम्हें ज्ञात एवं अज्ञात रोगों से छुड़ाता हूँ। इन्द्र और अग्नि की सहायता से तुम उन कष्टों से मुक्त हो सकते हो। हवन से ही सौ वर्ष की आयु प्राप्त कराने का विमर्श भी कवि देते हैं। साथ ही तृतीय मंत्र में कहते हैं कि हवन में हजारों शक्तियाँ हैं, और सैकड़ों वीर्य हैं, ऐसे हवन से मनुष्य मृत्यु पाश तोड़कर वापस आ सकता है तथा सम्पूर्ण कष्टों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। साथ ही सौ वर्ष आयु जी सकता है। अपमृत्यु से हवन द्वारा सत्य के हाथों बृहस्पति छुड़ा लेते हैं। इस मंत्र के ऋषि ब्रह्मा एवं भ्रग्लङ्गिरा तथा देवता इन्द्र और अग्नि हैं। अग्नि वैसे भी यज्ञ देवता के मुख माने जाते हैं।²⁰

हवन जब सम्पन्न होता है तो यज्ञधूम से वातावरण की शुद्धि एवं पवित्रता की अनुगूँज स्वतः हो जाती है। वैदिक यज्ञयागों में सम्पन्न हवन से आरोग्य, बल एवं दीर्घ आयुष्य भी प्राप्त होता है। वे यज्ञभाग ऋतुओं की सन्धियों में किये जाते हैं, और ऋतुपरिवर्तन के कारण विविध रोग उत्पन्न होते हैं, जो यज्ञधूम से शान्त भी हो जाते हैं, क्योंकि हवन सामग्री में विविध प्रकार की ओषधियाँ मिश्रित रहती हैं। गोपथ ब्राह्मण में वर्णन मिलता है कि भैषज्य यज्ञा वा एते। तस्माहुतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते।²¹ अर्थात् ये यज्ञ औषधियों के महामुख हैं। इसलिए ऋतुसन्धियों में यज्ञ किये जाते हैं। इसका कारण यह है कि ऋतुसन्धियों में मनुष्य को व्याधियाँ सताती हैं।

अथर्ववेद में ही हवन से रोग दूर करने के सन्दर्भ में ऋषि कहता है “अज्ञातयक्ष्मात् इत राज्यक्ष्मात् त्वा मुञ्चामि एवं तस्याः (ग्राह्याः) इन्द्राग्नी एवं प्रमुमुक्तम्।” वहीं यह भी कहता है कि नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्, स्पष्ट है कि हव्य से उत्पन्न धूम में वह सामर्थ्य है कि रोगों से निजात दिलाने के साथ-साथ वह मृत्युबन्धन से भी मनुष्य को छुड़ा लेता है। आवश्यकता यज्ञावसर में चित्तैकाग्रता एवं आत्मसमर्पण की। अथर्ववेद में प्राप्त सौत्रामणी याग की इतनी महत्ता है कि इस भाग से इन्द्र ने अपने दशधा विभक्त वीर्य को पुनः एकत्रित किया था। जैसा कि तैत्तरीय संहिता के विवरण से स्पष्ट भी है।²² अथर्ववेदीय विवरणानुसार सौत्रामणी यज्ञ के द्वारा राज्य भ्रष्ट राजा फिर से अपनी राजगद्दी तक प्राप्त कर लेते हैं- यथा-

दूरे सन्तं विप्रं इन्हं संख्याय अस्थासः आचानयन्तु
देवाः अस्मै गायत्री बृहतीं अर्कं सौत्रामण्या दधन्वन्तः॥²³

यज्ञ में आत्मसमर्पण करने से जहाँ यजमान के अन्तः में आस्था, अद्धा, पवित्रता आती है वहीं उसके अहं का परित्याग भी हो जाता है जिससे देवता प्रसन्न होते हैं, एवं उसकी अपमृत्यु क्षरित होती है तथा उसे दीर्घायुष्य की प्राप्ति भी होती है ऋषि अंगिरा कहते हैं

ये भक्षयन्तो न वसून्वानृधुर्याननयो अन्वतप्यन्त धिष्याः।
या तेषाभवया दुरिष्टिः स्वि ष्टिं नस्तां कृणवद्विश्वकर्मा ॥1॥
यज्ञपतिमृष्य एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम्
मथन्यान्निस्तोकनप यान्द्राध सं नष्टोभिः सृजतु विश्वकर्मा॥2॥
अदान्यान्त्सोमपान्मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः
यदेनश्चकृवान्बद्ध एवं तं विश्वकर्मन् मुञ्चा स्वस्तये॥3॥
घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम्
बृहस्पतये महिषं ह्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाहापुस्मान्॥4॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिमुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः॥5॥

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1 मनुस्मृति 3/70
- 2 अध्यापनंअध्ययनं यजन याजनं तथा।
दान प्रतिग्रहश्चौव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः मनु० 10177
- 3 संस्कृत हिन्दी कोश - वामन आपटे, पृ० 823

- 4 विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वाङ्मृतभोजनः।
विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथाऽमृतम्॥ मनु० 3/285
- 5 काम्यानि स्वर्गादीष्टसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि। निष्धानि नरकाद्य निष्टसाधनानि ब्राह्मणहननादीनि। नित्यान्यकरणे प्रत्यवायसाधनानि सन्ध्यावन्दनादीनि। त्रैमित्तिकानि पुत्रजन्माद्यनुबन्धीनि जातेष्ट्यादीनि। प्रायश्चित्तानि पायक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि। उपासनानि - सगुयब्रह्मविषयमानस व्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि॥16॥
सदानन्द- वेदान्तसार, पृ० 47 से उद्धृत
- 6 पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्ठनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहमन॥ मनु- 3/60
- 7 मनु० 11/216
- 8 एतेषां नित्यादीनां बुद्धि शुद्धिः परं प्रयोजनमुपासनानां तु - चित्तैकार्ग्यम्। तमेतमात्मानं वेदानुवचनेय ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन॥ बृहदारण्यकोपनिषद् - 4/4/22, एवं वेदान्तसार पृ० 50 से उद्धृत
- 9 या सृष्टिः सृष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विद्यतः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ कालिदास अभि० शाकुन्तलम् 1/1
- 10 गोस्वामी तुलसीदास - रामचरितमानस - बालकाण्ड - दोहा: 188 से 190 के बीच से उद्धृत एवं मूल गुटका, गीताप्रेस गोरखपुर - पृ० 140 से उद्धृत
- 11 अथर्ववेद 1/30/1-4
- 12 अथर्व वेद 2/28/4
- 13 अथर्ववेद 3/11/3
- 14 अथर्ववेद 3/10/4
- 15 वही - 1/10/2
- 16 वही - 2/29/2
- 17 वही - 3/20/5
- 18 वही - 2/35/5
- 19 य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदाभुत यो द्विपदाम् निष्क्रीतः सः यज्ञियं भागमेतु, रायस्पोषा यजमान सचन्ताम्। अथर्व 2/34/1
- 20 अथर्ववेद- 3/11/1-8
- 21 गो० ब्रा० उ० प्र० 9/19
- 22 इन्द्रस्य सुषुवाणस्य दशधेन्द्रियं वीर्यं परापतत् तद्देवाः सौत्रामण्या समभरन् तै० स० 5-6-3-4
- 23 अथर्ववेद 3/3/2
- 24 वही - 2/35/1-5

मराठाकालीन प्रशासनिक व्यवस्था: केन्द्रीय, प्रांतीय एवं स्थानीय प्रशासन

दीपेन्द्र कुमार

अनूप कुमार

सारांश - भारत में प्राचीन काल के विभिन्न साम्राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रशासनिक संरचनाएँ रही हैं। मराठा साम्राज्य की स्थापना के समय भारत में मुगल प्रशासनिक व्यवस्था एवं दक्कनी प्रशासनिक व्यवस्था विस्तृत रूप में प्रचलित थी। शोध पत्र में मराठा प्रशासनिक संरचना के आधारभूत तत्त्व एवं मुगल-दक्कनी प्रशासनिक व्यवस्था का मराठा प्रशासन में योगदान का विश्लेषण करता है। उपलब्ध विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों के माध्यम से मराठा प्रशासन का विभिन्न स्तरों पर अध्ययन किया गया है। यह शोधपत्र मुख्यतः केन्द्रीय, प्रांतीय एवं स्थानीय प्रशासन पर केन्द्रित है।

महत्वपूर्ण शब्द :- शिवाजी, मराठा प्रशासन, विकेन्द्रीकरण, प्रशासनिक संरचनाएँ, अष्ट प्रधान।

परिचय - 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दक्कन के क्षेत्र में एक नये साम्राज्य की नींव रखी गयी थी। भोसले वंश के शिवाजी ने अपने प्रारंभिक संघर्ष के आधार पर 6 जून 1674 को रायगढ़ के किले में मराठा साम्राज्य की आधिकारिक शुरुआत की। मराठा प्रशासन का आधार चाणक्य की प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था व्यवस्था थी। शिवाजी के मराठा प्रशासन में मुगल-दक्कनी प्रशासनिक संरचनाओं का भी समन्वय था। छत्रपति शिवाजी महाराज की शासन प्रणाली सुव्यवस्थित एवं न्यायपूर्ण थी। उनकी प्रशासनिक प्रणाली के मुख्य तत्त्व विकेन्द्रीकरण, किसानों एवं प्रजा का कल्याण एवं सैन्य शक्ति का सुदृढ़ीकरण थे। 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर 19वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों तक के दक्कन के इतिहास में मराठा साम्राज्य के प्रशासन का अति महत्वपूर्ण योगदान है।

- **केन्द्रीय प्रशासन** :- छत्रपति शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा साम्राज्य के प्रशासन का केन्द्र बिन्दु राजा या शासक था। जिसके पास सैन्य एवं न्यायिक मामलों से सम्बन्धित निर्णय लेने को सर्वोच्च शक्ति थी। राजा या शासक की सहायता के लिए केन्द्रीय मंत्रिपरिषद के रूप में अष्ट प्रधान के गठन का प्रावधान किया गया था।
- **अष्ट प्रधान** :- शिवाजी द्वारा प्रारम्भ में अष्ट प्रधान नामक मंत्रिपरिषद का गठन किया जिसमें आठ मंत्री होते थे। अष्ट प्रधान परिषद, मराठा प्रशासन का मुख्य आधार थी। यह आठ मंत्री केन्द्रीय प्रशासन के विभिन्न विभागों की अध्यक्षता करते थे जैसे कि वर्तमान में केन्द्रीय मंत्रिपरिषद के कैबिनेट मंत्री विभिन्न विभागों की अध्यक्षता करते हैं। यह अष्ट प्रधानों का विवरण निम्नलिखित है :-
- **पेशवा** :- यह मराठा साम्राज्य के प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारी होता था। जिनका मुख्य काम प्रजा एवं सैन्य सम्बन्धी मामलों के लिए राजा को सलाह देना होता था। पेशवा समस्त प्रशासन के निरीक्षण के लिए जिम्मेदार होता था। इस पद पर नियुक्त होने वाला व्यक्ति मराठा साम्राज्य के प्रति राजभक्ति एवं राजा के प्रति स्वामीभक्ति की भावना रखता था।
- **अमात्य** :- यह केन्द्रीय प्रशासन या मराठा साम्राज्य का वित्त मंत्री होता था। इसे अमात्य के साथ-साथ मजूमदार भी कहा जाता था।
- **बाकियनवीस (मंत्री)** :- यह राज्य की दैनिक गतिविधियों की देखरेख एवं दरबार के प्रतिदिन की कार्यवाही को लिपिबद्ध करता था। यह राजा की सुरक्षा एवं जासूसी विभाग का प्रभार भी देखता था।
- **सचिव (शुरु-नवीस)** :- यह सभी महत्वपूर्ण निर्णयों, राजकीय पत्राचार का रिकार्ड रखने का काम करता था। यह परगनों की आमदनी का हिसाब भी रखता था।
- **सुमन्त (दबीर)** :- यह राज्य का विदेश मंत्री होता था। यह राजनयिक सम्बन्धों का प्रमुख था जिस प्रकार मुगल प्रशासन में दबीर नामक अधिकारी होता था। यह युद्ध एवं संधि के विषय पर राजा को सलाह देता था।
- **पण्डितराव** : यह धार्मिक कार्यों जैसे दान, अनुष्ठानों का संचालक करता था। धार्मिक संस्थाओं का प्रबन्धक भी था।
- **सेनापति (सर-ए-नौबत)** : सेनापति सेना का नेतृत्व, युद्ध नीति, सैनिकों की भर्ती एवं प्रशिक्षण, रसद सामग्री आदि कार्य देखता था। लूट में प्राप्त हुए धन का प्रबन्धन भी करता था।
- **न्यायाधीश** : न्यायिक एवं कानूनी मामलों का प्रमुख। यह हिन्दू धर्मशास्त्रों एवं न्यायशास्त्रों के अनुसार न्यायिक निर्णय करता था।

यह परिषद सलाहकार के रूप में कार्य करती थी। इसकी सलाहों को मानने के लिए शिवाजी एवं अन्य शासक बाध्य नहीं थे। इनका चयन योग्यता आधारित होता था। इनको वेतन नकद रूप में दिया जाता था।

प्रांतीय प्रशासन: मराठा प्रशासन की शब्दावली में प्रान्तों को सूबा कहा जाता था। प्रान्तों के प्रमुख सूबेदार कहलाते थे। प्रांत या सूबा दो प्रकार के होते थे। पहले, जो प्रत्यक्ष रूप से शिवाजी या अन्य शासक के प्रत्यक्ष नियंत्रण में होते थे, स्वराज्य के अंतर्गत आते थे। दूसरे, वह प्रांत जिनसे कर के रूप में चौथ एवं सरदेशमुखी नामक कर लिया जाता था। ये मराठा साम्राज्य के अधीन या संधि-समझौतों के आधार पर नियंत्रण में होते थे। स्वराज्य चार प्रांतों में विभाजित थे जो कि इस प्रकार हैं:-

1. उत्तरी प्रांत, सल्हेर से पूना तक।
2. दक्षिणी प्रांत, कनारा तक विस्तृत।
3. दक्षिण पूर्वी प्रांत, सतारा से धारवाड़ तक।
4. नवविजित क्षेत्र जिनका केन्द्र जिंजी था।

प्रांतीय प्रशासन के प्रमुख अधिकारी निम्नलिखित हैं:-

1. सूबेदार: प्रांत का प्रमुख।
2. हवलदार: तहसील का प्रमुख होता था।
3. देशपाण्डे : परगनों का प्रमुख।

देशमुख, देशपाण्डे, पाटिल एवं कुलकर्णी नामक वंशानुगत अधिकारी मराठा साम्राज्य के प्रांतीय स्तर से लेकर ग्रामीण स्तर तक राजस्व प्रशासन का कार्य देखते थे।

ग्रामीण प्रशासन:- ग्रामीण स्तर पर मुख्य अधिकारी पाटिल होता था जो भू-राजस्व, न्यायिक एवं अन्य प्रशासनिक कार्य देखता था। पाटिल के अंतर्गत कुलकर्णी गांव की भूमि का लेखा रखता था। इनके अतिरिक्त ग्राम पंचायत में बारहबलूते होते थे जो कि गांव में विभिन्न पेशेवर व्यवसाय करने के लिए वंशानुगत कारीगर होते थे। मीरासदार नामक वंशानुगत जमींदार शिवाजी के कठोर नियंत्रण में थे।

मराठा प्रशासन के मुख्य तत्त्व:- शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा साम्राज्य के प्रशासन में राजा को सर्वोच्च स्थान दिया गया। अष्टप्रधान की नियुक्ति एवं पदच्युति का अधिकार राजा के पास था। छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपनी प्रजा के लिए सामाजिक न्याय एवं समानता के अधिकार की व्यवस्था की थी। मराठा प्रशासन सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु था। प्रशासन में मुस्लिम अधिकारियों की नियुक्ति भी की जाती थी। मराठा साम्राज्य में प्रारंभ से ही किसानों एवं उनके हितों को हमेशा प्राथमिकता दी गयी। राज्य में अकाल के समय पर कम ब्याज पर ऋण, उत्तम कोटि के बीज, बैल एवं कृषि उपकरणों की व्यवस्था की जाती थी। शिवाजी अपने अधिकारियों एवं प्रजा से नियमित प्रत्यक्ष संवाद करते थे। राज्य में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कड़े दण्ड के प्रावधान थे। मराठा प्रशासन शिवाजी के काल में कुशलता, दूरदर्शिता, एवं जनहितकारी दृष्टिकोण पर आधारित था।

निष्कर्ष:- मराठा प्रशासन में छत्रपति शिवाजी महाराज की कुशल नीतियों, प्रशासनिक सुधार एवं संगठित दृष्टिकोण आदि आधार का काम करते थे। मराठा प्रशासन में केन्द्रीकरण के साथ-साथ विकेन्द्रीकरण पर भी ध्यान दिया गया था। जिसके आधार पर विशाल मराठा साम्राज्य का निर्माण हुआ। शिवाजी की प्रशासनिक प्रणाली मुगल-दक्कनी प्रशासनिक प्रणालियों पर भी आधारित थी और विभिन्न स्तरों पर समान प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। मराठा प्रशासन के मुख्य लक्षण वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था में भी परिलक्षित होते हैं। जैसे- सामाजिक न्याय, समानता का अधिकार एवं शासन-प्रशासन में केन्द्रीकरण- विकेन्द्रीकरण का मिश्रित रूप आदि। यह शोध पत्र मराठा प्रशासन के आधारभूत तत्वों को दीर्घकालिक रूप में समझने के लिए सहायक सिद्ध होगा। इस शोध पत्र के आधार पर वर्तमान शासन व्यवस्था के स्वरूप का भी विश्लेषण किया जा सकता है।

संदर्भ (REFERENCES)

1. कुलकर्णी, ए.आर., (1993). शिवाजी के युग में महाराष्ट्र। देशमुख पब्लिकेशन्स।
2. सरदेसाई, जी.एस., (1948). ए हिस्ट्री ऑफ द मराठाज, फीनिक्स पब्लिकेशन्स।
3. रानाडे, महादेव गोविंद, (1900). मराठा साम्राज्य का उदय, मैकमिलन।
4. जोशी, वी.डी., (1970). ग्रामीण क्षेत्रों में मराठा शासन की आर्थिक उपलब्धियां, वर्ल्ड प्रेस।
5. मजूमदार, आर.सी., (2001). द मराठा सुप्रिमेसी, बोल्यूम न. 8।
6. सरकार, जदुनाथ, (1919), शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स।
7. खेर, बी.जी., (1973). मराठा प्रशासन और सामाजिक व्यवस्था। यूनिवर्सल पब्लिशर्स।

भारत में संसदीय शासन की आवश्यकता एवं महत्व: एक अध्ययन

डॉ० जोनी इम्मानुएल तिरकी

(अतिथि शिक्षक) राजनीति विज्ञान विभाग, बी० एम० ए० कॉलेज, बहेड़ी, दरभंगा (बिहार)

भारत में आजादी के बाद संसदीय शासन को अपनाया गया है। इसके साथ ही संघात्मक शासन को अपनाया गया है। संघात्मक शासन का आदर्श रूप संयुक्त राज्य अमेरिका है। ऐसी स्थिति में सवाल उठता है कि भारत में अमेरिका के समान संघात्मक शासन के साथ अध्यक्षतात्मक शासन को क्यों नहीं अपनाया गया है। यह सवाल भारत के सन्दर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसको अपनाने के पीछे जो कारण रहे हैं, उनमें एक यह है कि भारत ब्रिटेन के अधीन रहते हुए संसदीय मूल्यों और परिपाटियों से अवगत हो गया था। लेकिन यदि यही कारण अपनाने का होता तो संसद के उच्च सदन अर्थात् 'राज्य सभा' के गठन में उसका अनुसरण क्यों नहीं किया गया। साथ ही उसके एकात्मक शासन को क्यों नहीं अपनाया गया। वरन उसके स्थान पर संघात्मक शासन को अपनाया है। उसी तरह अध्यक्षतात्मक शासन के स्थान पर संसदीय शासन को अपनाया गया। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर तलासने की ललक ने इस विषय पर एक शोध कार्य करने और लिखने की आवश्यकता हुई।

गठबंधन सरकार के दौर में (1989-2025) भारत में अधिकांश सरकारें अस्थिर रहीं जिसकी वजह से देश में राजनीतिक स्थिरता के लिए अध्यक्षतात्मक शासन की मांग जोड़ पकड़ने लगी, लेकिन अंतिम रूप नहीं ले सकी। मांग उठने के पीछे प्रमुख कारण राजनीतिक अस्थिरता से निपटने के साथ, निर्णय प्रक्रिया को तेज करना था, जिससे प्रगति के नए मानदंड द्रुत गति से स्थापित किये जा सकें। परन्तु इसको अपनाने में कई समस्याएं थी। उन सबमें यह प्रमुख था कि देश में पाई जाने वाली विविधता को राष्ट्रीय स्तर पर किस प्रकार से एक सूत्र में पिरोया जा सकेगा। चूंकि भारत के लिए जितना महत्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया को सुगम बनाना, जो एक स्थिर अध्यक्षतात्मक शासन में बेहतर हो सकता है। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है देश में विविधता को एक सूत्र में पिरोकर राष्ट्र निर्माण को प्रोत्साहित करना। क्योंकि आजादी के साथ ही भारत दुखद विभाजन के अनुभूति के साथ देशी रियासतों के विलयन की चुनौतियों से भी जूझ चुका था। यही नहीं देश के कई हिस्सों में आज भी अलगाववादी सक्रिय है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि इस तरह की विघटनात्मक प्रवृत्तियों का निराकरण कर विविध हितों को देश की संघीय सरकार में भागीदारी सुनिश्चित कर राष्ट्र राज्य को उत्तरोत्तर मजबूती प्रदान की जाए। प्रस्तुत आलेख में इन्हीं आवश्यकताओं और जरूरतों के सन्दर्भ में संसदीय शासन का अध्ययन किया जा रहा है।

संसदीय शासन की आवश्यकता एवं महत्व:

भारत एक ऐसा देश है, जहां विविधतायें अत्यधिक हैं। ये विविधतायें जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आधारित हैं। यही नहीं इसके साथ ही साथ प्रजातीय विविधता भी पाई जाती है। ये विविधताएं हितों के स्तर पर भी भिन्नता को प्रकट करती हुई दिखाई देती हैं। भौगोलिक संरचना में विविधता भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जिसके आधार पर देश की आजादी के बाद कई प्रदेशों का गठन किया गया है। इस विविधता की प्रकृति अत्यंत जटिल और उलझी हुई भी है। क्योंकि एक ही भाषा के लोग कई धर्म के मानने वाले हैं, जैसे उत्तर भारत में लगभग सभी धर्म के लोग हिन्दी बोलते हुए मिलते हैं। जबकि एक ही धर्म के लोग अलग-अलग भाषा के समूह में विभाजित दिखाई देते हैं, जैसे दक्षिण भारत के हिन्दू विभिन्न भाषाओं को बोलते हुए देखे जा सकते हैं। यही नहीं, भारत में बहुसंख्यक हिन्दू किसी प्रदेश में अल्पसंख्यक के रूप में हैं। इसके साथ भौगोलिक संरचना में भिन्नता बड़े पैमाने पर भारत में सांस्कृतिक भिन्नता को प्रकट करती है। इसके आगे सामाजिक संरचना के स्तर पर जब हम देखते हैं, तो पाते हैं कि परम्परागत भारतीय समाज में समाज के विभिन्न पक्षों में जो भिन्नता दिखाई देती है वह संविधान निर्माताओं के लिए एक बड़ी चुनौती रही है। यही कारण है कि भारतीय समाज में संसाधनों के वितरण के स्तर पर असमानता ने सामाजिक संबंधों में स्तरीकृत पिरामिड को जन्म दिया, जिसने समाज के एक बड़े भाग को कठोर अमानवीय स्थिति में पहुँचा दिया। वह अमानवीय स्थिति थी अस्पृश्यता। भारतीय संविधान निर्माताओं के समक्ष यह चुनौती थी कि इन जटिल विविधताओं का निराकरण किस प्रकार से किया जाए। इन्हें कैसे राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़ा जाए। साथ ही उनकी यह भी चिंता थी ये विविधतायें जो अंततः हितों की भिन्नता को प्रकट करने का आधार बनती हैं। इनके विविध हितों जो कभी-कभी विरोधी होती भी दिखाई देती हैं, की पूर्ति के साथ राष्ट्र की मुख्य धारा से कैसे जोड़ा जाए।

प्रस्तुत आलेख के इस चरण में अब सबसे पहले संसदीय शासन के महत्वपूर्ण पक्षों को स्पष्ट करना है। क्योंकि इसकी स्पष्टता से ही हम भारत के सन्दर्भ में इसकी आवश्यकता और महत्व को जान सकेंगे। शासन के दो प्रमुख अंगों व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के बीच सम्बन्ध के आधार दो प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ प्रचालन में हैं। वे दोनों हैं संसदीय शासन और अध्यक्षीय शासन प्रणाली। संसदीय शासन में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका के सदस्यों में से ही किया जाता है। साथ ही इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका के बीच भेद पाया जाता है। जबकि अध्यक्षीय शासन में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का गठन पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर किया जाता है।

कार्यपालिका की शक्ति एक व्यक्ति में ही होती है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका के बीच भेद नहीं पाया जाता है।

अब इन विशेषताओं के आधार पर हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से भारत के लिए संसदीय शासन उपयुक्त है। सबसे पहली बात तो यह कि भारत जैसे नवस्वतन्त्र राष्ट्र, जिसने आजादी की लड़ाई ही अपने स्वतंत्रता और द्रुत गति से विकास के लिए लड़ी, अभावमुक्त बन सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसे शासन प्रणाली की स्थापना की जाए जो देश की जरूरतों के अनुरूप अतिशीघ्र विधायन करते हुए उनका सफल क्रियान्वयन भी सुनिश्चित कर सके। चूंकि अध्यक्षात्मक शासन में यह संभव नहीं है क्योंकि इसमें व्यवस्थापिका और कार्यपालिका की पृथक्ता के कारण (विशेष रूप से जब दोनों में अलग-अलग दल बहुमत में हो) कार्यपालिका को असफल सिद्ध करने के लिए आवश्यक विधान को बाधित करे तथा यह भी संभव है कि व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून का क्रियान्वयन उसकी भावना के अनुरूप त्वरित गति से कार्यपालिका न करे। इस तरह की समस्या या गतिरोध की स्थिति में यह संभव है कि भारत जैसे नवस्वतंत्र लोकतंत्र अपने देश के विविध न्यायसंगत हितों का समय रहते पोषण न कर सके।

चूंकि जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं कि भारत में हितों में विविधता है। यही नहीं, इन विविध हितों में विरोध भी दिखाई देते हैं। ऐसी स्थिति में एक ऐसे शासन की जरूरत है जो इन विरोधों का निराकरण करते हुए उन्हें एक सूत्र में पिरोकर उनके हितों की पूर्ति कर सके। इसका समाधान संविधान निर्माताओं ने ढूंढ निकाला, जो संसदीय शासन ही है। इस क्रम में हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इस शासन में मंत्रिपरिषद् के गठन में ऊपर वर्णित समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। जैसा कि यह स्पष्ट कर चुके हैं कि संवैधानिक प्रावधानों की सीमा में मंत्रिपरिषद् में 82 सदस्य हो सकते हैं। इस प्रकार से मंत्रिपरिषद् के गठन में प्रधानमंत्री के पास यह संवैधानिक सुविधा संसदीय शासन से प्राप्त होती है जिससे वह देश के विविध हितों को मंत्रिपरिषद् में शामिल कर सकते हैं। देश के विविध भाषा, जाति, धर्म, क्षेत्र और लिंग को मंत्रिपरिषद् में स्थान देकर एक साथ दो महत्वपूर्ण उद्देश्यों की सिद्धि हो जाती है। एक तो विविधताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य एक तरफ अपने समूह के हितों का प्रतिनिधित्व शासन में करते हैं तो दूसरी तरफ इन विविध हितों के लिए मंत्रिपरिषद् एक साझा मंच प्रदान करती है। चूंकि मंत्रिपरिषद् सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत के आधार पर कार्य करती है। इसलिए मंत्रिपरिषद् एक इकाई में परिवर्तित हो जाती है। जिससे मंत्रिपरिषद् के सदस्य के रूप में शामिल ये विविधतायें एक माला का रूप ले लेती हैं। जिसका परिणाम होता है देश की सबसे बड़ी समस्या का निराकरण अर्थात् विविधता के साथ एकता के नए मानदंड स्थापित करते हुए दिखाई देते हैं। जिसे हम भारत के किसी भी मंत्रिपरिषद् के गठन और विस्तार में देख सकते हैं।

इस प्रकार संसदीय शासन में ही वह सामर्थ्य थी, जो भारत जैसे देश के विविधताओं को अर्थात् विविध हितों की पूर्ति करते हुए विविधता में एकता का संचार कर सके। तथा व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में घनिष्ठ सम्बन्ध से यह भी संभव है कि शासन के ये दोनों प्रमुख अंग पारस्परिक समन्वय से देश की आवश्यकता के अनुरूप विधायन और उसका सफल क्रियान्वयन सुनिश्चित कर सकें। इन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने भारत के लिए संसदीय शासन को अपनाने का निष्पत्ति किया। साथ ही देशी रियासतों के तरफ से देश प्रतिरोध का सामना कर रहा था। जिसके निराकरण के लिए सैन्य शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता हुई। इन परिस्थितियों में संविधान निर्माताओं के समक्ष एक बड़ा यक्ष प्रश्न था कि किस प्रकार से इन विविधताओं को एक सूत्र में पिरोया जाए, जिससे कि ये सभी देश के अंग के रूप में एकीकृत होकर देश की मुख्य धारा से जुड़कर उसको मजबूती देने का कार्य कर सके।

विधानमंडल परिसर के अंदर उत्पन्न सभी मुद्दों पर अंतिम निर्णय अध्यक्ष का होता है और विधायिका के प्रभावी कामकाज के लिए आवश्यक है कि सभी सदस्य अध्यक्ष के आदेश का पालन करें। सदस्यों को अध्यक्ष को एक व्यक्ति के रूप में न देखते हुए एक संस्था के रूप में देखना चाहिए जो संसद के विशेषाधिकारों एवं शक्तियों का प्रतीक है। विधायी निकायों को पर्यवेक्षण, विधि-निर्माण एवं वित्तीय जवाबदेही सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी दी गई है। इस तथ्य के आधारगत भारत में दशकों से एक कार्यशील और मजबूत संसदीय लोकतंत्र है, विधायिका में अनुशासन और शिष्टाचार बनाए रखना और महत्वपूर्ण हो गया है। यदि सदन में व्यवधान नियमित घटना बन जाए तो इससे न केवल करदाताओं के पैसे की भारी बर्बादी होती है, बल्कि हमारे संस्थानों की नकारात्मक छवि भी बनती है, जिसके चलते लोकतांत्रिक संस्थाओं में जनता का विश्वास घट सकता है। विधायिका में अनुशासन और शिष्टाचार का अभाव हमारे संसदीय लोकतंत्र के लिए अच्छा नहीं है। देश में विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों का शीर्ष निकाय अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारी सम्मेलन (एआइपीओसी) ने विधानमंडलों में प्रक्रिया और कार्य संचालन के नियमों के विकास में अहम भूमिका निभाई है। इसने रचनात्मक विमर्श और संवाद के जरिये विधानमंडलों के समक्ष समस्याओं के समाधान निकाले हैं, जिनमें अनुशासन और मर्यादा का मुद्दा भी शामिल है।

नवंबर, 2001 में हुए सम्मेलन में 'संसद और राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों के विधानमंडलों में अनुशासन और शिष्टाचार' विषय पर गहन चर्चा हुई। उसमें इस विषय पर सर्वसम्मति से एक संकल्प और आचार संहिता स्वीकार की गई। एआइपीओसी के प्रयासों के फलस्वरूप एक तदर्थ आचार समिति का गठन किया गया, जो 2015 से लोकसभा की स्थायी समिति बन गई है। इसकी सिफारिशों का सदस्यों के आचरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। संसदीय मर्यादा के अंतर्गत कुछ नियम, परिपाटियां और शिष्टाचार शामिल हैं, जिनका पालन सदस्यों को विधायी सदन में करना होता है। यह सार्थक विचार-विमर्श और निर्णय लेने हेतु अनुकूल परिवेश बनाने के लिए आवश्यक है। संसदीय शिष्टाचार के कुछ महत्वपूर्ण पहलू ऐसे हैं जिन्हें लेकर सभी पक्षों की सहमति है, जैसे अध्यक्ष पीठ के प्रति सम्मान का प्रदर्शन, अन्य सदस्यों के प्रति सम्मान का प्रदर्शन, सदन में चर्चाधीन विषयों पर संगत भाषण, सदन में अनुशासित आचरण, अन्य सदस्यों के भाषण में व्यवधान न डालना, सदन के अंदर शोर न करना तथा सदन में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था न उत्पन्न करना।

हालांकि 'सदस्य का आचरण' शब्द को पूर्ण रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। यह निर्धारित करने की शक्ति सभा के पास होती है कि क्या किसी सदस्य ने अशोभनीय व्यवहार किया है या कोई ऐसा व्यवहार किया है, जो एक संसद सदस्य के लिए अनुचित है। सभा में सदस्यों के गरिमापूर्ण और मर्यादित आचरण को सुनिश्चित करने के लिए लोकसभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों में कई प्रविधान हैं। सदस्यों का व्यवहार ऐसा होना चाहिए, जिससे संसद और उसके सदस्यों की गरिमा बढ़े। सदस्यों का आचरण संसदीय परंपराओं या उन मानकों के विपरीत न हो, जिनकी संसद सदस्यों से अपेक्षा की जाती है। संसदीय विशेषाधिकार सदस्यों को बिना किसी भय या व्यवधान के सदन में अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने में सक्षम बनाते हैं। संविधान प्रदत्त संसदीय

विशेषाधिकार अमूल्य हैं, इसलिए सदस्यों को सदन में इनका उपयोग इस प्रकार करना चाहिए, ताकि सदन के समय का सार्थक उपयोग हो और सदन के माध्यम से लोकहित के अधिकतम कार्य प्रभावी रूप से किए जा सकें।

लोकसभा अध्यक्ष को संसदीय लोकतंत्र के सिद्धांतों के अनुरूप निष्पक्ष और व्यवस्थित कार्यवाही सुनिश्चित करने तथा चर्चा के दौरान सभी प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करने के लिए व्यापक शक्तियाँ और जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं। अध्यक्ष न केवल सभा की बैठकों का संचालन करता है, बल्कि उस पर समुचित नियम, परिपाटियाँ, परंपराएँ और एक स्वस्थ संसदीय संस्कृति विकसित करने की जिम्मेदारी भी होती है। उसके व्यापक उत्तरदायित्वों को देखते हुए लोकसभा द्वारा अध्यक्ष को नियमों के अंतर्गत अनुशासनात्मक शक्तियाँ भी प्रदान की गई हैं, ताकि संसद जनता के हित में अपने संवैधानिक अधिदेश को पूरा करने में सक्षम हो सके।

सदन में अनुशासन और मर्यादा बनाए रखना अध्यक्ष का एक महत्वपूर्ण दायित्व है। इसके लिए उसे नियमों और परंपराओं के तहत पर्याप्त अधिकार प्रदान किए गए हैं। जब कोई सदस्य अनुचित या अपमानजनक टिप्पणी करता है तो अध्यक्ष हस्तक्षेप कर सकता है और सदस्य से उस टिप्पणी को वापस लेने के लिए कह सकता है या वाद-विवाद के दौरान प्रयुक्त किए गए किन्हीं अपमानजनक या अभद्र शब्दों को हटाने का आदेश दे सकता है। अध्यक्ष अनुचित आचरण करने वाले किसी सदस्य को सदन से बाहर जाने का आदेश भी दे सकता है और यदि सदस्य अध्यक्षपीठ की अवहेलना करता है और सभा की कार्यवाही में लगातार व्यवधान उत्पन्न करके घोर अव्यवस्था उत्पन्न करता है तो अध्यक्ष किसी सदस्य को निलंबित भी कर सकता है। सदन की प्रतिष्ठा और गरिमा को बढ़ाने के लिए जरूरी है कि सदस्य अध्यक्ष पीठ के निर्देशों का अनुसरण करें। आसन पर बैठने के पश्चात अध्यक्ष किसी दल विशेष या विचारधारा विशेष का नहीं होता, बल्कि संसदीय लोकतंत्र का निष्पक्ष प्रहरी होता है। संसदीय संस्थाओं की उच्च मर्यादा को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि सदस्य किसी भी परिस्थिति में अध्यक्ष के प्राधिकार पर प्रश्न न उठाएं और उसके निर्देश की अवहेलना न करें।

विधानमंडल परिसर के अंदर उत्पन्न सभी मुद्दों पर अंतिम निर्णय अध्यक्ष का होता है और विधायिका के प्रभावी कामकाज के लिए आवश्यक है कि सभी सदस्य अध्यक्ष के आदेश का पालन करें। सदस्यों को अध्यक्ष को एक व्यक्ति के रूप में न देखते हुए एक संस्था के रूप में देखना चाहिए, जो संसद के विशेषाधिकारों एवं शक्तियों का प्रतीक है। सदस्यों को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि नागरिकों द्वारा संसद सदस्यों को आदर्श माना जाता है। इसलिए विधायिका के सदस्यों का आचरण गरिमापूर्ण, अनुशासित, अनुकरणीय और दोषरहित होना चाहिए। प्रत्येक जनप्रतिनिधि के लिए संविधान की भावना से संसद के सदस्यों में आचरण के उच्च मानक बनाए रखना अनिवार्य है।

निष्कर्ष

अतः उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अध्यक्षतात्मक शासन में कार्यपालिका का प्रधान एक मात्र व्यक्ति होता है, जिसके हाथ में समस्त शक्तियाँ होती हैं। अर्थात् देश के सभी हितों को शासन में भागीदार बनाना इस शासन में संभव नहीं है। इसलिए इस नवजात लोकतंत्र में यह संभव था कि किसी समुदाय की उपेक्षा हो जाती। संविधान निर्माता इस बात से बखूबी अवगत थे कि संसदीय शासन में मंत्रिपरिषद् होती है जिसमें सुविधा और आवश्यकतानुसार मंत्रियों की संख्या घटाई या बढ़ाई जा सकती है। जिसमें विविध हित समूहों को शासन में प्रतिनिधित्व संभव है। जिससे सभी समूहों को सुरक्षा की गारंटी मिल जाती है। साथ ही संसदीय शासन को अपनाने से देश में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या से काफी हद तक निपटा जा सकता था। जैसा कि हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि इसमें मंत्रिपरिषद् में सभी जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र आदि हितों को शासन में भागीदारी से उनके हितों की जहाँ एक तरफ रक्षा हो सकती है, वहीं दूसरी तरफ उनको राष्ट्र की मुख्य धारा में जुड़ने का अवसर मिलने से राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या से काफी हद तक निजात पाया जा सकता है। अभी तक के अनुभवों में हमने यह पाया है कि राष्ट्रीय स्तर पर सरकार के गठन में गठबंधन सरकार में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी के द्वारा और एकदलीय सरकार में भी कोई भी प्रधानमंत्री अपने मंत्रिमंडल के गठन में इस पक्ष की अनदेखी नहीं कर पाता है अर्थात् वह सभी जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र आदि को शासन में प्रतिनिधित्व देता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार भारत में संसदीय शासन अपनाने से जहाँ एक तरफ देश के सभी समूहों को लोकतंत्र के मूल्यों के अनुरूप शासन में भागीदारी का अवसर मिला है, साथ ही अपने हितों को पोषित करने का अवसर मिला है तो दूसरी तरफ शासन में सभी हितों के भागीदारी के अवसर के द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण को बल मिला है। सच तो यह है कि भारत जैसे विशाल देश में एकता और अखंडता के लिए संसदीय शासन ही उपयुक्त है।

संदर्भ सूची

1. कौल, एम.एन. और शकधर, एस.एल.: संसद की परिपाटी और प्रक्रिया, सातवां संस्करण, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2016
2. नारायण, योगेन्द्र: भारतीय संसद-एक परिचय, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2007
3. लोक सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियम, सोलहवां संस्करण, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2019
4. भारत का संविधान, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2016
5. राव, बी. शिवा: द फ्रेमिंग ऑफ़ इंडियाज कांस्टीट्यूशन, नई दिल्ली, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, 2018

केदार नाथ चौधरी आ श्याम दरिहरेक उपन्यासमे भाषा एवं शिल्प

मनीष कुमार

शोधार्थी, यू-जी.सी.नेट, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

डॉ० मनोज कुमार साह

शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, मैथिली विभाग, राम कृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी, बिहार

कोनो रचनाकार रचना करबासँ पूर्व ओहि रचनाक स्पष्टीकरणक लेल जाहि ढंगक सहयोग लैत छथि ओ शैली थिक। शैलीक चयन रचनाकारक निजी भेल करैत अछि। जेना मूर्तिकार कोनो मूर्तिकँ जखन गढ़ैत अछि तऽ निश्चित रूपसँ सभ कलाकारक अपन खास दृष्टि होइत छैक। वएह दृष्टि अन्य कलाकारसँ ओकरा फराक करैत छैक। ई ओकर दक्षतापर निर्भर करैत छैक। शैली अभिव्यक्तिक अपरिहार्य अंग थिक। अंगरेजीमे ‘जलसम’ शब्द एकर पर्याय थिक। डॉ० अमरेश पाठकक कहब अछि जे – “अभिव्यञ्जनाक प्रकारकँ शैली कहल जाइत अछि। मनुष्यक मनमे विभिन्न प्रकारक भावना रहैत छैक तकर अभिव्यक्तिक हेतु भाषाक प्रयोग कएल जाइत अछि। भावनाकँ भाषामे व्यक्त करबाक विभिन्न साधन अछि तथा भाषामे अभिव्यक्ति देवाक विभिन्न प्रकार साहित्यक विभिन्न रूप तथा उपन्यास, नाटक, लघुकथा, एवं कविता भाषाक माध्यमसँ भावाभिव्यक्तिक विभिन्न शैली अछि। क्रमशः एहि विभिन्न रचना प्रकारकँ विशेष सशक्त बनयबाक हेतु भिन्न-भिन्न साहित्यिक विद्यामे विभिन्न शैली आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होबए लगैत अछि।”¹

एहि तरहँ कहल जा सकैत अछि जे कोनो रचनाकारक रचनाक भावाभिव्यक्तिक छाप ओकर शैली थिक। जेना- यात्रीक रचना शैली आ हरिमोहन झाक शैलीक अन्तर स्पष्टतः परिलक्षित भऽ जाइत अछि। मुदा जखन कोनो लेखक एकहि भाषा-शैलीक प्रयोग अपन रचनाक अन्तर्गत करैत छथि तँ ओ शैली श्रेष्ठ रचनाकारक नकल बुझल जाइछ। कोनो रचना शैली आ ओकर भाषा ओहि रचनाकारक व्यक्तित्वकँ रेखांकित करैत अछि। जेना-मायानन्द मिश्रक ‘भाङक लोटा’ आ हरिमोहन झाक खट्टरककाक तरंग स्पष्टतः शैलीक एक रंगाह प्रयोग थिक। खट्टरककाक शैली हरिमोहन झाक निजी शैली थिक जकर प्रभाव ‘भाङक लोटा’ पर देखल जा सकैछ। जाहि कारणँ संग्रहीत रचनाकँ पढ़ि, कथाकार ललित एहि बातकँ स्पष्ट कएलनि जे हिनक एहि रचनापर हरिमोहन झाक शैलीक प्रभाव अछि। सभ रचनाकारक अपन-अपन खास शैली होइत छनि। तुलनात्मक अध्ययनक क्रममे जखन विवेच्य उपन्यासकार केदार नाथ चौधरीक ‘चमेली रानी’ उपन्यासक भाषा-शैलीपर नजरि दैत छी तँ एहि बातकँ देखल जाइछ जे हिनक हिनक भाषा-शैलीमे एक प्रकारक वैशिष्ट्य नुकाएल रहैछ जे पाठककँ अपनामे जोड़ि लैछ। ई भाषाक सहजता आ शैलीक चमत्कारिताक परिणाम थिक। साहित्य अध्येताक हेतु भाषाक अध्ययन आवश्यक शर्त अछि। भाषाक वैविध्यता, विभिन्न चरित्रक अनुरूप बदलैत चलैत अछि। मिथिलाक माटि-पानिमे एहि वैविध्यकँ स्पष्टतः देखल जा सकैछ। कवि चूड़ामणि मधुप जीक गीत शैली आ मैथिली पुत्र प्रदीपक गीत शैलीक भाषा स्वतः स्वतंत्र परिचय स्थापित करैछ। केदार नाथ चौधरीक ई आकर्षक भाषा-शैली मात्र चमेली रानी धरि सीमित रहल, एहन बात नहि। हिनक करार, माहुर, हीना, अयना आ अवारा नहितन आदि सभ उपन्यास एहि गुणसँ विभूषित अछि।

चमेली रानी जासूसी उपन्यासक भाषा-शैलीकँ ग्रहण कएने, मिथिलाक विभिन्न समस्यासँ अवगत करबैत अछि। जन-आन्दोलनक लेल जन-भाषा आ तदनुरूप ओकर शैलीक चयन, चमेली रानीकँ लोकप्रिय बनाएबामे अहम भूमिकाक निर्वहण कएलक। देखबाक थिक जे कोनो डकैत गिरोहक सदस्यक भाषा-शैली केहन हएबाक चाही, चौधरीजीकँ तकर चयन करैत, कोनो देरी नहि लगत छनि आ ओ मुल्लाकँ ओही भाषा-शैलीमे बजैत प्रस्तुत कएलनि अछि। दृष्टव्य थिक- “तखन की। सरपट मुसरीघराड़ी पहुँचलहुँ। अहाँक भैयाक गोर छूलऊँ। दुखड़ा कहलिध्यौ ओ भरल एक पैकेट गोली द’ विदा केलनि आ कहलनि-अर्जुन से कहना उसका भतीजा पैदा हुआ है। फुर्सत मिले तो आकर देख जाय।”²

जँ मैथिली साहित्यक संरचना शिल्पपर विचार कएल जाएत तँ उपन्यासकार लोकनिक विभिन्न भाषा-शैली आकर्षित करबामे नहि भेटत। जतय विधान्तर्गत रचना – शैलीक गप्प अछि उपन्यास विधामे एकर चमत्कार देखाएब सहज अछि।

उपन्यासमे शैलीक स्थान महत्वपूर्ण स्थान अछि। शैलीक चयन करैत काल वर्ण्य विषयक अनुसार उपन्यासकार ओकर प्रयोग करैत छथि। आ तँ वर्ण्य विषय उपयुक्त शैलीक सहयोग पाबि, स्वाभाविक ओ शाश्वत लगैछ। शैलीक एहि कलाकारिताकँ जननिहार उपन्यासकार श्रेष्ठ उपन्यास लिखि पबैत छथि। ई.एम. फॉर्स्टरक कथन अछि जे- “हमरा दृष्टिमे उपन्यास रचनाक कौशल कोनो कनिन वैज्ञानिक कठिन नियममे आबद्ध नहि कएल जा सकैत अछि ओकर प्रभावक सफलताक मापदंड तँ लेखकक द्वारा पाठककँ एहन मानसिक स्थितिमे आनब अछि जे लेखक जे किछु कहथि पाठक ओकर स्वाभाविक एवं सत्यक रूपमे ग्रहण करथि।”³

आब जँ चौधरी जीक 'करार' उपन्यासकँ एहिसँ संदर्भित कएल जाय तँ उपयुक्त कथनक सफलता स्वतः परिलक्षित होइत लागत। सम्पूर्ण उपन्यास कथात्मक शैलीमे लिखल गेल अछि। कथावस्तु। मर्त्यलोकक नहि, सूक्ष्मलोकक अछि। ई सूक्ष्म लोक कतऽ अछि ? विष्णु पुराणक अध्ययनक पश्चाते एहि लोकक सम्बंधमे जानल जा सकैत अछि। मुदा उपन्यासकार शैली आ भाषाक से चमत्कार देखोलनि अछि जे पाठक कोनो लोकक पचरामे नहि पड़ि, मात्र राजशेखर आ कन्हाइ मंडलक क्रिया-कलापमे ओझराइत चल जाइत अछि। कन्हाइ मंडलक सर्वज्ञानी बुझाइत छथि। ओ पं. राजशेखर दत्तकँ आ हुनक काजकँ परेखबामे कोनो देरी नहि करैत छथि। हुनका एहि बातक आभास छनि जे हुनक गाड़ीपर बैसल पं. राजशेखर दत्त हुनकहि माध्यम सँ अपन अभियानमे सफल हएताह। एकटा गाड़ीवानकँ त्रिकालज्ञक रूपमे प्रस्तुत करब, मात्र शैलीक कारण स्पष्ट भऽ सकल अछि। कोनो विशिष्ट अध्येता कन्हाइ मंडलक वैशिष्ट्यकँ महाभारतक वनपर्वमे 'धर्मव्याध'क रूपमे व्याख्यायित करताह तँ साधारण पाठक हुनक कथाक वितानमे आनन्दक अनुभव करताह। शैलीक एहने विशेषता उभय उपन्यासकारक उपन्यासमे सेहो देखबामे अबैछ। श्याम दरिहरेक 'घुरि आउ मान्या' विभिन्न लोकक परिभ्रमण करबैत, ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत महापुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आ गर्ग संहिता आदि धर्मग्रंथक निचोड़ उपस्थित करबामे सफल भेल अछि। उपन्यासकार एहिमे वर्णित तथ्यक वैज्ञानिकताकँ प्रमाणित करबाक कोनो प्रकारक प्रयास नहि कऽ, जीवन जगत सँ कथानक गढ़ि प्रस्तुत करैत छथि। आ पाठक हुनक एहि महाजालमे फँसैत चल जाइत अछि। उभय उपन्यासकारक भाषा-शैलीक चातुर्य देखबाक योग्य अछि। गूढ़ जीवन दर्शनसँ आप्लावित 'करार'क कन्हाइ मंडलक असाधारण व्यक्तित्वक लोक छथि। तहिना सिद्धार्थ आ मान्या 'घुरि आउ मान्या' सिद्धहस्त तपस्वी आ तपस्विनी। दुनू उपन्यासकार प्रेमतत्त्वकँ शीर्ष स्थानमे रखलनि अछि। त्यागक विचित्र कथा कहबामे सफल भेलाह अछि। कथात्मक शैलीक प्रयोग दुनू उपन्यासकँ विशिष्ट बनबैत अछि। जतय श्याम दरिहरे अपन कल्पना शक्तिसँ प्रेमक अद्भुत समझदारी देखौलनि अछि आ सांसारिक प्रेमकँ आध्यात्मिकतासँ जोड़बामे सफल भेलाह अछि, ओतहि कंदार नाथ चौधरी सेहो सांसारिक प्रेमक उदात्तताकँ श्वेता आ गोवर्द्धनक प्रेममे आध्यात्मिकताक संग स्पष्ट करैत छथि। सौम्या, सिद्धार्थसँ प्रेम करैत छथि। प्रेमक ई बीज सिद्धार्थक धर्मपत्नीक द्वारा रोपल गेल अछि। मृत्युसंज्ञापर सूतल हुनक धर्मपत्नीक ई अंतिम इच्छा रहनि जे हुनक मृत्यु-परान्त, सिद्धार्थ, सौम्याकँ पत्नीक रूपमे स्वीकार करय। कारण, ओकर स्वभावक अनुकूल मात्र सौम्या एकर अधिकारी अछि। मुदा स्वामी सिद्धार्थ पत्नीक वचनक अनुपालन नहि कऽ, आध्यात्मिक पथपर बढ़बाक लेल संकल्पित देखाइत छथि। द्रष्टव्य थिक- "हम कहलहुँ ने जे मन पर नियंत्रण करब अति श्रमसाध्य छैक। गीतामे अर्जुन सेहो 'चंचल' हि मनः कृष्ण कहिकऽ एहि कार्यक गुरुता प्रकट कएने छथिन। तखन, भगवान श्रीकृष्ण सेहो एहि लेल जे उपचार कहलखिन से यैह जे 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृहयते।' हम ताही प्रक्रियामे छी। ई कोनो गलती नहि कहलएक अहाँ सौम्या जे हम संघर्ष कऽ रहल छी। हम ओहि परम अवस्था धरि नहि पहुँचल छी तकार माने ई कथमपि नहि जे हम अभ्यास करब छोड़ि दी। हम संघर्ष तेज करए लेल एक साल घूमैत रहलहुँ। आइ तकरे परिणाम छैक अहाँ सनक रूपवती कन्याक समर्पण अस्वीकार करबाक बल भेटल अछि।"⁴

बहिरंगसँ अंतरंगमे प्रवेश करबाक ई क्रम औपन्यासिक एक परिस्थितिसँ दोसर परिस्थितिमे प्रवेश लेबाक स्वाभाविक प्रक्रिया थिक। आ इएह स्वाभाविक बदलाव उपन्यासकँ रोचक बनौलक अछि। एहि उपन्यासक आरम्भ सामाजिक जीवनक घटना-परिघटनासँ गुजरैत, सौम्याक अभीष्ट प्राप्तिक दिशामे अग्रसर होइत अछि। जखन कि वर्णनात्मक शैलीमे रचल गेल कंदार नाथ चौधरीक उपन्यास 'चमेली रानी' कीर्तमुखक पारिवारिक वर्णनसँ प्रारम्भ, राजनीतिक गतिविधिक सूक्ष्म अवलोकन करबैत राजनीतिक कदाचारक भंडाफोड़ करैत अछि। ओना एकर पृष्ठभूमि डकैतीक अछि, मुदा ई ओकरा बहिरंग रूप थिक। असली रूप राजनीतिक भ्रष्टाचारकँ पाठकक समक्ष आनब, लेखकीय उद्देश्य, भाषा-शैलीक कारण सफल भेल अछि। 'उत्तम शैली निषेधात्मक उपलब्धि नहि अछि, एहन उपलब्धि जाहिमे सफलता दोषक अभावपर आश्रित होअए विश्वविख्यात उपन्यासकार हाडीक शैलीक विवेचना करैत एक आलोचकक कथन छैन्ह जे ओ उपन्यास लिखबाक कार्य तेना मनोयोग पूर्वक करैत छथि जेना एक वृद्ध व्यक्ति घूरक लगमे बैसि कथा सुनबैत होथि- "अपन प्रतिपाद्य विषयमे तेना निमग्न भए जे ओ नीक जकाँ कहि रहल छथि अथवा नहि ताहि विचारसँ सर्वथा अनभिज्ञ।"⁵

कंदार नाथ चौधरीक 'करार' कथात्मक शैलीमे लिखाएल अद्भुत उपन्यास थिक। जँ शैली अभिव्यक्तिक माध्यम थिक तँ उपन्यासकार खिस्साकँ एकर माध्यम बनौलनि अछि। पं. राजशेखर दत्त बाढ़िक भयंकरताकँ नँघैत जाहि ठाम आश्रय लैत छथि, ओ दू गोटा विद्यार्थी किरायापर रहि रहल छथि। बाढ़िक पानि धीरे-धीरे बढ़ि रहल छल। रातुक भयंकरताकँ निरीक्षण करैत रहबाक आवश्यकता छैक। जागरणक लेल खिस्सा सूनब सबसँ नीक साधन छैक। दुनू छात्रक आग्रहपर राजशेखर दत्त अपनहि जीवनक कथा कहब आरम्भ करैत छथि। कथा मनलगू अछि। कारण कथामे सुन्नरि कन्याक प्रकट हएब आ पुनः विलीन भऽ जाएब, जिज्ञासाकँ जन्म देते छैक। आ जिज्ञासा कथाकँ मनगर बनबैत अछि। उपन्यासकार एही कारणसँ एकर शैली कथात्मक आ भाषा खिस्करक रखलनि। एकर भाषा, कथ्य, विश्लेषणकँ ताही कारणेँ सराहल गेल। हिनक एहि उपन्यासक भाषा-शैली मिथिलाक आम जीवनमे धर्म-दर्शन केर गूढ़तम रहस्यकँ एतेक सरल-सहज ढंगमे प्रस्तुत कऽ देबामे सक्षम अछि जे टायर गाड़ीक बहलमान धरि सही ढंगसँ पहुँच जाइत अछि। स्थानीयताकँ जोड़बामे हिनक भाषा अति संवेदनशील अछि। उलपीक समाजक अनुरूप ओकर भाषाक प्रयोग एहिठाम भेल अछि- "हम एक बर्खक रही तखने हमर माय मरि गेली। बाप दोसर सम्बन्ध कऽ लेलनि आ सतमाय जरे हुनके गाम जा कऽ रहऽ लगलथिन। फेरो घुमि कऽ कहिओ ने एलथिन। हमर पालब-पोसब सभ किछु केलनि हमर बाबा। जखन हम जवान भेलियै तऽ हमर बाबाकँ हमर विआहक चिन्ता भेलनि। ओ हमरा गुरुजी के पास लऽ गेला आ हमर बिआह दऽ गुरुजी सँ पुछलनि। गुरुजी कहलथिन - घबराइक कोनो बात नै छै। उलपीक बिआह प्रीतमक साथ होतै। प्रीतम एकरा भँमराक रस्ते मे नावे पर भेटतै। प्रीतम उलपीकँ देखितहि एकरा पर मोहित भऽ जेतै आ एकरा संगे विआह कऽ अही ठाम रहि जेतै। आब गुरुजीक बात झूठ तऽ नइ होतै।"⁶

उपन्यासक भाषा एकदम गंवइ आ शैली कथात्मक अछि। आगूक अंशमे - भजलियै, जरलाहा जवानी, सरधुआ आदि शब्दावली एहि कथ्यक पुष्टि दैत अछि। शैलीक कथात्मकता अनवरत बनल अछि। राजशेखर दत्त जखन ओहि स्थानकँ देखैत छथि जाहि ठाम बाढ़िसँ बचबाक लेल शरण भेटल छल तँ ओहू ठामक वर्णन कोनो खिस्करक खिस्सा कहैत काल जे बान्ह-छेक कएल जाइत छैक, ताहिमे कोनो कमी नहि छैक। देखल जाय- "दू तीन बीघाक प्लाँटा कट्ठा दू कट्ठाक टुकड़ी। प्लाँटिंग कएल। ईटाक छहर दिवालीसँ घेरल। कोनो प्लाँटमे नींव पड़ल, कोनो-कोनोमे लिंटर तक बनल घर। बेसी खालिए, मुदा एहि प्लाँटमे पूरा दू मंजिला भवन बनि कऽ तैयार छल। हरेकृष्ण ताँती एक्सक्यूटिभ इन्जीनियर अपन पिता सीताराम ताँती लेल मकान बनबौने छलाह।"⁷ एही

अनुरूप सम्पूर्ण उपन्यास कथात्मकता अंगेजने अछि। ओतहि श्याम दरिहरेक उपन्यास 'हमर जनम किए भेलै हो रामा' विभिन्न शैलीकँ अपन उपन्यासमे स्थान देलनि अछि। हिनक उपन्यासमे वर्णनात्मक शैलीमे, कतौ मनोविश्लेषणात्मक शैलीमे आ कतौ आत्म कथात्मक प्रयुक्त कएल गेल अछि। जाहिसँ उपन्यासमे विश्वसनीयताक वृद्धि भेल अछि। एहि प्रकारक प्रयोग यात्रीजीक उपन्यास 'पारो'मे सेहो देखल जा सकैछ। जाहि ठाम संगीता, सूरजकँ अपन अतीतक कथा कहैत छैक, ओहि ठाम जँ वर्णात्मक शैलीक प्रयोग नहि कएल जाएतैक तँ कथामे ओतेक विश्वसनीयता नहि अबितैक जे देखाइत अछि। ओना एहि ठाम आत्मकथात्मक शैलीक प्रयोग सेहो उपयुक्त भऽ सकैत छल मुदा द्विरुक्ति दोषसँ बचावाक लेल उपन्यासकार ओहि शैलीकँ उपयोगमे नहि अनलनि। कारण ओकर जीवन-कथा फलैश बैकमे कहल जा चुकल छल। शैली व्यक्तिक संस्कार, परिवेश, संचित ज्ञान, प्रवृत्ति आदिपर प्रभाव छोड़ैत अछि। ओ सुसंस्कृतिक द्योतक थिक। जाहि अंतर्गत संस्कार पल्लवित होइत अछि। एही कारणेँ शैलीक उचित प्रयोग आवश्यक प्रतीत होइछ। एक शैलीसँ दोसर शैलीमे परिवर्तन वर्णनाकूल कएल जाइछ। केदार नाथ चौधरीक उपन्यास आकि श्याम दरिहरेक उपन्यास शैलीक एहि वैशिष्ट्यकँ जनैत प्रयुक्त भेल अछि। वर्णनात्मक शैलीमे सांगो पांग वर्णन करय पड़त छैक। जेना कि श्याम दरिहरे उग्रवादी लोकनिक जीवन शैली, आहार-बिहार, चारित्रिक असंतुलन आदिक सांगोपांग वर्णन कए, संगीताक निश्छल आ ओजपूर्ण जीवनक आभासकँ वर्णनक क्रममे निखार कऽ सकलाह अछि। एक गोठ एहन नारी, जे सुनारि अछि आ चरित्रसँ सुदृढ़ रहैत बेर-बेर बलात्कारक शिकार भेल अछि। ओ परिस्थितिबश नक्सली गुटमे सम्मिलित अछि। मुदा ओकर प्रेम-तत्व समाप्त नहि भेल छैक। जखन कि माओवादीक लक्षण प्रथमतः प्रेम आ अनुरागक दुश्मनीसँ आरम्भ होइत अछि। चट्टान सन कुलिश हृदय रखनिहार माओवादीक चारित्रिक पतनकँ वर्णन करबामे दरिहरे पूर्णतः सफल भेलाह अछि। ठीक ओही प्रकारसँ केदार नाथ चौधरी आत्मकथात्मक शैलीक प्रयोग कऽ स्वेता आ राजशेखर दत्तक तेरह वर्षक निरन्तर जन्म लेबाक कथाकँ मनोरंजक प्रस्तुति दऽ सकलाह अछि। भाषाक प्रभाव मौखिक व लिखित दुनू तरहेँ एक रंगाहे होइछ। कारण शब्द-सम्पक्ष, लोकोक्ति आदिसँ युक्त भाषा जँ अति ग्राह्य होइछ, तऽ एकर कारण भाषाक साधारणीकरण अछि। भाषाकक प्रयोग ओतवहि स्तर धरि सम्भव आ हितसाधक होइत अछि, जतवा धरि ओकर अस्तित्वपर खतरा नहि अबैत छैक। कारण देखाउँसमे कोनो रचनाकारक नकल करब अनुकरणीय नहि। रचनाकारक भाषा समाजक बीचक भाषा थिक। एकरा जँ ध्यानमे नहि राखल जाएत, तँ पाठककँ अरुचिकर लगतैक। परिणामतः रचनाकार विशेषकर पढ़बोक इच्छा रखनिहार सँ दूर भऽ जेताह। हमर उभय रचनाकारक औपन्यासिक भाषा सर्वथा उपन्यासक शैलीक अनुकूल छनि। ओ लोकानि जाहि स्तरक भाषा आ शैलीक उपयोग कएलनि अछि, हुनका लोकनिक अभिप्रेतकँ पूर्ण कएलक अछि। दुनू रचनाकारक दृष्टि उपन्यासकँ लोकप्रिय बनबाक दृष्टि छनि। भाषाक श्रेष्ठताक ध्यान अनवरत रखबाक थिक। जँ भाषाक संग संयम नहि बर्तल जाय तँ ओहिसँ रचनाकारक व्यक्तित्व-क्षरण हएबाक सम्भावना बनैत छैक। जेना केदार नाथ चौधरीक 'चमेली रानी'मे कतौ-कतौ आमजनक लेल मशाला भरबाक उपक्रममे भाषाकँ संयमित नहि राखि सकलाह अछि। भाषा मात्र मनोगत भावक प्रेषणक यात्रिक साधन नहि थिक। ओ शालीनताक कसौटी सेहो थिक। दरिहरेक उपन्यासमे केदार नाथ चौधरीक भाषा-शैलीक जँ तुलना कएल जाय तँ ई अन्तर स्वतः दृष्टिगोचर हएत। एकर कारण स्पष्ट अछि जे केदार नाथ चौधरी जनसामान्यक चरित्रसँ परिचित भऽ उपन्यासक मात्र लोकप्रियता देखलनि, तँ श्याम दरिहरे ओहि शर्तपर कोन प्रकारक वैचारिक क्षरणसँ बचैत चलैत छथि। ओना केदार नाथ चौधरीक सभ उपन्यास लोकप्रिय भेल आ भाषा-शैलीक एहि प्रकारक प्रयोग जे चमेली रानीमे कएल गेल, अन्य उपन्यासमे नहि। तँ की अन्य उपन्यास लोकप्रियताकँ नहि पौलक? 'हीना' आकि 'अवारा नहितन' एकर प्रमाण अछि। 'अवारा नहितन'क भाषा-शैली कतेक सहज आ सुन्दर अछि। ओहिना 'हीना'क भाषा शैली कथक अनुकूल विलक्षण भेल अछि।

श्याम दरिहरे जखन दीपा नामक एकटा उग्रवादी युवतीक वर्णन करैत, ओकर क्रिया-कलापकँ व्याख्यायित करैत छथि, तँ पाठकक मस्तिष्कमे ओकर कठोर हृदयक नारी-चरित्र पाठकक समक्ष नाचय लगैछ। कोनो व्यक्तिक पेट चीड़ब, ओकर हाथ-पएर काटब, आँखि निकालब आदि दीपाक पसिनक कार्य, एकटा उग्रवादीक कठोरताक स्वतः प्रमाण दऽ दैछ। एहन वर्णात्मक शैलीक प्रयोग उपन्यासमे कऽ ओ पाठककँ रोमांचसँ भरि दैत छथि आ केदार नाथ चौधरी हीनाक प्रतीक्षाकुल जिनगीक वर्णनमे स्वामी शिवध कुमारक संगीतक व्यथित भावनाकँ मानवीय संवेदनाकँ तरंगायित कए, ओकर विपरीत सामाजिक सरोकारक स्थापना करैत छथि। उद्भय उपन्यासकारक वैचारिक कलाकारिता शैलीक अद्भुत चयनसँ अपन बात कहबामे पूर्णतः सफल भेलाह अछि।

जखन 'हीना' उपन्यासमे केदार नाथ चौधरी विभिन्न शैलीक 'कोलाज' सँ उपन्यासक पठनीयताकँ सुरुचिपूर्ण बनबैत छथि, तँ श्याम दरिहर वैचारिकताकँ स्पष्ट करबामे एहि प्रकारक प्रयोग 'हमर जनम किए भेलै हो रामा' उपन्यासक अन्तर्गत करैत देखल जाइत छथि। 'हीना'मे एक गोठ चरित्र अछि कोबीक। कोबी, मनुक्खक नाम थिकैक। जाहि ठाम ओ कोबीक सम्पूर्ण परिचय दिअ चाहैत छथि, ओहि ठाम कथात्मक शैलीक, प्रयोग काफी मनोरंजन पाठककँ दिएबामे सफल भेलाह अछि। आ जखन गाममे नाटकक गप्प आगू बढ़ैत अछि आ ओहिमे कोबी भूमिकाक प्रसंग कहैत छथि तँ हुनक संवाद शैलीमे भेल वार्ता मात्र भाषा-आन्दोलनक बात नहि रहि जाइए, ओहि स्थलपर ओ पाठकक लेल मनोरंजक भाषासँ हुनक उपन्यास-पाठकक अभिरुचि सेहो जगबैत चलैत छथि। साधुपुरामे गाममे हलचल छै- जे छोड़ा सभ नाटक खेलाएत। सभक कान ठाढ़ छैक आ मोनमे गुदघुदी। गंगा, पार्टीक छोड़ा सभ संग गाछीक कतबहिमे अखाड़ा लग नाटकक तैयारीक गप्प-सप्प कऽ रहल अछि। आ ओहि गप्पमे जे बात छनि कए आबि रहल छैक, ओ पाठकक मनोरंजनक पर्याप्त मसाला दए रहल छैक। 'बचकुन रिपोर्ट दऽ रहल छल- नाटकक स्टेज तैयार भऽ गेल। जतबा समाद पठौलिये तइ सँ बसिए पर्दा पठा देलकए। कहू तऽ अपन सभक नाटकमे जंगल-सीनक कोन काज? खैर कोनो चिन्ता नहि, पेमेन्ट किछु बेसी करऽ पड़तै। ड्रेसवला काजमे मुदा नीक जकाँ गड़बड़ भऽ गेलैए। कियो काज पर नीक जकाँ ध्यान दैक तखन ने? नाटकक खेल हेतै द्रोपदी चीर हरण, मुदा ड्रेस सुलताना डाकू वला आबि गेलैए। पीड़ापुरक दोकान सँ बारह गोठ मुकुट तीर-कमान आ भीमक गदा आबि चुकल अछि। कृष्णक मुकुटमे मयूर पंखक चिन्ता छल, मुदा से लागल छैक। मुकुट महक पन्नी ठाम ओदरल छै, तकरा गोंद लगा साटय पड़तैक। तलबार नहि भेटलै, मुदा ओकर म्यान भेटि गेलैए। म्यानेकँ डाँड़मे बान्हि कलाकार काज चला लैत।'⁸ समादक एहि क्रममे गामक ओहि नाटकक परिदृश्य उभरि कर समक्ष आबि जाइत अछि, जाहि ठाम मात्र नाटक खेलेबाक जोश रहे छै, होश नहि। कोनो डाइरेक्टर नहि, कोनो रिहर्सल नहि। मंच तैयार छैक आ नाटकक तिथि निर्धारित नहि भेलैक अछि। नाटकक मेकअप मेन 'चोआ आबि चुकल छैक। चोआ, कलाकार सेहो अछि। ओकर कहब छैक जे सिनेमा आ टी.भी.क युग नाटककँ देखैत छैक। ओना ओ मेहताना नहि लैत। पेट्रोमैक्स, सतरंजी, जामियाना आदिक व्यवस्था घरहिसँ भऽ जेतैक। एहि संवादकँ पूरा होइत-होइत कोबी हकमैत पहुँचौत अछि। ओकर कहब छैक जे ओकर गुरु सदानन्द झा हिन्दी नाटकक विरोधी छथि तँ नाटक मैथिलीक

हएबाक चाही। मिथिलाक उन्नतिक लेल मात्र मैथिली भाषाक नाटक खेलाइ जाइ। एहि अवसरक संवाद शैलीमे हुनक प्रस्तुति उपन्यासकँ हास्य रससँ परिपूर्ण कऽ देलक अछि। देखबाक थिक- “मैथिलीमे कोन नाटक खेल’ लेल तोहर गुरुजी कहलथुन अछि? बचकुन पुछलक।

एहि संवादमे मैथिली भाषाक प्रति चिन्ता अवश्य व्यक्त कएल गेल अछि मुदा संवाद शैली सँ व्यंग्यात्मक हुनक विचारक सेहो प्रस्फुटन भेल अछि। केदारजी मैथिली भाषाक उन्नतिक बाधक तत्वकँ हास्य-व्यंग्यमे समेटि ओहि प्रभृतिक लोकपर प्रहार कएलनि अछि। जे मैथिलीकँ जेबीक वस्तु बुझि रहल छथि। जे मैथिलीक हितसँ बेशी अपन हितक चिन्ता करैत छथि। दोसर दिस श्याम दरिहरेक लक्ष्य मार्क्सवादी-माओवादीक डिगडिगिया पीटयवलाक कुकर्म चरित्रकँ जनताक समक्ष आनब अछि। जे दीन-हीनक संग देबाक बात करैत अछि। तकरहि डींग हकैत अछि आ व्यवहारमे संगीता सन निरीह बालाक अपहरण कए, ओकर शील भंग करैत अछि। संगीताक एतवहि दोष छैक जे ओ अनाथ बाला आ सौन्दर्य सँ परिपूरित अछि। ओ चरित्रवान आ साहसी अछि। ओकर एहि अपराधक दण्ड माओवादी ओकर सम्पूर्ण परिवारकँ बन्दूक सँ छलनी कए, राता-राती ओकर अपहरण कऽ ओकर चारित्रिक उच्चताकँ माटिमे मिला अमन शक्तिशाली हेबाक उद्घोषणा करैए। उपन्यासकार दरिहरे एहि संवादमे ओहि तथाकथित आन्दोलनकारी दस्ताक खेरहा कहि, ओकर सभक नीच चरित्रकँ उजागर करबाक प्रयास करैत छथि। जकर वर्णन सँ एहि प्रकारक निम्नकोटिक मनुक्खक चित्र उभरल अछि जे जानबरो सँ बदतर लगैछ। कूटन नामक लोक जे अपनाकँ समूचा जोनक हेड कहैत अछि ओकर अधीन दस टा एरिया कमाण्डर कार्यरत छैक। जाहि बलँ ओ संगीताकँ अपन अंकशायिनी बना अपन विलासिताक परिचय स्वयं दैत अछि। उपन्यासकार ओकर चरित्रसँ निश्चित रूपसँ एहि माओवादी दलकँ एक भूखल भेड़ियाक रूपमे प्रस्तुत करबामे पूर्णतः सफल भेलाह अछि।

केदार नाथ चौधरी शैलीक प्रयोगमे प्रवीण छथि। कोन ठाम कोन शैलीक उपयोग कएल जाय, ताहिमे माहिर छथि। जाहि कारणँ उपन्यासमे रुचि भिन्नता भेला सँ पाठकक अभिरुचिमे वृद्धि होइत छैक। जतय एक दिस गगनक द्वारा मालिक बाबाकँ अपमानित कएल जाइत अछि, ओतय जँ मनोविश्लेषणात्मक शैलीक उपयोग कएल जाइत तँ उपन्यास अपन पठनीयताकँ समाप्त कऽ लितय। ओना शिल्प आ शैलीमे सूक्ष्म भेद अछि। जाहि भेदकँ बूझैत उपन्यासकार अपन रुचि सँ शिल्प आ शैलीक उपयोग कएल करैत छथि। हिन्दी उपन्यासकार जैनेन्द्र कहैत छथि जे- “शिल्प बात कहबाक ढंग अछि। शैली ओ वाणी थिक जे विषय व्यक्त करैत अछि। शिल्प अभिव्यक्तिक प्रकार अछि शैली अभिव्यक्तिक माध्यम। शिल्प विचाररूपी शरीरक श्रृंगार-ओकर मेकअप अछि-शैली ओकर त्वचा। विभिन्न रचनाक शिल्पमे अंतर भऽ सकैत अछि किन्तु शैली अपरिवर्तनीय होइत अछि। इच्छानुसार कोनो शिल्पक ग्रहण अथवा त्याग कएल जा सकैत अछि, शैलीक सम्बंधमे ई बात सत्य नहि- ओतऽ व्यक्तिगत अभिव्यक्तिक अपरिहार्य अंग होइत अछि।”

केदार नाथ चौधरी शैलीक उचित प्रयोग सँ उपन्यासकँ रुचिपूर्ण बनबैत छथि। शीबू बाबा आ हीरा मौसीक परिचय देबाक लेल कथात्मक शैलीक उपयोग कए, हुनका लोकनिक सम्पूर्ण लोकोपकारी कार्यसँ पाठककँ अवगत करा दैत देत छथि। जाहि ठाम प्राकृतिक सौन्दर्यक प्रकटीकरण आवश्यक लगैत छनि, चेतन प्रवाहक सहारा लैत छथि। जतय घरि हिनक औपन्यासिक भाषाक प्रश्न पछि ओ सरल-सहज तऽ अछि संगहि पात्रोचित भाषाक कारण विविधतासँ भरल अछि। एक ठाम छेदिया पात्र लेल जाहि भाषाकँ प्रयोग कएलनि ओहि सँ स्पष्ट भऽ जाइत अछि जे छेदिया कम पढ़ल-लिखल लोक अछि, जखन कि राउत टेंट देहाती लोक छी। मुदा भाषाक एहि, आदान-प्रदानमे पाठककँ हँसबाक मौका भेटि जाइत छैक। मानि लेल जाय जे छेदियाक मोनन किओ ई बात पैसा देलकैक जे ओकर मुह ओकर बाप सनक भऽ गेलै आ जखन ककरो बाप सनक मुह भऽ जाय तँ लोक मृत्युक समक्ष पहुँचल मानल जाइत अछि। जाहिसँ ओ आतंकित भऽ हतासल राउत लग पहुँचैत अछि आ ओकरा सँ पूछि बैसैत छैक जे सत्ते ओकर मुह बाप सन भऽ गेलैए? राउत जकर जवाबमे कहैत छै जे बाप सन तऽ नहि, सपनौर सन लागि रहल छैक। बुझबाक थिक जे छेदियाकँ एहि टेंट शब्दावली सँ परिचय नहि छैक। आ ओ सपनौर ककरा कहैत छैक, पूछि बैसैत छैक। भाषाक एहि अद्भुत प्रयोगसँ उपन्यास बहुजन समाजक पोथी भऽ जाइत अछि। ग्रामीण कहबीक ठाम-ठीम उपयोग कए, भाषाक चमत्कारकँ बढ़बैत, उपन्यासकँ पठनीयतामे अभिवृद्धि करैत छथि। जेना एक ठाम कोबी नामक पात्र नाटकमे कृष्ण बनबाक लेल अडि जाइत अछि तँ बुचकुन ओकर शक्तपर व्यंग्य करैत कहैत छैक- ‘घोड़ा सनक नमरल आ तराजूक पासन सनक झुकल मुखरा छौ आ तों पाट करबँ कृष्ण-कन्हैयाक।”

कोनो शैलीक लेल ओकर भाषा बहुत बेसी महत्व रखैत छैक। शैली वर्ण्य विषयकँ थोपैत नहि अछि, अपितु ओकर अस्तित्व स्वतंत्र रहैत छैक। वर्ण्य विषयक संग ओकर सम्बन्ध स्वाभाविक रहैत छैक। कोनो व्यक्तिक मानसिक स्थिति परिस्थिति जन परिवर्तित होइत रहैत छैक आ परिस्थितिक प्रभाव ओकर मानसिक अवस्थाकँ बदलैत परिलक्षित होइत अछि, ठीक तहिना कथावस्तुक अनुसार शैलीक परिवर्तन हएब सुनिश्चित छैक। जाहिसँ प्रयुक्त भाषा शैली विभिन्न व्यक्तिक चरित्र परिचय अनायास दए दैत अछि। एकर महत्त्व शब्द एवं लोकोक्तिक अर्थकँ ग्रहण करबाक मात्र कार्य नहि, अपितु भाषाक विभिन्न पक्षक सम्बर्द्धन करबामे सेहो निहित छैक। उपन्यासक सफलता शैलीक संग सम्बद्ध छैक। जाहि सम्बद्धताकँ उभय उपन्यासकारक उपन्यासमे देखल जा सकैत अछि।

श्याम दरिहरेक उपन्यासक भाषा शैली खास अछि जे हुनक निजताक परिचायक अछि। एहि उपन्यासक कथ्य, कथानक, भाव सम्प्रेषण, मनोविश्लेषण आदि सभ किछु निजत्वक आभास दैत अछि। ‘घुरि आउ मान्या’ आ ‘जगत सब सपना’ दुनू उपन्यासक भाषा शैली आध्यात्मिक पोथीक अनुरूप अछि। जतय धरि ओकर वैज्ञानिकताकँ सरल-सुबोध ढंग दऽ फरिछाओल गेल अछि ओ एक्के सुरमे अन्त कऽ देबामे सक्षम अछि। आधुनिक विज्ञानक नव्यतम अनुसंधान सँ उपन्यासकँ सुसज्जित करबाक हिनक निश्चय फलित भेल अछि। आधुनिक समाजक टटका घटनाक संग ब्रह्म, ब्रह्मसूत्र, चोदहो भुवन गोलोकक गूढतम रहस्यकँ ब्रह्मसूत्र न्याय, न्याय वैशेषिक सांख्य आदि भारतीय दर्शनक संग प्रतिपाद्य कए प्रस्तुत करबाक हेतु उपयुक्त भाषा शैली प्रयुक्त कएल गेल अछि। जाहिमे कल्पनाशक्तिक अद्भुत चमत्कार देखबामे लेखक सफल भेलाह अछि। सांसारिक प्रेमकँ विशिष्ट ढंगसँ रखलनि अछि। संगहि सांसारिक प्रेमकँ आध्यात्मिक रूपान्तरणक अनुपम कलाक प्रदर्शन भेल अछि। आध्यात्म, भक्ति आ विज्ञानक हिनक त्रिवेणी भाषा शैलीक प्रवाह पाबि, कलकल- छलछल बहैत निस्सीमकँ छूबैत अछि।

उभय उपन्यासकारक राजनीतिसँ सम्बंधित उपन्यास अपन-अपन ढंगक अछि। जाहि ठाम श्याम दरिहरे ‘हमर जनम किए भेलै हो रामा’मे माओवादी उग्रताकँ नकारलनि अछि, ओकर विद्रूपताकँ लोकक समक्ष अनलनि अछि, ओही ठाम अपन दोसर उपन्यास ‘बाती कोन जराउ’मे नारी-संघर्षक अद्भुत कथा कहि देबामे सफल भेलाह अछि, मिला-जुलाकए दुनू उपन्यास नारीकँ केन्द्रमे राखि लिखल गेल अछि। ‘हमर जनम किए भेलै हो रामा’क संगीता नारी-आत्मविश्वास,

जकरा राजनीतिक भाषामे नारी सशक्तीकरणक संज्ञा देल गेल छैक, ताहिसँ सम्पृक्त अछि। ओकर सौन्दर्य आ पुरुषसँ होइ लेबाक प्रवृत्ति, जीवन संघर्षक मुख्य कारण बनलैक। उपन्यासक भाषा शैली, कथानकक स्पष्टीकरणक लेल एकदम उपयुक्त अछि। संगीता, अपन पितियौत बहिन मुन्नीक संग स्कूल जाइत अछि। ओकर सुन्दरताइ स्कूल भरिमे लड़का सभक चर्चाक विषय बनल छैक। मुदा ओ एहि सभपर ध्यान नहि दऽ, मात्र पढ़ाईपर ध्यान केन्द्रित कएने अछि। संयोगवश स्कूलक वार्षिक समारोहसँ घूमैत साँझ भऽ जाइत छैक आ रस्ताक बँसबिट्टी लग धपाएल ओकर ग्रामीण छात्र रमेश आ सुमन एकटा अनगौवाँ बदमास छोड़ीक संग मिलि दुनू बहिनक बाट रोकि, ओकरा संग बलात्कार करबाक पूर्ण प्रयास करैत अछि। मुदा दुनू बहिन ओकरा सभक संग डटि कए मुकाबला करैत अछि। दुनू मिलि, तीनू खूब पिटाइ करैत अछि। लाठीसँ टाँग-हाथ तोड़ि, हल्ला करैत, गौवाँ-घरुवाकें जुटा लैत अछि। जाहिसँ गोवा-घरुवा ओकर सभक बीरताक प्रशंसा करैत, रमेश आ सुमनकें गाम-निष्कासनक दंड दैत अछि। सुमनकें माय-बाप ओकर पीसा लग पठा दैत छैक। मुदा रमेश अस्पतालसँ भागि जाइत अछि। एहि स्थलपर उपन्यासकार राजनीतिक भ्रष्टताकें उजागर कएलनि अछि। डॉक्टरक भ्रष्ट लोकक संग संलिप्तताक बात समक्ष अनैत छथि।

उपन्यासकार केदार नाथ चौधरी विभिन्न विषयसँ कथावस्तु चुनलनि। 'चमेली रानी' आ 'माहुर' बिहार प्रदेशक राजनीतिक उठा-पटक, भ्रष्टता, जातीय उन्माद आदिकें केन्द्रमे राखि चोरी, डकैती, बलात्कार आदिकें सन्निहित विशिष्ट शैलीमे भाषा-विन्यासक संग प्रस्तुत कएलनि अछि। बिहारक राजनीति जाति-जातिमे लड़ा, लूट-खसोट करबाक राजनीति रहल। सत्तामे बनल रहबाक लेल, विभिन्न हथकण्डाक प्रयोग बाँछित रहल। समाज सेवासँ देश सेवा धरि अराजकताक प्रसारण सातिर दृष्टि राखि कएल गेल। हत्या आ डकैती हुनक हथियार बनि गेल। हिनक उपन्यास घटित सत्य घटनाकें सुरुचिपूर्ण ढंगसँ परसैत अछि। कोनो व्यंजनकें सुस्वाद बनयबाक लेल जेना ढंगर मसालाक प्रयोग कएल जाइत छैक, चौधरी जी श्रृंगार रसक प्रयोग ओही रूपमे कएलनि अछि। जाहिसँ उपन्यास पाठक कखनहुँ, बोर नहि होइत छैक। एकर अतिरिक्त मिथिलाक माटिसँ अपन तादात्म्य रखैत ओ 'अयना', 'आबारा नहितन' आदि उपन्यासक रचना कएलनि। सभ उपन्यासक भाषा शैली विषयगत आ कथ्यक अनुरूप प्रयुक्त भेल अछि। मैथिली साहित्यक गोलैसी आ पुरस्कार प्रक्रिया, हुनक व्यंग्यक वस्तु बनल। राजनेतासँ साहित्यकार धरिक खबरि लेनिहार केदार बाबू 'हीना' उपन्यासक माध्यमसँ प्रेमक समर्पणकें सोपान चढ़ा देलनि। 'आबारा नहितन' मैथिलीक प्रथम फिल्म 'ममता गाबय गीत'क निर्माणमे मात्र त्रासदीकें भोगैत साहित्य अनुरागीक अकथ कथा मात्र नहि, अपितु हुनक साहित्य सेवी प्रवृत्तिक विपरीत कएल गेल षड्यंत्रक सत्यक-उद्घाटन थिक। मैथिलीमे उपन्यास लिखबाक हिनक लूरी आ उपन्यासक भाषा एक खास अन्दाज अछि। साहित्यिक कोषमे वंचित भाषाक आग्रही चौधरीजी अपन उपन्यासमे ओहि भाषाक समाहित कए, ओकर परिधिकें विस्तार देलनि अछि। हिनक भाषा सहज आ आकर्षक होइत अछि। सामाजिक कुरीति, ओकर विद्रुपता, समाजक लोक आ ओकर सहज-असहज व्यवहारकें अद्भुत ढंगे चित्राकित करैत, अचम्भित कए दैत छथि। हिनक उपन्यासमे तंत्र-मंत्र-यंत्रक प्राचीन भारतीय पद्धतिक जेँ निर्वाह कएल गेल अछि, तेँ दोसर दिस 'हीना'मे प्रेमक विराटताक दिग्दर्शन कराओल गेल अछि।

एहि तरहेँ दुनू उपन्यासकार अपन-अपन भाषा शैली, जानदार कथानक, कथ्य एवं प्रकृति दर्शनक नयनाभिराम चित्र उकेरिकऽ पाठकक काफी मनोरंजन कएलनि अछि। शैलीक प्रधान गुण भावनाकें मूर्त रूप प्रदान करब थिक। जाहिसँ प्रेषणीयतामे निखार अबैत अछि। अभिव्यक्तिमे स्पष्टता अबैत अछि। उभय उपन्यासकार शैलीक एहि तत्वकें बूझि उपन्यासकें पठनीय बनौलनि अछि। वर्ण्य विषयक अनुरूप शैलीक चयन कएलनि अछि। परिस्थितिक परिवर्तनक कारणसँ मनुष्यमे बदलाव अबैत अछि, ओही रूपमे शैलीक परिवर्तनकें सेहो देखल जाएबाक थिक। देशक संस्कृतिक प्रभाव समाजपर पड़ैत अछि आ समाजक संस्कृति तदुनुरूप बदलल-बदलल सन प्रतीत होइछ। संस्कृतिक प्रभाव साहित्यिक अभिव्यक्तिकें प्रभावित करैत अछि। उभय उपन्यासकारक भाषा शैलीपर एहि प्रभावकें स्पष्टतया देखल जा सकैछ। अपन शैलीक निजता दुनू उपन्यासमे परिलक्षित होइत अछि। दुनू उपन्यासकार सूक्ष्मसँ-सूक्ष्म विचारकें भाषा शैलीक कारण पाठक धरि पहुँचएबामे सफल छथि ।

सन्दर्भ सूची :

1. पाठक डॉ. अमरेश, वर्ष-2007, मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन, भी-25, आलोक प्रकाशन, विद्यापुरी, पटना-20, पृ.- 118
2. चौधरी केदार नाथ, वर्ष-2020, चमेली रानी, इंडिका इंफोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058, पृ.- 14
3. पाठक डॉ. अमरेश, वर्ष-2007, मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन, भी-25, आलोक प्रकाशन विद्यापुरी, पटना-20, पृ.- 120
4. दरिहरे श्याम, वर्ष-2015, घुरि आउ मान्या, शेखर प्रकाशन, इन्द्रपुरी, पटना-24, पृ.-41
5. पाठक डॉ. अमरेश, वर्ष-2007, मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन, भी-25, आलोक प्रकाशन विद्यापुरी, पटना-20, पृ.- 119
6. चौधरी केदार नाथ, 2007, करार, इंडिका इंफोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-58, पृ.-59
7. तत्रैव, पृ.- 7
8. चौधरी केदार नाथ, 2020, हीना, इंडिका इंफोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-58, पृ.-30
9. पाठक डॉ. अमरेश, वर्ष-2007, मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन, भी-25, आलोक प्रकाशन विद्यापुरी, पटना-20, पृ.- 121
10. चौधरी केदार नाथ, 2020, हीना, इंडिका इंफोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-58, पृ.-37

सूर्यबाला के साहित्य में स्त्री की भूमिका और संस्कृति चेतना

अनुभव तिवारी

पी-एच. डी. शोधार्थी

डॉ० मंजू भट्ट

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डॉ. सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश-

सूर्यबाला के साहित्य में स्त्री केवल एक पारंपरिक पारिवारिक भूमिका तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह सांस्कृतिक चेतना की संवाहक, संरक्षिका और परिवर्तन की वाहक के रूप में उभरती है। उनकी रचनाओं में स्त्री जीवन के विविध आयाम गृहस्थ जीवन, सामाजिक अपेक्षाएँ, भावनात्मक संघर्ष, आत्मसम्मान, स्वाभिमान और आत्मपहचान संवेदनात्मक गहराई के साथ चित्रित होते हैं। वे स्त्री को केवल त्याग और सहनशीलता का प्रतीक न दिखाकर उसे विचारशील, सजग और परिस्थितियों के प्रति सचेत व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं। सूर्यबाला के कथा-साहित्य और व्यंग्य रचनाओं में स्त्री भारतीय संस्कृति की जीवित परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। वह परिवार की धुरी है, जो संबंधों को जोड़ती है, संस्कारों को आगे बढ़ाती है और पीढ़ियों के बीच सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखती है। साथ ही, बदलते सामाजिक परिवेश में स्त्री नई भूमिकाएँ भी स्वीकार करती दिखाई देती है शिक्षित, आत्मनिर्भर, निर्णयक्षम और सामाजिक रूप से सक्रिय। इस प्रकार उनकी रचनाओं में परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करने वाली स्त्री की छवि उभरती है। उनके साहित्य में स्त्री अनुभवों के माध्यम से संस्कृति का मानवीय पक्ष उजागर होता है। घरेलू जीवन, त्योहार, पारिवारिक संस्कार, लोक परंपराएँ, सामाजिक व्यवहार और नैतिक मूल्य स्त्री के जीवनानुभवों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। वे दिखाती हैं कि संस्कृति केवल अनुष्ठानों तक सीमित नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की संवेदनाओं, संबंधों और व्यवहारों में निहित होती है। सूर्यबाला स्त्री की स्थिति का चित्रण करते हुए सामाजिक विसंगतियों और लैंगिक असमानताओं की ओर भी संकेत करती हैं। वे व्यंग्य और संवेदना के माध्यम से पितृसत्तात्मक सोच, सामाजिक दबाव और स्त्री की अवहेलना पर प्रश्न उठाती हैं। इस प्रकार उनका साहित्य स्त्री-सशक्तिकरण की दिशा में सांस्कृतिक चेतना जगाने का कार्य करता है।

मुख्य शब्द- स्त्री-अस्मिता, सांस्कृतिक चेतना, परंपरा और आधुनिकता, पारिवारिक मूल्य, आत्मसम्मान, स्त्री-सशक्तिकरण, मध्यवर्गीय जीवन, संवेदनशीलता, सामाजिक विसंगतियाँ, नैतिक मूल्य, लोकपरंपरा, आत्मनिर्भरता, संघर्षशीलता, सांस्कृतिक निरंतरता।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में जिन साहित्यकारों ने समाज की बदलती संरचना, मानवीय संबंधों की जटिलता तथा स्त्री जीवन की वास्तविकताओं को संवेदनात्मक और व्यंग्यात्मक शैली में अभिव्यक्त किया, उनमें सूर्यबाला का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। सूर्यबाला हिंदी कथा साहित्य की ऐसी सशक्त रचनाकार हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक विसंगतियों तथा स्त्री जीवन के बहुआयामी स्वरूप को गहराई से चित्रित किया है। उनका साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का दर्पण है, जिसमें स्त्री की स्थिति, संघर्ष, आत्मबोध और सांस्कृतिक पहचान का जीवंत चित्रण मिलता है।

भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका सदैव महत्वपूर्ण रही है। प्राचीन काल से ही स्त्री को परिवार, संस्कृति और परंपरा की वाहक माना गया है, किंतु सामाजिक संरचनाओं और पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उसे अनेक सीमाओं में बाँध दिया। आधुनिक काल में शिक्षा, जागरूकता और सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव से स्त्री की भूमिका में व्यापक बदलाव आया है। सूर्यबाला के साहित्य में इसी परिवर्तनशील स्त्री का चित्र उभरकर सामने आता है जो परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल करुणा या त्याग की प्रतिमा नहीं, बल्कि विचारशील, आत्मसम्मान और संवेदनशील व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित होती है।

सूर्यबाला की कहानियाँ और उपन्यास भारतीय मध्यमवर्गीय जीवन की वास्तविकताओं से जुड़े हुए हैं। मध्यमवर्ग वह वर्ग है जहाँ परंपरा और आधुनिकता का सबसे अधिक संघर्ष दिखाई देता है। इस वर्ग की स्त्रियाँ परिवार की मर्यादाओं, सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच निरंतर संघर्ष करती

रहती हैं। सूर्यबाला ने इस संघर्ष को अत्यंत सहज, यथार्थपूर्ण और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी नायिकाएँ विद्रोही होते हुए भी सामाजिक मूल्यों को पूर्णतः अस्वीकार नहीं करतीं, बल्कि उनमें सुधार और संतुलन की तलाश करती हैं। यही उनकी सांस्कृतिक चेतना का मूल आधार है।

सूर्यबाला के साहित्य में स्त्री की भूमिका बहुआयामी रूप में दिखाई देती है माँ, पत्नी, बहन, कार्यरत महिला, गृहिणी और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में। वे स्त्री को केवल पारिवारिक दायित्वों तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उसके मानसिक संसार, भावनात्मक संघर्ष और आत्मनिर्णय की क्षमता को भी उजागर करती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री अपने अस्तित्व की पहचान खोजती है और सामाजिक रूढ़ियों से जूझते हुए अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करने का प्रयास करती है। यह प्रस्तुति स्त्री विमर्श की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सूर्यबाला के साहित्य में संस्कृति चेतना का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वे भारतीय समाज में बदलते मूल्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखती हैं। आधुनिक जीवन शैली, उपभोक्तावाद, पारिवारिक विघटन और मानवीय संबंधों में बढ़ती दूरी को उन्होंने गहरी संवेदना के साथ चित्रित किया है। वे परिस्थितियों से हार नहीं मानतीं, बल्कि जीवन की कठिनाइयों के बीच अपनी पहचान और सम्मान बनाए रखने का प्रयास करती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री की यह जागरूकता आधुनिक नारी चेतना का प्रतीक है। यह चेतना केवल अधिकारों की मांग तक सीमित नहीं, बल्कि कर्तव्य, संवेदना और सामाजिक जिम्मेदारी से भी जुड़ी हुई है।

सूर्यबाला का साहित्य भारतीय समाज के संक्रमणकालीन दौर का सशक्त दस्तावेज है, जिसमें स्त्री की बदलती भूमिका और सांस्कृतिक चेतना का यथार्थ चित्रण मिलता है। उन्होंने स्त्री जीवन की पीड़ा, संघर्ष, संवेदना और आत्मसम्मान को साहित्यिक गरिमा प्रदान की है। उनके साहित्य में स्त्री न तो पूर्णतः परंपरावादी है और न ही अंधाधुंध आधुनिक; बल्कि वह संतुलित दृष्टिकोण अपनाते हुए समाज और संस्कृति के साथ संवाद स्थापित करती है।

1. सूर्यबाला के साहित्य में स्त्री की भूमिका

सूर्यबाला के साहित्य में स्त्री बहुआयामी भूमिका निभाती है। वह केवल गृहिणी नहीं, बल्कि परिवार की धुरी और सामाजिक परिवर्तन की वाहक है।

(क) पारिवारिक स्त्री

‘अग्निपंखी’ उपन्यास समाज के इस गंभीर मसले के साथ हमारी शिक्षा नीति और समाज में उसकी व्यावहारिक परिणति के दुखद हस्त की ओर ध्यान खींचता है। ‘दुनिया के दो आदिम दुख हैं: भूख और अपमान। लात पेट पर पड़े या पीठ पर तकलीफ बराबर होती है।’ ‘अग्निपंखी’ का जयशंकर ग्रामीण संयुक्त परिवार का सदस्य है। पिता की भाँति पढ़-लिखकर ऊँचे ओहदे के लिए उसे तैयार किया जाता है। शिक्षा ने उसे परिवार के अन्य सदस्यों की नजर में विशेष होने के साथ ही ईर्ष्या का पात्र भी बना दिया है। आपसी सम्बन्ध तक सहज नहीं रह पाते। जब कमाने की बारी आती है तो उसके असफल प्रयत्नों पर सिर्फ लोगों की हँसी और ताने उसे छोलते रहते हैं। ऐसे ही आक्रोश में वह गाँव छोड़ शहर की ओर प्रयाण करता है। वह पढ़ा-लिखा युवक गाँव में खेती नहीं कर सकता, परन्तु शहर पहुँचकर कारखाने में अस्थायी मजदूरी करता है। झुग्गी-झोंपड़ी में, सीमित साधनों के साथ गृहस्थी चलाते विवश, विपन्न लोगों का जमात में वह भी शामिल हो जाता है।

(ख) संघर्षशील स्त्री

लेखिका ने ‘यामिनी कथा’ में अकेलेपन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। ‘यामिनी कथा’ कि यामिनी तथा उसका पुत्र दोनों पृथक-पृथक प्रकार का अकेलापन झेलते हैं “अधिकांश दश बाहर के नहीं, तीव्र संवेदनशील यामिनी के मन के अंदर निरंतर गहराई की ओर जानेवाला भंवरों से आलोकित विलोकित अंधी सुरंग है यामिनी का मानस में प्रेयसी, नवोदा पत्नी, विधवा, प्रथम पति से पैदा संतान की माँ, पुनर्विवाहिता पत्नी, पहली बार विवाहित पति की आकांक्षाओं के लिए कुछ अतिरिक्त नाटक करने वाली, दूसरे पति से उत्पन्न पुत्र की माँ कितनी-कितनी भूमिकाएँ करनी पड़ती हैं अकेली यामिनी को! एक उलझे अनुभव संसार की गुथी सी हुई है यामिनी सहस्त्र धागों के बीच फँसी तड़पती, लहलुहान नारी की समूचा रूप अलग-अलग कोणों से या धागों को पकड़कर विश्लेषित करना सर्वथा असंभव है।”¹

सूर्यबाला की कहानी ‘सजायाफ्ता’ में स्त्री की भूमिका अत्यंत मार्मिक, यथार्थपरक और सामाजिक संरचना की विडंबनाओं को उजागर करने वाली है। कहानी की नायिका शालिनी उस स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो आर्थिक असमानता और सामाजिक प्रतिष्ठा की कृत्रिम मान्यताओं के बीच अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करती है। शालिनी विवाह के बाद ऐसे परिवेश में पहुँचती है जहाँ आर्थिक स्थिति के आधार पर संबंधों का मूल्यांकन किया जाता है। उसकी सास का व्यवहार इस मानसिकता को उजागर करता है- शालिनी का भाई जब उनके घर मिलने आया है, तो उसकी सास एस.पी. साहब की बीवी से कहती है, “जल्दी में किसी काम से आना हुआ, एकाएक ही, बेचारे मिठाई वगैरह भी ज्यादा नहीं ला पाए... मुझे पाँच सौ एक रुपए दिए कि पहले मिठाई-फल मंगवा लीजिए... मैंने कहा- अब भई तुम लोग बार-बार यह फॉर्मैलिटी मत किया करो...।² इस तरह सास तीज त्यौहार के अवसर पर भी अक्सर स्वयं मिठाइयाँ मंगाकर यह घोषित करती है कि शालिनी के मायके से आया है, जिससे शालिनी के भीतर कुछ टूटने लगता है। उसे लगता है मायके वालों को बिना किसी अपराध के कठोर दंड दिया जा रहा है। इस प्रकार आज अर्थाभाव के कारण व्यक्ति अनेक यातनाएँ सहन करने के लिए विवश हो गया है।

2. मध्यमवर्गीय स्त्री जीवन का चित्रण

भारतीय संस्कृति की यह प्रमुख विशेषता है कि दया से जुड़े व्यक्ति विशाल हृदय वाले होते हैं, उनमें दयाभाव हमेशा विद्यमान होता है। ‘कात्यायनी संवाद’ कहानी में कात्यायनी का पति अपाहिज होने के साथ-साथ पागल जैसा बर्ताव भी करता है। वह अपनी पत्नी कात्यायनी को हिंसक दृष्टि से देखता है। कात्यायनी फिर भी अपने पति से विद्रोह नहीं करती, बल्कि बड़ी निष्ठा से उसकी सेवा करती है। उसकी सहेली मेधा जब उसे ये सारे बंधन तोड़ने के लिए कहती है, तो कात्यायनी मेधा से कहती है, “यह व्यक्ति बहुत असहाय है, हम सबको उस पर घृणा नहीं दया आनी चाहिए।”³ इस प्रकार दया मानव हृदय में छुपा वह भाव है, जो दुर्बल या असहाय व्यक्ति के प्रति जागृत हुई सहानुभूति से प्रदर्शित होता है।

आधुनिक युग में मेहमानबाजी में सर्वप्रथम चाय पिलायी जाती है तथा चाय के साथ कुछ न कुछ भोज्य पदार्थ भी पेश किया जाता है। 'पड़ाव' कहानी में शैलेन्द्र अपने परिवार सहित शहर में ताऊ-ताई जी से मिलने जाता है, तो ताई जी कहती है, "अभी गरमागरम चाय बनाती हूँ।.... ठहरो कचरी तले देती हूँ। हलुआ बना दूँ? आटे का ही सही। थोड़ा वनस्पति तो होगा ही, देखती हूँ, इतने दिनों बाद आए हैं सब।" इस प्रकार मेहमानों को सबसे पहले चाय-कचरी खिलाए जाते हैं। शादी-ब्याह के अवसरों पर विशेष व्यंजन बनाना भारतीय संस्कृति की परम्परा रही है। 'रमन की चाची' कहानी में रमन अपने चाचा की शादी में बनाए गए पकवानों का वर्णन करता हुआ कहता है, "गांव छोटा था और शादियों के लगन-मुहूर्त भी साल दर साल लगा करते थे। पर अपन लोगों को दूल्हे-दुल्हन से ज्यादा अहम चीजें भाँड़ों के स्वाँग और कड़ाहों में उतरकर गरम-गरम चाशनी में बंधते बूंदी के लड्डू और बुरादे से ढकी बर्फ की सिल्लियाँ लगा करती थी।" इस प्रकार शादी-ब्याह में लोग अन्य चीजों की अपेक्षा खाने-पीने पर बल देते हैं। भारतीय संस्कृति में शाकाहारी भोजन का विशेष महत्व है। लोगों को ऐसा भोजन प्रिय भी लगता है। घर में आए अतिथियों को शाकाहारी भोजन परोसा जाता है। 'समान सतहें' कहानी में दिवाकर जब अपनी पत्नी मंजू के चाचा के घर जाता है तो उसे ऐसा ही भोजन परोसा जाता है, "दाल, आलू की रसेदार सब्जी, चटनी। चावल।.... चावल अच्छी किस्म के थे। थोड़ी-थोड़ी भिंडी की सब्जी भी और चीनी की दो प्यालियों में आटे का हवला।" इस प्रकार शाकाहारी भोजन को अधिक सात्विक और उपयोगी माना जाता है।

'सुमित्रा की बेटियाँ' कहानी की नायिका शादीशुदा सुमित्रा हैं, जो अनपढ़ और गंवार हैं। अपने पति ढोढेलाल के द्वारा त्यागने के बाद भी अपनी दो बेटी पिपरियाँ और झुमरियाँ के साथ झोपड़ी में रहकर भैंस पालकर अपनी रोजी-रोटी का प्रश्न हल करती हैं। वह ऐसे घर में रहती हैं, जिस घर में सिर्फ जानवर ही जानवर रह सकते हैं। उसके टोले में उसका पति एक बंगालियन के साथ विवाह करता है, फिर भी उसे विरोध नहीं करती। इस प्रकार एक निडर, साहसी, स्वाभिमानी, स्त्री के रूप में सुमित्रा का चित्रण हुआ है। 'सुमित्रा की बेटियाँ' कहानी के संवाद छोटे और प्रभावशाली हैं। संवाद पाठक के मन में कुतूहल निर्माण करते हैं-

जैसे - "मल्लाहों के टोले में क्या हो रहा है?"

"ढोढे की शादी न!"

मैंने पूछा- "ढोढे कौन हैं?"

बहन ने धीरे कहा- "पिपरियाँ की माँ का दूल्हा..."

'मेरे संधिपत्र' के अंत के सम्बन्ध में सूर्यबाला ने स्वीकार किया है कि उपन्यास का अंत पाठकों के मन को झकझोर कर रख देता है, क्योंकि शिवा के प्रति सहानुभूति की भावना स्वाभाविक है। सभी को लगता है कि उपन्यास का अंत शिवा और रत्नेश के विवाह तथा उनके सुखी परिवार के रूप में अपेक्षित था, लेकिन सूर्यबाला ने दोनों को नहीं मिलाया, उनकी सोच अलग है। सूर्यबाला लिखती है कि-"शिवा का सौन्दर्य मेरी अपनी आस्था का सौंदर्य है। नारी सौंदर्य की जो गरिमा मुझे अभिभूत करती रही हैं, वही साकार रूप में शिवा है। शिवा एक सच है लेकिन एक फूल की तरह नहीं, एक खुशबू की तरह जो मेरी संवेदना में इस तरह समाती चली गयी कि उसके अनुरूप एक फूल की अवतारणा मुझे करनी पड़ी।" 8

3. स्त्री अस्मिता और आत्मनिर्भरता

'सुबह के इंतजार तक' में सामाजिक परिस्थितितन्त्र दुर्घटनाओं के बीच एक नारी की व्यथा कथा को दृष्टिगत किया है। वर्तमान समय में बलात्कार जैसी समस्याएँ आए दिन समाज में घटती दिखाई पड़ती हैं। इस उपन्यास की नायिका 'मानू' इसका ज्वलंत उदाहरण है। मानू अपने शापित, अविवाहित, मातृत्व को खुलेआम स्वीकार कर मध्यवर्ग की जर्जर एवं खोखली मान्यताओं से विद्रोह करती है। हठी निश्चयी मानू अपने अभिशप्त कलंक के साथ समाज के बीच जीवन का निर्वहन करती है।

मानू के शब्दों में मध्यवर्ग समाज को प्रस्तुत किया गया है-"हम निम्न मध्य वर्ग के प्रतिनिध परिवार के थे, उस मध्यवर्ग में जो कहीं पर तथाकथित निम्न वर्ग से भी निम्नतर होता है। अंदर से नितांत दयनीय तिल-तिलकर चुकता हुआ, ऊपर सफेदपोश, इज्जतदार।" 9

मानू अपने जीवन में गरीबी का दंश झेलते हुए भी खोखली मर्यादा और झूठी प्रतिष्ठा का प्रश्न लेकर परिवार का दोहरा जीवन जीना, सफेदपोश बने रहने का ढोंग पालना, इस ढोंग में सभी बदहवास हैं। मानू को मामा के घर क्रूर हादसे का वीभत्स सामना करना पड़ता है जो सबको झकझोर जाता है। प्रतिक्रिया में प्रतिरोध का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि मामला और अधिक अपमानजनक है, छिपाने की कोशिश में रुग्णता और बढ़ जाती है।

4. संस्कृति चेतना की अवधारणा

सूर्यबाला ने 'मानसी' कहानी में आकर्षण के कारण जागृत कामवृत्ति का यथार्थ चित्रण किया है। इस कहानी का नायक एक खगोलशास्त्र संशोधक प्रोफेसर है। उसके मन में सामने हवेली में छुट्टियों में रहने के लिए आई कण्ठा नामक एक सुन्दर लड़की के प्रति स्नेह की भावना जागृत होती है। वह कण्ठा को जानता भी नहीं, फिर भी दूर से दिखती इस सुन्दर युवती के सुख-दुःख में वह अनजाने ही भागीदारी करने लगता है। वह उसके सुखी संसार की कल्पना से दूर बैठा रोमांचित होता है लेकिन एक दिन उसकी शादी होती है। कुछ दिनों के बाद कण्ठा के पति का निधन होता है। वह विधवा बनकर अपनी बेटी किरण के साथ फिर से उस हवेली में लौटकर आती है। किरण उसी प्रोफेसर के कॉलेज में पढ़ने जाती है। उसके सामने बाईस साल पहले कि कण्ठा मानो खड़ी है। उसके बाद किरण उस प्रोफेसर की शिष्या बनती है। किरण कॉलेज से घर और घर से धीरे-धीरे प्रोफेसर के प्रति आकर्षित हो जाती है। प्रोफेसर इस बात से अनजान है। वह बड़े परिश्रम से उसे पढ़ाता है लेकिन किरण प्रोफेसर का स्कैच अपने फाइल में बनाती है। प्रोफेसर किरण को समझाने का प्रयास करता है कि यह सब एक तरह से अशोभनीय है। तब किरण पूछती है, "अच्छा सर! अगर आप यह सब कुछ न देख पाते, न जान पाते तो? तो...तो...सब कुछ वैसा ही रहता न।" 10 इस प्रकार किरण स्वयं को प्रोफेसर के आकर्षण में बांधा हुआ पाती है तथा उसके मन में काम भाव पनपने लगता है।

सूर्यबाला ने 'पराजित' कहानी में उस निराश, हताश मनुष्य का चित्रण किया है, जो दफ्तरी काम में उलझा हुआ है। इस कहानी का नायक बंसल दस सालों से अपने दफ्तर में पूर्ण ईमानदारी से काम करता है लेकिन अभी तक उसे ना प्रमोशन मिला है, ना ही इन्क्रीमेंट मिलता है। जब उसके जूनियर-सीनियर बन जाते हैं, तब तो उसकी मानसिक स्थिति और भी खराब हो जाती है, जिसके कारण पारिवारिक जीवन भी तनावग्रस्त हो जाता है। वह अपना सारा आक्रोश अपनी पत्नी निशा पर उगलता है। बंसल अपनी पत्नी से कहता है, "मेरे सारे फ्रस्ट्रेशन और बिगड़े कैरियर के बावजूद तुम जिस ठाट की जिंदगी और ऐशो-आराम में जी रही हो, उसका सपना भी तुम्हारे मायकेवालों की जमात नहीं देख सकती। ये सोफे, पलंग, टी.वी. और फ्रिज सारे संरजाम तुम्हारे परिवार के टीचरी और क्लर्की में एडियाँ रगड़ते लोग कभी नहीं जुटा सकते, समझीं।"¹¹ इस प्रकार बंसल जब घर आता है तब दफ्तर की परेशानियाँ एवं धाँधली का क्रोध अपनी पत्नी निशा पर उतारता है, जिसके कारण पारिवारिक जीवन में तनाव पैदा हो जाता है।

आर्थिक अभाव के कारण व्यक्ति में हीनभावना आ जाती है। गरीब व्यक्ति हमेशा ही समाज में हीन माना जाता रहा है। 'मटियाला तीतर' कहानी का नायक देवा अपने मालकिन के घर में मन लगाकर काम करता है। वहाँ पर वह अपनेपन से रहता है लेकिन एक दिन मालकिन जब उसे अलग कप में चाय देती है, तो वह हीनभावना का अनुभव करता है और कहता है, "घर का हूँ तो फिर मैं अलग कीचन में, उस टूटे मग में चाय क्यों पीता हूँ?"¹² इस प्रकार अंत में देवा नाराज होकर हीनभावना का खुलेआम विरोध करता है, जो उसे आर्थिक विपन्नता के कारण मालकिन के घर में सहना पड़ता है। इसी प्रकार 'न किन्नी, न' कहानी का पात्र आकाश भी आर्थिक अभाव के कारण अपनी जिंदगी में हीनभावना से ग्रस्त है। उसके पिता का देहांत हो चुका है। वह अपनी चाची के घर रहकर रिसर्च करता है। आकाश रिसर्च के साथ-साथ घर-गृहस्थी, माँ तथा दो सयानी बहनों की पूरी-पूरी जिम्मेदारी भी उठाता है। उसके स्कॉलरशिप का मामला विश्वविद्यालय की ब्राह्मण-ठाकुर गुटबन्दी की खटाई में फंसा पड़ा है, जिसके कारण उसका मन हीनताग्रस्त हो जाता है। आकाश कहता है, "चल रहा हूँ विश्वविद्यालय के फाटक पर रिक्शा खींचने या जूते गाँठने।"¹³ इस प्रकार साधन विहीन व्यक्ति को हर जगह हीनता का सामना करना पड़ता है।

5. भारतीय संस्कृति और पारिवारिक मूल्य

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिकतर व्यक्ति आज भी तावीजों पर विश्वास करता है। वह अपनी अज्ञानता वश रूढ़ियों में बुरी तरह जकड़ा हुआ है। 'सौदागर दुआओं' के कहानी में सूर्यबाला ने कुछ ऐसी ही रूढ़ मान्यताओं एवं अंधविश्वासों का वर्णन किया है। इस कहानी के सैयद साहब लोगों की खैर के लिए उनको तावीज बांधते हैं। उनका तथा लोगों का मानना है कि उनके दुआओं भरे तावीज में ऐसा असर है कि लोगों के जीवन में खुशहाली आती है। सैयद साहब को लगता है कि मनीलाल का बेटा शहजादे नवासे तावीज के कारण पैदा हुआ। जैसे, "...साहबजादे की तो पैदाइश ही मेरे तावीज बांधने के ग्यारह महीने बाद हुई थी। खुदा का फजल आज मसजिद पे माथा टेकने लायक हो गए।"¹⁴ इसी तरह मनीलाल को भी लगता है कि उसकी बिटिया भी तावीज बांधने से अच्छी हो गई है और पूरे पड़ोस का हाल बताते हुए कहता है, "बन्ने सुनार की हथेली जो धौकनी की आँच से लटक गई थी, ठीक है। बड़ी दुआ दे रहे थे आपको, मरहम बड़ा फायदेमंद साबित हुआ। बिटिया भी आपसे तावीज बँधवाने के बाद से अच्छी है।"¹⁵ इस प्रकार अज्ञानतावश व्यक्ति तावीजों पर अंधविश्वास करता है और जन्म जैसी प्राकृतिक क्रिया में भी तावीजों की कृपा समझते हैं।

प्रायः बहुत से लोग दुःख बीमारी में बाबाओं और साधु-संतों पर अधिक विश्वास करते हैं। बाबाओं की कही बात को पत्थर की लकीर मान लिया जाता है। 'राख' कहानी में नानी हर दुःख-सुख में हनुमानगढ़ी बाबाजी की चौक पर मत्था टेकने अवश्य जाती है क्योंकि उनको लगता है कि मत्था टेकने के बाद सब अच्छा होगा। नानी बाबाजी से अपनी चिंता व्यक्त करती हुई कहती है, "इनके पिताजी के फोड़े में मवाद दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। कुछ लोग बंबई ले जाने की राय दे रहे हैं। बड़ी चिंता और उलझन में हूँ, महाराज!"¹⁶ इस तरह नानी डॉक्टर की अपेक्षा बाबाजी पर विश्वास करती है। नानी को लगता है, "भीषण-से-भीषण अकाल, संकट, हारी-बीमारी, दुःखद-अवसान तक के क्षण में बाबाजी ही होते हैं।"¹⁷ इस प्रकार हमारे समाज में अपनी परेशानी दूर करने के लिए कई अंधविश्वासी लोग बाबाओं के पास जाते हैं और रोगी को डॉक्टर के पास ले जाने के बजाय ऐसे बाबाओं का सहारा लेते हैं।

उपसंहार

सूर्यबाला का साहित्य हिंदी कथा परंपरा में स्त्री जीवन और भारतीय सांस्कृतिक चेतना के सशक्त एवं संवेदनशील चित्रण के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से यह सिद्ध किया कि साहित्य केवल समाज का प्रतिबिंब नहीं होता, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और वैचारिक जागरण का महत्वपूर्ण माध्यम भी होता है। उनके साहित्य में स्त्री की भूमिका पारंपरिक सीमाओं से आगे बढ़कर एक जागरूक, आत्मसम्मान और विचारशील व्यक्तित्व के रूप में उभरती है, जो परिवार, समाज और संस्कृति तीनों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। सूर्यबाला ने स्त्री को केवल करुणा या त्याग की प्रतीक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ से संघर्ष करने वाली सक्रिय शक्ति के रूप में चित्रित किया है। उनकी स्त्रियाँ परिस्थितियों से समझौता अवश्य करती हैं, किंतु अपनी अस्मिता और आत्मसम्मान को बनाए रखने का प्रयास भी करती हैं। वे विद्रोह को अराजकता के रूप में नहीं, बल्कि संवेदनशील परिवर्तन के रूप में स्वीकार करती हैं। यही दृष्टिकोण उनके साहित्य को संतुलित और जीवनोन्मुख बनाता है। उनकी रचनाओं में मध्यमवर्गीय जीवन का यथार्थ विशेष रूप से उभरकर सामने आता है, जहाँ स्त्री परंपराओं, सामाजिक अपेक्षाओं और आधुनिक जीवन मूल्यों के बीच निरंतर संघर्ष करती है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सूर्यबाला का साहित्य स्त्री की बदलती भूमिका और भारतीय सांस्कृतिक चेतना का जीवंत दस्तावेज है। उनकी रचनाएँ स्त्री जीवन के संघर्ष, संवेदना, आत्मबोध और सामाजिक जिम्मेदारी को साहित्यिक गरिमा प्रदान करती हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध किया, बल्कि समाज को मानवीय मूल्यों और संतुलित सांस्कृतिक दृष्टि की ओर उन्मुख करने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। इस प्रकार सूर्यबाला हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक विमर्श की एक सशक्त एवं स्थायी हस्ताक्षर के रूप में स्थापित होती हैं।

संदर्भ ग्रंथ-

1. सूर्यबाला, “यामिनी कथा” प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण, 2010 पृ.क्र. 13
2. सूर्यबाला, सजायाफ्ता-मानुष-गंध, किताबघर प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2005 पृ. 90
3. सूर्यबाला, कात्यायनी संवाद, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 1996 पृ. 94
4. सूर्यबाला, थाली भर चाँद, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 2006 पृ. 76-77
5. सूर्यबाला, थाली भर चाँद, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 2006 पृ. 46
6. सूर्यबाला, एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम, विद्या विहार प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, 2005 संस्करण पृ. 23
7. सूर्यबाला: ‘सुमिन्तरा की बेटियाँ’ साँझवती, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली 1995 पृ.20
8. सूर्यबाला: ‘मेरे संधि पत्र’ पराग प्रकाशन, दिल्ली 1977 पृ. 5
9. सूर्यबाला, पाँच लम्बी कहानियाँ, पभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2020 पृ.क्र. 78
10. सूर्यबाला, सुबह के इंतजार तक, पराग प्रकाशन दिल्ली - 32, 1980 पृ.क्र. 100
11. सूर्यबाला, दिशाहीन, प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन नई दिल्ली, 2010 संस्करण पृ.क्र. 76
12. सूर्यबाला, थाली भर चाँद, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 2006 पृ. क्र. 14
13. सूर्यबाला, थाली भर चाँद, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 2006 पृ. क्र. 123
14. सूर्यबाला, गृहप्रवेश, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986 पृष्ठ - 33 पृ. क्र. 51
15. सूर्यबाला, गृहप्रवेश, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986 पृष्ठ - 33 पृ.क्र. 52
16. सूर्यबाला, थाली भर चाँद, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 2006 पृ.क्र. 109
17. सूर्यबाला, थाली भर चाँद, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली 2006 पृ.क्र. 109

“अवधी का उद्भव एवं विकास”

डॉ० जितेन्द्र कुमार उपाध्याय

कोई भी भाषा या बोली अचानक ही सामान्य-जन की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बन जाती, वरन् वर्षों के अनवरत प्रवाह के बाद ही वह साहित्यिक सृजनता का और मंच पर अभिव्यक्ति का, अधिकार पाती है। अवधी भाषा भी इसी संघर्ष के साथ साहित्य में स्थान पायी है। सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं भाषिक विशिष्टता को व्यक्त करने में समर्थ होने के कारण अवधी भाषा का साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

“प्राचीन काल में ‘अयोध्या’ नामक राज्य था। इस राज्य विशेष में व्यवहृत बोली जो अयोध्या से ‘औध’ और ‘औध’ से ‘अवध’ पड़ा, के कारण ‘अवधी’ कहलाई।” कोशल या अवध क्षेत्र की बोली के कारण इसे कोशली, अवधी, पूर्वी आदि नाम प्राप्त हुए। अवध प्रांत के अन्तर्गत उत्तर-प्रदेश में लखनऊ, फैजाबाद एवं आस-पास का क्षेत्र, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, उन्नाव रायबरेली, गोण्डा, बस्ती, बहराइच, बाराबंकी, सुल्तानपुर आदि हैं।

डॉ. ग्रियर्सन अवधी को अर्द्धमागधी से उत्पन्न हुई मानते हैं। डॉ. बाबूराम सक्सेना ने ‘अवधी का विकास’ पुस्तक में ‘अवधी’ को पालि भाषा से उत्पन्न माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने ‘अवधी’ को नागर अपभ्रंश से उत्पन्न माना है। संप्रति अवधी बोलने वालों की संख्या लगभग तीन दशमलव पाँच करोड़ तक है। “श्यामसुंदर दास अवधी बोलने वालों की संख्या दो करोड़ बताते हैं।”²

साहित्य में लोकचिंतन को प्रमुखता प्रदान करने के कारण लोकभाषा में इस बोली का महत्वपूर्ण स्थान है। इस भाषा के प्राचीन साक्ष्य प्रथम शताब्दी के आस-पास प्राप्त होते हैं। “प्रारम्भिक अवधी के उदाहरण पीपरहवाँ, सौहगौरा, सारनाथ रुम्मीदेई एवं खैरागढ़ के अभिलेख हैं। प्रारम्भिक अवधी के उदाहरण मुख्य रूप से 9वीं- 14वीं सदी के मध्य है।”³

अवधी भाषा में सूफी साहित्यकारों में मुल्ला-दाउद, कुतुबन, मंझन, नूर मुहम्मद, मलिक मुहम्मद जायसी तथा रामकाव्यधारा के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास, लालदास, नारायण दास का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। “यद्यपि प्राकृत पैगलम्, राउलवेल, उक्तिव्यक्ति प्रकरण, कीर्तिलता आदि में अवधी के उदाहरण मिलते हैं। यहाँ तक कि हेमचन्द्र की अपभ्रंश भाषा में भी अवधी की ही प्रधानता है।”⁴

व्याकरणिक दृष्टिकोण से इस भाषा की उन्नति के कारणों को अगर विश्लेषित किया जाए तो महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति तथा व के स्थान पर ‘ब’ का प्रयोग ‘ण’ के स्थान पर ‘न’ का प्रयोग इस भाषा को विशिष्टता प्रदान करती है। अ, इ, उ के ह्रस्व और अति ह्रस्व दो रूप मिलते हैं। संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं – घोरा, घोरवा, घोरउवा। सर्वनाम में – मैं, महाँ, मोहि, मोर, तू, तुई, तोहि, तोर ओका, ओकर, तथा क्रिया में जाब, करब, चलब, आदि मिलते हैं।

“अर्द्धमागधी जैनमतावलंबियों की धार्मिक भाषा के रूप में कई शताब्दियों तक लोकप्रिय रही यह कोशी-कोशल प्रदेश की भाषा है, इसमें अनेक भारतीय अनार्य भाषाओं के तत्व भी आ गए। इससे इस भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता का विकास हुआ।” अवधी भाषा मध्यकाल में साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। इस भाषा के विस्तार में भौगोलिक तत्वों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। लखीमपुर खीरी से होते हुए नेपाल की सीमा तक, कानपुर से होते हुए मिर्जापुर तक यह भाषा विस्तृत भू-भाग को स्वयं में समाहित किए हुए है।

पश्चिमी एवं बिहारी हिन्दी के मध्य में स्थित होने के कारण यह भाषा व्यापक स्तर पर जन समूह की भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बनी। अवधी एक ऐसी भाषा है जिसने मध्यकाल में धार्मिक सौहार्द एवं भाईचारे को व्यक्त कर साहित्य में उत्कृष्टता को प्राप्त किया। सूफी कवियों ने अपनी मसनवी शैली के साथ इस भाषा को जनसामान्य के साथ जोड़ने का कार्य किया तो वहीं पर गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी संस्कृतनिष्ठता के साथ भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित किया। सूफी कवियों ने ग्रामीण जनजीवन से प्रेमाख्यानों को निकालकर साहित्य पटल पर स्थापित किया, तो तुलसी जन-जन में संस्कृतनिष्ठ अवधी के साथ मानवीय मूल्यों भ्रातृ-प्रेम, कर्तव्य, त्याग एवं समन्वय को स्थापित किया।

जन कारन तारन भव भंजन धरनी भार।

की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।⁵

अवधी भाषा के विकास हेतु अवध क्षेत्र में विभिन्न समितियों की स्थापनाएं एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। अनियत कालीन पत्रिका बोली, बानी, प्राची, अवधी तथा सुल्तानपुर में स्थापित ‘दिव्या समिति’ जिसने अवधी लोक-साहित्य के संवर्धन हेतु विभिन्न वार्षिक आयोजन एवं लोकगायन, लोकनृत्य तथा विचारगोष्ठियों का आयोजन कर अप्रतिम योगदान दे रहा है। 1883 ई. में फैजाबाद (वर्तमान में अयोध्या) में पं. राजबहादुर द्विवेदी द्वारा अवधी साहित्य संस्थान की स्थापना, इस लोक-भाषा के अनुशीलन सवर्द्धन हेतु व्याख्यानों, संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं के आयोजन के साथ-साथ अवधी भाषा के साहित्य एवं संस्कृति से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों का संकलन एवं प्रकाशन जैसे महत्वपूर्ण कार्य भी कर रहा है।

बाराबंकी जिला अवधी का केन्द्र या हृदय कहा जाता है। यहाँ डॉ. रामबहादुर मिश्र द्वारा अवधी अध्ययन केन्द्र की प्रेरणास्वरूप 1990 ई. में ‘अवध भारती समिति’ की स्थापना की गई जो कि अवधी भाषा के उन्नयन एवं संवहन में महत्वपूर्ण कदम था। इस संस्था ने राष्ट्रभाषा के विकास में अवधी का योगदान तथा लोककला, लोकगीतकारों की सूचनाओं का प्रकाशन, अवधी साहित्य के साहित्यकारों का सम्मान एवं अवध ज्योति जैसी त्रैमासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

अवधी के विकास में कृष्ण मणि मैत्रेय द्वारा स्थापित 'सरिता साहित्य संस्थान' की स्थापना सुल्तानपुर जनपद में किया गया। ये स्वयं अवधी भाषा के सिद्धहस्त साहित्यकार थे। इनका 'निर्मोही बाप' नामक अवधी उपन्यास बहुत चर्चित रहा। उन्हें इनके अवधी उपन्यास 'अमंगल हारी' के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'जायसी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

कुछ अन्य संस्थाएँ भी अवधी भाषा के संवर्द्धन हेतु अपना अमूल्य योगदान कर रही हैं जिनमें हैदरगढ़, बाराबंकी में स्थापित 'अवधी परिषद', लखीमपुर खीरी में स्थापित पं. वंशीधर शुक्ल स्मारक समिति, सीतापुर में स्थापित तुलसीपीठ, चन्द्रमणि स्मृति शोध संस्थान, लोक कला मंच आदि हैं।

अवधी भाषा की उत्पत्ति विद्वानों ने 1000 ई. या 1100 ई. के आसपास माना है। उद्योतन सूरि कृत 'कुवलयमाला', जो कि 8वीं सदी का ग्रंथ है, में देशी भाषा के रूप में अवधी का उल्लेख मिलता है। 'अवधी के पश्चिम में स्थित कन्नौजी, ब्रज आदि बोलियाँ शौरसेनी से उद्भूत हैं तथा पूर्व की भोजपुरी आदि 'मागधी' से। इसी आधार पर ग्रियर्सन ने अवधी या पूर्वी हिन्दी को 'शौरसेनी' एवं 'मागधी' के बीच की 'अर्धमागधी' से उत्पन्न माना था।⁷

अवधी भाषा की प्रथम रचना मुल्ला दाउद कृत 'चन्दायन' को माना जाता है। उन्नाव, रायबरेली, लखनऊ, फतेहपुर में इसे बैसवाड़ी कहा जाता है। इसकी उपबोलियों में बैसवाड़ी, बनौधी, मिर्जापुरी है। बंगाल में सूफियों के द्वारा इसका नाम 'गोयानी' या 'गोहानी' दिया गया है।

अवधी के विकास क्रम की बात किया जाए तो हम इसे तीन भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम-प्रारम्भ से 1400 ई. तक, द्वितीय- 1400 ई. से 1700 ई. तक, तृतीय -1700 ई. से अब तक। "अवधी के प्राचीनतम बीजों के रूप हमें पहली सदी के पूर्व मिलने लगते हैं।"⁸ अवधी का प्राचीन साहित्य बहुत ही सम्पन्न है। भक्तिकाल और रीतिकाल इस भाषा की समृद्धि का प्रमाण है जिसमें तुलसीकृत 'रामचरितमानस' अकेले ही इस भाषा की प्रसिद्धि का द्योतक है। रीतिकाल के अन्तर्गत सूफी कवियों ने इस भाषा की सहजता के देख कर ही इसे अपनी भाषा लेखनी का माध्यम चुना। "अवधी एक व्यंजनांत बोली है।"⁹

अवधी के रूप हमें प्राकृतपैंगलम, राउलवेल, उक्तिव्यक्ति प्रकरण, कीर्तिलता में भी प्राप्त होते हैं। वास्तव में अवधी का अंकुरण प्राकृत काल में हुआ और इनका पर्याप्त विकास अपभ्रंश के परवर्ती काल में हुआ। "1400 ई. तक अवधी का निर्माण काल या आदिकाल माना जा सकता है। उसके बाद 1700 ई. तक इसका मध्यकाल है।"¹⁰ मध्यकाल में अन्तर्गत मुल्लादाउद कृत 'लोरकहा' या चन्दायन (1370ई.) सूरजदास कृत रामजन्म, लालदास कृत हरिचरित, ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा, भरत मिलाप, अंगद पैज, कुतुबन कृत मृगावती, मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत, तथा आलम, उसमान, शेखनबी, चतुर्भुज दास, लालदास, नारायणदास की रचनाओं से प्राप्त होते हैं। वर्तमान काल में संचार माध्यम भी अवधी के विकास में बहुत ही सहायक हुए हैं। "वर्तमान काल में रेडियो के माध्यम से बहुत से साहित्यकार सामने आए हैं।"¹¹

इसी क्रम में बलभद्र दीक्षित 'पद्दीस' वंशीधर शुक्ल, रमई काका, शारदाप्रसाद 'भुशुडि' बहुत ही उल्लेखनीय हैं। द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने भी अवधी भाषा में रचना करके इसकी उपादेयता सिद्ध की। वास्तव में वर्तमान काल के लेखकों ने अवधी को जीवन्त रखा है। निर्झर प्रतापगढ़ी, आद्या प्रसाद उन्मत्त, विकल गोंडवी, विश्वनाथ पाठक, त्रिलोचन शास्त्री, विक्रम मणि त्रिपाठी आदि आधुनिक काल के लेखकों ने अवधी के विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

अवधी भाषा के विकास क्रम को देखा जाए तो तीन सौ वर्षों से अधिक इस काल में भाषा की एकरूपता नहीं रही जो कि एक स्वाभाविक बात है। क्योंकि कोई भी भाषा हो वह देश-काल के वातावरण में अपने को ढालती जाती है। उसमें परिवर्तन उस भाषा की प्रकृति के हिसाब से होता चला जाता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो कुतुबन तथा उसके पहले के काल से 'पूर्व-मध्यकाल' के अन्तर्गत तथा मलिक मुहम्मद जायसी तथा उसके बाद के काल को 'उत्तर-मध्यकाल' के अन्तर्गत रख सकते हैं। "कुतुबन तथा जायसी की रचनाओं में कहने को लगभग लगभग तीस वर्ष का अन्तर है, किन्तु उनकी भाषा स्पष्टतः दो स्तरों की है। कुतुबन में पुरानी अवधी है तो जायसी में बाद की। यदि पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल की अवधी की तुलना करें तो देखेंगे कि कुछ बातें पूर्व में यदि बहुत मिलती हैं, तो उत्तर-मध्यकाल में से कम हो गई हैं तथा आधुनिक काल में नहीं मिलती या समाप्तप्राय हैं।"¹²

विकास क्रम में कुछ उदाहरणों को ले सकते हैं जैसे- तिन-तेन्ह और तिन-तिन्ह को लिया जा सकता है। यह तिन-तेन्ह शब्द पूर्ववर्ती मध्यकाल में बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ था, तो उत्तर मध्यकाल में कम प्रयुक्त हुआ और वहीं अब प्रायः बिल्कुल नहीं। ठीक इसके विपरीत तिन-तिन्ह पूर्व-मध्यकाल में कम, उत्तर में अधिक और अब बहुत अधिक प्रयोग में है। "भव-भा के बारे में भी यही बात है। 'भव' का विकास 'भा' में हुआ है। भव पूर्व मध्य में बहुत मिलता है, उत्तर में कम और अब प्रायः नहीं।"¹³

अवधी भाषा के शब्द समूह में भी बहुत परिवर्तन हुआ है। 'अछ' धातु का प्रयोग पूर्व मध्यकाल में बहुत अधिक मिलता है। इसके प्रायः सभी रूप हमें मिलते हैं जैसे- आछहिं (हैं) आछत (है)। परन्तु उत्तर मध्यकाल में इसका प्रयोग बहुत प्राप्त होता है। "जायसी में 'आछै' 'आछत' इन दो रूपों में यह क्रिया केवल चार बार आई है। तुलसी में यह धातु 'आछत' शब्द रूप में ही एक-दो बार प्रयुक्त है। अब इसका प्रयोग समाप्त हो गया।"¹⁴

इस तरह अवधी विभिन्न कालखण्ड में अपना विकास करती रही। 1700 ई. के बाद देखें तो अवधी भाषा में रचित ग्रंथ निम्न है- छेमकरन कृत कृष्णचरितामृत, शिवराम द्वारा रचित भक्ति जयमाल, कासिमशाह कृत हंस-जवाहिर, नूरमुहम्मद द्वारा रचित इन्द्रावती, शेख निसार विरचित युसुफ जुलेखा, भवानी शंकर कृत बैतालपचीसी, अलीशाह कृत प्रेम चिनगारी तथा ख्वाजा अहमद कृत 'नूरजहाँ' है।

आधुनिक काल में सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ की बात करें तो वह 'कृष्णायन' है। जो कि द्वारका प्रसाद मिश्र द्वारा रचित है। वास्तव में अवधी भाषा एक बहुत ही जीवन्त भाषा है। वह आज भी विकास के पथ पर है। उसमें नित-नवीनता धारण करने की विशेषता है। इसी गुण के कारण वह आज भी जीवन्त है। इसके सम्पूर्ण विकास क्रम पर ध्यान दें तो पता चलता है कि मध्यकाल में जीवन्त अरबी फारसी के शब्द इस भाषा में आ गए तो आधुनिक काल में अंग्रेजी के शब्द मिलते हैं। वहीं अब बोलचाल की अवधी खड़ी बोली से प्रभावित हुई है।

अवधी भाषा की व्याकरणिक विशेषताओं के अन्तर्गत देखें तो इसमें संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं जैसे-नदी, नदिय, नदीवा।

स्त्रीलिंग प्रत्यय में ईय जैसे- घोड़ी, बकरी।

इनि - मालिनि, वाधिनि।

इनी से - साधिनी, लरिकिनी बनिनी।

आनी से - नौकरानी, जेठानी, देवरानी, पंडितानी ।

सर्वनाम में - उत्तम पुरुष - एकवचन - मैं, मो, मई, मोहि ।

बहुवचन - हम, हमन, हम, हमारा।

मध्यम पुरुष एकवचन - तू, तुई तोर, तोहिं।

बहुवचन - तुम, तुमहिं, तुम्हारा।

अन्य पुरुष - एक वचन - ऊ, ओका, ओहि, ओकर

बहुवचन - ओ सब, ओनकर उन्हा।

विशेषण के अन्तर्गत - इसमें आकारान्त विशेषण बहुत कम हैं। इसमें - अच्छे, अच्छी, कुआँरे, कुआँरी। प्रायः विशेषण आकारान्त नहीं होते हैं। उनका लिंग वचन के अनुसार रूप नहीं बदलता है। जैसे- मीठ फल, मीठ रोटी, मीठ रोटिन। इसी तरह खोट, नीक, छोट, थोर, बहुत।

क्रिया के अन्तर्गत - प्रेरणार्थक क्रिया - निकार निकरवा, फेर-फेरवा, देखा, देखवा।

क्रियार्थक संज्ञा - चलब, करब, जान, जाब।

आज्ञार्थक - चला, करा, चल चलउ।

पूर्वकालिक कृदन्त - देखि देखि क ।

कर्मवाच्य - कहा नई जातिउ, ई देखति हइ।

अर्द्धमागधी अपभ्रंश से विकसित अवधी भाषा की समृद्धि जगजाहिर है। यह भारत देश में ही नहीं अपितु विदेश के अन्तर्गत 'फिजी' में भी बोली जाती है। 'रामचरितमानस' जैसा महान ग्रंथ इस भाषा की महान उपलब्धि है यह उत्तर प्रदेश के कई जनपदों की भाषा है। इसके अन्य नामों में बैसवाड़ी, पूरनी, है। ठेठ अवधी में जायसी कृत 'पद्मावत' तो तुलसीकृत परिष्कृत अवधी में 'रामचरितमानस' रचित है। यह रामभक्तिशाखा के कवियों तथा सूफियों प्रेमाख्यान की प्रमुख भाषा रही। "हिन्दी के आधुनिक कवियों में अवधी में कविता लिखी त्रिलोचन शास्त्री ने।¹⁵

इस प्रकार से देखा जा सकता है कि अवधी का कितना समृद्ध इतिहास है। ये विडम्बना ही है कि घर-घर जिस अवधी ग्रंथ की पूजा की जाती है। वह अवधी भाषा अभी तक संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान नहीं बना पाई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्द, अर्थ, प्रयोग, पृ. - 91
2. श्यामसुंदरदास भाषा-विज्ञान, पृ. - 108
3. हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्द, अर्थ प्रयोग, पृ. - 13
4. हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्द, अर्थ, प्रयोग, पृ. - 13
5. मीरा दीक्षित, हिन्दी भाषा, पृ. - 39
6. मीरा दीक्षित, हिन्दी भाषा, पृ. - 41
7. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ. - 46
8. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ. - 46
9. डॉ. हरदेव बाहरी हिन्दी शब्द, अर्थ, प्रयोग, पृ. - 92
10. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिन्द हिन्दी भाषा, पृ. - 47
11. डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दी भाषा, पृ. - 185
12. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ. - 47
13. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ. - 47
14. डॉ. भोलाल तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ. - 47
15. डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दी - शब्द, अर्थ, प्रयोग, पृ. - 92

शिवराजविजय में वीर रस तथा अलंकारों की प्रधानता

डॉ० तबस्सुम

श्रीमद् अम्बिकादत्त व्यास कृत शिवराज विजय संस्कृतवाङ्मय का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास हैं। व्यास जी ने शिवराज विजय लिखकर राष्ट्रीय प्रेम से परिपूर्ण छत्रपति शिवजी का पावन आदर्श हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिकता, देशभक्ति, राजभक्ति, मातृभूमि भक्ति आदि भावों का इस अनुपम कृति में सुन्दर समन्वय हुआ है।

शिवराजविजय का प्रधान एस वीर है। हास्य, शान्त, वीभत्स भी सहायक रूप में अंकित हुए हैं। परन्तु प्रधानता वीर रस की ही है। यदि हम यह कहें कि वीर रस के इतने सुन्दर चित्र संस्कृत साहित्य में बहुत कम मिलते हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी। वीर रस का यह उदाहरण देखने योग्य है-

“इत्याकर्णयत एवं शिववीरस्य अरूणकौशेय-जाल-निबद्धौ मीनाविव नयने सञ्जाते, मुखं च बाल-भास्कर-बिम्ब-विडम्बनामाललम्बे, अघरं च धीरता-धुराम धरीकृतवान्”.....¹

इस गद्य खण्ड में गौर सिंह के वचन सुनते ही वीर शिवाजी अत्यन्त कुपित हो गये। उनकी आँखें लाल हो गई तथा अधर फड़कने लगे। वे अपनी मूँछों पर हाथ फेरने लगे।

अतः इस अनुच्छेद में ‘वीररस’ का उत्तम निदर्शन है

वीर रस का यह उदाहरण भी देखने योग्य है-

“अहो दुर्गमता महाराष्ट्रदेशस्य अहो!

दुराधर्षता महाराष्ट्राणाम्, अहो! वीरता शिववीरस्य आहो! निर्भयता एतत्सेनानीनाम्, अहो त्वरितगतिरेतद्घोटकानाम्, आः! किं कथयामः? दृष्ट्वैव चमत्कार शिववीर-चन्द्रहासस्य न वयं पारयामो धैर्यं धर्तुम्, न च शक्नुमो युद्धस्थाने स्थातुम् को नाम द्विशिरा यः शिवेन योद्धुं गच्छेत्? कश्च नाम द्विपृष्ठो यस्तद्भटैरपि छःलालापं विद्धयात्? वयं बलिनः, आस्माकीना महती सेना, तथाऽपि न जानीमः, किमिति कम्पत इव क्षुम्यतीव च हृदयम्! यवनानां पराजयो भविष्यति, अफजलखानो विनङ्क्ष्यति।”.....²

उपर्युक्त गद्यांश में शिवजी जी की वीरता देखकर यवनों में भय की भावना जागृह हो गई है।

अफजल खाँ के वध का यह प्रसंग भी देखने योग्य है-

“तत्क्षणादेव च शिववीर ध्वजिन्यां महाध्वज एकः समुच्छितः। तत्समकालमेव भवन-शिविरस्य पृष्ठस्थिता शिववीर सेना शिविरमग्निनात्कृतवती पुनः स्थित सेनासु च अकस्मादेव महाराष्ट्र-कंसरिणः समपतन्। तेषां ‘हर हर महादेव’ गर्जनपुरस्सर छिन्धि मिन्धिमारय-विपोथय’ इति कोलाहलः, प्रत्यर्थिनां च ‘खुदा-तोबा अल्लादि पारस्य-पदमयः कलकलो रोदसी समपूरयत्।”.....³

इसी प्रकार वीभत्स रस का यह अवतरण दर्शनीय है-

“अथ मुनिरपि दाडिम-कुसुमास्त-रणाच्छन्नायामिव गाढ, खधिर दिग्घायां ज्वलदङ्गार चितायां चितायामिव वसुधायां शयानं वियुज्यमान भारतमुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवमदंगबन्ध चालनपरं शोणित-संधात-व्याजेनान्त-स्थित रजोराशिभि-वोद्विगन्तं कलित सायन्तन-घनाऽऽडम्बर-विभ्रमं सतत-ताम्र चूडमक्षण -पातकेनेव ताम्री कृतं छिन्न-कन्धर यवनहतकमवलोक्य सहर्ष ससाधुवादं सरोमोद्गमं च।।”.....⁴

अलंकारों के प्रयोग में पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। उनका गद्य अत्यधिक अलंकारों के भार से समाक्रान्त कामिनी की भांति मन्द मन्थर गति से चलने वाला नहीं है अपितु अपने सहज सौंदर्य से सदस्यों के चित्त को समाकृष्ट करने वाला है। उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलंकारों के प्रयोग में उनकी दक्षता एवं व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है।

“ततो यवन सेनासु शतशः सादिनः गगनं चोचुम्व्यमानाः कृत-दिगन्त-प्रकाशाः, कडकडा-ध्वनि-धर्षित -प्रान्त प्रजाः

उड्डीयमान-दन्दह्यमान-परस्सहस्र-पटखण्ड-विहित-हैम-विहगम-विभ्रामाः,

ज्योतिरिङ्गणाचित-परस्कोटि-स्फुलिङ्ग-रिङ्गित-पिङ्गीकृत-प्रान्ताः.....।”⁵

उपर्युक्त इस गद्यखण्ड में रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा और अनुप्रास अलंकार का सुन्दर चित्रण किया गया है।

उपमा अलंकार का एक उदाहरण देखने योग्य है-

“अथ कथञ्चित् प्रकाश बहुले संवृत्ते नमः स्थले, परस्परं परिचीय मानसु आकृतिषु, कमलोष्पिं विक्चतामासादयत्सु वीरवदनेषु, भ्रमरालिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असि पङ्क्तिषु, चाटकैर-चकचकायितेषु, गोपीनाथ पण्डितो.....।”.....⁶

इस गद्यखण्ड में 'कमलेष्विव विकचतामादयत्सु वीरवदनेषु' तथा 'भ्रमशलिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असिपङ्क्तिषु' इन स्थलों पर उपमा अलंकार है। उत्प्रेक्षा अलंकार का यह उदाहरण द्रष्टव्य है-

“ततः संवृते किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्याप्तासु हरित्सु भुशुण्डी स्कन्धे निधाय निपुणं निरीक्षमाणः आगत-प्रत्यागतं च विदधानः
प्रताप-दुर्ग-दौवारिकः, कस्यापि पादक्षेपह वनिमिकाऽश्रौषीत्।”.....⁷

इस गद्यखण्ड में द्वारपाल को सचेष्ट दिखलाया गया है। 'धूपधूमेनेव' इस स्थल पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

रूपक अलंकार का यह उदाहरण देखिए-

“ततस्तानरङ्गोऽचकथत्-को नामाऽपरः शिववीशत्? स एवं राजनीतौ निष्णातः, स एवं सैन्धवाऽऽरोह-विद्या-सिन्धुः, स एवं चन्द्रहास चालने चतुरः, स एवं मल्ल-विद्या-मर्मज्ञः स एवं बाणविद्या-वारिधिः, स एवं पण्डित-मण्डल-मण्डनः, स एव धैर्य-धारि-धौरयः, स एवं वीर-वार-वरः स एवं पुरुष-पौरुष-परीक्षकः, स एवं दीन-दुःख-दाव-दहनः, स एवं स्वधर्मरक्षण-सक्षणः, स एवं विलक्षण विचक्षणः स एव च मादृश-गुणि-गण-गुण-ग्रहणाऽऽग्रही वर्तते।”.....⁸

इस गद्यखण्ड में सैन्धवारोह-विद्यासिन्धुः, बाणविद्यावारिधिः, पण्डितत मण्डलमण्डनः तथा दीनदुःखदावदहनः आदि स्थलों पर सागर, आदि का समारोप होने के कारण रूपक अलंकार है। इसके अतिरिक्त महाकवि ने अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का भी उत्तर निदर्शन दिया है।

अनुप्रास अलंकार का यह उदाहरण देखें-

“एवं स ज्ञातास्वादः पौनः पुन्येन द्वादशवारमागत्य भारत-मलुलुण्ठत तस्मिन्नेव च स्वयंरम्भे एकदा गुर्जरदेश-चूडायितं सोमनाथ तीर्थमपि धूलीचकार। अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते परं तत्समये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत् तत्र हि महार्द-वैदूर्यभराग-माणिक्य-मुक्ता-फलादि-जटितानि कपाटानि स्तम्भान्, गृहावग्रहणीः.....।”.....⁹

इस गद्यखण्ड में सोमनाथ मंदिर के सातिशय वैभव का वर्णन करने से उदात्तालंकार है। अनुप्रास अलंकार की छटा भी दर्शनीय है।

इस प्रकार हम देख पाते हैं कि व्यासजी ने अपनी इस कृति शिवराजविजय में भाषा को अलंकरण के बोझ तले दबाया नहीं है अपितु विरलभूषणा रख कर उसमें आत्मतत्त्व की पुष्टी की है। उसके रूप को आकर्षक बनया है।

पंडित अम्बिकादत्त व्यास जी का 'शिवराज विजय' काव्यगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से एक सफल काव्य है। इसमें काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। साथ ही इस कृति का प्रायः प्रत्येक प्रसंग स्वाभाविक अलंकारों की छटा से विभूषित है। तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक व अनुप्रास का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

व्यास जी ने अपनी इस कृति शिवराजविजय में लगभग सभी रसों का प्रयोग किया है परन्तु प्रधानता वीर रस की ही रही है।

संदर्भ -

1. शिवराज विजय द्वितीय निश्वास, 19 पृष्ठ संख्या-151
2. शिवराज विजय द्वितीय निश्वास, 26 पृष्ठ संख्या-168
3. शिवराज विजय द्वितीय निश्वास, 50 पृष्ठ संख्या-237
4. शिवराज विजय प्रथम निश्वास, 36 पृष्ठ संख्या-101
5. शिवराज विजय द्वितीय निश्वास, 51 पृष्ठ संख्या-238
6. शिवराज विजय द्वितीय निश्वास, 47 पृष्ठ संख्या-229
7. शिवराज विजय द्वितीय निश्वास, 4 पृष्ठ संख्या-113
8. शिवराज विजय द्वितीय निश्वास, 37 पृष्ठ संख्या-198
9. शिवराज विजय प्रथम निश्वास, 22 पृष्ठ संख्या-59

बिहार में विकेंद्रीकरण और पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका

डॉ० प्रवीण कुमार झा

लोक प्रशासन विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश (Abstract)

यह आलेख बिहार में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की यात्रा और ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) की परिवर्तनकारी भूमिका का विश्लेषण करता है। ऐतिहासिक रूप से बिहार में पंचायतों की जड़ें गहरी रही हैं, लेकिन 73वें संविधान संशोधन और विशेष रूप से बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006 ने इसे एक नई वैधानिक शक्ति प्रदान की है। बिहार देश का पहला राज्य बना जिसने पंचायतों में महिलाओं को 50% आरक्षण देकर सामाजिक समावेशन की एक नई इबारत लिखी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, ये संस्थाएँ न केवल प्रशासनिक इकाई के रूप में कार्य कर रही हैं, बल्कि 'सात निश्चय योजना' और 'मनरेगा' जैसी महत्वपूर्ण योजनाओं के क्रियान्वयन की धुरी भी हैं। ग्राम सभाओं के माध्यम से स्थानीय नियोजन और ग्राम कचहरियों के माध्यम से सुलभ न्याय ने शासन को जनता के द्वार तक पहुँचाया है। हालाँकि, वित्तीय स्वायत्तता की कमी, 'मुखिया-पति' जैसी सामाजिक विसंगतियाँ और नौकरशाही का हस्तक्षेप अभी भी पूर्ण विकेंद्रीकरण की राह में बाधा बने हुए हैं। यह आलेख इस बात पर बल देता है कि डिजिटल सशक्तिकरण और जनप्रतिनिधियों के क्षमता निर्माण के माध्यम से ही बिहार में 'ग्राम स्वराज' के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है। अंततः, बिहार का समग्र विकास उसकी पंचायतों की मजबूती और उनकी सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006, महिला सशक्तिकरण, त्रि-स्तरीय संरचना, ग्राम सभा, ग्राम कचहरी, सुशासन

प्रस्तावना: बिहार में विकेंद्रीकरण एवं पंचायती राज

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का मूल दर्शन सत्ता के शीर्ष से धरातल की ओर शक्ति के प्रवाह में निहित है। सामान्य शब्दों में, विकेंद्रीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निर्णय लेने की शक्ति, उत्तरदायित्व और संसाधन केंद्र या राज्य सरकार से हटाकर स्थानीय निकायों को सौंप दिए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य शासन को जनता के द्वार तक पहुँचाना और विकास कार्यों में आम आदमी की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करना है। बिहार जैसे विशाल जनसंख्या और विविधताओं वाले राज्य में, जहाँ की 85% से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, विकेंद्रीकरण मात्र एक प्रशासनिक सुधार नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का एक अनिवार्य उपकरण है। यह व्यवस्था स्थानीय समस्याओं के स्थानीय समाधान और स्वशासन की अवधारणा को मूर्तरूप प्रदान करती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो बिहार में पंचायतों की जड़ें अत्यंत प्राचीन और गहरी हैं। मगध और वैशाली के गणराज्यों में स्थानीय स्वशासन की एक सुव्यवस्थित प्रणाली विद्यमान थी, जहाँ 'ग्राम संघ' अपने आंतरिक मामलों का निपटारा स्वयं करते थे। मध्यकाल और ब्रिटिश काल के दौरान इन संस्थाओं ने उतार-चढ़ाव देखे, लेकिन ग्रामीण समाज की स्वायत्तता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। स्वतंत्रता के पश्चात, बिहार ने इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभाते हुए बिहार पंचायत राज अधिनियम, 1947 पारित किया। हालाँकि, इन संस्थाओं को वास्तविक संवैधानिक शक्ति और एकरूपता 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से प्राप्त हुई, जिसने पंचायतों को 'स्वशासन की संस्थाओं' के रूप में मान्यता दी और उन्हें संवैधानिक दर्जा प्रदान किया।

बिहार के संदर्भ में एक नया युग तब प्रारंभ हुआ जब राज्य सरकार ने बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006 लागू किया। इस अधिनियम ने न केवल केंद्र के 73वें संशोधन के प्रावधानों को आत्मसात किया, बल्कि बिहार को देश का पहला ऐसा राज्य बना दिया जिसने पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 50% आरक्षण का क्रांतिकारी प्रावधान किया। इसके अतिरिक्त, अत्यंत पिछड़ा वर्ग (EBC) और अनुसूचित जाति/जनजाति को जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व देकर सामाजिक न्याय के सिद्धांत को सुदृढ़ किया गया। आज, बिहार में त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद) सुशासन के एक सशक्त स्तंभ के रूप में कार्य कर रही है, जो राज्य के समावेशी विकास और ग्रामीण सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त करती है।¹

बिहार में पंचायती राज का त्रि-स्तरीय ढांचा

बिहार में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ करने के लिए त्रि-स्तरीय संरचना को अपनाया गया है, जो शासन के विभिन्न स्तरों के बीच समन्वय और शक्ति के वितरण को सुनिश्चित करती है। इस पिरामिडनुमा संरचना के आधार पर ग्राम पंचायत स्थित है, जो प्रत्यक्ष लोकतंत्र का सबसे जीवंत उदाहरण है। लगभग 7,000 की जनसंख्या पर गठित होने वाली यह इकाई ग्रामीण विकास की प्राथमिक योजनाओं का खाका तैयार करती है। ग्राम पंचायत का नेतृत्व 'मुखिया' द्वारा किया जाता है, जबकि वार्ड सदस्य अपने-अपने क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ ग्राम सभा की भूमिका सर्वोपरि है, जिसे 'संसदीय' स्वरूप

प्राप्त है; यह न केवल बजट पारित करती है बल्कि विकास कार्यों का सामाजिक अंकक्षण (Social Audit) भी करती है, जिससे शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही बनी रहती है।

मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत समिति कार्य करती है, जिसका गठन प्रखंड (Block) स्तर पर होता है। यह ग्राम पंचायत और जिला परिषद के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती है। प्रत्येक 5,000 की जनसंख्या पर एक पंचायत समिति सदस्य का निर्वाचन होता है, जो अपने बीच से एक 'प्रमुख' और 'उप-प्रमुख' का चुनाव करते हैं। प्रखंड विकास पदाधिकारी (BDO) इस निकाय के पदेन सचिव के रूप में कार्य करते हैं, जिससे प्रशासनिक और निर्वाचित अंगों के बीच तालमेल बना रहता है। इस स्तर पर मुख्य ध्यान विभिन्न पंचायतों के बीच विकास कार्यों के समन्वय और तकनीकी सहायता प्रदान करने पर होता है।³

इस संरचना के शीर्ष पर जिला परिषद स्थित है, जो पूरे जिले के ग्रामीण विकास की रणनीति तय करती है। लगभग 50,000 की जनसंख्या पर एक जिला परिषद सदस्य निर्वाचित होता है। जिला परिषद का अध्यक्ष 'अध्यक्ष' (Chairman) कहलाता है। यह निकाय मुख्य रूप से योजना निर्माण, पर्यवेक्षण और राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अनुदानों के वितरण का कार्य करता है। जिला परिषद के माध्यम से ही कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक कल्याण की बड़ी योजनाओं को ग्रामीण धरातल पर उतारा जाता है। इस प्रकार, यह त्रि-स्तरीय ढांचा बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में 'ऊपर से नीचे' (Top-down) के बजाय 'नीचे से ऊपर' (Bottom-up) की विकास पद्धति को साकार करता है।

बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006 की विशिष्ट विशेषताएं

वर्ष 2006 का अधिनियम बिहार के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हुआ, क्योंकि इसने सत्ता के स्वरूप को आमूल-चूल रूप से बदल दिया। इस अधिनियम की सबसे क्रांतिकारी विशेषता महिलाओं के लिए 50% आरक्षण का प्रावधान था। बिहार ऐसा करने वाला देश का पहला राज्य बना, जिसने पितृसत्तात्मक समाज की बेड़ियों को तोड़ते हुए लाखों महिलाओं को सक्रिय राजनीति और निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किया। इस कदम ने न केवल महिलाओं के आत्मविश्वास को बढ़ाया, बल्कि स्वास्थ्य, स्वच्छता और बाल शिक्षा जैसे जमीनी मुद्दों को विकास के एजेंडे में प्राथमिकता दिलाई। इसके साथ ही, अनुसूचित जाति, जनजाति और अत्यंत पिछड़े वर्गों (EBC) के लिए जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण ने उन समुदायों को आवाज दी जो सदियों से हाशिए पर थे।

इस अधिनियम की एक और अनूठी विशेषता ग्राम कचहरी का पुनरुद्धार है। न्यायिक विकेंद्रीकरण की दिशा में यह एक साहसिक कदम था, जिसका उद्देश्य ग्रामीण स्तर पर छोटे दीवानी और फौजदारी मामलों का त्वरित और सस्ता निपटारा सुनिश्चित करना था। 'सरपंच' और 'पंचों' के माध्यम से संचालित यह व्यवस्था न केवल अदालतों के बोझ को कम करती है, बल्कि सामाजिक सद्भाव को भी बढ़ावा देती है।⁴ इसके अलावा, अधिनियम ने राज्य निर्वाचन आयोग और राज्य वित्त आयोग की शक्तियों को स्पष्ट किया, जिससे चुनावों की निष्पक्षता और वित्तीय संसाधनों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित हो सके।

अंततः, 2006 के अधिनियम ने पंचायतों को मात्र एक 'एजेंसी' के बजाय 'स्वशासन की इकाई' के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। इसने वार्ड सभा और ग्राम सभा को संवैधानिक मजबूती प्रदान की, जिससे भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने और सार्वजनिक संपत्तियों के प्रबंधन में समुदाय की भूमिका बढ़ी। 'मुख्यमंत्री सात निश्चय योजना' के तहत 'हर घर नल का जल' जैसी महत्वाकांक्षी योजनाओं का क्रियान्वयन इसी सशक्त ढांचे के कारण संभव हो सका है। यह अधिनियम केवल कानूनी दस्तावेज नहीं, बल्कि बिहार के ग्रामीण समाज के सशक्तीकरण और लोकतांत्रिक परिपक्वता का घोषणापत्र है।

विकेंद्रीकरण में पंचायती राज संस्थाओं की विकासात्मक भूमिका

बिहार में पंचायती राज संस्थाएँ (PRIs) अब केवल प्रशासनिक ढांचा मात्र नहीं रह गई हैं, बल्कि वे ग्रामीण परिवर्तन की मुख्य वाहक बन चुकी हैं। राज्य सरकार की महत्वाकांक्षी 'मुख्यमंत्री सात निश्चय योजना' के सफल क्रियान्वयन में पंचायतों की भूमिका केंद्रीय रही है। विशेष रूप से 'हर घर नल का जल' और 'गली-नाली पक्कीकरण' जैसी योजनाओं को वार्ड स्तर पर क्रियान्वित कर पंचायतों ने यह सिद्ध किया है कि स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय भागीदारी से ही संभव है। इन योजनाओं के तहत वार्ड क्रियान्वयन एवं प्रबंधन समिति (WIMC) को अधिकार देकर विकेंद्रीकरण को सीधे जनता के घर तक पहुँचाया गया है। इसके अतिरिक्त, मनरेगा (MGNREGA) जैसी योजनाओं के माध्यम से पंचायतों ने न केवल परिसंपत्तियों का निर्माण किया है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में पलायन को रोकने और स्थानीय रोजगार सृजन में भी महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है।⁵ जल संरक्षण के लिए 'जल-जीवन-हरियाली' अभियान के तहत तालाबों का जीर्णोद्धार और वृक्षारोपण जैसे कार्य पंचायतों की सक्रियता के बिना संभव नहीं थे।

शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे सामाजिक क्षेत्रों में भी पंचायतों का हस्तक्षेप बढ़ा है। प्राथमिक विद्यालयों के प्रबंधन, मध्याह्न भोजन (Mid-day Meal) की निगरानी और आंगनवाड़ी केंद्रों के माध्यम से पोषण सुनिश्चित करने में पंचायत प्रतिनिधि महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में, टीकाकरण अभियानों और महामारी के दौरान क्वारंटाइन केंद्रों के प्रबंधन ने यह स्पष्ट कर दिया कि आपदा प्रबंधन में पंचायतें पहली रक्षा पंक्ति (First line of defense) हैं। कृषि के क्षेत्र में, जैविक खेती को बढ़ावा देने और सरकारी योजनाओं का लाभ पात्र किसानों तक पहुँचाने के लिए ग्राम सभाओं का उपयोग एक सशक्त मंच के रूप में किया जा रहा है। इस प्रकार, बिहार की पंचायतें आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की दोहरी जिम्मेदारी का निर्वहन कर रही हैं, जिससे ग्रामीण जीवन स्तर में व्यापक सुधार हुआ है।

पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष चुनौतियाँ और बाधाएँ

संवैधानिक सशक्तीकरण और अनेक सफलताओं के बावजूद, बिहार में पंचायती राज व्यवस्था कई गंभीर चुनौतियों से जूझ रही है। इनमें सबसे प्रमुख वित्तीय स्वायत्तता का अभाव है। पंचायतें आज भी अपने राजस्व के स्वयं के स्रोतों (जैसे कर, शुल्क आदि) को विकसित करने में विफल रही हैं और पूरी

तरह से राज्य और केंद्र सरकार द्वारा प्राप्त अनुदानों पर निर्भर हैं। इससे उनकी कार्यक्षमता और स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति प्रभावित होती है। साथ ही, नौकरशाही का अत्यधिक हस्तक्षेप भी एक बड़ी बाधा है। कई बार निर्वाचित प्रतिनिधियों और सरकारी अधिकारियों (जैसे BDO या पंचायत सचिव) के बीच समन्वय की कमी के कारण महत्वपूर्ण योजनाएं समय पर पूरी नहीं हो पातीं। प्रशासनिक जटिलताओं और 'लालफीताशाही' के कारण पंचायतों को प्राप्त शक्तियों का धरातल पर क्रियान्वयन बाधित होता है।⁶

सामाजिक स्तर पर, 'मुखिया-पति' या 'प्रतिनिधि' संस्कृति एक गंभीर चुनौती बनी हुई है। महिला आरक्षण के बावजूद, कई क्षेत्रों में निर्णय लेने की वास्तविक शक्ति उनके पुरुष रिश्तेदारों के हाथों में केंद्रित रहती है, जो महिला सशक्तिकरण के मूल उद्देश्य को चोट पहुँचाती है। इसके अलावा, जनप्रतिनिधियों में तकनीकी ज्ञान और डिजिटल साक्षरता की कमी भी एक बड़ी समस्या है, जिससे 'ई-ग्राम स्वराज' और ऑनलाइन ऑडिट जैसे आधुनिक सुधारों का पूरा लाभ नहीं मिल पा रहा है। ग्रामीण स्तर पर व्याप्त जातिवाद और दलीय राजनीति कभी-कभी ग्राम सभा के सामूहिक हितों को प्रभावित करती है, जिससे विकास कार्यों का वितरण असमान हो जाता है। अंततः, भ्रष्टाचार और पारदर्शिता की कमी जैसे मुद्दे भी इस व्यवस्था की साख पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं, जिन्हें दूर किए बिना पूर्ण लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन है।

ई-गवर्नेंस और आधुनिक पहल: पंचायतों का डिजिटलीकरण

21वीं सदी में बिहार की पंचायती राज व्यवस्था ने तकनीक को अपनाकर पारदर्शिता और जवाबदेही की एक नई मिसाल पेश की है। 'ई-ग्राम स्वराज' (e-Gram Swaraj) पोर्टल के माध्यम से पंचायतों के नियोजन, लेखांकन और मॉनिटरिंग को ऑनलाइन कर दिया गया है। इससे न केवल भ्रष्टाचार पर लगाम लगी है, बल्कि आम नागरिकों को भी यह जानने का अधिकार मिला है कि उनके क्षेत्र के लिए कितना फंड आवंटित हुआ और वह कहाँ खर्च किया गया। बिहार सरकार ने 'डिजिटल बिहार' पहल के तहत ग्राम पंचायतों को हाई-स्पीड ब्रॉडबैंड से जोड़ने का लक्ष्य रखा है, जिससे 'पंचायत सरकार भवन' अब केवल प्रशासनिक केंद्र न रहकर 'डिजिटल सेवा केंद्र' के रूप में उभर रहे हैं।⁷

इसके अतिरिक्त, लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम (RTPS) के तहत दी जाने वाली विभिन्न सेवाओं (जैसे जाति, आय, निवास प्रमाण पत्र) को पंचायत स्तर पर सुलभ कराकर विकेंद्रीकरण को एक नया आयाम दिया गया है। अब ग्रामीणों को छोटे-छोटे कार्यों के लिए प्रखंड या जिला मुख्यालयों के चक्कर नहीं काटने पड़ते। साथ ही, पंचायतों के खातों का 'ऑनलाइन ऑडिट' अनिवार्य करने से वित्तीय अनुशासन सुनिश्चित हुआ है। सोलर स्ट्रीट लाइट योजना जैसी तकनीकी परियोजनाओं का प्रबंधन भी अब पंचायतों के माध्यम से हो रहा है, जो 'स्मार्ट विलेज' की अवधारणा को पुष्ट करता है। तकनीक का यह समावेशन बिहार की ग्रामीण राजनीति में 'पढ़े-लिखे' और 'तकनीकी रूप से सक्षम' युवाओं की भागीदारी को भी प्रोत्साहित कर रहा है।⁸

निष्कर्ष

बिहार में विकेंद्रीकरण और पंचायती राज संस्थाओं की यात्रा एक ऐतिहासिक परिवर्तन की गाथा है। प्राचीन 'ग्राम संघों' से लेकर 2006 के क्रांतिकारी अधिनियम तक, बिहार ने बार-बार यह सिद्ध किया है कि विकास का वास्तविक मार्ग गाँवों की गलियों से होकर ही गुजरता है। महिला आरक्षण और हाशिए पर खड़े समुदायों को सत्ता में भागीदारी देकर बिहार ने सामाजिक न्याय के मॉडल को धरातल पर उतारा है। हालाँकि, वित्तीय निर्भरता और 'मुखिया-पति' जैसी प्रशासनिक एवं सामाजिक बाधाएँ अभी भी एक चुनौती बनी हुई हैं, लेकिन इन बाधाओं को पार करने के लिए राज्य निरंतर प्रयासरत है।

आगे की राह के लिए यह आवश्यक है कि पंचायत प्रतिनिधियों के क्षमता निर्माण (Capacity Building) हेतु नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएँ और उन्हें वित्तीय प्रबंधन की अधिक शक्तियाँ दी जाएँ। ग्राम सभाओं को और अधिक सशक्त और सक्रिय बनाना होगा ताकि 'नीचे से ऊपर' (Bottom-up) की नियोजन प्रक्रिया और प्रभावी हो सके। यदि बिहार अपनी पंचायतों को पूर्णतः आत्मनिर्भर और डिजिटल रूप से सक्षम बनाने में सफल रहता है, तो यह न केवल राज्य के लिए बल्कि पूरे देश के लिए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का एक आदर्श मॉडल होगा। अंततः, सशक्त पंचायतें ही 'विकसित बिहार' और 'सशक्त भारत' की नींव बनेंगी।

संदर्भ सूची (References)

1. बिहार सरकार (2006): बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006, पंचायती राज विभाग, पटना। (यह प्राथमिक कानूनी स्रोत है)।
2. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण (2024): योजना एवं विकास विभाग, बिहार सरकार। (पंचायतों के माध्यम से व्यय और विकास दर के नवीनतम आंकड़ों के लिए)।
3. भारत का संविधान (73वां संशोधन अधिनियम, 1992): भारत सरकार के विधायी विभाग द्वारा जारी संवैधानिक प्रावधान।
4. 15वां वित्त आयोग (XV-FC) रिपोर्ट: स्थानीय निकायों के लिए वित्तीय हस्तांतरण और अनुदान संबंधी अनुशंसाओं हेतु।
5. मुख्यमंत्री सात निश्चय योजना रिपोर्ट: बिहार सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देश और कार्यान्वयन रिपोर्ट (विशेषकर 'हर घर नल का जल' और 'पक्की नाली-गली' हेतु)।
6. डॉ. बी. के. सिंह (संपादक): बिहार में पंचायती राज और ग्रामीण विकास, (विभिन्न शोध पत्रों का संकलन जो सामाजिक प्रभाव का विश्लेषण करता है)।
7. ई-ग्राम स्वराज पोर्टल (e-Gram Swaraj): पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार की आधिकारिक वेबसाइट (डिजिटल गवर्नेंस और ऑनलाइन ऑडिट के आंकड़ों के लिए)।
8. कुरुक्षेत्र एवं योजना पत्रिका (बिहार विशेषांक): ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित लेख, जो बिहार में स्थानीय स्वशासन की सफलता की कहानियों (Case Studies) पर आधारित हैं।

सामाजिक क्षेत्र में जनसंचार और मीडिया का योगदान

डॉ० हरि ओम फुलिया

सह-आचार्य, हिन्दी-विभाग, आई०आई०एच०एस०, कु० वि०, कु०, हरियाणा

शोधालेख सार

संचार मानव जीवन का वह महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है जिसके द्वारा समाज में मानवीय संबंध बनते हैं और निरंतर विकसित होते हुए का निर्माण करते हैं। संचार यानि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का संवाद एक दूसरे के साथ सूचना का आदान-प्रदान, आव-भाव एवं विचारों की सहभागिता। संचार के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले साधनों को मीडिया (माध्यम) कहा जाता है। मीडिया से तात्पर्य- समाचार-पत्र, पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि से है। मीडिया अथवा जनसंचार माध्यम किसी भी समाज या देश को वास्तविक स्थिति के प्रतिबिम्ब होते हैं। देश में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि स्तर पर क्या कुछ घट रहा है, इसे जन साधारण मीडिया के माध्यम से ही जान पाता है। जनसंचार के विभिन्न आयामों ने समस्त भूमंडल को अपनी परिधि में ले लिया है।

मूल शब्द: संचार, समाज, मीडिया, जनसंचार, शिक्षा, मनोरंजन

भूमिका

संचार मानव जीवन का वह महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है जिसके द्वारा समाज में मानवीय संबंध बनते हैं और निरंतर विकसित होते हुए का निर्माण करते हैं। संचार यानि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का संवाद एक दूसरे के साथ सूचना का आदान-प्रदान, आव-भाव एवं विचारों की सहभागिता। संचार के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले साधनों को मीडिया (माध्यम) कहा जाता है। मीडिया से तात्पर्य समाचारपत्र, पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि से है। मीडिया अथवा जनसंचार माध्यम किसी भी समाज या देश को वास्तविक स्थिति के प्रतिबिम्ब होते हैं। देश में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि स्तर पर क्या कुछ घट रहा है, इसे जन साधारण मीडिया के माध्यम से ही जान पाता है। जनसंचार के विभिन्न आयामों ने समस्त भूमंडल को अपनी परिधि में ले लिया है।

लोकतंत्र में विधायिका- कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बाद मीडिया को चौथा स्तम्भ माना जाता है। मीडिया में जहाँ समाचार पत्र, पत्रिका और रेडियो अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, वहीं आज के तकनीकी युग में टीवी, इंटरनेट, सिनेमा आदि भी बहुत अहम स्थान रखते हैं। आजकल की युवा पीढ़ी अखबार पढ़ने के लिए बेहद कम समय खर्च करते हैं, जबकि टेलिविजन देखने और इंटरनेट सर्फिंग के साथ अधिक समय बिताना पसन्द करते हैं। रेडियो की बात करें तो आकाशवाणी का नारा ही “बहुजन हिताय बहुजन सुखाय” है। रेडियो एवं टीवी के माध्यम से श्वेत व हरित क्रान्ति संभव हुई। मीडिया का उद्देश्य सूचना, शिक्षा, मनोरंजन करना था। वहीं आज इसका उद्देश्य पूंजी कमाना और सबसे श्रेष्ठ व तेज होने की इच्छा दिखाई पड़ रही है।

(1) क्या मीडिया वही सिखाता है जो माता पिता या शिक्षक से सीख मिलती है?

(2) क्या मीडिया इसके विपरीत जानकारी दे रहा है?

(3) क्या मीडिया इनसे हटकर नई जानकारी दे रहा है?

अतः माता-पिता को निर्णय लेना होगा क्या सही है क्या गलत है? इस पर पूरे समाज को विचार करने की आवश्यकता है। मीडिया और अभिभावक मिलकर ही समाज में उभरती समस्याओं का निदान कर सकते हैं। दोनों मिलकर आने वाली पीढ़ी को सही एवं सभ्य समाज का नागरिक बना सकते हैं जो भविष्य के कर्णधार बनकर देश व समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने में सक्षम होंगे।

संचार मानव जीवन का वह महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है जिसके द्वारा समाज में मानवीय संबंध बनते हैं और निरंतर विकसित होते हुए समाज का निर्माण करते हैं। संचार यानि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का संवाद, एक दूसरे के साथ सूचना का आदान-प्रदान, आव-भाव एवं विचारों की सहभागिता। संचार के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले साधनों को मीडिया (माध्यम) कहा जाता है। मीडिया से तात्पर्य समाचार-पत्र, पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि से है।

मीडिया अथवा जनसंचार माध्यम किसी भी समाज या देश की वास्तविक स्थिति के प्रतिबिम्ब होते हैं। देश में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि स्तर पर क्या कुछ घट रहा है, इसे जन साधारण मीडिया के माध्यम से ही जान पाता है। जनसंचार के विभिन्न आयामों ने समस्त भूमंडल को अपनी परिधि में ले लिया है। मीडिया की शक्ति का आंकलन इसकी व्यापक पहुंच से किया जा सकता है किन्तु इसकी व्यापक शक्तियों एवं स्वतंत्रता के कारण मीडिया की देश व समाज के प्रति महत्वपूर्ण जिम्मेदारी भी है। इसलिए लोकतंत्र में विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बाद मीडिया को चौथा माना जाता है।

मीडिया के विभिन्न रूपों में से कुछ रूप अपनी पैठ ज्यादा बनाए हुए हैं। मीडिया में जहाँ समाचार-पत्र, पत्रिका और रेडियो अपना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं वहीं आज के तकनीकी युग में टीवी इंटरनेट, सिनेमा आदि भी बहुत अहम स्थान रखते हैं। इनमें टीवी का प्रचलन और वर्चस्व आधुनिक समाज को अधिक तीव्र गति से प्रभावित कर रहा है तथा अब इंटरनेट ने भी अपने पांव पसारने शुरू कर दिए हैं। वर्ष 2002 में किये गये एक राष्ट्रीय सर्वे में पाया गया था कि भारत में आम आदमी एक अखबार को पढ़ने के लिए मुश्किल से 32 मिनट खर्च करता है, जबकि टेलीविजन देखने के लिए सौ मिनट। युवा पीढ़ी की बात की जाए तो वे अखबार पढ़ने के लिए बेहद कम समय खर्च करते हैं, जबकि टेलीविजन देखने और इंटरनेट सर्फिंग के साथ अधिक समय बिताना पसंद करते हैं। इसी कारण आज मीडिया के नाम पर लोगों के मानस पटल पर अधिकतर टी०वी० तथा इसमें भी टी०वी० के कुछ चैनलों का चित्र उभरता है। आधुनिक तकनीक तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के चलते टी०वी० कार्यक्रमों में आए बदलाव के कारण लोगों को टी०वी० के नकारात्मक पक्ष ज्यादा दिखाई देने लगे हैं, जिसके कारण संपूर्ण मीडिया जिसमें टी०वी० के साथ अन्य माध्यम भी आते हैं, की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। मीडिया के प्रभावों की बात करें तो यह प्रस्तुति पर निर्भर करता है कि हम आम जनमानस को क्या परोस रहे हैं? यह सुनिश्चित है कि परोसी गई सामग्री का असर उसके अनुकूल ही होता है।

रेडियो की बात करें तो आकाशवाणी का नारा ही “बहुजन हिताए बहुजन सुखाए” है। आकाशवाणी ने भारत में आरम्भ से ही आम जनमानस को शिक्षित, सूचित एवं मनोरंजित करने का काम बड़ी ईमानदारी से सही ढंग से किया है और देश के विकास में अपनी अहम भूमिका निभाई है। अगर मुद्रित माध्यम की बात करें तो एक उद्धरण के अनुसार प्राचीन काल में महिलारोप्य राज्य के राजा अमरशक्ति के बच्चों को नैतिक शिक्षा एवं व्यावहारिक जीवन से सम्बंधित जानकारी देने के लिए श्री विष्णु शर्मा द्वारा पंचतंत्र की कहानियां रची गई थी। साहित्य के साथ-साथ समाचार-पत्र, पत्रिकाओं ने भी अपने प्रकाशित लेखों व घटनाक्रमों के माध्यम से समाज को दिशा प्रदान करने में अहम भूमिका निभाई है। यहां तक कि भारत की आजादी का अवलोकन करें तो समाचार पत्रों ने आन्दोलन को खड़ा करने में बहुत बड़ा योगदान दिया है। टेलीविजन माध्यम के प्रथम चैनल दूरदर्शन ने भारत निर्माण में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई है और भारतवर्ष को शिक्षित, जागरूक बनाने के साथ स्वच्छ मनोरंजन भी किया है। सूचना क्रांति के इस दौर में अनेक मुश्किलों को आसान कर दिया है। कम्प्यूटर के आने से हर प्रकार की जानकारी बटन दबाते ही उपलब्ध हो सकती है, जो पहले दूर की कौड़ी लाने के बराबर होती थी। आज इंटरनेट के माध्यमों से दुनिया भर की जानकारी अपने घर बैठे ही कम्प्यूटर पर प्राप्त की जा सकती है।

रेडियो एवं टीवी के माध्यम से श्वेत व हरित क्रान्ति संभव हुई, जिसने देश को विकसित बनाने में भरपूर योगदान दिया। टी०वी० पर दिखाए जाने वाले ‘हमलोग’, ‘रामायण’, ‘उड़ान’ जैसे कार्यक्रमों ने सामाजिकरण को बल दिया। ये भी मीडिया का ही प्रभाव है कि आज के बच्चे अपने अभिभावकों के सामने मुंह मोड़कर बड़ी बेबाकी के साथ वो बात कह जाते हैं जो कहना आसान नहीं है। मीडिया के प्रभाव के चलते ही इसके विभिन्न माध्यमों द्वारा ज्ञानवर्धक जानकारी प्राप्त कर बच्चे सफलता हासिल करते हैं और इस मीडिया के प्रभाव के चलते आज बच्चे वक्त से पहले जवान हो जाते हैं। वे सीधे शिशु अवस्था से किशोर अवस्था में पहुंच जाते हैं। मीडिया का इंटरनेट रूप जहाँ आज सूचना का सबसे तीव्र व सशक्त माध्यम है, वहीं इसके द्वारा प्रसारित की जा रही ‘सुसाईड वेब-साईट’ से प्रेरित होकर आज के बच्चों व युवाओं में खुदकशी की घटनाएं बढ़ रही हैं। मीडिया के प्रभाव के चलते आज लोग जब भ्रमण पर निकलते हैं या इकट्ठे होते हैं तो उनकी चर्चा में महाभारत व शेक्सपीयर के पात्रों की बात न होकर केतकि, कमोलिका या किसी विदेशी कलाकार के बारे में चर्चा होती है।

व्यस्तता भरे जीवन में मीडिया का बच्चों के मस्तिष्क पर पड़ने वाला प्रभाव अभिभावकों को चिन्ता का विषय जा रहा है। इसके लिए मीडिया पर आरोप लगाया जाता है कि आने वाली पीढ़ी को पथ भ्रष्ट करने में मीडिया की भूमिका है।

मीडिया के प्रभाव के विषय में अभिभावकों के समूह से की गई बातचीत से जो तथ्य सामने आये हैं, उनमें अभिभावकों ने कुछ टीवी चैनलों का हवाला देते हुए इसके दुष्परिणामों को गिनाते हुए संपूर्ण मीडिया को आरोपित किया, जबकि टी०वी० मीडिया का एक पहलू है। इसके अन्य माध्यमों के बारे में बहुत कम अभिभावकों ने बात की। इस बातचीत से एक बात और खुलकर सामने आई कि स्वयं अभिभावक इससे अधिक और सकारात्मक प्रभावित हैं। आज प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को 3 साल की उम्र में ही रियल्टी शो में नम्बर वन पर देखना चाहता है, बच्चों में प्रतिभा को निखारने के लिए हरसंभव प्रयास करता है ताकि उसका बच्चा किसी भी क्षेत्र में पीछे न रहे।

एक शिक्षण संस्थान के होस्टल में रह रहे छात्रों में होने वाली आपसी बातचीत पर किये गये सर्वे के दौरान ये तथ्य सामने आये कि आज टी०वी० से प्रभावित युवा वर्ग में चर्चा का विषय राजनैतिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक न होकर प्रेम-प्रसंग, फिल्मी पात्रों के रहन-सहन की चर्चा होती है और ये भी मीडिया का ही प्रभाव है कि हम जो योग, संस्कृति को लगभग भूल चुके थे, उसे फिर से अपने जीवन में ग्रहण कर सवेरे-सवेरे पार्को, घरों की छतों पर योग साधना कर रहे हैं।

आज पश्चिमी सभ्यता व बाजारीकरण के प्रभाव के चलते मीडिया में खासकर इसके टी०वी०, इंटरनेट रूप में काफी बदलाव आया है। इस मीडिया का उद्देश्य सूचना, शिक्षा व मनोरंजन करना था, वहीं आज इसका उद्देश्य पूंजी कमाना और सबसे श्रेष्ठ व तेज होने की इच्छा दिखाई पड़ रही है जिसके चलते मीडिया अपने दायित्व से भटकता सा नजर आ रहा है। दूसरा तकनीक का प्रयोग सही नहीं हो पा रहा है। पहले हमारे पास तकनीक नहीं थी लेकिन मीडियाकर्मी सही रूप से उद्देश्य की पूर्ति करते थे व लोगों को सही सूचनाएं, स्वस्थ मनोरंजन उपलब्ध कराते थे। आज मीडिया के पास उच्च तकनीक है लेकिन इसका इस्तेमाल ठीक ढंग से करने की बजाए इससे मीडिया कर्मियों में आलस्य आ गया है जिसके कारण मीडिया की गुणवत्ता पर काफी असर पड़ा है। कुल मिलाकर मीडिया के बारे में लोगों द्वारा एक धारणा बन गई है कि 100 बार अच्छा काम करने वाले को इतना प्रोत्साहन नहीं मिलता जितना एक बार गलती करने वाले को अपमान मिलता है। ऐसा ही कुछ मीडिया की स्वयं की छवि के साथ हो रहा है। लोग इसकी अच्छाइयों को न देखकर इसकी बुराइयों को ज्यादा देख रहे हैं।

मीडिया ने आज समाज में लोगों के दिल और दिमाग को परिवर्तित करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। जहाँ शिक्षा देने, सूचना वितरण करने तथा विकास के राह पर चलने के लिए हमें प्रेरित कर सकने की क्षमता रखते हैं, वहीं ये इसके विपरीत भी कार्य कर सकते हैं। अतः मीडिया में कार्यरत लोगों को (जो अभिभावक भी हो सकते हैं) के लिए जरूरी हो जाता है कि वे इलेक्ट्रॉनिक माध्यम को कुछ ऐसा बनाए कि यह मीडिया समाज के प्रत्येक वर्ग के विकास करने में अपना सहयोग दे सके। बच्चे समाज व देश का भविष्य होते हैं। इनके द्वारा भावी समाज का निर्माण होता है। बच्चा शिशु रूप के दौरान जो सिखता व समझता है, वही उसके व्यक्तित्व के निर्माण का आधार बनता है और अगर बच्चे को अच्छी शिक्षा मिले तो बेहतर समाज के निर्माण व विकास में सक्रिय भागीदारी कर सकता है। बच्चों की शिक्षा के विषय में प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख भी किया गया है कि 'मातृमान, पितृमानाचार्यवान पुरुषो वेद' यानि जब तीन उत्तम शिक्षक, माता-पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान हो सकता है। बच्चे प्रारंभिक सामाजिक एवं व्यावहारिक शिक्षा अपने माता-पिता से प्राप्त करते हैं। फिर विद्यालय में अपने शिक्षक से किताबी, तकनीकी ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके साथ-साथ वह कुछ जानकारीयां अपने मित्र मण्डली में भी सीखता है। आज समाज के बदलते स्वरूप के चलते बच्चों में सूचना शक्ति के लिए जिज्ञासाएं और बढ़ी हैं जिसकी पूर्ति के लिए पिछले 40-50 वर्षों से एक नवीन प्रकार का शिक्षक जिसे हम मीडिया कहते हैं, योगदान दे रहा है। जो जानकारी बच्चे को माता-पिता, शिक्षक व दोस्तों से नहीं मिल पाती उसकी पूर्ति मीडिया कर रहा है। इस कारण मीडिया को लेकर तीन तरह की स्थिति उत्पन्न हुई है-

1. क्या मीडिया वही सिखाता है जो माता पिता या शिक्षक से सीख मिलती है?
2. क्या मीडिया उसके विपरीत जानकारी दे रहा है?
3. क्या इनसे हटकर नई जानकारी दे रहा है?

अतः माता-पिता को ये निर्णय लेना होगा क्या सही है क्या गलत है? इस पर पूरे समाज को विचार करने की आवश्यकता है। साथ ही मीडिया भी जो आज चकाचौंध की दुनिया में अपने कर्तव्य को भूलता नजर आ रहा है उसे समय के अनुकूल बदलाव लाने की जरूरत है। विज्ञापन के माध्यम से सिर्फ पैसा कमाने की बजाए आमजन व बच्चों को सही जानकारी व स्वच्छ मनोरंजन कराना होगा ताकि प्रत्येक बच्चे व अभिभावक इससे प्रेरित होकर जागरूक बन सके व मीडिया का इस्तेमाल कर समाज के निर्माण व विकास में अपनी भूमिका निभा सके।

अन्ततः पूर्व में किये गये शोध बताते हैं कि समाज के अलग-अलग वर्गों पर मीडिया का प्राभव अलग-अलग रूप से पड़ता है। इन वर्गों में जीवनशैली के आधार पर मुख्यतः ग्रामीण व शहरी वर्ग आते हैं। ग्रामीण वर्ग के परिवार मीडिया का प्रयोग मनोरंजन हेतु करते हैं जबकि शहरों वर्ग मनोरंजन के साथ-साथ सूचना को भी अहमियत देते हैं। इसी तरह आयु, लिंग, कार्य आदि के आधार पर भी वर्गीकृत हैं। अतः मीडिया को इन्हें ध्यान में रखते हुए कार्यक्रम बनाने चाहिए। मीडिया द्वारा विभिन्न समूहों को लक्षित कर कार्यक्रमों की रचना में नैतिक मूल्य तथा विवेकशील मानव बनाने की क्षमता पैदा करने वाले सन्देशों का होना आवश्यक है।

मीडिया समयानुसार अपना आंकलन कर समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का सतत प्रयास करता रहे।

मीडिया अपने कर्तव्यबोध के अनुकूल प्रस्तुति देता है तो अभिभावक को अपने बच्चों को कार्यक्रम देखने से रोक लगाने की आवश्यकता नहीं रहेगी। इस प्रकार मीडिया और अभिभावक मिलकर ही समाज में उभरती समस्या का निदान कर सकते हैं। दोनों मिलकर आने वाली पीढ़ी को सही एवं सभ्य समाज का नागरिक बना सकते हैं जो कि भविष्य के कर्णधार बनकर देश व समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने में सक्षम होंगे।

संदर्भ सूची:

1. डॉ० जानकी: किशोरावस्था पर मीडिया का प्रभाव: समस्या एवं समाधान, 2004
2. पाठक, राममोहन: इलेक्ट्रॉनिक माध्यम रेडियो एवं दूरदर्शन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 1998
3. गुप्ता, ओम: मीडिया और समाज, कनिष्का पब्लिकेशन, 2002
4. मीडिया और नेटवर्क संस्कृति, वाणी प्रकाशन, 2007
5. रावत शोभिता जैन, भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी, 2004
6. कांति विमलेश: भाषा साहित्य और संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2007
7. आलोक टी० डी० एस०: सांस्कृतिक पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, 2003
8. मीडिया विमर्श: सितम्बर-नवम्बर, 2000
9. आशो वर्ल्ड: फरवरी, 2008
10. संचार माध्यम: अप्रैल-जून, 1997
11. आंचलिक पत्रकार: नवम्बर, 2007
12. Communication Today-20
13. Kumar Arvind, The electronic media - Animol publications, 1999

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रकृति: एक अवलोकन

डॉ० मो० शर्फुद्दीन

एम. ए. (राजनीति विज्ञान), पीएच-डी., जयप्रकाश यूनिवर्सिटी, छपरा (सारण), बिहार

शोध आलेख का सारतत्त्व :

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एक जटिल, बहुआयामी और क्रमिक विकास का प्रतीक है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता का संतुलित समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह केवल राजनीतिक संस्थाओं के परिवर्तन तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना, आर्थिक विकास, प्रशासनिक व्यवस्था और नागरिक चेतना के व्यापक रूपांतरण को भी समाहित करता है। औपनिवेशिक काल में इसकी नींव पड़ी, जब ब्रिटिश शासन के माध्यम से आधुनिक प्रशासनिक संस्थाएँ, विधिक ढाँचा और प्रतिनिधिक शासन की अवधारणाएँ भारत में आईं। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समानता और विधि के शासन जैसे मूल्यों को संस्थागत रूप प्रदान किया, जिससे राजनीतिक आधुनिकीकरण को मजबूती मिली। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, स्वतंत्र न्यायपालिका, संघीय ढाँचा और बहुदलीय प्रणाली जैसे तत्वों ने इसे और अधिक सुदृढ़ बनाया। साथ ही, शिक्षा का प्रसार, संचार साधनों का विकास, शहरीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने राजनीतिक जागरूकता और जनसहभागिता को बढ़ाया। दलितों, आदिवासियों और महिलाओं की बढ़ती राजनीतिक भागीदारी भी इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण पहलू है। इसके बावजूद जातिवाद, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार और सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ इसके समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ बनी हुई हैं। अतः भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत और गतिशील प्रक्रिया है, जो निरंतर विकासशील है और लोकतांत्रिक आदर्शों को सशक्त बनाने की दिशा में अग्रसर है।

प्रमुख शब्दावली: राजनीतिक आधुनिकीकरण, लोकतंत्र, संविधान, धर्मनिरपेक्षता, समानता, विधि का शासन, प्रतिनिधिक शासन, संघवाद, बहुदलीय प्रणाली, वयस्क मताधिकार, न्यायपालिका, प्रशासनिक सुधार, सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक विकास, शहरीकरण, शिक्षा, संचार, राजनीतिक चेतना, जनसहभागिता, दलित सशक्तिकरण, आदिवासी अधिकार, महिला सशक्तिकरण, औपनिवेशिक विरासत, उदारीकरण, वैश्वीकरण, भ्रष्टाचार, क्षेत्रवाद, जातिवाद, असमानता, लोकतांत्रिक मूल्य आदि।

प्रस्तावना:

आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा अपेक्षाकृत नवीन होते हुए भी अत्यंत महत्वपूर्ण और व्यापक मानी जाती है। यह केवल एक सैद्धांतिक विचार नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन में निरंतर घटित होने वाली रचनात्मक एवं गतिशील परिवर्तन प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है। राजनीतिक आधुनिकीकरण मूलतः उस परिवर्तनशील प्रवृत्ति को इंगित करता है, जिसके माध्यम से समाज परंपरागत मान्यताओं, रूढ़ियों और अप्रासंगिक पद्धतियों से आगे बढ़कर नए विचारों, मूल्यों और संस्थागत व्यवस्थाओं को अपनाता है। यह प्रक्रिया प्रगतिशीलता की ओर उन्मुख होती है, जिसमें समय के साथ असंगत हो चुकी धारणाओं का स्थान आधुनिक दृष्टिकोण ग्रहण कर लेते हैं और समाज को एक नवीन स्वरूप प्रदान करते हैं।

राजनीतिक आधुनिकीकरण के अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के विविध आयामों का समन्वित अध्ययन किया जाता है। यह केवल राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि मानव व्यवहार, सामाजिक संरचनाओं और मानसिकताओं में होने वाले परिवर्तनों को भी अपने अंतर्गत समाहित करता है। इस प्रकार यह एक अंतःविषयक (interdisciplinary) अवधारणा है, जो राजनीति विज्ञान के साथ-साथ अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्रों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवहार को अधिक व्यापक संदर्भ में समझने का प्रयास करता है और यह दर्शाता है कि किसी भी समाज की राजनीतिक संरचना उसके सामाजिक और आर्थिक परिवेश से अलग नहीं हो सकती।

राजनीतिक आधुनिकीकरण का संबंध विशेष रूप से राजनीतिक संस्कृति और संस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों से भी है। यह प्रक्रिया नागरिकों के दृष्टिकोण, मूल्यों और अपेक्षाओं में परिवर्तन लाती है, जिससे शासन प्रणाली अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी और प्रभावी बनती है। इसके परिणामस्वरूप समाज में भागीदारी की भावना बढ़ती है और नागरिक अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति अधिक सजग हो जाते हैं। इस प्रकार आधुनिकीकरण संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली एक व्यापक प्रक्रिया है, जो समाज के प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन का कारण बनती है।

भारतीय में राजनीतिक आधुनिकीकरण का उद्भव सामाजिक गतिशीलता, आर्थिक विकास और राजनीतिक परिवर्तनों के सम्मिलित प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। यह प्रक्रिया भारत में धीरे-धीरे विकसित हुई, जिसमें पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक विचारों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया

गया। राजनीतिक आधुनिकीकरण का विचार राजनीतिक विकास की अवधारणा से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है, क्योंकि दोनों ही समाज के परिवर्तन और प्रगति को अभिव्यक्त करते हैं। इसलिए भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के स्वरूप और उसकी विशेषताओं का अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो जाता है, ताकि यह समझा जा सके कि भारतीय समाज किस प्रकार परंपरा और आधुनिकता के बीच सामंजस्य स्थापित करता है।

समकालीन संदर्भ में यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण एक बौद्धिक और लौकिक एकीकरण की प्रक्रिया है, जिसमें पुराने मूल्यों, रीति-रिवाजों और मानकों का स्थान नए आदर्शों और विचारों द्वारा लिया जाता है। यह प्रक्रिया समाज में परिवर्तन के साथ-साथ अस्थिरता और असंतुलन की स्थितियाँ भी उत्पन्न करती है, क्योंकि हर परिवर्तन अपने साथ नई चुनौतियाँ लेकर आता है। फिर भी, यह प्रक्रिया अंततः समाज को अधिक संगठित, प्रगतिशील और सशक्त बनाने की दिशा में अग्रसर होती है। भारत जैसे देशों ने इस संदर्भ में एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है, जहाँ परंपरागत मूल्यों को पूरी तरह त्यागने के बजाय उनकी पुनर्व्याख्या करके आधुनिक संदर्भों के अनुरूप ढाला गया है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह राजनीतिक समस्याओं के समाधान में तर्क, विवेक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को महत्व देता है।¹ परंपरागत समाजों में जहाँ शासन व्यवस्था विश्वास और परंपराओं पर आधारित होती थी, वहीं आधुनिक समाजों में तर्कसंगतता, विधि का शासन और उत्तरदायित्व जैसे तत्व प्रमुख हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार होता है, सामाजिक सेवाओं में वृद्धि होती है और नागरिकों की अपेक्षाएँ भी बढ़ती हैं। साथ ही, राजनीति में समानता, स्वतंत्रता और वैश्विक दृष्टिकोण के तत्वों का समावेश होता है, जो आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताओं को दर्शाते हैं।

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ औपनिवेशिक काल में हुआ, जब ब्रिटिश शासन के माध्यम से आधुनिक शिक्षा, प्रशासनिक प्रणाली और विधिक संरचना का परिचय हुआ। यद्यपि इन परिवर्तनों का उद्देश्य औपनिवेशिक शासन को सुदृढ़ करना था,² फिर भी इनका प्रभाव भारतीय समाज पर व्यापक रूप से पड़ा और इसने आधुनिक चेतना के विकास को प्रेरित किया। भारतीय चिंतन परंपरा ने इन परिवर्तनों को पूरी तरह अस्वीकार करने के बजाय उन्हें अपने मूल्यों के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। इस प्रकार भारतीय समाज ने परंपरा और आधुनिकता के बीच एक संतुलन स्थापित किया, जो उसकी विशिष्टता का प्रतीक है। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय नेतृत्व ने राजनीतिक आधुनिकीकरण को गति प्रदान करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। भारतीय संविधान ने लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समानता और न्याय जैसे मूल्यों को स्थापित किया और उन्हें व्यवहारिक रूप देने के लिए संस्थागत व्यवस्था प्रदान की। इसके परिणामस्वरूप भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का विकास हुआ, जिसमें जनता की भागीदारी को सर्वोच्च महत्व दिया गया। गणतंत्रात्मक व्यवस्था और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण ने जनसामान्य को शासन और राजनीति में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान किया।

पंचायती राज व्यवस्था से लेकर संसद तक की संस्थाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह व्यवहारिक रूप से भी क्रियान्वित हो रहा है। इन संस्थाओं के माध्यम से नागरिकों को अपने प्रतिनिधियों का चयन करने और शासन प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिलता है, जो लोकतांत्रिक मूल्यों की सुदृढ़ता को दर्शाता है। इसके साथ ही, शिक्षा का प्रसार, संचार माध्यमों का विकास और जागरूकता के विस्तार ने भी राजनीतिक सहभागिता को बढ़ावा दिया है। अंततः यह कहा जा सकता है कि भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत, बहुआयामी और समन्वित प्रक्रिया है, जो परंपरागत मूल्यों और आधुनिक विचारों के बीच संतुलन स्थापित करते हुए निरंतर आगे बढ़ रही है। यह प्रक्रिया न केवल राजनीतिक संस्थाओं को सुदृढ़ बनाती है, बल्कि समाज को अधिक जागरूक, उत्तरदायी और प्रगतिशील बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत का अनुभव यह दर्शाता है कि आधुनिकीकरण केवल बाहरी परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह एक गहरी मानसिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जो समाज के हर स्तर पर प्रभाव डालती है और उसे एक नए युग की ओर अग्रसर करती है।

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा के स्पष्टीकरण से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा के तात्पर्य को स्पष्ट किया जायें। हटिंग्टन के अनुसार, “राजनीतिक आधुनिकीकरण, मानव चिंतन तथा गतिविधि के समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन लाने वाली बहुमुखी प्रक्रिया है।”⁴

राजनीतिक आधुनिकीकरण की वर्तमान अवस्था पर प्रकाश डालते हुए एफ. डब्ल्यू. रिग्स ने मत व्यक्त किया है कि “राजनीतिक आधुनिकीकरण उस प्रक्रिया का नाम है जिसके माध्यम से सांस्कृतिक दृष्टिकोण से कम विकसित देश अधिक विकसित देशों की विशेषताओं को प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते हैं।” क्लॉड ई. वेल्स, जूनियर ने इसे “राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया माना है,”⁵

जो साधनों के विवेकसम्मत प्रयोग पर आधारित है तथा जिसका लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है।⁶ बेंजामिन स्वार्ट्ज की दृष्टि में, पृथग्भिन्न मानवीय प्रयोजनों की सिद्धि हेतु मानव की शक्ति सामर्थ्य, एवं क्षमता के व्यवस्थित, निरन्तर एवं शक्तिशाली प्रयोग के द्वारा मानव के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को नियंत्रित करने का प्रयास ही आधुनिकीकरण है।⁷ साइरिल ब्लैक ने भी आधुनिकीकरण का प्रमुख तत्व प्राकृतिक शक्तियों पर व्यक्ति के तीव्र गति से बढ़ते हुए नियंत्रण को माना है। डेविड ऐप्टर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण का सम्बन्ध चयन करने की योग्यता एवं अन्वेषण तथा प्रश्नात्मक धारणाओं से जोड़ा है। ऐप्टर के अनुसार,⁸ “आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जो मुख्यतः गैर-औद्योगिक समाजों में घटित होती है जहाँ इसे कुछ भूमिकाओं यथा व्यवसायगत, तकनीकी, प्रशासनिक तथा इन भूमिकाओं को समर्थन देने वाली संस्थाओं यथा चिकित्सालय, स्कूल, विश्वविद्यालय, नौकरशाही आदि की स्थानापत्ति के रूप में वर्णित किया जा सकता है। कोलमैन ने राजनीतिक आधुनिकीकरण को संक्रांतिकालीन समाजों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में होने वाले संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों का समूह माना है। उनके अनुसार, आधुनिकीकरण के लिए नगरीकरण, व्यापक साक्षरता, प्रतिव्यक्ति आय की अधिकता, विकसित भौगोलिक तथा सामाजिक गतिशीलता, अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण तथा वाणिज्यीकरण में समृद्धि, जनसंचार साधनों का विस्तार आदि पूर्वापेक्षाएँ हैं।”⁹ कभी-कभी आधुनिकीकरण की व्याख्या का आधार सहभागिता तथा साधन संग्रह को माना जाता है। कार्ल ड्यूश का मत है कि आधुनिकीकरण राजनीतिक प्रणाली में बढ़ती हुई राजनीतिक विकेंद्रीकरण की योजना में जनता की व्यापक सहभागिता पर निर्भर करती है।¹⁰ इसका सम्बन्ध सामाजिक संस्कृति के परिवर्तन से भी स्थापित किया जाता है। डेविस एवं लेविस का विचार है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण सामाजिक एवं भौतिक परिवेशों

के परिवर्तन के प्रत्युत्तर में सामाजिक संस्कृति के परिवर्तन का द्योतक है।⁸ आमण्ड एवं पॉवेल ने राजनीतिक आधुनिकीकरण तथा राजनीतिक विकास को समानार्थी माना है, जबकि हटिंगटन राजनीतिक आधुनिकीकरण को राजनीतिक विकास का आवश्यक तत्व मानते हैं। स्मिथ ने स्पष्ट किया है कि आधुनिकता ध्येय न होकर एक प्रक्रिया है। वह अपनाने के बजाय भाग लेने की वस्तु है।⁹ स्मिथ की दृष्टि में यह एक मूल्य भारित धारणा है। वस्तुतः राजनीतिक आधुनिकीकरण आधुनिक मूल्यों के अनुकूल राजनीतिक व्यवस्था या राजनीतिक संस्थाओं का समग्र रूपान्तरण है। जेम्स सी० कोलमैन की मान्यता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण के संप्रत्यय का प्रयोग तीन संदर्भों—ऐतिहासिक, प्रारूपिक और उद्दिष्टासीय संदर्भों में किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से, इसे 16वीं एवं 17वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप के देशों की राजनीतिक संरचना एवं संस्कृति में परिवर्तनों के रूप में, जो कालान्तर में अनियमित एवं अपूर्ण रूप से संसार के अन्य देशों में फैले देखा गया है।¹⁰ प्रारूपिक दृष्टि से, राजनीतिक आधुनिकीकरण को परंपरागत अथवा पूर्व आधुनिक राज्य व्यवस्था के आधुनिक राज्य-व्यवस्था में रूपान्तरण की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जबकि इसका एक आशय व्यक्ति की राजनीतिक समस्याओं के समाधान या उनका सामना करने के लिए संरचनाओं का मुक्त विकास करने, निरन्तर परिवर्तन से अनुकूलन करने या परिवर्तनों को आत्मसात् करने की क्षमताओं में वृद्धि करने से है। समसामयिक संदर्भों में यह स्पष्ट हो गया है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण शैलीक-बौद्धिक एकीकरण प्रधान प्रक्रियाएँ हैं। पुराने मूल्यों, रीति-रिवाजों, मानकों आदि का स्थान नवीन मूल्यों एवं आदर्शों द्वारा ले लिया जाता है। इसमें समस्त समाज एवं उसकी इकाइयों में उथल-पुथल, उद्वेलन, अस्थायित्व और असंतुलन आ जाता है। यह उल्लेखनीय है कि मनुष्य के मानसिक विकास के परिणामस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिनमें राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार, सामाजिक सेवाओं की वृद्धि, राज्य के प्रति नागरिकों के दायित्वों का बढ़ना और राजनीति में विश्वव्यापकता तथा समानता के तत्वों का प्रवेश आदि भी उल्लेखनीय हैं।

विकासशील देशों की श्रेणी में भारत एक महत्वपूर्ण और अग्रणी राष्ट्र के रूप में स्थापित है, जहाँ परंपरा और आधुनिकता के बीच एक स्पष्ट द्वंद्व के साथ-साथ एक सृजनात्मक समन्वय भी देखने को मिलता है। इन देशों ने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात अपनी सांस्कृतिक पहचान और परंपरागत मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए आधुनिकता के मानकों को अपनाने की दिशा में तीव्र गति से प्रयास आरंभ किए। यह प्रयास केवल बाह्य विकास तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन लाने की चेतना भी निहित रही। प्राकृतिक संसाधनों की सीमित उपलब्धता और तकनीकी कौशल की कमी के बावजूद इन देशों ने विकास की दिशा में उल्लेखनीय इच्छाशक्ति, जागरूकता और दृढ़ संकल्प का परिचय दिया है। विशेष रूप से औद्योगिक विकास, भौतिक अवसंरचना के विस्तार तथा सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने की दिशा में इनकी सक्रियता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। 'विकासशील देश' अथवा 'तृतीय विश्व' की संज्ञा सामान्यतः एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के उन देशों के लिए प्रयुक्त होती है, जिनकी आर्थिक और राजनीतिक संरचना विकसित देशों की तुलना में अपेक्षाकृत कमजोर रही है। इन देशों की प्रमुख विशेषता यह है कि औद्योगिकीकरण के स्तर पर ये पश्चिमी यूरोप, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जापान जैसे विकसित राष्ट्रों से पीछे रहे हैं।¹¹

साथ ही, शीत युद्ध के दौर में ये देश पूंजीवादी और साम्यवादी गुटों के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास करते रहे। उन्होंने स्वयं को किसी एक गुट के प्रभाव में आने से बचाने के लिए स्वतंत्र नीति अपनाई, जिसे गुटनिरपेक्षता के रूप में जाना गया। यद्यपि 1991 के पश्चात सोवियत संघ के विघटन के साथ वैश्विक शक्ति-संतुलन में परिवर्तन आया, फिर भी इन देशों की स्वतंत्र नीति और स्वायत्तता की आकांक्षा बनी रही।¹² इसके अतिरिक्त, एशिया और अफ्रीका के अधिकांश देशों ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही औपनिवेशिक शासन से मुक्ति प्राप्त की, जिसके कारण उनके राजनीतिक और आर्थिक विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत नवीन रही।

अंतरराष्ट्रीय राजनीति में तृतीय विश्व के देशों की स्थिति विशिष्ट और कभी-कभी विरोधाभासी भी प्रतीत होती है। जहाँ एक ओर प्रथम और द्वितीय विश्व के देशों ने अपने-अपने सैन्य और राजनीतिक गठबंधनों के माध्यम से वैश्विक शक्ति संरचना को नियंत्रित करने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर तृतीय विश्व के देशों ने गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाकर एक स्वतंत्र और संतुलित मार्ग का चयन किया। गुटनिरपेक्ष आंदोलन का मूल उद्देश्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता को बनाए रखना ही नहीं था, बल्कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग, विश्व शांति और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना भी था। यद्यपि ये देश आर्थिक और तकनीकी दृष्टि से विकसित नहीं थे, फिर भी अपनी जनसंख्या, संसाधनों और सामूहिक एकजुटता के आधार पर उन्होंने वैश्विक राजनीति में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। उनकी यह भूमिका विशेष रूप से उस समय महत्वपूर्ण हो जाती है, जब वे सामूहिक रूप से विश्व शांति और न्याय की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

भारत की स्थिति इन विकासशील देशों के संदर्भ में अत्यंत विशिष्ट और प्रेरणादायक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने न केवल अपने राजनीतिक ढाँचे को सुदृढ़ किया, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी व्यापक विकास की आधारशिला रखी। भारत ने अपने विकास पथ पर चलते हुए बाहरी दबावों के बावजूद अपनी स्वतंत्र नीति और स्वायत्तता को बनाए रखा। राजनीतिक आधुनिकीकरण की दिशा में भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की, जो उसकी लोकतांत्रिक संस्थाओं की मजबूती, प्रशासनिक संरचना के विकास और नागरिक सहभागिता के विस्तार में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। आर्थिक और तकनीकी आत्मनिर्भरता की दिशा में भी भारत ने निरन्तर प्रयास किए, जिससे वह विकसित देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में आ सका। भारतीय समाज की विशेषता यह रही है कि उसने आधुनिकता को अपनाने समय अपनी सांस्कृतिक जड़ों को नहीं छोड़ा, बल्कि परंपरागत मूल्यों की पुनर्व्याख्या करते हुए उन्हें समकालीन संदर्भों के अनुरूप ढाला। इस प्रकार भारत ने परंपरा और आधुनिकता के बीच एक संतुलित समन्वय स्थापित किया,¹³ जो उसके राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भारतीय चिंतन परंपरा ने सदैव परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालने की क्षमता प्रदर्शित की है, जिसके कारण आधुनिक पश्चिमी विचारों के प्रभाव के बावजूद भारतीयता की मूल भावना अक्षुण्ण बनी रही।

राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में शिक्षा, विधायी उपागम और प्रशासनिक सुधारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। औपनिवेशिक काल में प्रारंभ हुई आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने भारतीय समाज में नई चेतना का संचार किया और लोगों को लोकतांत्रिक मूल्यों, अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाया। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने इन मूल्यों को संस्थागत रूप प्रदान किया और लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को सुदृढ़ किया। पंचायतों से लेकर संसद

तक की संस्थाओं के माध्यम से जनसामान्य को शासन प्रक्रिया में भागीदारी का अवसर मिला, जिससे राजनीतिक जागरूकता और उत्तरदायित्व की भावना विकसित हुई।¹⁴ इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग ने भी भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस वर्ग ने न केवल आधुनिक विचारों को आत्मसात किया, बल्कि उन्हें भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर समाज में प्रसारित किया। लोकतांत्रिक व्यवस्था, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में किए गए प्रयासों ने भारत को एक सशक्त और संगठित राष्ट्र के रूप में स्थापित किया। दूसरे शब्दों में, भारत ने विकासशील देशों के बीच एक आदर्श प्रस्तुत किया है, जहाँ सीमित संसाधनों और विविध चुनौतियों के बावजूद राजनीतिक आधुनिकीकरण की दिशा में निरंतर प्रगति की गई है। भारत का अनुभव यह दर्शाता है कि यदि किसी राष्ट्र में दृढ़ इच्छाशक्ति, सांस्कृतिक आत्मविश्वास और लोकतांत्रिक प्रतिबद्धता हो, तो वह परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करते हुए सतत विकास की दिशा में आगे बढ़ सकता है। इस प्रकार भारत न केवल विकासशील देशों के लिए प्रेरणा स्रोत है, बल्कि वैश्विक स्तर पर एक ऐसे राष्ट्र के रूप में उभरता है, जिसने अपनी विशिष्टता को बनाए रखते हुए आधुनिकता के मार्ग पर सफलतापूर्वक अग्रसर होने का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

भारतीय संविधान ने जीवन के विविध क्षेत्रों में राजनीतिक आधुनिकीकरण को क्रियान्वित करने के लिए एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित आधार प्रदान किया है। यह केवल एक विधिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि एक ऐसा गतिशील मार्गदर्शक है, जिसने भारत को परंपरागत समाज से आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की ओर अग्रसर करने में निर्णायक भूमिका निभाई है। गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के माध्यम से भारत में जनसामान्य को शासन और राजनीति में सक्रिय भागीदारी का व्यापक अवसर प्राप्त हुआ है। पंचायतों से लेकर राज्य विधानमंडलों और संसद तक की संस्थाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारत में राजनीतिक शक्ति का स्रोत जनता ही है। इन संस्थाओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष निर्वाचन जनसहभागिता को सुनिश्चित करता है, जो राजनीतिक आधुनिकीकरण की एक अनिवार्य शर्त है। इससे न केवल नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ती है, बल्कि शासन व्यवस्था के प्रति उत्तरदायित्व और पारदर्शिता भी सुदृढ़ होती है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न दबाव समूहों, राजनीतिक दलों और नौकरशाही ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये संस्थाएँ नीतियों के निर्माण, उनके क्रियान्वयन तथा जनहित के मुद्दों को सामने लाने में सक्रिय रही हैं। परिणामस्वरूप भारत में ऐसी अनेक नीतियाँ विकसित हुई हैं, जो न केवल सैद्धांतिक रूप से जनहितकारी हैं, बल्कि उन्हें व्यवहार में भी लागू किया गया है। इस प्रकार, नीति निर्माण और क्रियान्वयन के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास भारतीय लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। तकनीकी और औद्योगिक विकास के क्षेत्र में भी भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है,¹⁵ जिसने राजनीतिक आधुनिकीकरण को नई दिशा प्रदान की है। भारतीय वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों ने स्वदेशी तकनीकों के माध्यम से देश को औद्योगिक विकास के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। परमाणु ऊर्जा और मिसाइल प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 11 मई और 13 मई 1998 को किए गए परमाणु परीक्षणों ने न केवल भारत की वैज्ञानिक क्षमता को विश्व पटल पर स्थापित किया, बल्कि उसकी राजनीतिक दृढ़ इच्छाशक्ति का भी परिचय दिया।¹⁶ इसके अतिरिक्त संचार, ऊर्जा, खाद्यान्न उत्पादन और दैनिक उपभोग की वस्तुओं के निर्माण में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना भारत की आधुनिकता की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। इन क्षेत्रों में हुई प्रगति ने भारत को एक सक्षम और आत्मविश्वासी राष्ट्र के रूप में स्थापित किया है।

वैश्विक नई अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में भारत की भूमिका भी महत्वपूर्ण बनकर उभरी है। यह व्यवस्था मुख्यतः बाजार आधारित अर्थनीति, आयात-निर्यात और वैश्विक व्यापार पर आधारित है। विकसित देशों का विश्व के संसाधनों पर अधिक नियंत्रण होने के कारण वे इस व्यवस्था में प्रभावशाली स्थिति में बने हुए हैं। वे अपने उत्पादों के लिए नए बाजारों की तलाश में विकासशील देशों की ओर अग्रसर होते हैं और बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा उदार ऋण नीतियों के माध्यम से आर्थिक प्रभाव स्थापित करने का प्रयास करते हैं। इसके बावजूद भारत जैसे देशों ने कृषि और तकनीकी आत्मनिर्भरता के बल पर तथा गुटनिरपेक्ष देशों के साथ सहयोग के माध्यम से एक सम्मानजनक वैश्विक स्थिति प्राप्त की है। भारत ने यह सिद्ध किया है कि आत्मनिर्भरता और संतुलित विदेश नीति के माध्यम से विकासशील राष्ट्र भी वैश्विक मंच पर प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं। सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता के साथ-साथ समयानुकूल परिवर्तनशीलता ने भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की है। हालांकि इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, फिर भी यह स्वीकार करना आवश्यक है कि भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अभी पूर्ण नहीं हुई है। आज भी समाज और शासन व्यवस्था में परंपरागत तत्वों की स्पष्ट उपस्थिति देखी जा सकती है। जातिवाद, क्षेत्रवाद, धार्मिक अंधविश्वास और संकीर्ण निष्ठाएँ आज भी सामाजिक समरसता और राजनीतिक विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा के क्षेत्र में भी अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी है, जिसके कारण जनसामान्य में जागरूकता और सहभागिता का स्तर समान रूप से विकसित नहीं हो पाया है।

राजनीतिक दलों की भूमिका भी इस संदर्भ में चुनौतीपूर्ण रही है, क्योंकि कई बार उनमें सिद्धांतहीनता और अवसरवादिता के लक्षण दिखाई देते हैं। लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि राजनीतिक दल विचारधारा और नीति के आधार पर कार्य करें, न कि केवल सत्ता प्राप्ति के उद्देश्य से। इसके साथ ही भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी और जनसंख्या वृद्धि जैसी समस्याएँ भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के सामने आज भी भूख, कुपोषण और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ गंभीर रूप में विद्यमान हैं। कृषि क्षेत्र में हरित क्रांति, उन्नत सिंचाई सुविधाओं और आधुनिक तकनीकों के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई है, किंतु इसके साथ-साथ आर्थिक असमानताएँ भी बढ़ी हैं। इस स्थिति में समावेशी विकास की आवश्यकता और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, ताकि विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँच सकें। इसके अतिरिक्त प्रतिभा पलायन की समस्या भी भारत के लिए एक गंभीर चुनौती बनी हुई है। उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति बेहतर अवसरों की तलाश में विकसित देशों की ओर पलायन कर जाते हैं, जिससे देश की बौद्धिक और तकनीकी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विकसित देशों द्वारा पर्यावरणीय संसाधनों का दुरुपयोग और औद्योगिक कचरे का विकासशील देशों की ओर प्रवाह भी एक गंभीर समस्या है, जिसका प्रभाव सामाजिक और पर्यावरणीय संतुलन पर पड़ता है। इन परिस्थितियों में यह आवश्यक हो जाता है कि विकासशील राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता को

और अधिक सुदृढ़ करें तथा आत्मनिर्भरता की दिशा में ठोस कदम उठाएँ। स्पष्ट है कि भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत, जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें उपलब्धियों के साथ-साथ अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण, सघन औद्योगिकीकरण, आर्थिक विकेंद्रीकरण और समावेशी नीतियों के माध्यम से ही भारत अपनी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का समाधान कर सकता है। यदि इन चुनौतियों का प्रभावी ढंग से समाधान किया जाए, तो भारत न केवल एक सशक्त लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में स्थापित रहेगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत कर सकेगा।

निष्कर्ष :

राजनीतिक आधुनिकीकरण एक व्यापक और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसका प्रभाव केवल राजनीतिक व्यवस्था तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है। यह प्रक्रिया समाज की संरचना, आर्थिक गतिविधियों, शैक्षिक विकास तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ गहराई से जुड़ी होती है। भारत में भी राजनीतिक आधुनिकीकरण निरंतर परिवर्तनशील रहा है और समय के साथ इसकी गति तथा स्वरूप दोनों में उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिले हैं। यदि पूर्व की स्थिति की तुलना वर्तमान से की जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि आज भारतीय राजनीति में परिवर्तन की गति कहीं अधिक तीव्र हो गई है। विशेष रूप से 1990 के दशक के बाद भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने एक नया मोड़ लिया। इस कालखंड में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एल.पी.जी.) की नीतियों को अपनाया गया, जिसने न केवल अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी, बल्कि राजनीतिक संरचना और कार्यप्रणाली को भी आधुनिक स्वरूप प्रदान किया। इन नीतियों के परिणामस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था वैश्विक बाजार से जुड़ी, जिससे नीतिगत निर्णयों में पारदर्शिता, प्रतिस्पर्धा और दक्षता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। इसके साथ ही राजनीतिक दलों और नीति-निर्माताओं को भी बदलते वैश्विक परिदृश्य के अनुरूप अपनी रणनीतियों में परिवर्तन करना पड़ा। राजनीतिक आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया के साथ शिक्षा के क्षेत्र में सुधार, आर्थिक स्थिति में क्रमिक उन्नति, सामाजिक समरसता की स्थापना तथा राष्ट्रीयता की भावना के सुदृढ़ीकरण जैसे अनेक सकारात्मक परिवर्तन भी जुड़े हुए हैं। उत्पादन में वृद्धि, निर्यातोंमुख अर्थव्यवस्था का विकास और बाजार-आधारित नीतियों का विस्तार इस परिवर्तन के महत्वपूर्ण आयाम हैं। साथ ही, राजनीतिक दलों द्वारा अधिक संगठित और रणनीतिक दृष्टिकोण अपनाने से लोकतांत्रिक प्रक्रिया में प्रतिस्पर्धा और उत्तरदायित्व की भावना को भी बल मिला है। वर्ष 2014 में नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद भारत में शासन और नीति-निर्माण के स्तर पर कई व्यापक परिवर्तन देखने को मिले हैं। इस अवधि में डिजिटलाइजेशन, प्रशासनिक सुधार, पारदर्शिता और सुशासन पर विशेष बल दिया गया, जिससे राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को एक नया आयाम प्राप्त हुआ। भारत ने वैश्विक मंच पर अपनी उपस्थिति को और अधिक सशक्त बनाया है, जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक आधुनिकीकरण का स्वरूप अब अधिक वैश्विक और समावेशी होता जा रहा है। सार रूप में, भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण एक निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जिसका स्वरूप स्थिर नहीं बल्कि परिवर्तनशील है। यह प्रक्रिया समय, परिस्थितियों और नीतिगत परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं को ढालती रहती है और देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

- 1 आमण्ड, गैब्रियल ए. एवं पॉवेल, जी. बी. (1966), कम्परेटिव पॉलिटिक्स : अ डेवलपमेंटल एप्रोच, लिटिल ब्राउन, बोस्टन, पृ. 45
- 2 एक्टर, डेविड ई. (1965), द पॉलिटिक्स ऑफ मॉडर्नइजेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, पृ. 30
- 3 चंद्र, बिपिन (2009), आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पृ. 120
- 4 हंटिंगटन, सैमुअल पी. (1968), पॉलिटिकल आर्डर इन चेंजिंग सोसाइटीज , येल यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 32
- 5 वेल्स, क्लॉड ई. जूनियर (1964), द प्रोसेस ऑफ पोलिटिकल मॉडर्नइजेशन , पृ. 60
- 6 श्वार्ट्ज, बेंजामिन (1972), मॉडर्नइजेशन एंड द ट्रांसफार्मेशन ऑफ सोसाइटीज , पृ. 75-80।
- 7 एक्टर, डेविड ई. (1965), द पॉलिटिक्स ऑफ मॉडर्नइजेशन , यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, पृ. 85
- 8 कोलमैन, जेम्स एस. (1960), पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपिंग एरियाज, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 55
- 9 स्मिथ, एंथनी डी. (1973), द कांसेप्ट ऑफ सोशल चेंज , पृ. 100
- 10 कोलमैन, जेम्स एस. (1960), पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपिंग एरियाज , प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 120
- 11 गुनार मिर्डल (1968), एशियाई ड्रामा : एन इन्क्वायरी इंटो द पोवर्टी ऑफ नेशन्स , पृ. 210
- 12 जॉर्ज लिस्का (1978), इंटरनेशनल पॉलिटिक्स एंड डेवलपिंग कंट्रीज , पृ. 90-95।
- 13 कोठारी, रजनी (1970), पॉलिटिक्स इन इंडिया , ओरिएंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली, पृ. 150
- 14 महेश्वरी, एस. आर. (2003), इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन , ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पृ. 200
- 15 दत्त, रमेशचंद्र (1902), इकोनॉमिक्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया , केगन पॉल, लंदन, पृ. 300-301
- 16 सुब्रमण्यम, के. (1998), इंडियाज नुक्लेअर पॉलिसी , पृ. 50

आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का अध्ययन

कैलाश मीणा

शारीरिक शिक्षक

भारत की जनजातीय संस्कृति विविधताओं से भरपूर है, जिसमें खेलकूद एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विशेष रूप से तीरंदाजी जैसे पारंपरिक खेल जनजातीय जीवन का अभिन्न हिस्सा रहे हैं। आधुनिक खेल संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के साथ पारंपरिक और आधुनिक तीरंदाजी के खिलाड़ियों में न केवल तकनीकी अंतर देखने को मिलता है, बल्कि उनके सामाजिक, नैतिक, स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व संबंधी पक्षों में भी अनेक महत्वपूर्ण भिन्नताएं देखने को मिलती हैं।

यह शोध प्रस्तावना इस विषय पर केंद्रित है कि जनजातीय क्षेत्रों में आधुनिक एवं पारंपरिक तीरंदाजों के मध्य सामाजिक उपलब्धियों, व्यक्तित्व विशेषताओं, स्वास्थ्य स्तर एवं नैतिक मूल्यों में किस प्रकार के अंतर पाए जाते हैं। पारंपरिक तीरंदाजी खिलाड़ियों का सामाजिक जीवन अधिक सामुदायिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा होता है, जबकि आधुनिक खिलाड़ी अधिक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में प्रशिक्षित होते हैं।

इस अध्ययन का उद्देश्य न केवल इन दोनों प्रकार के खिलाड़ियों की विशेषताओं का तुलनात्मक विश्लेषण करना है, बल्कि यह भी जानना है कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का उनके स्वास्थ्य एवं नैतिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार का अध्ययन जनजातीय युवाओं के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

व्यक्तित्व के संदर्भ में यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करेगा कि किन गुणों की अधिकता पारंपरिक तीरंदाजों में पाई जाती है और आधुनिक खिलाड़ियों में कौन-से लक्षण प्रबल होते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार, जीवनशैली, व्यायाम एवं मानसिक तनाव जैसे बिंदुओं का तुलनात्मक मूल्यांकन किया जाएगा। वहीं नैतिकता के स्तर पर ईमानदारी, सहयोग, प्रतिस्पर्धात्मक भावना एवं खेल भावना जैसी विशेषताओं का विश्लेषण किया जाएगा।

यह शोध कार्य विभिन्न आयु वर्ग, लिंग एवं अनुभव के आधार पर चयनित खिलाड़ियों के माध्यम से किया जाएगा, जिससे परिणाम अधिक प्रासंगिक एवं व्यापक बन सकें। शोध विधियों में सर्वेक्षण, साक्षात्कार एवं प्रेक्षण तकनीकों का समावेश किया जाएगा।

समाज में खेलों की भूमिका केवल शारीरिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व निर्माण, नैतिकता के विकास एवं सामाजिक एकता को भी प्रोत्साहित करता है। अतः यह अध्ययन नीति-निर्माताओं, प्रशिक्षकों एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है जो जनजातीय क्षेत्रों में खेलों के माध्यम से सकारात्मक परिवर्तन लाने हेतु प्रयासरत हैं।

अंततः यह शोध यह दर्शाने का प्रयास करेगा कि पारंपरिक एवं आधुनिक तीरंदाजी केवल तकनीकी दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी एक-दूसरे से भिन्न हैं और दोनों की विशेषताओं को समझकर एक समन्वित खेल संस्कृति का विकास किया जा सकता है।

प्रागैतिहासिक काल में तीरंदाजी:

पुरातात्विक शोध से ज्ञात होता है कि लगभग 20,000-25,000 वर्ष पूर्व मनुष्य ने शिकार हेतु धनुष-बाण का प्रयोग आरंभ किया। फ्रांस, स्पेन और अफ्रीका की गुफाओं में बने शैलचित्रों में मानव आकृतियाँ तीर-कमान के साथ दर्शाई गई हैं। ये चित्र प्रमाणित करते हैं कि उस समय तीरंदाजी केवल जीविका का साधन नहीं थी, बल्कि समूह जीवन और सामाजिक संरचना का भी हिस्सा थी।

इस दौर में धनुष-कमान लकड़ी, हड्डी और पत्थर से बनाए जाते थे। बाण की नोक चकमक पत्थर से तराशी जाती थी। तीरंदाजी ने मनुष्य को दूर से शिकार करने की क्षमता दी, जिससे उसकी सुरक्षा और भोजन-संपादन दोनों आसान हुए।

प्राचीन सभ्यताओं में तीरंदाजी:

(1) मिस्र सभ्यता:

मिस्र में 5000 ईसा पूर्व से तीरंदाजी के प्रमाण मिलते हैं। फराओओं की सेनाओं में धनुर्धर विशेष अंग थे। युद्धों के अतिरिक्त शिकार और उत्सवों में भी तीरंदाजी का प्रयोग किया जाता था। मिस्र की कब्रगाहों की भित्तिचित्रों में सैनिकों को धनुषदृबाण से शिकार करते हुए दर्शाया गया है।

(2) मेसोपोटामिया और ग्रीस:

मेसोपोटामिया की सेनाओं में संगठित धनुर्धर टुकड़ियाँ होती थीं। ग्रीक साहित्य में अपोलो और आर्टेमिस जैसे देवताओं को धनुषदृबाण के साथ चित्रित किया गया है। इलियड और ओडिसी महाकाव्यों में आर्चरी का उल्लेख मिलता है।

(3) चीन

चीन में झोऊ वंश (1046-256 ईसा पूर्व) के समय तीरंदाजी शिक्षा का प्रमुख अंग थी। प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जाती थीं। कन्फ्यूशियस ने तीरंदाजी को नैतिकता, अनुशासन और आत्मसंयम का प्रतीक बताया।

(4) भारत

भारत में तीरंदाजी का इतिहास सबसे समृद्ध और गहन है। वेदों और पुराणों में धनुष-बाण का उल्लेख मिलता है। रामायण और महाभारत में तीरंदाजी महाकाव्य की धुरी है। अर्जुन, कर्ण और एकलव्य के प्रसंग आज भी आदर्श माने जाते हैं। धनुर्वेद में तीरंदाजी की तकनीक, आसन और प्रशिक्षण की विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। प्राचीन गुरुकुल शिक्षा में शारीरिक प्रशिक्षण के साथ तीरंदाजी अनिवार्य थी।

मध्यकालीन भारत और विश्व:

मध्यकाल में बारूद और आग्नेयास्त्रों के प्रचलन ने तीरंदाजी के महत्व को कुछ कम किया, किंतु यह पूरी तरह समाप्त नहीं हुई।

मंगोल और तुर्क योद्धा घुड़सवार तीरंदाजी के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने एशिया और यूरोप में सैन्य शक्ति के रूप में अपना वर्चस्व स्थापित किया।

भारत में राजपूत योद्धाओं ने युद्धों में तीरंदाजी का प्रभावी प्रयोग किया।

मुगल शासक भी तीरंदाजी में दक्ष थे। बाबर की आत्मकथा बाबरनामा में इसका उल्लेख मिलता है।

यूरोप में भी 12वीं-15वीं शताब्दी तक इंग्लैंड की सेनाओं में लॉन्गबोमेन (स्वदहड़वूडमद) का वर्चस्व था।

धीरे-धीरे बारूद और बंदूकें अधिक प्रभावी हथियार बन गईं, लेकिन तीरंदाजी सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन और शिकार की परंपरा में बनी रही।

आधुनिक युग में तीरंदाजी:

16वीं शताब्दी में यूरोप में तीरंदाजी खेल और मनोरंजन का साधन बनने लगी। इंग्लैंड में राजघरानों ने इसे प्रतिष्ठा का प्रतीक माना।

आर्चरी क्लबों की स्थापना 18वीं और 19वीं शताब्दी में हुई। 1844 में यॉर्कशायर (इंग्लैंड) में पहला राष्ट्रीय तीरंदाजी प्रतियोगिता आयोजित हुआ। धीरे-धीरे यह अमेरिका और यूरोप के अन्य देशों में फैल गया। इस दौर में आर्चरी ने युद्धकला से खेलकला की ओर संक्रमण किया।

ओलंपिक खेलों में तीरंदाजी:

1900 पेरिस ओलंपिक में पहली बार तीरंदाजी शामिल हुई। 1900 से 1920 तक यह अनियमित रूप से खेला गया। 1920 के बाद इसे कार्यक्रम से हटा दिया गया। 1972 म्यूनिख ओलंपिक में पुनः शामिल किया गया।

वर्तमान में यह पुरुष और महिला दोनों वर्गों में नियमित खेल है। विश्व तीरंदाजी महासंघ (World Archery Federation) खेल के नियमों और आयोजन की देख-रेख करता है।

भारत में आधुनिक तीरंदाजी:

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रारंभिक दशकों में भारत में तीरंदाजी की उपेक्षा हुई।

1973 में आर्चरी एसोसिएशन ऑफ इंडिया (AAI) की स्थापना हुई। 1980 के दशक में भारत ने अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू किया।

भारत के उल्लेखनीय खिलाड़ी:

1. लिम्बा राम - जिन्हें “भारतीय रोबिन हुड” कहा जाता है।
2. दीपिका कुमारी - 2012 में विश्व नंबर 1 रैंकिंग।
3. अतनु दास, तरुणदीप राय, कोमोलिका बारी आदि।

भारत ने एशियाई खेलों, विश्व कप और विश्व चौपियनशिप में अनेक पदक जीते हैं।

सांस्कृतिक एवं प्रतीकात्मक महत्व:

तीरंदाजी केवल युद्ध या खेल नहीं रही, बल्कि यह ध्यान, अनुशासन और एकाग्रता का प्रतीक भी रही है। भारत में यह योग और साधना से जुड़ी रही। लोककथाओं, नाटकों और मेलों में तीरंदाजी के प्रसंग आज भी जीवित हैं (जैसे रामलीला में राम का धनुष-भंग)।

वर्तमान स्वरूप:

- खेल की प्रमुख विधाएँ:
- रिकर्व आर्चरी - ओलंपिक खेलों में प्रयुक्त।
- कम्पाउंड आर्चरी - आधुनिक तकनीक से विकसित।
- ट्रेडिशनल आर्चरी - सांस्कृतिक एवं पारंपरिक रूप।

- प्रतियोगिताएँ: ओलंपिक, एशियाई खेल, राष्ट्रमंडल खेल, विश्व चौपियनशिप।
- उपकरणों में तकनीकी विकास - कार्बन-फाइबर बो, एरो-रेस्ट, साइटिंग डिवाइस।
- खेल विज्ञान का योगदान - बायोमैकेनिक्स, खेल मनोविज्ञान, आहार और प्रशिक्षण।

शोध परिकल्पना:

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु निम्नलिखित परिकल्पना निर्धारित की गई हैं-

1. जनजातीय क्षेत्र में आधुनिक एवं पारम्परिक खिलाड़ियों के स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शोध परिसीमन:

1. प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा जिले तक सीमित रखा गया है।
2. प्रस्तुत शोध जनजातीय क्षेत्र के तीरदाज खिलाड़ियों तक सीमित रखा गया है।
3. प्रस्तुत शोध में आधुनिक एवं पारम्परिक तीरदाज खिलाड़ियों तक सीमित रखा गया है।
4. प्रस्तुत शोधकार्य तीरदाज छात्र एवं छात्रा तक सीमित रखा गया है।

शोध में प्रयुक्त परिभाषित शब्दावली:

1. जनजातीय क्षेत्र - जनजातीय क्षेत्रीय से तात्पर्य उस समुदाय से है जो आदिमकाल से ही क्षेत्र विशेष से निवास कर रहा है और जिन्हें सरकार द्वारा विशिष्ट जाति के रूप से सविधान में उल्लेखित किया गया है जनजाति क्षेत्र से तात्पर्य उस क्षेत्र विशेष से है जहाँ पर जनजाति के लोग निवास करते हैं। प्रस्तुत शोध में जनजाति क्षेत्र से तात्पर्य राजस्थान राज्य के जनजाति बहुल क्षेत्र यथा उदयपुर, डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा जिले से है।
2. व्यक्तित्व - व्यक्तित्व का अर्थ है कि व्यक्ति के शारीरिक संगठन, कौशल, उसका ज्ञान, उसकी अभिरूचि अभिवृत्तियाँ, आदर्श, आकाक्षाएँ उसकी आदतें आदि। मनुष्य के सभी पक्षों शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विशेषताओं का समाकलित रूप उसका व्यक्तित्व कहलाता है।
3. नैतिकता - नैतिकता से आशय व्यक्ति के अनुशासन कर्तव्यपरायणता, निष्पक्षता, शिष्टाचार, ईमानदारी, सहिष्णुता एवं खेल भावना से लिया गया है।
4. स्वास्थ्य - स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति के शारीरिक मानसिक, सेवगात्मकता, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक आदतों से लिया गया है।

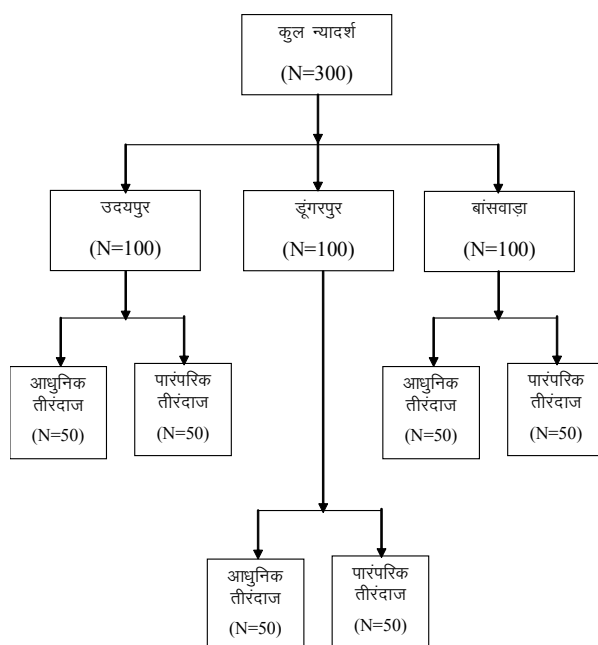
शोध विधि:

प्रस्तुत शोध की प्रकृति को देखते हुए शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

शोध उपकरण:

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधार्थी द्वारा दंतों का संकलन हेतु “स्वास्थ्य - स्वनिर्मित उपकरण” उपकरण का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श चयन:



शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी:

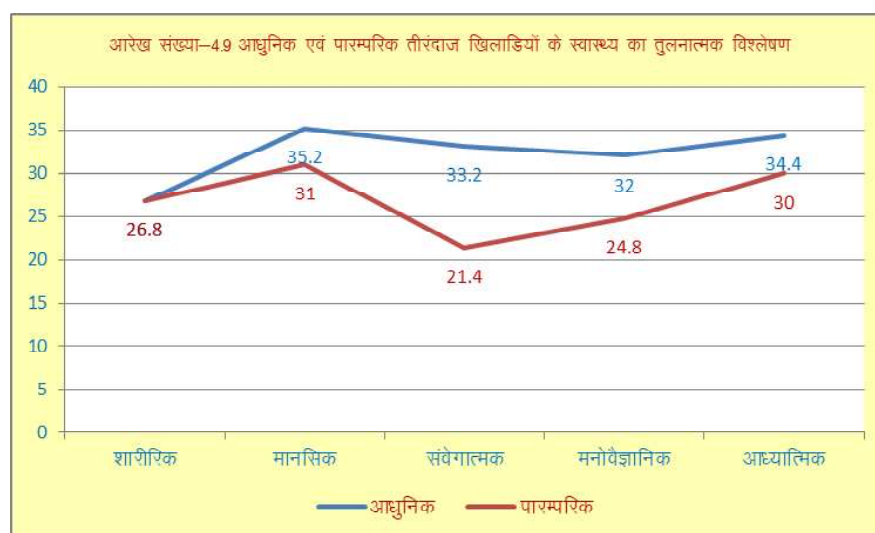
प्रस्तुत शोध में निम्नांकित सांख्यिकीय का उपयोग किया गया।

- प्रतिशत
- मध्यमान
- मानक विचलन
- टी-परीक्षण

प्राप्त दत्तों का विश्लेषण:-

सारणी: आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का तुलनात्मक विश्लेषण

स्वास्थ्य		N	आधुनिक खिलाड़ी		पारम्परिक खिलाड़ी		t-value
			मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
1.	शारीरिक	150	26.8	3.0	26.8	3.0	0.00
2.	मानसिक	150	35.2	8.7	31.0	4.9	5.20
3.	संवेगात्मक	150	33.2	8.6	21.4	4.7	14.65
4.	मनोवैज्ञानिक	150	32.0	6.9	24.8	7.8	8.48
5.	आध्यात्मिक	150	34.4	7.1	30.0	7.9	5.41



व्याख्या:

- (1) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों के शारीरिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक विश्लेषण:- आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के शारीरिक स्वास्थ्य के कथनों का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु टी परीक्षण करने पर टी का मान 0.00 प्राप्त हुआ। यह मान टी सारणी मान के 0.05 से कम है। अतः दोनों समूह के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।
- (2) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक विश्लेषण:- आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य के कथनों का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु टी परीक्षण किया गया। टी परीक्षण करने पर टी मान 5.20 प्राप्त हुआ। यह टी मान सारणीमान के स्तर 0.01 से अधिक है। अतः निष्कर्ष आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
- (3) आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण:- आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य से संबंधी तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन हेतु टी परीक्षण किया गया। टी परीक्षण करने पर टी मान 14.65 प्राप्त हुआ। जो सारणीमान के 0.01 से अधिक है। अतः निष्कर्ष आधुनिक तीरंदाज एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य सार्थक अन्तर पाया जाता है।

- (4) आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का सांख्यिकीय विश्लेषण:- आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य से संबंधी तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन हेतु टी परीक्षण किया गया। टी परीक्षण करने पर टी मान 8.48 प्राप्त हुआ। जो सारणीमान के 0.01 स्तर से अधिक है। अतः निष्कर्ष आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
- (5) आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के आध्यात्मिक स्वास्थ्य का सांख्यिकीय विश्लेषण:- आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के आध्यात्मिक स्वास्थ्य के कथनों का तुलनात्मक विश्लेषण करने हेतु टी परीक्षण किया गया। टी परीक्षण करने पर टी मान 5.11 प्राप्त हुआ। जो सारणीमान के 0.01 स्तर से अधिक है। अतः निष्कर्ष आधुनिक एवं परम्परागत तीरंदाज खिलाड़ियों के आध्यात्मिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

शोध निष्कर्ष:

आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों के स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिक विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियों का सर्वाधिक मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 35.2 एवं 8.7 एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियों का सर्वाधिक मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 31.0 एवं 4.9 पाया गया है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियों का मध्यमान आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियों से उच्च पाया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

- 1 Best, J.W. : "Research in Education", New Delhi, Prentice Hall of India Pvt. Ltd. (1978)
- 2 Borg Walter, R. : "Educational Research an Introduction", New York Longmans, Green & Co. Ltd., 1963.
- 3 Buch, M.B. : "A Survey of Research in Education", Centre of Advanced Study in Education, Faculty of education & Psychology, M.S. University of Baroda, India, 1974.
- 4 Buch, M.B. : "Second Survey of Research in Education", Society for Educational Research & Development, Baroda, India, 1979.
- 5 Buch, M.B. (1979) : "A second survey of research in education", Baroda society for educational researcher and development.
- 6 Fox, D.J. : "The Research Process in Education", New York, Halt Rinehart and Winston., 1969
- 7 Good, C.V. (1945) : "Dictionary of Education", McGraw Hill Book Co., U.S.A.
- 8 Good, C.V., Bar, A.S. & Scater, D.E. (1935) : "The Methodology of Educational Research". Appleton Centaury Crofts. Inc., New York.
- 9 गैरेट, हैनरी, ई., सांख्यिकी के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- 10 गैरेट, हैनरी, ई., "शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी हिन्दी अनुवाद" कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।
- 11 कौल, लोकेश, शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- 12 भण्डारी, रणजीत सिंह, निर्देशन-संदिशका, शैक्षिक एवं व्यावसायिक यूनिट मनोवैज्ञानिक आधार प्रभाग-3, एस.आई.ई.आर.टी., उदयपुर।
- 13 कपिल, एच.के., अनुसंधान विधियाँ, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन, आगरा।
- 14 पाठक, पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- 15 चौहान, एस.एस., "एडवान्स एजुकेशनल साइकोलोजी"
- 16 बेस्ट, जे. डब्ल्यू, रिसर्च इन एजुकेशन प्रिंटिंग हॉल ऑफ इण्डिया प्रा. लि. नई दिल्ली
- 17 गणेशन, एन.एस., अनुसंधान प्राविधि सि)ांत और प्रक्रिया, इलाहाबाद
- 18 गैड डी. एन. तथा शर्मा आर.पी., शैक्षिक एवं माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था, रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा।
- 19 जायसवाल डॉ. सीताराम, भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
- 20 Jonson and Nelson, Measurement in Physical Education, W.B. Sunder Company, Philadelphia, 1984
- 21 Michelle P. Warren and Naama W. Constantini, Sports Endocrinology, United States : Humana Press Publisher, 2000.
- 22 Edward M. Winter, Sport and Exercise Physiology Testing Guideline, London, Taylor & Francis Publish, 2006.
- 23 Amusa, Laley O. : " The Relationship between Soccer Playing Ability and Selected Measure of Structure and Physical, Physiological performance on College Men", Completed Research in Health, Physical Education and Recreation, Vol. 21, p. 23, 2009.
- 24 Ogilvie, B.C. and Johnsberg, K.W. : "The personality of male players", Paper presented at American Academy of Physical Education, Los Vegas, Nevada, 2009
- 25 Long, Karen S. : Physical fitness of Secondary School Boys and Girls : A Comparison of two Programmes of Physical Education". Completed Research in Health, Physical Education and Recreation, Vol. 2, P. 97, 2009.
- 26 Barrow Herharoldon Megr Rosemaary Trickely Kathleeb "A Practical Measurement in Physical Education and Sports." Fourth Edition, 2009, U.S.A., Lea and febiger (UK) 145 A Croydon Road Beclcehham Kent, B.R. 3-3 R.D. U.K.
- 27 David Christian Dutler : "Anthropometric Strength and Performance Attitudes Among Good and Poor Vaulters", Completed Research in Health Physical Education and Recreation, 2010.
- 28 Robert Hindmarch : "The relationship between various anthropometric and physical Performance test and selected trunk flexibility criteria", Completed Research in Health, Physical Education and Recreation, Vol. 2, P. 59, 2010
- 29 Power, A. (2010) : Transforming the Nations Health : Next Steps in Mental health Promotion, American Journal of public Health, 100(12), 2343-6.

- 30 Encyclopedia of sports science and medicine : S.V. Statue by Cart E. Willgoose, Vol. XII, 2010.
- 31 Ferrer Hombravella H. : "Psychic and somatic pathological effects of precocious competition". In. G. Kenyon (Ed.) Contemporary Psychology of Sport, Proceed : International Congress of Sport Psychology, The Athletic Inst. Chicago, 2010.
- 32 Hasen, Kjoss Benet. : "Prediction of Sports Competitive State Anxiety Among Coaches and Athletes". Dissertation Abstracts International, Vol. 44, P. 3009-A, 2010.
- 33 Adward F. Alolf (1974), "Some physiological regulation illustrate in exercise", Science & Medicine of exercise & sports, Harper & Raw publishers, New York,
- 34 Booth Jr. E.G. & G.E. Booth, "Personality Traits of Athletes as Measured by Minnesota Multiphase Personality Inventory." Research Quarterly, Vol.29, P. 127-137.
- 35 Brackmeier, Fredrick, "Personality Types/Traits, Interactions and Jury Decision Making", Ph.D. Union Institute & University, P. 158.
- 36 Brayant J. Kretty, "Psychology and Physical Activity", Anglewood Clifffs, Prentice Hall, New Jersey, Pg. 15
- 37 Charlel V. Karvin & Sir Laines, "Finess for Life", Sports Forman & Co., New Jersey, Pg. 7.

उच्च माध्यमिक स्तर के वॉलीबॉल खिलाड़ियों के शारीरिक स्वास्थ्य का अध्ययन

नरेश पालीवाल

शोधकर्ता

डॉ० तिलकेश आमेटा

सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड-टू-बी विश्वविद्यालय)

प्रस्तावना :-

वर्तमान अध्याय में शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर शोध निष्कर्ष, सुझाव व सारांश प्रस्तुत किए गए हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों-शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य-का अध्ययन करना था।

शोध के अंतर्गत एकत्रित आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण मध्यमान एवं मानक विचलन की सहायता से किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह अध्याय तैयार किया गया है। इस अध्याय में अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष, परिणामों की व्याख्या, अध्ययन की उपयोगिता तथा भविष्य के लिए सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

खिलाड़ियों के सर्वांगीण विकास के लिए खेलकूद से उनके जीवन में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल होती हैं। इस उपलब्धि को हासिल करने के लिए एक विशेष प्रकार की रचना का होना अत्यन्त आवश्यक है। इन क्रियाओं को पूर्ण करने के लिए कौशल निपुणता और प्रवीणता प्राप्त करना होता है। आधुनिक युग में शोध कर विद्वानों ने इस बात को सिद्ध किया है कि विभिन्न खेलों में सफल प्रदर्शन हेतु उस खेल की तकनीकी की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

आज विश्व तकनीकी युग में प्रवेश कर चुका है। इस परिवर्तनशील युग में मानव का व्यवहार उसकी अभिवृत्तियां अपेक्षाएं उसका व्यक्तित्व, स्वास्थ्य का स्तर उसके नैतिक तथा मानवीय मूल्यों, उसका कार्यशैली आदि सभी में परिवर्तन आ रहे हैं। उसके कारण उनके सामाजिकरण की प्रक्रिया में भी जटिलताएं आ रही हैं।

वर्तमान समय में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास करना है। इस दृष्टि से विद्यालयों के दायित्व पहले की अपेक्षा बढ़ गये हैं। इब विद्यालय में समुचित साधन सुविधाएं जुटाई जाती हैं। बालकों के व्यक्तित्व का निर्माण करके उन्हें भावी जीवन के लिए दक्ष बनाया जाता है।

आज की शारीरिक शिक्षा व्यक्ति का केवल शारीरिक विकास ही नहीं करती है। अपितु मानसिक सामाजिक संवेगात्मक एवं आध्यात्मिक विकास भी करती है। अर्थात् सर्वांगीण विकास करता है। विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत तथा सामूहिक खेलों को खेलते समय स्वाभाविक रूप से प्रतियोगिता की भावना जागृत होती है। इसी भावना से वह खेल में भाग लेता है और पूरी शक्ति से जीतने का प्रयास करता है।

खिलाड़ी के सर्वांगीण विकास के लिए खेलकूद का उसके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। जिसके परिणामस्वरूप उसे खेल जगत में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल होती हैं। इन उपलब्धियों को हासिल करने के लिए एक विशेष प्रकार की रचना का होना अत्यन्त आवश्यक है। इन क्रियाओं को पूर्ण करने के लिए कौशल निपुणता और प्रवीणता प्राप्त करना होता है। आधुनिक युग में शोध कर विद्वानों ने इस बात को सिद्ध किया है कि विभिन्न खेलों में सफल प्रदर्शन हेतु उस खेल की तकनीकी जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

वॉलीबाल :-

वॉलीबाल का खेल दो टीमों द्वारा खेला जाता है जिनमें से प्रत्येक में छह खिलाड़ी होते हैं। दोनों टीमों को एक जाल द्वारा अलग किया गया है और खेल का उद्देश्य है गेंद को नेट के पाल भेजे और इसे प्रतिद्वंद्वी के कोर्ट पर ग्राउंड करें। प्रतिद्वंद्वी टीम को इसे रोकना होगा। वॉलीबाल कोर्ट के आयाम हैं-18मीटर गुणा 9 मीटर।

सीमा रेखाएं :-

1. सेमा रेखा कोर्ट के चारों ओर आयताकार आकार में फैली हुई है।
2. अंतिम पंक्तियां कोर्ट के छोटे किनारों पर मौजूद हैं।

3. किनारे के लंबे किनारों पर लंबी सीमा रेखाएं होती हैं।
4. रेखाएं 5 सेण्टीमीटर चौड़ी होती हैं।

केन्द्र रेखा :-

1. केन्द्र रेखा नेट के नीचे किनारे से किनारे तक फैली हुई है।
2. केन्द्र रेखा कोर्ट के खेल क्षेत्र को दो बराबर हिस्सों में विभाजित करती है।
3. केन्द्र रेखा 30 गुणा 30 फीट होती है।

आक्रामक पंक्ति:-

आक्रमण रेखाएं केन्द्र रेखा से 3 मीटर की दूरी पर स्थित रेखाएं होती हैं। कोर्ट आक्रमण रेखा किनारे से किनारे तक फैली हुई है।

सर्विस एरिया :-

1. सर्विस क्षेत्र अंतिम लाइन के पीछे का क्षेत्र है जहां सर्वर होता है।
2. सर्विस क्षेत्र 30 फीट चौड़ा है।
3. दोनों सर्विस क्षेत्र 2 मीटर गहराई में हैं।

प्रतिस्थापन क्षेत्र :-

प्रतिस्थापन क्षेत्र आक्रमण रेखा और केन्द्र रेखा के बीच का क्षेत्र है। यह वह क्षेत्र है जहां प्रतिस्थापन होता है। प्रतिस्थापन अनुरोध केवल तभी किया जाता है जब कोई विकल्प इसमें प्रवेश करता है। प्रतिस्थापन क्षेत्र का मतलब है कि कोच या कप्तान अनुरोध नहीं कर सकते हैं।

मैच पाँच सेटों में से सर्वश्रेष्ठ खेले जाते हैं। पहले चार सेट खेले जाते हैं 25 अंक, अंतिम सेट 15 अंक तक खेला जाता है। एक टीम को एक सेट 2 अंक जीतना होता है, कोई सीमा नहीं है इसलिए एक सेट एक टीम तक जारी रहता है। दो अंक का लाभ मिलता है। पहले सभी सेट 15 अंक के होते हैं। पहले चार सेट में 17 की अधिकतम सीमा होती है और अंतिम सेट में कम से कम दो अंक जीतने के लिए आवश्यकता होती है।

आधुनिक युग में शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा का उतना ही महत्वपूर्ण है जितना शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर वॉलीबाल खेल को बढ़ावा देने एवं उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु कई शोध हुए हैं। लेकिन उच्च माध्यमिक स्तर पर वॉलीबाल खेल को बढ़ावा देते एवं उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु शोधार्थी के मस्तिष्क में कई प्रश्न उभरे हैं जो इस प्रकार हैं-

1. वॉलीबाल खिलाड़ियों का व्यक्तित्व किस तरह का होता है
2. वॉलीबॉल खिलाड़ियों की सामाजिक उपलब्धियां कौन-कौनसी हैं?
3. वॉलीबॉल खिलाड़ियों का शारीरिक स्वास्थ्य कैसा है?
4. गैर खिलाड़ियों का व्यक्तित्व एवं शारीरिक स्वास्थ्य किस तरह का है?
5. वॉलीबॉल खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ियों के व्यक्तित्व, शारीरिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक उपलब्धियों में क्या भिन्नता है?

इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की जिज्ञासा ने ही शोधार्थी को उक्त विषय में कार्य करने हेतु प्रेरित किया है।

शोध परिसीमन :-

प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित परिसीमाएं निर्धारित की जाती हैं-

1. प्रस्तुत शोध कार्य उच्च माध्यमिक स्तर के वॉलीबॉल खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ियों तक सीमित रखा।
2. प्रस्तुत शोध कार्य कक्षा 11वीं एवं 12वीं में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं तक सीमित रखा।
3. प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर जिले तक सीमित रखा।

शोध विधि :- प्रस्तुत शोध अध्ययन की समस्या की प्रकृति को देखते हुए शोधार्थी द्वारा शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया।

शोध में प्रयुक्त शब्दों का पारिभाषीकरण :-

- (1) उच्च माध्यमिक स्तर :- उच्च माध्यमिक स्तर से आशय सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 10वीं एवं 12वीं के खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी विद्यार्थियों से है।
- (2) व्यक्तित्व :- हर एक व्यक्ति में कुछ विशेषताएं होती हैं, जिनके आधार पर वह परिस्थितियों के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाओं को हम एक शब्द में व्यक्तित्व कहते हैं। व्यक्ति से ही व्यक्ति के आकर्षण का पता चलता है। कुछ लोग आशावादी होते हैं। और कुछ निराशावादी यह आपको व्यक्ति के व्यक्तित्व से पता चल जाएगा।
- (3) सामाजिक उपलब्धि :- सामाजिक उपलब्धि से आशय खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ियों के अनुशासन, कर्तव्यपरायणता, निष्पक्षता, शिष्टाचार, ईमानदारी, सहिष्णुता, मित्रता एवं खेल भावना से लिया गया।

(4) शारीरिक स्वास्थ्य :- शारीरिक स्वास्थ्य से आशय खिलाड़ियों एवं गैर खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता, गति, मांसपेशीय क्षमता, सहनशीलता, शक्ति, चपलता आदि से लिया गया है।

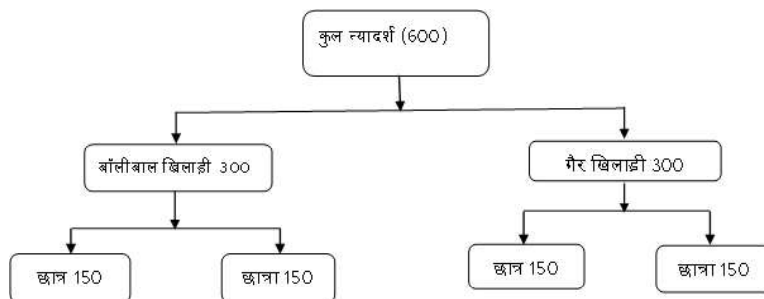
समस्या का औचित्य :-

विद्यार्थी देश का भविष्य होता है। उनका सर्वांगीण विकास देश की उन्नति में सहायक के लिए उपयोगी नागरिक बन सके और इस पवित्र कार्य को सम्पादित करने का दायित्व शिक्षक का ही लें, विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्वक, व्यवहारिक मूल्य परक एवं रोजगारपरक शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा भी दी जानी उचित है। यह शिक्षा छात्रों के लिए रोजगार के साथ शारीरिक स्वास्थ्य पर भी लाभदायक सिद्ध होती है।

प्रस्तुत शोध कार्य खिलाड़ियों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। साथ ही खिलाड़ियों के व्यक्तित्व, शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक उपलब्धि एवं सर्वांगीण विकास के लिए विशिष्ट महत्व रखता है।

शोध में प्रयुक्त न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त न्यादर्श इस प्रकार है-



शोध उपकरण :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में “स्वास्थ्य : ऑपहर यूथ फिटनेस परीक्षण” शोध उपकरण का प्रयोग किया ।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा तथ्यों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकी का उपयोग किया

1. मध्यमान
2. प्रमाप विचलन
3. टी-परीक्षण

प्राप्त दत्तों का विश्लेषण:

सारणी: वालीबाल खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण

घटक	N	खिलाड़ी मध्यमान	मानक विचलन
शारीरिक	150	27.3	7.3
	150	27.6	7.2
निष्पक्षता	150	28.1	6.5
शिष्टाचार	150	28.8	7.2
ईमानदारी	150	29.4	8.2
सहिष्णुता	150	27.6	8.1
मित्रवत एवं खेल भावन	150	29.02	6.5
कुल	150	198.00	51.00

1. वॉलीबॉल खिलाड़ियों के शारीरिक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण :- वॉलीबॉल खिलाड़ियों के शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। शारीरिक स्वास्थ्य का मध्यमान 27.3 तथा मानक विचलन 7.3 प्राप्त हुआ। प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि वॉलीबॉल खिलाड़ियों का शारीरिक स्वास्थ्य स्तर संतोषजनक पाया गया है। वॉलीबॉल एक तीव्र गति से खेले जाने वाला खेल है, जिसमें दौड़ना, कूदना तथा निरंतर शारीरिक सक्रियता आवश्यक होती है। इस कारण खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता तथा स्वास्थ्य स्तर में सकारात्मक विकास होता है।
2. वॉलीबॉल खिलाड़ियों के स्वास्थ्य संबंधी व्यवहार का सांख्यिकी विश्लेषण :- वॉलीबॉल खिलाड़ियों के स्वास्थ्य संबंधी व्यवहार का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है तथा इसका मध्यमान 27.6 एवं मानक विचलन 7.2 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि वॉलीबॉल खिलाड़ी अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहते हैं तथा नियमित व्यायाम, संतुलित आहार और अनुशासित जीवन शैली अपनाते हैं। खेल गतिविधियों में नियमित भागीदारी से उनके स्वास्थ्य संबंधी व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देता है।
3. वॉलीबॉल खिलाड़ियों में निष्पक्षता से संबंधित स्वास्थ्य व्यवहार का सांख्यिकी विश्लेषण :- वॉलीबॉल खिलाड़ियों के निष्पक्षता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। निष्पक्षता का मध्यमान 28.1 तथा मानक विचलन 6.5 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि वॉलीबॉल खिलाड़ियों में खेल के दौरान नियमों का पालन करने तथा निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा बनाए रखने की प्रवृत्ति पाई जाती है, जो उनके मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।
4. वॉलीबॉल खिलाड़ियों के शिष्टाचार संबंधी स्वास्थ्य व्यवहार का सांख्यिकी विश्लेषण:-वॉलीबॉल खिलाड़ियों के शिष्टाचार संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। शिष्टाचार का मध्यमान 28.8 तथा मानक विचलन 7.2 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में सामाजिक व्यवहार, सम्मान तथा सहयोग की भावना विद्यमान रहती है। यह गुण खिलाड़ियों के मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य के विकास में सहायक होता है।
5. वॉलीबॉल खिलाड़ियों के ईमानदारी संबंधी स्वास्थ्य व्यवहार का सांख्यिकी विश्लेषण:- वॉलीबॉल खिलाड़ियों के ईमानदारी संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। ईमानदारी का मध्यमान 29.4 तथा मानक विचलन 8.2 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में सत्यनिष्ठा तथा निष्पक्ष खेल भावना का स्तर अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। यह गुण खेलों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है तथा खिलाड़ियों के नैतिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाता है।
6. वॉलीबॉल खिलाड़ियों के सहिष्णुता संबंधी स्वास्थ्य व्यवहार का सांख्यिकी विश्लेषण:-वॉलीबॉल खिलाड़ियों के सहिष्णुता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। सहिष्णुता का मध्यमान 27.6 तथा मानक विचलन 8.1 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में धैर्य, सहनशीलता तथा विपरीत परिस्थितियों में भी संतुलित व्यवहार बनाए रखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। खेलों के माध्यम से खिलाड़ी हार और जीत दोनों को स्वीकार करना सीखते हैं, जो उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है।
7. वॉलीबॉल खिलाड़ियों के मित्रवत एवं खेल भावना संबंधी स्वास्थ्य व्यवहार का सांख्यिकी विश्लेषण :-वॉलीबॉल खिलाड़ियों के मित्रवत एवं खेल भावना संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। इसका मध्यमान 29.02 तथा मानक विचलन 6.5 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में सहयोग, मित्रता तथा टीम भावना का स्तर उच्च पाया जाता है। यह गुण खिलाड़ियों के सामाजिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने में सहायक होता है।
8. वॉलीबॉल खिलाड़ियों के कुल स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण :- वॉलीबॉल खिलाड़ियों के कुल स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। कुल स्वास्थ्य का मध्यमान 198.00 तथा मानक विचलन 51.00 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वॉलीबॉल खिलाड़ियों का शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य स्तर संतोषजनक पाया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि वॉलीबॉल जैसे खेल विद्यार्थियों के समग्र स्वास्थ्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
9. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ी और गैर खिलाड़ी के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ी के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि गैर खिलाड़ी का अनुशासन प्रतिशत मध्यमान 49.2 और खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान 56.6 पाया गया इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान गैर खिलाड़ी, प्रतिशत के मध्यमान से उच्च पाया गया। जिससे स्पष्ट होता है कि गैर खिलाड़ी खिलाड़ी से उच्च होता है
10. महाविद्यालय स्तर के खिलाड़ी के कर्तव्यपरायणता का सांख्यिकी विश्लेषण : महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ी के कर्तव्यपरायणता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ी का अनुशासन प्रतिशत मध्यमान 57.1 और गैर खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान 48.1 पाया गया

वॉलीबॉल खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का घटकवार विश्लेषण :-

सारणी: वॉलीबॉल खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का घटकवार विश्लेषण

स्वास्थ्य घटक	N	मध्यमान	मानक विचलन
शारीरिक	150	26.8	3.0
मानसिक	150	33.1	7.3
संवेगात्मक	150	27.3	9.1
मनोवैज्ञानिक	150	28.4	8.2
आध्यात्मिक	150	32.2	7.8
कुल	300	147.8	20.00

व्याख्या:

1. शारीरिक स्वास्थ्य घटक का सांख्यिकी विश्लेषण :-शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि उत्तरदाताओं की संख्या (N) 150 है। शारीरिक स्वास्थ्य का मध्यमान 26.8 तथा मानक विचलन 3.0 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं का शारीरिक स्वास्थ्य स्तर संतोषजनक पाया गया है। शारीरिक स्वास्थ्य व्यक्ति के समग्र विकास का आधार होता है, जो नियमित व्यायाम, संतुलित आहार तथा सक्रिय जीवन शैली के माध्यम से विकसित होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि शारीरिक स्वास्थ्य का स्तर व्यक्तियों के दैनिक जीवन की क्रियाओं को प्रभावी ढंग से संपन्न करने में सहायक होता है।
2. मानसिक स्वास्थ्य घटक का सांख्यिकी विश्लेषण :-मानसिक स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि उत्तरदाताओं की संख्या (N) 150 है। मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान 33.1 तथा मानक विचलन 7.3 प्राप्त हुआ। प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में मानसिक स्वास्थ्य का स्तर अपेक्षाकृत अच्छा पाया गया है। मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति की सोचने, समझने, निर्णय लेने तथा तनाव का सामना करने की क्षमता को प्रभावित करता है। स्वस्थ मानसिक स्थिति व्यक्ति को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में संतुलित एवं सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने में सहायता प्रदान करती है।
3. संवेगात्मक स्वास्थ्य घटक का सांख्यिकी विश्लेषण :-संवेगात्मक स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि उत्तरदाताओं की संख्या (N) 150 है। संवेगात्मक स्वास्थ्य का मध्यमान 27.3 तथा मानक विचलन 9.1 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में संवेगात्मक संतुलन का स्तर संतोषजनक पाया गया है। संवेगात्मक स्वास्थ्य व्यक्ति की भावनाओं को नियंत्रित करने, तनावपूर्ण परिस्थितियों में धैर्य बनाए रखने तथा सामाजिक संबंधों को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
4. मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य घटक का सांख्यिकी विश्लेषण :-मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि उत्तरदाताओं की संख्या (N) 150 है। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का मध्यमान 28.4 तथा मानक विचलन 8.2 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में आत्मविश्वास, आत्म-नियंत्रण तथा सकारात्मक सोच जैसे मनोवैज्ञानिक गुण विद्यमान हैं। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास तथा सामाजिक समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
5. आध्यात्मिक स्वास्थ्य घटक का सांख्यिकी विश्लेषण :-आध्यात्मिक स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि उत्तरदाताओं की संख्या (N) 150 है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य का मध्यमान 32.2 तथा मानक विचलन 7.8 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में जीवन के मूल्यों, नैतिकता तथा आत्मिक संतुलन की भावना विद्यमान है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य व्यक्ति को आंतरिक शांति, आत्म-संतोष तथा सकारात्मक जीवन दृष्टिकोण प्रदान करता है।
6. कुल स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण :- समस्त स्वास्थ्य घटकों के संयुक्त सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि कुल उत्तरदाताओं की संख्या (N) 300 है। कुल स्वास्थ्य का मध्यमान 147.8 तथा मानक विचलन 20.00 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं का समग्र स्वास्थ्य स्तर संतोषजनक पाया गया है। शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य घटक मिलकर व्यक्ति के समग्र स्वास्थ्य का निर्माण करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि इन सभी घटकों का संतुलित विकास व्यक्ति के सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है।

गैर वॉलीबॉल खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का घटकवार विश्लेषण

सारणी: गैर वॉलीबॉल खिलाड़ियों के स्वास्थ्य का घटकवार विश्लेषण

स्वास्थ्य घटक	N	मध्यमान	मानक विचलन
शारीरिक	150	25.5	4.2
मानसिक	150	26.2	5.6
संवेगात्मक	150	23.2	4.5
मनोवैज्ञानिक	150	23.9	6.3
आध्यात्मिक	150	27.6	8.0
कुल	150	126.3	15.5

व्याख्या:

1. महाविद्यालय स्तर के खिलाड़ीयों के शारीरिक सांख्यिकी विश्लेषण : शारीरिक स्वास्थ्य से संबंधित कथनों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान 53.5 और गैर खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान 50.9 पाया गया।

2. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों के मानसिक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण : महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों के मानसिक स्वास्थ्य संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ी का मानसिक स्वास्थ्य प्रतिशत मध्यमान 66.2 और गैर खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान 52.3 पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान गैर खिलाड़ी प्रतिशत के मध्यमान से उच्च पाया गया। जिससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी पुरुष से उच्च होता है।
3. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों का संवेगात्मक सांख्यिकी विश्लेषण : महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों के मानसिक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ी का संवेगात्मक प्रतिशत मध्यमान 54.6 और गैर खिलाड़ी का 46.3 प्रतिशत मध्यमान पाया गया। जिससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी का संवेगात्मक स्वास्थ्य गैर खिलाड़ी के संवेगात्मक स्वास्थ्य से उच्च पाया गया।
4. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण : महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ी मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का प्रतिशत मध्यमान 56.8 प्रतिशत और गैर खिलाड़ी का प्रतिशत मध्यमान 47.7 प्रतिशत है। जिससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी का मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य गैर खिलाड़ी से उच्च होता है।
5. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों के आध्यात्मिक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण : महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयों के आध्यात्मिक स्वास्थ्य का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ी का आध्यात्मिक स्वास्थ्य का मध्यमान प्रतिशत 64.4 प्रतिशत और गैर खिलाड़ी का मध्यमान प्रतिशत 55.2 पाया गया। जिससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी का आध्यात्मिक स्वास्थ्य गैर खिलाड़ी से उच्च होता है।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष :-

शारीरिक स्वास्थ्य के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि शारीरिक स्वास्थ्य का मध्यमान 26.8 तथा मानक विचलन 3.0 प्राप्त हुआ। यह परिणाम दर्शाता है कि उत्तरदाताओं का शारीरिक स्वास्थ्य स्तर संतोषजनक पाया गया।

शारीरिक स्वास्थ्य व्यक्ति की दैनिक जीवन की क्रियाओं को प्रभावी ढंग से करने की क्षमता को प्रभावित करता है। अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य व्यक्ति की कार्यक्षमता, ऊर्जा स्तर तथा जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. रिद्वान दगदेमीर, सेरकन तेवबिल औका (2019) अलग-अलग अध्ययन करने वाले छात्रों के दृष्टिकोण पर तुलनात्मक अध्ययन, शारीरिक शिक्षा, खेल के प्रति उच्च विद्यालयों प्रकार सबक एशियन जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग, 5(4) 609-615. प्रकाशन-एशियन ऑनलाइन जर्नल पब्लिशिंग ग्रुप।
2. गु. एक्स और झांग टी 2016 बच्चों की प्रेरणा में परिवर्तन शारीरिक शिक्षा और शारीरिक गतिविधि में एक अनुदैर्ध्य परिपेक्ष्य, शारीरिक शिक्षा में अग्रिम 6, 205-12. <https://doi.org/10.4236/ape.2016.63022>
3. उलूइस्क 2016 कक्षा लिंग के अनुसार शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम के प्रति माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के दृष्टिकोण की जांच की। इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टी डिस्प्लनरी एकेडमिक रिसर्च, 2(3)45-53.
4. स्वास्थ्य वर्धक शारीरिक गतिविधि पर विशेषज्ञ समूह (2014) यूरोपीय संघ का काम खेल के लिए योजना 2014-2017 यूरोपीय आयोग से लिया गया वेबसाइट <http://ec.europa.eu/transparency/regexpert/index-CFm dj group detail-group detail doc> और आईडी 19,860 ओर कोई = 1
5. रोग नियन्त्रण एवं निवारक केन्द्र 2014 राज्य सूचक शारीरिक गतिविधि रिपोर्ट 2014. <https://doi-org/10.3945/an.1141007.2011>
6. ग्रास्टन ए. जाकोला टी. लियुकोनेन जे. वाट. ए. और यली पिपरी एस. 2012 स्कूल शिक्षा में आनन्द की भविष्यवाणी स्पोर्ट्स साइंस एंड मेडिसन जर्नल, 11, 260-269. <https://doi.org/10.1111/josh.12228>
7. कोलक्विट, जी. वॉकर ए. लैंगडन जे. मैकलम एस. और पोमाजल एम. (2012) शारीरिक शिक्षा और छात्र के दृष्टिकोण की खोज और नीति के लिए निहितार्थ खेल वैज्ञानिक और व्यवहारिक पहलु 2.5-12.
8. बाल्यान, एम.वाई.बी. Kiremitei2012, दृष्टिकोण सामाजिक कौशल और आत्म प्रभावशीलता के स्तर पर विभिन्न खेल गतिविधियों के प्रभाव प्राथमिक स्कूल के छात्रों की शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम सेल्कुक् यूनिवर्सिटी जर्नल ऑफ फिजिकल एज्युकेशन एण्ड स्पोर्ट्स साइंस 14(2)196-201.
9. इक्यासी एट अल., हैकफरोडलू और ए. बेशकदार (2011) शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम का मूल्यांकन हाई स्कूल के छात्रों का दृष्टिकोण जर्नल का मानव विज्ञान, 8(1)329-839.

जल प्रबंधन में प्रौद्योगिकी की भूमिका

डॉ० गुड़िया कुमारी

सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, आर.एन.ए.आर. महाविद्यालय, समस्तीपुर

सारांश

पृथ्वी पर जीवन की मुख्य आवश्यकता में जल का स्थान प्रमुख है विभिन्न प्रतिस्पर्धात्मक क्षेत्रों जैसे शहरीकरण, औद्योगिकरण, जनसंख्या वृद्धि एवं मानव के रहनसहन के स्तर में परिवर्तन के कारण जल की मांग में निरंतर होने वाली वृद्धि से स्वच्छ जल स्रोत की गुणवत्ता एवं जल उपलब्धता में निरंतर कमी हो रही है। इसके अतिरिक्त समयिक कालिक आधार पर देश में वर्षा की अत्यधिक परिवर्तनीयता के कारण विभिन्न उद्देश्यों हेतु उपलब्ध जल के इष्टतम संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। विगत कुछ दशकों में जल विज्ञान ने विभिन्न क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति की है। जल विज्ञानी में माप यंत्रणा आंकड़ा एकत्रीकरण आंकड़ा प्रक्रमण एवं संचयन आदि का संगणकीकरण किया जा चुका है। सुदूर संवेदी उपग्रह से प्राप्त स्थानीय आंकड़ा से भौगोलिक सूचना तंत्र द्वारा प्राप्त स्थानिक विश्लेषण के अनुप्रयोग अनेक निदर्शन अध्ययनों में किए जा रहे हैं। किसी सरिता में विभिन्न स्रोतों से पुनः पूर्ण क्षेत्रों के चयनीकरण भूजल निस्तरण एवं इसकी गति तथा प्रवाह घटकों के चयनीकरण से संबंध अनेकों जल विज्ञानी अनुप्रयोगों में नाभिकीय तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त नदी बेसिन के पैमाने पर निर्णय सहायक तंत्र को विकसित किया जा रहा है जो निदर्शन जटिलताओं की गहराई में प्रवेश किए बिना विवेकपूर्ण सतही एवं भूजल विकास एवं प्रबंधन के लिए विभिन्न स्थितियों के विश्लेषण हेतु नीति निर्धारकों को सहायता प्रदान कर सकता है प्रस्तुत प्रपत्र में जल विज्ञान एवं जल संसाधनों के विभिन्न पहलुओं में कुछ नवीनतम विकास से संबंधित विषयों का वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना

पृथ्वी पर उपलब्ध पुनः प्राप्त किए जाने योग्य संसाधनों में जल का प्रमुख स्थान है जल जीवन की समस्त अवस्थाओं के संयोजन, खाद्यान्न उत्पादन, आर्थिक विकास एवं समाज के कल्याण के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह प्रकृति द्वारा मानव को प्रदत्त एक विशिष्ट उपहार है। जल एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिसमें मार्ग परिवर्तन, परिवहन, संचयन एवं पुनर्चक्रण की क्षमता उपलब्ध है। जल की उपरोक्त समस्त विशिष्टताएं मानव- जीवन के उपयोग के लिए जल की महान उपयोगिताओं को प्रदान करती है।

हमारे देश की सतही एवं भूजल संसाधन, जल शक्ति उत्पादन, पशुधन उत्पादन, औद्योगिक गतिविधियों, वन विज्ञान, मत्स्य जीवन, नौकायन एवं मनोरंजन से संबंधित गतिविधियों इत्यादि में जल का उपयोग एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करते हैं। जल संसाधनों के योजनीकरण एवं प्रचालन के संबंध में गठित राष्ट्रीय जल नीति के अंतर्गत मुख्य विषय निर्धारित किए गए हैं।

1. पेयजल
2. सिंचाई
3. जल-शक्ति
4. पारिस्थितिकी
5. कृषि उपयोग
6. कृषि आधारित उद्योग
7. नौकायन

भारत में हिमपात सहित लगभग 4000 धन किलोमीटर वार्षिक अवक्षेपण प्राप्त होता है। जिसमें से 3000 धन किलोमीटर वर्षा ऋतु के दौरान प्राप्त होता है। भारत को प्रकृति की अनमोल देन नदी तंत्र है, जिसमें अनेकों सहायक नदियों में से अधिकांश नदियां बारहमासी हैं। गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु जैसी प्रमुख नदियां हिमालय से निकलती हैं तथा इन नदियों में जल प्रवाह वर्ष भर उपलब्ध रहता है। भारत के जल संसाधनों में 50: से अधिक भाग इन नदी तंत्र की विभिन्न नदियों में उपलब्ध जल के अतिरिक्त, भूजल भी पेयजल, सिंचाई, औद्योगिक क्षेत्रों इत्यादि के लिए जल मांगों को पूर्ण करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। भूजल, देश में लगभग 80: जल आवश्यकताओं की तथा 45: से अधिक सिंचाई आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

जल विज्ञान, वायुमंडल, पृथ्वी की सतह एवं पृथ्वी की सतह के नीचे जल की उपलब्धता, वितरण एवं गति का विज्ञान है। समय के साथ जल विज्ञान के क्षेत्र में अनेक नवीनतम तकनीकों का अन्वेषण हुआ है। जल वैज्ञानिक एवं जल मौसम वैज्ञानिक क्षेत्रों में स्वचालित माप यंत्र, जल संसाधनों के क्षेत्र में

विविध समस्याओं के समाधान हेतु उपलब्ध आधुनिक निदर्शन तकनीकों में अनुप्रयोग के लिए आवश्यक समय अंतराल पर उपयुक्त एवं शुद्ध आंकड़े प्रदान करते हैं। अंकीय जल विज्ञानीय आंकड़ा संचयन एवं प्रक्रमण के लिए उपयोग कर्ता प्रभावी, सॉफ्टवेयर विकसित किए जा रहे हैं तथा उनका उपयोग प्रभावी आंकड़ों के प्रबंधन के लिए किया जा रहा है। स्थानिक आंकड़ों के बेस प्रबंधन एवं विश्लेषण के लिए सुदूर संवेदी उपग्रह एवं स्थानिक विश्लेषण द्वारा स्थानिक निर्णय सहायक तंत्र के विकास के लिए सुदूर संवेदी एवं भौगोलिक सूचना तंत्र द्वारा प्रदत्त स्थानिक आंकड़ा एक महत्वपूर्ण यंत्र है। यह यंत्र निदर्शन अध्ययनों के लिए महत्वपूर्ण निर्णय प्रदान करते हैं। इन अध्ययनों से प्राप्त परिणामों का प्रयोग अनेक जल संसाधन प्रबंधन विषयों में किया जा रहा है। जल विज्ञान एवं जल संसाधनों के क्षेत्र में कृत्रिम न्यूरल नेटवर्क का विशिष्ट विकास एवं अनुप्रयोग किया जा रहा है। नाभिकीय तकनीकों का अनुप्रयोग अनेक जल विज्ञानीय क्षेत्रों में किया गया है जिनमें एक नदी के विभिन्न स्रोतों से पुनः पूरण का चयनीकरण, भूजल निःस्यंदन एवं इसकी गति तथा प्रवाह क्षेत्रों का चयनीकरण सम्मिलित है।

इसके अतिरिक्त नदी बेसिन पैमानों पर निर्णय, सहायक तंत्र को विकसित किया जा रहा है, जो निदर्शन जटिलताओं की गहराई में प्रवेश किए बिना विवेकपूर्ण सतही भूजल विकास एवं प्रबंधन के लिए विभिन्न स्थितियों के विश्लेषण में नीति निर्धारकों को सहायता प्रदान कर सकता है। प्रस्तुत प्रपत्र में जल विज्ञानीय निदर्शन एवं विश्लेषण में नवीनतम विकास की संक्षिप्त जानकारी प्रदान की गई है।

जल विज्ञानीय मापयंत्रण में नवीनतम तकनीकों का प्रयोग

जल संसाधनओं की योजनाओं का योजनीकरण विकास एवं संचालन जल विज्ञानीय आंकड़ों पर पूर्णतः आश्रित है। जल संसाधनों के आर्थिक एवं इष्टतम उपयोग, योजनीकरण, अभिकल्पन एवं विकास के साथ सतही एवं भू जल की आवश्यकता होती है। जल विज्ञानीय माप यंत्रण का विकास इस क्षेत्र की एक प्राथमिक आवश्यकता है जिसके लिए जल विज्ञानी चक्र एवं उससे संबंधित घटकों के विश्वसनीय एवं प्रख्यात प्रेक्षण आंकड़ों की आवश्यकता होती है जल घनत्व- मापी जलीय चक्र के तत्वों के मापन एवं प्रेक्षण से संबंध है।

सामान्यतः अध्ययन के लिए उपयोग किए जाने वाले मुख्य मौसम विज्ञानियों अवयवों में अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान, वायुवेग एवं दिशा, सूर्य का चमकना, वाष्पन, मृदा आद्रता इत्यादि सम्मिलित है। अध्ययन के लिए आवश्यक मुख्य जल विज्ञानीय अवयवों में नदी जल स्तर एवं उसके सापेक्ष निस्सरण सम्मिलित हैं। इन अवयवों में मापन सामान्यतः रूढ़िवादी मापी यंत्रों जैसे थर्मामीटर, वर्षा मापी, वायु वेग मापी इत्यादि द्वारा किया जाता है विश्व मौसम विज्ञान केंद्र (1998) ने विभिन्न माप यंत्रों एवं उनकी सहायता से की जाने वाली परीक्षण पद्धतियों को सूचीबद्ध किया है।

निकट पूर्व काल में जल मौसम विज्ञानीय अवयवों की आवश्यक अवधि पर निरंतर प्रेक्षण एवं प्रेषित मानो का उपयोग किए जाने हेतु एक डाटा संचयन के लिए स्वचालित मौसम स्टेशन का अन्वेषण किया गया है। यह माप यंत्र विभिन्न जल विज्ञानीय है एवं जल मौसम विज्ञानीय प्रचलनों जैसे वायु वेग, वायु दिशा, आद्रता, तापमान, सूर्य के चमकने की अवधि, वायुदाब सौर विकिरण, वर्षा मापी, मृदा आद्रता एवं मृदा तापमान इत्यादि को रिकॉर्ड करते हैं। यह स्वचालित मौसम स्टेशन सुदूर एवं अगम्य एवं विरान क्षेत्रों में मौसम एवं चक्रवात के पूर्वानुमान से संबंधित आंकड़ों के लिए सर्वोच्च महत्व प्रदान करते हैं। स्वचालित मौसम स्टेशन बेस स्थलों तक मौसम विज्ञानीय आंकड़ों एवं क्षेत्रीय स्थलों को आंकड़ों को उपग्रह की सहायता से संप्रेषित करते हैं। यह मापी यंत्र सौर ऊर्जा पर आधारित होते हैं तथा इनका प्रचालन एक बैटरी की सहायता से किया जाता है, जिसे एक सौर पैनलों से ऊर्जा के द्वारा अवशोषित किया जाता है। भारत में, भारत मौसम विज्ञान संस्थानों के तहत बृहद संख्या में नवीनतम स्वचालित मौसम स्टेशनों को संपूर्ण देश में स्थापित किया जा रहा है। तथा इस संबंध में अधिक स्टेशनों की स्थापना हेतु निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। मौसम विज्ञानी, सेवाओं में सुधार हेतु भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान, हिम एवं हिमस्खलन अध्ययन संस्थान द्वारा विस्तार कार्यक्रम के अंतर्गत लगभग 1000 स्वचालित मौसम विज्ञानीय स्टेशनों को स्थापित किए जाने की भी योजना है।

किसी अनुप्रस्थ काट क्षेत्रफल से प्रति सेकंड गुजरने वाले जल के आयतन को सरिता निस्सरण के रूप में जाना जाता है तथा इसे सामान्यतः घन.मी./सेकेण्ड (क्यूसेक) के रूप में व्यक्त करते हैं। किसी अनुप्रस्थ काट क्षेत्रफल का निर्धारण करने के लिए अनुप्रस्थ काट स्थिति पर नदी की चौड़ाई को मापा जाता है तथा नदी की गहराई को आशंकित छड़ से मापा जाता है। विशाल नदियों के में अनुप्रस्थ काट को गतिशील नाव की सहायता से ज्ञात करते हैं तथा जल की गहराई को इको गहराई मापी के द्वारा मापा जाता है। नदी की गहराई के मापन के लिए स्वचालित एवं अंकीय जलस्तर रिकॉर्डर को विशिष्ट माध्यम दिया जा रहा है जल के प्रत्यक्ष संपर्क में आए बिना राडार पल्स के प्रयोग द्वारा राडार जलस्तर मापक मापयंत्र जल स्तर का मापन करता है। इस उपकरण को पुल पियर या जल सतह के ऊपर किसी संरचना पर स्थापित किया जा सकता है। यह उपकरण लॉगिंग संवेदक से संबद्ध किए जाने पर उपयोगकर्ताओं की आवश्यकतानुसार विशिष्ट सामान्य तल पर आंकड़ों को रिकॉर्ड कर सकता है। जल प्रवाह के वेग को सामान्यतः किसी धारामापी की सहायता से मापा जाता है। अन्वेषण हेतु विविध प्रकार के धारामापी उपलब्ध है। नदियों एवं सरिताओं में औसत प्रवाह वेग मापन के लिए अंकीय वेगमापी भी विकसित किए गए हैं।

जल विज्ञानीय आंकड़ा प्रविष्टि एवं प्रक्रमण

जल विज्ञान में नवीनतम अन्वेषण जल विज्ञानीय अवयवों के श्रेष्ठ विश्वसनीय एवं निरंतर मापन पर आधारित है। विभिन्न माप यंत्रों से एकत्र किए गए आंकड़ों को जल मौसम विज्ञानीय परिष्कृत करने का काम करते हैं जो सामान्यतः अपरिष्कृत होते हैं। उन्हें अधिकांश जल विज्ञानीय विश्लेषणों हेतु यथास्थिति में प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इन आंकड़ों को सर्वप्रथम संगणकीकरण किया जाता है। उसके पश्चात आंकड़ों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए उन्हें अनेक प्रकार के परीक्षणों से गुजारा जाता है। आंकड़ा प्रक्रमण में प्रेक्षण अपरिष्कृत आंकड़ों को प्राप्त करने एवं उन्हें अनेक प्रकार के परीक्षणों से गुजारा जाता है। आंकड़ा प्रक्रमण में प्रेक्षित अपरिष्कृत आंकड़ों को प्राप्त करने एवं उन्हें अध्ययन योग्य बनाने की समस्त गतिविधियां सम्मिलित हैं। अपरिष्कृत आंकड़ों

जैसे हस्त-लिखित, रिकॉर्ड, चार्ट एवं अंकीय रिकॉर्ड के रूप में उपलब्ध होते हैं। प्रेक्षण के पश्चात प्राप्त अपरिष्कृत आंकड़ों को उपयोगी बनाने के लिए अनेक विशिष्ट प्रक्रियाओं जैसे आंकड़ा प्रविष्टि, आवश्यक मान्यकरण, परीक्षण, आंकड़ा श्रेणियों में रिक्त स्थानों को पूर्ण करना आवश्यक अवयवों के आकलन के लिए अपरिष्कृत आंकड़ों का संकलन एवं सामान्यतः आवश्यक सांख्यिकीय के लिए आंकड़ों का प्रक्रमण, विभिन्न अवस्थाओं में आंकड़ों का संकलन एवं सामान्यतः आवश्यक सांख्यिकी के लिए आंकड़ों का प्रक्रमण, विभिन्न अवस्थाओं में आंकड़ों का संकलन एवं सामान्यतः आवश्यक सांख्यिकीय के लिए आंकड़ों का विश्लेषण से गुजारा जाता है।

संगणक प्रौद्योगिकी हार्डवेयर स्पीड के प्रचालन एवं आंकड़ों का संचयन क्षमता के साथ-साथ जल विज्ञानीय सॉफ्टवेयर की क्षमताओं ने जल विज्ञानीय सूचना तंत्र के अनेक लाभ हैं जैसे- प्रक्रमण, मान्यकरण एवं प्रतिवेदन पद्धतियों के मानकीकरण को प्रोन्नत करने की अनुमति प्रदान करना आंकड़ों की विशाल मात्रा का प्रबंधन करना एवं उपयोगकर्ता द्वारा आवश्यक सारणी या ग्राहीय प्रारूप में आंकड़ों को प्रदान करना।

जल विज्ञान में समस्थानिक प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग

1960 के दशक में आवाह जल विज्ञानीय अनुसंधान में रूढ़िवादी जलविज्ञानीय पद्धतियों की अनुपूरक पद्धति के रूप में समस्थानिक पद्धतियों का प्रवेश, इन प्रश्नों का समाधान जानने के लिए किया गया कि जब वर्षा होती है तो उसका जल कहाँ जाता है। सरिता में वर्षा का कितना भाग जाता है एवं कितनी दीर्घावधि तक जल आवाह क्षेत्र में उपलब्ध रहता है इस क्षेत्रों में अनुसंधान अनुप्रयोगों की कही मंद प्रगति के पश्चात पिछले दशक में समस्थानिक आधारित आवाह क्षेत्र के अध्ययनों में तीव्र गति से प्रगति, मुख्यतः उपयुक्त मापयंत्रों से परिपूर्ण 0.01 से 100 वर्ग किलोमीटर के तक आवाह क्षेत्रों में किए गए अध्ययनों से पाई गई है। तुलनात्मक दृष्टि से अनुप्रयोग के क्षेत्र में काफी कम कार्य किया गया एवं इनसे प्राप्त सिद्धांतों एवं प्रौद्योगिकी को वृहत एवं सूक्ष्म माप यंत्रण वाले नदी बेसिनो में स्थानांतरित किया गया। वर्षा अपवाह निर्देशो के अंकेक्षण एवं परीक्षण तथा अविरत जल संसाधन प्रबंधन में समस्थानिक सूचना के उपयोग के संबंध में कार्य की बहुत अधिक संभावना निहित है। समस्थानिक जल विज्ञान, उस संसाधन विकास एवं प्रबंधन के क्षेत्र में अन्वेषक के रूप में समस्थानिको के अनुप्रयोग से संबंधित है विगत कुछ वर्षों से जल के क्षेत्र में बढ़ती समस्याओं विशिष्टः भूजल गुणवत्ता में कमी जल गुणवत्ता में अपक्षयण एवं जल विज्ञानीय चक्र को प्रभावित करने वाली अनेक अन्य प्राकृतिक घटनाओं के कारण जल विज्ञान एवं जल संसाधनों में समस्थानिको के प्रयोग में वृद्धि हुई है। पर्यावरणीय समस्थानिक हमारे पर्यावरण में बहुतायत में पाए जाने वाले तत्वों जैसे H-C-N-O- और S- के प्राकृतिक समस्थानिक है। यह समस्थानिक जल विज्ञानीय, भूगर्भीय एवं जीव विज्ञानियों तंत्रों के प्रमुख तत्व हैं। इन तत्वों के स्थिर समस्थानिक जल वर्षण, न्यूट्रिएंट्स एवं विलय चक्र के अन्वेषक के रूप में कार्य करते हैं। रेडियोएक्टिव पर्यावरणीय समस्थानिकों जैसे C-14 एवं H-3 का प्रयोग भू-जल के आयु/प्रचार के आकलन के लिए किया जा सकता है।

एक विशाल विविधता के पर्यावरणीय स्थित एवं रेडियोएक्टिव समस्थानिको जैसे $2\text{H}, 3\text{H}, 3\text{He}, 4\text{L}, 11\text{B}$ इत्यादि को जल विज्ञानीय अध्ययनों के लिए नियोजित किया गया है। यद्यपि स्थिर समस्थानिक खनिज अन्वेषकों ($3\text{H}, 46\text{Sc}, 60\text{Co}, 82\text{Br}$) की तुलना में अधिक लाभकारी हैं क्योंकि वे किसी तंत्र में उनेक प्राकृतिक वितरण द्वारा अधिक बड़े सामयिक एवं कालिक पैमाने पर विविध जल विज्ञानीय प्रक्रमों की अध्ययन की सुविधा रखते हैं। पर्यावरणीय समस्थानिक प्रौद्योगिकिया, समय एवं जल संसाधनों के क्षेत्रीय अध्ययनों में विशिष्ट स्थान रखती हैं जबकि कृत्रिम अन्वेषक सामान्यतः स्थानीय अनुप्रयोगों के लिए स्थल विशेष के लिए तो प्रभावी होते हैं। पूर्व काल में खनिज रूप से अत्यधिक सीमित कार्य क्षेत्र में प्रयोग किया जा रहा है। परंतु वर्तमान समय में दोनों पर्यावरणीय समस्थानिक वायुमंडल में स्वतंत्र क्षेत्र से उपलब्ध हैं तथा उनका प्रयोग जल विज्ञानीय चक्र में स्वतंत्र रूप से किया जा रहा है अतः उपयोगकर्ताओं को समस्थानिको के क्रय करने या उन्हें जल विज्ञानीय चक्र में प्रविष्ट कराने की आवश्यकता नहीं है। अत्यधिक सूक्ष्म एवं परिशुद्ध समस्थानिक मापन के लिए परिष्कृत एवं स्वचालित मापी यंत्रों के विकास के साथ नई पद्धतियों का विकास हुआ है। तथा समस्थानिक यंत्रों में नवीन यंत्र सम्मिलित किए गए हैं। वर्तमान में समस्थानिक तकनीकों का प्रयोग विभिन्न जल वैज्ञानीय अध्ययनों के लिए प्रभावी रूप से किया जा सकता है। विशिष्ट रूप से समस्थानिको का उपयोग भू जल स्रोत के अन्वेषण गति एवं प्रदूषण के लिए किया जा सकता है।

समस्थानिको का प्रयोग विभिन्न समस्याओं के चयन तथा उनके बारे में अध्ययन हेतु किया जा सकता है जिससे समस्याओं की जानकारी प्राप्त की जा सके। जल विज्ञान में समस्थानिको के कुल अनुप्रयोग निम्न है:

1. जल एवं अवसादन का काल -निर्धारण
2. जल विभाजको/आवाह क्षेत्रों में मृदा कटान का आंकलन
3. भू जल प्रवाह वेग एवं दिशा का आंकलन
4. पर्वतीय नदियों का निस्सरण मापन
5. जल पिंडों से निस्सरण/रिसाव
6. जल लेख अलगाव
7. लवणता के स्रोत एवं समुद्र जल का अनाधिकृत प्रवेश
8. उथले एवं गहरे जलदायको के लिए पुनः पूरण स्रोतों एवं पुनः पूरण स्रोतों का चयन
9. भूजलधस्तही जल पारस्परिक संबंध
10. हिम एवं हिमनद अध्ययन

11. जलवायु परिवर्तन अध्ययन

राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान रुड़की में, स्थिर एवं रेडियो समस्थानिकों के मापन के लिए पूर्णतः सुसज्जित नाभिक्रिय जल विज्ञान प्रयोगशाला उपलब्ध है। संस्थान ने निकट पूर्व में समस्थानिक तकनीकों के प्रयोग द्वारा विभिन्न अध्ययनों जैसे तीस्ता नदी का निस्सरण, मापन, देवप्रयाग में भागीरथी नदी पर जलालेख अलगाव, टिहरी बांध से रिसाव का चयन, नैनीताल झील के जल संतुलन का आंकलन, उत्तरी भारत के प्रमुख झीलों में अवसादन दर का आंकलन, दिल्ली में यमुना नदी के तलीय क्षेत्र में नदी भू-जल पारस्परिक संबंध का आंकलन, गोमुख में भागीरथी नदी द्वारा वर्षा ऋतु में जल योगदान का आंकलन, पर्वतीय क्षेत्रों में झरनों एवं मैदानी क्षेत्रों में भूजल के पुनर्भरण जोनों एवं स्रोतों का चयन, एवं भारतीय अवक्षेपण की विशिष्टीकरण इत्यादि को पूर्ण किया है।

जल विज्ञान में सुदूर संवेदी एवं जीआईएस के अनुप्रयोग

नीति निर्माण में उचित समय पर उपयुक्त उक्ति द्वारा इष्टतम मूल्य पर सही सूचना की उपलब्धता एक कठिन कार्य है। किसी जल संसाधन विकास परियोजना के लिए वर्तमान भूमि उपयोग / आच्छादन, दृषि पद्धति, मृदा विशेषताएं एवं उनका स्थानिक वितरण मूल आवश्यकताएं हैं। इनके लिए आवश्यक आंकड़ों एवं सूचनाओं के सावधानीपूर्वक प्रभावी विश्लेषण संचयन एवं पुनः प्राप्ति की आवश्यकता होती है। रूढ़िवादी पद्धतियों द्वारा उपलब्ध रिकॉर्ड का संचयन, प्रबंधन एवं आधुनिकीकरण अत्यधिक मन्द एवं अवस्थित है, तथा बहुत अधिक स्थान का अधिग्रहण करता है इसके अतिरिक्त इसके उपयोग हेतु बहुत अधिक मानव शक्ति की आवश्यकता होती है जिससे इन रिकॉर्ड का आधुनिकीकरण अत्यधिक कठिन है सुदूर संवेदी एवं जी आई एस सॉफ्टवेयर के अन्वेषण से विभिन्न स्तरों पर गति संसाधन मानचित्रों को तैयार करना संभव किया गया है। सुदूर संवेदी तकनीकों विश्वसनीय तरीके से महत्वपूर्ण क्षेत्र के लिए वहू-स्पैट्रमी एवं वहू-कालिक संक्षिप्त आच्छादन प्रदान करती है। जबकि G-I-S- विविधता पूर्ण आंकड़ों के समाकलन एवं विश्लेषण हेतु सुविधाएं प्रदान करती हैं। सामाजिक रूप से स्वीकार्य प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए निर्णय-निर्माण सार्वजनिक एवं भागीदारी प्रक्रम है। मानचित्र एवं चित्रों के रूप में सूचनाओं को प्रदर्शित करने की G-I-S- की क्षमता सामान्यतः जनमानस को अत्यधिक जानकारी उपलब्ध कराती है, तथा उन्हें निर्णय निर्माण गतिविधि में सम्मिलित कर सकती है।

सुदूर संवेदन तकनीक एक निश्चित दूरी से ही संवेदनशीलता को समाविष्ट कर देती है। प्रत्येक उपग्रह प्रतिबिंब, पृथ्वी की सतह से विद्युत चुंबकीय स्पेक्ट्रम की एक स्थानिक वितरण को प्रदर्शित करता है। बहु-स्पेक्ट्रमी उपग्रह आंकड़ों के उपयोगिता पूर्वक उपयोग द्वारा विभिन्न भू-विशिष्टताओं को अलग-अलग किया जा सकता है एवं थिमेटिक मानचित्र तैयार किए जा सकते हैं। उपग्रह सुदूर संवेदी मानचित्र का प्रयोग विशाल क्षेत्रों के लिए भूमि सतह की कृषि एवं जल विज्ञानीय स्थितियों पर नियमित सूचना प्रदान करने के लिए किया गया है। इसके अतिरिक्त जल प्रबंधन योजनाओं के विकास एवं प्रबंधन में उपग्रह सुदूर संवेदन माप यंत्र सक्रिय भूमिका प्रदान करते हैं। अध्ययन क्षेत्रों की शीघ्र सूची को निर्मित करने के लिए आंकड़ों का एकत्रीकरण एवं ऋतु परिवर्तनों में नदी बेसिन के महत्व, समय एवं मानव शक्ति बाध्यता की आवश्यकता होती है। विभिन्न जल विज्ञानीय अध्ययनों में सुदूर संवेदी तकनीकों की उपयोगिता को विभिन्न अध्ययनों में दर्शाया गया है।

निष्कर्ष

समय के साथ जनमानस में जल के प्रति जागरूकता में वृद्धि हो रही है। मात्र एवं गुणवत्ता दोनों ही रूपों में जल की उपलब्धता सीमित है। वर्तमान में जल विज्ञान एवं जल संबंधी अध्ययनों के को विशेष महत्व दिया जा रहा है। क्योंकि समस्त विकासीय गतिविधियां जल पर आधारित हैं। तथापि प्रौद्योगिकी अन्वेषण एवं अंकीय तकनीकों के उद्यम से जल विज्ञानीय प्रेक्षण, विश्लेषण एवं प्रबंधन में समय के साथ तीव्रता से वृद्धि हो रही है। G-P-R-S- प्रौद्योगिकी के अन्वेषण से जल विज्ञानीय आंकड़ों, वेग संचयन, विश्लेषण प्रक्रमण एवं विकिरण के लिए सॉफ्टवेयर विकसित किए गए हैं। वास्तविक तंत्र के विस्तृत प्रस्तुतिकरण के लिए सुदूर संवेदी एवं जीआईएस तकनीकों सहित अधिक जटिल जल विज्ञानीय निर्देशों का प्रयोग संयुग्मी रूप से किया जा रहा है।

संदर्भ

1. एंडसम जेय केपीला एवं ई सानचर्स, एक्वाटल जल संसाधनों की योजना एवं प्रबंधन के लिए एक सामान्यीकृत निर्णय सहायक तंत्र 177 (1996) 269 -291
2. ए.जे.जी., विलियम्स जे.आर., श्री निवासन आर., किंग के.डब्ल्यू एवं आर.एच.ग्रिग्स, स्वैट लेमिप्ल Tx (1994) 76502
3. B-W-G-M-, जल संसाधन प्रबंधन में सुदूर संवेदन, नवीन अन्वेषण, अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान 1998
4. M-D-J- एवं M-I-W-, सिंचित कृषि में सुदूर संवेदन अनुसन्धान, 46 (2000) 137-155
5. B-J-M- लघु आवाह क्षेत्र जल विज्ञान का मूल सिद्धांत, आवाह जल विज्ञान में समस्थानिक, T- A-V-, एमस्टर्डम 1998
6. C-S- एवं C-P-S- तीव्र दृष्टि की भविष्यवाणी, एडवांस इन काम्प्लेक्स सिस्टम 81 (2005) 349-354

सांप्रदायिक सौहार्द को प्रोत्साहित करती हैं अवधेश प्रीत की कहानियाँ

सुशील कुमार भारद्वाज

(शोधार्थी) विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, तिलकामाझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

हिन्दी साहित्य में सांप्रदायिकता बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सम्बेदनशील विषय है। खास कर देश की आजादी के बाद विभिन्न लेखकों ने इसे विभिन्न आयामों के साथ विविध रूप में प्रस्तुत किया है। साम्प्रदायिकता केन्द्रित विषयों पर लिखने वाले साहित्यकारों में अवधेश प्रीत एक महत्वपूर्ण नाम हैं। इनके इस लेखन में न तो कोई हिंसा है, न ही खून का बिखराव, न ही वीभत्स या डरावना दृश्य। इनकी सोच सकारात्मक है। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं को उठाया है। और धर्म के नाम पर होने वाली तुच्छ राजनीति पर निशाना साधा है। दूसरे शब्दों में कहें तो अवधेश प्रीत ने साम्प्रदायिकता की कुत्सित मानसिकता को बेपर्द करके सांप्रदायिक सौहार्द को प्रोत्साहित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिला अंतर्गत तराँव गाँव में 13 जनवरी 1958 को निम्न मध्यवर्गीय शिक्षक परिवार में जन्म लेने वाले अवधेश प्रीत का जीवन जितना सरल है, उनके विचार उतने ही गंभीर हैं। अपने शहर से दूर बिहार की राजधानी पटना में आना उनका एक खूबसूरत संयोग था। नाट्यसंस्थाओं की सक्रियता ने उन्हें ऐसे अदृश्य धागा से बाँधा कि वे हमेशा-हमेशा के लिए पटना का ही होकर रह गए। यहीं शादी करके घर बसाया और यहीं पर रहते हुए एक प्रतिष्ठित लेखक के रूप में स्थापित एवं सम्मानित हुए। अपने चार दशक के लेखकीय जीवन में अवधेश प्रीत ने लगभग पाँच दर्जन कहानियों की रचना की जो कि छः कथा-संग्रहों में संगृहीत है। साथ ही इन्होंने 'अशोक राजपथ' एवं 'रूई लपेटी आग' जैसे दो उपन्यास भी लिखे हैं। अवधेश प्रीत ने प्रेमचंद की परम्परा को आगे विस्तार देते हुए सामाजिक यथार्थ की कहानियों की रचना की। अपने लम्बे जीवनानुभव का अनुप्रयोग इन्होंने अपनी कहानियों में किया और समाज के ज्वलंत समस्याओं को मुखर आवाज देने की कोशिश की है।

अवधेश प्रीत ने उन दिनों कहानी लिखना शुरू किया जब देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निराशा से पनपा आक्रोश मुखर रूप धारण कर रहा था। राजनीतिक परिदृश्य में एक तरफ आपातकाल की घोषणा थी, तो दूसरी तरफ जेपी के नेतृत्व में छात्र आन्दोलन की फैली हुई हवा। इसी बीच साम्प्रदायिकता की आग भी जल रही थी। एक तो धर्म के नाम पर 1947 ई. में भारत-पाकिस्तान का विभाजन हुआ। फिर भारत के दखल से बांग्लादेश 1971 में मुक्त हुआ। 1984 का सिख दंगा हुआ। और इन्हीं वर्षों में जय श्रीराम का नारा भी संगठित रूप से बुलंद हुआ। अयोध्या में राममंदिर निर्माण का आन्दोलन पूर्णतः सक्रिय हो गया। और बाबरी मस्जिद विवाद ने तो राजनीतिक के साथ-साथ सामाजिक माहौल को भी तनावपूर्ण बना दिया। इस समय शारीरिक हिंसा कमोबेश जो भी हुआ हो, लेकिन सबसे अधिक मनोवैज्ञानिक बढ़त लेने की जंग शुरू हो गई। जिसका उदाहरण अवधेश प्रीत की कहानियों में बखूबी देखने को मिलता है।

इनकी कहानियों में इनके परिवेश का बहुत बड़ा योगदान है। पटना जैसे शहर में लेखक का घर रानीघाट के पास था। इनके घर के उत्तर में जीवनदायिनी गंगा नदी प्रवाहित होती रहती है तो दक्षिण में गंगा-जमुनी तहजीब का जीवनसंघर्ष। हिन्दू-मुस्लिम आस-पास में सामंजस्यपूर्ण तरीके गुजर-बसर करते हैं। सभी एक-दूसरे के सुख-दुःख में साथ निभाते हैं। साथ ही कठिन और गंभीर-सेखगंभीर समय में धैर्य बनाकर रहते हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर पर शायद एक-दूसरे के प्रति सशक्त और सतर्क रहते हुए भी हंसी-मजाक और ठहाकों के बीच गुजर-बसर करना इन लोगों की दिनचर्या बन चुकी है। लेकिन दोनों सम्प्रदायों के बीच स्पष्ट रूप से झलकती रीति-रिवाज को भी इनकार नहीं किया जा सकता है।

अवधेश प्रीत की 'दूह', 'फसाद का मैदान', 'वजूद', 'हमजमीन', 'अली मंजिल', 'अम्मी', 'कजरी', 'दृश्य-अदृश्य' और 'मेरा मजहब, मेरी जान' को प्रमुखता के साथ साम्प्रदायिकता की बहस को एक नयी दिशा देने वाली कहानी के रूप में देखा जा सकता है। 'दूह' कहानी इनकी प्रारंभिक दिनों की कहानी है जहाँ शिवनाथ बाबू और बब्बन खाँ भुतहा जमीन के एक टीले को आगामी मुखिया चुनाव को देखते हुए राजनीतिक रंग देने की हर संभव कोशिश करते हैं। "मियाँ टोली में 'अल्लाह हो अकबर' की उठती आवाज ने जैसे मरखन्ने बैल को कसकर टिटकारा हो। लाल लुग्गा देखकर भड़के बैल की तरह भुतहा टीले पर कीर्त्तानियों का स्वर और ऊँचा हो गया।" इस कहानी को पढ़ते हुए ध्यान बार-बार बाबरी मस्जिद की घटना की ओर जाता है। संभव है कि लेखक ने उत्तर प्रदेश में राजनीतिक रूप से संवेदनशील उस घटना को ही प्रतीकात्मक रूप से कहानी में प्रस्तुत किया हो। रविन्द्र राय 'यथार्थ का उत्खनन एवं भविष्य का सृजन' आलेख में लिखते हैं- "अवधेश की 'दूह', 'फसाद का मैदान', 'वजूद', 'हमजमीन', और 'अली मंजिल' जैसी कहानी सांप्रदायिक संकीर्णता और उसकी जड़ में छिपे हुए चित्र राजनीतिक स्वार्थ का उत्खनन करती है।"²

वहीं 'अली मंजिल' कहानी में दयाल बाबू एक मुस्लिम से रहने के लिए घर खरीदते हैं। कहानी में यह बखूबी देखा जा सकता है कि दयाल बाबू जो जिस रूप में है, उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन घर-परिवार और समाज के लोग उन्हें बार-बार एहसास कराते रहते हैं कि 'अली मंजिल' मुस्लिम रीति-रिवाज के अनुसार बनाया गया है, जिससे दयाल बाबू मकान से एक दुराव महसूस करने लगते हैं। और इस प्रक्रिया में वे उस मकान में सम्पूर्ण बदलाव करते हुए मकान का नाम 'दयाल भवन' कर देते हैं। एक खुशी का एहसास महसूस करते हैं कि उन्होंने मकान को स्वयं के अनुसार ढाल लिया।

लेकिन अंत-अंत तक वे ठगा हुआ महसूस करते हैं। लाख कोशिश के बावजूद वे उस शांति को हासिल नहीं कर पाते हैं जिसके लिए वह इतना तोड़-फोड़ करवाते हैं। प्रख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह भी इसी बात पर विशेष बल देते हैं कि यह अतीत को पूर्णतः समाप्त कर नये की स्थापना की एक कोशिश है। वे तत्कालीन भाजपा गठबंधन की सरकार के द्वारा लायी गई उस नीति की ओर इशारा करते हैं, जहाँ नाम बदलने पर एक लम्बी बहस छिड़ती है। वे स्पष्ट रूप से अरुण प्रकाश को दिये एक साक्षात्कार में कहते हैं कि “अली मंजिल’ कहानी में मकान का नाम बदलना अतीत और इतिहास को रबड़ से रगड़ कर मिटाने की एक कोशिश है। मकान एक परम्परा है। इसका नाम बदलना ठीक वैसा ही है जैसे ताजमहल का नाम बदल देना, किसी शहर का नाम बदल देना।” (वसुधा 64, अरुण प्रकाश के साथ साक्षात्कार में डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ-48) सच भी यही है कि लोग नाम को सिर्फ और सिर्फ नाम के रूप में नहीं ले सकते हैं। प्रेमचंद की उस कहावत को यँ ही स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि नाम में क्या रखा है? यहाँ नाम एक अस्तित्व की लड़ाई के रूप में देखी जा रही है। नाम संप्रदाय विशेष के रीतिरिवाज और परम्परा का एहसास कराता है। और सबसे बड़ी बात कि इतिहास नामों से नहीं अपने नामों के गंध से भी महसूस किया जाता है। और किसी के अस्तित्व को भुला देना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल जरूर है। “उन्हें लगा, जरूर अह ‘आयतल कुर्सी’ है, जिसे मंजूर अली साहब की अम्मा ने यहाँ टांगा होगा।”³

अवधेश प्रीत की कहानी ‘मेरा मजहब, मेरी जान’ आज के परिपेक्ष्य में एक ज्वलंत सवाल है। क्या कोई धर्म किसी व्यक्ति के जान बचाने की गारंटी ले सकता है? यदि नहीं, तो फिर धर्म-परिवर्तन का हासिल या उपलब्धि क्या है? या धर्म-परिवर्तन और घर-वापसी का नाटक क्यों? किसी खास सम्प्रदाय का होने की वजह से मानसिक रूप से पीड़ित या स्व-प्रताड़ित होने की जरूरत क्या है? “न मेरा मजहब मेरी जान बचाने को राजी है, न आपका धर्म मेरी जान बचाने को तैयार है, तो बताइये, मेरे जैसे लोग क्या करें? कहाँ जाएँ?”⁴ साम्प्रदायिकता का वीभत्स रूप बाहर में जो कुछ भी दिखता हो, ये हमारे मन-मस्तिष्क में गहरे तक बैठा हुआ है। जो मुस्लिम होने की ही वजह से आतंकवादी मान लेना, किसी को शक की निगाह से देखना, साम्प्रदायिकता का ही एक नमूना है। ‘वजूद’ कहानी में भी देखने के लिए मिलता है कि सार्जेंट सीधे सवाल दागता है कि- “तूने उस बच्चे को इसलिए भगा दिया, क्योंकि वह मुस्लिम था?” जबकि सिपाही उस बच्चे के बारे में कुछ जानता तक नहीं था। इस पक्षपातपूर्ण मानसिक द्रष्टे के माहौल में कोई भी पक्ष कैसे स्वयं को शांत और सुरक्षित मान सकता है? किसी की भी मौत किसी हादसा में कभी भी हो सकता है। तब सवाल उठता है कि भयाक्रांत माहौल में लोग मानवता की बात कैसे करें?

इसी कड़ी से जुड़ती अगली कहानी का नाम है ‘कजरी’। फजलू मियाँ अपनी बीमार प्यारी गाय कजरी के इलाज को लेकर चिंतित हैं। आस-पड़ोस का माहौल इतना विद्वेषपूर्ण है कि कौन, कब, किसको और किस आरोप में मार दे कहना मुश्किल है? रमजान की तलख आवाज से ही इसे समझा जा सकता है- “गोकशी का इल्जाम लगाकर दाढ़ी-टोपी वाले दो लोगों को भीड़ ने मार दिया।”⁶ जब लोग शक के बेजा पर ही किसी की जान लेने पर उतारू हो जाते हों, वहाँ बीमार गाय साथ में हो, तो भय की सिर्फ एक परिकल्पना ही की जा सकती है। किसी डॉक्टर का घर पर आकर इलाज करना संभव नहीं है, और जानवरों का अस्पताल यूसुफपुर में है। मतलब कि रास्ते में मुसीबत कभी भी किसी रूप में आ सकती है। लेकिन दोहरा खतरा यह भी है कि बीमार गाय यदि बिना इलाज के मर गई तो फजलू स्वयं को माफ नहीं कर पाएँगे। सईदा के नजरों में गिर जाएँगे। जबकि दंगाई लोगों के लिए तो बबाल काटने का सुअवसर होगा। यह कहानी सवाल पूछती है कि क्या कोई इंसान अब जानवर भी धर्म देखकर ही पाल सकता है? क्या हिन्दू अथवा किसी अन्य सम्प्रदाय के लोगों के यहाँ गायें बीमार नहीं होती हैं? क्या उनके दरवाजे पर जानवरों की मौत नहीं होती है? फिर किसी सम्प्रदाय विशेष को निशाने पर रखना कितना जायज है? मानवता और जानवरों के प्रति लगाव या प्रेम को किस रूप में देखा जाय? आखिर विकास के पथ पर चलते हुए हमलोग आज कहाँ पहुँच गए हैं?

‘अम्मी’ कहानी भी समाज के मनोवैज्ञानिक पहलू की ओर ही इशारा करती है। एक अकेली युवती ट्रेन में यात्रा के दौरान मुस्लिम परिवार और उनके भाषा व्यवहार से पहले भयभीत हो जाती है। खासकर आजम और भाईजान के प्रति तो वह अजीब नफरत की भावना महसूस करने लगती है। जबकि वह पहले से ही मुस्लिम दोस्तों के साथ काम करने की अभ्यस्त रह चुकी है, परन्तु ऐसी त्रासद भावना की शिकार वह कभी नहीं बनी। लेकिन अम्मी का व्यवहार और दर्द उसे अपने माँ की याद दिला गई। और कहानी के अंत में अजीब-सा अपनापन महसूस होते हुए देखते हैं। यह सब इसलिए हो पाता है कि युवती एक इन्सान के रूप में धीरे-धीरे उनलोगों को महसूस करने लगती है। उसे एहसास होता है कि वह मुस्लिम परिवार भी डरा हुआ है, जो कि अपने अस्तित्व को बचाने के क्रम में, अपनी विश्वसनीयता को बार-बार साबित करते हुए जरूरत से कुछ ज्यादा आक्रामक हो गया है।

‘दृश्य-अदृश्य’ कहानी में भी इसी सामाजिक सोच सामंजस्य की समस्या को सांप्रदायिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। पहले सविता नाटक खेलने से मना कर देती है कि गोधन की भूमिका निभाने वाला अशरफ मुस्लिम है। सविता के मन में पूर्वाग्रह इतना भरा हुआ है कि वह उसे नफरत के योग्य समझती है। लेकिन अनमोल के समझाने के बाद जब सविता अशरफ को समझने की कोशिश की और साथ में नाटक का रीहर्सल करने लगी, तो अंत-अंत तक में दोनों के बीच इतना प्रेम बढ़ गया कि वे दोनों न्याय के लिए दर्शक रूपी समाज के सामने ही सवाल खड़ा कर देते हैं। अशरफ पूछता है - “नाटक है। नाटक पर ताली बजाना भी चाहिए। लेकिन जब कोई जाति-पंचायत गोधन और मुनरी के प्रेम को गुनाह बताकर सजा सुनाती है, तब आप चुप काहे रहते हैं?” सच ही कहा गया है कि तमाशा देखना अच्छा लगता है, तमाशा होना या बनना सबको बुरा लगता है।

लेखक की एक कहानी ‘फसाद का मैदान’ स्पष्ट करती है कि कैसे शोहदे सब इस जुगाड़ में रहते हैं कि कैसे आपदा को अवसर में तब्दील कर दिया जाय? कैसे मौका मिले कि समाज के बेकार और निटल्ले लोगों को समाज की नजर में उपयोगी और महत्वपूर्ण साबित करने का मौका मिल सके? और इसी चंदे के धँधे से अपना भी कुछ जुगाड़-पानी हो सके। जबकि कथाकार सन्देश देते हैं कि अबोध बच्चे विवादास्पद जमीन को खेल का मैदान बना देते हैं और पूजा-पाठ से होने वाले चंदे से खेल का सामान खरीदकर अमन-चौन का रास्ता बनाते हैं। कथाकार एक सन्देश यह भी देते हैं कि बुद्धि के अधिक प्रयोग अथवा सतर्कता की वजह से भी हमलोग मुसीबत को आमंत्रित कर लेते हैं। जबकि एक सामान्य इन्सान के रूप में रहने से हमलोगों की अधिकांश समस्याएँ स्वतः समाप्त हो सकती हैं।

अवधेश प्रीत की सबसे बेहतरीन कहानियों में से एक है 'हमजमीन'। जहाँ जमीन के अंदर दफन दो मुर्दा आपस में अपनी-अपनी समस्याओं पर चर्चा करते हैं। एक-दूसरे का दुःख-दर्द सुनते और समझते हैं। लोगों के स्वार्थी सोच पर तरस खाते हैं और जीवन की मौलिक जरूरतों पर चिंता जाहिर करते हैं। वे दोनों अपने-अपने तरफ से दूरी पाटते हुए एकाकार होने की कोशिश में दोनों अपनी-अपनी तरफ से मिटटी खोदते हैं। जिन्दा इन्सान के लिए यह अपने आप में एक बहुत बड़ा सन्देश है।

अवधेश प्रीत की इन कहानियों को पढ़ते हुए एहसास होता है कि वे समस्याओं की जांच-पड़ताल करते हुए उसकी जड़ तक जाने की कोशिश करते हैं। इसकी वजह या मूल कारण पता होने के बाद, इसके यथासंभव समस्या का समाधान बताने की भी कोशिश करते हैं। शायद एक लेखक के रूप में वे मानव धर्म का निर्वाह करते हुए लेखनी को सफल और सार्थक सिद्ध करते हैं। अवधेश प्रीत की कहानियाँ सांप्रदायिक सौहार्द के लिए प्रेरित करती है।

सन्दर्भ सूची:-

- 1 प्रीत, अवधेश. नृशंस. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2001, पृष्ठ-19.
- 2 राय, रविन्द्र. शब्द शिखर. अप्रैल 2002. पृष्ठ-161.
- 3 प्रीत, अवधेश. नृशंस. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-117.
- 4 प्रीत, अवधेश. अथ कथा बजरंग बली. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन. 2023, पृष्ठ-62.
- 5 प्रीत, अवधेश. नृशंस. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-154.
- 6 प्रीत, अवधेश. अथ कथा बजरंग बली. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 2023, पृष्ठ-34.
- 7 प्रीत, अवधेश. अथ कथा बजरंग बली. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन. 2023, पृष्ठ-55.

अनुवाद कला: सिद्धांत और प्रयोग

डॉ० देवेन्द्र शुक्ल

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, शोध अनुसंधान केंद्र, जे.एल.एन. कॉलेज, शक्ति, जिला-शक्ति, छत्तीसगढ़

सारांश

‘अनुवाद’ शब्द से हर कोई परिचित नहीं है, और अधिकांश लोग संभवतः अनुवाद और व्याख्या के बीच अंतर नहीं बता सकते हैं। पहली बात जो मन में आ सकती है, वह है अन्य भाषाओं के वक्ताओं के साथ एक सम्मेलन में एक अनुवादक या दुभाषिया।

अनुवाद, यह क्या है और इसकी प्रासंगिकता को समझना महत्वपूर्ण है। यह अनुवाद पेशा, मेसोपोटामिया और मिस्र के समय से ही चला आ रहा है।

बहुभाषिक समाज को अपने ही भीतर ज्ञान-विज्ञान के समुचित विकास से जोड़ने के लिए भी अनुवाद आवश्यक है। समाज के भीतर हो रहे चिंतन-मनन, आविष्कार, प्रौद्योगिक विकास की जानकारी विभिन्न भाषाओं के लोगों को अनुवाद के माध्यम से निरंतर और तत्परता से मिलती रहनी जरूरी है। इस आलेख के माध्यम से बहुभाषिक समाज में अनुवाद की अनिवार्यता महत्व और प्रासंगिकता के प्रश्न पर चर्चा और विश्लेषण किया गया।

मूल शब्द: अनुवाद, समाज, बहुभाषिक, विश्व संस्कृति, वैश्वकरण, अनिवार्यता, महत्व और प्रासंगिकता।

प्रस्तावना

“अनुवाद कला: सिद्धांत और प्रयोग” हिंदी साहित्य और भाषा विज्ञान में एक महत्वपूर्ण विषय है, जो यह दर्शाता है कि अनुवाद केवल शब्दों का प्रतिस्थापन नहीं, बल्कि एक रचनात्मक प्रक्रिया है।

अनुवाद की परिभाषा और स्वरूप

- परिभाषा: एक भाषा (स्रोत भाषा) के विचारों को दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में अर्थ और शैली के अनुसार सहज रूप में व्यक्त करना अनुवाद है।
- कला या विज्ञान: अनुवाद एक ‘वैज्ञानिक कला’ है, क्योंकि इसमें भाषा के यांत्रिक कौशल (विज्ञान) के साथ-साथ अनुवादक की रचनात्मकता (कला) की आवश्यकता होती है।
- प्रक्रिया: इसमें मूल पाठ का विश्लेषण, पुनर्गठन और पुनर्रचना शामिल है।

आज विश्व श्लोबल विलेज में बदल चुका है। वैश्वकरण एवं बहुभाषिकता, विभिन्न देशों की संस्कृतियों, भाषाओं एवं भौगोलिक सीमाओं में परस्पर आदान-प्रदान के कारण उत्पन्न एवं समन्वित स्थिति एवं स्वरूप की ही देन है।

काफी हद तक यह स्थिति विभिन्न देशों के साहित्य के परस्पर अनुवाद के कारण ही संभव हो पाई है। इसलिए आज के इस साइबर युग में सृजनात्मक ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ साहित्य के अनुवाद का भी अत्यधिक महत्व है। इस आधार पर अगर वर्तमान युग को अनुवाद का युग कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह हम सहज रूप से ही समझ सकते हैं कि अगर ‘अनुवाद की कला’ न होती तो विश्व साहित्य और विश्व-संस्कृति जैसी सभी अवधारणाएँ मात्र काल्पनिक ही रह जाती। आज अनुवाद की प्रासंगिकता दिनोंदिन बढ़ रही है।

अनुवादक पुनःसर्जक हो गया है। दोहरे जोखिम के इस कार्य की पूर्ति हेतु उसने तलवार की धार पर दौड़ने की कला सीखनी प्रारंभ कर दी है। वह दो संस्कृतियों, विचारधाराओं, चिंतन परंपराओं, भाषिक संस्कारों, रीति-वाजों, एवं अवधारणाओं के बीच सेतु निर्माण का कार्य करने लगा है।

स्वातंत्र्य: सुखाय या जीविकोपार्जन हेतु अनुवाद कार्य के प्रति समर्पित होने वाला अनुवादक अब परकाया-प्रवेश की प्रक्रिया से गुजरने लगा है।

इस प्रक्रिया से गुजरने का धैर्य और क्षमता किसी साधक के पास ही हो सकती है। अनुवाद करने की मूलभूत शर्त है। ईमानदारी और निष्ठा है। यदि अनुवादक को हम एक सेतु निर्माण करने वाले के रूप में देखें तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूरी ईमानदारी से पुख्ता और चिरस्थायी सेतु का निर्माण करें।

वैज्ञानिक आविष्कारों एवं सूचना क्रांति, के इस दौर में ज्यों-ज्यों विश्व दृष्टि का निर्माण होने लगा है।

मानवीय जीवन के सरोकार एक सीमित क्षेत्र से बाहर निकलकर विश्वव्यापी स्तर पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगे हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि संसार के विभिन्न वर्गों के समस्त लोग एक-दूसरे को जानने-पहचानने के लिए उत्सुक हों। इसके परिणामस्वरूप चिकित्सा, तकनीकी वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक आदान-प्रदान होने के कारण मानव के जीवन-मूल्यों एवं अंतर्राष्ट्रीय सोच के परस्पर संवाद से अजनबीपन का कोहरा छूटने लगा है।

भौगोलिक सीमाओं के आर-पार एक परिचित एवं आत्मीय वातावरण बनने लगा है।

एक देश अथवा संस्कृति की भाषा अपनी साहित्यिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को किसी दूसरे देश, भाषा अथवा संस्कृति तक पहुँचाने के लिए अनुवाद का ही सहारा लेते हैं और एक नयी सांस्कृतिक आदान-प्रदान की परंपरा चल पड़ी।

बहुभाषिक समाज को अपने ही भीतर ज्ञान विज्ञान के सुनिश्चित विकास से जोड़ने के लिए भी अनुवाद की आवश्यकता है। समाज में जिस तरह बहुत सी भाषाएँ बोली जाती हैं इस तरह हमारे लेखक भी अपनी रचनाओं में एक से अधिक भाषाओं का उपयोग करते हैं। आधुनिक युग में भी प्रेमचंद और उपेंद्रनाथ अशक जैसे कई लेखक ने भी हिन्दी और उर्दू में अपनी रचनाएँ की हैं।²

भारतीय समाज में बहुभाषिकता

क्या कारण है कि भारत जैसे बहुभाषिक देश में, जिसकी सभ्यता लगभग 5000 वर्ष पुरानी है, कभी किसी ने एक पूर्ण विकसित अनुवाद सिद्धांत के विकास में योगदान नहीं दिया, यहां तक कि यदि विस्तार से नहीं तो संकट में भी किसी ने अनुवाद प्रक्रिया उसकी प्रकृति तथा विशेषताओं के बारे में कोई गंभीर विवेचन नहीं किया। फिर भी थोड़े बहुत अनुवाद संबंधित प्रसंग हमें नाना भारतीय ग्रंथों में उपलब्धमिल ही जाता है। बीसवीं शताब्दी के पश्चात आलोचनात्मक विचारधारा में यद्यपि एक क्रांतिकारी परिवर्तन का अनुसरण करते हुए, रोला बार्थ ने कहा था कि “किसी भी साहित्यिक कृति का पाठक मात्र उपभोक्ता नहीं होता है, वरन् उस कृति का उत्पादक भी होता है (प्रोड्यूसर) भी होता है।”

अर्थात् अनुवाद के संबंध में प्राचीन दृष्टि के अनुसार जब यह कहा जाता है कि अनुवाद स्रोत भाषा में रचित पाठ के लक्ष्य भाषा में दोहराना है, तो इसका अर्थ पाठ का विश्लेषण और व्याख्या के आश्रय से अनुवाद प्रक्रिया को पूर्ण करना होता है।

यह सच है कि प्राचीन भारत में अनुवाद संबंधित समस्याओं के बारे में इतने सचेतन नहीं थे। जैसे कि हम लोग हैं और परिणामस्वरूप सचेतन रूप से अनुवाद सिद्धांत को लेकर किसी ने सोने का प्रयत्न नहीं किया। आज के दृष्टिकोण से देखें तो यहां स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद आश्रित भाषा विज्ञान के सिद्धांतों तथा व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से उपयुक्त सारी भाषागत समस्याओं की आज भी पूरी प्रासंगिकता बनी हुई है, इन्हीं में से प्राचीन भारत के अनुवाद सिद्धांत और प्रासंगिकता अनिवार्यता एक प्रश्न है।

भारतीय अनुवाद सचेतनता के लंबे ऐतिहासिक काल का पता देता है। अनुवाद का अर्थ है प्रत्येक भाषा के मानवीय संचरण के सामान्य स्तर तक अर्थात् शाश्वत भाषा के स्तर तक पहुँच के फिर किसी विशेष सुविधाजनक रास्ते से पुनः प्रकट होना है।

भारतीय समाज में एक व्यक्ति के लिए एक से अधिक भाषाएँ बोलना। स्वाभाविक है इसीलिए द्विभाषिकता या त्रिभाषिकता अथवा बहुभाषिकता को भारतीय समाज ने स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लिया है। भारत सरकार की ओर से संविधान के आधार पर हिन्दी, अंग्रेजी को राजभाषा या संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार करने का अर्थ ही है कि हम एक से अधिक भाषाओं को स्वीकृति दे रहे हैं और जब हम किसी एक संपर्क भाषा का प्रयोग करते हैं तो हम अपनी भाषा से अनुवाद करते होते हैं। परंतु खेद की बात है कि इस बहुभाषिक समाज में किसी एक भाषा में रचित भारतीय साहित्य से दूसरे भाषा-भाषी

आमतौर से अपरिचित रहते हैं और इस तरह पड़ोस के राज्य में क्या लिखा जा रहा है उससे अनजान रह जाते हैं, इसीलिए एक बहुभाषिक समाज में अलग-अलग भाषाओं में रचित साहित्य से परिचित होने के लिए अनुवाद का आश्रय लेना जरूरी हो जाता है। वस्तुतः बहुभाषिक भारतीय समाज अपने आप में साहित्य एक अनुवाद – क्षेत्र है। यहाँ अंग्रेजी में लिखा गया भारतीय में वर्णना के अतिरिक्त पात्रों के संवादआदि अंग्रेजी में अनुवाद ही कहे जा सकते हैं।³

भारत की सांस्कृतिक बहुलता को स्वीकृति देने के लिए संविधान में कई तरह की बात संकलित है।

सांस्कृतिक बहुलता तथा बहुभाषिकता को ध्यान में रखकर ही पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भाषिक राज्यों के आधार पर भारत का एक नया राजनीतिक मानचित्र खींचा था। पंडित नेहरू ने अपने उन आलोचकों को कोकड़ा जवाब दिया था जिन्होंने यह कहना शुरू किया कि भाषिक प्रदेशों के कारण अंतः भाषिक तथा अंतः राज्यीय अन्योन्यक्रिया तथा आवागमन असंभव हो जाएँगे और इस तरह की भाषागत राजनीतिक सीमाएँ राज्यों के आपसी भाषिक तथा सांस्कृतिक संबंधों को सीमित कर देंगी मगर स्थिति ऐसी नहीं है। देश की सांस्कृतिक बहुलता के आधार पर प्रत्येक भाषा को महत्व मिलने पर विविधता के आश्रय से देश की एकता बनी हुई है। यह इस देश का एक अद्भुत मॉडल है। यहाँ जितनी ज्यादा विविधता की बात की जाती है उतनी अधिक यहाँ एकता बनी रहती है और जितनी ज्यादा एकता की बात होती है उतनी अधिक विविधता के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। तुलनात्मक साहित्य एक अनुशासन के रूप में अब विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने लगा है जहाँ एक से अधिक भाषाओं के साहित्य को पाठ्यक्रम में स्थान मिला हुआ है।⁴

अनुवाद के सिद्धांत

- समानता का सिद्धांत (Equivalence): स्रोत और लक्ष्य भाषा के बीच अर्थगत और शैलीगत समानता बनाए रखना, न कि केवल शब्द-दर-शब्द अनुवाद करना।
- सांस्कृतिक स्थानांतरण: अनुवाद केवल भाषाई नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी होता है, जहाँ मुहावरों, कहावतों और सांस्कृतिक संदर्भों का सही अर्थ रखना महत्वपूर्ण है।
- योजीन निडा का गतिशील समतुल्यता (Dynamic Equivalence): यह सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि लक्ष्य भाषा के पाठक पर वही प्रभाव पड़ना चाहिए जो मूल पाठक पर पड़ा था।
- स्कोपोस थ्योरी (Skopos Theory): अनुवाद का मुख्य उद्देश्य (Skopos) ही अनुवाद की प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

अनुवाद का प्रयोग (अनुवाद प्रक्रिया)

- विश्लेषण: मूल पाठ (Source Text) को गहराई से समझना।
- अंतरण: अर्थ को एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाना।
- पुनर्रचना: लक्ष्य भाषा (Target Language) की प्रकृति के अनुसार उसे ढालना।
- पुनरीक्षण: अनूदित पाठ का मूल पाठ से मिलान करना।

अनुवाद के क्षेत्र (अनुप्रयोग)

- साहित्यिक अनुवाद: कविता, कहानी, उपन्यास का अनुवाद, जिसमें भावनाओं और शैली को बनाए रखना चुनौती है।
- तकनीकी/वैज्ञानिक अनुवाद: चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कानून (Legal) के क्षेत्र में सटीक अनुवाद।
- मशीनी अनुवाद: आधुनिक समय में तकनीकी का उपयोग, लेकिन इसमें मानवीय संवेदनाओं की कमी होती है।

अनुवाद का महत्व

बीसवीं सदी को कई भाषा-विज्ञान-पंडितों ने 'अनुवाद' या 'पुनर्सृजन' का युग पुकारा है।

इस सदी में राजनीति एवं सामाजिक कारणों से संसार के बड़े व छोटे देशों के लिए एक-दूसरे का घनिष्ट बनने की अनिवार्यता अनुभव होने लगी। वाणिज्यिक और औद्योगिक विकास के लिए एक देश की संस्था के लिए अन्य देशों की संस्थाओं व संस्कारों से संपर्क अनिवार्य हो गया। बहुराष्ट्रीय संस्थाएँ अनेक देशों में अपनी शाखाएँ स्थापित करती गईं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ और यूनेस्को अपना कार्यकलाप संघ द्वारा मान्यता प्राप्त कई विभिन्न भाषाओं में करने के लिए बाध्य हो गए। विज्ञान और ज्ञान की विविध धाराओं में प्रमुख भाषाओं में नए आविष्कार एवं नए सिद्धांत चर्चित होते गए तो अन्य देशों के लोगों के लिए इनका ज्ञान पाना आवश्यक अनुभव हुआ। अनुवाद इसका एकमात्र साधन था। इन विविध दिशाओं का कार्य बहुत बड़े पैमाने पर करना था। अमेरिका और रूस में थोक रूप में वैज्ञानिक पत्रिकाओं का अनुवाद किया जाने लगा।

बताया जाता है कि- “यूरोपीय संघ (EEC) करीब 1600 अनुवादकों से अनुवाद कराता था। स्पिट्जबार्ड के अनुसार 1967 में प्रतिवर्ष 80,000 वैज्ञानिक पत्रिकाओं का अनुवाद होता था। अब तो उससे कई गुना अधिक पत्रिकाओं का अनुवाद होता ही होगा।”⁵

अंतर्राष्ट्रीय स्तर की झलक हमें अनुवाद की व्यापकता बताती है। भारत जैसे बहुभाषाभाषी राष्ट्र में वर्तमान शताब्दी में खासकर इस सदी के उत्तरार्द्ध में विभिन्न भारतीय भाषाओं द्वारा अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषाओं का अनुवाद हुआ है भारतीय भाषाओं का परस्पर अनुवाद बड़ी छोटी मात्रा में चलता है साधारण लोगों की नजर में साहित्य का अनुवाद ही महत्वपूर्ण है। उसी को हम अनुवाद की कोटि में लेते हैं। सहित्य की बहुत-से शाखा हैं। शुद्ध सृजनात्मक साहित्य से बढ़कर समीक्षा, ज्ञान-विज्ञान की अन्य शाखाएँ, संदर्भ-ग्रंथ आदि के क्षेत्र में अनुवाद का योग है।

बहुभाषिक समाज में अनुवाद की अनिवार्यता

बहुभाषिक समाज से संबद्ध विभिन्न वर्गों के स्वार्थों में सामंजस्य स्थापित करने का एक आधार अनुवाद है। वस्तुतः 1986 की नयी शिक्षा व्यवस्था के क्रियाविधि कार्यक्रम में पहली दफा अनुवाद का उल्लेख किया गया था। यह कार्यक्रम इस बात पर जोर देता है कि “अंततः भारतीय भाषाओं में साहित्यिक अनुवाद का काम गंभीरता से लेना चाहिए और 1992 का संदर्श पर्चा भी इस बात की पुनरावृत्ति करता है। यह बात सच है कि बहुभाषिकता और एकता के नाम पर हम ऐसी कोई व्यवस्था का निर्माण नहीं कर सकते जहाँ भारत की 1652 मातृभाषाओं को सरकार के द्वारा मान्यता मिल सकेगी और हरेक भाषा के साथ बराबर का व्यवहार हो सकेगा मगर इसके परिणामस्वरूप केवल अंग्रेजी का पक्ष लेना ठीक नहीं होगा और साथ ही इस तरह का सिद्धांत बनाना भी ठीक नहीं होगा कि भारतीय भाषाओं का प्रयोग राजनीतिक दृष्टि से विखंडन को प्रश्रय देना होगा। इस तरह की सोच गलत है और भारतीय बहुभाषिक चरित्र के खिलाफ है।”⁶

वर्तमान अडचनों को काफी हद तक शक्ति की भाषा अंग्रेजी को किसी और एक भारतीय भाषा से प्रतिस्थापित करके शक्ति की भाषा के रूप में प्रयोग में लाकर कम नहीं किया जा सकता वरन् अंतःप्रांतीय तथा अंतःजातीय संचारण के विस्तृत प्रयोग व्यवस्था के द्वारा काफी हद तक यह संभव हो सकता है।

“एक बहुभाषिक समाज आधुनिक संवेदना का संपूर्ण प्रसार, संपूर्ण सांस्कृतिक वातावरण तथा मनुष्य अनुभवों का संपूर्ण विस्तार केवल अंग्रेजी या किसी भी एक भारतीय भाषा के द्वारा अभिव्यक्त करना संभव नहीं है। यह जनता की सारी भाषाओं के द्वारा ही संभव हो सकता है। ऐसा सोचना बिल्कुल गलत है कि केवल अंग्रेजी ही भारत की जटिल भाषा समस्या को सुलझा सकती है। राजनीतिक और सामाजिक न्याय के लिए प्रत्येक भाषा को महत्व देना होगा। जातियों और उपजातियों में अधिक गतिशीलता आ जाने के फलस्वरूप उन क्षेत्रों की भाषाओं के प्रयोग में विस्तार अब यथार्थ बन चुका है। अब भाषाओं के बोलने वाले विशिष्ट वर्ग अंग्रेजी बोलने वाले विशिष्ट वर्ग को स्थानापन्न करते हुए अंग्रेजी की निरंकुश भूमिका को खत्म कर रहे हैं।”

यह आमतौर से कहा जाता है कि भारत एक अनुवाद क्षेत्र है। यहाँ दो-तीन भाषाओं का लगातार प्रयोग चलता रहता है। भारत जैसे बहुभाषिक देश में यह स्वाभाविक है कि यहाँके लोग एक से अधिक भाषाओं को जानते हैं और परिणामतः अंग्रेजी या हिन्दी संपर्क भाषा में बोलते हुए एक अनुवाद की भाषा के रूप में उसका प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य की एकक अवधारणा की प्रतिष्ठा अनुवाद के द्वारा ही संभव हो पाती है। अनुवाद के द्वारा भारतीय साहित्य की एकता और विविधता को समझना सरल हो जाता है। भारतीय स्थिति में अनुवाद अनिवार्य है।⁷

अनुवाद की प्रासंगिकता

आज अनुवाद की प्रासंगिकता दिनों-दिन बढ़ रही है। अनुवादक पुनःसर्जक हो गया है। दोहरे जोखिम के इस कार्य की पूर्ति हेतु उसने तलवार की धार पर दौड़ने की कला सीखनी प्रारंभ कर दी है। वह दो संस्कृतियों, विचारधाराओं, चिंतन परंपराओं, भाषिक संस्कारों, रीति-रिवाजों, एवं अवधारणाओं के बीच सेतु निर्माण का कार्य करने लगा है। स्वतः सुखाय या जीवकोपार्जन हेतु अनुवाद कार्य के प्रति समर्पित होने वाला अनुवादक अब परकाया-प्रवेश की प्रक्रिया से गुजरने लगा है।

इस प्रक्रिया से गुजरने का धैर्य और क्षमता किसी साधक के पास ही हो सकती है। अनुवाद करने की मूलभूत शर्त है। ईमानदारी और निष्ठा है। यदि अनुवादक को हम एक सेतु निर्माण करनेवाले के रूप में देखें तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूरी ईमानदारी से पुख्ता और चिरस्थायी सेतु का निर्माण करे। वैज्ञानिक आविष्कारों एवं सूचना क्रांति, के इस दौर में ज्यों-ज्यों विश्व दृष्टि का निर्माण होने लगा है। मानवीय जीवन के सरोकार एक सीमित क्षेत्र से बाहर निकलकर विश्वव्यापी स्तर पर महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगे हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि संसार के विभिन्न वर्गों के समस्त लोग एक-दूसरे को जानने-पहचानने के लिए उत्सुक हों।

इसके परिणामस्वरूप चिकित्सा, तकनीकी, वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक आदान-प्रदान होने के कारण मानव के जीवन-मूल्यों एवं अंतर्राष्ट्रीय सोच के परस्पर संवाद से अजनबीपन का कोहरा छूटने लगा है। भौगोलिक सीमाओं के आर-पार एक परिचित एवं आत्मीय वातावरण बनने लगा है।

एक देश अथवा संस्कृति की भाषा अपनी साहित्यिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को किसी दूसरे देश, भाषाअथवा संस्कृति तक पहुँचाने के लिए अनुवाद का ही सहारा लेते हैं इस प्रकार एक नयी सांस्कृतिक आदान-प्रदान की परंपरा चल पड़ी।

“इतिहास गवाह है कि यदि तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान, कला तथा साहित्य की रक्षा अन्य भाषाओं के अनुवादकों ने न की होती तो उनकी गौरव-गाथाओं को कब का भुला दिया गया होता।

सभ्यताओं के विनाश के साथ ही तक्षशिला, नालंदा, एथेंस, बगदाद, फ्लोरेंस आदि स्थानों पर रचा गया महान साहित्य कब का नष्ट हो गया होता। साहित्य चाहे भारतीय हो अथवा विदेशी, लेखक और अनुवादक के बीच शताब्दी से एक ऐसा अटूट और अंतरंग रिश्ता चला आ रहा है कि जिसका लाभ हर युग और हर भाषा के पाठक ने उठाया है। इस दिशा में विश्व की सर्व प्रमुख भाषाओं में एक हमारी हिन्दी ने भी अपनी अहम भूमिका निभायी है।”⁸

यदि प्राचीन साहित्य के अनुवाद न किए गए होते तो आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि विदेशों में तो क्या शायद स्वयं अपने देश में भी इतने चिरंजीवी न होते। अनुवाद न होता तो अरस्तु, प्लेटो, सुकरात, दांते, वर्जिल, मोपांसा, टॉलस्टॉय, पूश्किन, गोर्की, शेक्सपियर, शैली, बायरन, कीट्स, आदि महान लेखकों की विचार संपदा से सारा विश्व कैसे लाभान्वित होता? रवीन्द्रनाथ, बंकिम और शरत्चन्द्र केवल बंगाल तक ही सीमित रह जाते। तुलसी तथा प्रसाद के काव्य का रसास्वादन अन्य भाषाओं के पाठक कैसे कर पाते?

चीन, जर्मनी, रूस, कोरिया, जापान आदि के लोक-कथाओं के साथ भारतीय लोक कथाएँ भी सामने आ नहीं पाती। पंचतंत्र, जातक कथाएँ, एवं हितोपदेश आदि की कथाएँ, जो बच्चों को रोचक ढंग से नैतिक आचरण की शिक्षा देती हैं, वे विनष्ट हो गई होतीं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दो भाषाओं के बीच की दूरी मिटाने में अनुवाद ने ही सर्वाधिक योगदान किया है। आज के युग में उन प्रमुख देशों में बहुभाषिकता की स्थिति देखने को मिलती है जहाँ कई जातियाँ और भाषाओं के बोलने वाले रहते आए हैं। किंतु किसी भी व्यक्ति के लिए सभी भाषाओं को जानना संभव नहीं है।

और साहित्य के क्षेत्र में इसके बिना काम भी नहीं चलता, क्योंकि मानव एक-दूसरे पर निर्भर है।

ऐसी स्थिति में लोगों के भावों-विचारों को अभिव्यक्त करने का कार्य आसान काम नहीं है। इसलिए इस बहुभाषिकता के सम्मान एवं परस्पर संवाद के लिए अनुवाद कार्य की सहायता लेना जरूरी हो जाता है।

विभिन्न संस्कृतियों एवं समाजों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद को माध्यम बनाना हमारी विवशता है। सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में बदलती हुई परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई नई संभावनाओं ने इसके अनुवाद की उपादेयता को और अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। आज विभिन्न देशों की संस्कृतियों की विपुल संपदा हमारे सामने है और हम उनसे सांस्कृतिक आदान-प्रदान करते हुए उनकी सांस्कृतिक विरासत से भली-भाँति परिचित होना चाहते हैं।

अनुवाद एक ऐसा सटीक माध्यम है जिसके द्वारा पाठक वांछित क्षेत्र में अपनी जिज्ञासा-पूर्ति कर सकता है। शताब्दियों से अनेक लेखक अनुवाद की इस उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका को निभाते चले आ रहे हैं।

भारतेंदु, प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ, दिनकर, जैनेन्द्रकुमार, बच्चन, अमृतराय, अमृता प्रीतम, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, अज्ञेय, राजेन्द्र यादव एवं कमलेश्वर आदि ने विभिन्न भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पाठकों को उपलब्ध कराया है।

जिस तरह यूरोप के नवजागरण में ग्रीक एवं लैटिन के ग्रंथों के अनुवाद की बलवती भूमिका रही है आधुनिक भारत के सांस्कृतिक नवोत्थान में भी पश्चिमी साहित्य के अनुवादों का बड़ा हाथ रहा है। इन अनुवादों ने भारतीयों के दिल में एक नयी प्रेरणा भर दी थी और अपनी प्राचीन संस्कृतियों को नयी दृष्टि से देखने के लिए उन्हें मजबूर किया था।

आज संप्रेषण के साधनों के आविष्कारों के कारण सारा विश्व इतना छोटा बन गया है कि एक देश के लोग दूसरे देश के जीवन और गतिविधियों के बारे में जानने के लिए बहुत ही उत्सुक रहते हैं। विश्व मैत्री एवं सहयोग के इस नये दौर में किसी भी प्रदेश की जनता को समझने के लिए उस देश या प्रदेश के साहित्य को समझना अत्यंत अनिवार्य हो गया है।

हमारी बहुभाषिक संस्कृति में राजाश्रय प्राप्त फारसी अंग्रेजी के प्रवेश से बहुत पहले साहित्यिक आदान-प्रदान हमारी विरासत का अभिन्न हिस्सा था। उन्नीसवीं शताब्दी में जब उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हुई तो अंग्रेजी से हिन्दी और भारतीय भाषाओं में अनुवाद इस जटिल आवाजाही में एक नए तत्त्व के रूप में शामिल हुआ लेकिन यहाँ मौजूद दूसरे तत्वों, मसलन मराठी, कन्नड या बांग्ला-हिन्दी अनुवाद की अहमियत को वह कभी भी खत्म नहीं कर सकी।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने जोर पकड़ने के पहले से ही, अंग्रेजी भारत में केंद्रीय स्थान हासिल कर चुकी थी। दूसरी भारतीय भाषाएँ हिन्दी माध्यम के चलते एक दूसरे के समीप एक नए रूपाकार में सामने आई हैं।

मसलन उपन्यास को ही लें, पिछले पन्द्रह-बीस सालों से भारतीय भाषाओं के उपन्यासों के अंग्रेजी अनुवादों ने अकल्पनीय गति पकड़ी है। देश के हर अंग्रेजी प्रकाशक के पास इस समय अनूदित उपन्यासों की एक लम्बी सूची है।

आज मौलिक साहित्य से अधिक विदेशी या अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुदित कृतियों के पाठक हैं। इस दिशा में राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संवाद प्रकाशन आदि मुख्य रूप से सामने आए हैं जो अनुदित साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशित करते हैं, वहीं ग्रंथशिल्पी, आदि प्रकाशन आलोचनात्मक, एवं गैर-साहित्यिक पुस्तकों को प्रकाशित कर हिन्दी को समृद्ध कर रहे हैं।

पारस्परिक अनुवाद के इस क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के बीच काफी असमानता पाई जाती है।

हिन्दी और मलयालम इस मामले में सबसे आगे हैं। अन्य भारतीय भाषाओं से असाधारण औपन्यासिक कृतियों को अपनी भाषा में उपलब्ध कराने में कोई दूसरी भारतीय भाषा उनकी बराबरी नहीं कर सकती। अनेक बांग्ला कृतियों, विशेषकर उपन्यासों का हिन्दी समेत अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

विदेशी भाषाओं को लें तो सबसे अधिक अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, पोलिस आदि से अनुवाद हुए हैं लेकिन आंशिक रूप से हंगारी, रोमानी, चेक, जापानी, कोरियाई आदि से भी अनुवाद हुए हैं।⁹

बहुभाषिक समाज में अनुवाद की आवश्यकता के क्षेत्र

यह बात अभी तक स्पष्ट हो चुकी है कि बहुभाषिक समाज में अनुवाद बहुत जरूरी है। किसी एक भाषा की केंद्रीयता को स्वीकार कर लेने पर भी उस भाषा में अधिकाधिक अनुवाद विभिन्न भाषा-भाषियों को आश्वस्त करता है और साथ विभिन्न भाषाओं में परस्पर अनुवाद सांस्कृतिक एकता को रेखांकित करता है।

एक देश की भाषाएँ लाख अलग-अलग हों किंतु उनमें शब्द भंडार तथा वाक्य रचना के नियमों में काफी समानता होती है।

इसीलिए संपर्क भाषा हिन्दी में अनुवाद की समस्या वैसी नहीं मानी जा सकती जैसी विदेशी भाषाओं से हिन्दी अनुवाद की।

ऐसे ही बहुत से शब्द भारतीय भाषाओं में समान हैं, किंतु वर्तनीमें अंतर है।

प्रत्येक भाषा के अपने वाक्यीय प्रयोगों की विशेषताएँ होती हैं। उदाहरण के लिए कई भारतीय भाषाओं में वाक्यों में सर्वत्र क्रिया का आना अनिवार्य नहीं होता। इस तरह भाषाएँ चाहे आर्य वर्ग की हैं या आर्यतर वर्ग की, अनुवादक के लिए यह अंतर ध्यान देने का है।

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में काफी सारे तत्सम तद्भव और विदेशी शब्द हैं जो मूलतः एक हैं तथा एक-से हैं या कम-से-कम एक-से लगते हैं साथ ही कभी-कभी शब्द और अर्थ की दृष्टि से एक जैसे मुहावरे नहीं मिलते हैं। ऐसी स्थिति में मात्र अर्थ की समानता की खोज की जानी चाहिए भले ही शब्दों में अंतर हो।

सभी भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद पर व्यवस्थित रूप से काम करने पर इस बहुभाषिकसमाज में भाषा के द्वारा विचारों के आदान-प्रदान की कई समस्याएँ सुलझ सकती हैं।

परंतु जहाँ दूसरी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद की बात सोची जा रही है उसी तरह हिन्दी से दूसरी भारतीय भाषाओं में अनुवाद और भारतीय भाषाओं के पारस्परिक अनुवाद पर भी ध्यान देना जरूरी है। संपर्क भाषा हिन्दी के विकास में सर्वभारतीय पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण पर पीछे काफी जोर दिया गया है और उसका लाभ भी मिला है।

बांग्ला में टेलीफोन के लिए हिन्दी का पारिभाषिक शब्द 'दूरभाष' काफी चल पड़ा है। 'दूरदर्शन' और 'आकाशवाणी' अब सर्वभारतीय शब्द बन गए हैं।

'धरना', 'हड़ताल' शब्द सारे भारत में प्रचलित हो चुके हैं। भारतीय बहुभाषिकता के संदर्भ में हिन्दी की राज और संपर्क भाषा वाली भूमिका दृष्टि से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के आधार पर सर्वभारतीय की सर्वभारतीय स्तर पर स्वीकृति पर ध्यान देना जरूरी है। भारतीय भाषाएँ आपसी बातचीत के लिए अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग जरूरी है।¹⁰

साथ में दूसरी भाषाओं का भी प्रयोग हो सकता है। इस दृष्टि से बहुभाषिक अनुवाद और आशु भाषांतरण का विकास नितांत प्रासंगिक एवं आवश्यक है।

अनुवाद और वैश्वीकरण

आज अनुवाद की वजह से ही हम अपने ही देश की अन्य संस्कृति तथा आचार-व्यवहार था साहित्य से परिचित हैं। अगर अनुवाद न होता तो हम आज तक कईमामलों में अनभिज्ञ बने रहते और समाज का इतना विकास न हुआ होता। वैश्वीकरण अनुवाद का एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है। तकनीकी रूप से अनुवाद शब्द का अर्थ है किसी रचना को मूल भाषा (SL) से लक्ष्य भाषा (TL) में उसके मूल भाव को खोए बिना पुनर्व्यवस्थित या पुनरुत्पादित करना, जबकि वैश्वीकरण का अर्थ है किसी चीज को स्थानीय या क्षेत्रीय से वैश्विक, अंतर्राष्ट्रीय या वैश्विक स्तर पर रूपांतरित करना। वैश्वीकरण के एक अभिन्न

अंग के रूप में, अनुवाद विभिन्न देशों के लोगों, भाषाओं और संस्कृतियों के बीच की दूरी को पाटने और जोड़ने का काम करता रहा है। अनुवाद और वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, लोग विभिन्न भाषाई समुदायों और संस्कृतियों से अधिक परिचित हो गए हैं। अनुवाद विश्व संस्कृति और विश्व साहित्य के विकास में एक प्रमुख कारक रहा है। वास्तव में, वैश्वीकरण के इस युग में, अनुवाद एक आवश्यकता बन गया है।¹¹

निष्कर्ष

बहुभाषिक समाज में पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान के लिए अनुवाद जरूरी है। संपर्क भाषा हिन्दी या संविधान में मान्यता प्राप्त भाषाओं में अनुवाद कार्य के सिवाय जो आदिवासी भाषाएँ हैं उनमें भी अनुवाद कार्य को बढ़ावा दिया जाना चाहिए तभी बहुभाषिक समाज का आदर्श रूप प्रकट हो सकेगा। यह कहा जा सकता है कि बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक समाज को जोड़ने का दायित्व हिन्दी अनुवाद के माध्यम से एक हद तक पूरा हुआ है।

विश्व संस्कृति तथा सभ्यताओं के विकास में, मानवीय ज्ञान में विभिन्न संदर्भों संकल्पनाओं, सिद्धान्तों की जानकारी, आर्थिक, वैज्ञानिक औद्योगिक प्रगति में भी अनुवाद बहुत उपयोगी है। अतः आज अनुवादक के कार्य क्षेत्र में विस्तार हुआ है। अनुवाद में देश व भाषाओं की सीमाओं को लाँघ दिया है। आज हम देखते हैं विविध नाटक व फिल्में बन रही हैं जो अंग्रेजी, बांग्ला, गुजराती, तमिल आदि अन्य भाषाओं से दूसरी भाषा में (हिंदी) अनुवादित होती हैं और प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचती हैं।

अनुवाद आज के वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक और भाषाई सेतु का कार्य कर रहा है। यह मूल लेखक की भावनाओं को बनाए रखते हुए पाठक के लिए एक नई रचना प्रस्तुत करता है। एक सफल अनुवादक को न केवल दोनों भाषाओं का, बल्कि उनकी संस्कृतियों का भी गहन ज्ञान होना चाहिए।

सन्दर्भ

1. संपादक डॉ. नगेंद्र (1985) तुलनात्मक साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज नई दिल्ली-110002
2. इंद्रनाथ चौधरी (1983) तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास
3. इंद्रनाथ चौधरी (2014) तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली
4. सं. डॉ. भ. ह. राजूरकर, डॉ. राजमल बोरा (2013) तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएं, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
5. भोलानाथ तिवारी, (संस्करण-2002) अनुवाद विज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली
6. सं. राजेंद्र इंगोले, सह सं. डॉ. दिलीप कुमार कसवे, प्रो. सचिन, (संस्करण-2014-15) अनुवाद विमर्श
7. डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, अनुवाद सिद्धांत और व्यवहार, नई दिल्ली
8. सं. डॉ. हरदीप कौर, प्रकाशन, USI PUBLICATION, New Delhi
9. कृष्ण कुमार गोस्वामी, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, राजकमल प्रकाशन
10. विश्व साहित्य का अनुवाद - डॉ. अनुराधा शर्मा, साहित्य अकादमी, 2017
11. वैश्विक संचार और अनुवाद - डॉ. विकास गुप्ता, वैश्विक प्रकाशन, 2018

बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक एवं प्रशासनिक अध्ययन (2010-2020)

डॉ० ममता कुमारी

राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर)

सारांश

बिहार की राजनीति में सुशासन का विचार ऐतिहासिक और समकालीन परिप्रेक्ष्य को समाहित करता है। प्राचीन मगध साम्राज्य और पाटलिपुत्र, जो चाणक्य और मौर्य साम्राज्य के सुशासन का केंद्र थे, भारतीय प्रशासन और राजनीति की आधारशिला माने जाते हैं। पाटलिपुत्र ने अपने समय में न केवल राजनीतिक और प्रशासनिक उत्कृष्टता का प्रदर्शन किया, बल्कि न्याय, पारदर्शिता और लोक कल्याण पर आधारित शासन प्रणाली की नींव भी रखी। आज के बिहार में, सुशासन की अवधारणा ने एक बार फिर महत्वपूर्ण प्राप्ति की है। विशेष रूप से नीतीश कुमार के नेतृत्व में बिहार ने कानून-व्यवस्था, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और बुनियादी ढांचे के विकास में उल्लेखनीय सुधार किया है। हालाँकि, जाति आधारित राजनीति, सामाजिक असमानता और भ्रष्टाचार जैसी चुनौतियाँ अभी भी सुशासन की राह में बाधा हैं। यह शोध पत्र प्राचीन मगध और पाटलिपुत्र के सुशासन के सिद्धांतों और उनकी आधुनिक प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है। सार्थक रूप से, यह बिहार के राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे में उनकी पुनर्प्रासंगिकता पर चर्चा करता है। सुशासन के लिए प्राचीन विरासत और आधुनिक दृष्टिकोण के बीच सामंजस्य स्थापित करना बिहार को एक नई दिशा प्रदान कर सकता है।

मुख्य शब्द- सुशासन, मगध, पाटलिपुत्र, विरासत, सामाजिक असमानता।

प्रस्तावना

विगत वर्षों में बिहार में एक नारा खूब प्रचलित रहा, जिसे पटना की सड़कों पर लगे बड़े-बड़े होर्डिंग में खूब चर्चा किया गया। सत्तापक्ष के राजनेताओं एवं मीडिया घरानों ने खूब बोला एवं लिखा और तो और गरीब गुरबों के बीच भी खूब उछाला गया वह और कुछ नहीं सुशासन यानी गुड गवर्नेंस ही तो है। वैसे जब भी लोकतंत्र में हम शासन प्रणाली की बात करते हैं तो उसकी इच्छा एवं तमन्ना गुड गवर्नेंस की ही होती है और होनी भी चाहिए। अगर यह स्थापित नहीं किया गया एवं इसके स्थापना के लिए प्रयत्न नहीं किए जाते हैं तो जनता वोट द्वारा शासन परिवर्तन करने में सक्षम रही है।¹ पंद्रह वर्ष के लंबे लालू-राबड़ी शासन को रद्दोबदल करके आम आवाम ने इस बात को स्थापित भी किया।

गौरतलब है कि सुशासन यानी गुड गवर्नेंस की शब्दावली को सर्वप्रथम परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है जो इसका सैद्धान्तिक पहलू है। बिना व्यवहार सिद्धांत अधूरा है। अतएव नीतीश कुमार के सुशासन संबंधी दावों की व्यवहारिक आईने में पड़ताल करने का प्रयास किया गया है। महत्वपूर्ण है कि सुशासन यानी गुड गवर्नेंस को दो नजरिए से देखा गया है-पाश्चात्य और भारतीय। दोनों ही दृष्टिकोण की अपने-अपने दावे, एजेंडे एवं मसौदे हैं। सुशासन को देखने का अपना अलग-अलग नजरिया भी।

सुशासन यानी गुड गवर्नेंस संबंधी पाश्चात्य दृष्टिकोण के साथ-साथ भारतीय नजरिया है। सुशासन संबंधी भारतीय समझ-बूझ के आधार में कौटिल्य, गाँधी, लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण के विचारों व चिंतन को समाहित करना महत्वपूर्ण है। सुशासन की अवधारणा एक मजबूत एवं सक्षम राज्य के साथ-साथ कुशल प्रशासनिक नीति पर निर्भर करता है। कौटिल्य का दर्शन प्रशासन, राजकला एवं कूटनीति संबंधी आधारभूत विषयों के लिए आरंभिक प्रमाणित स्रोत हैं।² कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र, राजनीति को सीखने-परखने की सबसे उत्कृष्ट कृति है; जैसे पहला, इस ग्रंथ में पूर्वगामी सभी ग्रंथों का सार दिया हुआ है, दूसरा, यह ग्रंथ यथार्थवादी है तथा इन समस्याओं पर विचार करता है, जिनका सामना मनुष्य को इसी लोक में करना होता है, तीसरा, अर्थशास्त्र ने राजनीति को धर्म से पृथक् करके देखा। चौथा, इसके रचयिता ने भारत को एक सुदृढ़ और केन्द्रीकृत शासन दिया।

नीतीश कुमार: नया बिहार

दशकों से कभी संकटग्रस्त राज्य कहे जानेवाले बिहार में नीतीश कुमार के सत्तारूढ़ होने के उपरान्त सुशासन के साथ-साथ एक और शब्द को खूब प्रचारित किया गया है वह है 'नया बिहार'।³ किसी मूल शब्द में इस प्रकार के उपसर्ग जोड़ने से मूल शब्द का पूरा कलेवर बदल जाता है। वह अधिक मानवीय एवं मूल्य परक हो जाता है, मसलन नया लोक प्रशासन, नव सामाजिक आंदोलन, इसी श्रृंखला में बिहार के लिए 'नया बिहार' की शब्दावली को इजाद करते हुए शासन प्रणाली को अत्यधिक विकेंद्रीकृत व जन अभिमुखी बनाने का प्रयास किया गया है। नीतीश कुमार के सुशासन युक्त नव बिहार की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं:-

- जनता का दरबार
- महादलित आयोग
- नालंदा विश्वविद्यालय का पुनरूत्थान
- शिक्षक बहाली
- पंचायती राज में आरक्षण

सफल होती सरकारी योजनाएँ

नीतीश सरकार के द्वारा योजनाएँ भी बहुत सी शुरू की गई जिसमें 'मुख्यमंत्री कन्या सुरक्षा योजना', 'मुख्यमंत्री आक्षर आँचल योजना एवं 'हुनर' महत्वपूर्ण है। योजनाओं को केन्द्र सरकार तथा केरल सहित कुछ राज्य सरकारों ने भी अपनाया है। मुख्यमंत्री कन्या सुरक्षा योजना का मुख्य उद्देश्य युवा लड़कियों तथा जरूरतमंद महिलाओं को लक्षित किया गया है। इस योजना के तहत 250 स्कूलों को विकास शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। साथ-साथ विधवाओं को लक्ष्मी बाई पेंशन प्लान के तहत 300 रूपए प्रति माह दिया जाता है।

राज्य सरकार द्वारा 52.6 करोड़ की मुख्यमंत्री अक्षर आँचल योजना की शुरुआत की गई है। इसका उद्देश्य 15-35 वर्ष की लगभग 40 लाख निरक्षर महिलाओं को साक्षर बनाना है।

'हुनर' बिहार सरकार द्वारा मुसलिम महिलाओं को आत्मनिर्भर करने संबंधी महत्वपूर्ण योजना है, जिसे पूरे बिहार में सराहा जा रहा है। इसकी शुरुआत जाँच के तौर पर किया गया जिसमें महिलाओं को कताई, बुनाई, कम्प्यूटर के प्रयोग, बच्चों की देखरेख, मातृत्व मामले के लिए परीक्षण किया गया।

हुनर कार्यक्रम की छतरी तले ही बिहार सरकार ने मुसलिम महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु 'औजार' कार्यक्रम भी शुरू किया है जिसका लक्ष्य 2010 तक तकरीब 50000 महिलाओं को सशक्तिकरण करना है, उसमें 25000 मुसलिम महिला होंगी, वहीं शेष में महादलित और अन्य पिछड़े वर्ग से ताल्लुकात रखनेवाली महिलाओं को स्थान दिया गया है।⁴

सड़क व पुल का संजाल

कल तक जरूर हास-परिहास में बिहार की सड़कों की तुलना ओम पुरी के गालों से की जाती थी, परन्तु अब परिदृश्य बदला है। खराब रोड व्यवस्था बिहार के पिछड़ेपन की तस्वीर पेश करती थी परन्तु स्वर्ण चतुर्भुज योजना तथा प्रधानमंत्री सड़क योजना संबंधी लक्ष्यों को बिहार सरकार अमलीजामा पहनाने के लिए कृत संकल्प है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत बिहार के 1600 किलोमीटर के सड़कों को चार लेन व दो लेन में तब्दील करने एवं सभी महत्वपूर्ण सड़कों को मरम्मत करन का लक्ष्य रखा गया है।

भूमि सुधार

भूमि सुधार का मुद्दा बिहार जैसे प्रांत के लिए अहम है। नीतीश कुमार ने सत्ता में आते ही डी. बंधोपाध्याय की अध्यक्षता वाली भूमि सुधार आयोग का गठन किया। समिति ने माना कि बिहार के जमींदार बहुत ताकतवर हैं, यही कारण है कि यहाँ पचास वर्षों में भी भूमि सुधार नहीं हो पाया। नीतीश कुमार सरकार की सबने तारीफ भी की। बिहार में अगर भूमि सुधार कानून लागू होता तो गरीब की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में बदलाव आता है नक्सलवाद की समस्या खत्म हो जाती। परन्तु बड़े-बड़े भू-स्वामियों के दबाव के कारण नीतीश कुमार ने इस रपट को रद्दी की टोकरी में डाल दिया।⁵ नीतीश कुमार के सुशासन की सबसे बड़ी विफलता यही है।

सुशासन का प्रशासनिक परिप्रेक्ष्य

जंगलराज और न जाने क्या-क्या बड़ा अजीब लगता था कि क्या किसी राज्य की कानून व्यवस्था इतनी खराब हो सकती है कि उसे जंगलराज के उपनाम से पुकारा जाए या फिर यूँ कहें कि उसे ये नाम ही दे दिया जाए।

लेकिन कहते हैं कि हर रात के बाद सुबह होती है, वैसे ही बिहार में भी हुआ। सुबह हुई और सुबह के सूरज की सुनहरी किरण जब जंगलराज उपनाम के कारण छापटा रहे और अपनी बेबसी पर आंसू बहा रहे राज्य पर पड़ी तो मानों लोगों में जीवन का नया संचार हो गया। हालांकि ऐसा नहीं था कि बिहार की कानून व्यवस्था एकदम से ही खराब हो गई थी। बरसों से धीरे-धीरे यहाँ कि कानून व्यवस्था को पंगु बना दिया गया था। आलम ये हो गया था अन्य राज्यों के लोग बिहार के कानून व्यवस्था के बारे में तरह-तरह के सवाल पूछते थे और उसका मजाक उड़ाते थे तथा वहाँ जाने तक से डरते थे। लेकिन राज्य में नीतीश सरकार के शासन संभालने के बाद वहाँ की स्थिति में सुधार होना शुरू हुआ और अभी वास्तविकता यह है कि लोग अब वहाँ की कानून व्यवस्था और शनैः शनैः ही सही पर वहाँ हो रहे सुधारों के बारे में पूछते हैं।⁶

हालांकि ऐसा नहीं है कि बिहार में सब कुछ एकदम से ठीक हो गया है। लेकिन इतना जरूरत है कि वहाँ अपराध की घटनाओं में कमी आई है। आज लोग देर रात तक परिवार के साथ निकलकर छुट्टी का आनंद उठा सकते हैं। ये विश्वास मौजूदा राज्य सरकार की देन है और ऐसा कहने में किसी को कोई गुरेज नहीं होना चाहिए। बिहार में अभी भी छिटपुट पैमाने पर अपहरण और हत्याएँ हो रही हैं, लेकिन फर्क सिर्फ इतना है कि अपराधी कुछ ही दिनों में जेल के सलाखों के पीछे नजर आते हैं। राज्य सरकार ने अदालतों में लंबित पड़े मामलों की त्वरित सुनवाई के लिए करीब डेढ़ दशक से रिक्त पड़े न्यायिक पदों पर भर्ती की प्रक्रिया शुरू की। इसके तहत 2011 में ढाई सौ से अधिक अपर जिला न्यायाधीशों को सीधी भर्ती के तहत नियुक्त किया गया और उनकी विभिन्न जिलों में तैनाती हुई। इससे राज्य की अदालतों में लंबित पड़े हजारों मामलों की सुनवाई में सहूलियत होगी और बिहार की जनता को इधर राज्य पुलिस

की बदली हुई कार्यशैली से यहाँ अपराध पर लगा अंकुश धीरे-धीरे प्रभावी नजर आ रहा है। पुलिस बिना किसी राजनीतिक दबाव या फिर अन्य दबावों के अपराधियों के खिलाफ कार्यवाही कर रही है।

कहते हैं कि अपराध में कमी किसी राज्य में सब कुछ ठीक होने का अहसास दिलाता है और यह बात दुनिया के किसी भी मुल्क पर लागू होता है। बरसों से अपराध और अपराधियों से निकलने को छापटा रही बिहार की जनता को जैसे ही मौका मिला, इससे निपटने के लिए सामने आ गई। इसका सबसे बड़ा उदाहरण तो लोकसभा के चुनाव रहे। राज्य में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किए आपराधिक छवि के ज्यादातर उम्मीदवार चुनाव हार गए।⁷

ऐसा नहीं है कि ये सब अचानक हुआ, बल्कि इसकी पृष्ठभूमि तो काफी पहले से ही तैयार हो रही थी। बिहार में लोकप्रिय जननेता लालू यादव कभी कहा करते थे कि विकास के नाम पर वोट नहीं मिलता। लेकिन 2009 के लोकसभा चुनाव में विकास एक मुद्दा था। यहाँ तक लालूजी भी विकास का ढोल पीटते नजर आ रहे थे। बिहार के नजरिए से यह बहुत बड़ा बदलाव था। यहाँ तक कि नोबल पुरस्कार विजेता महान अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन और दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति बिल गेट्स भी राज्य में हो रहे बदलावों की तारीफ कर चुके हैं।

नीतीश कुमार के शासनकाल में बिहार कितना बदल रहा है यह जटिल सवाल है। क्योंकि यहाँ स्पष्ट करना होगा कि बदलाव की दिशा सकारात्मक है या नकारात्मक। ऐसा लगता है कि नीतीश चाहते हैं बिहार का सकारात्मक बदलाव हो। एक नया बिहार प्रगतिशीलता के नए पैमाने तय करे। पिछले सरकार के शासनकाल में जो संस्थाएँ मरणासन्न हो गई थीं, उसको फिर से सुचारु करने की दिशा में नीतीश लगातार काम कर रहे हैं। डी. बंधोपाध्याय के नेतृत्व में गठित भूमि सुधार आयोग का गठन जैसे पहल को इसी दिशा में देखा जा सकता है।⁸

सुशासन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

जब नीतीश सरकार ने सुशासन की बागडोर थामी थी तब सूबे के 38 में से महज 18 जिले ही नक्सल उग्रवाद से प्रभावित थे। लेकिन अब सुरत बदल चुकी है। राज्य के 38 में से कुल 31 जिले नक्सलियों की चहलकदमी से कांप रहे हैं। हाल यह है कि रात के अंधेरे की बात छोड़िए, दिन के उजाले में भी अर्द्धसैनिक बलों, स्पेशल टास्क फोर्स और सेना से रिटायर जवानों को लेकर राज्य सरकार द्वारा गठित 'सैप' के जवानों को उनके प्रभाववाले इलाकों में गश्ती की छूट नहीं है। कई बार उन्होंने अगर उनके प्रभाव वाले इलाकों में चहलकदमी की भूल कर दी तो इसके गंभीर परिणाम आए। घात लगाए नक्सलियों ने पुलिस दल पर हमला कर न सिर्फ जवानों को मौत की नींद सुला दी, बल्कि उनके अत्याधुनिक हथियार भी लूट लिए।

राज्य सरकार ने नक्सलियों को उनके ही सिद्धांत के साथ तीन तरफ से घेरना शुरू किया। इसके तहत पहली घेराबंदी नक्सली संगठन के बड़े नेताओं की गिरफ्तारी और धर-पकड़ की थी। इस घेराबंदी में राज्य सरकार को बहुत हद तक सफलता भी मिली और राज्य के अधिकतर बड़े नक्सली नेता इन दिनों या तो जेलों में बंद हैं या फिर भूमिगत हो चुके हैं। दूसरी घेराबंदी नक्सलियों को उन्हीं की भाषा में जवाब देने की थी, यानी सीधी कारवाई। हालांकि जवाबी कारवाई में बिहार पुलिस को कोई ऐसी बड़ी सफलता अब तक नहीं मिली है जिसका जिक्र तक किया जाए।⁹ हकीकत तो यह है कि उल्टे नक्सलियों ने गुरिल्लों की तरह घात लगाकर पुलिस के जवानों को अपना शिकार बनाया और उनके हथियार तक लूट लिए।

राज्य सरकार ने चौथा रास्ता नक्सलियों की समाज की मुख्यधारा में वापस लौट आने के लिए अपनी नई आत्मसमर्पण नीति भी बनाई। लेकिन इन नीति का कोई खास असर नहीं दिखा। इस मामले में राज्य के पुलिस महानिदेशक आनंद शंकर कहते हैं कि हमने भी समर्पण नीति की कुछ खामियों के प्रति राज्य सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है और इसमें कुछ आवश्यक बदलाव लाने का एक प्रस्ताव भी सरकार को सौंपा है। दरअसल, राज्य सरकार ने नक्सलियों के आत्मसमर्पण की जो नीति बनाई है उसमें सिर्फ हथियार के साथ समर्पण करनेवाले नक्सलियों को ही नक्सली माना गया है जबकि हकीकत यह है कि किसी भी नक्सली के पास कोई अपना हथियार नहीं होता। साफ है कि सरकार की इस नीति को कोई असर नहीं दिखा।¹⁰

जनवरी 2011 में मुख्यमंत्री के रूप में नीतीश कुमार के साथ बिहार सरकार के विभिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार से निपटने की अपनी मंशा के सटीक संकेत प्रदान किए थे। उस दिशा में उठाए गए एक कदम के रूप में राज्य सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दुरुस्त किए जाने संबंधी पहल की थी। महत्वपूर्ण रूप से, बिहार ऐसा सर्वप्रथम (2011) राज्य था जिसके द्वारा सभी राज्य कर्मचारियों, जिनका संबंध विभिन्न श्रेणियों से था, के द्वारा वार्षिक आधार पर अपनी संपत्तियों तथा बैंक खातों के विवरणों को दाखिल किया जाना अनिवार्य बना दिया गया था। आगे, किसी भी अन्य राज्य ने विधानसभा के सदस्यों तथा विधान परिषद के सदस्यों के लिए उस स्थानीय क्षेत्र विकास निधि को समाप्त नहीं किया था जो दुरुपयोग किए जाने के कारण गंभीर आलोचनाओं से घिर चुकी थी।

साहित्य-समीक्षा

सुरेन्द्र मुन्शी, ब्रिज पॉल अब्राहम तथा सोम चौधरी द्वारा लिखित पुस्तक "The Intelligent Person's Guide to Good Governance" में सुशासन के लिए राज्य की भूमिका का विस्तार से वर्णन किया गया है। पुस्तक में नागरिक समाज तथा प्रजातंत्र से सम्बंधित विभिन्न विषयों को भी विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

जी एन वाजपेई द्वारा लिखित पुस्तक 'The Essential Book of Corporate Governance' में कॉर्पोरेट गवर्नेंस का विस्तार से वर्णन किया है। इस पुस्तक में विभिन्न विषयों को चार्टर्स के माध्यम से विस्तार से व्याख्या की गई है।

विनोद राय द्वारा लिखित पुस्तक "Rethinking Good Governance" में सुशासन के लिए धारणीय आर्थिक विकास (Sustainable Economic Development) की आवश्यकता पर जोर दिया गया है तथा बताया गया है कि सुशासन के लिए जनता तथा सरकार के मध्य विश्वास का सम्बन्ध होना चाहिए।

एन भास्कर राव द्वारा लिखित पुस्तक 'Good Governance' '%Delivering Corruption Free Public Service' में सुशासन के लिए भ्रष्टाचार रहित लोक सेवाओं की आवश्यकता पर जोर दिया है तथा सुशासन के लिए सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

बी सी स्मिथ द्वारा लिखित पुस्तक “Good Governance and Development” में विकसित एवं विकासशील देशों में सुशासन की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है।

वेनुनंदन एताकुला द्वारा लिखित पुस्तक “Good Governance - Institutions in India” में सुशासन के विभिन्न मुद्दों एवं व्यूह रचना पर चर्चा की गई है। इस पुस्तक में लोक सेवाओं के संपादन में आने वाली समस्याओं के बारे में विस्तार से व्याख्या की गई है तथा लोक सेवाओं को प्रभावशाली तरीके से निष्पादन से सम्बंधित विभिन्न आयामों का वर्णन किया गया है।

अध्ययन का महत्व

समानता एक सर्वव्यापी अवधारणा है। यह हर मानव की प्राचीनतम मांग है। आर्थिक समानता, सामाजिक समानता और राजनीतिक समानता सभी को जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र या लिंग के भेद के बिना न्याय प्रदान करती हैं। भारत का संविधान सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न मौलिक अधिकारों और निदेशात्मक सिद्धांतों का प्रावधान करता है।

स्वतंत्रता के समय से भारतीय समाज स्थिर, रूढ़िवादी और अशिक्षित रहा है। भारतीयों के सामने विकास की चुनौती है, जिसमें असमानता को समाप्त करना शामिल है। समानता सुनिश्चित करने के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विशेष योजनाएँ जैसे आरक्षण प्रदान की गई हैं। भारतीय संविधान के कार्यान्वयन के सत्तर वर्षों के बाद, यह देखा गया है कि सुरक्षात्मक भेदभाव और सकारात्मक कार्यवाई कार्यक्रमों ने आरक्षित वर्गों को सशक्त बनाने और उनके सामाजिक स्थिति में सुधार करने में मदद की है। वर्तमान अध्ययन बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक एवं प्रशासनिक अध्ययन (2010-2020) के माध्यम से बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

अध्ययन के उद्देश्य

- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार राज्य में सुशासन की स्थापना के लिए हमें इसके सिद्धांतों को राजनैतिक एवं प्रशासनिक नेतृत्व द्वारा लागू किया जायेगा।
- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार राज्य में सुशासन की विभिन्न विशेषताओं का विस्तार से वर्णन किया जायेगा।
- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार राज्य में सुशासन की विशेषताओं के आधार पर यहाँ के राज्यों का कार्मिक मंत्रालय द्वारा निर्धारित सूचकांक द्वारा किये गए वर्गीकरण का विश्लेषण किया जायेगा। इसी प्रकार विश्व बैंक द्वारा जारी WGI-सर्वे के आधार पर किये गए वर्गीकरण की व्याख्या की जायेगी।
- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार में सुशासन के लिए किये गए सर्वे के आधार पर मूल्यांकन किया गया जायेगा तथा परिणामों को भारत औसत मध्य तथा कई वर्ग रीति के आधार पर परीक्षण जायेगा।

परिकल्पना

यह अध्ययन इस परिकल्पना पर आधारित है कि:

- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए स्वतंत्र चुनाव व्यवस्था, वंचित वर्गों का संवर्धन, सत्ता का विकेंद्रीकरण तथा विधि का शासन विद्यमान नहीं है।
- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए सरकारी संस्थाओं की जवाबदेही, पारदर्शिता एवं खुलापन, सामाजिक आर्थिक सेवा की समयबद्ध उपलब्धता, प्रशासन में नैतिकता का समावेश विद्यमान नहीं है।
- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए कार्य कुशलता, मितव्ययिता एवं सुदृढ़ वित्तीय प्रबंधन, प्रशासन में नैतिकता, पर्यावरण सुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता विद्यमान नहीं है।
- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए समानता, सामाजिक समावेशन, मानवाधिकार संरक्षण, क्षमता, योग्यता, प्रभावशालिता, नवीनता एवं परिवर्तन की स्वीकारोक्ति विद्यमान नहीं है।

शोध-विधि

वर्तमान अध्ययन के लिए वैधानिक दृष्टिकोण अपनाया जायेगा। पुस्तकें, पत्रिकाएँ, कानूनी मामले, रिपोर्टें जैसे द्वितीयक स्रोतों ने शोधकर्ता को विषय को समझने में सहायता करेंगी।

वैधानिक विधि का उपयोग मुख्य रूप से किया जायेगा। इसलिए, यह शोध कार्य पूरी तरह से पुस्तकालयों, अभिलेखागारों, ऑनलाइन डेटाबेस और विभिन्न ई-लर्निंग संसाधनों से प्राप्त सामग्री पर आधारित होगी। जैसा कि फिलिप केनी ने कहा है, वैधानिक या शुद्ध कानूनी शोध के मामले में किसी विशेष विधि की आवश्यकता नहीं होती, जो सामाजिक विज्ञान या वैज्ञानिक शोध के विपरीत है। प्रस्तावित शोध निम्नलिखित तीन कानूनी शोध विधियों का संयोजन है, जहाँ भी प्रासंगिक हो- वर्णात्मक विधि, ऐतिहासिक और तुलनात्मक विधि, और विश्लेषणात्मक विधि। मूलतः यह शोध गुणात्मक है।

संदर्भ-सूची

1. आर. रामाचंद्रन, इंडियन सिटीज: सेलेक्टेड कैरेक्टराईजेशन अरबनाइजेशन एंड अरबन सिस्टम इन इंडिया, न्यू दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ० 342-347
2. एस.एन. मिश्रा, पॉलिटिक्स एंड लिडरशिप इन म्यूनिसिपल गवर्नमेंट इंडिया पब्लिकेशन, 1979, पृ० 48
3. सुकांत (2010), 'शराब घोटाले पर घिरती सरकार', दैनिक भास्कर, 26 फरवरी, पृ० 7
4. चक्रपाणि हिमांशु (2010), 'सुशासन के चार साल: बिहार बेहाल', इंडिया न्यूज, 2-8 जनवरी, पृ० 27
5. दिनेश कुमार मिश्रा, 'लीविंग विद् फ्लड्स', इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जुलाई 21, 2001, पृ० 75-76
6. पीटर रोनाल्ड डिसूजा (2000), 'पेरोकियल वर्सेज सयूनिवर्स', सेमिनार, पृ० 593
7. तरूण विजय, 'कम्युनिस्ट आतंकवाद', सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 46-48
8. कल्याण मुखर्जी एवं राजेंद्र सिंह यादव, भोजपुर बिहार में नक्सली आंदोलन, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ०-1
9. बी. जोसेफ (1996) 'गवर्नमेंट, सिस्टम एंड रिजिम' पॉलिटिक्स, पालग्रेव फाउंडेशन, पृ० 6
10. नरेश बनर्जी, गया एंड बोधगया: ए प्रोफाइल इंडिया पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, पृ०-11

मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में निहित शैक्षिक मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रीति शर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

डॉ० वन्दना गजराज

शोध पर्यवेक्षक, मानविकी एवं कला विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

शोधालेख सार-

हिंदी साहित्य के यथार्थवादी परंपरा के सर्वाधिक प्रभावशाली कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज के बहुआयामी यथार्थ को अत्यंत संवेदनशील और वैचारिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाएँ केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक, शैक्षिक और नैतिक चेतना का सशक्त माध्यम भी हैं। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में उस समय के समाज में व्याप्त गरीबी, शोषण, असमानता, जातिगत भेदभाव, नारी उत्पीड़न और नैतिक पतन जैसी समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उनके समाधान की दिशा भी प्रस्तुत की है। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य प्रेमचंद के कथा साहित्य में निहित शैक्षिक मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रेमचंद शिक्षा को केवल औपचारिक ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं मानते, बल्कि वे इसे व्यक्ति के समग्र विकास विशेष रूप से चरित्र निर्माण, नैतिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदनाओं के विकास का माध्यम मानते हैं। उनके साहित्य में शिक्षा का स्वरूप जीवनोपयोगी है, जो व्यक्ति को समाज के प्रति सजग, उत्तरदायी और संवेदनशील बनाता है। प्रेमचंद के पात्र सामान्य जीवन स्थितियों में रहते हुए असाधारण नैतिक निर्णय लेते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनके साहित्य में नैतिकता कोई आदर्शवादी कल्पना नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन का अंग है। ईदगाह, पंच परमेश्वर, गोदान और निर्मला जैसी रचनाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से मूल्य-आधारित शिक्षा की एक सशक्त अवधारणा प्रस्तुत की है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का कथा साहित्य आज के समय में भी अत्यंत प्रासंगिक है, विशेषकर तब जब शिक्षा का स्वरूप अधिकतर व्यावसायिक एवं प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है। उनके विचार आधुनिक शिक्षा को नैतिक और मानवीय दिशा प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

कुंजी शब्द: मुंशी प्रेमचंद, शैक्षिक मूल्य, नैतिक आदर्श, कथा साहित्य, चरित्र निर्माण, सामाजिक चेतना।

प्रस्तावना

भारतीय हिंदी साहित्य के विकास में मुंशी प्रेमचंद का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं युगप्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उसे समाज के यथार्थ का सशक्त दर्पण और सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी माध्यम बनाया। प्रेमचंद का साहित्य उस समय के भारतीय समाज की जटिलताओं, विसंगतियों और अंतर्विरोधों को उजागर करता है, जिसमें गरीबी, सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव, नारी उत्पीड़न तथा नैतिक पतन जैसी समस्याएँ प्रमुख थीं।

प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि मूलतः मानवीय और यथार्थवादी है। वे जीवन को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करते हैं और उसी यथार्थ के भीतर से नैतिकता एवं शिक्षा के तत्वों को खोजते हैं। उनके कथा साहित्य में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि वे शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं मानते, बल्कि उसे व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का आधार मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति के भीतर नैतिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व, सहानुभूति, न्यायप्रियता तथा मानवीय संवेदनाओं का विकास करना है।

प्रेमचंद के कथा साहित्य की एक विशेषता यह है कि उसमें प्रस्तुत शैक्षिक मूल्य और नैतिक आदर्श किसी उपदेशात्मक शैली में नहीं दिए गए हैं, बल्कि वे पात्रों के व्यवहार, उनके निर्णयों और जीवन-संघर्षों के माध्यम से स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होते हैं। यही कारण है कि उनका साहित्य पाठकों को केवल ज्ञान नहीं देता, बल्कि उन्हें सोचने, आत्मचिंतन करने और अपने आचरण को सुधारने के लिए प्रेरित करता है।

यदि हम उनकी प्रमुख रचनाओं जैसे ईदगाह, पंच परमेष्वर, गोदान और निर्मला का अवलोकन करें, तो यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन को चित्रित करते हुए उनमें निहित नैतिक द्वंद्व और शैक्षिक संदेशों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके पात्र साधारण होते हुए भी अपने नैतिक निर्णयों के कारण असाधारण बन जाते हैं, जो यह दर्शाता है कि सच्ची शिक्षा जीवन के व्यवहारिक पक्ष से जुड़ी होती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, जब शिक्षा का स्वरूप अधिकतर व्यावसायिक एवं प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है, प्रेमचंद के विचार और भी अधिक प्रासंगिक हो उठते हैं। आज की शिक्षा प्रणाली में नैतिक मूल्यों का ह्रास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसके परिणामस्वरूप समाज में संवेदनहीनता, भ्रष्टाचार और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। ऐसे समय में प्रेमचंद का कथा साहित्य मूल्य-आधारित शिक्षा की आवश्यकता को पुनः स्थापित करता है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में निहित शैक्षिक मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों का गहन विश्लेषण करना है, ताकि यह समझा जा सके कि उनका साहित्य न केवल अपने समय के समाज को दिशा प्रदान करता है, बल्कि आज के युग में भी शिक्षा और नैतिकता के क्षेत्र में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें प्रेमचंद की प्रमुख कहानियों एवं उपन्यासों जैसे ईदगाह, पंच परमेष्वर, गोदान और निर्मला का गहन अध्ययन किया गया है। अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का भी उपयोग किया गया है, जिनमें आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध-पत्र तथा साहित्यिक समीक्षाएँ शामिल हैं। पाठ-विश्लेषण के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि प्रेमचंद के साहित्य में शैक्षिक मूल्य और नैतिक आदर्श किस प्रकार अंतर्निहित हैं और वे पाठकों पर क्या प्रभाव डालते हैं।

कथा साहित्य में निहित शैक्षिक मूल्य

हिंदी साहित्य के महान यथार्थवादी कथाकार मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में शैक्षिक मूल्यों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर नैतिक, सामाजिक और मानवीय गुणों का विकास करना है। उनके कथा साहित्य में शैक्षिक मूल्य जीवन के वास्तविक अनुभवों और परिस्थितियों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं, जो पाठकों को व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। नीचे इन शैक्षिक मूल्यों का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत है-

- चरित्र निर्माण का मूल्य- प्रेमचंद के अनुसार शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना है। उनके साहित्य में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि केवल ज्ञान अर्जन से व्यक्ति पूर्ण नहीं होता, बल्कि उसका नैतिक आचरण ही उसकी वास्तविक पहचान बनाता है। उनकी कहानी ईदगाह में हामिद का चरित्र इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह बालक होते हुए भी अपनी इच्छाओं का त्याग करता है और अपनी दादी की आवश्यकता को प्राथमिकता देता है। यह घटना यह दर्शाती है कि सच्ची शिक्षा व्यक्ति को संवेदनशील, जिम्मेदार और त्यागशील बनाती है। इस प्रकार प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति को एक अच्छा इंसान बनाना है, न कि केवल ज्ञानवान।
- नैतिक मूल्यों का विकास- प्रेमचंद के कथा साहित्य में सत्य, न्याय, ईमानदारी और निष्पक्षता जैसे नैतिक मूल्यों का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। पंच परमेष्वर इस संदर्भ में एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें जुम्नन शेख, जो पहले अपने मित्र अलगू चौधरी के पक्ष में पक्षपाती होता है, लेकिन जब वह स्वयं पंच बनता है, तो निष्पक्ष निर्णय देता है। यह दर्शाता है कि न्याय करते समय व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर उठना चाहिए। इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक मूल्य केवल आदर्श रूप में नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन में लागू होने वाले सिद्धांतों के रूप में प्रस्तुत होते हैं।
- सामाजिक समानता का मूल्य- प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक समानता और न्याय की भावना को प्रबल रूप से व्यक्त करता है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में जातिगत, आर्थिक और लैंगिक असमानताओं का विरोध किया है। गोदान में किसान जीवन के माध्यम से उन्होंने सामाजिक और आर्थिक विषमता का गहन चित्रण किया है। होरी का संघर्ष यह दर्शाता है कि समाज में वर्ग विभाजन और शोषण की समस्या कितनी गहरी है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाता है, जो विद्यार्थियों में समानता और न्याय के प्रति जागरूकता उत्पन्न करता है।
- श्रम और आत्मसम्मान का मूल्य- प्रेमचंद ने श्रम को अत्यंत सम्मानजनक स्थान दिया है। उनके अनुसार श्रम केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि व्यक्ति के आत्मसम्मान और गरिमा का आधार है। गोदान के होरी जैसे पात्र कठिन परिस्थितियों में भी श्रम को नहीं छोड़ते। वे अपने आत्मसम्मान को बनाए रखते हुए संघर्ष करते हैं। यह दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि सच्ची शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर और परिश्रमी बनाती है। आज के संदर्भ में यह मूल्य अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह युवाओं में कार्य के प्रति सम्मान और आत्मनिर्भरता की भावना विकसित करता है।
- सहानुभूति और मानवीय संवेदनाओं का मूल्य- प्रेमचंद के साहित्य में मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत गहन चित्रण मिलता है। वे अपने पात्रों के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि एक संवेदनशील समाज ही नैतिक रूप से सशक्त हो सकता है। कफन जैसी कहानी समाज की संवेदनहीनता को उजागर करती है। इसमें धीसू और माधव के व्यवहार के माध्यम से यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या केवल आर्थिक अभाव ही नैतिक पतन का कारण है, या समाज की संरचना भी इसके लिए उत्तरदायी है। यह विश्लेषण पाठकों को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करता है और सहानुभूति के महत्व को रेखांकित करता है।

कथा साहित्य में निहित नैतिक आदर्श

हिंदी साहित्य के महान कथाकार मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिक आदर्शों की प्रस्तुति अत्यंत सशक्त और जीवनोपयोगी रूप में मिलती है। उनके साहित्य की विशेषता यह है कि उसमें नैतिकता किसी उपदेशात्मक या आदर्शवादी रूप में नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविक परिस्थितियों, संघर्षों और निर्णयों

के माध्यम से विकसित होती है। प्रेमचंद के पात्र नैतिक द्वंद्वों से गुजरते हुए ऐसे निर्णय लेते हैं, जो न केवल उनके व्यक्तित्व को परिभाषित करते हैं, बल्कि पाठकों के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। उनके कथा साहित्य में नैतिक आदर्श व्यवहारिक, यथार्थवादी और सामाजिक संदर्भों से जुड़े हुए हैं। नीचे इन नैतिक आदर्शों का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत है-

- सत्य और न्याय का आदर्श- प्रेमचंद के साहित्य में सत्य और न्याय को सर्वाच्च नैतिक मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके अनुसार समाज की स्थिरता और समरसता के लिए न्यायप्रियता अनिवार्य है। पंच परमेश्वर इस आदर्श का सर्वोत्तम उदाहरण है। जब जुमन शंख पंच बनता है, तो वह अपने व्यक्तिगत संबंधों को अलग रखकर निष्पक्ष निर्णय देता है। यह घटना यह सिद्ध करती है कि न्याय का वास्तविक स्वरूप निष्पक्षता और सत्यनिष्ठा पर आधारित होता है। यह आदर्श यह संदेश देता है कि व्यक्ति को अपने स्वार्थ और संबंधों से ऊपर उठकर सत्य का पालन करना चाहिए।
- त्याग और बलिदान का आदर्श- प्रेमचंद के कथा साहित्य में त्याग और बलिदान का विशेष महत्व है। उनके पात्र व्यक्तिगत सुखों का त्याग कर दूसरों के हित को प्राथमिकता देते हैं। ईदगाह में हामिद का त्याग इस आदर्श का अत्यंत मार्मिक उदाहरण है। वह अपने लिए खिलौने या मिठाइयाँ न लेकर अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदता है। यह केवल एक बालक का निर्णय नहीं, बल्कि उच्च नैतिक चेतना का परिचायक है। यह आदर्श यह दर्शाता है कि सच्चा सुख दूसरों की भलाई में निहित है और यही नैतिक जीवन का आधार है।
- कर्तव्यपरायणता का आदर्श- प्रेमचंद के साहित्य में कर्तव्य के प्रति निष्ठा को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। उनके पात्र कठिन परिस्थितियों में भी अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। गोदान के होरी का जीवन इस आदर्श का उत्कृष्ट उदाहरण है। वह अनेक आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों के बावजूद अपने पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करता है। यह दर्शाता है कि नैतिकता केवल विचारों तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह कर्तव्यों के पालन में भी प्रकट होती है।
- मानवता और करुणा का आदर्श- प्रेमचंद के साहित्य में मानवता सर्वापरि नैतिक मूल्य के रूप में उभरती है। उनके पात्र अक्सर ऐसे निर्णय लेते हैं जो मानवीय संवेदनाओं से प्रेरित होते हैं। उनकी रचनाएँ यह सिखाती हैं कि किसी भी समाज की वास्तविक शक्ति उसकी मानवीयता में निहित होती है। यदि समाज में करुणा और सहानुभूति का अभाव हो जाए, तो नैतिकता का पतन निश्चित है। कफन जैसी कहानी इस संदर्भ में एक गहन प्रश्न प्रस्तुत करती है कि समाज की संरचना और परिस्थितियाँ किस प्रकार व्यक्ति की नैतिकता को प्रभावित करती हैं।
- सामाजिक उत्तरदायित्व का आदर्श- प्रेमचंद के कथा साहित्य में व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी माना गया है। उनके अनुसार व्यक्ति केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज के लिए भी उत्तरदायी होता है। उनकी रचनाएँ यह संदेश देती हैं कि सामाजिक समस्याओं के समाधान में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यह दृष्टिकोण शिक्षा को सामाजिक चेतना से जोड़ता है। यह आदर्श आधुनिक समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ अक्सर सामाजिक हितों पर हावी हो जाते हैं।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

हिंदी साहित्य के महान यथार्थवादी कथाकार मुंशी प्रेमचंद का कथा साहित्य केवल अपने समय तक सीमित नहीं है, बल्कि वह आज के युग में भी समान रूप से प्रासंगिक बना हुआ है। वर्तमान समय में जब शिक्षा का स्वरूप तेजी से बदल रहा है और वह अधिकतर व्यावसायिकता, प्रतिस्पर्धा तथा तकनीकी दक्षता तक सीमित होता जा रहा है, तब प्रेमचंद के विचार शिक्षा के मानवीय और नैतिक पक्ष को पुनः स्थापित करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रेमचंद ने शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं माना, बल्कि उसे जीवन के नैतिक और सामाजिक विकास का आधार माना। आज की शिक्षा प्रणाली में जहाँ अंक, प्रमाणपत्र और रोजगार को प्राथमिकता दी जाती है, वहाँ नैतिक मूल्यों, सहानुभूति और सामाजिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा देखी जाती है। इस संदर्भ में प्रेमचंद का साहित्य मूल्य-आधारित शिक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है।

- मूल्य-आधारित शिक्षा की आवश्यकता- वर्तमान समय में समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार, हिंसा, स्वार्थपरता और सामाजिक असंतुलन जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। प्रेमचंद का कथा साहित्य यह सिखाता है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति के भीतर नैतिकता, ईमानदारी और सामाजिक चेतना का विकास करना है। यदि शिक्षा प्रणाली में उनके विचारों को शामिल किया जाए, तो विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों का विकास संभव है।
- सामाजिक चेतना और संवेदनशीलता का विकास- आज का समाज तेजी से आधुनिक और तकनीकी हो रहा है, लेकिन इसके साथ ही मानवीय संवेदनाओं में कमी भी देखी जा रही है। प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण विद्यार्थियों को समाज की वास्तविकताओं से परिचित कराता है। गोदान और निर्मला जैसी रचनाएँ यह समझने में मदद करती हैं कि सामाजिक असमानताएँ और कुरीतियाँ किस प्रकार व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार उनका साहित्य विद्यार्थियों में सामाजिक संवेदनशीलता और उत्तरदायित्व की भावना विकसित करता है।
- शिक्षा का मानवीय दृष्टिकोण- प्रेमचंद शिक्षा को मानवीय मूल्यों से जोड़ते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि व्यक्ति को एक अच्छा और संवेदनशील इंसान बनाना है। आज की शिक्षा प्रणाली में यह मानवीय दृष्टिकोण कहीं न कहीं कमजोर पड़ता जा रहा है। इस संदर्भ में प्रेमचंद के विचार शिक्षा को संतुलित और समग्र बनाने में सहायक हो सकते हैं।
- नैतिक द्वंद्व और निर्णय क्षमता का विकास- प्रेमचंद के पात्र अक्सर नैतिक द्वंद्व की स्थितियों का सामना करते हैं, जहाँ उन्हें सही और गलत के बीच चयन करना होता है। यह विशेषता विद्यार्थियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उन्हें जटिल परिस्थितियों में सही निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। आज के समय में, जब व्यक्ति अनेक सामाजिक और नैतिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, यह क्षमता अत्यंत आवश्यक हो जाती है।
- समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना- प्रेमचंद का साहित्य एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ समानता, न्याय और मानवता का वर्चस्व हो। आज के वैश्वीकरण के युग में, जहाँ आर्थिक और सामाजिक असमानताएँ बढ़ रही हैं, उनके विचार एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मुंशी प्रेमचंद का कथा साहित्य भारतीय समाज का केवल यथार्थ चित्रण नहीं करता, बल्कि वह एक सशक्त शैक्षिक और नैतिक दस्तावेज के रूप में भी स्थापित होता है। उनके साहित्य में निहित शैक्षिक मूल्य और नैतिक आदर्श व्यक्ति तथा समाज दोनों के समग्र विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना है। उन्होंने शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाते हुए उसे नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदनाओं से जोड़ा। उनके पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सच्ची शिक्षा वही है जो व्यक्ति को सत्य, न्याय, सहानुभूति और कर्तव्यपरायणता के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे। इस अध्ययन में यह भी प्रतिपादित हुआ है कि प्रेमचंद के साहित्य में प्रस्तुत शैक्षिक मूल्य जैसे चरित्र निर्माण, सामाजिक समानता, श्रम का सम्मान और मानवीय संवेदनाएँ आज के समय में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। इसी प्रकार उनके नैतिक आदर्श जैसे सत्य, न्याय, त्याग, मानवता और सामाजिक उत्तरदायित्व व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आवश्यक तत्व हैं। वर्तमान युग में, जब शिक्षा का स्वरूप अधिकतर व्यावसायिक और प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है, तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास देखा जा रहा है, प्रेमचंद का साहित्य एक मार्गदर्शक के रूप में सामने आता है। उनका साहित्य यह सिखाता है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल आर्थिक उन्नति नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना है जो समाज के प्रति संवेदनशील, जिम्मेदार और नैतिक रूप से सजग हो। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मुंशी प्रेमचंद का कथा साहित्य आधुनिक शिक्षा प्रणाली के लिए अत्यंत उपयोगी और प्रासंगिक है। यदि उनके विचारों को शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रभावी रूप से समाहित किया जाए, तो यह न केवल विद्यार्थियों के नैतिक विकास में सहायक होगा, बल्कि एक अधिक न्यायपूर्ण, संवेदनशील और संतुलित समाज के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। अंततः, प्रेमचंद का साहित्य यह संदेश देता है कि सच्ची शिक्षा वही है जो मनुष्य को 'मानव' बनाती है जो उसे अपने कर्तव्यों का बोध कराती है, दूसरों के प्रति संवेदनशील बनाती है और समाज के कल्याण के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ सूची

- मुंशी प्रेमचंद (2005). गोदान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- मुंशी प्रेमचंद (2008). निर्मला. नई दिल्ली: राजपाल एंड संस।
- मुंशी प्रेमचंद (2010). मानसरोवर (कहानी संग्रह). नई दिल्ली: सरस्वती प्रेस।
- शर्मा, राम (2015). हिंदी साहित्य में मूल्य शिक्षा. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन।
- सिंह, अशोक (2018). प्रेमचंद का शैक्षिक दर्शन. अंतरराष्ट्रीय शिक्षा पत्रिका, 6(2), 34-40।
- कुमार, प्रमोद (2017). हिंदी कथा साहित्य में नैतिक मूल्य. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- वर्मा, संजय (2019). प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक यथार्थ. साहित्य अध्ययन, 8(1), 22-30।
- मिश्रा, कृष्ण (2016). हिंदी साहित्य में सामाजिक चेतना. वाराणसी: विष्वविद्यालय प्रकाशन।
- यादव, राम (2020). प्रेमचंद और समाज. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन।
- गुप्ता, मनीष (2014). भारत में मूल्य आधारित शिक्षा. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन।

भारतीय ज्ञान परंपरा और व्यवसायिक शिक्षा

स्वीटी कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, तिलकामाई भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध सार:- प्राचीन काल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास काफी मजबूत और गौरवशाली रही है। शिक्षा के क्षेत्र में भारत विश्व में अग्रणी रहा है। विश्व में सर्वप्रथम विश्वविद्यालय शिक्षा की नींव भारत में रखी गई। उस समय के प्राचीन विश्वविद्यालय तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी, वल्लभी, जगदल, उज्जैनी आदि ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालय थे, विदेशों से छात्र पढ़ने के लिए आते थे। प्राचीन भारत की वैदिक शिक्षा प्रणाली या गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास होता था। व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं, यथा-शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक का संतुलित विकास के साथ-साथ आत्मनिर्भर या जीवनोपार्जन शिक्षा व व्यवसायिक शिक्षा दी जाती थी, ताकि आश्रमजीवन से लौटने के बाद गृहस्थजीवन में कोई कठिनाई नहीं हो। मध्यकालीन भारत में ऐसी ही जीवनोपार्जन शिक्षा या व्यवसायोपयोगी शिक्षा जारी रहा, लेकिन ब्रिटिश काल में प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा या परंपरागत शिक्षा प्रणाली को बदलते हुए औपनिवेशिक व अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली लागू किया, जो भारत को गरीब और बेरोजगारी की ओर ले जाने वाली शिक्षा नीति थी। गाँधीजी इस अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था से नाखुश होकर वर्धा शिक्षा सम्मेलन में व्यवसायिक तालिम शिक्षा का वकालत किए। अजादी के बाद विभिन्न शिक्षा नीतियों के द्वारा व्यवसायोपयोगी शिक्षा को महत्व दिया। खासकर नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में कौशल व व्यवसायोपयोगी शिक्षा को विशेष महत्व दिया।

मुख्य शब्द:- ज्ञान परंपरा, तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वर्धा शिक्षा योजना, व्यवसायिक शिक्षा।

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास काफी पुराना है। अगर यह कहा जाय कि विश्व के अन्य भू-भागों के निवासी जब असभ्य तथा जंगली जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब भारत वर्ष में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का जन्म हो रहा था, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास और किसी भी देश के सभ्यता-संस्कृतिक उत्थान के लिए जरूरी शिक्षा समझी जाती है, तो यह अतिशक्ति नहीं होगी। प्राचीन भारत में हमारे दूर-दृष्टा रखने वाले ऋषि-मुनि ने भारतीय सभ्यता-संस्कृति के आरंभिक दिनों में ही समझ लिया कि मनुष्य के भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान एवं समाज के विभिन्न-उत्तरदायित्वों के निर्वाह में शिक्षा का विशेष महत्व है। इसी महत्ता को ध्यान में रखते हुए वैदिक काल में एक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ, जिसे वैदिक शिक्षा प्रणाली या गुरुकुल शिक्षा प्रणाली या आश्रम शिक्षा प्रणाली कही जाती है। इस शिक्षा प्रणाली में लौकिक और अध्यात्मिक शिक्षा के साथ-साथ वैज्ञानिक शिक्षा दी जाती थी, जिसमें वेद, पुराण, अरण्यक के साथ-साथ ज्योतिष, गणित, धातु विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी।¹ साथ ही व्यवसायोपयोगी शिक्षा भी दी जाती थी जो आश्रम शिक्षा के बाद गृहस्थ जीवन में उपयोगी थी। यानि वैदिक काल में शिक्षा, विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास या व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं यथा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक का संतुलित विकास के साथ-साथ आत्मनिर्भर या जीवनोपार्जन शिक्षा का विकास हुआ था।²

बौद्धकाल में वैदिक शिक्षा प्रणाली से एक अलग शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ। बौद्ध युग में शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का साधन थी। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक सुख एवं निपुणता को प्रोत्साहन प्रदान करना भी था। केवल संस्कृति अथवा मानसिकता और बौद्धिक शक्तियों को विकसित करने के लिए शिक्षा दी जाती थी। अपितु इसका मुख्य ध्येय विभिन्न उद्योगों, व्यवसायों आदि में लगे लोगों को दक्ष बनाना था। वैदिक काल की भांति इस काल में भी व्यवसायिक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों तथा कृषि, वाणिज्य, कला, कौशल, चिकित्सा विज्ञान इत्यादि के लिए शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध रही। बौद्धकाल में विभिन्न प्रकार हस्तकला, जैसे- बुनाई-कताई, दर्जीगिरी, आदि का प्रशिक्षण प्राप्त करने की अनुमति थी। बौद्धकाल में वास्तु कला की शिक्षा दी जाती थी, तभी तो मूर्तिकला और नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी जैसे विश्वविद्यालयों की भव्य स्थापत्य कला देखने को मिलता है। इस काल में कार्य विभाजन के द्वारा विभिन्न शिल्पी और व्यवसायों में लोग निपुणता प्राप्त करने लगे, जिससे सामाजिक प्रगति को बल मिला।⁴

कुल मिलाकर प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्यवसायिक जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाती थी, ताकि आश्रम शिक्षा के बाद गृहस्थ जीवन में आत्मनिर्भर बनने में कोई कठिनाई नहीं हो, लेकिन ब्रिटिश शासनकाल में यह आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा को खत्म कर मैकाले की शिक्षा नीति को लागू किया गया।⁵ लेकिन अंग्रेजी शिक्षा का दुष्परिणाम ऐसा हुआ कि पढ़े लिखे लोगों की उतोरत्तर वृद्धि हुई, साथ ही बेरोजगारों की एक लम्बी जमात हो गई। लोग 17 प्रकार रोजगारो उन्मुख शिक्षा या अपने पेशे को भूल गए।⁶ फलस्वरूप समाज दो वर्गों में बँटता चला गया, जिसमें से एक मानसिक कार्य एवं दूसरे श्रम में लगे लोग एक तरह से श्रमसाध्य शिक्षा पद्धति का तिरस्कार करना सिखा दिया। गाँधीजी ने कहा कि मैकाले की शिक्षा सचमुच में गुलामी की बुनियादी मानते थे।⁷ गाँधीजी इस अंग्रेजी शिक्षा को भारत के लिए दोषपूर्ण मानते थे। उन्होंने अनुभव किया कि अंग्रेजी शिक्षा के कारण ही भारत की बुरी दशा हुई है। गाँधीजी ने भारत के लिए 'बुनियादी शिक्षा' की बात कहे, जो 'तालिम शिक्षा' थी, जिसका उद्देश्य यह था कि उद्योगों के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने पर विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना।⁸ गाँधीजी के इस उद्योगपरक शिक्षा को 'बेसिक शिक्षा' या 'वर्धा शिक्षा योजना' भी कहते हैं, जिनमें कम से कम एक उद्योगपरक शिक्षा की बात करते थे। उनका मानना था कि उससे न सिर्फ बेरोजगारी खत्म होगी, बल्कि स्कूल के शिक्षकों के वेतन तथा अन्य मदों पर होने वाले खर्च भी अदा

कर सकेंगे। उन्होंने कहा कि लड़के-लड़कियों को संवोन्मुखी विकास के लिए जहाँ तक हो सके, शिक्षा किसी न किसी ऐसे माध्यम से दी जानी चाहिए, जिससे कुछ धन का उपार्जन भी हो सके।⁹

इस प्रकार गाँधीजी ने 1937 ई० में जिस शिक्षा का मॉडल प्रस्तुत किया, वह दसवीं तक अंग्रेजी मुक्त कुटीर उद्योग आधारित थी, लेकिन गाँधीजी के इस शिक्षा मॉडल को अंग्रेजों ने लागू करने का कोई प्रयास नहीं किया। आजादी के बाद भी कमोवेश अंग्रेजी शिक्षा व औपनिवेशिक शिक्षा किसी न किसी रूप में जारी रहा। अजादी के बाद द्विवर्षीय व्यावसायिक विद्यालयों पर पाठ्यक्रम बनाया गया।¹⁰ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी। मूल पाठ्यक्रम में कृषि, पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, उद्यान विज्ञान, ग्रामों उद्योग आदि विषय थे। यानि कृषि के साथ-साथ काष्ठ उद्योग, सिंचाई, धातु कर्म (उद्योग), कताई-बुनाई आदि विषय थे। 1954 ई. में इस पाठ्यक्रम में थोड़ा परिवर्तन करते हुए सहकारिता, जनस्वास्थ्य, वनरोनण आदि विषय जोड़े गये।¹¹

अगर व्यवसायिक शिक्षा की बात करें, तो पाते हैं कि ऐतिहासिक रूप से 1986 ई. के राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बाद से स्कूलों में व्यवसायिक शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी गई है। 2011 ई. इनके बाद 2014 ई. में शिक्षा नीति लागू करने का उद्देश्य सामान्य शैक्षणिक शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा को एकीकृत करना युवाओं को रोजगार क्षमता में वृद्धि करना, शिक्षित एवं बेरोजगारों के बीच की खाई को पाटना और अकादमिक उच्च शिक्षा पर दबाव को कम करना था। वर्तमान में, इस योजना को केन्द्र प्रायोजित योजना 'समग्र शिक्षा' के हिस्से के रूप में कार्यान्वित किया जा रहा है और इसे राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क (एन.एस.क्यू.एफ.) के साथ जोड़ा गया है।¹² समग्र शिक्षा के अंतर्गत 14,435 विद्यालयों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की स्वीकृति प्रदान की गई है। व्यावसायिक शिक्षा का कार्यान्वयन पिछले छह वर्षों में लगभग 10 गुना बढ़ा है। देशभर में व्यावसायिक शिक्षा देने वाले स्कूलों की संख्या 2014-15 में केवल 960 थी, जो 2021-22 से बढ़कर 11,710 हो गई है।

2020 ई. में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। इस शिक्षा नीति में व्यावसायिक शिक्षा को समग्र शिक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक मानता रहा है, जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में उल्लेख किया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य न केवल संज्ञानात्मक विकास होगा, बल्कि चरित्र निर्माण और 21वीं सदी के प्रमुख कौशल से लैस समग्र और बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्तियों का निर्माण करना होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में एक लक्ष्य निर्धारित किया है कि 2025 तक स्कूल और उच्च शिक्षा प्रणाली के माध्यम से कम से कम 50 प्रतिशत शिक्षार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा दी जाएगी जिससे वे कम से कम एक व्यवसाय सीख सकें तथा अगले दशक में चरणबद्ध तरीके से व्यावसायिक शिक्षा को सभी स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में शामिल करके उन्हें कई और व्यवसायों में शामिल कर सकें। सबसे महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न मॉडलों को भी प्रोत्साहित करती है, ताकि स्थानीय रूप से प्रासंगिक कौशल शिक्षा को बढ़ावा मिले।¹³ यानि विभिन्न-राज्यों में स्थानीय आवश्यकताओं, बुनियादी ढाँचे और साझेदारियों के अनुरूप विविध राजनीतियों के माध्यम से व्यावसायिक शिक्षा को लगातार लागू किया जा है, जैसे राजस्थान में कृषि, स्वास्थ्य सेवा, आई टी, आटोमोटिव आदि योजना को 33 जिले में 1867 स्कूलों में संचालित हो रहे हैं। इसी तरह हिमाचल प्रदेश में व्यवसायिक शिक्षा 416 नये स्कूलों में 16 ट्रेडों में व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू किए हैं।

डिजिटल नवाचार के माध्यम से भी व्यवसायिक शिक्षा को प्राथमिकता दी जा रही है। महिलाओं को कम्प्यूटर चलाने, डिजिटल कौशल, रोजगार कौशल को नई शिक्षा नीति में प्राथमिकता दी गई है।

निष्कर्ष:- कुल मिलाकर व्यवसायिक शिक्षा का महत्व भारत में प्राचीन काल से ही रही है। प्राचीन भारत में श्रम विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार किया गया था। विभिन्न वर्णों के लोग अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करके अपने-अपने कर्मों में निपुणता प्राप्त करते थे लेकिन ब्रिटिश काल में सोची-समझी नीति के तहत व्यवसायिक शिक्षा को खत्म कर दिया। लेकिन नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में पुनः इसे महत्व दिया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. रामबाबू गुप्त, भारतीय शिक्षा का इतिहास, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, पृ.11
2. पूर्वोक्त, पृ. 18
3. अनिल कु. सिंह, बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति, कला प्रकाशन, वाराणसी 2008, पृ. 12
4. पूर्वोक्त
5. पूर्वोक्त
6. ओमप्रकाश सिंह यादव (आलेख) बदलते परिपेक्ष्य में शिक्षा पद्धति का वर्तमान स्वरूप, मतादर्श पियर रिव्यू जर्नल, अक्टूबर-दिसम्बर 2022, पृ. 52
7. अमित कुमार शर्मा, हिन्द स्वराज की प्रासंगिकता, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 70
8. हरिजन, 2.11.1947, (संपा.) आर.के. प्रभु, गाँधीजी मेरे सपनों का भारत, सास्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृ. 172-73
9. पूर्वोक्त
10. हरि शंकर प्र. सिन्हा, भारत में कृषि शिक्षा का विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1983, पृ. 159
11. पूर्वोक्त
12. संतोष यादव, युवाओं का कौशल विकास (आलेख), मासिक पत्रिका योजना, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, फरवरी 2022, पृ. 19
13. पूर्वोक्त
14. पूर्वोक्त
15. शैलेन्द्र शर्मा, कौशल आधारित शिक्षा (आलेख), योजना पूर्वोक्त, अक्टूबर, 2025, पृ. 33

“राजस्थानी चित्रकला पर हिंदी के मध्यकालीन कवियों का प्रभाव”

ज्योति सिन्हा

शोधार्थी विश्वविद्यालय हिंदी विभाग ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

प्रोफेसर उमेश कुमार

शोध निर्देशक, (अध्यक्ष विश्वविद्यालय हिंदी विभाग ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा)

शोध-सारांश

राजस्थानी चित्रकला भारतीय सांस्कृतिक चेतना की एक ऐसी दृश्य परम्परा है, जिसमें धर्म, साहित्य, संगीत और लोकजीवन का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। मध्यकालीन हिंदी काव्यधारा, विशेषतः कृष्णभक्ति काव्य, ने राजस्थानी चित्रकला को विषयवस्तु, भावभूमि और प्रतीकात्मक संरचना प्रदान की। सूरदास, मीराबाई, रसखान, नंददास तथा बिहारी जैसे कवियों के काव्य में व्यक्त रास, विरह, वात्सल्य, माधुर्य और श्रृंगार के भाव राजस्थानी चित्रों में दृश्य रूप में अभिव्यक्त हुए।

मेवाड़, बूंदी, किशनगढ़ तथा नाथद्वारा शैलियों में राधा-कृष्ण, रासलीला, गोपी-विरह, बारहमासा और नायिका-भेद जैसे प्रसंग सीधे मध्यकालीन काव्यधारा से प्रभावित दिखाई देते हैं। चित्रकारों ने काव्यगत अनुभूतियों को रंग, रेखा, प्रकृति और मुद्राओं के माध्यम से रूपायित किया। इस प्रकार हिंदी का मध्यकालीन काव्य राजस्थानी चित्रकला की भाव-संरचना और सौन्दर्य-दृष्टि का प्रमुख प्रेरणास्रोत सिद्ध हुआ।

शब्द-कुंजी: राजस्थानी चित्रकला, मध्यकालीन हिंदी काव्य, कृष्णभक्ति, राधा-कृष्ण, नायिका-भेद, राजपूत लघुचित्र, भक्ति-संवेदना।

परिचय

भारतीय कला परम्परा में साहित्य और चित्रकला का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ रहा है। मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से हिंदी काव्यधारा में कृष्णभक्ति साहित्य का व्यापक विकास हुआ। सूरदास, मीराबाई, रसखान, नंददास और बिहारी जैसे कवियों ने कृष्ण के बालरूप, रासलीला, विरह, माधुर्य तथा श्रृंगार को अत्यन्त भावपूर्ण रूप में अभिव्यक्त किया। यही भावभूमि आगे चलकर राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख प्रेरणा बनी।

16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य विकसित राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों-मेवाड़, बूंदी, किशनगढ़, जयपुर और नाथद्वारा-में कृष्णकाव्य के प्रसंगों का व्यापक चित्रांकन मिलता है। रासलीला, गोपी-विरह, माखन-चोरी, बारहमासा, राधा-कृष्ण मिलन तथा नायिका-भेद जैसे विषय सीधे मध्यकालीन हिंदी काव्य से ग्रहण किए गए। चित्रकारों ने काव्य में व्यक्त भावों को रंग, रेखा, प्रकृति और प्रतीकों के माध्यम से दृश्य रूप प्रदान किया।

सूरदास के वात्सल्य भाव, मीराबाई की भक्ति, रसखान का ब्रज-प्रेम और बिहारी की श्रृंगारिक दृष्टि राजस्थानी चित्रों की भाव-संरचना में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। विशेषतः किशनगढ़ शैली में राधा-कृष्ण का आध्यात्मिक श्रृंगार तथा बूंदी शैली में विरह और प्रकृति का सामंजस्य मध्यकालीन काव्य-प्रभाव का सशक्त उदाहरण है।

अतः राजस्थानी चित्रकला और हिंदी का मध्यकालीन काव्य परस्पर पूरक कलात्मक धाराएँ हैं, जहाँ काव्य ने चित्रकला को भाव और कथ्य प्रदान किया तथा चित्रकला ने उन भावों को दृश्यात्मक अभिव्यक्ति दी।

1. राजस्थानी चित्रकला : स्वरूप, विकास और कलागत विशेषताएँ

राजस्थानी चित्रकला भारतीय लघुचित्र परम्परा की महत्वपूर्ण धारा है, जिसका विकास मुख्यतः 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य विभिन्न राजपूत राज्यों में हुआ। इसकी प्रारम्भिक पृष्ठभूमि पश्चिमी भारतीय अपभ्रंश और जैन पाण्डुलिपि-चित्रण परम्परा से जुड़ी हुई थी, किन्तु मध्यकालीन हिंदी काव्यधारा, विशेषतः कृष्णभक्ति साहित्य, ने इसे व्यापक भावभूमि और विषयवस्तु प्रदान की।

राजस्थानी चित्रकला का विकास ऐसे समय में हुआ जब हिंदी साहित्य में कृष्णभक्ति काव्य अपने उत्कर्ष पर था। परिणामस्वरूप रासलीला, गोपी-विरह, माखन-चोरी, बारहमासा, राधा-कृष्ण मिलन तथा नायिका-भेद जैसे प्रसंग चित्रकला के प्रमुख विषय बने। चित्रकारों ने सूरदास, नंददास, रसखान, बिहारी और

केशवदास के काव्य में व्यक्त भावों को रंग, रेखा और प्रकृति-प्रतीकों के माध्यम से दृश्य रूप प्रदान किया।

मेवाड़ शैली में 'भागवत पुराण' और 'सूरसागर' से प्रभावित कृष्ण-लीला प्रसंगों का व्यापक चित्रण मिलता है। बूंदी शैली में वर्षा, विरह और प्रकृति-संवेदना का अंकन मध्यकालीन काव्य की भावभूमि से सम्बद्ध दिखाई देता है। किशनगढ़ शैली में राधा-कृष्ण का आध्यात्मिक श्रृंगार रीतिकालीन काव्य-प्रभाव का उत्कृष्ट उदाहरण है। राजा सावन्त सिंह 'नागरीदास' के संरक्षण में चित्रकार निहालचंद ने राधा-कृष्ण को अत्यन्त काव्यमय रूप में चित्रित किया। 'बानी-ठनी' का चित्र बिहारी के श्रृंगारिक सौन्दर्यबोध का दृश्य रूप प्रतीत होता है।

राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख विशेषता उसकी भावप्रधानता है। इसमें प्रकृति के प्रतीकों-खमोर, मेघ, यमुना, कमल और कुंजखरके माध्यम से प्रेम, विरह, भक्ति और मिलन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया गया। विरह प्रसंगों में वर्षा, अंधकार और एकाकी नायिका का चित्रण मिलता है, जबकि संयोग के चित्रों में वसन्त, उद्यान और चन्द्रप्रकाश का प्रयोग दिखाई देता है। इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला का सौन्दर्यबोध मध्यकालीन हिंदी काव्य की भाव-संरचना से गहरे रूप में प्रभावित रहा।

डॉ. मोतीचन्द्र के अनुसार, "राजपूत चित्रकला भारतीय मन की भावुकता और अध्यात्म का रंगमय इतिहास है।" यह कथन राजस्थानी चित्रकला और मध्यकालीन हिंदी काव्य के अन्तर्सम्बन्ध को स्पष्ट करता है।

2. मध्यकालीन हिंदी काव्यधारा और कृष्णभक्ति की सांस्कृतिक चेतना

मध्यकालीन हिंदी काव्यधारा में कृष्णभक्ति साहित्य का विशेष महत्त्व है। सूरदास, मीराबाई, रसखान, नंददास, बिहारी तथा केशवदास जैसे कवियों ने कृष्ण के बालरूप, रासलीला, गोपी-विरह, माधुर्य, श्रृंगार और आध्यात्मिक प्रेम को अत्यन्त भावपूर्ण रूप में अभिव्यक्त किया। यही भावभूमि आगे चलकर राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख प्रेरणा बनी।

सूरदास के 'सूरसागर' में वर्णित बालकृष्ण की चपलता, यशोदा का वात्सल्य तथा गोपियों का प्रेम राजस्थानी चित्रों में व्यापक रूप से चित्रित हुआ। मेवाड़ और नाथद्वारा शैली में बाललीला, माखन-चोरी, गोचारण और रासलीला के प्रसंगों पर सूरकाव्य का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

मीराबाई के काव्य में कृष्ण व्यक्तिगत आराध्य और आध्यात्मिक प्रियतम के रूप में उपस्थित हैं। उनके पदों में व्यक्त भक्ति, विरह और आत्मसमर्पण की अनुभूति किशनगढ़ तथा नाथद्वारा शैली के चित्रों में सूक्ष्म रंग-संयोजन और भावप्रधान मुद्राओं के माध्यम से रूपायित हुई।

रसखान ने कृष्ण को ब्रज के लोकजीवन से जोड़कर चित्रित किया। उनके काव्य में गोचारण, यमुना तट, वृन्दावन और ग्वालबालों का सहज चित्रण मिलता है। यही लोकानुराग राजस्थानी चित्रों में ग्रामीण परिवेश और कृष्ण-लीला प्रसंगों के रूप में दिखाई देता है।

रीतिकालीन कवियों, विशेषतः बिहारी और केशवदास, ने श्रृंगार, नायिका-भेद और दृष्टि-संवाद को अत्यन्त कलात्मक रूप प्रदान किया। किशनगढ़ शैली में राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक श्रृंगार, अर्धनिमीलित नेत्रों तथा भावपूर्ण मुद्राओं में इस काव्य-प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।



चित्र 1: राधा-कृष्ण रासलीला, किशनगढ़ शैली - स्रोत: National Museum, New Delhi

मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्यधारा के माधुर्य, वात्सल्य, विरह और श्रृंगार जैसे भाव राजस्थानी चित्रकला की मूल भावभूमि बने। चित्रकारों ने काव्य में व्यक्त अनुभूतियों को रंग, प्रकृति-प्रतीकों और दृश्य संरचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इस प्रकार हिंदी का मध्यकालीन कृष्णकाव्य राजस्थानी चित्रकला की भाव-संरचना और सौन्दर्य-दृष्टि का प्रमुख स्रोत सिद्ध हुआ।

3. राजस्थानी चित्रकला पर कृष्णकाव्य का प्रभाव

राजस्थानी चित्रकला पर मध्यकालीन कृष्णकाव्य का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। हिंदी के कृष्णभक्त और रीतिकालीन कवियों ने जिन भावों, प्रसंगों और प्रतीकों को शब्दों में व्यक्त किया, राजस्थानी चित्रकारों ने उन्हें दृश्य रूप प्रदान किया। फलतः रासलीला, गोपी-विरह, माखन-चोरी, बारहमासा, नायिका-भेद तथा राधा-कृष्ण मिलन जैसे प्रसंग राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख विषयवस्तु बन गए।

मेवाड़ शैली में 'भागवत पुराण' और सूरदास के 'सूरसागर' से प्रभावित कृष्ण-लीला चित्रों का व्यापक अंकन मिलता है। बालकृष्ण की माखन-चोरी, उखल-बन्धन, कालिय-दमन तथा गोचारण जैसे प्रसंगों में सूरदास के वात्सल्य भाव का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। "जसोदा हरि पालने झुलावै।" (-सूरदास) इस प्रकार के काव्य-प्रसंगों को चित्रकारों ने मातृ-स्नेह, बालकृष्ण की चंचल मुद्रा और घरेलू परिवेश के माध्यम से दृश्य रूप प्रदान किया।

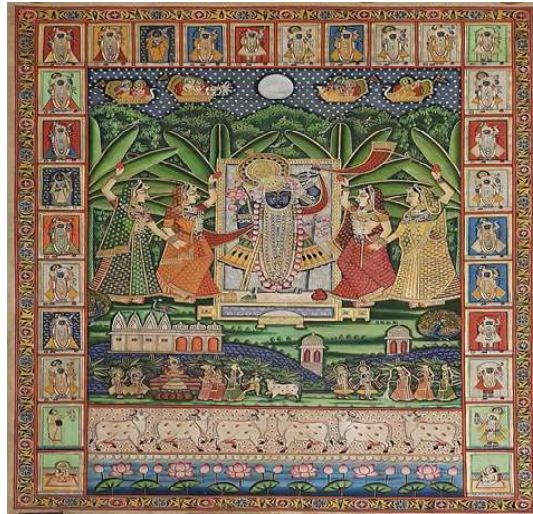
जयदेव के 'गीतगोविन्द', नंददास और रसखान की काव्यधारा ने रासलीला चित्रण को विशेष रूप से प्रभावित किया। वृन्दावन, यमुना तट, चन्द्रप्रकाश, कुंज और वृत्ताकार नृत्य-संरचना वाले रासचित्रों में कृष्णभक्ति और माधुर्य का समन्वय दिखाई देता है।

बूंदी और कोटा शैली में विरह और प्रकृति-संवेदना का प्रभाव प्रमुख है। वर्षा, मेघ, बिजली, एकाकी नायिका और रिक्त वातावरण के माध्यम से विरह की अनुभूति को चित्रित किया गया। यह भावभूमि कृष्णकाव्य की विरह-परम्परा से सम्बद्ध है।

किशनगढ़ शैली में रीतिकालीन काव्य का प्रभाव सर्वाधिक स्पष्ट दिखाई देता है। राजा सावन्त सिंह 'नागरीदास' तथा चित्रकार निहालचंद ने राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक श्रृंगार को अत्यन्त काव्यमय रूप में चित्रित किया। 'बानी-ठनी' का चित्र बिहारी और केशवदास की श्रृंगारिक सौन्दर्य-दृष्टि का दृश्य रूप प्रतीत होता है।

'रसिकप्रिया' और 'बिहारी सतसई' से प्रभावित नायिका-भेद चित्रमालाओं में मानिनी, अभिसारिका, विरहिणी तथा प्रतीक्षारत नायिका के चित्र व्यापक रूप से निर्मित हुए। चित्रकारों ने काव्यगत भावों को प्रकृति और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। मोर, मेघ, कमल, यमुना और वंशी जैसे प्रतीक प्रेम, विरह, सौन्दर्य और भक्ति के सूचक बन गए।

नाथद्वारा की पिछवाई चित्रकला कृष्णभक्ति और दृश्य कला के समन्वय का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। श्रीनाथजी के उत्सवों, रास, झूलन और अन्नकूट से सम्बन्धित चित्रों में भक्ति और अनुष्ठानिक परम्परा का दृश्य रूप दिखाई देता है।



चित्र 2 : नाथद्वारा पिछवाई चित्र, श्रीनाथजी उत्सव दृश्य - स्रोत: Nathdwara Temple Art Archive

पिछवाई चित्रकला में कृष्णभक्ति, उत्सव और दृश्य-संवेदना का समन्वित रूप अभिव्यक्त होता है। नाथद्वारा की पिछवाई चित्रकला कृष्णभक्ति और चित्रकला के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है।

4. राधा-कृष्ण एवं नायिका-भेद का चित्रांकन

राजस्थानी चित्रकला में राधा-कृष्ण तथा नायिका-भेद का चित्रांकन मुख्यतः मध्यकालीन कृष्णभक्ति और रीतिकालीन काव्यधारा से प्रभावित है। हिंदी के कवियों ने प्रेम, विरह, मान, अभिसार और माधुर्य के जिन भावों को शब्दों में व्यक्त किया, चित्रकारों ने उन्हें दृश्य रूप प्रदान किया। विशेषतः बिहारी और केशवदास के काव्य ने राजस्थानी चित्रकला की भाव-संरचना को गहराई से प्रभावित किया।

केशवदास की 'रसिकप्रिया' में वर्णित नायिका-भेद राजस्थानी चित्रकारों के लिए प्रमुख आधार बना। अभिसारिका, मानिनी, विरहिणी तथा स्वाधीनभर्तृका नायिकाओं के चित्र विभिन्न राजस्थानी शैलियों में व्यापक रूप से निर्मित हुए। चित्रकारों ने नायिका की मनोस्थितियों को प्रकृति, रंग और मुद्राओं के माध्यम से व्यक्त किया। विरहिणी नायिका के साथ वर्षा, अंधकार और रिक्त वातावरण का प्रयोग मिलता है, जबकि संयोग के प्रसंगों में उद्यान, चन्द्रप्रकाश और पुष्प-वाटिका का चित्रण दिखाई देता है।

बिहारी की 'सतसई' में दृष्टि-संवाद, संकेत और श्रृंगारिक अनुभूतियों का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण मिलता है। किशनगढ़ शैली में राधा-कृष्ण के अर्धनिमीलित नेत्र, कोमल रंग और भावपूर्ण मुद्राएँ इसी काव्य-संवेदना का दृश्य रूप प्रतीत होती हैं।

“कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैन हों सों बात॥” - बिहारी

इस प्रकार बिहारी के काव्य में वर्णित दृष्टि-प्रधान शृंगार किशनगढ़ चित्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।



चित्र 3.4: 'बानी-ठनी', चित्रकार - निहालचंद, किशनगढ़ शैली - स्रोत: City Palace Museum, Jaipur

बानी-ठनी' रीतिकालीन शृंगारिक सौन्दर्य और कृष्णभक्ति-प्रभावित भाव-संवेदना का प्रतिनिधि चित्र है।

किशनगढ़ शैली में राजा सावन्त सिंह 'नागरीदास' तथा चित्रकार निहालचंद ने राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक शृंगार को विशेष रूप से चित्रित किया। 'बानी-ठनी' का चित्र रीतिकालीन काव्य-सौन्दर्य और भावप्रधानता का दृश्य उदाहरण माना जाता है।

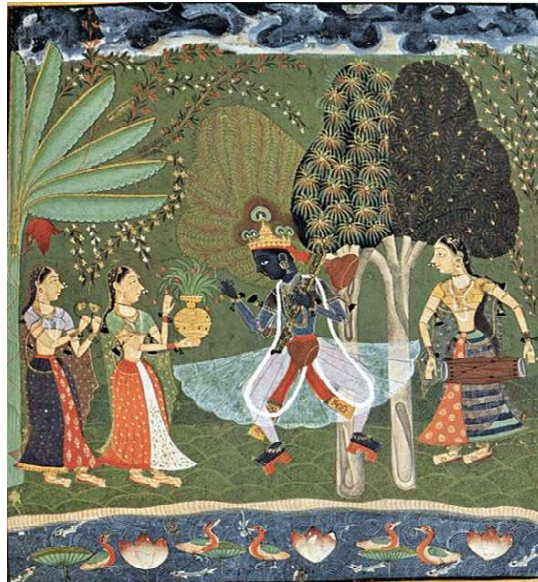
5. प्रकृति, प्रतीक और भाव-संवेदना

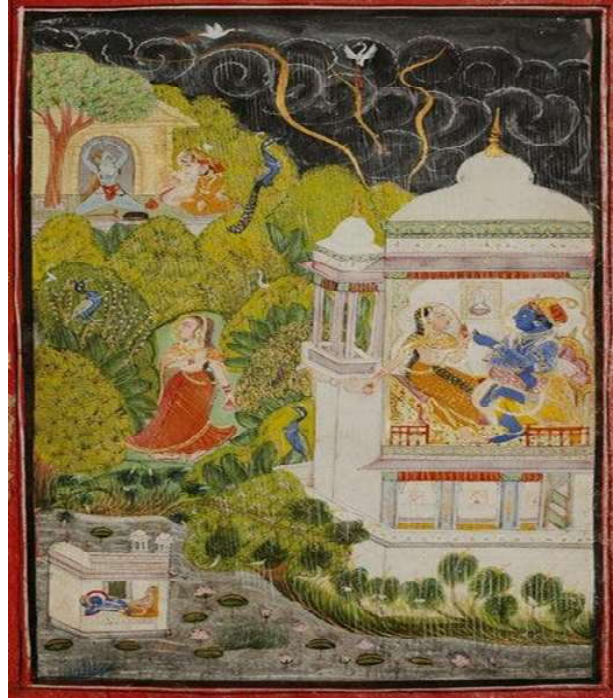
राजस्थानी चित्रकला में प्रकृति और प्रतीकों का प्रयोग मध्यकालीन हिंदी काव्यधारा से गहरे रूप में प्रभावित है। कृष्णभक्ति और रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति के विभिन्न उपादानों को भाव-अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में प्रयोग किया, जिन्हें राजस्थानी चित्रकारों ने दृश्य रूप प्रदान किया।

मध्यकालीन कृष्णकाव्य में मेघ, यमुना, कमल, मोर, वन और ऋतुओं का प्रयोग प्रेम, विरह, भक्ति और मिलन के प्रतीकों के रूप में हुआ है। राजस्थानी चित्रकला में भी यही प्रतीक भाव-संरचना के प्रमुख आधार बने। उदाहरणतः मेघ और वर्षा विरह की अनुभूति को, जबकि वसन्त और पुष्प-वाटिका संयोग और माधुर्य को व्यक्त करते हैं।

बूंदी और कोटा शैली के चित्रों में वर्षा, वनप्रदेश, मेघ और जलधाराओं का चित्रण विरह-संवेदना से सम्बद्ध दिखाई देता है। इसी प्रकार किशनगढ़ शैली में यमुना, कमल और कुंज का प्रयोग राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम के साथ जुड़ता है।

बारहमासा चित्रण मध्यकालीन काव्य और राजस्थानी चित्रकला के अन्तर्सम्बन्ध का महत्वपूर्ण उदाहरण है। हिंदी काव्य में विभिन्न ऋतुओं के माध्यम से नायिका की भाव-अवस्थाओं को व्यक्त किया गया, जिसे चित्रकारों ने दृश्य रूप में अंकित किया। श्रावण में विरह, वसन्त में मिलन तथा फाल्गुन में उत्सव और प्रेम का वातावरण चित्रों में स्पष्ट दिखाई देता है।





चित्र 5,6 : बारहमासा चित्रण, बूंदी शैली - स्रोत : Rajasthan Lalit Kala Akademi

बारहमासा चित्रों में ऋतु और भाव-अवस्थाओं का काव्य-प्रभावित चित्रण दिखाई देता है।

रागमाला चित्रमालाओं पर भी मध्यकालीन काव्य और संगीत-परम्परा का प्रभाव दिखाई देता है। विभिन्न रागों को विशेष ऋतु, समय और भाव के साथ चित्रित किया गया। मेघ राग में वर्षा और विरह, जबकि बसन्त राग में प्रेम और उल्लास का चित्रण मिलता है। इस प्रकार मध्यकालीन हिंदी कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रकृति-प्रतीक राजस्थानी चित्रकला की भाव-संरचना और दृश्य-अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण आधार बने

6. साहित्य और चित्रकला का अन्तर्सम्बन्ध : एक सांस्कृतिक विश्लेषण

राजस्थानी चित्रकला और हिंदी के मध्यकालीन काव्य के मध्य गहरा अन्तर्सम्बन्ध दिखाई देता है। मध्यकालीन कवियों ने कृष्णभक्ति, रास, विरह, माधुर्य, नायिका-भेद और प्रकृति-प्रतीकों के माध्यम से जिस भावभूमि का निर्माण किया, राजस्थानी चित्रकारों ने उसी को दृश्य रूप प्रदान किया।

सूरदास के वात्सल्य भाव, मीराबाई की भक्ति, रसखान का ब्रज-जीवन और बिहारी-केशवदास की श्रृंगारिक दृष्टि का प्रभाव मेवाड़, बूंदी, किशनगढ़ और नाथद्वारा शैली के चित्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। रासलीला, गोपी-विरह, बारहमासा, रागमाला तथा नायिका-भेद जैसे चित्र-विषय सीधे मध्यकालीन हिंदी काव्य से प्रभावित हैं।

राजस्थानी चित्रकारों ने काव्य के भावों को रंग, प्रकृति और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। मेघ, मोर, यमुना, कमल और ऋतु-चित्रण काव्यगत अनुभूतियों के दृश्य संकेत बन गए। इस प्रकार चित्रकला ने मध्यकालीन काव्य की भाव-संरचना को स्थायित्व प्रदान किया।

रागमाला और बारहमासा चित्रमालाएँ साहित्य, संगीत और चित्रकला के समन्वित स्वरूप का महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। इसी प्रकार किशनगढ़ शैली में रीतिकालीन श्रृंगार तथा नाथद्वारा शैली में कृष्णभक्ति की दृश्य अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

डॉ. कपिला वात्स्यायन के अनुसार, “भारतीय कला की सभी विधाएँ एक ही सांस्कृतिक संवेदना की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं।” राजस्थानी चित्रकला और मध्यकालीन हिंदी काव्य इस कथन को सार्थक सिद्ध करते हैं।

उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजस्थानी चित्रकला पर हिंदी के मध्यकालीन कवियों का व्यापक प्रभाव रहा है। कृष्णभक्ति और रीतिकालीन काव्यधारा ने राजस्थानी चित्रकला को विषयवस्तु, भाव-संरचना, प्रतीक और सौन्दर्य-दृष्टि प्रदान की।

सूरदास, मीराबाई, रसखान, बिहारी और केशवदास जैसे कवियों के काव्य में व्यक्त रास, विरह, वात्सल्य, माधुर्य और नायिका-भेद के प्रसंग राजस्थानी चित्रों में व्यापक रूप से रूपायित हुए। मेवाड़, बूंदी, किशनगढ़ और नाथद्वारा शैलियों में इस प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

राजस्थानी चित्रकारों ने मध्यकालीन काव्य के भावों को रंग, रेखा, प्रकृति और प्रतीकों के माध्यम से दृश्य रूप प्रदान किया। परिणामस्वरूप साहित्य और चित्रकला के मध्य एक ऐसी समन्वित परम्परा विकसित हुई, जिसने भारतीय सांस्कृतिक चेतना को समृद्ध किया।

अतः राजस्थानी चित्रकला और हिंदी का मध्यकालीन काव्य भारतीय कला-परम्परा की परस्पर पूरक और सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण धरोहर हैं।

संदर्भ-सूची

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण. भारतीय कला. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ।
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. वात्स्यायन, कपिला. भारतीय कला के आयाम. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी।
4. गैरोला, वाचस्पति. भारतीय चित्रकला. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
5. मोतीचन्द्र. राजपूत पेंटिंग. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
6. शर्मा, कृष्णदेव. राजस्थानी चित्रकला का इतिहास. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
7. गोस्वामी, बी. एन. मेरदबम वि पदकपंद तज. छमू कमसीप: छंजपवदंस डनेमनउ.
8. Brown, Percy. Indian Painting. London: Oxford University Press.
9. Archer, W. G. Indian Miniatures. London: Victoria and Albert Museum.
10. सूरदास. सूरसागर. गोरखपुर: गीता प्रेस।
11. बिहारी. बिहारी सतसई. प्रयागराज: हिंदी साहित्य सम्मेलन।
12. केशवदास. रसिकप्रिया. वाराणसी: चौखम्बा प्रकाशन।
13. जयदेव. गीतगोविन्द. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी।
14. रसखान. रसखान रचनावली. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन।
15. मीराबाई. मीरा पदावली. गोरखपुर: गीता प्रेस।
16. National Museum, New Delhi. Catalogue of Rajput Paintings.
17. Rajasthan Lalit Kala Akademi. Rajasthani Painting Traditions. Jaipur.

गाय के बारे में महात्मा गांधी के विचार

प्रो० विवेकानंद तिवारी

अध्यक्ष, आम्बेडकर पीठ, एचपीयू, शिमला

शोध सारांश

गाय निस्वार्थ सेवा, शक्ति, गरिमा और अहिंसा जैसे हिंदू मूल्यों का प्रतीक है। सुंदर आध्यात्मिक प्रतीकवाद और गहन सार्वभौमिक महत्व है। गाय को हमारे समस्त शास्त्रों एवं पुराणों में माता की संज्ञा दी गई है, गाय पर मानव जाति एवं अन्य जीवों के जीवन का श्रेय आश्रित है, क्योंकि गाय सभी प्रकार के परम कल्याण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सम्पादिका है, पुराणों में वर्णन आता है कि गाय इन चारों पुरुषार्थों की दाता है, गाय की सेवा से धर्म का पालन और गाय पालन से अर्थ का संचय और काम का संपादन हो जाता है, तथा गाय की अनन्य सेवा और आश्रय से मोक्ष की प्राप्ति भी संभव है। यही नहीं, गाय समस्त उत्कृष्ट अन्नो के उत्पादन की मूलभूत शक्ति है, तथा देवताओं के भक्ष्यभूत हविष्यान आदि की भी सर्वोत्कृष्ट मूल उत्पादिका शक्ति है। गाय के पैरों में लगी हुयी मिट्टी का तिलक जो भी मनुष्य अपने मस्तक पर लगाता है, वो तत्काल तीर्थ जल में स्नान करने का पुण्य फल प्राप्त कर लेता है तथा पग-पग पर उस व्यक्ति की विजय होती है। जहाँ पर गाय का निवास होता है उस भूमि की महत्ता तीर्थ भूमि के समान हो जाती है।

गांधी जी के लिए गाय उनके रचनात्मक कार्यक्रमों के गुणों का प्रतीक थी; और चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश था, इसलिए गाय देश के कल्याण और अर्थव्यवस्था में एक आर्थिक साधन थी। उनके अनुसार, 'गाय मासूमियत के साक्षात् स्वरूप को धारण करके माँ की छवि से परे जाती है'। उन्होंने कहा, "गाय माता अनेक मायनों में उस माता से श्रेष्ठ है जिसने हमें जन्म दिया। हमारी माता हमें कुछ वर्षों तक दूध पिलाती है और फिर बड़े होने पर हमसे सेवा की अपेक्षा करती है। गाय माता हमसे घास और अनाज के सिवा कुछ नहीं चाहती।

मैं भारत में ऐसा स्वराज नहीं चाहता जहाँ गायों की हत्या हो रही हो।

भारत में गाय को माँ कहा जाता है। हिंदू धर्म में गाय को माँ का दर्जा दिया गया है। साथ ही गाय को बेहद पवित्र और पूजनीय माना गया है।

और उसकी पूजा की जाती है। पहली रोटी गौ माता को खिलाई जाती है। यहां तक कि हिंदू पुराणों में धर्म को भी गौ रूप में दर्शाया गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने तो खुद गाय की सेवा की और उनका निवास भी गोलोक में ही माना जाता है। हर मनोकामना को पूरी करने वाली कामधेनु भी गाय ही है। इस तरह गाय को इतना महत्वपूर्ण और पूजनीय माने जाने के पीछे कई कारण हैं।

धरती पर सबसे पहले आई थी गाय

गाय का दूध ही वो चीज होती है जो नवजात बच्चे को पिलाया जा सकता है। इसके अलावा सभी जानवरों में केवल गाय ही ऐसी जानवर है जो माँ शब्द का उच्चारण करती है, इसलिए यह भी माना जाता है कि माँ शब्द की उत्पत्ति भी गौवंश से हुई है।

कई बार नवजात बच्चों को विभिन्न कारणवश माँ का दूध उपलब्ध नहीं हो पाता है। ऐसे में उसे गाय का दूध ही पिलाया जाता है। गाय का दूध सुपाच्य होता है और यह बेहद पोषक होता है। गाय के दूध में 16 प्रकार के मिनरल्स होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार भी माँ के दूध के बाद बच्चे के लिए गाय का दूध ही सबसे ज्यादा फायदेमंद होता है। इस तरह गाय की मदद से ही बच्चे का पोषण होता है इसलिए गाय को माँ का दर्जा दिया गया है।

भारतीय परंपरा में गाय का एक विशेष स्थान है। गाय को विशेष रूप से पूजनीय पशु माना जाता है और यह मातृत्व और उर्वरता का प्रतीक है। गाय से संबंधित कैलेंडर, नक्काशी और पोस्टर इसके स्वास्थ्य और समृद्धि के प्रतीक होने की गवाही देते हैं। गाय सृष्टि के प्रारम्भ से ही हिंदू धर्म का प्रतीक रही है। प्राचीन भारतीय संस्कृत व्याकरणविद् पाणिनी कहते हैं, "देश बहुत समृद्ध प्रतीत होता है क्योंकि यहाँ बहुत सी गायें हैं।"

बीज शब्द: भारतीय संस्कृति, समाज गाय, माँ, सृष्टि, आयुर्वेद, गांधी, अर्थव्यवस्था,

शोध विस्तार

पारंपरिक भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ होने के नाते, गाय नियोजन, भोजन, कृषि कार्यों, सिंचाई, परिवहन, निर्माण सामग्री, ईंधन आदि का आधार बन गई। लोकप्रिय कहावत "गाय के जीवित रहने पर कौन मरता है, गाय के मरने पर कौन जीवित रहता है?" भारतीय समाज में गाय की गौरवशाली स्थिति को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। "गाय हमारे लिए आर्थिक वरदान है, बोझ नहीं। यदि गाय का विनाश हो जाता है, तो हमारी अर्थव्यवस्था उसके साथ ही नष्ट हो जाएगी और हमारी अहिंसक कृषि और ग्राम आधारित संस्कृति भी नष्ट हो जाएगी। भारत में गाय और मनुष्य या तो साथ रहते हैं या साथ मरते हैं।" भारतीय समाज के अभिन्न अंग के रूप में, गाय किसी न किसी रूप में प्रत्येक भारतीय के लिए अत्यंत उपयोगी है। अपने शांत और सहनशील स्वभाव से गाय हिंदू धर्म के सर्वोपरि गुण अहिंसा का प्रतीक है। पुण्य की प्रतीक होने के कारण गाय सर्वोच्च और सबसे प्रभावी शुद्धिदाता और बलिदान का स्रोत है। उसे पृथ्वी

का प्रतीक माना जाता है क्योंकि वह इतना कुछ देती है और बदले में कुछ नहीं मांगती। पोषण का मुख्य स्रोत होने के नाते वह लेने से कहीं अधिक देती है। वह मनुष्य के लिए जीवन के दाता स्वभाव का प्रतिनिधित्व करती है। वह गरिमा, शक्ति, सहनशीलता, मातृत्व, निस्वार्थ सेवा, कृपा और प्रचुरता का प्रतीक है। उसके पांच उत्पाद, पंचगव्य, अर्थात् दूध, दही, मक्खन, मूत्र और गोबर, सभी में परम शुद्धि की शक्ति होती है। हिंदू धर्मग्रंथ गाय को सभी सभ्यताओं की 'माता' बताते हैं, जिसका दूध जनसंख्या का पोषण करता है। गाय का दूध यज्ञ के बाद किए जाने वाले शुद्धि स्नान से भी अधिक पवित्र माना जाता है। दूध से बने उत्पाद सभी अनिवार्य अनुष्ठानों और समारोहों के लिए आवश्यक हैं। गाय का दान सर्वोच्च दान माना जाता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि गाय पवित्र, आदरणीय और सभी पापों का नाश करने वाली होती है। ऐसा माना जाता है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन गाय को चारा खिलाता है, उसे मोक्ष आसानी से प्राप्त हो जाता है। हिंदुओं के लिए गाय पवित्र है क्योंकि यह जीवन और उर्वरता का प्रतीक है। गाय के अनेक उपयोगों के कारण भारत ने उसे धार्मिक महत्व दिया है और उसे देवी, सबकी माता और पूजनीय वस्तु का दर्जा दिया है। 'घो-माता' उपाधि में, भारतीय पौराणिक कथाओं में किसी भी अन्य देवी की तुलना में 'माता' शब्द गाय से अधिक जुड़ा हुआ है।

गाय के प्रति सम्मान की उत्पत्ति का सटीक पता नहीं लगाया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह भारतीयों को प्रागैतिहासिक काल से विरासत में मिली है।¹² सिंधु सभ्यता में, गाय की जगह बैल को पूजनीय वस्तुओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।¹³ गाय को सिंधु घाटी सभ्यता के प्राचीन हड़प्पावासियों और आधुनिक हिंदुओं के बीच एक "सांस्कृतिक कड़ी" के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि गाय उनके लिए आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण थी। उत्तर-वैदिक हिंदू धर्म में भी इसका धार्मिक महत्व था।¹⁴ गाय की पूजा उस समय शुरू हुई जब उपमहाद्वीप में प्रवास करने वाले चरवाहा इंडो-यूरोपीय लोगों का भाग्य उनके पशुओं के झुंड की जीवंतता पर निर्भर था। पूर्व-आर्यन गौ पूजा का विकास ऋग्वेद के आर्यों द्वारा किया गया था, जिन्होंने गाय को विशेष सम्मान दिया क्योंकि वह दूध देती थी और खेतों में काम के लिए अधिक बैल पैदा करती थी। प्राचीन भारत के साधुओं ने गाय को पवित्र घोषित किया ताकि अकाल के समय उन पशुओं को वध से बचाया जा सके जिन पर उनके लोगों का जीवन निर्भर था।¹⁵ 18वीं सदी के उत्तरार्ध और 19वीं सदी के आरंभिक वर्षों में भारत में धर्म प्रचारक के रूप में यात्रा करने वाले फ्रांसीसी पादरी और संस्कृत विद्वान अब्बे जे.ए. डुबोइस ने अपनी पुस्तक 'हिंदू रीति-रिवाज, शिष्टाचार और समारोह' में कहा है कि गाय की पूजा ब्राह्मणों द्वारा शुरू की गई थी।¹⁶ येट्स कहते हैं कि गाय का उतना ही सम्मान किया जाता है जितना कि ब्राह्मणवाद से प्रभावित लोगों में, जिससे यह संकेत मिलता है कि भारत में गाय के प्रति श्रद्धा वैदिक धर्म से भी पुरानी है। "विलियम क्रूक के अनुसार, गाय की पूजा कृष्ण के "चरवाहा देवता" - गोविंदा और गोपाल रूपों से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। यह पूजा संभवतः उन जातियों के जनजातीय प्रतीक के रूप में पशु के आत्मसात होने के कारण हुई होगी जो इन दो देवताओं की पूजा करते थे।¹⁷

वैदिक काल के चरवाहा लोग दूध, खेतों की जुताई और खाद के लिए गाय पर इतना अधिक निर्भर थे कि मानवता की एक समर्पित 'देखभालकर्ता' के रूप में उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि उसे लगभग एक मातृवत आकृति के रूप में देखा जाने लगा। ऋग्वेद में उल्लेख है कि सरस्वती नदी क्षेत्र में दूध और घी की वर्षा होती थी, जिससे संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में पशुओं का पालन-पोषण होता था।¹⁸ गाय धन का प्रतीक बन गई और उसकी तुलना नदी देवियों से की जाने लगी।¹⁹ प्रारंभिक वैदिक काल में गाय, और कभी-कभी बैल, को अग्नि, यानी षजसे मारा नहीं जाना चाहिए, रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री और आदित्यों की बहन कहा जाता था। चूंकि गाय दूध और घी का एकमात्र स्रोत थी, जो अमृत के समान हैं, इसलिए बुद्धिमानों का मानना था कि गाय की बलि दी जानी चाहिए क्योंकि वह मानवता की सेवा करती है।²⁰ ऋग्वेद गाय की हत्या करने वाले व्यक्ति के लिए कठोर दंड का प्रावधान करता है।²¹ और राज्य से निष्कासन की वकालत करता है।²² अपने बछड़े को देखकर उसके भरे हुए थनों से बहने वाला गर्म दूध यज्ञ के बाद किए जाने वाले पवित्र स्नान अवभृत्स्नान से भी अधिक पवित्र था। उसके खुरों से उड़ने वाली धूल किसी पवित्र नदी या झील में स्नान के समान ही शुद्ध करने वाली थी।²³ अथर्ववेद ऐसे अपराध के लिए सिर कलम करने की सलाह देता है।²⁴ उत्तर-वेदीय ग्रंथ गाय को सृष्टि का प्रतीक बताते हैं। यजुर्वेद इंद्र और वरुण को बलि दिए गए पशुओं के मुख्य प्राप्तकर्ता के रूप में चित्रित करता है। जैसे ही ब्रह्मा ने अमृत का सेवन किया और गाय का रूप धारण किया, उनके मुख में बहुत सारा ज्ञान बन गया और वह शिवलिंग पर गिरने लगा। क्योंकि वह ज्ञान अमृत ही था, इसलिए शिव अत्यंत प्रसन्न हुए। उस समय से यह नियम बन गया कि गाय के मुख का ज्ञान अमृत के समान ही पवित्र माना जाए। अन्य किसी भी जानवर के मुंह से निकलने वाले ज्ञान को अपवित्रता का पाप माना जाता है, परन्तु गाय के मुंह से निकलने वाले ज्ञान को पवित्र माना जाता है, और इसलिए यह आग, हवा और सोने की तरह ही अपवित्रता से मुक्त है।²⁵

यजुर्वेद में गाय की महिमा का बखान किया गया है: "ज्ञान की चमक की तुलना सागर से की जा सकती है, पृथ्वी विशाल है, फिर भी इंद्र उससे भी विशाल हैं, परन्तु गाय की तुलना किसी से नहीं की जा सकती।"²⁶ इसमें आगे कहा गया है: "गाय, जिन्हें कभी मारा नहीं जाना चाहिए, स्वस्थ और बलवान रहें। समृद्धि और धन की प्राप्ति के लिए, गायें बछड़ों से भरी रहें, क्षय रोग और अन्य रोगों से मुक्त रहें।"²⁷ वैदिक काल में गाय शब्द का प्रयोग पृथ्वी, आकाश, प्रकाश की किरणों, वाणी और गायिका के लिए किया जाता था। इसका सफेद दूध "अग्नि का बीज" है।²⁸ गाय, मात्र दूध का स्रोत होने के बावजूद, यदि उचित देखभाल और पालन-पोषण किया जाए तो मनोकामना पूरी करने वाली स्वर्गिक गाय बन जाती है।²⁹ पृथ्वी पर राजा के लिए गाय की रक्षा करना ही सर्वथा उचित था, क्योंकि वह देवताओं, पितरों और अतिथियों से संबंधित अनुष्ठानों के उचित निष्पादन का साधन थी।³⁰ प्राचीन भारत में गाय सफलता का रहस्य थी। सभी अनिवार्य अनुष्ठानों और समारोहों के लिए दूध उत्पाद आवश्यक थे, और दूध देने वाली गाय की अत्यंत श्रद्धापूर्वक पूजा की जाती थी। मनुष्य का शारीरिक अपशिष्ट केवल हानि पहुंचा सकता है, जबकि गाय का शारीरिक अपशिष्ट स्वास्थ्य लाभ पहुंचा सकता है। सिद्ध और आयुर्वेद चिकित्सा प्रणालियों में गाय के मूत्र और गोबर का उपयोग औषधियाँ बनाने के लिए किया जाता है। गौ के गोबर का उपयोग हवन, होम और अन्य समारोहों में किया जाता है। इस प्रकार गाय का शारीरिक अपशिष्ट मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान में योगदान दे सकता है।

महाकाव्य काल में गाय को मारना हत्या से भी बदतर अपराध माना जाता था, और ऐसा करना केवल तभी क्षमायोग्य था जब यह किसी उच्चतर धर्म का पालन हो।³¹ यद्यपि, बाद के ब्राह्मणों के समय में गाय की पूजा का महत्व बढ़ गया, जब गाय की बलि दी जाती थी, फिर भी वह टोटेम की तरह पवित्र मानी जाती थी।³² महाभारत में गायों का दान और उससे प्राप्त पुण्य के बारे में कई रोचक जानकारी हैं, जो गाय के प्रति श्रद्धा के माध्यम से हिंदू मन में गहराई से समा गई हैं। इसमें लिखा है: "जो कोई भी गायों को मारता है, खाता है और उनके वध की अनुमति देता है, वह उतनी ही वर्षों तक नरक में

सड़ता है जितने वर्षों तक मारी गई गाय के शरीर पर बाल होते हैं।”²³ भगवान कृष्ण का संबंध देहाती पृष्ठभूमि और गायों और गोपियों (दूध बेचने वाली महिलाओं) से है, और उनके स्वर्ग को गौकुल, ‘गाय-स्थान’ कहा जाता है। हरिवंश में कृष्ण को ग्वाले के रूप में चित्रित किया गया है और अक्सर उन्हें बाल गोपाल, ‘गायों की रक्षा करने वाला बालक’ के रूप में वर्णित किया गया है। कृष्ण का एक अन्य नाम गोविंदा है, जिसका अर्थ है ‘जो गायों को तृप्त करता है’। भागवत पुराण में भगवान कृष्ण के बचपन को ग्वाले के रूप में दर्शाया गया है, जो वृंदावन में अन्य चरवाहों और ग्वालियों के साथ देहाती जीवन व्यतीत करते थे। विष्णु पुराण की एक कथा के अनुसार, पृथ्वी ने सभी के राजा पृथु से बचने के लिए गाय का रूप धारण कर लिया। अंततः उसे पकड़ लिया गया और पृथ्वी को अपने दूध से पोषित करने के लिए राजी किया गया। तब पृथु ने पृथ्वी का दूध अपने हाथ में निकाला, और मनुष्य के भोजन के लिए अनाज और सब्जियां उग आईं।²⁴ गायें सभी प्राणियों का आधार हैं। वे सभी प्राणियों की शरणस्थली और पुण्य का प्रतीक हैं। वे पवित्र और धन्य हैं और सभी को पवित्र करती हैं। वे बल और ऊर्जा से भरपूर हैं। उनमें ज्ञान के तत्व निहित हैं। वे उस अमरत्व का स्रोत हैं जो बलिदान से प्राप्त होता है। वे सभी ऊर्जा की शरणस्थली हैं। वे वे कदम हैं जिनसे सांसारिक समृद्धि प्राप्त होती है। वे ब्रह्मांड के शाश्वत मार्ग का निर्माण करती हैं। वे वंश वृद्धि का कारण बनते हैं। जो गाय या बैल की हत्या करता है, वह बड़ा पाप करता है।²⁵ अग्नि पुराण कहता है कि गाय एक पवित्र, शुभ पशु है। गाय की देखभाल करना, उसे स्नान कराना और उसे खिलाना-पिलाना प्रशंसनीय कार्य हैं। मार्कंडेय पुराण में बताया गया है कि संसार का कल्याण गाय पर निर्भर करता है। वराह पुराण भी गाय की स्तुति में बहुत कुछ कहता है। इसके अनुसार, गाय एक दिव्य पशु है। उसके शरीर के सभी भागों में सभी देवता निवास करते हैं। वह तुच्छ साधारण चीजें खाती है, लेकिन उन्हें अमृत में परिवर्तित करके मनुष्यों में बांट देती है। वह सबसे पवित्र तीर्थ स्थान से भी अधिक पवित्र है, सबसे पवित्र वस्तुओं में पवित्र है और सभी की पालनहार है। रघुवंश में, कालिदास ने लोगों से अपील की कि वे उन देवताओं को महान अग्नि न मानें जिन्होंने गाय का आदान-प्रदान करके सोम खरीदा है... वे उस गाय का उपयोग करते हैं जो बैल द्वारा शर्भित नहीं हुई है।²⁶

हिंदू परंपरा कहती है, “मनुष्यों के अस्तित्व में आते ही, उन्होंने अपने शरीर में ऊतकों की कमी महसूस की और उन्हें यह नहीं पता था कि इसकी भरपाई कैसे की जाए। वे ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने सोचा कि देवताओं की तुलना में केवल बच्चे जैसे मनुष्यों के लिए दिव्य अमृत पचना बहुत कठिन होगा, इसलिए उन्होंने स्वयं कुछ अमृत ग्रहण किया, उसे अपने शरीर में समाहित किया और उसे ऐसे रूप में परिवर्तित किया जिसे मनुष्य सुरक्षित रूप से ग्रहण कर सकें। फिर उन्होंने गाय का रूप धारण किया और उस समाहित अमृत को अपने थनों से प्रवाहित कराया ताकि वह अपने बच्चों ख मनुष्यों ख का पोषण कर सके। अतः गाय को एक ही में पिता और माता माना जाता है और इसलिए गाय की हत्या करने वाला पितृहत्या, मातृहत्या और ब्रह्मा का वध करने वाला बन जाता है।”²⁷ हिंदू विधि के सिद्धांतों के अनुसार, गाय की हत्या न केवल एक अपराध है, बल्कि एक भयानक अपवित्रता, एक देवहत्या है, जिसका प्रायश्चित्त केवल अपराधी की मृत्यु से ही हो सकता है; जबकि गाय का मांस खाना एक अपवित्रता है जिसे शुद्ध नहीं किया जा सकता।²⁸ श्रद्धा के कारण गाय के प्रति पूर्वाग्रह और संभवतः आर्थिक कारणों से भी, इस युग के अंत से पहले गोमांस खाने के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ, जो सदियों से बढ़ता गया है और अब चार हिंदू जातियों के सदस्यों की विशिष्ट पहचान बन गया है।²⁹

गाय धरती की सर्व-उपजाऊ शक्ति का प्रतीक है। कामधेनु और उनकी पुत्री सुरभि को शसमृद्धि की गाय माना जाता है, जिनसे सभी मनोकामनाएं पूरी होती हैं। इनकी मूर्तियां बाजारों में आम तौर पर बिकती हैं और श्रद्धा के प्रतीक के रूप में खरीदी जाती हैं। बनारस और गया जैसे पवित्र शहरों में शिव के चिह्न से सुशोभित बैल (वृषोत्सर्ग) को छोड़ना, ताकि श्रद्धालु उसकी देखभाल और पूजा कर सकें, एक अत्यंत पुण्य कर्म माना जाता है।³⁰ ऐसा माना जाता है कि देवी कामधेनु की पूजा करना पूर्वजों की पूजा के समान है, इसलिए अमावस्या के दिन गायों को चारा खिलाना शुभ माना जाता है। गाय की पूजा हिंदुओं में कोमलता, ग्रहणशीलता और प्रकृति से जुड़ाव जैसे गुणों का संचार करती है। गाय की पूजा प्रतिदिन की जाती है और पारिवारिक अनुष्ठानों में इसका बहुत महत्व है। प्राचीन भारत में गाय को ब्राह्मणों को भेंट करने योग्य माना जाता था और जल्द ही यह कहा जाने लगा कि गाय को मारना ब्राह्मण को मारने के समान है।³¹ गौ पूजा हिंदुओं में नम्रता, सम्माननीयता और प्रकृति से जुड़ाव जैसे गुणों को स्थापित करती है।

7 अगस्त 1980 को, टूटू और चर्च नेताओं तथा एसएसीसी के एक प्रतिनिधिमंडल ने प्रधानमंत्री पी.डब्ल्यू. बोधा और उनके मंत्रिमंडल प्रतिनिधिमंडल से मुलाकात की। यह एक ऐतिहासिक बैठक थी क्योंकि यह पहली बार था जब व्यवस्था से बाहर के किसी अश्वेत नेता ने श्वेत सरकार के नेता से बात की थी। हालांकि, इस बैठक से कोई नतीजा नहीं निकला क्योंकि सरकार ने अपना अड़ियल रुख बरकरार रखा। उन्होंने श्वेत दक्षिण अफ्रीका के गुस्से का सामना तब किया जब उन्होंने कहा कि अगले पांच से दस वर्षों में एक अश्वेत प्रधानमंत्री होगा। 1981 में, टूटू सोवेटो के ऑरलैंडो वेस्ट में सेंट ऑगस्टीन चर्च के रेक्टर बने। 1982 की शुरुआत में ही उन्होंने इजराइल के प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर बेरूत पर बमबारी रोकने की अपील की; वहीं उसी समय उन्होंने फिलिस्तीनी नेता यासर अराफात को पत्र लिखकर उनसे ‘इजराइल के अस्तित्व के संबंध में अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने’ का आह्वान किया।

मुगल सम्राट अकबर ने कहा था: “यह बात दिन के उजाले की तरह स्पष्ट है कि संपूर्ण मानव और पशु जगत गाय के परिवार पर निर्भर है। इसलिए, यह हमारी सर्वोच्च वीरता और पवित्र इरादों पर कलंक है कि हमारे राज्य में गाय की हत्या की प्रथा बिल्कुल भी न हो।” जब यूरोपीय भारत आए, तो वे भी कभी-कभी गाय के प्रति भारतीयों की भावनाओं के विरुद्ध खड़े हो जाते थे। उदाहरण के लिए, 1670 में, भारत के पश्चिमी तट पर स्थित होनवर में एक यूरोपीय व्यापारिक प्रतिष्ठान में रखे गए एक बुलडॉग ने एक गाय को मार डाला, और क्रोधित भीड़ ने वहाँ मौजूद सभी यूरोपीय लोगों को मार डाला।³²

1857 में अंग्रेजों के खिलाफ हुए विद्रोह में गाय के प्रति श्रद्धा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में कार्यरत हिंदू सिपाहियों का मानना ​​छथा कि नई गोलिएं में गाय की चर्बी लगी हुई है। चूँकि बंदूक में गोली भरने के लिए उसे दांतों से काटना पड़ता था, इसलिए उनका मानना ​​छथा कि अंग्रेज उन्हें अपना धर्म तोड़ने के लिए मजबूर कर रहे हैं। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद और उनके अनुयायियों ने पूरे भारत की यात्रा की, जिसके परिणामस्वरूप 1882 से शुरू होकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में गौ संरक्षण समितियों की स्थापना हुई। यह आंदोलन उत्तर भारत और बंगाल, बंबई, मद्रास तथा अन्य मध्य प्रांतों में तेजी से फैल गया। संगठनों ने भटकती गायों को बचाया और उन्हें गौशालाओं में रखकर उनका पालन-पोषण किया। उत्तर भारत भर में धर्मार्थ संस्थाओं का विकास हुआ, जो व्यक्तियों से चावल एकत्र करती थीं, योगदान को एकत्रित करती थीं और गौशालाओं के वित्तपोषण के लिए उन्हें बेचती थीं। गौ बलि पर प्रतिबंध लगाने की मांग के लिए कुछ स्थानों पर 350,000 तक हस्ताक्षर एकत्र किए गए।³³

गाय निस्वार्थ सेवा, शक्ति, गरिमा और अहिंसा जैसे हिंदू मूल्यों का प्रतीक है। सुंदर आध्यात्मिक प्रतीकवाद और गहन सार्वभौमिक महत्व के बावजूद, भारतीय संस्कृति में पले-बढ़े लोगों के लिए गाय की पूजा एक विचित्र विचार लग सकती है। लेकिन, अधिकांश आध्यात्मिक चीजों की तरह, यदि कोई इसके भीतर छिपे मीठे फल तक पहुंचना चाहता है, तो उसे सुरक्षात्मक आवरण को ईमानदारी से हटाना होगा।³⁴ गांधी जी के लिए गाय उनके रचनात्मक कार्यक्रमों के गुणों का प्रतीक थी; और चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश था, इसलिए गाय देश के कल्याण और अर्थव्यवस्था में एक आर्थिक साधन थी।³⁵ उनके अनुसार, 'गाय मासूमियत के साक्षात् स्वरूप को धारण करके माँ की छवि से परे जाती है'।³⁶ उसने कहा, "गाय माता अनेक मायनों में उस माता से श्रेष्ठ है जिसने हमें जन्म दिया। हमारी माता हमें कुछ वर्षों तक दूध पिलाती है और फिर बड़े होने पर हमसे सेवा की अपेक्षा करती है। गाय माता हमसे घास और अनाज के सिवा कुछ नहीं चाहती। हमारी माता अक्सर बीमार पड़ जाती है और हमसे सेवा की अपेक्षा करती है। गाय माता शायद ही कभी बीमार पड़ती है। यहाँ सेवा का एक अटूट सिलसिला है जो उसकी मृत्यु के साथ समाप्त नहीं होता। हमारी माता की मृत्यु का अर्थ है अंतिम संस्कार या दाह संस्कार का खर्च। गाय माता जीवित रहते हुए जितनी उपयोगी होती है, मरने के बाद भी उतनी ही उपयोगी होती है। हम उसके शरीर के हर अंग का उपयोग कर सकते हैं—उसका मांस, उसकी हड्डियाँ, उसकी आँतें, उसके सींग और उसकी चमड़ी। खैर, मैं यह बात हमें जन्म देने वाली माता का अपमान करने के लिए नहीं कह रहा हूँ, बल्कि आपको गाय की पूजा करने के मेरे ठोस कारण बताने के लिए कह रहा हूँ।"³⁷

गांधी ने गाय को "दया की कविता" कहा और उसे भारतीय संस्कृति का प्रतीक माना, जो इस "महान सत्य" को व्यक्त करती है कि मनुष्य और अमानव सहचर प्राणी हैं। उन्होंने कहा: 'गाय उपमानव जीवन का सबसे शुद्ध रूप है। वह सभी उपमानव प्रजातियों की ओर से मनुष्य के हाथों न्याय की गुहार लगाती है, जो सभी जीवित प्राणियों में प्रथम है। वह अपनी आँखों से हमसे कहती प्रतीत होती है: 'तुम्हें हम पर इसलिए नियुक्त नहीं किया गया है कि तुम हमें मारो और हमारा मांस खाओ या हमारे साथ दुर्व्यवहार करो, बल्कि इसलिए कि तुम हमारे मित्र और संरक्षक बनो'।³⁸

अहिंसा की अवधारणा में सभी सजीव प्राणियों को शामिल किया जाना था। गायों से अधिक दूध प्राप्त करने के लिए अपनाई जाने वाली क्रूर प्रथाओं के बारे में जानने के बाद गांधी ने दूध पीना भी छोड़ दिया था। गायों में दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए अपनाई जाने वाली क्रूर प्रक्रिया 'फूका' या 'डूम देव' के बारे में जानने के बाद गांधी ने गाय का दूध न पीने का निश्चय किया। 'फूका' या 'डूम देव' में दूध देने वाले पशु के मादा अंग में हवा या कोई अन्य पदार्थ डालकर उससे दूध निकालने की प्रक्रिया शामिल है। उन्हें दूध से घोर घृणा हो गई थी। इसके अलावा, उनका हमेशा से मानना था कि दूध मनुष्य का प्राकृतिक आहार नहीं है। इसलिए उन्होंने इसका पूर्णतः त्याग कर दिया था।

हिंदू धर्म का मूल सिद्धांत गौ रक्षा है, जो गांधी जी के लिए एक जुनून था। उनके लिए यह केवल गाय की रक्षा नहीं थी। इसका अर्थ था संसार में सभी जीवित प्राणियों की रक्षा करना, जो असहाय और कमजोर हैं। गौ रक्षा मानव विकास की सबसे अद्भुत घटना है। यह मनुष्य को इस प्रजाति से परे ले जाती है। उन्होंने कहा: 'गाय को देवत्व का दर्जा क्यों दिया गया, यह मेरे लिए स्पष्ट है। भारत में गाय सबसे अच्छी साथी थी। वह प्रचुरता की दाता थी। वह न केवल दूध देती थी, बल्कि उसने कृषि को भी संभव बनाया... मैं गाय की रक्षा के लिए किसी मनुष्य को नहीं मारूंगा, जैसे मैं किसी मनुष्य के जीवन को बचाने के लिए गाय को नहीं मारूंगा, चाहे वह जीवन कितना भी अनमोल क्यों न हो।'³⁹

गौ संरक्षण राष्ट्रीय देशभक्ति का प्रतीक बन गया है। आज भी गौ कई लोगों के दिलों में लगभग धार्मिक श्रद्धा की भावना जगाती है। उन्होंने लिखा: 'हिंदू धर्म न केवल समस्त मानव जीवन की एकता में, बल्कि सभी जीवित प्राणियों की एकता में विश्वास करता है। मेरी राय में, गौ पूजा मानवतावाद के विकास में इसका अनुठा योगदान है। यह समस्त जीवन की एकता और इसलिए पवित्रता में विश्वास का व्यावहारिक अनुप्रयोग है। पुनर्जन्म में महान विश्वास इसी विश्वास का प्रत्यक्ष परिणाम है।' गांधी ने कहा: 'मेरी महत्वाकांक्षा विश्वभर में गौ संरक्षण के सिद्धांत को स्थापित होते देखना है। लेकिन इसके लिए मुझे पहले अपने घर को पूरी तरह से व्यवस्थित करना होगा।'⁴⁰

गांधी ने हिंदुओं की गहरी भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया: 'गाय की रक्षा हिंदू धर्म का विश्व को दिया गया उपहार है। और हिंदू धर्म तब तक जीवित रहेगा जब तक गाय की रक्षा करने वाले हिंदू मौजूद हैं... हिंदुओं का मूल्यांकन उनके तिलक से नहीं, मंत्रों के सही उच्चारण से नहीं, उनकी तीर्थयात्राओं से नहीं, जाति नियमों के उनके अत्यंत सटीक पालन से नहीं, बल्कि गाय की रक्षा करने की उनकी क्षमता से किया जाएगा।'⁴¹ उन्होंने कहा: 'किसी राष्ट्र की महानता और उसकी नैतिक प्रगति को इस बात से मापा जा सकता है कि वह अपने पशुओं के साथ कैसा व्यवहार करता है। गाय संपूर्ण उपमानव जगत का प्रतीक है।'⁴² उन्होंने यह भी कहा: 'यदि कोई मुझे पूछे कि हिंदू धर्म की सबसे महत्वपूर्ण बाहरी अभिव्यक्ति क्या है, तो मैं कहूंगा कि यह गाय की रक्षा का विचार है।' वे गाय की रक्षा को हिंदू धर्म में आस्था का एक महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। इसकी धार्मिक पवित्रता के अलावा, यह एक उदात्त पंथ है।⁴³ जैसा कि प्रोफेसर वासवानी कहते हैं, "गाय की रक्षा का अर्थ है मनुष्य और पशु के बीच भाईचारा।" यह एक महान भावना है जो धैर्यपूर्वक परिश्रम और तपस्या से ही विकसित होती है। इसे किसी पर थोपा नहीं जा सकता। इस कोमल पशु में करुणा झलकती है। वह लाखों भारतीय मनुष्यों की माता है। जैसा कि गांधी जी ने महसूस किया, गाय की रक्षा, जो ष्वरमानव जीवन का सबसे शुद्ध रूप है, का अर्थ ईश्वर की संपूर्ण मूक सृष्टि की रक्षा करना था। प्राचीन ऋषि, चाहे वे कोई भी रहे हों, ने गाय से ही शुरुआत की। सृष्टि के निम्नतम क्रम की अपील और भी अधिक प्रभावशाली है क्योंकि वह मूक है।⁴⁴ उन्होंने खुले तौर पर घोषणा की कि "मैं इसकी पूजा करता हूँ और मैं इसकी पूजा का पूरे विश्व के विरुद्ध बचाव करूँगा।"⁴⁵

उन्होंने खुले तौर पर पुष्टि की: "मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि मुझे अपने व्यक्तिगत आचरण से उन लोगों के मन में यह दृढ़ विश्वास पैदा करना चाहिए जो अलग-अलग विचार रखते हैं, कि गौहत्या एक पाप है और इसलिए इसे त्याग देना चाहिए।"⁴⁶ लेकिन मैं फिर से दोहराना चाहता हूँ कि गौ संरक्षण के किसी भी कार्यक्रम में विधायी निषेध सबसे छोटा हिस्सा है। लोग सोचते हैं कि जब किसी बुराई के खिलाफ कानून पारित हो जाता है, तो वह बिना किसी और प्रयास के समाप्त हो जाएगी। इससे बड़ा आत्म-धोखा कभी नहीं हुआ। कानून का उद्देश्य अज्ञानी या एक छोटे, दुष्ट मानसिकता वाले अल्पसंख्यक के खिलाफ होता है और वह प्रभावी भी होता है; लेकिन कोई भी कानून जिसका एक बुद्धिमान और संगठित जनमत विरोध करे, या धर्म की आड़ में एक कट्टरपंथी अल्पसंख्यक द्वारा विरोध किया जाए, कभी सफल नहीं हो सकता। गौ संरक्षण के प्रश्न का जितना अधिक अध्ययन मैं करता हूँ, उतना ही मेरा विश्वास मजबूत होता जाता है कि गाय और उसके वंशजों का संरक्षण केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है जब मेरे द्वारा सुझाए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार निरंतर और सतत रचनात्मक प्रयास किए जाएँ।⁴⁷ पशुओं का संरक्षण गौ-सेवा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह भारत के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न है... गहन

अध्ययन और भावना की तत्काल आवश्यकता है। त्याग का। धन इकट्ठा करना और दान देना वास्तविक व्यावसायिक क्षमता को नहीं दर्शाता। पशुओं का संरक्षण करना जानना, इस ज्ञान को लाखों लोगों तक पहुँचाना, स्वयं आदर्शों पर खरा उतरना और इस प्रयास में धन खर्च करना ही वास्तविक व्यवसाय है।⁴⁸ यह समस्त जीवन की एकता और इसलिए पवित्रता में विश्वास का व्यावहारिक अनुप्रयोग है और गाय के प्रति मेरे दृष्टिकोण में मनुष्य, पक्षी और पशु तीनों की रक्षा और सेवा शामिल है। गायों की हत्या को कानून द्वारा कभी नहीं रोका जा सकता। केवल ज्ञान, शिक्षा और उसके प्रति दयालुता की भावना ही इसे समाप्त कर सकती है। उन पशुओं को बचाना संभव नहीं होगा जो धरती पर बोझ हैं या शायद मनुष्य को भी, यदि वह स्वयं बोझ है।⁴⁹

तो फिर, जब गाय आर्थिक रूप से पर्याप्त दूध देना बंद कर दे या किसी अन्य कारण से बोझ बन जाए, तो उसे मारे बिना कैसे बचाया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है:

यदि हिंदू गाय और उसके बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें, तो हमारे पशु भारत और विश्व का गौरव होंगे। लेकिन आज स्थिति इसके विपरीत है।

पशुपालन का विज्ञान सीखकर। आज इस काम में पूर्ण अराजकता फैली हुई है।

वर्तमान क्रूर बधियाकरण पद्धति को पश्चिम में प्रचलित मानवीय पद्धति से प्रतिस्थापित करके।

भारत के पिंजरापोलों (वृद्ध गायों के लिए संस्थान) में व्यापक सुधार करके, जिनका प्रबंधन आज आम तौर पर अज्ञानतापूर्वक और बिना किसी योजना के उन लोगों द्वारा किया जाता है जो अपने काम को नहीं जानते।

जब ये प्राथमिक कार्य पूरे हो जाएंगे, तो यह पाया जाएगा कि मुसलमान स्वयं ही, कम से कम अपने हिंदू भाइयों के हित में ही सही, गोमांस या अन्य किसी भी उद्देश्य से मवेशियों का वध न करने की आवश्यकता को स्वीकार कर लेंगे।⁵⁰

भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार आज भी कृषि है, जिसमें गायें एक मजबूत आधार हैं और गायों का पालन-पोषण एवं संरक्षण अभिन्न अंग हैं। 75 प्रतिशत भारतीय गांवों में रहते हैं और गायों एवं बैलों से भरपूर लाभ प्राप्त करते हैं। आधुनिकता की बाध्यताओं के बावजूद, पश्चिमी देशों के विपरीत, भारत में ट्रैक्टरों का उपयोग भूमि के लिहाज से उपयुक्त नहीं है। अमेरिका में प्रत्येक व्यक्ति के पास लगभग 14 एकड़ भूमि उपलब्ध है, जबकि भारत में यह लगभग 0.70 एकड़ है। ट्रैक्टर डीजल की खपत करते हैं, प्रदूषण फैलाते हैं, घास नहीं खाते और खाद के लिए गोबर भी नहीं पैदा करते, जबकि पारंपरिक जुताई भारतीय परिस्थितियों के लिए आदर्श है। अल्बर्ट आइंस्टीन ने सर सी.वी. रमन को लिखे एक पत्र में सशक्त और प्रभावी संदेश दिया था: “भारत के लोगों से कहो कि यदि वे जीवित रहना चाहते हैं और दुनिया को जीवित रहने का मार्ग दिखाना चाहते हैं, तो उन्हें ट्रैक्टरों को भूलकर जुताई की अपनी प्राचीन परंपरा को संरक्षित करना चाहिए।”

गांधी जी एक बात पर जोर देते हैं और वह है अहिंसा, जिसे सार्वभौमिक करुणा के नाम से भी जाना जाता है।⁵¹ गांधी जी के अनुसार, अहिंसा न केवल शारीरिक चोट पहुँचाने को वर्जित करती है, बल्कि बुरे विचारों और घृणा जैसी मानसिक अवस्थाओं, कठोर शब्दों, बेईमानी और झूठ जैसे निर्दयी व्यवहार को भी वर्जित करती है, जिन्हें वे हिंसा की अभिव्यक्तियाँ मानते थे और जो अहिंसा के विपरीत थीं।⁵² इस सिद्धांत का पालन करने वाले का कोई शत्रु नहीं होता। जो व्यक्ति इस सिद्धांत की प्रभावकारिता में विश्वास करता है, वह अंतिम अवस्था में, जब वह लक्ष्य तक पहुँचने वाला होता है, तो पूरी दुनिया को अपने चरणों में पाता है। यदि आप अपने प्रेम - अहिंसा - को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि वह आपके तथाकथित शत्रु पर अमिट छाप छोड़ दे, तो उसे भी उस प्रेम को लौटाना होगा। यह सिद्धांत हमें बताता है कि हम अपने अधीन लोगों के सम्मान की रक्षा उस व्यक्ति के हाथों में अपना प्राण सौंपकर कर सकते हैं जो अपवित्रता का कार्य करेगा। और इसके लिए प्रहार करने से कहीं अधिक साहस की आवश्यकता होती है। जहाँ अहिंसा है, वहाँ असीम धैर्य, आंतरिक शांति, आत्म-बलिदान और सच्चा ज्ञान है। भारत के कृषि प्रधान और ग्रामीण समाज में लगभग सभी परिवार के सदस्य गायों की अच्छी देखभाल करते हैं। वास्तव में, गौ पूजा को विज्ञान और आध्यात्मिकता का एक उत्तम संगम माना जा सकता है। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि गोबर से लेपित दीवारें परमाणु विकिरण को रोकती हैं। भारत सरकार ने इसे मान्यता देते हुए भारतीय संविधान में अनुच्छेद 48 शामिल किया है, जिसमें कहा गया है: “राज्य आधुनिक और वैज्ञानिक पद्धतियों के अनुसार कृषि और पशुपालन का प्रयास करेगा या उसे व्यवस्थित करेगा तथा विशेष रूप से नस्लों के संरक्षण और सुधार के लिए कदम उठाएगा तथा गायों, बछड़ों और अन्य दुधारू एवं भार ढोने वाले पशुओं के वध पर रोक लगाएगा।” उग्रवाद और आतंकवाद से ग्रस्त दुनिया में गायों के प्रति श्रद्धा शांति और अहिंसा की भावना को बढ़ावा देती है। यह मनुष्य और पशु के बीच भाईचारे की अभिव्यक्ति है। अपने पवित्र दर्जे के बावजूद, भारत में गायों को उतना सम्मान नहीं मिलता जितना मिलना चाहिए। जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं कहा था: “पश्चिम में लोग गाय की पूजा नहीं करते, बल्कि उसकी देखभाल करते हैं। हम उसकी पूजा तो करते हैं, लेकिन उसकी देखभाल नहीं करते।” गाय के माध्यम से मनुष्य को सभी जीवित प्राणियों के साथ अपनी एकता का अहसास होता है” और गाय की पूजा भारतीय परंपरा के इस सशक्त प्रतीक की महिमा करती है। गांधी जी ने अहिंसा के प्रतीक गाय के संरक्षण का समर्थन किया। गाय गांधी जी के सिद्धांत, यानी अहिंसा का प्रतीक है, लेकिन स्वार्थी और हिंसक लोग इस वास्तविकता को समझने में विफल रहे। महात्मा गांधी के शब्दों में कहें तो, “धरती हर मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त देती है, लेकिन हर मनुष्य के लालच को नहीं।”

संदर्भ

1. सुरेश रामूभाई, गो-सेवा क्यों? (वर्धा: अखिल भारत सर्व सेवा संघ, 1952), पृ.3
2. जे.एच. हटन, भारत में जाति, (बॉम्बे: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1977), पृष्ठ 228
3. वी. रंगाचार्य, प्री-हिस्टोरिक इंडिया (दिल्ली: अनमोल, 1985), पी. 158
4. भारत की जनगणना, 1931, खंड 14, मद्रास, 1932, पृष्ठ 320
5. लैरी कॉलिन्स और डोमिनिक लैपियर, फ्रीडम एट मिडनाइट (नई दिल्ली: विकास, 1978), पृष्ठ 26
6. जे.ए. अब्बे डुबोइस, हिंदू रीति-रिवाज, प्रथाएं और समारोह, ब्यूचौम्प, हेनरी के. (अनुवादक), (दिल्ली: कॉसिमो, इंक., 2007), पृष्ठ 686
7. विलियम क्रूक, उत्तरी भारत के लोकप्रिय धर्म और लोककथाओं का परिचय (नई दिल्ली: एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, 1996), पृष्ठ 333

8. ऋग्वेद, 7.95.2 और 8.21.18
9. वही, 3.33.1
10. वही, 8:101:15
11. वही, 10-87-16
12. वही, 8-101-15
13. वही, 1.84, 85
14. अथर्ववेद 8-3-16
15. पीवी जगदीसा अय्यर, साउथ इंडियन फेस्टिविटीज (नई दिल्ली: रूपा एंड कंपनी, 1998), पी। 20
16. यजुर्वेद, 23-48
17. वही, 1-1
18. शतपथ ब्राह्मण, पप.2.4.15
19. Asi.Br.1.27
20. सदाशिव अंबादास डांगे, वेद से सांस्कृतिक स्रोत (बॉम्बे: भारतीय विद्या भवन, 1977), पृ. 8
21. सुबोध कपूर, महाकाव्य दर्शन का परिचय: महाकाव्य काल, इतिहास, साहित्य, देवमंडल, दर्शन, परंपराएं और पौराणिक कथाएं, खंड 5, (नई दिल्ली: जेनेसिस पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2004), पृष्ठ 1285
22. डी.डी. सिडनी केव, पूर्व के कुछ जीवित धर्मों के अध्ययन का परिचय, (लंदन: बिब्लियोबाजार, 1952), पृष्ठ 27
23. महाभारत xiii:74:4
24. जे. एरिक शार्प, हिंदू धर्म के बारे में चिंतन (गाइडफोर्ड: लटरवर्थ प्रेस, 1971), पृष्ठ 50
25. महाभारत, श्लोक 47
26. रघुवंश, ii, 63
27. पीवी जगदीसा अय्यर, op.cit., पी. 19
28. जेए अब्बे डुबोइस, op.cit., पृष्ठ 191
29. पी.टी. श्रीनिवास अयंगर, मंत्रों के युग में प्राचीन भारत का जीवन। (नई दिल्ली: एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, 1982), पृष्ठ 128
30. रघुवंश, द्वितीय, 16
31. विलियम्स 1951:119
32. जे. फ्रेडरिक सिमून्स, ईट नॉट दिस फ्लेश (विस्कॉन्सिन: यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन प्रेस, 1994), पृष्ठ 109
33. मारिया मिश्रा, विष्णु का भीड़भाड़ वाला मंदिर, महान विद्रोह के बाद से भारत (एलन लेन, 2007), पृष्ठ 67-69
34. यंग इंडिया, 8 जून 1921
35. जेसी कुमारप्पा, द काउ इन अवर इकोनॉमी (वाराणसी: अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1972), पी. 76
36. एम.के. गांधी, मेरा धर्म (अहमदाबाद: नवजीवन ट्रस्ट, 1955), पृष्ठ 151
37. हरिजन, 1940: 281
38. यंग इंडिया, 1924:214
39. वही, 1921:156
40. वही, 1925: 38
42. वही, अक्टूबर 1921:36
42. वही, 1925:160
43. एम.के. गांधी, गाय की सेवा कैसे करें (अहमदाबाद: नवजीवन ट्रस्ट, 1954), पृष्ठ 3-4
44. यंग इंडिया, अक्टूबर 1921: 36
45. वही, जनवरी 1925:8
46. वही, जनवरी 1925:38
47. वही, 1927:219
48. हरिजन, 1946:110
49. वही, 1946:310
50. वही, 31-8-1947, पृष्ठ 300
51. रवींद्र कुमार, भारत में अहिंसा की अवधारणा और गांधी, worldpress.org, 17 अगस्त 2008
52. विलियम बोरमैन, गांधी और अहिंसा (न्यूयॉर्क: स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 1986), पृष्ठ 11-12

हिन्दी ग़ज़ल: परम्परा, सरोकार और शिल्प

अंशु कुमारी

शोधार्थी, बी.एड., स्पेशल एजुकेशन, (दृष्टिबाधित), एन.आई.वी.एच. देहरादून, श्री देव सुमन उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय,
बादशाहीथौल, टेहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

सारांश

हिन्दी ग़ज़ल आधुनिक हिन्दी कविता की उन महत्वपूर्ण विधाओं में है जिसने परम्परा और आधुनिकता, निजी संवेदना और सामाजिक प्रतिरोध, प्रेम और राजनीति, लोकभाषा और काव्य-शिल्प-इन सबको एक साथ साधने का साहस किया है। ग़ज़ल मूलतः अरबी-फ़ारसी-उर्दू काव्य-परम्परा से विकसित विधा है, परन्तु हिन्दी में आकर उसने केवल भाषिक रूपान्तरण नहीं किया, बल्कि अपने सरोकारों, मुहावरे, प्रतीकों और सामाजिक चेतना के आधार पर स्वतंत्र पहचान निर्मित की। हिन्दी ग़ज़ल का महत्त्व इस बात में है कि उसने ग़ज़ल की पारम्परिक संरचना-शेर, मतला, मक्ता, काफ़िया, रदीफ़, बहर आदि-को अपनाते हुए भी उसे भारतीय लोकतांत्रिक जीवन, जन-संघर्ष, मध्यवर्गीय विडम्बना, सत्ता-विरोध, नैतिक संकट, सांस्कृतिक संक्रमण और मानवीय अस्मिता के प्रश्नों से जोड़ा। दुष्यंत कुमार के बाद हिन्दी ग़ज़ल ने जिस सामाजिक ऊर्जा को प्राप्त किया, उसने इस विधा को केवल प्रेम-विलाप या रूमानी वक्तव्य तक सीमित नहीं रहने दिया; वह जन-आक्रोश, लोकतांत्रिक बेचौनी और सामाजिक हस्तक्षेप की भाषा बन गई। प्रस्तुत शोध-लेख में हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, उसके सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों और शिल्पगत विशेषताओं का सम्यक् विवेचन किया गया है।

बीज-शब्द: हिन्दी ग़ज़ल, परम्परा, सरोकार, शिल्प, दुष्यंत कुमार, आधुनिक कविता, जनचेतना, काफ़िया, रदीफ़, बहर।

प्रस्तावना

ग़ज़ल भारतीय उपमहाद्वीप की साझा साहित्यिक संस्कृति की अत्यन्त लोकप्रिय और प्रभावशाली विधा है। इसकी यात्रा अरबी काव्य-परम्परा से प्रारम्भ होकर फ़ारसी और उर्दू से गुजरते हुए हिन्दी तक आती है। साहित्यिक इतिहास में ग़ज़ल को सामान्यतः लयात्मक, संक्षिप्त, मार्मिक और संकेत-प्रधान काव्य-विधा माना गया है। पारम्परिक रूप में ग़ज़ल प्रेम, विरह, सौन्दर्य और सूफ़ियाना अनुभूति से सम्बद्ध रही, किन्तु समय के साथ इसकी विषय-वस्तु में आश्चर्यजनक विस्तार हुआ। आधुनिक काल में ग़ज़ल ने सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विसंगति, जन-पीड़ा, लोकतांत्रिक आकांक्षा और व्यवस्था-विरोध को भी अपनी अभिव्यक्ति का केन्द्र बनाया।

ग़ज़ल की शास्त्रीय संरचना में स्वतंत्र शेरों की श्रृंखला होती है। प्रत्येक शेर अपने अर्थ में स्वतंत्र हो सकता है, फिर भी पूरी ग़ज़ल एक भावात्मक वातावरण और कलात्मक अनुशासन से जुड़ी रहती है। चम्मजतल थ्वनदकंजपद के अनुसार ग़ज़ल में प्रत्येक शेर व्याकरणिक और अर्थगत रूप से स्वतंत्र होता है तथा रदीफ़ और काफ़िया इसकी विशिष्ट तुक-योजना निर्मित करते हैं। ठतपजंददपबं भी ग़ज़ल को इस्लामी साहित्य की ऐसी लिरिक विधा मानता है जो आरम्भ में प्रेम से सम्बद्ध थी और जिसका विकास अरब साहित्य में हुआ। दक्षिण एशियाई साहित्यिक संदर्भ में उर्दू ग़ज़ल को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई; ठतपजंददपबं के अनुसार उर्दू कविता के इतिहास में ग़ज़ल कवियों और श्रोताओं, दोनों की प्रिय विधा रही है।

हिन्दी ग़ज़ल की विशिष्टता यह है कि उसने उर्दू-फ़ारसी परम्परा से शिल्प ग्रहण करते हुए भी हिन्दी समाज की बदलती चेतना को अपना विषय बनाया। यह केवल भाषा का बदलाव नहीं था; यह संवेदना, दृष्टि और सामाजिक संलग्नता का भी बदलाव था। हिन्दी ग़ज़ल ने जनभाषा, लोक-संवेदना, राजनीतिक व्यंग्य, नैतिक प्रश्नाकुलता और आत्मसंघर्ष को ऐसी तीक्ष्ण अभिव्यक्ति दी कि वह आधुनिक हिन्दी कविता की एक स्वतंत्र और जीवंत धारा के रूप में स्थापित हुई।

ग़ज़ल की परम्परा : उद्गम से हिन्दी तक

ग़ज़ल का उद्गम अरबी काव्य-परम्परा में माना जाता है। बाद में फ़ारसी साहित्य ने इसे कलात्मक ऊँचाई दी और उर्दू ने इसे भारतीय उपमहाद्वीप में असाधारण लोकप्रियता प्रदान की। प्रारम्भिक ग़ज़लों में प्रेम, विरह, सौन्दर्य, आध्यात्मिक अनुभूति और सूफ़ी भावबोध प्रमुख थे। परन्तु ग़ज़ल की प्रकृति इतनी लचीली रही कि वह विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों में प्रवेश करते हुए अपने मूल शिल्प को बचाए रख सकी और नई विषय-वस्तु को आत्मसात करती गई।

उर्दू ग़ज़ल में मीर, सौदा, जौकद, गालिब, दाग, फ़िराक, फ़ैज आदि ने इस विधा को अत्यन्त समृद्ध किया। गालिब ने ग़ज़ल को दार्शनिक गहराई, आत्मसंवाद और अस्तित्वगत बेचौनी प्रदान की। ठतपजंददपबं के अनुसार गालिब ने फ़ारसी और उर्दू दोनों में अनेक काव्यरूपों में लेखन किया, जिनमें ग़ज़ल भी प्रमुख थी, और उन्होंने उर्दू ग़ज़ल में नए विषयगत आयाम जोड़े। फ़ैज ने ग़ज़ल की परम्परा में प्रेम और क्रांति का ऐसा संयोजन किया जिसमें 'महबूब' का रूप केवल निजी प्रेम का प्रतीक नहीं रहा, बल्कि समाज, वतन और मुक्ति की आकांक्षा से जुड़ गया।

हिन्दी में ग़ज़ल की परम्परा को देखते हुए यह मानना उचित नहीं होगा कि हिन्दी ग़ज़ल अचानक आधुनिक काल में पैदा हुई। हिन्दी काव्य-परम्परा में दोहा, सवैया, कवित्त, पद, मुक्तक और गीत जैसी संक्षिप्त काव्य-विधाएँ पहले से मौजूद थीं। इन विधाओं में भी अनुभूति की तीक्ष्णता, लय, स्मरणीयता और कथन की संक्षिप्त शक्ति मिलती है। इसलिए ग़ज़ल जब हिन्दी में आई तो उसे एक अनुकूल काव्य-भूमि मिली। हिन्दी कवियों ने ग़ज़ल के शिल्प को अपनाते हुए उसे अपने समय, समाज और भाषा के अनुरूप बदला।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में निराला, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, भवानीप्रसाद मिश्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और अन्य कवियों के यहाँ ग़ज़ल-तत्व या ग़ज़ल की छाया अलग-अलग रूपों में मिलती है। परन्तु हिन्दी ग़ज़ल को व्यापक पहचान और जन-स्वीकृति देने का सर्वाधिक श्रेय दुष्यंत कुमार को दिया जाता है। उनके संग्रह 'साये में धूप' ने हिन्दी ग़ज़ल को नई दिशा दी। त्मीज और भृदकूप जैसे साहित्यिक पोर्टलों पर दुष्यंत कुमार की अनेक ग़ज़लें संकलित हैं, जिनमें उनकी लोकप्रिय ग़ज़लों की व्यापक पाठकीय उपस्थिति देखी जा सकती है।

हिन्दी ग़ज़ल का विकास और दुष्यंत कुमार का मोड़

हिन्दी ग़ज़ल का सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मोड़ दुष्यंत कुमार के साथ जुड़ा है। दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल को दरबारी, रूमानी या केवल व्यक्तिगत पीड़ा की विधा न रहने देकर उसे लोकतांत्रिक भारत की बेचौन आत्मा की आवाज बनाया। उनके यहाँ ग़ज़ल सत्ता से प्रश्न करती है, समाज की जड़ता को चुनौती देती है, आम आदमी की पीड़ा को स्वर देती है और परिवर्तन की आकांक्षा जगाती है।

दुष्यंत कुमार की प्रसिद्ध ग़ज़लों में शिल्प की दृढ़ता और कथ्य की जनोन्मुखता का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है। उनकी ग़ज़लें भाषा की दृष्टि से अत्यन्त सरल, पर अर्थ की दृष्टि से गहरी हैं। वे कठिन फ़ारसी-उर्दू शब्दावली की जगह ऐसी हिन्दी-हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग करते हैं जो सीधे पाठक और श्रोता तक पहुँचती है। यही कारण है कि उनकी ग़ज़लें साहित्यिक पाठक से लेकर जनसभाओं तक में उद्धृत होती रही हैं। हिन्दी ग़ज़ल में दुष्यंत कुमार की भूमिका पर केन्द्रित समकालीन लेखों में भी यह रेखांकित किया गया है कि उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को सामाजिक चेतना और जन-सरोकार से जोड़ा।

दुष्यंत कुमार के बाद हिन्दी ग़ज़ल में अनेक रचनाकारों ने योगदान दिया। अदम गोंडवी ने गाँव, किसान, जाति, गरीबी और सत्ता-संरचना के विरुद्ध प्रतिरोध को ग़ज़ल की भाषा दी। कुँवर बेचौन, बालस्वरूप राही, ज्ञान प्रकाश विवेक, माधव कौशिक, राजेश रेड्डी, अशोक रावत, सूर्यभानु गुप्त, हस्तीमल हस्ती आदि कवियों ने हिन्दी ग़ज़ल को विविध स्वर दिए। इन कवियों ने सिद्ध किया कि हिन्दी ग़ज़ल केवल दुष्यंत कुमार की छाया में खड़ी विधा नहीं है, बल्कि उसके पास अपना स्वतंत्र विस्तार, संवेदना और सौन्दर्यबोध है।

हिन्दी ग़ज़ल की विकास-यात्रा में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—यह विधा जितनी मंचीय लोकप्रियता से जुड़ी, उतनी ही गंभीर साहित्यिक विमर्श से भी। मंचीय लोकप्रियता ने उसे पाठक और श्रोता दिए, जबकि साहित्यिक अनुशासन ने उसे शिल्पगत गंभीरता प्रदान की। हिन्दी ग़ज़ल की चुनौती यही रही है कि वह लोकप्रियता और कलात्मकता के बीच संतुलन बनाए रखे।

हिन्दी ग़ज़ल के प्रमुख सरोकार

सामाजिक यथार्थ और जन-पीड़ा

हिन्दी ग़ज़ल का सबसे महत्वपूर्ण सरोकार सामाजिक यथार्थ है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में लोकतंत्र, विकास, समानता और न्याय के बड़े सपने थे, परन्तु समय के साथ गरीबी, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, असमानता, जातिगत भेदभाव, प्रशासनिक उदासीनता और राजनीतिक अवसरवाद ने इन सपनों को चोट पहुँचाई। हिन्दी ग़ज़ल ने इसी टूटन को अभिव्यक्ति दी।

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में व्यवस्था से असंतोष, लोकतांत्रिकवादों की विफलता और आम आदमी की विवशता बार-बार आती है। उनका कवि न तो केवल करुणा में डूबा है और न केवल आक्रोश में; वह करुणा और प्रतिरोध दोनों को एक साथ लेकर चलता है। यही हिन्दी ग़ज़ल की शक्ति है—वह दुःख को केवल आँसू नहीं बनाती, बल्कि प्रश्न और प्रतिरोध में बदल देती है।

अदम गोंडवी ने हिन्दी ग़ज़ल को ग्रामीण भारत की कठोर वास्तविकताओं से जोड़ा। उनके यहाँ ग़ज़ल की भाषा में खेत, मजदूर, दलित, भूख, सत्ता और शोषण आते हैं। यह हिन्दी ग़ज़ल की वैचारिक दिशा का विस्तार है। ग़ज़ल यहाँ सौन्दर्य की विधा रहते हुए भी सामाजिक न्याय की विधा बन जाती है।

लोकतांत्रिक चेतना और सत्ता-विमर्श

आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल का दूसरा बड़ा सरोकार लोकतांत्रिक चेतना है। लोकतंत्र केवल चुनावी प्रक्रिया नहीं है; वह नागरिक गरिमा, अधिकार, संवाद, असहमति और जवाबदेही का तंत्र है। हिन्दी ग़ज़ल ने इस लोकतांत्रिक चेतना को तीक्ष्ण स्वर दिया। उसमें सत्ता के प्रति अंध-आस्था नहीं है; वह सत्ता से सवाल करती है।

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें लोकतंत्र के भीतर पैदा हुई निराशा और उम्मीद-दोनों को व्यक्त करती हैं। वे जनता को निष्क्रिय दर्शक नहीं मानते, बल्कि परिवर्तन की शक्ति के रूप में देखते हैं। उनकी ग़ज़लें बताती हैं कि साहित्य का काम केवल सौन्दर्य-रचना नहीं, बल्कि समय की नैतिक परीक्षा भी है।

हिन्दी ग़ज़ल में व्यंग्य सत्ता-विमर्श का प्रभावी उपकरण है। ग़ज़ल का छोटा शेर जब किसी राजनीतिक विसंगति पर चोट करता है तो उसका प्रभाव लंबी कविता से भी अधिक तीव्र हो सकता है। यही कारण है कि हिन्दी ग़ज़ल जनसभा, आंदोलन, पत्र-पत्रिका और मंच-सब जगह प्रभावशाली रही है।

मध्यवर्गीय विडम्बना और आत्म-संघर्ष

हिन्दी ग़ज़ल में मध्यवर्गीय जीवन की उलझनें भी गहराई से आती हैं। आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग आशा और भय, नैतिकता और सुविधा, आदर्श और समझौते, विद्रोह और चुप्पी के बीच फँसा हुआ है। हिन्दी ग़ज़ल इस मानसिक द्वन्द्व को सूक्ष्म रूप में पकड़ती है।

ग़ज़ल की संरचना ही ऐसी है कि वह छोटे-छोटे शेरों में जीवन की विडम्बनाओं को तीखे ढंग से व्यक्त कर सकती है। मध्यवर्गीय मन की टूटन, अकेलापन, असुरक्षा, संबंधों का क्षरण, शहर का तनाव और नैतिक द्वंद्व हिन्दी ग़ज़ल के महत्वपूर्ण विषय बने हैं। यह सरोकार हिन्दी ग़ज़ल को केवल राजनीतिक कविता बनने से बचाता है और उसे मनुष्य के भीतरी संसार से जोड़ता है।

प्रेम, करुणा और मानवीय संवेदना

यह कहना गलत होगा कि हिन्दी ग़ज़ल ने प्रेम को छोड़ दिया है। उसने प्रेम को नए अर्थ में ग्रहण किया है। पारम्परिक ग़ज़ल में प्रेम प्रायः रूमानी, रहस्यात्मक या सूफियाना रूप में आता था। हिन्दी ग़ज़ल में प्रेम मानवीय करुणा, संबंधों की टूटन, स्मृति, प्रतीक्षा, अकेलेपन और आत्मीयता के रूप में उपस्थित है।

आधुनिक जीवन में मनुष्य जितना अधिक सामाजिक रूप से जुड़ा दिखाता है, उतना ही भीतर से अकेला होता जाता है। हिन्दी ग़ज़ल इस अकेलेपन को आवाज देती है। वह प्रेम को केवल निजी भावुकता नहीं बनाती, बल्कि मनुष्य की संवेदनशीलता बचाने का साधन बनाती है। इस अर्थ में प्रेम भी सामाजिक सरोकार है, क्योंकि संवेदनहीन समाज में प्रेम प्रतिरोध का रूप ले लेता है।

सांस्कृतिक संक्रमण और भाषा की राजनीति

हिन्दी ग़ज़ल का एक महत्वपूर्ण सरोकार भाषा और संस्कृति का प्रश्न है। हिन्दी ग़ज़ल ने हिन्दी, उर्दू, लोकभाषा और बोलचाल के मिश्रित मुहावरे को अपनाया। इसने यह सिद्ध किया कि भाषा का साहित्यिक सौन्दर्य केवल संस्कृतनिष्ठ या फ़ारसीनिष्ठ शब्दावली में नहीं, बल्कि जीवित जनभाषा में भी होता है।

हिन्दी ग़ज़ल की भाषा कई बार हिन्दी-उर्दू की कृत्रिम दीवारों को तोड़ती है। वह 'हिन्दुस्तानी' सांस्कृतिक चेतना की प्रतिनिधि विधा बनती है। यही कारण है कि हिन्दी ग़ज़ल सांप्रदायिक या भाषाई संकीर्णता के विरुद्ध भी एक सांस्कृतिक हस्तक्षेप है। ग़ज़ल की परम्परा स्वयं बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक है; हिन्दी ग़ज़ल इस परम्परा को आधुनिक भारतीय लोकतांत्रिक संदर्भ में फ़नस्थापित करती है।

हिन्दी ग़ज़ल का शिल्प

शेर की स्वतंत्रता और अर्थ-सघनता

ग़ज़ल का मूल आधार शेर है। प्रत्येक शेर दो पंक्तियों का होता है और प्रायः अपने अर्थ में स्वतंत्र होता है। यही स्वतंत्रता ग़ज़ल को विशेष बनाती है। कविता की अन्य विधाओं में अर्थ क्रमशः विकसित होता है, पर ग़ज़ल में प्रत्येक शेर एक स्वतंत्र भाव-क्षण, विचार-चमक या अनुभव-संक्षेप हो सकता है। ठतपजंददपब ने भी ग़ज़ल के शेर को एक पूर्ण अर्थ-इकाई के रूप में समझने की ओर संकेत किया है।

हिन्दी ग़ज़ल में शेर की यह स्वतंत्रता बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। सामाजिक-राजनीतिक वक्तव्य को छोटे और मारक रूप में व्यक्त करने की क्षमता ग़ज़ल को मिली। एक अच्छा शेर केवल कथन नहीं होता, वह पाठक के भीतर अर्थ की गूँज छोड़ता है। हिन्दी ग़ज़ल की शक्ति इसी अर्थ-सघनता में है।

मतला, मक़्ता, काफ़िया और रदीफ़

ग़ज़ल के शिल्प में मतला, मक़्ता, काफ़िया और रदीफ़ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मतला ग़ज़ल का पहला शेर होता है जिसमें दोनों मिसरों में काफ़िया और रदीफ़ आते हैं। इसके बाद प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे में वही काफ़िया-रदीफ़ योजना चलती है। च्वमजतल थ्वनदकंजपवद के अनुसार रदीफ़ वही आवर्ती शब्द या पदांश है जो प्रत्येक सम्बद्ध पंक्ति के अंत में आता है, और काफ़िया वह तुक है जो रदीफ़ से पहले आता है। [बंकमउल वी।उमतपबंद च्वमजे भी ग़ज़ल की संरचना में पहली द्विपदी द्वारा तुक और तमतिपद की योजना स्थापित होने की बात करता है।

मक़्ता ग़ज़ल का अंतिम शेर होता है जिसमें परम्परागत रूप से कवि अपना तख़्ख़ल्लुस लाता है। हिन्दी ग़ज़ल में तख़्ख़ल्लुस का प्रयोग अनिवार्य नहीं रहा, लेकिन कई कवियों ने इसे अपनाया भी है। आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल में शिल्प के स्तर पर लचीलापन दिखाता है। कुछ कवि शास्त्रीय अनुशासन का कठोर पालन करते हैं, जबकि कुछ कथ्य की आवश्यकता के अनुसार छूट लेते हैं। फिर भी सफल हिन्दी ग़ज़ल वही मानी जाती है जिसमें शिल्पगत सजगता और कथ्यगत प्रामाणिकता दोनों हों।

बहर और लय

ग़ज़ल की पारम्परिक संरचना में बहर अर्थात् छंद या मीटर का विशेष महत्व है। बहर ग़ज़ल को लयात्मक अनुशासन देती है। उर्दू-फ़ारसी परम्परा में बहर का कठोर पालन किया गया। हिन्दी ग़ज़ल में बहर को लेकर दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। पहली प्रवृत्ति शास्त्रीय अनुशासन का पालन करती है और ग़ज़ल को अरूज की कसौटी पर कसती है। दूसरी प्रवृत्ति हिन्दी छंद-बोध और बोलचाल की लय को अधिक महत्व देती है।

यहाँ संतुलित दृष्टि आवश्यक है। यदि ग़ज़ल पूरी तरह शिल्पहीन हो जाए तो वह ग़ज़ल न रहकर केवल दो-पंक्तियों की कविता बन जाती है। दूसरी ओर, यदि शिल्प इतना कठोर हो जाए कि कथ्य की स्वाभाविकता नष्ट हो जाए, तो ग़ज़ल कृत्रिम हो जाती है। हिन्दी ग़ज़ल की श्रेष्ठ परम्परा में लय, बहर, कथ्य और भाषा का संतुलित संयोजन मिलता है।

भाषा और मुहावरा

हिन्दी ग़ज़ल की सबसे बड़ी उपलब्धि उसकी भाषा है। उसने न तो शुद्धतावादी हिन्दी को पूरी तरह स्वीकार किया और न उर्दू की पारम्परिक अलंकारिकता में स्वयं को सीमित रखा। उसने ऐसी भाषा विकसित की जो हिन्दी, उर्दू, लोक और बोलचाल-सभी से ऊर्जा लेती है। यही भाषा उसे व्यापक पाठकीयता देती है।

दुष्यंत कुमार की लोकप्रियता का एक कारण उनकी भाषा की लोकतांत्रिकता है। वे कठिन शब्दों से प्रभाव पैदा नहीं करते, बल्कि साधारण शब्दों को असाधारण अर्थ-ऊर्जा देते हैं। हिन्दी ग़ज़ल का मुहावरा सड़क, संसद, गाँव, शहर, घर, दफ्तर, खेत, बाजार और मनुष्य के भीतर-सभी जगह से बनता है। इसीलिए वह आधुनिक जीवन की बहुरंगी जटिलता को व्यक्त कर पाती है।

प्रतीक, बिम्ब और व्यंग्य

हिन्दी ग़ज़ल में प्रतीक और बिम्ब अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। परम्परागत ग़ज़ल में साकधे, मय, मयखघना, शमा, परवाना, गुल, बुलबुल, जुल्फ़, खंजर, दिल आदि प्रतीक मिलते हैं। हिन्दी ग़ज़ल ने इन प्रतीकों का प्रयोग किया, लेकिन इनके साथ नए प्रतीक भी जोड़े-धूप, अँधेरा, दीवार, चौराहा, संसद, कुर्सी, भूख, रोटी, शहर, धुआँ, नदी, फूल, भीड़, घर आदि।

व्यंग्य हिन्दी ग़ज़ल का प्रभावी शिल्प-तत्त्व है। ग़ज़ल का संक्षिप्त शेर जब व्यंग्य से भरता है तो वह व्यवस्था की परतें खोल देता है। हिन्दी ग़ज़ल में व्यंग्य केवल हास्य नहीं है; वह नैतिक क्रोध, पीड़ा और विवेक का रूप है। यह व्यंग्य पाठक को चौंकाता है और सोचने के लिए बाध्य करता है।

हिन्दी ग़ज़ल और आधुनिक भारतीय समाज

हिन्दी ग़ज़ल आधुनिक भारतीय समाज की बेचौनियों का जीवंत दस्तावेज है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने लोकतंत्र, औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक दृष्टि, सामाजिक न्याय और समान अवसरों के बड़े आदर्श अपनाए। परन्तु समाज में असमानता, जाति, वर्ग, भ्रष्टाचार, गरीबी और सांस्कृतिक विभाजन बने रहे। हिन्दी ग़ज़ल ने इन विरोधाभासों को बहुत तीखे ढंग से दर्ज किया।

हिन्दी ग़ज़ल का कवि आम आदमी की तरफ़ खड़ा दिखाई देता है। वह सत्ता की भाषा में नहीं बोलता; वह नागरिक की भाषा में बोलता है। यह नागरिकता केवल संवैधानिक स्थिति नहीं, बल्कि नैतिक चेतना है। हिन्दी ग़ज़ल का कवि पूछता है कि लोकतंत्र में जनता कहाँ है, न्याय कहाँ है, स्वतंत्रता का अर्थ क्या है, विकास किसके लिए है और भाषा किसकी है।

इसी कारण हिन्दी ग़ज़ल जन-संस्कृति से जुड़ती है। वह फ़स्तकीय विधा होते हुए भी मौखिक परम्परा से संवाद करती है। ग़ज़ल सुनने की विधा भी है, याद रखने की विधा भी, दोहराने की विधा भी और उद्धृत करने की विधा भी। इसकी संक्षिप्तता इसे जन-प्रसार की क्षमता देती है। एक प्रभावी शेर आंदोलन, भाषण, लेख, पोस्टर और स्मृति-सभी में प्रवेश कर सकता है।

हिन्दी ग़ज़ल की चुनौतियाँ

हिन्दी ग़ज़ल की लोकप्रियता जितनी बड़ी है, उसकी चुनौतियाँ भी उतनी ही गंभीर हैं। पहली चुनौती शिल्पगत अनुशासन की है। कई बार ग़ज़ल के नाम पर केवल तुकबंदी प्रस्तुत कर दी जाती है। क़ाफ़िया, रदीफ़, बहर, शेर की स्वतंत्रता और अर्थ-सघनता की उपेक्षा ग़ज़ल को कमजोर करती है।

दूसरी चुनौती कथ्य की फ़नरावृत्ति है। दुष्यंत कुमार के प्रभाव में अनेक कवियों ने सत्ता-विरोधी स्वर अपनाया, परन्तु कई बार वह स्वर नारे में बदल गया। अच्छी ग़ज़ल नारे से आगे जाती है; वह अनुभव, संवेदना और कला का संतुलन रखती है। केवल आक्रोश कविता नहीं बनाता, जब तक वह भाषा और शिल्प में कलात्मक रूप न पाए।

तीसरी चुनौती भाषा की है। हिन्दी ग़ज़ल को न तो अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ भाषा में बंद होना चाहिए और न केवल उर्दू-प्रदर्शन में। उसकी शक्ति जीवित भाषा में है। वह भाषा जो जनता बोलती है, जिसमें समय साँस लेता है, जिसमें शहर और गाँव दोनों की गंध हो-वही हिन्दी ग़ज़ल की वास्तविक भाषा है।

चौथी चुनौती बाजार और मंचीयता की है। मंच ने ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाया, परन्तु कभी-कभी मंचीय प्रभाव के लिए गहराई का बलिदान भी हुआ। गंभीर हिन्दी ग़ज़ल को लोकप्रियता से परहेज नहीं करना चाहिए, पर लोकप्रियता के लिए कलात्मकता छोड़ना भी उचित नहीं है।

हिन्दी ग़ज़ल की उपलब्धियाँ

इन चुनौतियों के बावजूद हिन्दी ग़ज़ल की उपलब्धियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उसने हिन्दी कविता को नई कथन-शक्ति दी। उसने संक्षिप्तता में व्यापक सामाजिक अर्थ भरने की कला विकसित की। उसने कविता को पाठक और श्रोता दोनों से जोड़ा। उसने भाषा की सांस्कृतिक साझेदारी को मजबूत किया। उसने प्रेम और प्रतिरोध, निजी और सार्वजनिक, सौन्दर्य और राजनीति, करुणा और व्यंग्य-इन सभी को एक साथ साधा।

हिन्दी ग़ज़ल की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने ग़ज़ल को भारतीय लोकतांत्रिक जीवन की विधा बना दिया। अब ग़ज़ल केवल महबूब से संवाद नहीं करती, वह समाज से भी संवाद करती है; केवल दिल की बात नहीं कहती, वह व्यवस्था से भी प्रश्न करती है; केवल सौन्दर्य नहीं रचती, वह नागरिक विवेक भी जगाती है।

निष्कर्ष

हिन्दी ग़ज़ल परम्परा और नवता के रचनात्मक संघर्ष से बनी विधा है। उसने अरबी-फ़ारसी-उर्दू परम्परा से शिल्प प्राप्त किया, हिन्दी काव्य-भूमि से संवेदना ली और आधुनिक भारतीय समाज से अपने सरोकार अर्जित किए। इसीलिए हिन्दी ग़ज़ल की पहचान किसी एक स्रोत से निर्धारित नहीं होती। वह मिश्रित, बहुल, संवादधर्मी और परिवर्तनशील विधा है।

हिन्दी ग़ज़ल का विकास इस बात का प्रमाण है कि कोई भी साहित्यिक विधा स्थिर नहीं रहती। वह समय, समाज और भाषा के साथ बदलती है। ग़ज़ल ने हिन्दी में आकर अपने फ़राने सौन्दर्य को छोड़ा नहीं, बल्कि उसे नए अर्थों से भरा। उसने प्रेम को करुणा में, करुणा को प्रतिरोध में, प्रतिरोध को जनचेतना में और जनचेतना को कलात्मक अभिव्यक्ति में रूपांतरित किया।

आज जब समाज में असमानता, संवेदनहीनता, भाषाई विभाजन, राजनीतिक ध्रुवीकरण और सांस्कृतिक संकट गहरे हो रहे हैं, हिन्दी ग़ज़ल की भूमिका और महत्व बढ़ जाता है। वह संक्षिप्त होते हुए भी गहरी है, लोकप्रिय होते हुए भी गंभीर हो सकती है, परम्परागत होते हुए भी आधुनिक है। हिन्दी ग़ज़ल की वास्तविक शक्ति इसी द्वंद्वात्मकता में है। वह अतीत से संवाद करती है, वर्तमान को पहचानती है और भविष्य की नैतिक संभावना को बचाए रखती है।

संदर्भ-सूची

1. दुष्यंत कुमार. साये में धूप. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. अदम गोंडवी. धरती की सतह पर. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
3. नामवर सिंह. कविता के नए प्रतिमान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. रामविलास शर्मा. भाषा और समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. नगेन्द्र. काव्यशास्त्र की भूमिका. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
6. बच्चन सिंह. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
7. शम्सुर्रहमान फ़ारूकी. उर्दू ग़ज़ल के महत्वपूर्ण मोड़. नई दिल्ली: राजकमल/वाणी प्रकाशन.
8. फ़िराक़ गोरख़पुरी. ग़ज़ल और ग़ज़ल की शिक्षा. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
9. Britannica. "Ghazal." Encyclopaedia Britannica.
10. Poetry Foundation. "Ghazal."
11. Academy of American Poets. "Ghazal."
12. Rekhta. "दुष्यंत कुमार की हिंदी ग़ज़लें."
13. Hindwi. "दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें."
14. Webdunia Hindi. "हिन्दी ग़ज़लों में सराहनीय है दुष्यंत कुमार की भूमिका."
15. IJCRT. "दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में सामाजिक चेतना."

गोविन्द मिश्र के कथा-साहित्य में नारी चेतना के विविध आयाम और उनके संवेदनात्मक स्वरूप

दीपक कुमार

मुजफ्फरपुर

सार:

प्रस्तुत शोध—आलेख समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार गोविन्द मिश्र के उपन्यासों और कहानियों में अभिव्यक्त नारी चेतना, उनके विविध सामाजिक स्वरूपों तथा बदलते पारिवारिक सरोकारों का एक सघन और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय समाज में ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक काल की गरिमापूर्ण स्थिति से लेकर मध्यकाल, ब्रिटिश शासन और स्वातंत्र्योत्तर भारत तक स्त्री के अस्तित्वगत अवमूल्यन और उसके बाद आधुनिक शिक्षा के माध्यम से आए युगांतरकारी परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में इस पत्र की रूपरेखा निर्मित की गई है। गोविन्द मिश्र ने पारंपरिक रूढ़ियों का निषेध करते हुए अपनी रचनाओं में सबल, शिक्षित और आत्मनिर्भर स्त्री चरित्रों को प्रमुखता से उभारा है। प्रस्तुत शोध-पत्र उनके प्रमुख उपन्यासों जैसे 'पाँच आँगनों वाला घर', 'धूल पौधों पर', 'खिलाफत', 'तुम्हारी रोशनी में' तथा 'लहर' और 'तुम हो' जैसी प्रतिनिधि कहानियों के स्त्री पात्रों (जैसे— जोगेश्वरी, ओमी, रश्मि, सुवर्णा, सुषमा आदि) के माध्यम से नारी के विविध रूपों का मूल्यांकन करता है। आलेख में स्त्री की सहनशीलता, पारिवारिक उत्तरदायित्व, पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध उसकी विद्रोही चेतना, सह-अस्तित्व की आकांक्षा और आधुनिक परिवेश जनित कुंठाओं व अंतर्विरोधों का पैनी यथार्थवादी दृष्टि से उद्घाटन किया गया है।

प्रमुख शब्द: गोविन्द मिश्र, कथा-साहित्य, नारी चेतना, आत्मनिर्भरता, विद्रोही स्वरूप, पुरुष-सत्तात्मक समाज, पारिवारिक मूल्य, यथार्थवाद, आधुनिकता।

गोविन्द मिश्र के कथा-साहित्य में नारी चेतना के विविध आयाम और उनके संवेदनात्मक स्वरूप

भारतीय समाज और संस्कृति के ताने-बाने में नारी का स्थान सदैव से अत्यंत महत्वपूर्ण और केंद्रीय रहा है, जिसके अभाव में न तो किसी सभ्य समाज की कल्पना की जा सकती है और न ही मानव सृष्टि के सातत्य व विकास को गति दी जा सकती है। यदि भारत के सांस्कृतिक इतिहास का विहंगम अवलोकन किया जाए, तो वैदिक काल में स्त्री की स्थिति अत्यंत गरिमापूर्ण थी जहाँ उसे आदि शक्ति, अर्द्धांगिनी और गृहलक्ष्मी जैसे उच्चासन पर प्रतिष्ठित करते हुए “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता” की उदात्त भावना से देखा जाता था। किंतु कालक्रम में ऐतिहासिक विसंगतियों और विदेशी आक्रमणों के प्रभावस्वरूप मध्यकाल और मुगलकाल तक आते-आते स्त्री की इस सामाजिक स्थिति का तीव्र अवमूल्यन और पतन होने लगा। समाज में कन्यावध, सती प्रथा, बाल विवाह और पर्दा प्रथा जैसी क्रूर रूढ़ियाँ जड़ जमा चुकी थीं, जिन्होंने ब्रिटिश शासनकाल के दौरान स्त्री को पूरी तरह अधिकारविहीन, पराश्रित, अनमेल विवाह व दहेज की वेदी पर बलि होने वाली और केवल उपभोग की वस्तु बनाकर चारदीवारी में कैद कर दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के संक्रमण काल में भी स्त्री की यह दयनीयता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थी। समकालीन दौर में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा, महानगरीय बोध और आर्थिक आत्मनिर्भरता ने स्त्री की स्थिति और चेतना में व्यापक बदलाव पैदा किए हैं, जिनका अत्यंत सूक्ष्म, यथार्थवादी और जागृत अंकन गोविन्द मिश्र के कथा-साहित्य का मूल प्रतिपाद्य बनकर सामने आता है।

गोविन्द मिश्र का कथा-संसार मुख्य रूप से आधुनिक जीवन के अंतर्विरोधों, टूटते हुए पारिवारिक ढांचों और बदलते मानवीय संबंधों को अपनी समूची सघनता में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वर्तमान औद्योगिक और उपभोक्तावादी युग में पति-पत्नी के अहं का टकराव, मानसिक व वैचारिक अलगाव, अत्यधिक भौतिकवादी लिप्सा, अविश्वास और आर्थिक तंगी के कारण दांपत्य जीवन गहरे अकेलेपन और संत्रास से घिर गया है। इस आधुनिक परिवेश में जहाँ युवा युवतियाँ अपनी स्वाभाविक आकांक्षाओं के दमन जनित घुटन को भोगने के लिए विवश हैं, वहीं परित्यक्ता और विधवा स्त्रियाँ समाज के उपेक्षापूर्ण रवैये के कारण एक अभिशप्त जीवन जीने को विवश हैं। इन विसंगतियों का एक प्रमुख कारण पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण भी है, जिसके चलते पारंपरिक पारिवारिक राग-विराग, भाई-भाई, माता-पिता और संतान के मध्य का स्वाभाविक स्नेह अब स्वार्थ, महँगाई और एकाकीपन की भेंट चढ़ चुका है। गोविन्द मिश्र ने इस बदलते सामाजिक परिदृश्य को बहुत निकट से देखा है और उन्होंने पाया कि इन समस्त बदलावों के समानांतर नारी के स्वरूप और उसकी अस्मिता की लड़ाई में भी एक युगांतरकारी परिवर्तन घटित हुआ है।

गोविन्द मिश्र के कथा-साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि यह है कि उन्होंने स्त्री को पारंपरिक रूढ़ियों के घेरे से बाहर निकालकर एक सबल, सभ्य, सुसंस्कृत और आर्थिक रूप से स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में गढ़ा है। लेखक का नारी के प्रति यह प्रगतिशील दृष्टिकोण उनके आधुनिक बोध का परिचायक

है, जहाँ वे स्त्री की स्वतंत्र निर्णय क्षमता का सहर्ष स्वागत करते हैं। आधुनिक शिक्षा के व्यापक प्रसार ने स्त्री को आर्थिक मोर्चे पर पुरुषों के समकक्ष ला खड़ा किया है, जिसने उसे पारंपरिक पुरुष-प्रधान नियंत्रण से बहुत हद तक मुक्ति दिलाई है। मिश्र जी के साहित्य में स्त्री के कई रूप समानांतर चलते हैं: एक ओर वह अपनी ममतामयी छवि और आदर्श पत्नी के रूप में आर्थिक झंझावातों को झेलते हुए भी संपूर्ण सामर्थ्य के साथ विवाह संस्था और परिवार को बिखरने से बचाती है, तो दूसरी ओर अपनी अस्मिता पर चोट होने पर विद्रोहिणी का रूप भी धारण कर लेती है। उनके उपन्यास 'पाँच आँगनों वाला घर' की केंद्रीय पात्र जोगेश्वरी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, जो पति द्वारा दी जाने वाली शारीरिक व मानसिक प्रताड़नाओं को केवल इसलिए सहती है ताकि उसका परिवार बड़ा और सुदृढ़ हो सके। यहाँ तक कि पति के आकस्मिक अवसान पर भी वह शोक में डूबने के बजाय एक कुशल संभलकर्ता की भाँति अपने बड़े पुत्र राधेलाल को गृहस्थी के साँचे में ढालकर पूरे दायित्व को अपने कंधों पर उठा लेती है।

पारिवारिक मर्यादाओं को सहेजने वाली स्त्री की इस पारंपरिक भूमिका के साथ ही गोविन्द मिश्र आधुनिक युग की आत्मनिर्भर कामकाजी स्त्री के आंतरिक द्वंद्व को भी बहुत प्रामाणिकता से उकेरते हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'लहर' की पात्र रश्मि एक कामकाजी और आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री होने के बावजूद इस पुरुष-प्रधान समाज की उस संकीर्ण मानसिकता का दंश झेलती है, जो स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाती। रश्मि इस कटु यथार्थ को भली-भाँति अनुभव करती है कि समाज में स्त्री चाहे जितनी शिक्षित या स्वावलंबी हो जाए, विवाह के पश्चात उसे अनिवार्यतः अपनी वैयक्तिक इच्छाओं की आहुति देकर पति, घर और बच्चों के लिए होम होना ही पड़ता है। यह स्थिति स्त्री के भीतर एक गहरा अस्तित्वहीनता का बोध और आत्म-अपरिचय पैदा करती है, जहाँ उसे अपने स्त्री होने पर ही विरक्ति होने लगती है। इसके विपरीत, 'तुम्हारी रोशनी में' उपन्यास की सुवर्णा एक ऐसी आधुनिक और सजग नारी है जो दफ्तर और घर दोनों मोर्चों पर अपनी सफलता का परचम लहराना चाहती है। जब उसका पति रमेश उसके स्वतंत्र अस्तित्व पर आघात करता है और उसे अपनी बपौती समझकर शारीरिक व भावनात्मक यातनाएँ देता है, तो सुवर्णा पूरी तटस्थता के साथ पुरुष-सत्तात्मक अधिकारों को चुनौती देती हुई अपनी ईश्वरीय स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अंततः कड़ा और साधिकार फैसला लेती है।

मिश्र जी के कथा-साहित्य में स्त्री का एक अत्यंत प्रखर और विद्रोही रूप भी पाठकों के समक्ष आता है, जो अन्याय और अत्याचार के आगे किसी भी प्रकार का समझौता करने से साफ इनकार कर देता है। 'धूल पौधों पर' उपन्यास की नायिका इसका ज्वलंत उदाहरण है, जो विवाह के उपरांत ससुराल वालों द्वारा एक बेजान वस्तु की तरह प्रयुक्त होने और पति द्वारा रात भर एक हिंसक जानवर की भाँति शारीरिक रूप से रौंदे जाने की क्रूरता के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला में जलती है। वहीं दूसरी ओर, लेखक स्त्री की स्वतंत्रता की राह में स्वयं स्त्री द्वारा ही निर्मित अवरोधों और अंतर्विरोधों को भी रेखांकित करने से नहीं चूकते। समाज में बेटी और बेटे के जन्म पर किए जाने वाले दोहरे संस्कारों के विधान के साथ-साथ आज स्त्री ही स्त्री की स्वतंत्रता में बाधक बनती दिखाई देती है। 'खिलाफत' उपन्यास की पृष्ठभूमि में आयशा अन्दाबी का चरित्र इसी विसंगति को उजागर करता है, जो कश्मीर यूनिवर्सिटी से अरबी में स्नातकोत्तर होने के बावजूद स्त्रियों पर कट्टर धार्मिक संस्कारों को थोपने और बुर्का न पहनने वाली कामकाजी औरतों को प्रताड़ित कर उन्हें घर की चारदीवारी में कैद रखने का अभियान चलाती है।

स्त्री के इन बाह्य संघर्षों के अतिरिक्त मिश्र जी ने उसके आंतरिक एकांत और भावुकता जनित कुंठाओं का भी अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। 'तुम हो' कहानी की सुषमा इसका सशक्त उदाहरण है, जिसके पिता उसके ससुराल पक्ष पर दहेज का एक झूठा आरोप लगाकर उसे अपने घर ले आते हैं। सुषमा प्रारंभ में पिता के दबाव और अपनी मूल भावुक प्रकृति के कारण मूक रहकर इस मानसिक प्रताड़ना को सहती है और अंतःकरण में कुंठित होती रहती है। किंतु जब वह यथार्थ की कसौटी पर दोनों पक्षों का तटस्थ मूल्यांकन करती है, तो वह कुंठा के उस घने कोहरे से बाहर निकलकर अपने पिता के इस झूठे दंभ का पुरजोर विरोध करती है। वह साधिकार अपने अस्तित्व की घोषणा करते हुए आपसी रजामंदी से एक साधारण तलाक लेने का निर्णय स्वयं करती है, जो आधुनिक नारी के स्वावलंबन और हस्तक्षेप-विरोधी चेतना को रेखांकित करता है। इसके ठीक उलट, समाज का एक यथार्थ यह भी है कि जब-जब सामाजिक और आर्थिक विषमताओं ने पुरुष को कमजोर किया है, स्त्री ने अपनी प्रेममयी छाया में उसे संबल दिया है, जैसा कि 'पाँच आँगनों वाला घर' की ओमी के चरित्र में दिखता है जो अपने पति मोहन के प्रभावी व्यक्तित्व के सामने अपनी समस्त इच्छाओं को दबाकर आजीवन केवल उसका अनुसरण करने को ही अपनी नियति बना लेती है।

निष्कर्ष रूप में यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द मिश्र के कथा-साहित्य में युगीन समस्याओं को अत्यंत नवीन शिल्प और यथार्थवादी कलेवर में प्रस्तुत करने का एक अद्भुत कलात्मक हुनर विद्यमान है। उनके साहित्यालोचन में समाज और संस्कृति के गहरे सरोकार प्रतिबिंबित होते हैं। एक सजग और आशावादी रचनाकार होने के नाते उन्होंने स्त्री जीवन के समग्र यथार्थ, उसकी अंतहीन पीड़ाओं, गरीबी, भुखमरी और सामाजिक ऊँच-नीच के भेदभाव के बीच उसकी अस्मिता की खोज को बहुत सूक्ष्मता से उकेरा है। मिश्र जी द्वारा रचित नारी के ये विविध रूप जहाँ एक ओर हमारी पारंपरिक संवेदनाओं और संस्कारों को सहलाते हैं, वहीं दूसरी ओर बदलते परिवेश और युगीन मूल्यों के प्रभावस्वरूप उन रूढ़ जंजीरों को तोड़कर एक नई समतामूलक और न्यायपूर्ण दुनिया के निर्माण की चाह भी जगाते हैं। स्त्री चेतना को उसकी समग्रता, जटिलता और अंतर्विरोधों के साथ साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित करना ही गोविन्द मिश्र की वह महान कथात्मक उपलब्धि है जो उनके साहित्य को शाश्वत और प्रासंगिक बनाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिश्र, गोविन्द: 'पाँच आँगनों वाला घर', किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 28।
2. मिश्र, गोविन्द: 'पाँच आँगनों वाला घर', किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 28-29।

3. मिश्र, गोविन्द: 'लहर', कहानी समग्र (भाग-३), पृष्ठ 148।
4. मिश्र, गोविन्द: 'लहर', कहानी समग्र (भाग-३), पृष्ठ 149।
5. मिश्र, गोविन्द: धूल पौधों पर, पृष्ठ 23।
6. मिश्र, गोविन्द: 'खिलाफत', पृष्ठ 141।
7. मिश्र, गोविन्द: 'तुम हो', कहानी समग्र (भाग-३), पृष्ठ 253-254।
8. मिश्र, गोविन्द: 'तुम हो', कहानी समग्र (भाग-३), पृष्ठ 256।
9. मिश्र, गोविन्द: 'तुम्हारी रोशनी में', पृष्ठ 20।
10. मिश्र, गोविन्द: तुम्हारी रोशनी में, पृष्ठ 148।
11. मिश्र, गोविन्द: पाँचों आँगनों वाला घर, पृष्ठ 158।
12. कान्त, सुदेश (2020): गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य में नारी का स्वरूप, अमन प्रकाशन।

श्रम के दुष्चक्र में विलीन बाल श्रमिकों की शिक्षा एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रीति कुमारी

(स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग), तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

बाल श्रम एक गंभीर सामाजिक दुर्व्यवहार है जो बच्चों के भविष्य को प्रभावित करता है, विशेषकर विकासशील देशों में। मानव जाति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने बच्चों के साथ उनके संरक्षकों द्वारा जो शोषण होता रहा है, उसकी काली तस्वीर प्रदर्शित की है। संरक्षकों ने बच्चों की सुरक्षा तथा देखभाल के बजाय उनके साथ गलत व्यवहार किया है और उन्हें वयस्कों के दायित्व निभाने के लिये प्रेरित किया है। जिससे बच्चों के बचपन के साथ खिलवाड़ हुआ है। “बाल श्रम” की व्याख्या सामान्यतः दो भिन्न-भिन्न रूपों में की जाती है, प्रथम आर्थिक कार्यप्रणाली के रूप में तथा द्वितीय एक सामाजिक बुराई के सन्दर्भ में।

आर्थिक कार्यप्रणाली के रूप में यह बच्चों द्वारा पारिवारिक आय में बढ़ोत्तरी करने के लिए लाभकारी व्यवसायों के अंदर रोजगार को प्रदर्शित करता है। सामाजिक बुराई की दृष्टि से उसकी प्रकृति एवं सीमा के आंकलन में यह महत्वपूर्ण है कि उन क्रियाकलापों की प्रकृति ध्यान में रखी जाए, जिन कार्यों में बच्चे संलग्न हैं। वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तरीके से अपने विकास तथा शिक्षा के साथ संघर्षशील रहते हैं। इस प्रकार समाज में बाल श्रम स्वयं सामाजिक बुराई के रूप में प्रकट होता है। सभ्यता, संस्कृति के विकास एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने बाल श्रम की कुप्रथा को समय के साथ मजबूती प्रदान की है। आधुनिक औद्योगीकरण की संस्कृति ने बच्चों को चिमनियों के स्वरूप में उद्योग-धंधों में नियोजित किया है। निम्न आर्थिक स्थिति के कारण बाल श्रमिक अभी भी शिक्षा से काफी दूर हैं। शिक्षा एक सुदृढ़, सक्षम व सभ्य समाज की मार्गदर्शक होती है। देश में निर्धनता और अशिक्षा प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। ये दोनों कारक बाल श्रमिकों के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास में रुकावट उत्पन्न करते हैं। श्रम, बाल श्रमिकों की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करता है और उनसे शिक्षा का अधिकार छीन लेता है। इस प्रकार बाल श्रम पीढ़ी दर पीढ़ी उनको गरीबी के दुष्चक्र से मुक्त नहीं होने देता है। बाल श्रम तथा शिक्षा पर 2015 की रिपोर्ट- ‘चुनौतियाँ, भविष्य की दशा तथा प्रगति में आई.एल.ओ. (ILO)’ ने बच्चों द्वारा स्कूली शिक्षा से दूरी बनाने में उत्तरदायी बाल श्रम की प्रमुखता के साथ-साथ सस्ती, अच्छी व सुलभ स्कूली शिक्षा के अभाव का विश्लेषण किया है।

यह अध्ययन भारत में बच्चों के मनोविज्ञान, स्वास्थ्य, शिक्षा और पारिवारिक जीवन पर बाल श्रम के प्रभावों की पड़ताल करता है।

मुख्य शब्द: श्रम, विलीन, बाल श्रमिक, शिक्षा, चुनौतियाँ, निर्धनता।

प्रस्तावना

देश का उचित विकास बच्चों की गुणवत्ता पर आधारित होता है। समाज में बाल श्रम, गरीबी व शिक्षा के मध्य एक त्रिकोणात्मक संबंध है। ये तीनों आपस में कारण एवं परिणाम बनकर बाल श्रमिकों के बचपन के विरुद्ध दुष्चक्र बनावे हैं। गरीबी की उपज अशिक्षा व बाल श्रम, बाल श्रम की उपज गरीबी व अशिक्षा और अशिक्षा से बाल श्रम व गरीबी बढ़ती व पनपती है। बाल श्रम देश में काला धन उत्पन्न करने में मुख्य रूप से सहायक है। काला धन गरीबी में बढ़ोत्तरी करता है। देश में प्रत्येक महीने 18,000 करोड़ से अधिक काला धन बाल श्रमिकों द्वारा उत्पन्न किया जाता है। बाल श्रम के कारण बेरोजगारी है, बेरोजगारी से बाल श्रम नहीं, क्योंकि बाल श्रमिकों की बड़ी संख्या वयस्क बेरोजगारी को बढ़ावा देती है। श्रम के कारण बाल श्रमिक शिक्षा से काफी दूर हैं। वे सरकारी व गैर सरकारी कार्यों में श्रमिक की भूमिका निभा रहे हैं और अशिक्षित रहकर अपने मूल अधिकारों से अवगत नहीं हो पाते हैं। यूनिसेफ, डब्ल्यूएचओ, यूएनओ, आईएलओ तथा भारतीय बाल कल्याण परिषद आदि अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने बाल श्रमिकों की सुरक्षा हेतु अहम भूमिका निभाई है।

भारत में बाल श्रम परिदृश्य

भारत में बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ती जा रही है। वर्ष 2011 के अनुसार देश में 1,17,20,724 बाल श्रमिक हैं, जिनको खतरनाक कारखानों में श्रम करते, कूड़ा बीनते, फुटपाथों पर सामान बेचते, घरेलू नौकर का काम करते तथा कृषि कार्यों को करने के साथ अनेक कार्यों में संलग्न देखा जा सकता है। आज देश में 6 से 14 आयु समूह के निरक्षर बाल श्रमिकों की संख्या 19.24 मिलीयन के आसपास है जो बाल श्रम की ही देन है। इन मासूमों के नाजुक हाथों में किताब व कलम होनी चाहिये उन हाथों में भारी औजार एवं कचरे का थैला थमा दिया जाता है। देश में 85 प्रतिशत के लगभग बाल श्रमिक बहिष्कृत

तथा अदृश्य स्थिति में हैं क्योंकि वे असंगठित क्षेत्र में श्रम करते हैं, जो कानूनी दायरे से बिल्कुल बाहर है। ये बच्चे नेत्ररोग, फेफड़ों के रोग, अस्थिमा, ब्रोकाइकटस तथा पीठ के दर्द आदि से ग्रस्त रहते हैं।²

भारत में सर्वाधिक बाल श्रम कराने वाले राज्य

भारत में सर्वाधिक बाल श्रम (Child Labour) कराने वाले राज्यों में उत्तर प्रदेश शीर्ष पर है, जिसके बाद क्रमशः बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र का स्थान आता है। जनगणना और विभिन्न बाल संरक्षण संस्थाओं (जैसे Bal Raksha Bharat) के आँकड़ों के अनुसार, देश के कुल बाल श्रमिकों का 50% से अधिक हिस्सा इन्हीं पांच राज्यों में केंद्रित है।

राज्य	प्रतिशत	संख्या (मिलियन में)
उत्तर प्रदेश	21.5	2.18
बिहार	10.7	1.09
राजस्थान	8.4	0.85
महाराष्ट्र	7.2	0.73
मध्य प्रदेश	6.9	0.70

स्रोत:- भारत की जनगणना 2011

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (2013) द्वारा भारत में एक अध्ययन में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 70 प्रतिशत माचिस तथा पटाखे शिवकाशी से उत्पादित होते हैं, शिवकाशी में वर्ष 2011 में 9,500 से भी अधिक पटाखा फैक्ट्रियाँ थी तथा आतिशबाजी का 90 प्रतिशत उत्पादन शिवकाशी में ही होता था। भारत में 500 माचिस फैक्ट्रियाँ 75 प्रतिशत माचिस की माँग को पूर्ण करती थी (आहूजा, राम, 2019: 252-257)। देश में बच्चों का वृहद समूह गरीबी के कारण अपना अस्तित्व बचाने के लिये श्रम को साधन बनाता है। यह बच्चों के स्वर्णिम भविष्य का उपहास है, ये नादान अल्पायु में रोजी रोटी कमाने वाले श्रमिक बनने के लिए मजबूर हैं। इस प्रकार भारत जनसंख्या की दृष्टि के आधार पर विश्व में दूसरा स्थान रखता है, जहाँ शिक्षा और अधिक महत्व रखती है।³

अध्ययन का महत्व

वर्तमान समय में बाल श्रम एक गम्भीर समस्या है। इस औद्योगिकवादी, विकासवादी देश में श्रमिक बच्चों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। कोरोना संक्रमण महामारी ने बाल श्रमिकों के अधिकारों पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। इस महामारी ने लाखों बच्चों का भविष्य व उनकी औपचारिक शिक्षा को प्रमुख रूप से बाधित किया है। उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है तथा वे पहले की अपेक्षा अधिक असुरक्षित हैं। गरीब अभिभावक अपने बच्चों को शिक्षित करने में रूचि नहीं रखते केवल उन्हें श्रम करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। बाल श्रम को समाप्त करने तथा बच्चों को शिक्षित करने के लिये अनेक अधिनियम पारित किये गये हैं, लेकिन इन अधिनियमों के पारित होने के बाद भी देश में बाल श्रम तथा अशिक्षितों का स्तर बढ़ता ही जा रहा है। इस बढ़ते प्रतिशत का मुख्य कारण जागरूकता का अभाव है। बाल श्रमिकों को अधिनियमों की सही जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती परिणामस्वरूप वे सरकारी लाभ लेने में असमर्थ होते हैं और जीवनभर ज्ञान के अभाव में अपने अधिकारों से वंचित रह जाते हैं।⁴

साहित्य समीक्षा

महाजन, प्रेमिला एण्ड चन्द, एस. (2006) इन्होंने अपनी पुस्तक 'स्टेट्स ऑफ चाइल्ड लेबर' में शिक्षा के ज्ञानरूपी प्रकाश के अभाव में बाल श्रमिकों की समाज में जो दुर्दशा होती है उसका वर्णन किया है। श्रमिक बच्चे स्कूली शिक्षा से बाहर होने के कारण कक्षा संरचना में नीचे पायदान में आते हैं। बाल श्रमिक जब वयस्क अवस्था पर पहुँचते हैं तब उन्हें यह आभास होता है कि स्कूली प्राथमिक शिक्षा की अनुपस्थिति ने उनके गतिशीलता के मार्ग को शून्य कर दिया है तथा अगली पीढ़ी के लिए नुकसान को फिर से कायम रखा है।⁵

कुमार, विनोद (2008) ने अपनी पुस्तक 'अनुसूचित जाति के बाल श्रमिक' में समाज के अन्दर बाल श्रम की बढ़ती समस्या का वर्णन किया है। बाल श्रम सामाजिक समस्या के साथ-साथ आर्थिक समस्या भी है। गरीबी तथा बेरोजगारी, शैक्षिक अव्यवस्था, बढ़ती जनसंख्या, संकीर्ण प्रथाएं तथा जागरूकता का अभाव आदि प्रमुख कारण विद्यमान हैं, जो बाल श्रम की कुप्रथा को गति प्रदान करते हैं। सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन बाल श्रम को बढ़ावा देने में मुख्य स्थान रखता है।

सिन्हा, आर. के. (2016) ने अपनी पुस्तक 'बेलाग लपेट' में देश में बाल श्रमिकों का यथार्थ वर्णन किया है। बाल श्रम देश में चिंता का विषय है। बाल श्रम किसी एक राज्य की समस्या नहीं है, इससे सम्पूर्ण देश प्रभावित है। बाल श्रम के निवारण के लिये ठोस प्रयास करने की आवश्यक पर बल दिया है, जिससे अभिभावक बच्चों से मिल रहे तात्कालिक लाभ को छोड़कर उनके उचित भविष्य के लिये चिंतित हो सकें।⁶

मीना, शशी (2019) ने अपने अध्ययन में अशिक्षित अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जो दृष्टिकोण रखते हैं उसका उल्लेख करते हुए लिखा है, कि अभिभावक बच्चों की शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं और बच्चों को श्रम करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं, ताकि बच्चे आर्थिक तंगी में परिवार को अपना सहयोग प्रदान कर सकें। किन्तु सच्चाई यह होती है कि अभिभावक गरीबी का बहाना लेकर बच्चों को श्रम में नियोजित करके उनका अहित करते रहते हैं और उन्हें उनके जीवन की जरूरी सुविधाओं से वंचित रखते हैं।⁷

आहूजा, राम (2019) ने प्रस्तुत अध्ययन में बाल श्रमिकों की श्रम के उपरांत जो दुर्दशा होती है उसका वर्णन किया है। उद्योग-धंधों में बाल श्रमिकों को शोषित किया जाता है तथा कार्य के लंबे समय के लिये भुगतान भी बहुव कम दिया जाता है। श्रमिक बच्चे नहीं जान पाते कि बचपन क्या होता है। शिक्षा को पीछे छोड़ ये बच्चे छोटी उम्र से ही विभिन्न जिम्मेदारियां निभाने को मजबूर होते हैं।⁸

दुआ, शिखा, मेहता, ऋचा एवं त्यागी, अंशु (2021) ने अपने शोध अध्ययन “बाल श्रम का आंशिक मूल्यांकन एक भारतीय परिप्रेक्ष्य” में देश में बाल श्रम की बढ़ती समस्या का विस्तृत वर्णन किया है। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि देश में बाल श्रम एक गम्भीर समस्या है। बाल श्रम का प्रमुख कारण बढ़ती आबादी, व्यापक बेरोजगारी तथा गरीब वर्ग के अंतर्गत वयस्क बेरोजगारी का व्याप्त होना है। जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी व गरीबी के परिणामस्वरूप बाल श्रम विकराल रूप लेता जा रहा है। बाल श्रम देश के विकास में रूकावट उत्पन्न करता है।⁹

यूनिसेफ ने अपने अध्ययन में बताया है कि “साक्षरता पहचानने, समझने, निर्माण करने, टोकने, वार्तालाप करने तथा अलग-अलग सन्दर्भों के साथ जुड़े और लिखित सामग्री के प्रयोग से गणना करने की क्षमता है।”¹⁰

बाल श्रमिकों के जीवन में आने वाली चुनौतियां

देश में बाल श्रमिकों की सुरक्षा, शिक्षा तथा विकास के लिए अनेक नियम, कानून बनाए गए हैं लेकिन फिर भी बाल श्रमिकों को अपने जीवन में विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। श्रमिक बच्चे श्रम के दौरान अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं, कुछ अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और साथ ही उद्योगपतियों के अपमान का शिकार भी होना पड़ता है। इन्हें प्रारंभिक अवस्था से ही स्कूली प्रारंभिक शिक्षा के बजाय प्रदूषित वातावरण में इनकी क्षमताओं से अधिक जोखिमपूर्ण कार्य कराए जाते हैं।¹¹

बाल श्रमिकों के मध्य निम्नलिखित चुनौतियाँ हैं-

उद्योग	स्वास्थ्य बाधाएँ एवं खतरा
माचिस उद्योग	आग दुर्घटना एवं तुरन्त मृत्यु
बीड़ी उद्योग	श्वसन रोग, टी.वी.
पत्थर एवं स्लेट खनन	सिलिकोसिस
शीशा तथा पावरलूम उद्योग	तपेदिक, दमा, श्वसन रोग, जलना तथा आँखों में खराबी आदि
चूड़ी उद्योग	चर्म रोग, ताप आघात, श्वसन दोष
जरी तथा कढ़ाई उद्योग	आँखों में त्रुटि तथा खराबी

स्रोत:-<https://hi.vikaspedia.in/education/child-righttss>

- स्वास्थ्य संबंधी समस्या- बाल श्रमिक विभिन्न जोखिमपूर्ण उद्योगों में श्रम करते हैं, जैसे- विस्फोटक पदार्थ तथा बारूदी माचिस निर्मित करना, पेंसिल बनाने, स्लेट तैयार करना, कांच की चूड़ियाँ बनाना, पत्थर, सीसा तथा धातु को चमकदार बनाने वाले काम अत्यधिक खतरनाक होते हैं, इन उद्योगों में श्रम करने से बाल श्रमिकों की कोमल उँगलियाँ विकृत तथा सड़-गल जाती हैं। इन उद्योगों में जो द्रव पदार्थ इस्तेमाल किया जाता है, उससे बाल श्रमिकों के शरीर की त्वचा झुलस जाती है। श्वसन क्रिया के दौरान जहरीली व प्राणशक्ति नाशक विभिन्न गैसों शरीर में पहुँचकर श्रमिक बच्चों की जीवन शक्ति को कम कर देती हैं। चूना, सीमेंट तथा कढ़ाई उद्योगों में छोटे-छोटे रेतों के कण शरीर में दाद, दमा, खाज-खुजली जैसी बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। श्रम बाल श्रमिकों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित कर देता है, यह मानवाधिकार का उल्लंघन है तथा संविधान के भी विरुद्ध है।
- अकाल मृत्यु:- बाल श्रमिकों के लिए खतरनाक उद्योगों में श्रम करना चुनौतीपूर्ण होता है। श्रम के दौरान बड़ी- बड़ी मशीनों के बीच भारी औजार उठाते समय थोड़ी असावधानी होने पर दुर्घटना होने का खतरा रहता है। कभी-कभी क्षमता के विरुद्ध अधिक समय तक कार्य करने से थके-हारे मशीनों के बीच आकर गिर जाते हैं और अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार बाल श्रमिक अपने शुरुआती कदनों में ही दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं। अनुच्छेद-24, 18 वर्ष तक के बच्चों को खतरनाक कार्यों से सुरक्षित रहने का अधिकार देता है।
- भ्रष्टाचार- समाज में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जहाँ बाल श्रम न कराया जाता हो तथा न ही ऐसा कोई उद्योग है जहाँ उद्योग मालिक बाल श्रमिकों के साथ भ्रष्टाचार न करता हो। मिर्जापुर में कालीन उद्योग, अलीगढ़ में ताले की फैक्ट्रियाँ, झारखण्ड में अभ्रक एवं कोयला खदानें, मुरादाबाद में पीतल के कारखाने, फिरोजाबाद में कांच उद्योग तथा राष्ट्रीय राजधानी के जरी कारखानों में बाल श्रमिक अपना बचपन, स्वास्थ्य, आजादी व पढ़ाई की कीमत से उद्योगपतियों को दौलत प्रदान करते हैं। आज इस भयंकर मंहगाई वाले समय में भी इन बाल श्रमिकों को इतनी कम मजदूरी प्राप्त होती है कि सही तरह से अपना जीवनयापन करने में भी कठिनाई होती है। इस प्रकार उद्योग मालिक बाल श्रमिकों से कठिन परिश्रम कराते हैं और मजदूरी न के बराबर प्रदान करते हैं।
- बाल शोषण:- देश में बाल श्रमिकों के साथ नियमित रूप से शोषण बढ़ता जा रहा है। विभिन्न उद्योगों में खुलकर बाल शोषण व बाल तस्करी मौजूद है। अभिभावक बालकों के साथ-साथ बालिकाओं को भी श्रम करने के लिए भेजते हैं और कुछ अभिभावक पैसों के लालच के लिये

बालिकाओं को बेच भी देते हैं। देश बालिकाओं के खिलाफ दुर्व्यवहार तथा यौन शोषण की सबसे खतरनाक समस्या से गुजर रहा है। बाल शोषण के शिकार श्रमिक बच्चों में 90 प्रतिशत से भी अधिक बालिकाएँ मौजूद हैं। श्रम के दौरान भी बालिकाओं को दुर्व्यवहार तथा यौन शोषण से संबंधित चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

- दरिद्रता तथा खान-पान:- दरिद्रता तथा भुखमरी बाल श्रमिकों के जीवन में गम्भीर चुनौती है। दरिद्रता उन्हें आवश्यक के अनुसार स्वच्छ तथा पोषणयुक्त भोजन भी नसीब नहीं होने देती है। दरिद्रता तथा अधिपोषण भोजन के विपरीत कुचक्र से पीड़ित रहते हैं। कुपोषण के शिकार होने के बावजूद भी बाल श्रमिक कम मजदूरी पर अधिक समय तक श्रम करने के लिए विवश होते हैं।
- शिक्षा तक पहुँच का अभाव:- देश में बाल श्रमिक शिक्षा से अधिक दूर हैं। शैक्षिक सुविधाओं के अभाव के कारण शिक्षा के ज्ञानरूपी प्रकाश से लाभान्वित नहीं हो पाते हैं और आजीवन अशिक्षित रह जाते हैं। सरकार शिक्षा संबंधी समस्याओं से भली-भाँति परिचित होते हुए भी अशिक्षा के निराकरण में असफल होती रही है।
- सड़कों पर जीवनयापन:- बाल श्रमिकों के जीवन में आश्रय स्थल की प्रमुख चुनौती विद्यमान रहती है। भारत विश्व में सड़कों पर जीवनयापन करने वाले श्रमिक बच्चों की सर्वाधिक आबादी वाला घर है। बाल श्रमिक पारिवारिक सुरक्षा तथा देखभाल से वंचित होते हैं। पाकों, सड़कों तथा कबाड़ के डिब्बों में रहने के लिए मजबूर होते हैं। सड़कों पर आश्रय लेने से श्रमिक बच्चे कुपोषण, स्वास्थ्य समस्याओं, भूख तथा यौन शोषण आदि घटनाओं के शिकार हो जाते हैं साथ ही अपना भोजन तथा आश्रय आवारा जानवरों के मध्य साझा करने के लिए विवश होते हैं।
- जबरन भिक्षावृत्ति:- देश में जबरन भिक्षावृत्ति कराने के करोड़ों रुपये के व्यापार मौजूद हैं। भिक्षावृत्ति के रूप में लाखों बच्चों से बाल श्रम करताया जाता है। भिक्षावृत्ति में संलग्न बाल श्रमिकों के साथ नशे की आदि से लेकर शारीरिक, मानसिक व यौन हिंसा के साथ-साथ उनकी अधिक दयनीय स्थिति बनाने के लिये अपंग बनाया जाता है तथा नियमित रूप से शारीरिक चोटों की चुनौतियों से भी गुजरना पड़ता है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगानुसार भारत में प्रत्येक वर्ष 40,000 से भी अधिक बच्चों के अपहरण की घटना के पीछे का मुख्य कारण भिक्षावृत्ति है।¹²
- शिक्षण सामग्री तथा छात्रावास की सुविधा का अभाव:- बाल श्रमिक शिक्षण सामग्री जुटाने में असमर्थ होते हैं। उनके पास इतना धन नहीं होता है कि वे अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के साथ-साथ शिक्षण सामग्री का भी खर्च उठा सकें। इस प्रकार शिक्षण सामग्री के अभाव में शिक्षा से संबंधित चुनौती का सामना करना पड़ता है। बाल श्रमिकों की शिक्षा अवरुद्ध होने में एक बड़ी चुनौती छात्रावास की कमी है, क्योंकि बाल श्रमिकों का परिवार धन के अभाव में एक ही कमरे में जीवन निर्वाह करता है। इस प्रकार उचित वातावरण की कमी बाल श्रमिकों की शिक्षा में रुकावट उत्पन्न करती है।
- निरक्षर अभिभावक:- बाल श्रमिकों के जीवन में निरक्षर अभिभावकों का होना भी एक सबसे बड़ी चुनौती है। परिवार में अभिभावकों की शिक्षा बच्चों के समाजीकरण तथा उचित मार्गदर्शन में विशेष महत्व रखती है। अशिक्षित अभिभावक शिक्षा के महत्व को नहीं समझते और अपने बच्चों की शिक्षा पर ध्यान नहीं देते हैं। इस प्रकार माता-पिता बच्चों की शिक्षा का तिरस्कार करते हैं और अपने साथ अपने बच्चों को भी श्रम में शामिल होने के लिए प्रेरित करते हैं।

इस प्रकार बाल श्रमिकों के समक्ष सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पारिवारिक जीवन से संबंधित अनगिनत चुनौतियाँ विद्यमान हैं।¹³

बाल श्रमिकों के उचित विकास के लिए सरकारी प्रयास

समय-समय पर बाल श्रम समाप्ति हेतु उच्च न्यायालयों व माननीय सर्वोच्च न्यायालय में अनेक महत्वपूर्ण निर्देश व फैसले दिये हैं। बाल श्रमिकों को सरकार द्वारा भौतिक व नैतिक शोषण, सामाजिक अन्याय, हिंसा व दुर्व्यवहार से सुरक्षित रहने का अधिकार प्राप्त है। संविधान में 1976 से बंधुआ बाल मजदूरी पर पूर्ण पाबंदी है तथा 1986 से जोखिमपूर्ण कार्यों में बाल श्रम को समाप्त करने के लिए कानून बनाए गए हैं। 2000 से एक महत्वपूर्ण व कानून पारित हुआ है, किशोर न्याय अधिनियम, जिसमें 18 वर्ष तक के किसी भी बच्चे से जोखिमपूर्ण व कारखानों में श्रम करवाने वाले अथवा बंधुआ मजदूरी कराने वालों के लिए सजा का विशेष रूप से प्रावधान है। देश में 2006 से प्रत्येक प्रकार की घरेलू बाल मजदूरी पर पूर्ण व प्रतिबंध है। पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने संविधान में 'शिक्षा के अधिकार' को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल कर 2000 में संविधान विधेयक को सहमति प्रदान की। सुप्रीम कोर्ट द्वारा 1993 में बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने के लिए मौलिक अधिकार प्रदान किया, जिससे 2003 में शिक्षा के अधिकार के रूप में संविधान में सम्मिलित किया गया है (मीना, शशी, 2019: 28-37)। शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने की मांग स्वतंत्रता से पहले ही शुरू की गई थी, लेकिन अनेक रुकावटों एवं मुश्किलों के बाद 1 अप्रैल 2010 को भारत सरकार ने अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा अधिनियम पूरी तरह से लागू किया है। सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रगतिशील कदम बढ़ाए हैं और शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया है। 11 मई वर्ष 2002 को संयुक्त महासभा द्वारा 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के लिए एक एजेंडा "ए वर्ल्ड फिट फॉर चिल्ड्रेन" का अनुसमर्थन किया। यह प्रथम विशिष्ट सत्र था, जिसमें बच्चों की समस्याओं को उनके द्वारा सुना गया था।¹⁴

सरकार द्वारा किये गये प्रयास निम्नलिखित हैं:-

- द मिनिमम एज कन्वर्षण वर्ष (1973) संख्या-138- यह कन्वर्षण राज्य को बाल श्रम के खिलाफ एक निर्देश देता है कि राज्य द्वारा किसी भी व्यवक्त अथवा बच्चे को किसी भी कार्य में नियोजित करने की अनुमति न दी जाए। वह श्रम के लिए न्यूनतम आयु को निर्धारित करे, जो न्यूनतम आयु 'अनिवार्य स्कूली शिक्षा' पूर्ण करने की उम्र से कम न हो तथा किसी भी परिस्थिति में 15 साल से कम न हो।
- कारखाना अधिनियम वर्ष (1948)- यह अधिनियम 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को जोखिमपूर्ण कार्यों के नियोजन पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है, केवल गैर-जोखिमपूर्ण कार्यों में (14 से 18 वर्ष) के किशोरों को अनुमति देता है और उनके लिए कार्य की दशाओं एवं घण्टों को भी नियंत्रित करता है।

- बाल श्रम (निषेध और विनियम) अधिनियम वर्ष (1986)– यह अधिनियम 14 साल से कम उम्र के बच्चों तथा 18 साल से कम उम्र के किशोरों के लिए खतरनाक उद्योगों तथा प्रक्रियाओं में कार्य के नियोजन पर पाबंदी लगाता है।
- राष्ट्रीय बाल श्रम नीति वर्ष (1987)– यह नीति बाल श्रम प्रतिबंध तथा विनियमन के द्वारा बाल श्रम को समाप्त करने, (बच्चों) बाल श्रमिकों तथा उनके परिवार के कल्याण हेतु विकास कार्यक्रम की व्यवस्था के साथ बाल श्रमिकों के लिए पुनर्वास एवं शिक्षा सुनिश्चित करती है।
- राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना वर्ष (1988)– यह परियोजना बाल श्रमिकों को श्रम से मुक्त कराकर, उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण, गैर-औपचारिक शिक्षा, मध्याह्न भोजन, स्वास्थ्य देखभाल तथा छात्रवृत्ति प्रदान करने एवं फिर से उन्हें औपचारिक स्कूली शिक्षा में संलग्न कराने पर केन्द्रित है। इस परियोजना के तहत 2 अगस्त वर्ष 2021 को श्रम तथा रोजगार मंत्रालय द्वारा लोकसभा में दिये गये आंकड़ों के आधार पर वर्ष 2020 से 2021 में सम्पूर्ण भारत में 58,000 से भी अधिक बाल श्रमिकों को श्रम से मुक्त कराया तथा उनका पुनर्वास करके उनको मुख्यधारा से जोड़ा गया है।

राज्य	2019-2020	2020-2021
मध्य प्रदेश	4,010	29,179
उत्तर प्रदेश	10,371	9,383
पश्चिम बंगाल	13,879	6,671
असम	6,175	2,800
महाराष्ट्र	9,337	2,031
भारत	54,894	58,289

स्रोत:-(<https://www.chronicleindia.in/hindi/current-affairs/4809-national-childlabour-project>)

- द वर्स्ट फॉर्म्स ऑफ चाइल्ड लेबर कोन्वर्शन वर्ष (1999) संख्या-182– श्रम, दासता तथा बाल तस्करी के साथ बाल श्रम के सर्वाधिक जघन्य रूपों, खतरनाक प्रक्रियाओं में बाल श्रमिकों की संलग्नता, सशस्त्र संघर्ष उद्योगों में बाल श्रमिकों का उपयोग, अवैध गतिविधियों में बाल श्रमिकों की संलग्नता का उन्मूलन तथा निषेध करता है।
- बाल न्याय अधिनियम वर्ष (2000)– किसी भी व्यक्ति द्वारा यदि किशोर अथवा बच्चे को रोजगार दिया जाता है अथवा भीख माँगने के लिये उसे विवश किया जाता है, तो बाल न्याय अधिनियम के तहत उसे विशिष्ट अपराध माना जायेगा और दोषी के खिलाफ उचित सजा तथा कार्यवाही की व्यवस्था की जायेगी।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम वर्ष (2009)– इस अधिनियम को भारतीय संसद द्वारा 4 अगस्त वर्ष 2009 को पारित किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 21 (ए) को इसमें शामिल किया गया है, जिसमें प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में दर्जा दिया है तथा 6 से 14 आयु समूह के समस्त बच्चों के लिए अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा का प्रबंध करता है।
- बाल श्रम (निषेध एवं संशोधन) अधिनियम वर्ष 2016– केन्द्र सरकार द्वारा 1 सितम्बर, वर्ष 2016 को यह अधिनियम पारित किया गया है। यह अधिनियम 14 साल से कम उम्र के बच्चों को किसी भी प्रकार के व्यवसाय अथवा खतरनाक प्रक्रिया में रोजगार देने पर पूर्ण पाबंदी लगाता है।
- पेंसिल पोर्टल वर्ष (2017)– केन्द्रीय गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने 26 सितम्बर, वर्ष 2017 को श्रम तथा रोजगार मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय बाल श्रमिक सम्मेलन के आयोजन पर ‘पेंसिल पोर्टल’ मंच की शुरुआत की है। इसका उद्देश्य केन्द्र तथा राज्य सरकारों, जिला प्रशासन, नागरिक समाज तथा आम जनता को सम्मिलित करते हुए, बाल श्रम से मुक्त समाज के लक्ष्य को प्राप्त करना है।¹⁵
- बाल श्रम विद्या योजना वर्ष (2020)– उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने 12 जून, वर्ष 2020 को ‘बाल श्रम निषेध’ दिवस के दिन इस योजना का शुभारम्भ किया है। योजना का प्रमुख लक्ष्य श्रमिक परिवारों के बच्चों को बेहतर आजीविका प्रदान करना है। इस कार्यक्रम द्वारा गरीब बच्चों को शिक्षा तथा भोजन की व्यवस्था उपलब्ध करायी जायेगी।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समाज में बाल श्रमिकों का शोषण अभी भी कलंक के समान व्याप्त है। बालश्रम से संबंधित विभिन्न कानून बनने के बाद भी देश में बालश्रम एक समस्या बनी हुई है। शिक्षा के ज्ञान बिना बाल श्रमिक अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों को समझने में असफल होते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व शिक्षा के अधिकार से हमेशा के लिए वंचित होकर अपने परिवार तथा समाज का अहित करते रहते हैं। बाल श्रम कानून बच्चों के कामकाज पर रोक लगाता है, लेकिन कानूनी असर न के बराबर है। इसलिए यह सुझाव दिया जा सकता है कि बाल श्रमिकों को आदर्श रूप में व्यावहारिक प्रशिक्षण तथा औपचारिक शिक्षा प्रणाली के साथ जोड़ने की आवश्यक है, ताकि बच्चे अपने साथ होने वाले शोषण के खिलाफ आवाज उठा सकें और फिर से अकुशल श्रमिक की भांति श्रम के क्षेत्र में नियोजित न हो सकें। बाल श्रमिक यदि पूर्ण ईमानदारी से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम हो जाए, तो वे मालिक और कानून से निपटने के लिये आत्मनिर्भर बनकर कानून द्वारा प्राप्त अधिकारों को पढ़कर और समझकर, उनको सही तरीके से उपयोग करने में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. बरवाह, अरुणिमा, 2003, “चाइड एब्ज्यूज”, रेफरेंस प्रेस, नई दिल्ली।

2. महाजन, प्रोमिला एण्ड चंद, एस..., 2006, "स्टेट्स ऑफ चाइड लेबर" अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
3. शेण्डे, हररदास रामजी, 2006, "मानव अधिकार और शिक्षा: विश्वशांति, सद्भाव एवं न्याय प्रस्थापना हेतु मानव अधिकार शिक्षा", साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन, जयपुर।
4. कुमार, विनोद, 2008, "अनुसूचित जाति के बाल श्रमिक", कला प्रकाशन, वाराणसी।
5. सिन्हा, आर...के ..., 2016, "बेलाग-लपेट", प्रभाव प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. सत्याथी, कैलाश, 2016, "आजाद बचपन की ओर", प्रभाव प्रकाशन, दिल्ली।
7. यादव, अशोक कुमार, 2019, "सामाजिक समस्याएँ", एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
8. वेबिंक, एलेन, स्मिट्स, जेरोएन और डी जॉंग, एल्के। (2015)। अफ्रीका और एशिया में बाल श्रम: 16 निम्न-आय वाले देशों में छोटे बच्चों द्वारा सवैतनिक श्रम में काम किए गए घंटों के घरेलू और प्रासंगिक निर्धारक। यूरोपियन जर्नल ऑफ डेवलपमेंट रिसर्च। 27. 84-98. 10.1057/ejdr.2014.19 DOI: <https://doi.org/10.1057/ejdr.2014.19>
9. श्रीमाली, राजेश्वरी और किसान, मयूरी। (2015)। गुजरात राज्य में बाल श्रम पर एक अध्ययन (गुजरात राज्य के 2 ब्लॉकों को ध्यान में रखते हुए)
10. इब्राहिम ए, अब्दुल्ला एस.एम., जाफर एम, अब्देलगादिर जे, डी व्रीस एन. बाल श्रम और स्वास्थ्य: निम्न और मध्यम आय वाले देशों में बच्चों के स्वास्थ्य पर बाल श्रम के प्रभावों की एक व्यवस्थित साहित्य समीक्षा। जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ। 1 मार्च 2019;41(1):18-26 DOI: <https://doi.org/10.1093/pubmed/fty018>
11. अहुजा डी, कल्पना बी. बाल श्रम की व्यवहार संबंधी कठिनाइयाँ - दिल्ली की झुग्गी-झोपड़ियों में स्कूली और कामकाजी बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन। जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन डायनेमिकल एंड कंट्रोल सिस्टम्स। 2019;11(7)
12. लाल बी.एस. भारत में बाल श्रम: कारण और परिणाम। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस एंड रिसर्च। 2019;8(5):2199-206.
13. साहू, बरशा. (2020). बचपन से वंचित बच्चे: भारत में बाल श्रम के पैटर्न और घटनाओं का विश्लेषण. जर्नल ऑफ द सोशल साइंसेज. 48. 2650-2656
14. मेहता एन, मोहंती एस. बाल श्रम की सीमा और कारणों पर कुछ विचार। अमेरिका। 2020;8(5.3):3-2
15. मेहता, आर., त्यागी, ए., दुआ, एस. और खानिजौ, वी., 2021. बाल श्रम का सार्थक मूल्यांकन: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य। टर्किश ऑनलाइन जर्नल ऑफ क्वालिटेटिव इन्क्वायरी, 12(9)

हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श: प्रेमचंद से नई कहानी तक

शिव शंकर प्रसाद सिंह

शोधार्थी, स्नातकोत्तर (हिन्दी) बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श आधुनिक भारतीय साहित्यिक और सामाजिक चेतना का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम है, जिसने साहित्य के केंद्र में स्त्री के अस्तित्व, अस्मिता, अधिकार और स्वतंत्र व्यक्तित्व से जुड़े प्रश्नों को स्थापित किया। यह विमर्श केवल स्त्री-जीवन की पीड़ा और सामाजिक उपेक्षा का वर्णन नहीं करता, बल्कि उन पितृसत्तात्मक संरचनाओं, सांस्कृतिक मान्यताओं और सामाजिक विषमताओं की आलोचनात्मक समीक्षा भी करता है, जिन्होंने लंबे समय तक स्त्री को सीमित भूमिकाओं में बाँधकर रखा। हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श का विकास भारतीय समाज में उत्पन्न आधुनिक चेतना, सामाजिक सुधार आंदोलनों, स्त्री-शिक्षा तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री को प्रायः त्यागमयी, पतिव्रता और आदर्श गृहिणी के रूप में चित्रित किया गया, किंतु धीरे-धीरे साहित्य में उसकी वास्तविक समस्याओं, मानसिक द्वंद्वों, आर्थिक निर्भरता और स्वतंत्र अस्मिता के प्रश्नों को अभिव्यक्ति मिलने लगी। मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श की यथार्थवादी आधारभूमि तैयार की। उन्होंने दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, आर्थिक शोषण और सामाजिक अन्याय से पीड़ित स्त्री-जीवन को गहरी मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया। इसके पश्चात जैनेंद्र कुमार और अज्ञेय जैसे लेखकों ने स्त्री के मनोवैज्ञानिक और अस्तित्वगत प्रश्नों को कथा-साहित्य का विषय बनाया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नई कहानी आंदोलन ने स्त्री-विमर्श को अधिक व्यापक और आधुनिक दृष्टि प्रदान की। इस दौर में स्त्री केवल सहानुभूति की पात्र नहीं रही, बल्कि आत्मचेतस, संघर्षशील और आत्मनिर्णय के प्रति सजग व्यक्तित्व के रूप में उभरी। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा और मृदुला गर्ग जैसी लेखिकाओं ने स्त्री की देह, यौनिकता, दांपत्य संबंधों, मानसिक तनावों और सामाजिक दबावों को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया।

प्रस्तुत शोध आलेख में प्रेमचंद से नई कहानी आंदोलन तक हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श के विकासक्रम, उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि तथा प्रमुख रचनाकारों और कृतियों का विश्लेषण किया गया है। यह आलेख स्पष्ट करता है कि हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि स्त्री-अस्मिता, सामाजिक न्याय और परिवर्तनकारी चेतना का सशक्त बौद्धिक आंदोलन है।

शब्द-कुंजी- स्त्री-विमर्श, हिंदी कथा-साहित्य, नई कहानी, स्त्री-अस्मिता, पितृसत्ता, प्रेमचंद, नई चेतना, नारी-स्वतंत्रता

प्रस्तावना

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि समाज में घटित होने वाले वैचारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों की स्पष्ट अभिव्यक्ति साहित्य में दिखाई देती है। किसी भी युग का साहित्य उस समय की मान्यताओं, संघर्षों, असमानताओं और मानवीय संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। यह तथ्य निर्विवाद है कि 'भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति लंबे समय तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन रही, जहाँ उसे परिवार और समाज की मर्यादाओं में सीमित कर दिया गया।' यद्यपि भारतीय परंपरा में स्त्री को देवी, माता और शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया, फिर भी व्यवहारिक जीवन में उसे समान अधिकार, स्वतंत्र निर्णय और सामाजिक सम्मान प्राप्त नहीं हो सके। परिणामस्वरूप स्त्री की स्वतंत्र पहचान, शिक्षा, आर्थिक स्वायत्तता और वैचारिक अभिव्यक्ति लंबे समय तक उपेक्षित रही। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में सामाजिक सुधार आंदोलनों, आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रीय चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार ने भारतीय समाज में नई जागरूकता उत्पन्न की। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह निषेध और स्त्री-अधिकारों से जुड़े प्रश्न सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनने लगे। इसी परिवर्तित सामाजिक परिदृश्य ने साहित्य को भी प्रभावित किया और साहित्यकारों ने स्त्री-जीवन की वास्तविक समस्याओं को गंभीरता से चित्रित करना प्रारंभ किया। यही चेतना आगे चलकर हिंदी साहित्य में 'स्त्री-विमर्श' के रूप में विकसित हुई। जहाँ तक हिन्दी कथा साहित्य का प्रसंग है, यहाँ स्त्री-विमर्श का विकास क्रमिक और बहुआयामी रहा है। प्रारंभिक दौर में स्त्री को मुख्यतः आदर्श गृहिणी, पतिव्रता और त्यागमयी नारी के रूप में चित्रित किया गया, किंतु समय के साथ उसकी सामाजिक पीड़ा, मानसिक संघर्ष, आर्थिक निर्भरता और स्वतंत्र अस्मिता के प्रश्न साहित्य के केंद्र में आने लगे।² प्रेमचंद से आरंभ होकर नई कहानी आंदोलन तक की यह यात्रा हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-अस्मिता, आत्मचेतना और सामाजिक परिवर्तन के विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया को अभिव्यक्त करती है।

हिन्दी कथा साहित्य और स्त्री-विमर्श

प्रारंभिक हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री की छवि मुख्यतः आदर्शवादी और नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित रूप में प्रस्तुत की गई। उस कालखंड के साहित्य में स्त्री को त्याग, सहनशीलता, पतिव्रता धर्म और पारिवारिक मर्यादा की प्रतिमूर्ति माना जाता था। भारतेन्दु युगीन और द्विवेदी युगीन साहित्य में सामाजिक सुधार और आधुनिक चेतना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उस दौर में स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा और बाल-विवाह जैसी समस्याओं पर साहित्यकारों ने विचार अवश्य किया, किंतु स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व और आत्मनिर्णय की अधिकारिणी के रूप में पूरी तरह स्वीकार नहीं किया गया।³ वस्तुतः उस दौर में साहित्य का उद्देश्य मुख्यतः समाज-सुधार और नैतिक आदर्शों की स्थापना था, इसलिए स्त्री-चित्रण भी उसी दृष्टिकोण से प्रभावित रहा। इस काल का साहित्य सुधारवादी चेतना से प्रेरित था, जिसके कारण स्त्री-संबंधी प्रश्न पहली बार सार्वजनिक और साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बने। बाल-विवाह, विधवाओं की दयनीय स्थिति तथा स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता जैसे विषयों को गंभीरता से उठाया गया।⁴ हालांकि स्त्री की वैयक्तिक इच्छाओं, मानसिक द्वंद्वों, भावनात्मक आकांक्षाओं और आत्मसम्मान से जुड़े प्रश्नों को अपेक्षित महत्त्व नहीं मिल सका। स्त्री को प्रायः परिवार की मर्यादा और पुरुष-केंद्रित सामाजिक संरचना के भीतर ही देखा जाता था, जहाँ उसकी भूमिका गृहस्थ जीवन तक सीमित मानी जाती थी।

फिर भी प्रारंभिक हिंदी कथा-साहित्य का यह दौर अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, क्योंकि इसी समय स्त्री-प्रश्नों के प्रति सामाजिक और साहित्यिक संवेदनशीलता का विकास प्रारंभ हुआ। यहीं से हिंदी साहित्य में स्त्री-जीवन के यथार्थ को समझने और उसे अभिव्यक्ति देने की प्रक्रिया आरंभ हुई। आगे चलकर यही चेतना प्रेमचंद के यथार्थवादी साहित्य तथा नई कहानी आंदोलन में अधिक व्यापक, गहन और परिपक्व रूप में विकसित दिखाई देती है।

हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श की सुदृढ़ और यथार्थवादी आधारभूमि मुंशी प्रेमचंद के साहित्य से निर्मित होती है। प्रेमचंद ने भारतीय समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति, आर्थिक निर्भरता, पारिवारिक शोषण और मानवीय पीड़ा को अत्यंत संवेदनशील तथा यथार्थपरक दृष्टि से चित्रित किया।⁵ उन्होंने स्त्री को केवल आदर्श गृहिणी या त्यागमयी नारी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे सामाजिक कुरीतियों और पितृसत्तात्मक व्यवस्था से संघर्ष करती हुई मनुष्य के रूप में देखा। प्रेमचंद के साहित्य में स्त्री-जीवन की समस्याएँ समाज की व्यापक संरचनात्मक विसंगतियों से जुड़कर सामने आती हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास निर्मला में दहेज-प्रथा और अनमेल विवाह की त्रासदी का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। निर्मला एक ऐसी स्त्री है, जिसका जीवन सामाजिक कुरीतियों और आर्थिक विवशताओं के कारण दुख, संदेह और मानसिक यातना से भर जाता है।⁶ इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद ने यह स्पष्ट किया कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री केवल भावनात्मक उपेक्षा ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक अन्याय की भी शिकार होती है। इसी प्रकार सेवासदन में वेश्यावृत्ति, स्त्री-शोषण और सामाजिक नैतिकता की दोहरी मानसिकता को उजागर किया गया है। सुमन का चरित्र उस समाज की आलोचना करता है, जो स्त्री के लिए कठोर नैतिक मानदंड निर्धारित करता है, जबकि पुरुषों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाता है।⁷ वहीं गोदान की धनिया संघर्षशील, साहसी और आत्मसम्मान से संपन्न ग्रामीण स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी अपने परिवार और अस्तित्व की रक्षा के लिए दृढ़ बनी रहती है।⁸

वस्तुतः प्रेमचंद का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने स्त्री-समस्याओं को केवल भावनात्मक संवेदना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें सामाजिक संरचना, आर्थिक विषमता और सांस्कृतिक रूढ़ियों से जोड़कर देखा। उनके कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श सामाजिक यथार्थ, मानवीय गरिमा और परिवर्तनकारी चेतना का सशक्त रूप ग्रहण करता है।

प्रेमचंद के पश्चात हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श को मनोवैज्ञानिक और वैयक्तिक धरातल पर विकसित करने का महत्वपूर्ण कार्य जैनेंद्र कुमार ने किया। जहाँ प्रेमचंद ने स्त्री-जीवन की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को प्रमुखता दी, वहीं जैनेंद्र ने स्त्री के आंतरिक संसार, मानसिक द्वंद्व और वैयक्तिक स्वतंत्रता को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया। उनके साहित्य में स्त्री केवल सामाजिक व्यवस्था की पीड़िता नहीं है, बल्कि वह आत्मनिर्णय, प्रेम, स्वतंत्र अस्तित्व और मानवीय गरिमा की आकांक्षा रखने वाली चेतन व्यक्तित्व के रूप में उभरती है।⁹ जैनेंद्र कुमार के प्रसिद्ध उपन्यास त्यागपत्र की मृणाल हिंदी कथा-साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण और चर्चित स्त्री-पात्रों में गिनी जाती है। वह पारंपरिक दांपत्य जीवन, सामाजिक मर्यादाओं और कृत्रिम नैतिकता के विरुद्ध प्रश्न खड़े करती है।¹⁰ मृणाल का चरित्र इस बात का प्रतीक है कि स्त्री केवल परिवार और समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं में बँधकर नहीं रहना चाहती, बल्कि वह अपने जीवन और अस्तित्व के संबंध में स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता भी रखती है। जैनेंद्र ने उसके माध्यम से स्त्री की संवेदनशीलता, आत्मसम्मान और मानसिक संघर्ष को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। जैनेंद्र के कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता, प्रेम, दांपत्य तनाव, यौनिकता और नैतिकता जैसे प्रश्नों को भी गहन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।¹¹ उनके यहाँ स्त्री की आंतरिक संवेदना, वैचारिक स्वतंत्रता और आत्मचेतना प्रमुख विषय बनकर सामने आती है। इस प्रकार जैनेंद्र कुमार ने हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श को नई वैचारिक दिशा प्रदान की, जहाँ स्त्री को केवल सामाजिक संदर्भों में नहीं, बल्कि उसके निजी अनुभवों और मानसिक संसार के आधार पर भी समझने का प्रयास किया गया।

यह निर्विवाद तथ्य है कि अज्ञेय ने हिंदी कथा-साहित्य में आधुनिकता, वैयक्तिक स्वतंत्रता और अस्तित्ववादी चेतना को एक नई वैचारिक दिशा प्रदान की। उनके साहित्य में मनुष्य के आंतरिक संघर्ष, आत्मविश्लेषण और अस्तित्व की खोज को विशेष महत्त्व मिला है। इसी क्रम में उनकी स्त्री-दृष्टि भी पारंपरिक नैतिकता और रूढ़ सामाजिक मान्यताओं से अलग दिखाई देती है।¹² अज्ञेय के साहित्य में स्त्री केवल सामाजिक भूमिकाओं तक सीमित पात्र नहीं है, बल्कि वह संवेदनशील, चिंतनशील और आत्मसजग व्यक्तित्व के रूप में उभरती है, जो अपने अस्तित्व और संबंधों को लेकर निरंतर प्रश्न करती है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास नदी के द्वीप में स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता, मानसिक दूरी, प्रेम और वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रश्नों को अत्यंत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रित किया गया है। अज्ञेय के पात्र बाहरी सामाजिक संघर्षों की अपेक्षा अपने भीतर के द्वंद्वों और अस्तित्वगत संकटों से अधिक जूझते दिखाई देते हैं। उनके साहित्य में संबंध स्थिर और निश्चित नहीं हैं, बल्कि वे निरंतर बदलती मानसिक स्थितियों और वैचारिक अस्थिरताओं से प्रभावित होते हैं। इस कारण स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने अस्तित्व की सार्थकता की खोज में संघर्षरत दिखाई देते हैं। अज्ञेय की स्त्री-दृष्टि प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि से भिन्न है। जहाँ प्रेमचंद ने स्त्री की सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक समस्याओं को केंद्र में रखा, वहीं अज्ञेय ने स्त्री के मानसिक संसार, अकेलेपन,

आत्मसंघर्ष और अस्तित्वगत संकट को अधिक महत्व दिया।¹³ उनके साहित्य में स्त्री का संघर्ष बाहरी सामाजिक बंधनों से अधिक अपने भीतर की जटिलताओं और आत्मपहचान से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। वस्तुतः अज्ञेय ने हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श को आधुनिक मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी आयाम प्रदान किए।

हिन्दी साहित्य की बदलती प्रवृत्तियों के क्रम में 1950 और 1960 के दशक में हिंदी साहित्य में उभरा 'नई कहानी आंदोलन' आधुनिक भारतीय समाज की बदलती परिस्थितियों और मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साहित्यिक आंदोलन था। इस आंदोलन ने व्यक्ति के अकेलेपन, अस्तित्वगत संकट, टूटते पारिवारिक संबंधों और आधुनिक जीवन की मानसिक विडंबनाओं को केंद्र में रखा।¹⁴ इसी दौर में हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श को भी नई दिशा और व्यापकता प्राप्त हुई। अब स्त्री केवल परिवार की मर्यादा, त्याग और सहनशीलता का प्रतीक नहीं रही, बल्कि अपनी इच्छाओं, असंतोषों, संघर्षों और आत्मसम्मान के साथ एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में सामने आने लगी। इस दौर में मन्नू भंडारी ने मध्यवर्गीय स्त्री के मानसिक द्वंद्व, दांपत्य संबंधों की विडंबना और पारिवारिक विघटन को अत्यंत संवेदनशीलता से चित्रित किया। उनके उपन्यास आपका बंटी में टूटते वैवाहिक संबंधों का प्रभाव केवल पति-पत्नी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि बच्चों के मनोविज्ञान और पारिवारिक वातावरण पर भी गहरा प्रभाव डालता है।¹⁵ इसी दौर में

कृष्णा सोबती ने स्त्री की देह, कामना, यौनिकता और आत्मविश्वास को निर्भीक अभिव्यक्ति दी। मित्रो मरजानी हिंदी साहित्य में स्त्री-यौनिकता की सशक्त और साहसिक प्रस्तुति मानी जाती है, जहाँ मित्रो पारंपरिक नैतिक मानदंडों और सामाजिक दमन को चुनौती देती हुई दिखाई देती है।¹⁶

उषा प्रियंवदा की कहानियों में आधुनिक शिक्षित स्त्री का अकेलापन, भावनात्मक रिक्तता और संबंधों का विघटन प्रमुख रूप से उभरता है। उनकी प्रसिद्ध कहानी वापसी आधुनिक पारिवारिक संबंधों में उत्पन्न दूरी और संवेदनहीनता को मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है।¹⁷ वस्तुतः नई कहानी आंदोलन की लेखिकाओं ने स्त्री को केवल सहानुभूति की पात्र नहीं माना, बल्कि उसे संघर्षशील, आत्मचेतस और आत्मनिर्णय के प्रति सजग व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया। इस प्रकार नई कहानी आंदोलन हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श के विकास का एक महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी चरण सिद्ध हुआ।

नई कहानी आंदोलन के साथ हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-अस्मिता का प्रश्न अत्यंत केंद्रीय और महत्वपूर्ण बनकर उभरा। अब स्त्री केवल सामाजिक न्याय, शिक्षा या समान अधिकारों की मांग तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व, आत्मसम्मान और आत्मनिर्णय की स्थापना की आकांक्षा को भी स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया।¹⁸ इस दौर के साहित्य में स्त्री को एक संवेदनशील, विचारशील और आत्मचेतस मनुष्य के रूप में देखने की दृष्टि विकसित हुई, जो अपने जीवन और संबंधों के विषय में स्वयं निर्णय लेने की क्षमता रखती है। आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में विवाह संस्था, दांपत्य संबंधों की जटिलता, प्रेम, यौनिकता, अकेलापन और स्त्री-स्वतंत्रता जैसे प्रश्न प्रमुखता से सामने आए। पहले जहाँ स्त्री को केवल परिवार की मर्यादा और सामाजिक आदर्शों के संदर्भ में देखा जाता था, वहीं अब उसके व्यक्तिगत अनुभवों, इच्छाओं और मानसिक संघर्षों को भी साहित्यिक अभिव्यक्ति मिलने लगी। स्त्री पहली बार अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और निर्णयों के साथ एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार की जाने लगी। इस परिवर्तन ने हिंदी कथा-साहित्य को अधिक यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक गहराई प्रदान की। इस दौर में मृदुला गर्ग जैसी लेखिकाओं ने स्त्री-देह, नैतिकता, यौनिक स्वतंत्रता और सामाजिक बंधनों के प्रश्नों को नए और साहसिक ढंग से प्रस्तुत किया। उनके साहित्य में स्त्री पारंपरिक नैतिक मानदंडों और पितृसत्तात्मक नियंत्रणों को चुनौती देती हुई दिखाई देती है।¹⁹ मृदुला गर्ग की रचनाओं में स्त्री केवल सामाजिक दबावों से संघर्ष नहीं करती, बल्कि अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता की खोज में सक्रिय दिखाई देती है।

इस प्रकार हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श सामाजिक सुधारवादी दृष्टिकोण से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी, मनोवैज्ञानिक और अस्मितामूलक चेतना तक पहुँचता है। यह विकास हिन्दी साहित्य में स्त्री की बदलती भूमिका, उसकी आत्मचेतना और आधुनिक समाज में उसकी स्वतंत्र पहचान की स्थापना का महत्वपूर्ण संकेतक है।

निष्कर्ष

हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श का विकास भारतीय समाज में उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तनों की दीर्घ प्रक्रिया का परिणाम है। प्रारंभिक हिन्दी साहित्य में स्त्री को मुख्यतः आदर्शवादी, त्यागमयी और मर्यादित रूप में प्रस्तुत किया गया, जहाँ उसकी भूमिका परिवार और सामाजिक मूल्यों तक सीमित थी। किंतु आधुनिक युग में सामाजिक सुधार आंदोलनों, स्त्री-शिक्षा, लोकतांत्रिक चेतना और आधुनिक विचारधाराओं के प्रभाव से साहित्यकारों ने स्त्री-जीवन की वास्तविक समस्याओं, मानसिक संघर्षों, आर्थिक पराधीनता और स्वतंत्र अस्मिता के प्रश्नों को गंभीरता से उठाना प्रारंभ किया। इस परिवर्तन ने हिन्दी कथा-साहित्य को अधिक यथार्थवादी और मानवीय दृष्टि प्रदान की। मुंशी प्रेमचंद ने हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श की मजबूत आधारभूमि तैयार की। उन्होंने दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, आर्थिक शोषण और सामाजिक विषमताओं से पीड़ित स्त्री-जीवन को अत्यंत यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया। उनके साहित्य में स्त्री केवल करुणा की पात्र नहीं, बल्कि संघर्षशील और संवेदनशील मनुष्य के रूप में उभरती है। इसके बाद जैनंद्र कुमार और अज्ञेय ने स्त्री-विमर्श को मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी धरातल प्रदान किया, जहाँ स्त्री की आंतरिक संवेदना, आत्मनिर्णय और वैयक्तिक स्वतंत्रता प्रमुख विषय बने।

नई कहानी आंदोलन ने हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श को नई ऊँचाई प्रदान की। इस दौर की लेखिकाओं-मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा और मृदुला गर्गकने स्त्री की देह, मन, यौनिकता, अकेलेपन, दांपत्य संबंधों और आत्मसम्मान से जुड़े प्रश्नों को केंद्र में स्थापित किया। अब स्त्री केवल सामाजिक व्यवस्था की शिकार नहीं रही, बल्कि आत्मचेतस, संघर्षशील और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में सामने आई।

स्पष्टतः हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, लोकतांत्रिक मूल्यों और स्त्री-अस्मिता की व्यापक चेतना का सशक्त माध्यम है। इस विमर्श ने स्त्री को साहित्य में 'विषय' के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए हिंदी साहित्य को अधिक संवेदनशील, मानवीय और समावेशी बनाया है।

सन्दर्भ-

1. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 52।
2. सिंह, नामवर, कहानी रू नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 34।
3. पांडेय, मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 91।
4. व्होरा, आशारानी, भारतीय नारी: दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1994, पृ. 75।
5. प्रेमचंद, मुंशी, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 2010, पृ. 62।
6. प्रेमचंद, मुंशी, निर्मला, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 2015, पृ. 84।
7. प्रेमचंद, मुंशी, सेवासदन, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ. 96।
8. प्रेमचंद, मुंशी, गोदान, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2011, पृ. 143।
9. कुमार, जैनैंद्र, त्यागपत्र, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 49।
10. कुमार, जैनैंद्र, त्यागपत्र, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 57।
11. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 108।
12. अज्ञेय, नदी के द्वीप, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005, पृ. 73।
13. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी नवलेखन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ. 122।
14. सिंह, नामवर, नई कहानी की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 44।
15. भंडारी, मन्नू, आपका बंटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 118।
16. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 67।
17. प्रियंवदा, उषा, बापसी और अन्य कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 52।
18. खेतान, प्रभा, स्त्री उपेक्षिता, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 94।
19. गर्ग, मृदुला, कठगुलाब, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 88।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और समकालीन समाज : मानव संवेदना, रोजगार एवं डिजिटल संस्कृति का आलोचनात्मक अध्ययन

भावना कुमारी

शोधार्थी (हिंदी विभाग), ललित नारायण मिथिला यूनिवर्सिटी, दरभंगा

शोध-सारांश :

वर्तमान समय विज्ञान एवं सूचना-प्रौद्योगिकी के तीव्र विस्तार का युग है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) ने मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। शिक्षा, चिकित्सा, पत्रकारिता, बैंकिंग, उद्योग, संचार, सुरक्षा, सोशल मीडिया और प्रशासन जैसे क्षेत्रों में इसका उपयोग निरंतर बढ़ रहा है। यह तकनीक कार्यों को अधिक तीव्र, सटीक और सुविधाजनक बनाती है, किंतु इसके साथ अनेक सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक प्रश्न भी सामने आए हैं। मशीनों और रोबोटों की बढ़ती सक्रियता ने रोजगार, मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक संबंधों तथा सांस्कृतिक संरचनाओं को प्रभावित किया है। सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से मानव व्यवहार का विश्लेषण कर रहे हैं, जिससे व्यक्ति की निजता और स्वतंत्रता पर भी प्रश्नचिह्न उत्पन्न हो रहे हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सामाजिक प्रभावों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें मानव-मशीन संबंध, रोबोटिक्स, डिजिटल संस्कृति, रोजगार, नैतिकता, सोशल मीडिया तथा भविष्य की चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव जीवन को सुविधाजनक बनाती है, किंतु इसके अनियंत्रित और असंतुलित प्रयोग से सामाजिक असमानता, मानसिक निर्भरता, सांस्कृतिक विघटन और नैतिक संकट की संभावनाएँ भी बढ़ती हैं। इसलिए तकनीकी विकास को मानवीय मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ संतुलित करना आवश्यक है।

मुख्य शब्द: कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोबोटिक्स, डिजिटल संस्कृति, सोशल मीडिया, रोजगार, मानव संवेदना, तकनीकी विकास

प्रस्तावना:

इक्कीसवीं शताब्दी को तकनीक और सूचना की शताब्दी कहा जाता है। विज्ञान ने जिस तीव्र गति से मानव जीवन को परिवर्तित किया है, उसमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता वह तकनीक है जिसके माध्यम से मशीनों को इस प्रकार विकसित किया जाता है कि वे मनुष्य की तरह सोच सकें, निर्णय ले सकें, सीख सकें तथा परिस्थितियों के अनुसार प्रतिक्रिया दे सकें। यह केवल कंप्यूटर विज्ञान की उपलब्धि नहीं है, बल्कि यह मानव सभ्यता के विकास का एक नया चरण है।

आज मोबाइल फोन, स्मार्ट कैमरे, डिजिटल असिस्टेंट, चौटबॉट, सोशल मीडिया एल्गोरिद्म, स्वचालित वाहन, चिकित्सा उपकरण और औद्योगिक मशीनें कृत्रिम बुद्धिमत्ता के आधार पर कार्य कर रही हैं। इंटरनेट और डेटा की व्यापक उपलब्धता ने इस तकनीक को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है। वर्तमान समय में मनुष्य केवल तकनीक का उपयोगकर्ता नहीं रह गया है, बल्कि उसका दैनिक जीवन तकनीकी संरचनाओं पर निर्भर होता जा रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव सामाजिक संरचना पर गहराई से दिखाई देता है। पहले मशीनें केवल शारीरिक श्रम का स्थान लेती थीं, किंतु अब वे मानसिक और विश्लेषणात्मक कार्यों में भी सक्रिय हो रही हैं। अनेक ऐसे कार्य, जिन्हें पहले केवल मनुष्य कर सकता था, आज मशीनें करने लगी हैं। इससे कार्यक्षमता बढ़ी है, किंतु रोजगार की समस्या भी गंभीर हुई है। औद्योगिक क्षेत्र, बैंकिंग, ग्राहक सेवा, पत्रकारिता और प्रशासन में स्वचालन के कारण पारंपरिक नौकरियों पर संकट उत्पन्न हो रहा है।

मानवीय संवेदनाओं के क्षेत्र में भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव दिखाई देता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की रुचियों, व्यवहारों और भावनाओं का विश्लेषण कर सामग्री प्रस्तुत करते हैं। इससे व्यक्ति की सोच और निर्णय क्षमता प्रभावित होती है। फेक न्यूज, ट्रोलिंग और डिजिटल प्रचार ने सामाजिक वातावरण को जटिल बना दिया है। मशीनें अब केवल सूचना का माध्यम नहीं रह गई हैं, बल्कि वे मानव व्यवहार को नियंत्रित करने की दिशा में भी कार्य कर रही हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव संस्कृति, भाषा और सामाजिक संबंधों पर भी पड़ रहा है। डिजिटल तकनीक ने वैश्विक संपर्क को आसान बनाया है, किंतु इसके कारण स्थानीय भाषाओं और सांस्कृतिक परंपराओं के सामने चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। मानव संबंधों में प्रत्यक्ष संवाद की जगह डिजिटल संवाद ने ले ली है। इससे सामाजिक जीवन में एक प्रकार की कृत्रिमता और अकेलापन बढ़ा है।

वर्तमान समय में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है कि क्या मशीनें वास्तव में मानव संवेदनाओं को समझ सकती हैं? क्या भविष्य में रोबोट मनुष्यों का स्थान ले लेंगे? क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए चुनौती बन सकती है? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सामाजिक और नैतिक पक्षों का अध्ययन आवश्यक है।

प्रस्तुत शोधपत्र इसी उद्देश्य से कृत्रिम बुद्धिमत्ता और समकालीन समाज के संबंधों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

उपलब्ध साहित्य :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर विश्व स्तर पर अनेक विद्वानों ने अध्ययन किए हैं। एलन ट्यूरिंग ने मशीनों की बुद्धिमत्ता को परखने के लिए 'ट्यूरिंग टेस्ट' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसने इस क्षेत्र के विकास को नई दिशा दी। जॉन मैकार्थी ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता शब्द को लोकप्रिय बनाया तथा मशीनों की स्वायत्त कार्यक्षमता पर बल दिया।

समकालीन तकनीकी विमर्श में युवाल नोआ हराारी ने डेटा और एल्गोरिद्म आधारित समाज की चर्चा करते हुए बताया है कि भविष्य में तकनीक मानव की स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता को प्रभावित कर सकती है। शोषाना जुबॉफ ने 'सर्विलांस कैपिटलिज्म' की अवधारणा के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि डिजिटल कंपनियाँ उपयोगकर्ताओं के डेटा और व्यवहार का आर्थिक तथा राजनीतिक उपयोग कर रही हैं।

भारतीय संदर्भ में भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर विमर्श विकसित हो रहा है। विभिन्न शोधों में यह बताया गया है कि भारत जैसे विकासशील देश में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आर्थिक प्रगति का माध्यम बन सकती है, किंतु इसके कारण रोजगार संकट और सामाजिक असमानता भी बढ़ सकती है। अनेक भारतीय विद्वानों ने डिजिटल संस्कृति, सोशल मीडिया और तकनीकी उपनिवेशवाद पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया है।

रोबोटिक्स और मानव संबंधों पर किए गए अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है कि मशीनें मनुष्य की गतिविधियों की नकल कर सकती हैं, किंतु वे वास्तविक संवेदनाओं और भावनात्मक अनुभवों को पूर्ण रूप से समझने में सक्षम नहीं हैं। कुछ अध्ययनों में यह भी कहा गया है कि भविष्य में मनुष्य मशीनों पर अत्यधिक निर्भर हो सकता है, जिससे उसकी रचनात्मकता और सामाजिकता प्रभावित होगी।

सोशल मीडिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संबंध में हुए शोधों में यह सामने आया है कि एल्गोरिद्म आधारित प्रणालियाँ लोगों की पसंद, विचार और व्यवहार को प्रभावित करती हैं। फेक न्यूज, डिजिटल प्रचार और डेटा विश्लेषण के माध्यम से राजनीतिक और सामाजिक वातावरण को नियंत्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल तकनीकी उपलब्धि नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक विमर्श का महत्वपूर्ण विषय बन चुकी है।

शोध-प्रविधि :

प्रस्तुत शोधपत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोबोटिक्स, डिजिटल संस्कृति और सोशल मीडिया से संबंधित पुस्तकों, शोधपत्रों, पत्र-पत्रिकाओं तथा तकनीकी लेखों का अध्ययन किया गया है। साथ ही समकालीन सामाजिक परिस्थितियों और तकनीकी परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी किया गया है।

शोध में गुणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सामाजिक प्रभावों को समझने के लिए विभिन्न उदाहरणों, तकनीकी प्रवृत्तियों और डिजिटल व्यवहारों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य तकनीकी उपलब्धियों के साथ-साथ उनके सामाजिक और नैतिक परिणामों को समझना है।

परिणाम एवं विमर्श :

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और बदलता सामाजिक जीवन

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने मानव जीवन को अत्यधिक सुविधाजनक बना दिया है। आज स्मार्टफोन, डिजिटल असिस्टेंट और ऑनलाइन सेवाएँ दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुकी हैं। बैंकिंग, खरीदारी, शिक्षा और मनोरंजन जैसे कार्य डिजिटल माध्यमों से संपन्न हो रहे हैं। इससे समय और श्रम की बचत हुई है।

इसके बावजूद सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष मानवीय संपर्क कम हुआ है। लोग डिजिटल माध्यमों पर अधिक निर्भर हो गए हैं। परिवार और समाज के भीतर संवाद की पारंपरिक संस्कृति प्रभावित हुई है। आभासी संबंधों ने वास्तविक संबंधों की जगह लेना शुरू कर दिया है।

2. रोजगार और आर्थिक संरचना पर प्रभाव

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सबसे बड़ा प्रभाव रोजगार के क्षेत्र में दिखाई देता है। उद्योगों में स्वचालित मशीनों और रोबोटों के प्रयोग से उत्पादन क्षमता बढ़ी है, किंतु श्रमिकों की आवश्यकता कम हुई है। ग्राहक सेवा, बैंकिंग और डेटा प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में भी मशीनें मानव श्रम का स्थान ले रही हैं।

इसके कारण बेरोजगारी और आर्थिक असमानता की समस्या बढ़ सकती है। कम कौशल वाले श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर घट रहे हैं। दूसरी ओर, तकनीकी ज्ञान रखने वाले लोगों की मांग बढ़ रही है। इससे समाज में आर्थिक विभाजन की संभावना भी बढ़ती है।

हालाँकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता नए रोजगार भी उत्पन्न कर रही है। डेटा विश्लेषण, साइबर सुरक्षा, मशीन लर्निंग और डिजिटल प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में नए अवसर सामने आए हैं। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा प्रणाली को तकनीकी परिवर्तनों के अनुरूप विकसित किया जाए।

3. सोशल मीडिया और डिजिटल नियंत्रण

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म कृत्रिम बुद्धिमत्ता का व्यापक उपयोग करते हैं। एल्गोरिथ्म उपयोगकर्ताओं की रुचियों, व्यवहार और विचारों का विश्लेषण करके सामग्री प्रस्तुत करते हैं। इससे व्यक्ति लंबे समय तक डिजिटल प्लेटफॉर्म से जुड़ा रहता है।

फेक न्यूज़, ट्रोलिंग और डिजिटल प्रचार के माध्यम से जनमत को प्रभावित किया जा रहा है। राजनीतिक और व्यावसायिक संस्थाएँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग लोगों की मानसिकता को प्रभावित करने के लिए कर रही हैं। इससे लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक संतुलन पर खतरा उत्पन्न होता है।

डेटा संग्रहण और निगरानी की प्रवृत्ति ने निजता के अधिकार को भी चुनौती दी है। डिजिटल कंपनियाँ उपयोगकर्ताओं की व्यक्तिगत जानकारी का उपयोग आर्थिक लाभ के लिए करती हैं। यह स्थिति सामाजिक और नैतिक दृष्टि से चिंताजनक है।

4. मानव संवेदना और रोबोटिक्स

रोबोटिक्स के विकास ने मानव और मशीन के संबंधों को नया रूप दिया है। आज ऐसे रोबोट विकसित किए जा रहे हैं जो मानव की तरह बोल सकते हैं, चेहरे के भाव समझ सकते हैं तथा संवाद स्थापित कर सकते हैं। चिकित्सा, शिक्षा और सेवा क्षेत्र में इनका उपयोग बढ़ रहा है।

इसके बावजूद मशीनें वास्तविक मानवीय संवेदनाओं को पूर्ण रूप से अनुभव नहीं कर सकतीं। वे भावनाओं की नकल कर सकती हैं, किंतु उनके भीतर वास्तविक चेतना नहीं होती। मानव संबंध केवल सूचना और व्यवहार पर आधारित नहीं होते, बल्कि उनमें संवेदना, अनुभव और नैतिकता का भी महत्व होता है।

यदि समाज अत्यधिक तकनीकी निर्भरता की ओर बढ़ता है, तो मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक संबंधों में कृत्रिमता बढ़ सकती है। इससे अकेलापन, मानसिक तनाव और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

5. भाषा, संस्कृति और पहचान

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव भाषा और संस्कृति पर भी दिखाई देता है। अनुवाद तकनीकों और डिजिटल माध्यमों ने वैश्विक संचार को आसान बनाया है। विभिन्न भाषाओं में सामग्री उपलब्ध होने लगी है। इससे ज्ञान का प्रसार बढ़ा है।

दूसरी ओर, वैश्विक डिजिटल संस्कृति के प्रभाव से स्थानीय भाषाएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ प्रभावित हो रही हैं। मनोरंजन और सोशल मीडिया की सामग्री लोगों की जीवन शैली और सोच को बदल रही है। तकनीकी उपनिवेशवाद की स्थिति उत्पन्न हो रही है, जिसमें बड़ी डिजिटल कंपनियाँ सांस्कृतिक प्रभाव स्थापित कर रही हैं।

6. नैतिकता और भविष्य की चुनौतियाँ

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास के साथ अनेक नैतिक प्रश्न उत्पन्न हुए हैं। यदि मशीनें निर्णय लेने लगेंगी, तो उत्तरदायित्व किसका होगा? स्वचालित हथियारों, निगरानी तकनीकों और डेटा नियंत्रण का दुरुपयोग मानवता के लिए गंभीर खतरा बन सकता है।

भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रशासन को अधिक प्रभावशाली बना सकती है, किंतु इसके लिए मानवीय मूल्यों और नैतिक नियंत्रण की आवश्यकता होगी। तकनीक का उद्देश्य मानव जीवन को बेहतर बनाना होना चाहिए, न कि मनुष्य को तकनीक का दास बनाना।

निष्कर्ष :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधुनिक युग की सबसे प्रभावशाली तकनीकी उपलब्धियों में से एक है। इसने मानव जीवन को सरल, तीव्र और सुविधाजनक बनाया है। शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग, संचार और प्रशासन जैसे क्षेत्रों में इसके उपयोग ने कार्यक्षमता बढ़ाई है। डिजिटल तकनीकों ने वैश्विक संपर्क और सूचना विनिमय को आसान बनाया है।

इसके साथ ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने अनेक सामाजिक, आर्थिक और नैतिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। रोजगार की पारंपरिक संरचना बदल रही है। सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म मानव व्यवहार को प्रभावित कर रहे हैं। निजता, स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक मूल्यों के सामने नई चुनौतियाँ उपस्थित हुई हैं। मशीनों पर बढ़ती निर्भरता मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित कर रही है।

अतः यह आवश्यक है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास मानवीय मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक मर्यादाओं के साथ किया जाए। तकनीक का उपयोग मानव कल्याण के लिए होना चाहिए। यदि समाज संतुलित दृष्टिकोण अपनाता है, तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव सभ्यता के विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकती है।

उपसंहार :

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल वैज्ञानिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की एक व्यापक प्रक्रिया है। यह मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रही है। आने वाले समय में इसका प्रभाव और अधिक बढ़ेगा। इसलिए आवश्यक है कि समाज तकनीकी विकास को केवल सुविधा के रूप में न देखे, बल्कि उसके सामाजिक और नैतिक परिणामों को भी समझे।

मानव और मशीन के संबंधों में संतुलन बनाए रखना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यदि तकनीकी विकास के साथ मानवीय संवेदनाओं, सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक न्याय को महत्त्व दिया जाए, तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव सभ्यता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अन्यथा यह सामाजिक असमानता, मानसिक निर्भरता और सांस्कृतिक संकट को बढ़ा सकती है।

संदर्भ :

1. हरारी, युवाल नोआ, होमो डियस : ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टुमरो।
2. जुबॉफ शोषाना, द एज ऑफ सर्विलांस कैपिटलिज्म।
3. ट्यूरिंग, एलन, “कंप्यूटिंग मशीनरी एंड इंटेलिजेंस”।
4. मैकार्थी जॉन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता संबंधी शोध आलेख।
5. कुमार विनोद, डिजिटल संस्कृति और समाज।
6. सिंह, अरविंद, सूचना प्रौद्योगिकी और आधुनिक समाज।
7. शर्मा, राजेश, कृत्रिम बुद्धिमत्ता : संभावनाएँ और चुनौतियाँ।
8. विभिन्न शोध पत्रिकाएँ एवं तकनीकी आलेख।

जयशंकर प्रसाद के 'स्कंदगुप्त' नाटक में राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक अस्मिता और आदर्श नायक का स्वरूप : एक आलोचनात्मक अध्ययन

सोनाली कुमारी

शोधार्थी (हिंदी विभाग), ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ० अखिलेश कुमार

शोध निर्देशक, वरीय सहायक प्राध्यापक, (डॉ. एल.के.भी.डी. कॉलेज, ताजपुर, समस्तीपुर)

शोध-सारांश :

हिंदी साहित्य के छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निबंध सभी विधाओं में अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया। उनके ऐतिहासिक नाटकों में 'स्कंदगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह नाटक भारतीय इतिहास, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव तथा मानवीय मूल्यों का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ 'स्कंदगुप्त' नाटक की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, राष्ट्रीय भावना, सांस्कृतिक दृष्टि तथा नाट्य-शिल्प का विश्लेषण किया गया है।

प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण अतीत को पुनर्जीवित किया। 'स्कंदगुप्त' नाटक में हूणों के आक्रमण से भारत की रक्षा, राष्ट्रप्रेम, त्याग, कर्तव्य तथा आदर्श नेतृत्व की भावना को अत्यंत प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया गया है। स्कंदगुप्त का चरित्र केवल एक वीर योद्धा का नहीं, बल्कि त्यागमयी एवं राष्ट्रीयवादी शासक का प्रतीक है।

इस शोधपत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रसाद ने इतिहास को केवल घटनाओं के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसमें राष्ट्रीय पुनर्जागरण की चेतना का संचार किया। नाटक में नारी पात्रों की भूमिका, राजनीतिक षड्यंत्र, सांस्कृतिक संघर्ष तथा मानवीय संवेदनाओं का भी सूक्ष्म चित्रण मिलता है। भाषा की काव्यात्मकता, संवादों की गंभीरता तथा भावात्मक अभिव्यक्ति इस नाटक को हिंदी रंगमंच की श्रेष्ठ कृतियों में स्थापित करती है।

यह शोधपत्र साहित्यिक एवं आलोचनात्मक दृष्टि से 'स्कंदगुप्त' के विविध पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत करता है तथा यह प्रमाणित करता है कि जयशंकर प्रसाद का यह नाटक भारतीय राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक अस्मिता का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के बहुआयामी रचनाकार थे। छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों में उनका नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। वे केवल कवि ही नहीं, बल्कि उच्चकोटि के नाटककार, कथाकार तथा विचारक भी थे। हिंदी नाटक साहित्य में उनका योगदान ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण घटनाओं को आधार बनाकर ऐसे नाटकों की रचना की, जिनमें राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव तथा मानवीय मूल्यों का समन्वय दिखाई देता है।

प्रसाद के नाटकों में 'स्कंदगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह नाटक गुप्तकालीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियों तथा हूणों के आक्रमण की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें राष्ट्ररक्षा, त्याग, आदर्श नेतृत्व, नारी-चेतना तथा सांस्कृतिक संघर्ष का प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

जयशंकर प्रसाद का जन्म 1889 ई. में वाराणसी में हुआ था। उन्होंने अल्पायु में ही हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में उल्लेखनीय योगदान दिया। उनके प्रमुख नाटकों में 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' तथा 'स्कंदगुप्त' प्रमुख हैं। उनके साहित्य में भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना विद्यमान है।

'स्कंदगुप्त' नाटक में प्रसाद ने इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय किया है। नाटक का नायक स्कंदगुप्त राष्ट्रहित को व्यक्तिगत सुख से ऊपर रखता है। वह त्याग, कर्तव्य तथा राष्ट्रभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है। नाटक में राजनीतिक षड्यंत्रों, पारिवारिक संघर्षों तथा विदेशी आक्रमणों के बीच भारतीय संस्कृति की विजय को चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य 'स्कंदगुप्त' नाटक के माध्यम से जयशंकर प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक दृष्टि, नाट्य-कला तथा आदर्श नायक की अवधारणा का आलोचनात्मक अध्ययन करना है।

उपलब्ध साहित्य :

जयशंकर प्रसाद के साहित्य पर अनेक विद्वानों ने अध्ययन एवं आलोचना प्रस्तुत की है। हिंदी नाटक साहित्य में उनके योगदान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। 'स्कंदगुप्त' नाटक पर भी विभिन्न आलोचकों ने राष्ट्रीयता, ऐतिहासिकता तथा सांस्कृतिक दृष्टि से विचार किया है।

डॉ. नगेंद्र ने प्रसाद के नाटकों को भारतीय संस्कृति का जीवंत दस्तावेज बताया है। उनके अनुसार प्रसाद ने इतिहास के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। रामविलास शर्मा ने प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक गौरव को विशेष रूप से रेखांकित किया है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रसाद के नाटकों की भाषा और काव्यात्मकता की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनके नाटकों में भारतीय जीवन-दर्शन की गहरी अनुभूति मिलती है। नंददुलारे वाजपेयी ने 'स्कंदगुप्त' को राष्ट्रीय आदर्शों का प्रतिनिधि नाटक माना है।

विभिन्न शोधग्रंथों में 'स्कंदगुप्त' के चरित्र-चित्रण, नाट्य-संरचना तथा राष्ट्रीय चेतना का अध्ययन किया गया है। किंतु वर्तमान शोधपत्र में विशेष रूप से राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक अस्मिता तथा आदर्श नायक के स्वरूप को केंद्र में रखकर विश्लेषण किया गया है।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 'स्कंदगुप्त' केवल ऐतिहासिक नाटक नहीं, बल्कि भारतीय आत्मगौरव और सांस्कृतिक चेतना का महत्वपूर्ण प्रतीक है।

शोध-प्रविधि :

प्रस्तुत शोधपत्र में वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का आधार प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत हैं। प्राथमिक स्रोत के रूप में जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'स्कंदगुप्त' नाटक का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध-पत्र, संदर्भ पुस्तकें तथा साहित्यिक आलेख सम्मिलित हैं।

शोध के दौरान निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है-

1. जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन।
2. 'स्कंदगुप्त' नाटक की कथावस्तु एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण।
3. नाटक में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक गौरव की अभिव्यक्ति।
4. स्कंदगुप्त के चरित्र का आदर्श नायक के रूप में मूल्यांकन।
5. नाटक की भाषा, शैली एवं नाट्य-शिल्प का अध्ययन।

इस प्रकार शोध में साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा आलोचनात्मक दृष्टियों का समन्वय किया गया है।

परिणाम एवं विमर्श :

1. 'स्कंदगुप्त' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

'स्कंदगुप्त' नाटक गुप्तकालीन भारत की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। उस समय भारत पर हूणों के आक्रमण का संकट मंडरा रहा था। प्रसाद ने इसी ऐतिहासिक संदर्भ को आधार बनाकर राष्ट्ररक्षा और सांस्कृतिक अस्मिता की भावना को व्यक्त किया है।

नाटक में स्कंदगुप्त एक ऐसे वीर योद्धा के रूप में सामने आता है, जो व्यक्तिगत इच्छाओं का त्याग करके राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानता है। वह विदेशी आक्रमणकारियों से संघर्ष करता है और भारत की रक्षा करता है।

2. राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

जयशंकर प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वर अत्यंत प्रबल है। 'स्कंदगुप्त' में यह भावना कई स्तरों पर व्यक्त हुई है। स्कंदगुप्त का चरित्र राष्ट्रप्रेम और त्याग का प्रतीक है। वह सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष नहीं करता, बल्कि राष्ट्र की रक्षा को अपना कर्तव्य मानता है।

नाटक में अनेक स्थानों पर राष्ट्रीय भावना का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। स्कंदगुप्त कहता है कि उसे सिंहासन की अपेक्षा राष्ट्र की सुरक्षा अधिक महत्वपूर्ण लगती है। यह कथन उसके आदर्शवादी व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है।

प्रसाद ने नाटक के माध्यम से यह संदेश दिया है कि राष्ट्र की एकता और सांस्कृतिक गौरव की रक्षा प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

3. सांस्कृतिक अस्मिता और भारतीयता

'स्कंदगुप्त' केवल राजनीतिक संघर्ष का नाटक नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति की रक्षा का भी प्रतीक है। प्रसाद ने भारतीय संस्कृति को उदार, मानवीय और नैतिक मूल्यों पर आधारित बताया है।

नाटक में विदेशी आक्रमणकारी केवल राजनीतिक शक्ति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चुनौती भी प्रस्तुत करते हैं। स्कंदगुप्त भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए संघर्ष करता है। इस प्रकार वह भारतीय अस्मिता का प्रतिनिधि बन जाता है।

प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों-त्याग, करुणा, कर्तव्य और मानवता-को नाटक के माध्यम से प्रतिष्ठित किया है।

4. स्कंदगुप्त का चरित्र-चित्रण

स्कंदगुप्त नाटक का केंद्रीय पात्र है। उसका चरित्र बहुआयामी है। वह वीर योद्धा होने के साथ-साथ संवेदनशील, त्यागी और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति भी है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(क) राष्ट्रभक्ति

स्कंदगुप्त राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानता है। वह व्यक्तिगत सुख और प्रेम का त्याग कर राष्ट्र की रक्षा में स्वयं को समर्पित कर देता है।

(ख) त्याग और कर्तव्य

वह सिंहासन का लोभ नहीं करता। उसका उद्देश्य केवल राष्ट्र की सुरक्षा और जनता का कल्याण है।

(ग) आदर्श नेतृत्व

स्कंदगुप्त में नेतृत्व क्षमता का अद्भुत गुण है। वह सैनिकों में उत्साह का संचार करता है और संकट की स्थिति में धैर्य बनाए रखता है।

(घ) मानवीय संवेदना

यद्यपि वह वीर योद्धा है, फिर भी उसके भीतर करुणा और संवेदनशीलता विद्यमान है। यही गुण उसे आदर्श नायक बनाते हैं।

5. नारी पात्रों की भूमिका

नाटक में नारी पात्रों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। देवसेना, अनंतदेवी तथा विजया जैसे पात्र कथा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। देवसेना त्याग और प्रेम की प्रतीक है। वह स्कंदगुप्त के प्रति समर्पित है। दूसरी ओर अनंतदेवी राजनीतिक महत्वाकांक्षा और षड्यंत्र का प्रतिनिधित्व करती है। विजया का चरित्र भावनात्मक द्वंद्व को प्रस्तुत करता है।

प्रसाद ने नारी पात्रों को केवल सहायक भूमिका तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है।

6. नाट्य-शिल्प और भाषा

जयशंकर प्रसाद के नाटकों की भाषा अत्यंत काव्यात्मक और संस्कृतनिष्ठ है। 'स्कंदगुप्त' में संवादों की गंभीरता और भावात्मकता पाठक को प्रभावित करती है।

नाटक में गीत, प्रतीक और अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है। प्रसाद ने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य-शिल्प का समन्वय किया है। कथानक की गति, संवादों की प्रभावशीलता तथा चरित्रों की मनोवैज्ञानिक गहराई इस नाटक को श्रेष्ठ बनाती है।

7. राजनीतिक षड्यंत्र और सत्ता संघर्ष

नाटक में राजनीतिक षड्यंत्रों का भी प्रभावशाली चित्रण है। अनंतदेवी तथा भटार्क जैसे पात्र सत्ता प्राप्ति के लिए षड्यंत्र करते हैं। इससे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की जटिलता स्पष्ट होती है।

प्रसाद ने यह दिखाया है कि राष्ट्र की आंतरिक दुर्बलता विदेशी आक्रमणों को बढ़ावा देती है। इसलिए राष्ट्रीय एकता और नैतिकता आवश्यक है।

8. मानवीय मूल्य और आदर्शवाद

'स्कंदगुप्त' आदर्शवादी नाटक है। इसमें मानवता, त्याग, कर्तव्य तथा नैतिकता के मूल्यों को प्रतिष्ठित किया गया है।

स्कंदगुप्त का जीवन संघर्ष यह संदेश देता है कि सच्चा नेतृत्व वही है जो व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज और राष्ट्र के लिए कार्य करे।

निष्कर्ष :

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जयशंकर प्रसाद का 'स्कंदगुप्त' नाटक हिंदी साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। यह केवल ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण नहीं करता, बल्कि राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक अस्मिता तथा मानवीय मूल्यों का भी प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण करता है।

स्कंदगुप्त का चरित्र आदर्श नेतृत्व, त्याग और राष्ट्रभक्ति का प्रतीक है। प्रसाद ने इतिहास के माध्यम से भारतीय समाज को आत्मगौरव और राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया।

नाटक में नारी पात्रों, राजनीतिक संघर्षों तथा सांस्कृतिक मूल्यों का संतुलित चित्रण मिलता है। भाषा की काव्यात्मकता और संवादों की प्रभावशीलता इसे हिंदी नाटक साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों में स्थान प्रदान करती है।

इस प्रकार 'स्कंदगुप्त' भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना का जीवंत दस्तावेज सिद्ध होता है।

उपसंहार :

जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने साहित्य को राष्ट्रीय पुनर्जागरण का माध्यम बनाया। 'स्कंदगुप्त' नाटक उनकी साहित्यिक प्रतिभा, ऐतिहासिक दृष्टि तथा सांस्कृतिक चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है।

आज के समय में भी यह नाटक प्रासंगिक है, क्योंकि यह राष्ट्रप्रेम, नैतिकता और सांस्कृतिक गौरव का संदेश देता है। वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में भी यह कृति हमें राष्ट्रीय एकता, त्याग और कर्तव्य की प्रेरणा प्रदान करती है।

अतः कहा जा सकता है कि 'स्कंदगुप्त' केवल एक ऐतिहासिक नाटक नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक अस्मिता का अमर प्रतीक है।

संदर्भ :

1. प्रसाद, जयशंकर – स्कंदगुप्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. नगेंद्र, डॉ. – हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
3. शर्मा, रामविलास – जयशंकर प्रसाद और उनका साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद – हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
5. वाजपेयी, नंददुलारे – आधुनिक हिंदी साहित्य, लोकभारती प्रकाशन।
6. मिश्र, विश्वंभर 'मानव' – आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
7. सिंह, बच्चन – हिंदी नाटक और रंगमंच, किताब महल।
8. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।